ताओ-उपनिषद्

ताओ-उपनिषद्

तीसरा भाग

भगवान श्री रजनीश

संकलन
मा अमृत मुक्ति

सम्पादन
स्वामी आनन्द मैत्रेय

ताओ-उपनिषद्

लाओत्से के ताओ तेह किंग पर दिए गए
भगवान श्री रजनीश के इक्कीस अमृत
प्रवचनों की तीसरी श्रृंखला

विषय-क्रम

पूर्व-दृश्य

ताओ के ऋषि लाओत्से परम निसर्गवादी थे। उनसे बढकर निसर्गवादी इतिहास में खोजे नहीं मिलेगा। क्या बाहर, क्या भीतर, सभी तलों पर प्रकृति के, स्वभाव के, स्वधर्म के अनुकूल जीने के वह हिमायती थे। आज से ढाई हजार साल पहले उन्होने निसर्ग के साथ किसी तरह के भी हस्तक्षेप का विरोध किया था और कहा था कि इसके नतीजे अच्छे नही हो सकते। वर्तमान युग के संदर्भ में इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए भगवान रजनीश कहते है .

"यूरोप और अमरीका मे एक आन्दोलन चलता है, जिसे इकॉलॉजी कहते हैं। यह आन्दोलन रोज गति पकड़ रहा है। इस आन्दोलन का कहना है कि प्रकृति का एक संगीत है, उसे नष्ट मत करें। और एक तरफ से हम नष्ट करते हैं संगीत को तो पूरी व्यवस्था को बिगाड देते है। और हमें पता नही है कि हम क्या कर रहे हैं, और उसके क्या परिणाम होगे।

"क्योकि जगत एक व्यवस्था है, वह केआस नही है, अराजकता नही है। जगत एक व्यवस्था है और उस जगत की व्यवस्था में छोटी से छोटी चीज बड़ी से बड़ी चीज से जुडी है। यहा कुछ भी विच्छिन्न नही है, अलग-अलग नहीं है। जब आप कुछ छोटा-सा फर्क करते हैं, तब आप पूरे जगत की व्यवस्था में फर्क ला रहे हैं। एक पत्थर का हटाया जाना भी पूरे जगत की व्यवस्था में परिवर्तन की शुरुआत है। और उसके क्या परिणाम होगे, कितने व्यापक परिणाम होगे, कहना मुश्किल है।

"ऐसा हुआ। बर्मा के एक बहुत छोटे, दूर देहात में प्लेग की बीमारी से बचने के लिए चूहो को मार डाला गया। चूहो के मर जाने पर गाव की बिल्लिया मरनी शुरू हो गई, क्योकि चूहे उनका भोजन थे। और गाव की बिल्लियों के मर जाने पर एक बीमारी गाव में फैल गई जो उस गाव में कभी नही फैली थी। क्योकि उन बिल्लियो की मौजूदगी की वजह से कुछ जो कीटाणु गाव में विकसित नही हो सकते थे, बिल्लियों के मर जाने की वजह से वे विकसित हो गए।

"और जिस मिशन ने गांव के चूहे नष्ट किये थे प्लेग को अलग करने के लिए, वह बड़ी मुश्किल में पड गया। गांव के मुखिया को बहुत समझा-बुझा कर राजी किया जा सका था चूहो को मारने के लिए। गांव के मुखिया ने कहा कि अब हम

रहे तो तनावग्रस्त होगा, बीमार होगा, परेशान होगा। वह जीएगा जरूर, लेकिन जीने की कोई रौनक और जीने की कोई लय उसके भीतर नहीं रह जाएगी।

"हमने चांद पर आदमी भेजा। हमने पहली दफा, पृथ्वी को जो वायुमंडल घेरे है, उसमें छेद किया। पहली दफा। पर किसी को खयाल नहीं था कि वायुमंडल में भी छिद्र का कोई अर्थ होता है। करने के बाद ही खयाल हुआ। स्वभावतः कुछ चीजें करने के बाद ही पता चलती हैं।

"इसे हम ऐसे समझें। जैसे कि सागर है तो सागर मछलियों के लिए वायुमंडल है; पानी उनके लिए वातावरण है। मछलियां पानी में जीती हैं, पानी के बाहर नहीं जी सकतीं। हम भी हवा में जीते हैं, हवा के बाहर नहीं जी सकते। जमीन को दो सौ मील तक हवा घेरे हुए है। ऐसा समझें कि हम दो सौ मील तक हवा के सागर में हैं। इसके पार होते ही हम जी नहीं सकते, जैसे मछली किनारे पर फेंक दी जाए और जी न सके। आम तौर से हम सोचते हैं कि हम जमीन के ऊपर है। बेहतर होगा सोचना कि हम हवा के सागर की तलहटी में हैं। वह ज्यादा उचित होगा, ज्यादा वैज्ञानिक होगा। जैसे कि कोई जानवर सागर की तलहटी में रहता हो और उसके ऊपर दो सौ मील तक पानी हो, ठीक वैसे ही आदमी भी हवा के सागर की तलहटी में रहता है, दो सौ मील उसमें हवा का सागर है।

"यह दो सौ मील तक हवा का जो सागर है, वह सारे ब्रह्माण्ड से आती हुई किरणों को छाटता है और केवल वे ही किरणें हम तक पहुंच पाती हैं जो जीवन के लिए घातक नहीं हैं। इसलिए हमारे चारों तरफ दो सौ मील तक सुरक्षा का वातावरण है। सभी किरणें, जो भी पृथ्वी की तरफ आती हैं, प्रवेश नहीं कर पातीं; यह वातावरण इनमें से नब्बे प्रतिशत किरणों को वापस लौटा देता है। और वह आठ प्रतिशत किरणों को इस लायक बना देता है कि वे हमारे प्राण न ले सकें। और दो प्रतिशत किरणें हमारे प्राण के लिए जरूरी है, जीवन के लिए जरूरी है, और वे वैसी की वैसी ही हम तक पहुंच जाती हैं। ऐसा समझें कि दो सौ मील तक हमारे चारों तरफ छनावट का इन्तजाम है।

"पहली दफा जब हमने चांद की यात्रा की और हमने अन्तरिक्ष में यात्री भेजे, तब हमने इस वातावरण को कई जगह से तोड़ा। जहां से यह वातावरण टूटा, वहां से पहली दफा उन किरणों का प्रवेश हुआ पृथ्वी पर, जो अरबों वर्षों से प्रविष्ट नहीं हुई थीं। वैज्ञानिकों ने एक नया शब्द का उपयोग किया कि वातावरण में छेद हो गया। और उन छेदों को भरना मुश्किल है। उन छेदों से रेडिएशन की किरणें भीतर आ रही हैं। और उनके क्या परिणाम होंगे, कहना मुश्किल है; किस तरह की बीमारियां फैलेंगी, कहना मुश्किल है।

"पश्चिम में वातावरण को बदलने की, जिन्दगी को बदलने की सर्वाधिक चेष्टा विज्ञान ने की है। वहां के जो चोटी के विचारक है, वे अब लाओत्से से राजी होने

क्या करें ? बिल्लियां भी मर गईं और यह नई बीमारी फैल गई। और इस नई बीमारी का अभी कोई इलाज नहीं था। यह बात कोई चालीस साल पहले की है। तो जिस मिशन ने यह सेवा की थी गाव की, उसने कहा कि हम पता करते हैं। लेकिन उस गाव की पंचायत के लोगो ने कहा कि तुम जब तक पता कर पाओगे, यह बीमारी हमारे प्राण ले लेगी। फिर प्लेग के हम आदी हो चुके थे और प्लेग के लिए हमने एक प्रतिरोधक शक्ति विकसित कर ली थी। हजारो वर्ष से प्लेग थी। हम उससे लड़ना भी सीख गए थे। इस नई बीमारी से लडना भी सभव नहीं है। हमारा शरीर भी प्लेग के लिए सक्षम हो गया था। यह नई बीमारी हमारे प्राण लिये ले रही है, तोड़े डाल रही है।

"इतनी जल्दी तो नई बीमारी दूर नहीं की जा सकती थी। और गाव के बूढ़ो ने यह भी कहा कि अगर तुम यह नई बीमारी दूर भी कर दो तो क्या भरोसा है कि तुम और दूसरी बीमारियां पैदा करने के कारण न बन जाओ। इसलिए उचित यही होगा कि पडोस के गाव मे हम चूहे माग ले। कोई उपाय नही था। पडोस के गाव मे चूहे माग लिये गए। चूहो के पीछे बिल्लिया चली आईं। और बिल्लियो के आते ही वह जो बीमारी फैल गई थी, वह विदा हो गई।

"इकॉलॉजी का अर्थ है कि जिन्दगी एक व्यवस्था है। उसमें जरा-सा भी कहीं कोई फर्क तत्काल पूरे पर फर्क पैदा करता है। और पूरे का हमें कोई पता नहीं है। पूरे का हमें कोई पता नहीं है।

"यह बडे मजे की बात है कि आज जमीन पर सर्वाधिक दवाइया है और आज जमीन पर आदमी को सुख पहुचाने के सर्वाधिक उपाय है, और आज से ज्यादा दुखी आदमी जमीन पर कभी भी नही था। क्या कारण होगा ?

"कारण एक ही मालूम पडता है कि हम एक का इन्तजाम करते है और दस इन्तजाम बिगाड लेते हैं। और जब तक हम दस का इन्तजाम करते हैं, तब तक हजार इन्तजाम बिगाड लेते है।

"यह तो बर्मा के गाव में घटी थी घटना। अभी लास एजिल्स में कारो की अत्य-धिकता के कारण, कारो के एक्झास्ट-धुएं के कारण हवा इतनी विषाक्त हो गई है कि चमत्कार मालूम पडता है, वैज्ञानिक कहते हैं कि जितना विष हवा में सहा जा सकता है, आदमी सह सकता है, उसमे तीन गुना विष हवा में हो गया है, फिर भी आदमी जिन्दा है। लेकिन जिन्दा तो परेशानी में ही होगा। जब तीन गुनी मृत्यु को झेलना पड़ना हो जीवन को तो जीवन मुर्दा जैसा ही हो जाएगा।

"तो चेष्टा की गई कि कारें इस ढग से बनाई जाएं कि उनमें कम एक्झास्ट निकले और पेट्रोल में भी ऐसे फ़र्क किये जाए कि इतना विष हवा में न फैले। वे फर्क किये भी गए। लेकिन तब हवा में दूसरी चीजें फैलीं, जो पहले से ज्यादा सघातक है। अब क्या किया जा सकता है ? और आदमी इतने विष को झेल कर जिन्दा

लगे हैं। वे कहते हैं, करके हमने देख लिया कि आदमी सुखी नहीं हुआ, आदमी दुखी ही हुआ। जीवन अनेक तरह के कष्टों में पड़ गया है, जिनका हमें खयाल नहीं था।"

० ० ०

"हम जो करते हैं, उसके परिणाम क्या होंगे? परिणाम अनन्त-आयामी हैं, उनका कोई भी पता नहीं है। जब हम एक तार छूते हैं, तब हम पूरे जीवन को छू रहे हैं। और उसके क्या-क्या दूरगामी अर्थ होंगे, उनका हमें कुछ भी पता नहीं है।

"और ऐसा नहीं है कि हम पहली दफा इन चीजों को कर रहे हैं। आदमी ने इन चीजों को बहुत बार कर लिया है। और यह जो लाओत्से कह रहा है, यह सिर्फ भविष्यवाणी नहीं है, अतीत का अनुभव भी है। इस सदी के आदमी को ऐसा खयाल है कि हम जो कर रहे हैं, यह हम पहली दफा कर रहे हैं। यह बात सही नहीं मालूम पड़ती। अगर हम इतिहास की गहन खोज में जाएं तो हमें पता चलेगा कि जो हम आज कर रहे हैं, आदमी उसे बहुत बार कर चुका है, और छोड़ चुका है। बहुत बार कर चुका और छोड़ चुका, और छोड़ चुका इसलिए कि पाया व्यर्थ है।"

० ० ० ०

"लाओत्से का यह कहना कि हस्तक्षेप से सावधान, बहुत विचारणीय है। लाओत्से मानता है कि निसर्ग ही नियम है, आदमी को वैसे जीने दो जैसे वह निसर्ग से है। वह जो भी है, अच्छा और बुरा, वह जैसा भी है, सुख में और दुख में, उसे निसर्ग से जीने दो। क्योंकि निसर्ग से ही जीकर वह ब्रह्मांड के साथ एकसूत्रता में है। और निसर्ग से हट कर ही उसकी एकसूत्रता टूटनी शुरू हो जाती है। और फिर उस टूटने का कोई अन्त नहीं है। टूटते-टूटते वह बिलकुल रिक्त, खाली और व्यर्थ हो जाता है।"

० ० ०

इस पूर्व-दृश्य के साथ हम ताओ-उपनिषद का तीसरा भाग सप्रेम मुमुक्षु पाठकों के हाथ में दे रहे हैं और आशा रखते हैं कि यह हमारी निसर्ग की, स्वभाव की, स्वधर्म की यात्रा में अपूर्व रूप से सहयोगी होगा।

स्वामी आनन्द मैत्रेय

गुरु-पूर्णिमा
बुधवार, २३ जुलाई १९७५
श्री रजनीश आश्रम,
पूना (महाराष्ट्र)

धार्मिक व्यक्ति अजनबी व्यक्ति है

चौवालीसवाँ प्रवचन :
अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई, दिनांक १७ जुलाई १९७२.

अध्याय २० : खण्ड १

संसार और मैं

पाण्डित्य को छोड़ो तो मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं।
'हां' और 'ना' के बीच अन्तर क्या है ?
शुभ और अशुभ के बीच भी फासला क्या है ?
लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए;
लेकिन अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है !
दुनिया के लोग मजे कर रहे हैं,
मानो वे यज्ञ के भोज में शरीक हों,
मानो वे वसन्त ऋतु में खुली छत पर खड़े हों;
मैं अकेला ही शान्त और सौम्य हूं, जैसे कि मुझे कोई काम ही न हो,
मैं उस नवजात शिशु जैसा हूं, जो अभी मुसका भी नहीं सकता;
या वह बनजारा हूं, जिसका कोई घर न हो।

Chapter 20: Part I

THE WORLD AND I

Banish learning, and vexations end.
Between 'Ah !' and 'Ough !'
How much difference is there ?
Between 'good' and 'evil'
How much difference is there ?
That which men fear
Is indeed to be feared;
But, alas, distant yet is the dawn (of awakening) !
The people of the world are merry-making
As if partaking of the sacrificial feasts,
As if mounting the terrace in spring;
I alone am mild, like one unemployed,
Like a new-born babe that cannot yet smile,
Unattached, like one without a home.

गुरजिएफ ने मनुष्य को दो विभागों में बांटा है। एक है जिसे वह कहता है व्यक्तित्व, पर्सनैलिटी; और दूसरा जिसे वह कहता है आत्मा, एसेन्स। व्यक्तित्व वह हिस्सा है, जो हम सीखते हैं। और आत्मा वह हिस्सा है, जो अनसीखा हमारे साथ है। एक तो हमारे जीवन का वह पहलू है, जो हमने दूसरों से सीखा है। और एक हमारे जीवन की वह गहराई है, जो हम लेकर पैदा हुए है। एक तो मैं हूं, अंतरतम में छिपा हुआ। और एक मेरी बाहरी परिधि है, मेरे वस्त्र हैं जो मैंने दूसरो से उधार लिये हैं। व्यक्तित्व उधार घटना है, बौरोड; आत्मा अपनी है।

लाओत्से का यह सूत्र आत्मा और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में है।

लाओत्से कहता है कि पाण्डित्य छोड़ो तो मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं। बैनिश लर्निंग, वह जो सीखा है, उसे छोड़ो और वह जो अनसीखा है, उसे पा लो। बड़ी कठिनाई होगी। क्योकि हम अगर अपने सम्बन्ध में विचार करने जाएं तो पाएंगे कि सभी कुछ सीखा हुआ है। आप जो भी अपने सम्बन्ध में जानते हैं, वह सभी कुछ सीखा हुआ है। किसी ने आपको बताया है, वही आप का ज्ञान है। और जो दूसरे ने बताया है, जो दूसरे ने सिखाया है, वह आप का स्वभाव नही हो सकता।

स्वयं को जानने के लिए किसी दूसरे की किसी भी शिक्षा की जरूरत नहीं है। हा, स्वयं को ढांकना हो, छिपाना हो तो दूसरे की शिक्षा जरूरी और अनिवार्य है। स्वयं का होना तो एक आंतरिक, आत्मिक नग्नता है, दिगम्बरत्व है। वस्त्र तो उसे छिपाने के काम आते हैं। हमारी सारी जानकारी ज्ञान को छिपाने के काम आती है। लेकिन जो जानकारी को ही ज्ञान मान लेते हैं, वे फिर सदा के लिए ज्ञान से वंचित हो जाते हूं।

एक बच्चा पैदा होता है, जो भी एसेन्स है, जो सार है, वह लेकर पैदा होता है-लेकिन एक कोरी किताब की तरह। फिर हम उस पर लिखना शुरू करते हैं-शिक्षा, समाज, संस्कृति, सभ्यता। फिर हम उस पर लिखना शुरू करते हैं। थोड़े ही दिनों में कोरी किताब अक्षरों से भर जाएगी। स्याही के काले धब्बे पूरी किताब को घेर लेंगे। और क्या कभी आपने खयाल किया है कि जब आप किताब पढ़ते हैं, तब आपको सिर्फ स्याही के काले अक्षर ही दिखाई पड़ते हूं, पीछे का वह जो सफेद कागज है कोरा, वह दिखाई नहीं पड़ता?

एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इस पर काम कर रहा था, डाक्टर पर्ल इस सम्बन्ध में काम कर रहा था। उसने अपने विद्यार्थियों की कक्षा के सामने एक दिन आकर

ब्लैक बोर्ड पर एक बड़ा सफेद कागज टांगा, ब्लैक बोर्ड के बराबर। फिर उस बड़े सफेद कागज पर एक छोटा-सा स्याही का काला गोल बनाया, एक बिन्दु बनाया, अति छोटा। गौर से देखें तो ही दिखाई पड़े। और फिर उसने अपने विद्यार्थियो से पूछा कि तुम्हे क्या दिखाई पड़ता है ? उन्होने कहा कि एक काला गोल बिन्दु दिखाई पड़ता है। उस पूरी कक्षा में एक भी विद्यार्थी ने नही कहा कि बोर्ड पर टंगा हुआ सफेद कागज का टुकडा भी दिखाई पड़ता है। बहुत बड़ा था सफेद कागज का टुकड़ा, पर वह किसी को दिखाई नही पड़ रहा है। दिखाई पड़ रहा है एक काला बिन्दु। उसका कारण है।

कोरापन हमे दिखाई ही नही पड़ता, कोई दाग हो तो दिखाई पड़ता है। जितना स्वच्छ हो, जितना कोरापन हो, उतना ही अदृश्य हो जाता है। शायद परमात्मा इसीलिए दिखाई हमें नही पड़ता है। वह जगत का कोरापन है, इनोसेन्स है। वह जगत की निर्दोषिता है। लेकिन दाग हमें दिखाई पड़ते हैं। दाग देखने में हमारी कुशलता का कोई अंत नही है।

एक बच्चा तो कोरा पैदा होता है। फिर हम उस पर लिखना शुरू करते हैं। जरूरी है कि हम उस पर कुछ लिखें। जीवन के सघर्ष के लिए उपयोगी है। शायद कोरे कागज की तरह तो वह जी भी नही पाएगा। कोरे कागज की तरह शायद वह एक क्षण भी इस जीवन के सघर्ष में सफल न हो पाएगा। लिखना जरूरी है। कहे कि एक जरूरी बुराई है, नेसेसरी इविल है। फिर हम लिखते जाएंगे। उसका नाम देंगे, उसका रूप देंगे। आप कहेंगे कि नाम तो ठीक है, लेकिन रूप तो हर आदमी लेकर पैदा होता है। वह भी खयाल गलत है। नाम भी हम देते हैं, रूप भी हम देते हैं। क्यो ?

क्योंकि जो शक्ल एक मुल्क में सुन्दर समझी जाती है, दूसरे मुल्क मे असुन्दर समझी जाती है। एक ढग का चेहरा चीन में सुन्दर समझा जाता है, ठीक वैसे ही ढंग का चेहरा भारत में सुन्दर नही समझा जाता है। चपटी नाक चीन में असुन्दर नही है, सारी दुनिया में असुन्दर है। बडे और लटके हुए होठ नीग्रो के लिए असुन्दर नही है, सारी दुनिया में असुन्दर होते हैं। नीग्रो लडकियां अपने होठों को बडा करने के लिए सब उपाय करेंगी। पत्थर बाध कर लटकाएगी, ताकि होठ चौड़ा हो जाए, बडा हो जाए। हमारे मुल्क में या जहा भी आर्यों का प्रभाव है, पश्चिम मे, पतला होठ सुन्दर माना जाता है। कहना मुश्किल है कि कौन सुन्दर है।

दोनों के पक्ष और विपक्ष मे बाते कही जा सकती है। क्योंकि नीग्रो कहते हैं कि होठ जितना चौड़ा हो, चुम्बन उतना ही विस्तीर्ण हो जाता है। हो ही जाएगा। लेकिन पतले होठ को माननेवाले कहते हैं कि होठ जितना चौड़ा हो, चुम्बन तो उतना विस्तीर्ण हो जाता है, लेकिन फीका हो जाता है। क्योंकि जब भी कोई चीज

बहुत जगह फैल जाती है, तब उसका प्रभाव फीका हो जाता है, उसकी इन्टेन्सिटी कम हो जाती है। लेकिन क्या सुन्दर है, पतला होंठ या मोटा होंठ? समाज सिखाएगा कि क्या सुन्दर है।

रूप भी हम देते हैं। नाम भी हम दे देते हैं, रूप भी हम देते हैं। विचार भी हम देते हैं। फिर व्यक्तित्व की पर्तें बननी शुरू हो जाती है। आखिर में जब आप अपने को पाते हैं, तब आपको खयाल भी नहीं होता है कि एक कोरापन लेकर आप पैदा हुए थे, जो पीछे छिप गया है—बहुत-सी पर्तों में। वस्त्र इतने हो गए हैं कि आपको अब अपने को खोजना कठिन है। और आप भी इन वस्त्रों के जोड़ को ही अपनी आत्मा समझ कर जी लेते हैं।

यही अधार्मिक आदमियों का लक्षण है। जो वस्त्रों को ही समझ लेता है कि मैं हूं, वही आदमी अधार्मिक है। जो वस्त्रों के भीतर उसको खोजता है, जो समस्त सिखावन के पहले मौजूद था, और जब समस्त वस्त्रों को छीन लिया जाए, तब भी मौजूद रहेगा, उस स्वभाव को खोजता है, वही व्यक्ति धार्मिक है।

लाओत्से कहता है, छोड़ो सिखावन। जो-जो सीखा है उसे छोड़ दो तो तुम स्वयं को जान सकोगे। लेकिन हम बड़े उलटे लोग हैं। हमको स्वयं को भी जानना हो तो हम उसे भी दूसरों से सीखने जाते हैं। सच तो यह है कि स्वयं को खोना हो, तो दूसरे से सीखना अनिवार्य है। और स्वयं को जानना हो, तो दूसरों की समस्त शिक्षाओं को छोड देना जरूरी है।

यदि जगत में कुछ भी जानना हो अपने को छोड़कर तो शिक्षा जरूरी है। और जगत में यदि स्वयं को जानना हो तो समस्त शिक्षा का त्याग जरूरी है। क्योंकि जगत में कुछ और जानना हो तो बाहर जाना पड़ता है और स्वयं को जानना हो तो भीतर आना पडता है। यात्राएं उलटी हैं। तो धर्म एक तरह की अनलर्निग है; शिक्षा नहीं, एक तरह का शिक्षा-विसर्जन है, एक तरह का शिक्षा का परित्याग है। जो भी सीखा है, सभी छोड़ देना है। इसमें धर्म भी आ जाता है; जो धर्म सीखा है, वह भी आ जाता है। जो शास्त्र सीखा है, वह भी आ जाता है। जो सिद्धान्त सीखा है, वह भी आ जाता है। जो भी सीखा है, सब कुछ आ जाता है। इसलिए धर्म परम त्याग है। धन को छोड़ना बहुत आसान है; लेकिन जो सीखा है, उसे छोड़ना बहुत कठिन है। क्योंकि धन हमारे ऊपर के वस्त्रों जैसा है; लेकिन जो हमने सीखा है, वह हमारी चमड़ी बन गया है। उसे छोड़ना इतना आसान नहीं है। क्योंकि हम अपने सीखे हुए के जोड़ ही हैं।

एक आदमी से पूछें कि तुम कौन हो तो कहता है कि मैं डाक्टर हूं। दूसरे आदमी से पूछो कि वह कौन है, वह कहता है कि मैं शिक्षक हूं। फिर एक आदमी को पूछो कि वह कौन है, वह कहता है, मैं अ हूं, या ब हूं, या स हूं। और गौर से देखो तो वे सब यह बता रहे हैं कि उन्होंने क्या-क्या सीखा है। एक आदमी ने डाक्टरी सीखी है,

इसलिए वह डाक्टर है। एक आदमी ने वकालत सीखी है तो वह वकील है। और एक आदमी ने चोरी सीखी है तो वह चोर है। और हमारे मुल्क में कुछ लोग साधुता सीख लेते हैं, वे साधु हैं।

लेकिन यह सब सिखावन है। यह सीखा हुआ है। और सीखे हुए का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म है अनसीखे की खोज; जिसे न कभी सीखा है और न सीख सकते हैं, जो हम हैं ही, जिसमें सिखावन से कुछ जोड़ा नहीं जा सकता, कुछ घटाया नहीं जा सकता, जो हमारी मौजूदगी में ही छिपा है, उसकी खोज।

और लाओत्से कहता है, छोड़ो पांडित्य और मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं। क्योंकि सभी मुसीबतें पाण्डित्य की मुसीबतें हैं। व्यक्ति की, समाज की सारी मुसीबतें जानकारी की मुसीबतें हैं, पाण्डित्य की मुसीबतें हैं। जो हम जानते हैं, वही हमारी मुसीबत बन जाता है। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। जो हम जानते हैं, वह हमारी मुसीबतें कैसे बन जाता होगा? क्योंकि जो हम जानते हैं, उसके कुछ अनिवार्य परिणाम होंगे। जानने के कारण हम कभी भी सहज न हो पाएंगे; हर क्षण असहज होंगे। स्पॉन्टेनियस होना असम्भव हो जाएगा।

एक आदमी आपके पड़ोस में बैठा हुआ है। आप शान्ति से बैठे हुए हैं। आप उससे पूछते हैं, आप कौन हैं? वह कहता है कि मैं मुसलमान हूं, या ईसाई हूं, या हिन्दू हूं। तत्क्षण आप असहज हो जाएंगे। आदमी तिरोहित हो गया। मुसलमान बैठा है पडोस में और मुसलमान के सम्बन्ध में आपने कुछ सीख रखा है। अब ये दो आदमी पड़ोसी नहीं हैं। अब इनके बीच में सिखावन आ गयी। और अगर आप हिन्दू हैं तो उसने भी हिन्दू के सम्बन्ध में कुछ सीख रखा है। अब ये दोनों आदमी हजार मील की दूरी पर हो गए। अब इनके बीच फासला बड़ा हो गया। अब इन दोनों के हाथ कितने ही फैलें तो भी मिल नहीं सकते।

अभी दो क्षण पहले ये पड़ोसी थे; इनके बीच कोई फासला न था। अब इन दोनों की शिक्षाएं बीच में आ गईं। अब ज्ञान का पहाड़ बीच में आ गया। जो आदमी क्षण भर पहले सिर्फ आदमी था, अब आदमी नहीं, मुसलमान है। जो क्षण भर पहले आदमी था, अब आदमी नहीं, हिन्दू है।

और मजे की बात यह है कि दो हिंदू एक-से नहीं होते और दो मुसलमान एक-से नहीं होते। मुसलमान अ और मुसलमान ब के बीच इतना ही फासला होता है, जितना हिन्दू के और मुसलमान के बीच। दो मुसलमान एक-से नहीं होते, दो हिन्दू एक-से नहीं होते। लेकिन आपके दिमाग में एक धारणा है कि मुसलमान कैसा होता है, वही धारणा अब इस पड़ोसी पर भी लगा देंगे। वह धारणा झूठी है, इस आदमी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उस धारणा को जिन्होंने बनाया होगा, उनसे भी इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आदमी बिलकुल निर्दोष और निरीह है।

लेकिन अब आपके मन में न मालूम कितनी धारणाओं का जाल खड़ा हो गया है। और इस आदमी को अब आप एक खाने में रख देंगे, एक कटेगरी में रख देंगे कि मुसलमान है। और हम भलीभांति जानते हैं कि मुसलमान कैसे होते हैं। आपकी पूरी की पूरी चेतना सिकुड़ जाएगी। अब जो भी व्यवहार आप करेंगे, वह व्यवहार इस आदमी से नहीं होगा; वह आपकी धारणा के मुसलमान से होगा।

आप असहज हो गए। सहजता तो समाप्त हो गई। सहज का अर्थ तो था कि इस आदमी से सम्बन्ध होता। अब आप इससे बात ही नहीं करेंगे। बात भी करेंगे तो आपके मुसलमान से बात होगी, जो आपकी धारणा है। हमारी जानकारी सब जगह हमें असहज बना देती है। सहज का अर्थ होता है : क्षण में जो सत्य है, वहां उसके साथ व्यवहार। लेकिन जानकारी व्याख्या बन जाती है; फिर हमारा व्याख्या के साथ व्यवहार होता है।

हम शब्दो में जीते हैं।

मैं एक घर में मेहमान होता था। पड़ोस में एक चर्च था। चर्च बहुत सुन्दर था। जब भी मैं वहां मेहमान होता था, तब सुबह उठकर चर्च में चला जाता। सन्नाटा होता, रविवार को छोड़कर वहां कोई आता भी नही था। मित्र को पता चला, जिनके घर मे ठहरता था, उनको पता चला तो वे भागे हुए आये मेरे पीछे एक दिन और कहा कि आप, आपको मुझे कहना था, मैं मंदिर ले चलता। चर्च में जाने की क्या जरूरत थी ? और मंदिर ज्यादा दूर भी नही है। मै उनसे कुछ बोला नही।

दस वर्ष बाद उसी घर में फिर मेहमान था। वह चर्च बिक गया था और जिस मित्र के घर में ठहरता था, उनके सम्प्रदाय ने ही उस चर्च की जायदाद खरीद ली थी। मकान वही था, वृक्ष वही था, पक्षी वही थे, सन्नाटा वही था; सिर्फ तख्ती बदल गई थी। अब वह चर्च नही है। सुबह ही उठकर उन्होंने मुझसे कहा—वे तो भूल ही गए थे कि दस साल पहले उसी मकान से मुझे बाहर निकाल लाए थे — उन्होंने मुझसे कहा कि आपको बड़ी खुशी होगी, पड़ोस की जमीन हमने खरीद ली और अब वहां सिर्फ मूर्ति की स्थापना होने की देर है। मन्दिर बन गया है, आप अदर आइए। सब वही है, सिर्फ तख्ती बदल गई है। तब वह चर्च था, तब मेरा वहां जाना उन्हे गुनाह मालूम पड़ा था। अब वह मंदिर है और अब मै न जाऊ तो उन्हें गुनाह मालूम पड़ेगा।

हमारा व्यवहार यथार्थ से नही है; शब्दों से है, जानकारियों से है। एक क्षण में शब्द बदल जाए, हमारा व्यवहार बदल जाता है। लेबिल कोई बदल दे, भीतर जो वस्तु थी, वही है। बस ऊपर की तख्ती कोई बदल दे, सब बदल जाता है। इससे जटिलता खड़ी होगी।

और हमारा जीवन इस जटिलता का ही परिणाम है। और यह जटिलता न केवल ऐसे ऊपरी जगत में दिखाई पडेगी, यह जटिलता भीतर भी प्रवेश कर

आएगी। भीतर भी। फिर हम व्यक्तियों को, उनकी अनुभूतियों को, उनके प्राणों को नहीं देख पाते।

एक आदमी आपसे कहता है कि मुझे आपसे बहुत प्रेम है। आप फिर उसकी आंखों में नहीं देख पाते, न उसके चेहरे में झांक पाते, न उसकी आत्मा में उतर पाते हैं। बस, ये शब्द ही आपके हाथ में पड़ते हैं कि आपसे मुझे बहुत प्रेम है। इन शब्दों के आधार पर ही फिर आप सब कुछ निर्णय करते हैं। वे निर्णय फिर आपको दुख में ले जाते हैं।

एक आदमी आप पर नाराज हो रहा है, बुरा-भला कह रहा है। शब्द ही आप पकड़ लेते हैं; उस आदमी की आंखों में नहीं झांकते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि नाराजगी प्रेम होती है। और कभी ऐसा भी होता है कि प्रेम सिर्फ एक धोखा होता है।

लेकिन शब्द या जानकारी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। फिर हम शब्दो के आसपास ही अपने जीवन का सारा भवन निर्मित करते हैं। वे भवन ताश के पत्तो के भवन हैं। उनमें रोज दरार पड़ेगी, रोज दुर्घटना होगी, रोज मकान गिरेगा। जरा-सा हवा का झोका आएगा और सब गिर जाएगा। और तब हम यथार्थ को दोष देंगे और हम कहेंगे कि यथार्थ बड़ा कठोर है और जीवन बड़ा दुख है। **न तो जीवन दुख है और न यथार्थ बड़ा कठोर है।** आप यथार्थ को जानते ही नही हैं। आप शब्दो के घरो में रहते है। आपने यथार्थ को कभी झाका नहीं है। **जो था**, वह आपने कभी देखा नही। आप अपनी व्याख्या में ही चल रहे हैं।

इन व्याख्याओ के इर्द-गिर्द फसे हुए आदमी को लाओत्से कहता है जानकारी मे, पाण्डित्य में उलझा हुआ आदमी। इसे छोडो तो विपत्तियां मिट जाती हैं, मुसीबते समाप्त हो जाती हैं। क्या होगा छोडने से?

यथार्थ का साक्षात्कार होगा। और यह बडे मजे की बात है कि **सत्य को जान लेना कभी भी दुखदायी नहीं है।** चाहे कितना ही दुखदायी प्रतीत होता हो, सत्य को जानना कभी भी दुखदायी नही है। और असत्य चाहे कितना ही प्रीतिकर प्रतीत होता हो, असत्य कभी भी प्रीतिकर नही है। सत्य कितना ही चौंका दे, धक्का दे, फिर भी उसके अतिम परिणाम निरन्तर गहरे आनन्द में ले जाते हैं। और असत्य कितना ही फुसलाए, समझाए, झुठलाए, असत्य कितनी ही थपकियां दे और असत्य कितनी ही तन्द्रा, नीद में डुबाने की कोशिश करे और कितना ही सुविधापूर्ण मालूम पडे, प्रतिपल उसकी हर सुविधा अनन्त-अनन्त असुविधाओ को जन्म देती है।

लेकिन हम तत्काल सुविधा के इच्छुक हैं। लम्बी हमारी दृष्टि नही है। दूर तक देखने की हमारी सामर्थ्य नही है। बहुत पास देखते हैं हम। और उस पास देखने की वजह से हमें यथार्थ दिखाई ही नही पड़ता है। हमारे पास तो हमारे

ही शब्दो के जाल है। हम उसी में जीते है। और मुसीबतें सघन होती चली जाती हैं।

जैसे हम सब ने मान रखा है, हमें सब समझाया गया है, सिखाया गया है कि प्रेम में कोई कलह नहीं है। एक सिखावन है कि प्रेम में कोई कलह नहीं है, सच्चे प्रेम में कोई कलह नहीं है, कोई द्वन्द्व नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। इस अपेक्षा को लेकर जो लोग प्रेम के जगत में उतरेंगे, वे बहुत दुख में पड़ जाएंगे। क्योंकि यथार्थ कुछ और है। अगर यथार्थ को हम समझें तो प्रेम एक कलह है, एक कांफ्लिक्ट है। प्रेम एक संघर्ष है। सत्य तो यही है कि प्रेमी लड़ते रहेंगे। और जब दो प्रेमियों में लड़ाई बन्द हो जाए तो समझ लेना प्रेम भी समाप्त हो गया। लड़ाई प्रीतिकर हो सकती है, वह दूसरी बात है। लेकिन प्रेम एक कलह है। और हमारी धारणाओ में प्रेम एक स्वर्ग है, जहा कोई कलह नही है।

इस जगत् में सभी चीजें परिवर्तनशील हैं। और हमारे मन में बहुत-सी धारणाए स्थायी है, शाश्वत हैं। कहते है, प्रेम शाश्वत है। इस जगत् में कुछ भी शाश्वत नहीं है। हम ही शाश्वत नही है तो हमारा प्रेम कैसे शाश्वत हो सकेगा? हम मरणधर्मा है। हमसे जो भी पैदा होगा, वह मरणधर्मा होगा। सत्य यही है कि इस जगत में सभी चीजें परिवर्तनशील हैं।

आकाक्षा है हमारी कि कम से कम कुछ गहरी चीजे तो न बदलें, कम से कम प्रेम तो न बदले। उस आकाक्षा के कारण वह जो परिवर्तनशील प्रेम का आनन्द हो सकता था, वह भी जहर हो जाता है। उससे प्रेम स्थायी नही हो सकता। सिर्फ वे जो क्षण-स्थायी प्रेम में फूल खिल सकते थे, वे भी खिलने असम्भव हो जाते है। यह ऐसे ही है जैसे कोई घर में बगिया लगाए और आशा करे कि जो फूल खिलें वे शाश्वत हो, वे कभी मुरझाएं नही। फूल तो सुबह खिलेंगे, साझ मुरझा जाएगे। यही नियति है। लेकिन जो आदमी इस अपेक्षा से भरा हो कि फूल कभी मुरझाए नही, वह, जो सुबह फूल खिला था, उसका आनन्द भी नही भोग पाएगा। क्योकि फूल के खिलते ही मुरझाने का भय विष घोलने लगेगा, जहर डालने लगेगा।

फूल खिलते ही मुरझाना भी शुरू हो जाता है। क्योंकि खिलना और मुरझाना दो प्रक्रियाए नहीं, एक ही प्रक्रिया का अंग है। मुरझाना खिलने की ही अंतिम अवस्था है। मुरझाना पूरा खिल जाना ही है। फल पकेगा तो गिर जाएगा। कोई भी चीज पूरी होगी तो मृत्यु घटित हो जाएगी। पूर्णता और मृत्यु जगत में एक ही अर्थ रखते है।

लेकिन जो आदमी सोच रहा है कि शाश्वत फूल खिल जाए उसकी बगिया में, वह मुश्किल में पडेगा। तब एक ही उपाय है कि वह कागज के फूल बना ले, प्लास्टिक के फूल बना ले। वे स्थायी होगे। वे भी शाश्वत तो नही हो सकते, लेकिन वे स्थायी होगे। लेकिन वे कभी खिलेंगे भी नहीं। क्योकि जो मुरझाने से डर गया,

जो मुरझाने से बचना चाहता है तो फिर उसे खिलना छोड़ देना पड़ेगा। वे कभी खिलेंगे ही नहीं, मुरझाएंगे भी नहीं। लेकिन तब उनमें फूल जैसा कुछ भी न बचा। फूल का अर्थ ही खिलना और मुरझाना है।

ऐसी हमारी जो चित्त की धारणाएं हैं, वे धारणाएं हमें वास्तविक जीवन के साथ सम्बन्धित नहीं होने देतीं। हम अपनी ही धारणाओं को लेकर जीते हैं। यथार्थ कैसा भी हो, यथार्थ के ऊपर हम अपने ही परदे डालते है, उसे अपने ही शब्द ओढ़ाते हैं, अपने ही रूप देते हैं। और यथार्थ न हमारे रूपों को मानता है, न हमारे शब्दों को, न हमारे सिद्धान्तों को। और तब हर घड़ी यथार्थ में और हमारे ज्ञान में संघर्ष खड़ा होता है।

वही संघर्ष हमारी मुसीबत है। हर घड़ी हममें और यथार्थ में तालमेल छूट जाता है। वह तालमेल का छूट जाना ही हमारी आंतरिक अशान्ति है। प्रतिपल आपकी अपेक्षा है, एक्सपेक्टेशन है, वह पूरा नहीं होता। अपेक्षा छूट जाती है, टूट जाती है। दुख और पीड़ा और कांटे छिद जाते हैं भीतर। वे कांटे आपकी ही अपेक्षा से जनमते हैं। अपेक्षा हमारी जानकारी से पैदा होती है। हम पहले से ही जाने बैठे हुए हैं।

लाओत्से कहता है कि तुम ऐसे जीयो, जैसे कि तुम कुछ जानते ही नहीं हो। तुम यथार्थ के पास इस भांति पहुंचो कि तुम्हारे पास कोई पूर्व-निष्कर्ष नहीं हैं, कोई कनक्लूजन, कोई निष्पत्तियां नहीं है। न तुम्हारे पास निष्पत्तियां हैं, न तुम्हारे पास अपेक्षाएं हैं। फूल के पास पहुंचो और जानो कि फूल कैसा है। मत तय करके चलो कि शाश्वत रहे, कभी बदले नहीं, कुम्हलाए नहीं। ये धारणाएं छोड़कर पहुंचो और फूल जैसा है, उसको वैसा ही जानकर जी लो। तब फूल एक आनन्द है। तब उसका जन्म भी एक आनन्द है और उसकी मृत्यु भी एक आनन्द है। तब उसका खिलना भी एक गीत है और तब उसका बन्द हो जाना भी एक गीत है। और तब दोनों में कोई विरोध नहीं है। एक ही प्रक्रिया के अंग हैं दोनों।

जीवन में दुख नहीं है; दुख पैदा होता है अपेक्षाओं से। और अपेक्षाएं शिक्षाओं का परिणाम हैं। हम सब एक क्षण को भी बिना अपेक्षाओं के नहीं जीते, उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, अपेक्षाओं का एक जगत हमारे चारों-तरफ चलता है।

लाओत्से कहता है, यही है तुम्हारी मुसीबतों का आधार। हां और ना के बीच अंतर क्या है? अगर अपेक्षाएं न हों; तो हां और ना के बीच कोई अंतर नहीं है। अगर अपेक्षाएं हों तो हां और ना के बीच से ज्यादा बड़ा अंतर और कहां होगा? मैं आपसे कुछ मांगता हूं, आप कहते हैं हां, या कहते हैं ना। अगर मेरी मांग अपेक्षा से भरी है तो हां और ना में बड़ा अंतर होगा। हां मेरा सुख बनेगा, ना मेरा दुख हो जाएगा। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा नहीं है, अगर मैं पहले से ही कुछ तय करके नहीं चला हूं कि क्या होगा निष्कर्ष, क्या होगा परिणाम, अगर

परिणाम के सम्बन्ध में मैंने कुछ धारणा नहीं बनाई है तो आप हां कहें, आप न-कहें, इन दोनों में कोई अंतर नहीं होगा । हां और ना के बीच जो अंतर है, वह दो शब्दों के बीच अंतर नहीं है; वह दो अपेक्षाओं के बीच अंतर है । भाषा-कोश में तो हां और ना में अंतर होगा, विपरीत हैं दोनों; लेकिन जीवन की गहराई में, जहां व्यक्ति अपेक्षाशून्य चलता है, हां और ना में कोई अंतर नहीं है ।

एक फकीर एक गांव से गुजर रहा है । उसने एक दरवाजे पर दस्तक दी । आधी रात हो गई है । और वह भटक गया है । और जिस गांव पहुंचना था, वहां न पहुंचकर दूसरे गाव पहुंच गया है । द्वार खुला । घर के लोगो ने पूछा कि क्या चाहता है ? उस फकीर ने कहा कि अगर रात भर विश्राम का मौका मिल जाए तो बहुत अच्छा । मैं भटक गया हूं और जहां पहुंचना था वहां नहीं पहुंच पाया हूं । घर के लोगों ने पूछा कि धर्म कौन-सा है तुम्हारा; क्योंकि हम मनुष्यों को तो नहीं ठहराते, धर्मों को ठहराते हैं ।

उस फकीर ने अपना धर्म बताया, और द्वार बन्द हो गया । घर के लोगों ने कहा कि क्षमा करें, हम इस धर्म के नहीं माननेवाले हैं, न केवल न माननेवाले हैं बल्कि हम इसके विरोधी हैं । और इस गांव में आपको कही भी जगह नहीं मिलेगी । यह गाव एक ही धर्म माननेवाले लोगों का है । आप व्यर्थ परेशान न हों । उस फकीर ने धन्यवाद दिया और चलने लगा ।

उस मकान के मालिक ने पूछा : लेकिन धन्यवाद कैसा ? हमने ठहराने से इनकार कर दिया, फिर धन्यवाद कैसा ? उस फकीर ने कहा : तुमने कुछ तो किया । तुम क्या करोगे, इस सम्बन्ध में हमारी कोई धारणा न थी । द्वार खुलेगा, हां और ना कुछ भी होगा । तुमने स्पष्ट ना कहा, इतना भी आधी रात कष्ट उठाया, उसके लिए धन्यवाद !

वह फकीर जाकर गांव के बाहर सो गया । पूर्णिमा की रात थी । और जिस वृक्ष के नीचे वह सोया था, उस वृक्ष के फूल पूर्णिमा की रात में आवाज करके खुलते हैं । जब भी फूल की आवाज होती है, वह आंख खोल कर ऊपर देखता है । चांद भाग रहा है, फूल खिल रहे हैं, सुगन्ध बरस रही है ।

सुबह फिर उस फकीर ने वापस आकर उस आदमी के द्वार पर दस्तक दी । उस आदमी ने दरवाजा खोला । फकीर ने झुककर तीन बार पुन: पुन: कहा: धन्यवाद, धन्यवाद, धन्यवाद ! उस आदमी ने पूछा कि अब धन्यवाद की क्या जरूरत ? तुम आदमी पागल मालूम पड़ते हो । रात मैंने मना किया था, तब तुमने धन्यवाद दिया । और अब ?

उस फकीर ने कहा कि अगर आप रात मुझे मना न करते, तो जिस पूर्णिमा की रात का मैंने आनंद लिया, वह असंभव हो जाता । तुमने अगर हां भर दिया होता तो मैं तुम्हारे छप्पर के नीचे सोता । मैं एक वृक्ष के नीचे सोया । और

मेरे जीवन में इतने सौंदर्य का क्षण मैंने कभी नहीं जाना था। एक बात तुमसे कहने आया हूं, उसका बुरा न मानना; तुम्हारे धर्म का फकीर भी आये, तो उसे भी मत ठुकरा देना।

अगर आपको इस घर से इनकार करके लौटा दिया गया होता तो पूर्णिमा की रात पहले तो तत्काल अमावस की रात हो जाती। या नहीं हो जाती? पूर्णिमा की रात तो बच ही नहीं सकती थी, तत्काल अमावस हो जाती। फूल खिल ही नहीं सकते थे। उनकी इतनी धीमी आवाज, आपके भीतर जो तुमुलनाद चलता, उसमें सुनाई भी नहीं पड़ती। आपके भीतर जो कोलाहल होता, जो हाहाकार मचता, उसके सामने कोमल फूलों के खिलने की आवाज कहाँ सुनाई पड़ सकती थी? आप अमावस की रात में सोते; सोते भी कैसे, चिंतित, बेचैन, परेशान होते। हां और ना के बीच बड़ा अन्तर होता।

इस आदमी को ना और हा में कोई अन्तर न था।

हा और ना का अन्तर, सुख और दुख का अन्तर धारणा का अन्तर है, अपेक्षा का अन्तर है; यथार्थ का अन्तर नहीं है। लेकिन हम सभी कुछ यथार्थ पर थोप देते हैं। हम कहते हैं कि उसने ऐसा कहा, इसलिए मैं सुखी हूँ; उसने ऐसा व्यवहार किया, इसलिए मैं दुखी हूँ। नही, कोई सम्बन्ध किसी दूसरे से नही है सुख और दुख का। उसने कुछ भी किया हो, आप सुखी हो सकते हैं; उसने कुछ भी किया हो, आप दुखी हो सकते हैं। उसका करना असली बात नही है। उसने जो किया, उसकी व्याख्या आपने क्या की, उसपर ही सब कुछ निर्भर है। आपकी अपनी व्याख्या ही आपका स्वर्ग और आपका नरक है।

सुना है मैंने, दो मित्र गुरु की तलाश में थे। वे दोनों एक सूफी फकीर के द्वार पर पहुंचे। दोनों ने निवेदन किया, सत्य की उन्हे खोज है, तलाश है प्रभु की; रास्ता कोई बतायें। वह फकीर चुप बैठा रहा, जैसे उसने सुना ही न हो। एक मित्र ने सोचा, इस आदमी से क्या मिलेगा? यह तो बहरा मालूम पड़ता है। और या फिर बहुत अहंकारी है। हम इतने सत्य के खोजी, इतनी दूर से चलकर आये हैं और यह आदमी ध्यान भी नहीं दे रहा है, कोई जैसे हम कोई कीड़े-मकोड़े हो। दूसरे ने सोचा, शायद मेरे प्रश्न में कोई भूल हो गई है। शायद यह पूछने का ढंग अनुचित है। शायद सत्य की जिज्ञासा इस भांति नहीं की जाती। शायद इतनी जल्दबाजी, इतना अधैर्य दुर्गुण है।

दोनो विदा हो गए।

जिसने सोचा था कि यह आदमी अहंकारी है, वह वर्षों बाद भी वैसे का वैसा था। लेकिन जिसने सोचा था कि शायद मेरी जिज्ञासा मे, मेरे पूछने के ढग मे, मेरे अधैर्य में ही कोई भूल है, वह अपने को बदलने में लग गया। वर्षो बाद पहला आदमी अपने नरक में ही पड़ा था। और गर्त में हो गया था। दूसरा आदमी

पूरा शांत हो गया; दूसरा धन्यवाद देने गया गुरु को। और पहला आदमी उस आदमी के खिलाफ वर्षों से गालियां बोल रहा था कि उस आदमी ने हमारे ऊपर ध्यान भी नहीं दिया; अहंकारी है, अपने को न मालूम क्या समझता है।

दूसरा आदमी धन्यवाद देने गया कि आपकी कृपा है, आप उस दिन नहीं बोले; मैं निश्चित समझ गया कि मेरी कोई योग्यता और पात्रता नहीं है। मैं अपने को पात्र बनाने की कोशिश में ही सत्य के दर्शन को उपलब्ध हो गया हूँ। मैं धन्यवाद देने आया हूँ। तो गुरु ने कहा कि सत्य को पाने का और कोई उपाय नहीं है। पात्र बन जाना काफी है।

हम पर निर्भर है। गुरु तो चुप रहा था। एक ने समझा ना, एक ने समझा हा। फासला बडा भी हो सकता है। फासला शून्य भी हो सकता है।

लाओत्से कहता है, सब फासले ज्ञान के, पाण्डित्य के फासले है। हा और ना के बीच अतर क्या है? हां और ना लाओत्से के लिए बहुत-सी बातों के प्रतीक है। हां है जीवन का प्रतीक और ना है मृत्यु का प्रतीक। हा है सुख का प्रतीक और ना है दुख का प्रतीक। हा है सफलता का प्रतीक और ना असफलता का प्रतीक। हा है पाजिटिव, विधायक का प्रतीक और ना है निगेटिव, नकारात्मक का प्रतीक।

लाओत्से यह कह रहा है कि विधेय मे और नकार मे अतर ही क्या है! जन्म और मृत्यु मे अंतर ही क्या है? अतर बहुत है। जीवन को हम चाहते हैं, मृत्यु को हम नही चाहते; फिर अन्तर बहुत है। चाह के कारण अतर है। जीवन और मृत्यु में कोई अतर नहीं है। जिसकी कोई चाह नही, उसे जीवन और मृत्यु में क्या अतर है? जिस द्वार से हम बाहर निकलते है, उसी से हम भीतर आते हैं। जिन सीढियों से हम ऊपर चढते हैं, उन्ही से हम नीचे उतरते है। जब आप ऊपर चढ रहे होते है तब, और जब आप नीचे उतर रहे होते हैं तब, सीढ़ियों में कोई अन्तर होता है क्या? जब आप बाहर जाते है तब, और जब आप भीतर आते है तब, द्वार मे कोई अंतर है क्या? वही द्वार है, वे ही सीढ़ियां हैं, वही जमीन है। वही मृत्यु है।

लेकिन हमारी अपेक्षाए बडा अतर कर लेती है। हमारी जानकारी बड़ा अतर कर देती है। हम सब को सिखाया गया है, मृत्यु कुछ बुरी है। यह हमारी सिखावन है। क्योंकि मृत्यु को हम जानते तो नही है। मृत्यु बुरी है, यह हमें सिखाया गया है। और जीवन शुभ है, यह भी हमें सिखाया गया है। और जीवन है। और जीवन है अहोभाग्य, धन्यता, और मृत्यु है दुर्भाग्य, यह हमें सिखाया गया है। मृत्यु को हम जानते नहीं, यह तो पक्का ही है। जीवन को भी हम नहीं जानते हैं। वह इतना पक्का नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि उसमें लगता है कि हम जीवित हैं तो जीवन को तो जानते ही होंगे।

जरूरी नहीं है कि जो जीवित हो, वह जीवन को जान ही ले। क्योंकि जो जीवन को जान लेगा, वह मृत्यु को भी जान लेगा। यह एक ही द्वार है; बाहर और भीतर आने का फर्क है। जो जीवन को जान लेगा, वह मृत्यु को भी जान लेगा। क्योंकि मृत्यु कोई जीवन के विपरीत घटना नहीं है। जैसे बायाँ और दायाँ पैर हैं, और चलना हो तो दोनों को उपयोग करना होता है; ऐसे ही अस्तित्व है। जीवन और मृत्यु उसके दोनों पैर हैं। और अस्तित्व हो ही नहीं सकता; उन दोनों पैरों के कारण ही अस्तित्व की सारी गति है। एक को भी जो जान लेगा, वह दूसरे को जान ही लेगा। क्योंकि दूसरा विपरीत नहीं है, पृथक भी नही है। वे एक ही प्रक्रिया के दो अंग हैं। लेकिन हमें सिखाया गया है।

गुरजिएफ ने लिखा है। गुरजिएफ की आदत थी लोगों को छेड़ने की। इससे न मालूम कितने लोग उससे नाराज थे। एक भोज मे गुरजिएफ सम्मिलित था और एक बड़ा विशप, एक बड़ा धर्मगुरु भी निमंत्रित था। गुरजिएफ के पास में ही धर्मगुरु को बिठाया गया था। दोनों बड़े महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। गुरजिएफ ने विशप को पूछा, धर्मगुरु को पूछा कि आपका क्या खयाल है आत्मा के सम्बन्ध मे, कि क्या आत्मा अमर है? धर्मगुरु ने कहा, निश्चित ही, इसमें भी कोई संदेह है? आत्मा शाश्वत है, अमर है। उसका कोई अंत नहीं है। उसकी कोई मृत्यु नही है। गुरजिएफ ने तब पूछा . आप कब तक मरेंगे, इसके सम्बन्ध मे आपका क्या खयाल है? और मरने के बाद आप कहां पहुंचेंगे, इस सम्बन्ध में क्या खयाल है?

तत्काल विशप का चेहरा बिगड़ गया। यह भी कोई बात है? भद्र आदमी भी ऐसी बातें पूछते हैं क्या? अभद्रता हो गई। अभद्रता हो गई: कब मरिएगा? मरने के बाद कहां जाइएगा? विशप ने तेजी से कहा कि कहां जाऊँगा, परमात्मा के राज्य में प्रवेश करूंगा; लेकिन भद्र आदमी ऐसी बातें नहीं पूछते।

गुरजिएफ ने कहा कि अगर आत्मा अमर है तो मृत्यु के सम्बन्ध में पूछने में अभद्रता कैसी? और अगर मर कर प्रभु के राज्य में ही प्रवेश करना है तो आपके चेहरे पर मेरे प्रश्न से आ गई यह कालिमा कैसी? आनन्द से भर जाना चाहिए कि जल्दी मरेंगे और प्रभु के राज्य मे प्रवेश करेंगे।

नहीं, लेकिन दोनों में फर्क है। वह जानकारी है, वह जो बात थी आत्मा के अमर होने की, वह जानकारी है। वह शाब्दिक है, शास्त्रीय है। भय तो भीतर खड़ा है, मर न जायें। शायद उसी भय के कारण उस जानकारी को भी पकड़ लिया है कि आत्मा अमर है। आत्मा को अमर माननेवाले लोग अक्सर मृत्यु से भयभीत लोग होते हैं। माननेवाले लोगों द्वारा जाननेवाले की बात करनी उचित नही है। माननेवाले लोग अक्सर जो मानते हैं, उससे विपरीत उनकी मनोदशा होती है। भय है मृत्यु का तो आत्मा अमर है, इस सिद्धान्त को पकड़ लेने से राहत मिलती है, कन्सोलेशन मिलता है।

और हमारा धर्म कन्सोलेशन, सान्त्वना से ज्यादा नहीं है। इसलिए धर्म हमारी ऊपरी पर्त है। वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है। जानते तो हैं कि मरना पड़ेगा। इसको भुलाना चाहते हैं, इस कड़वे सत्य को झुठलाना चाहते हैं। तो बड़े-बड़े अक्षरों में लिखकर रखा हुआ है कि आत्मा अमर है। लेकिन कोई आपसे मृत्यु की पूछे, आपकी मृत्यु की पूछे तो धक्का लगता है। क्यों? क्योंकि आत्मा अमर है, यह ऊपर चिपकाई हुई बात है। भीतर तो भय है, मौत का खतरा है।

कब्रिस्तान हम गाँव के बाहर बनाते हैं; मरघट हम गाँव के बाहर बनाते हैं। कोई मर जाता है तो माताएं अपने बच्चों को भीतर बुला लेती हैं कि भीतर आ जाओ, कोई अर्थी गुजरती है। जैसे मृत्यु को हम चाहते हैं कि किसी तरह भूल जाएं, वह दिखाई न पड़े। घर में अगर कोई मर जाता है तो घड़ी भर उसको रखना मुश्किल हो जाता है। शायद कल हमने इस आदमी से कहा हो कि तुम्हारे बिना हम मर जाएंगे, एक क्षण जी न सकेंगे। अब वह मर गया। अब क्षण भर भी उसको घर में रखना मुश्किल है। क्या तकलीफ है? थोड़ी देर रुकने दें। ऐसे इतने वर्षों तक वह व्यक्ति इस घर में था, दस-पांच दिन और रुके तो हर्ज क्या है?

दस-पांच दिन में आप पागल हो जाएंगे, अगर उसकी लाश रखो रहे। क्यों? क्योंकि उसकी लाश हर घड़ी आपको मौत की याद दिलाएगी। हर घड़ी उसका मरा होना आपके लिए अपने मरने की सूचना बन जाएगा। एक घर में एक आदमी की मुर्दा लाश को रख लो तो उस घर में कोई जिन्दा न रह सकेगा। इसलिए जल्दी हम निबटाते हैं।

और घर के लोगों को तकलीफ न हो, इसलिए पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे होकर जल्दी निबटाते हैं। क्योंकि जब पड़ोस के लोगों के घर में तकलीफ आती है, तब दूसरे निबटाते हैं। यह सब एक पारस्परिक समझौता है: आदमी मरे, तो उसे जल्दी हटाओ; जिन्दा लोगों के बीच से उसे हटाओ। क्योंकि मौत को हम कहीं दूर अन्त्यज की तरह व्यवहार करते हैं। वह गाँव के बाहर रहे; गाँव के भीतर, भरे बाजार में उसका कोई पता न चले। हमें अहसास न हो कि मौत जैसी कोई चीज भी है। मजबूरी है कि आदमी मरते हैं; तब हम उन्हें जल्दी से डिसपोज करते हैं, उन्हें हम निबटाते हैं। क्यों?

हमारे लिए जीवन और मृत्यु दोनों एक ही अर्थ नहीं रख सकते। और हमारे लिए हां और ना भी एक अर्थ नहीं रख सकते। और सुख और दुख को हम कैसे मानें कि एक ही हैं।

लेकिन कभी आपने खयाल किया है कि अगर आप नाम न दें तो कई बार आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे बताने में कि यह सुख है या दुख। नामकरण से बड़ी आसानी हो जाती है। नाम दे देते हैं, यह सुख है तो तत्काल मन मान लेता है कि सुख

है। नाम दे देते हैं सुख है तो हम मान लेते हैं कि दुख है। कभी आपने खयाल न किया हो, लेकिन करना चाहिए निरीक्षण कि अगर हम नाम न दें तो कौन-सी चीज सुख होगी और कौन-सी चीज दुख होगी?

और अगर हम नाम देने की जल्दी न करें, सिर्फ अनुभूति पर जीएं, तो एक बड़ी अद्‌भुत बात मालूम होगी कि जिसको हम सुख कहते हैं वह किसी भी क्षण दुख हो जाता है और जिसको हम दुख कहते हैं वह किसी भी क्षण सुख हो जाता है।

आपको मैं प्रेम करता हूँ। राह पर आप मिले और आपको गले से लगा लिया। नाम न दें सुख का या दुख का अभी, कोई नाम न दें। सिर्फ सीधा यह तथ्य रहे कि मैं आपको गले से दबा रहा हूँ; मेरी हड्डियाँ, मेरी चमड़ी आपको स्पर्श कर रही हैं; आपकी हड्डियां और चमड़ी मुझे स्पर्श कर रही हैं। इसे कोई नाम न दें कि यह आलिंगन है, सुख है, दुख है, कोई नाम न दें। सिर्फ यह तथ्य, यह फैक्ट रहे कि क्या घटित हो रहा है। तब आपको बड़ा मुश्किल होगा कहना कि इसे सुख कहें कि दुख कहें।

और अगर आप इसे सुख कहें, कहना चाहें कि नहीं, सुख है, और मैं आपको अपनी छाती से लगाये खड़ा ही रहूँ तो कितनी देर यह सुख रहेगा? एक क्षण, दो क्षण, पांच क्षण, फिर आसपास भीड़ इकट्ठी होने लगेगी और लोग झांकने लगेंगे कि क्या हो गया है और फिर आप बेचैन होने लगेंगे, फिर आपके माथे पर पसीना आने लगेगा और आप छूटना चाहेंगे। वह जो सुख था, वह कब दुख बन गया, कभी आपने भीतर परीक्षण किया? किस घडी आपका सुख दुख बनना शुरू हो गया? और अगर मैं न ही छोड़ूं, तब?

सुना है मैंने कि नादिरशाह ने ऐसा मजाक एक बार किया था। नादिर का प्रेम था एक युवती से; लेकिन युवती उस पर कोई ध्यान न देती थी। नादिर ने सब उपाय किए थे। चाहता तो वह उठवा कर हरम में डलवा देता। लेकिन पुरुष को सुख मिलता है जीतने में; जबरदस्ती करने में सारा सुख खो जाता है। चाहता था कि वह स्त्री अपने से आए।

एक दिन अचानक उसे पता चला कि उस स्त्री का, नादिर का जो सिपाही है, उसका जो द्वारपाल है, उससे प्रेम है। नादिर रात पहुँचा और जब उसने अपनी आँख से उन दोनो को आलिंगन में देख लिया, खम्भे में तब उसने उनको वहीं बंधवाया, महल बुलवाकर दोनो को नग्न किया और आलिंगन में बांध कर सामने खम्भे मे बंधवा दिया। दोनो आलिंगन में बंधे हैं खम्भे से। बडा गहरा मजाक हुआ। और बड़ी कठिन सजा हो गई।

ये दोनों प्रेमी एक दूसरे के पास होने को तड़पते थे। चोरी से कभी मिल पाते थे; क्योंकि नादिर का डर भी था। खतरा भी था। सब खतरे उठाकर मिलते थे

क्षण भर को तो स्वर्ग मालूम होता था। अब दोनों नग्न एक दूसरे की बाहों में खम्भे से बंधे खड़े थे। घड़ी, दो घड़ी बाद एक दूसरे के शरीर से बदबू आने लगी; एक दूसरे की तरफ देखने को मन न रहा। जब कहीं बंधा ही हो आदमी किसी के साथ, तब फिर देखने को मन नहीं रह जाता। विवाह में यही परिणाम होता है। दो आदमी बंधे हैं एक दूसरे से। थोड़े दिन में घबड़ाहट हो जाती है शुरू। विवाह एक मजाक है, नादिर जैसा मजाक है। कहते हैं कि पन्द्रह घंटे बाद पेशाब भी बह गया, मलमूत्र हो गया, बदबू फैल गयी। बहुत भयंकर मजाक हो गया। सब सौन्दर्य खो गया। सब स्वर्ग नरक हो गया।

पन्द्रह घंटे बाद नादिर ने उन दोनों को छुड़वा दिया। और कहानी कहती है कि दोनों ने फिर कभी एक दूसरे को नहीं देखा। जो वहां से भागे, उस खम्भे से, फिर कभी वे जीवन मे दुबारा नहीं मिले। क्या हुआ?

जिसे सुख जाना था, वह दुख में परिणत हो गया। किसी भी सुख को जरा ज्यादा खींच दो तो दुख हो जाएगा। जरा सा ज्यादा खींच दो। लेकिन जो दुख हो सकता है, उसका अर्थ हुआ कि वह दुख रहा ही होगा। नहीं तो हो कैसे जायेगा? क्वान्टिटी के बढ़ने से अगर क्वालिटी बदलती हो, परिमाण के बढ़ने से या घटने से अगर गुण बदलता हो तो उसका अर्थ है कि गुण छिपा हुआ रहा ही होगा। आपको प्रतीत नही हो रहा था, क्योकि मात्रा कम थी। मात्रा सघन हो गयी, आपको प्रतीत होने लगा। किसी भी दुख की मात्रा को भी बदल दो तो सुख हो जाता है। सुख की मात्रा को बदल दो तो दुख हो जाता है। दुख का भी अभ्यास कर लो तो सुख हो जाता है।

दुख सुख हो जाते हैं; सुख दुख हो जाते हैं। फासले शायद शब्दो के हैं। यथार्थ का फासला नहीं है।

लाओत्से कहता है, हा और ना में कोई फर्क नहीं है। अगर तुम अपने ज्ञान को एक तरफ रख दो और फिर तुम जीवन के तथ्य में प्रवेश करो तो तुम पाओगे कि हा नही हो जाता है और नहीं हां हो जाता है। जिन्दगी बड़ी बदलाहट है। यहाँ जिसे हम कहते है विधायक, वह कभी बदल जाता है, नकारात्मक हो जाता है। जिसे हम सुबह कहते है, वही सांझ हो जाती है। जिसे हम सुख कहते हैं, वही दुख हो जाता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि सुख और दुख यथार्थ से बाहर खींच लिए गए शब्द हैं। तो यथार्थ दोनों के बीच एक है। हमारा सारा ज्ञान नाम देने का ज्ञान है, चीजों के नाम देने का ज्ञान है। जब हम चीजों को नाम देते हैं, तब हम समझते है कि ज्ञान हो गया। हम बता देते है कि यह दुख है, यह सुख है। हम समझते हैं कि हम समझ गए।

नाम के नीचे जो यथार्थ है, उसकी प्रतीति केवल उन्हीं को हो सकती है जो सब

सिद्धान्त को छोड़ने को तैयार हैं।

लाओत्से कहता है, शुभ और अशुभ के बीच भी फासला क्या है? हां और ना तो ठीक है, लाओत्से कहता है, शुभ और अशुभ, जिसे हम कहते हैं पुण्य और पाप, उसके बीच भी फासला क्या है? क्या है पुण्य, क्या है पाप? कठिन है यह बात थोड़ी। और इससे घबड़ाहट भी होती है। क्योंकि लाओत्से का चिन्तन अति-नैतिक चिन्तन है। और गहन जैसे ही चिन्तन होगा, वह अति-नैतिक हो जाएगा।

हम कहते हैं, यह कृत्य शुभ है और यह कृत्य अशुभ है, और ऐसा करना पुण्य है और ऐसा करना पाप है। और निश्चित ही हम बाँट कर जीते हैं। सुविधा हो जाती है जीने की, अन्यथा बड़ी कठिनाई हो जाए। अन्यथा बड़ी कठिनाई हो जाए। तो हम बांटकर चलते हैं कि दान पुण्य है, चोरी पाप है। दया शुभ है, क्रूरता-कठोरता अशुभ है। सच बोलना शुभ है, झूठ बोलना अशुभ है।। जिन्दगी में हम ऐसा बांटकर चलते हैं। जरूरी है, उपयोगी है।

लेकिन लाओत्से गहरा सवाल उठाता है। वह पूछता है कि फर्क क्या है? कहता है, कौन-सी चीज है जिसे तुम कह सकते हो कि सदा शुभ है? और कौन-सी चीज है जिसे तुम कह सकते हो कि सदा अशुभ है? अशुभ शुभ होते देखे जाते हैं। शुभ अशुभ हो जाते है। ठीक वैसे ही, जैसे सुख और दुख बदल जाते है।

समझें, आप आपने पड़ोसी की सहायता करते चले जाते है। दया करते हैं, पैसे से सहायता पहुचाते हैं, सब तरह से सेवा करते हैं। लेकिन क्या आपने कभी खयाल किया? शायद कभी खयाल मे भी आया हो तो भी पूरी बात नही निरीक्षण हो पाती है। मेरे पास बहुत से लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मैंने फलां आदमी के साथ इतना अच्छा किया है और वह मेरे साथ बुरा कर रहा है। आम अनुभव है यह कि नेकी का फल बदी से मिलता है। लेकिन तब हम यह समझते हैं कि वह आदमी ही बुरा है। मैंने भला किया, वह बुरा कर रहा है; क्योंकि वह आदमी बुरा है।

लेकिन यह सत्य नही है। असल में जिसके साथ भी आप भला करते है, आपका भला करना भी इतना बोझिल हो जाता है, इतना भारी हो जाता है दूसरे पर कि उसे बदला चुकाना जरूरी हो जाता है। जब एक आदमी किसी के साथ भला करता है, तब वह उसके अहकार को चोट पहुंचाता है और खुद के अहंकार को ऊपर करता है। मै भला कर रहा हूं, इससे दूसरा दीन हो जाता है और मैं श्रेष्ठ हो जाता हूं। तो दूसरा मुझे ऊपर से धन्यवाद देता है कि आपकी बड़ी कृपा है कि आपने मेरे लिए इतना किया; लेकिन भीतर से मेरा अहंकार भी उसको कांटे की तरह चुभता है। वह भी चाहता है कि कभी ऐसा मौका मिले कि हम भी तुम्हारे साथ भला कर सकें; कभी ऐसा मौका मिले कि तुम नीचे रहो और हम ऊपर; कभी हम श्रेष्ठता से छाती फुलाकर खड़े हों और तुम हाथ जोड़कर कहो कि बड़ी

कृपा है आपकी ! अगर आप उसको ऐसा मौका मिलने ही न दें, आप भला किये ही चले जाएं, उसको भला करने का मौका ही न दें तो वह आदमी आपसे बुरा भी कर सकता है।

क्योंकि आपका भला उसपर इतना बोझिल हो जाएगा। अब दो ही उपाय हैं उसके पास। या तो वह कुछ भला आपके साथ करे और आपको नीचे बिठा दे; और या फिर आप यदि उसको कोई मौका ही न दें तो वह कुछ अन्यथा भी कर सकता है। क्योंकि भला करना महंगा काम है, सभी के लिए सुविधापूर्ण नहीं है; बुरा करना सस्ता काम है, सभी कर सकते हैं। अगर मैं एक आदमी को पैसे की सहायता पहुंचाए चला आ रहा हूँ तो जरूरी नहीं है कि कभी ऐसी हालत हो जाए कि मुझे पैसा उससे मांगना पड़े। जरूरी नहीं है। क्योंकि धन जिनके पास है, वह उनके पास और इकठ्ठा होता चला जाता है और जिनके पास नहीं है उनसे और छिनता चला जाता है। लेकिन, वह आदमी भी चाहता है कि वह कभी मुझे भी दान दे। लेकिन मौका न मिले तो क्या करेगा वह आदमी ? बुरा कोई भी कर सकता है; बुरा सस्ता काम है। वह कुछ मेरे लिए बुरा करे और मुझे नीचा दिखाए, मेरे सम्बन्ध में कुछ अफवाहें उड़ाये, मेरे सम्बन्ध में कुछ निन्दा चलाए, कोई उपाय करे कि मैं नीचे हो जाऊं! जिस दिन उपाय करके वह मुझे नीचा दिखा देगा, वह बैलेन्स्ड हो जाएगा। हमारा निबटारा हो जाएगा। लेन-देन बराबर हो जाएगा।

नीत्से ने एक बहुत कठोर व्यंग्य किया है जीसस पर। क्योंकि जीसस ने कहा है कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। हम कहेंगे कि इससे ज्यादा श्रेष्ठ सिद्धान्त और क्या होगा। नीत्से ने कहा है: ऐसा अपमान भूल कर मत करना किसी का कि कोई आदमी तुम्हारे एक गाल पर चाटा मारे तो दूसरा उसके सामने कर देना। क्योकि तुम तो ईश्वर हो जाओगे और वह कीडा हो जाएगा। और यह क्षम्य नहीं है। अच्छा हो कि तुम भी एक करारा चांटा उसे मार देना, ताकि कम से कम दोनों आदमी तो रहोगे। दूसरे को भी आदमी होने की इज्जत देना। जीसस की ऐसी आलोचना किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं की है। लेकिन कोई और दूसरा कर भी नहीं सकता था। नीत्से की हैसियत का आदमी ही कर सकता था। वह जीसस की हैसियत का आदमी था।

लेकिन इसका मतलब क्या हुआ ? इसका मतलब यह हुआ कि शुभ भी अशुभ हो सकता है। आपने मेरे गाल पर चांटा मारा और मैंने दूसरा गाल आपके सामने कर दिया तो बड़ा शुभ कर रहा हूँ मैं। लेकिन यह अशुभ हो सकता है, यह अपमानजनक हो सकता है। शायद यही सम्मानपूर्ण होता कि मै एक चांटा आपको मारता और हम बराबर हो गये होते। इसमें आपकी इज्जत थी।

क्या है शुभ और क्या है अशुभ ?

जीसस ने कहा है, कन्फ्यूसियस ने भी कहा है, महाभारत में भी यही सूत्र है,

सारी दुनिया के धर्मों ने उसे आधार माना है कि तुम दूसरे के साथ वही करना कि जो तुम चाहो कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। यह शुभ की परिभाषा है। लेकिन नीत्से ने कहा है कि यह जरूरी नहीं है; स्वाद अलग-अलग भी होते हैं। जरूरी नहीं है, रुचियाँ भिन्न होती हैं। जरूरी नहीं है की तुम जो चाहते हो दूसरा तुम्हारे साथ करे, वही तुम उसके साथ करो। क्योंकि उसकी रुचि भिन्न हो सकती है, वह चाहता ही न हो कि कोई उसके साथ ऐसा करे। जरा कठिन है। थोड़ा जटिल है।

बर्नार्ड शॉ ने उसको ठीक से मजाक पर, सरल ढंग पर रखा है। उसने कहा है, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि आप मेरा चुम्बन करें, क्या इसलिए मैं आपका चुम्बन करूं? तो आपको सिद्धान्त समझ में आ जाएगा। जीसस कहते हैं, तुम वही करना दूसरे के साथ, जैसा तुम चाहते हो कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। बर्नार्ड शॉ कहता है कि मैं चाहता हूँ कि आप मेरा चुम्बन करें तो क्या मैं आपका चुम्बन करूं? जरूरी नहीं है चुम्बन लौटे। फिर क्या होगा?

शुभ और अशुभ इतने आसान नहीं हैं कि बांट कर रखे जा सकें। सब श्रेणियाँ, जो आदमी ने बनाई हैं, बचकानी हे। वे काम-चलाऊ है, लेकिन बचकानी हैं। गहन चिन्तन तो कहता है कि **शुभ और अशुभ एक ही बात है**। इसलिए जो जानता है—दूसरों से सीख कर नही, जो अपने भीतर से जानता है—उसके लिए **कोई चीज शुभ और अशुभ नहीं होती**। वह सहज जीता है और उससे जो होता है, वही शुभ है। इस फर्क को आप समझ ले।

एक तो वह व्यक्ति है, जो दूसरों से सीखता है: क्या शुभ है, क्या अशुभ है? नियम तय हो जाते हैं कि यह करो, यह मत करो। कमान्डमेंन्ट्स है, आदेश हैं। धर्म-ग्रन्थ कहते हैं कि यह करना ठीक है, यह करना ठीक नही है। आपने याद कर लिया, उसके अनुसार आपने अपना जीवन बना लिया। आप शुभ करते चले जाते हैं, अशुभ से आप बचते चले जाते हैं। लेकिन जरूरी नहीं है कि आपका जीवन शुभ हो। क्यों?

क्योंकि जीवन एक तरल प्रवाह है। उस मे कुछ भी नही कहा जा सकता है। नीत्से की बात आपने सुनी। अगर जीसस की ही बात अकेले सुनी हो तो लगेगा कि इससे ज्यादा सही और क्या हो सकता है? लेकिन नीत्से जो कह रहा है, वह भी सही है। वह भी दूसरा पहलू है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि नैतिक पुरुष, जिनको हम नैतिक पुरुष कहते हैं, दूसरों के प्रति बहुत अपमानजनक हो जाते है। और इसलिए नैतिक व्यक्ति के पास रहने में एक तरह का बोझ मालूम पड़ता है, हल्कापन मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि नैतिक व्यक्ति को मौजूदगी ही आपको अशुभ करार दे देती है। नैतिक व्यक्ति की आँख आपको हर क्षण निन्दित करती रहती है कि आप गलत कर रहे

हैं। वह ठीक कर रहा है, आप गलत कर रहे हैं। छोटी-छोटी बात में भी उसके निर्णय हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है। इसलिए नैतिक व्यक्ति एक तरह का स्ट्रेन खड़ा करता है, तनाव पैदा करता है। इसलिए नैतिक व्यक्ति का साथ-संग कोई पसन्द नहीं करता है। नैतिक व्यक्ति के साथ होना कठिन मामला है; क्योंकि प्रति पल छोटी और बड़ी बात पर, हर चीज पर ठीक और गलत होने का लेबल लगा हुआ है।

धार्मिक व्यक्ति बहुत और तरह का व्यक्ति है। धार्मिक व्यक्ति के पास होने से एक आनन्द होगा। क्योंकि धार्मिक आदमी के पास कुछ तय नहीं है कि ठीक और गलत क्या है। धार्मिक व्यक्ति के पास एक सहजता है जीवन की। किसी क्षण में कुछ बात ठीक हो सकती है; दूसरी परिस्थिति में वही बात गलत हो सकती है।

जीसस को अगर नीत्से चांटा मारे और जीसस उत्तर न दें तो अशुभ होगा। क्योंकि नीत्से निश्चित मानेगा कि मेरा अपमान किया गया, मुझे इस योग्य भी न समझा गया कि मेरा चांटा वापस किया जाए। और इसके लिए नीत्से जीसस को कभी माफ नहीं कर सकेगा। यह हद हो गई! यह अपने आपको महात्मा दिखाने की चेष्टा है। हद हो गई! नीत्से धन्यवाद भी दे सकता है चाँटा खाकर। और तब कह सकता है कि ठीक है, आदमी से आदमी की तरह व्यवहार हुआ।

पौरुष (पोरस) हार गया है सिकन्दर से और सिकंदर के सामने खड़ा है, जंजीरों मे बँधा है। सिकदर उससे पूछता है अपने सिंहासन पर बैठकर कि मैं कैसा व्यवहार करू? तो पौरुष ने कहा कि जैसा एक सम्राट दूसरे सम्राट के साथ करता है। और तब सिकन्दर को बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। पौरुष को छोड़ना ही पड़ा, जंजीर तत्काल तुड़वा देनी पड़ी। क्योंकि पौरुष ने कहा कि जैसे एक सम्राट दूसरे सम्राट के साथ करता है, वैसा व्यवहार करो; एक आदमी कैसे दूसरे आदमी के साथ व्यवहार करता है, वैसा व्यवहार करो।

वैसी अवस्था में तो अपने-आप को ऊपर रखने की चेष्ठा भी अशुभ हो जाएगी। न, तुमसे चांटा मारा ही न जा सकेगा। तुम्हें पता ही न चले और तुम्हारा गाल दूसरा सामने आ जाए। यह तुम्हारी चेष्टा न हो, यह तुम्हारा विचार न हो, यह तुम्हारा सिद्धान्त न हो, ऐसा तुमने चेष्टा करके किया न हो, बस ऐसा ही तुमसे हो जाए तो यह धार्मिक व्यवहार होगा। ऐसा तुमने चेष्टा करके किया हो तो यह नैतिक व्यवहार होगा। और नैतिक व्यवहार में शुभ और अशुभ का फासला होता है। धार्मिक व्यवहार में शुभ और अशुभ का कोई फासला नहीं होता।

धार्मिक व्यक्ति जीता है सहजता से। जो उसे स्वाभाविक है, वैसा प्रवाहित होता है। नैतिक व्यक्ति प्रतिपल तय करता है कि क्या करना है और क्या नहीं करना है। ध्यान रहे, जिसको तय करना पड़ता है कि क्या करना और क्या नहीं करना है, उसके पास अभी आत्मा नहीं है। उसके पास अभी शिक्षाओं का समूह है, नैतिक

दृष्टि है; लेकिन धार्मिक अनुभव नहीं है।

लाओत्से कहता है कि शुभ और अशुभ के बीच फासला क्या है; तुम्हारा ज्ञान ही बस फासला है। लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए। लेकिन अफसोस, जागरण की सुबह अभी भी बहुत दूर है। कितनी दूर! लाओत्से यह नहीं कह रहा है कि आपकोजो मौज आए, करने लगें। वह कहता है कि लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए; क्योंकि लोगो के बीच रहना है। लोग जिसे बुरा मानते हैं, उसे बुरा मानना ही चाहिए। लोग जिसे भला कहते हैं, उसे भला कहना ही चाहिए। मगर यह अभिनय से ज्यादा न हो, यह आत्मा न बने। लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए। ठीक है बिलकुल। लेकिन उसी को जीवन का परम सत्य मत जान लेना।

लोग जिससे डरते हैं, उससे डरो; लोग जिसे ठीक कहते हैं, उसे करो; जो लोग कहते हैं कि ठीक नही है,उसे मत करो। मगर तुम इसमें पूरे भी उतर गए, परिपूर्ण भी हो गए तो भी लाओत्से कहता है कि जागरण की सुबह अब भी कितनी दूर है! तुमने अगर लोगो की नीति के पूरे मापदण्ड भी पूरे कर दिये, तुमने चोरी न की, व्यभिचार न किया, तुमने दया की, दान किया, अहिंसा की, लोगो के समस्त नैतिक मापदण्ड पूरे कर दिये, तो भी लाओत्से कहता है कि अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है! तुम अगर पूरे नैतिक भी हो गए तो भी धर्म की पहली किरण अभी नही फूटी है। इसका यह मतलब नही कि नीति को छोड़ देना; वह यह कहता है कि नीति को अंतिम मत समझ लेना।

वह यह नही कहता है कि नीति व्यर्थ है। वह यह कहता है कि नीति अपर्याप्त है। वह यह नहीं कहता है कि नीति को छोड़कर अनैतिक हो जाना। वह कहता है कि नैतिक रहना, लेकिन जानना उसे केवल जीवन की सुविधा, कनविनिएन्स; उसको सत्य मत समझ लेना। और उसको ही पर्याप्त मत समझ लेना कि बात पूरी हो गई। क्योकि मै चोरी नही करता, क्योकि मै झूठ नही बोलता, क्योकि मै किसी को अपमानित नही करता, क्योंकि किसी से कलह नही करता, इसलिए ठीक है, बात समाप्त हो गई, पहुच गया मै परम सत्य को, ऐसा मत समझ लेना।

नीति सामाजिक व्यवस्था है। सिर्फ व्यवस्था है। धर्म जागतिक सत्य की खोज है। तो नीति समाज-समाज मे अलग-अलग हो सकती है। जो यहां नैतिक है, वह दो गाँव छोड़ने के बाद नैतिक न होगा। सारी दुनिया में हजार तरह की नीतियां है। एक कबीले में जो बात बिलकुल नैतिक है, दूसरे कबीले मे बिलकुल अनैतिक हो जाएगी। एक बात जिसे हम सोच भी नही सकते कि कोई करेगा, कहीं दूसरी जगह नैतिक मानी जाती है; उसे करना कर्तव्य समझा जाता है।

एक कबीला है अफ्रीका में। वहां अगर पिता मर जाए तो बड़े बेटे को मां के साथ शादी करना नैतिक है। और अगर बेटा इंकार करे तो अनैतिक है। उनकी भी

दलीलें हैं। सभी नीतियों की दलीलें होती हैं। वे कहते हैं कि माँ अब बूढ़ी हो रही है तो अगर बेटा अपनी जवानी को उसके लिए कुर्बान नहीं कर सकता तो कौन करेगा ? यह कर्तव्य है। और अगर हम ठीक से सोचें तो बेटा एक जवान लड़की के साथ शादी करना छोड़कर अपनी माँ से शादी करने को तैयार होता है तो त्याग तो निश्चित है। अगर हम उसी कबीले में पैदा होते और हमें कुछ और बाहर की दुनिया का पता न होता तो यही कर्तव्य था। और जो बेटा यह नहीं करेगा, उसको पूरा गाँव, पूरा कबीला निन्दा करेगा कि यह आदमी अपनी माँ का भी समय पर न हो सका।

और हमें बड़ी बेहूदी लगेगी बात, सोचने के बाहर लगेगी, एकदम अनैतिक लगेगी। इससे ज्यादा अनैतिक क्या होगा कि बेटा माँ से शादी करे ? हमारी अपनी नीति है, उनकी अपनी नीति है। नीतियां हजार हैं। धर्म से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अपनी सुविधा है, अपनी व्यवस्था है।

नैतिकता अगर कोई पूरी भी निभा ले तो भी उस सत्य की तरफ यात्रा शुरू नहीं होती, जिसकी तलाश है। हां, समाज के साथ एक एडजस्टमेंन्ट, समाज के साथ एक समायोजन हो जाता है। अनैतिक आदमी को समाज के साथ तकलीफ होती है, बेचैनी होती है; क्योंकि पूरा समाज उसके खिलाफ पड़ता है। वह क्या कर रहा है, ठीक या गलत है, उसका बहुत मूल्य नहीं है। लेकिन असमायोजन हो जाता है, मैल-एडजस्टमेन्ट हो जाता है; असुविधा होती है, कष्ट होता है। समाज उसको दण्ड भी देगा, क्योंकि जो आदमी समाज की व्यवस्था के प्रतिकूल चलेगा, वह आदमी खतरनाक है समाज के लिए। अगर ऐसे लोगों को चलने दिया जाए तो समाज की सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। तो उसे दण्ड देना जरूरी है। जो समाज की मानकर चलेगा, समाज उसको आदर देगा; स्वभावतः उसको पुरस्कार देगा। लेकिन इससे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है।

लाओत्से कहता है, लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए। नैतिक होना ठीक है। लेकिन अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है! और अगर तुम पूरे नैतिक भी हो गए तो भी जागरण की सुबह बहुत दूर है। जागरण की सुबह किसे मिलती है ?

लाओत्से दूसरे हिस्से में कहता है : दुनिया में लोग मजे कर रहे हैं, मानो वे यज्ञ के भोज में शरीक हों। मानो वे वसंत ऋतु में खुली छत पर खड़े हों। मैं अकेला ही शान्त और सौम्य हूँ, जैसे मुझे कोई काम ही न हो। मैं उस नवजात शिशु जैसा हूँ जो अभी-अभी मुसका भी नहीं सकता। या एक बंजारा हूँ, जिसका कोई घर न हो।

धार्मिक आदमी को ऐसा प्रतीत होगा। दुनिया के लोग मजे कर रहे हैं, यह व्यंग है गहरा। और लाओत्से तीखे व्यंग कर सकता है। वह कह रहा है कि दुनिया के

लोग मजे कर रहे हैं, दुनिया के लोग जिसे मजा समझते हैं, वह कर रहे हैं। एक अकेला मै हूँ, अभागा हूँ कि मजे के बाहर पड़ गया हूँ। वे सब ऐसे प्रतीत होते हैं कि जैसे किसी उत्सव के भोज में सम्मिलित हुए हैं। प्रतिपल भोज चल रहा है, उत्सव चल रहा है। ऐसा लग रहा है कि बसन्त ऋतु है और वे सब खुली छत पर आनन्दित हैं, उनपर बसन्त बरस रहा है। मैं अकेला हूँ शान्त और सौम्य, जैसे मुझे कोई काम ही न हो। इस बड़े व्यापार में, इस बड़े उत्सव में, इस बड़े जगत में, जहाँ सब तरफ मौज और मजा चल रहा है, एक मैं बेकाम मालूम पड़ता हूँ।

अंग्रेजी के शब्द बहुत कीमती हैं। आइ अलोन एम माइल्ड लाइक वन अन-इम्प्लॉयड, लाइक ए निउ बॉर्न बेब दैट कॅन नाट येट स्माइल, अनअटैच्ड लाइक वन विदाउट ए होम। मै अकेला ही शांत और सौम्य हूँ। न तो इस मजे में मुझे कुछ मजा मालूम होता है, न इस उत्सव में मुझे कोई उत्सव दिखाई पडता है। और अगर लोगों का यही एक मात्र व्यवसाय है तो मै अनइम्प्लॉयड हूँ। अगर मजा करना, या मौज या उत्सव ही अगर एकमात्र धन्धा है तो मैं बिलकुल बिना धंधे का हूँ। मेरे पास कोई धंधा नही है।

जिसे लोग मजा कह रहे हैं, मौज कह रहे है, वह लाओत्से के लिए उनकी समस्त पीड़ाओं का, उनके दुखों का आधार है। लाओत्से देखेगा तो आपके सब सुख और आपके सब दुख उसे जुड़े हुए दिखाई पड़ते है। लेकिन आपको दिखाई नही पड़ते। आप समझते हैं, सुख अलग बात है, दुख अलग बात है। आप समझते हें, सुख इकट्ठा कर लो और दुख को फेंक दो काट कर। लाओत्से जब देखता है, तब वह देखता है कि तुम जब सुख को इकट्ठा करते हो, तब तुम्हें पता नही कि तुम अपने दुख इकट्ठे कर रहे हो। और जब तुम मजा कर रहे हो, तभी तुम्हारी उदासी सघन होती चली जा रही है। और यह भी सभव है कि तुम मजा सिर्फ इसलिए कर रहे हो, ताकि तुम अपनी उदासी को भूल जाओ।

और अक्सर ऐसा होता है। जो लोग हसते हुए दिखाई पड़ते हैं, वे वे ही लोग हैं, जिनके भीतर सिवाय रुदन के और कुछ भी नही है, सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं है। मगर वे हसते है, खिलखिलाकर। हंसते हैं खिलखिलाकर, किसी और को धोखा देने के लिए नहीं; अपनी ही खिलखिलाहट की आवाज अपने को ही धोखा देती है। कभी आपने देखा है, गली में अकेले में अंधेरे मे जाता हो तो आदमी सीटी बजाने लगता है। अपनी ही सीटी की आवाज अंधेरे में सुनाई पड़ती है, लगता है, अकेला नहीं हूँ। गाना गाने लगता है; अपनी ही आवाज सुनाई पड़ती है, हिम्मत आ जाती है। लगता है, अकेला नही हूँ।

आदमी धोखा देने मे बहुत कुशल है। जब आप हंसते हैं, तब जरूरी नहीं कि किसी और को धोखा दे रहे हों। और को भी दे रहे हों, दूसरी बात है; लेकिन अपने को भी दे रहे हो सकते हं। हंसते है, हंसी की आवाज सुनाई पड़ती है;

लगता है बड़े खुश हैं। लोगों के भीतर झांकें और दुख के ढेर ही ढेर हैं। और उन दुखों के ढेर पर भी लोग बैठकर हंसते रहते हैं। यह चमत्कार है।

इसलिए आदमी अकेले होने में डरता है। क्योंकि अकेले में हँसिएगा भी कैसे? दुख दीखना शुरू हो जाता है। दूसरा हो तो आदमी भुला लेता है; दूसरे के साथ बातचीत में डुबा लेता है अपने को। हंस लेता है। और अकेला होता है तो दुख दिखाई पड़ने लगता है। सब भीतर की पीड़ाएं उभर कर सामने आ जाती हैं। सब आंसू साफ हो जाते हैं। इसलिए कोई आदमी अकेला नहीं रहना चाहता है।

अकेले में कोई आदमी अपने साथ रहने को राजी नहीं दिखाई पड़ता है। क्यों? क्योंकि अपने को कैसे हँसिएगा, कितनी देर हँसिएगा? जो भीतर है, वह दिखाई पड़ेगा। दूसरे में हम उलझ जाते हैं, व्यस्त हो जाते हैं तो खुद को भूलने में आसानी हो जाती है। हम सब एक दूसरे को भुलाने के लिए सहयोगी हैं; एक दूसरे को पारस्परिक सहयोग देते रहते हैं। हम आप का दुख भुलाते हैं, आप हमारा दुख भुलाते है। मित्रों का यही लक्षण है। कहते है न कि मित्र वही जो दुख में काम आए। पता नहीं, और तरह काम आते हैं मित्र कि नही, लेकिन एक दूसरे का दुख भुलाने में काम जरूर आते हैं।

लाओत्से कहता है, दुनिया के लोग मजा कर रहे हैं, मानो किसी यज्ञ के भोज मे शरीक हुए हों, या समझो कि वसन्त उनके ऊपर ही बरस रहा हो। एक अकेला मैं चुपचाप खडा हूँ। एक अकेला मैं ही सौम्य मालूम पडता हूँ। न कोई मजा मुझे दिखाई पडता है, न कोई उत्सव मेरी समझ में आता है। एक अकेला मैं दूर पड़ गया हूँ, भीड के बाहर पड़ गया हूँ, अजनबी हूँ। लगता है कि जैसे बेकार हूँ।

और ऐसा लाओत्से को ही लगता हो, ऐसा नहीं है। दूसरे लोग भी ऐसे लोगों से आकर कहते है कि क्या जीवन बेकार गंवा रहे हो। अगर चुपचाप बैठे हैं तो लोग पूछते हैं कि क्यों समय गवा रहे है। अगर आप शान्त हैं तो लोग समझते हे कि दुखी हैं। अगर आप सौम्य हे तो लोग समझते हैं कि क्या हुआ, कोई कड़वा अनुभव, कोई फ्रस्ट्रेशन, कोई विषाद? अगर आप ध्यान के लिए बैठे हे तो लोग समझते है कि शायद जीवन में सफलता हाथ नहीं लगी, इसलिए अब ध्यान करने लगे हे। अगर आप संन्यस्त हो रहे है तो लोग समझते है कि बेचारा, संसार में कुछ न मिल सका तो अब संन्यास की तरफ जा रहा है।

लाओत्से को खुद ही लगा हो, ऐसा नहीं है। हजारों लोगों ने लाओत्से को कहा होगा कि क्या निठल्ले हो व्यर्थ, कुछ करो। तो लाओत्से ठीक कह रहा है, अनुभव की बात कह रहा है कि एक अकेला मैं ही बेकाम मालूम पडता हूँ। सारा जगत काम में सलग्न है, सारे लोग कहीं पहुंच रहे हैं, कोई परपज, कोई लक्ष्य, उनके सामने है। एक मैं ही बेकार हूँ। कहीं मुझे पहुचना नही है, कोई मेरी जल्दी नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है जिसे पूरा करना हो। मेरी हालत ऐसी है, उस नवजात शिशु

जैसी, जो अभी मुसका भी नहीं सकता। यह बड़ी समझने की बात है।

बच्चा तभी मुस्कराना सीखता है—मनसविद इसपर काफी काम करते हैं—जब बच्चा मां को धोखा देना शुरू करता है। उसी दिन से बच्चे में पॉलिटीशियन पैदा हो गया, जब बच्चा हंसने लगा। बच्चे के पास कुछ देने को नहीं है। कुछ देने को नहीं है। सब कुछ उसे लेना ही लेना है। मां का दूध भी लेना है, मां का प्रेम भी लेना है, मां की गर्मी भी लेनी है। सब कुछ लेना ही लेना है। उसके पास देने को कुछ भी नहीं है। उसके पास कोई सिक्का नहीं है जो वह मां को दे सके। थोड़े दिन में बच्चा खोज लेता है कि उसके चेहरे का खिंच जाना, मुसका जाना मां को आह्लाद से भर देता है। एक चीज उसके पास मिल गई; वह दे सकता है। अब वह मां को दे सकता है। अब लेन-देन शुरू हुआ। अब वह मां को देखकर मुसका देगा, मां आनंदित हो जाएगी। पालिटीशियन पैदा हुआ; बच्चे ने राजनीति शुरू की। बच्चे को मुस्कराने का अभी कोई अर्थ नहीं है, सिर्फ मां को परसूएड करना है। समझ गया है कि जब मुस्कराता है, तब मां प्रसन्न होती है, और जब मां प्रसन्न होती है, तब देती है।

इसलिए बच्चा जब नाराज हो, तब मां लाख उपाय करे, बच्चा मुस्करायेगा नहीं। अपनी मुस्कान को रोकेगा, बदला लेगा। अगर वह नाराज है तो मुस्करायेगा नहीं। उसकी मुसकान का मतलब है, वह राजी है, प्रसन्न है, वह मां के प्रति खुश है।

लाओत्से कहता है, मेरी भी हालत वैसी ही है, उस नवजात शिशु जैसी है, जो अभी मुसका भी नहीं सकता, जिसे जीवन की राजनीति का कोई भी अनुभव नहीं है, जिसने अभी पहला सिक्का भी जगत-व्यवहार का नहीं सीखा है। मुस्कराना बच्चे का पहला सांसारिक कदम है। वहां से उसने कदम रखना शुरू कर दिया। अब वह और बातें सीखेगा। लेकिन उसने एक बात सीख ली। उसने एक बात सीख ली कि वह दूसरे को सुख दे सकता है। और दूसरे का सुख रोक भी सकता है। अगर वह न मुस्कराये तो मां को दुखी भी कर सकता है। और अगर मुसकराये तो सुखी भी कर सकता है। दूसरे व्यक्ति को संचालित करने की क्षमता उसमें आ गई। अब वह बहुत-कुछ सीखेगा जिन्दगी में।

और सारी जिन्दगी में हम यही सीखते हैं कि दूसरों को कैसे संचालित करें। और जो आदमी जितना ज्यादा लोगों को संचालित कर सकता है, वह उतना बड़ा आदमी हो जाता है। अगर आप करोड़ों लोगों को संचालित करते हैं तो आप महानेता हैं। इसलिए मैंने कहा, बच्चे ने राजनीति का पहला पाठ, दूसरे को कैसे संचालित करना, कैसे प्रभावित करना, सीख लिया। बच्चा जानता है कि घर में अगर मेहमान भी आये हुए हों तो वह घर को खुश कर सकता है जरा सा मुसका कर। और वह दुखी भी कर सकता है। उस पर बहुत-कुछ निर्भर है। वह

भी कुछ कर सकता है।

लाओत्से कहता है कि मेरी दशा वैसी है, उस बच्चे जैसी, जो अभी मुसका भी नहीं सकता। इस जगत का कोई सिक्का, इसलिए जगत को प्रभावित करने की कोई वृत्ति, इस जगत को संचालित करने की कोई शक्ति, नहीं, यह सब मेरे पास नहीं है। मैं बिलकुल बाहर पड़ गया हूँ। मैं बिलकुल अजनबी हूँ।

या एक ऐसा बंजारा हूँ, जिसका कोई घर न हो। चलता हूँ, उठता हूँ, बैठता हूँ; लेकिन न तो कही पहुँचना है, न कोई मंजिल है, न कोई घर है। बेघर हूँ। ठीक संन्यास का यही अर्थ है : बेघर – जिसका कोई घर नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि जो घर छोड़ कर भाग गया है। जिसका घर हो, वह छोड़ कर भाग भी सकता है। जिसका घर न हो, वह छोड़ कर कहाँ भाग जाएगा ?

बेघर होना एक आंतरिक दशा है, होमलेसनेस एक आंतरिक दशा है। लेकिन हम हर दशा को धोखा देने के लिए इंतजाम कर लेते हैं। एक घर है, उसे मैं मानता हूँ मेरा घर; वह मान्यता ही गलत है। फिर मैं दूसरी मान्यता खड़ी करता हूँ कि अब मैं इस घर का त्याग करता हूँ। फिर मैं जाकर प्रचार करता हूँ कि मैंने इस घर का त्याग कर दिया। वह घर, पहली बात, कभी मेरा था ही नहीं। लाओत्से कहता है कि मैं एक बंजारा हूँ, जिसका कोई घर नहीं है। यह थोड़ा समझने जैसा है।

क्योंकि लाओत्से संन्यासी भी नही है। लाओत्से ने कभी कोई सन्यास नही लिया। लाओत्से ने कभी कोई सन्यास की घोषणा नहीं की। लाओत्से ने कभी कुछ त्यागा नही, छोडा नही। क्योंकि लाओत्से कहता है, मेरा कुछ हो तो मैं छोड़ भी सकू, मेरा कुछ हो तो मैं त्याग भी सकू; मैं तो वैसा हूँ, घुमक्कड़, आवारा, खानाबदोश, जिसका न कोई घर है, न ठिकाना।

इसको हम भीतरी अर्थों में समझें तो इसका अर्थ हुआ कि ऐसा व्यक्ति कही पहुँचने के लिए इच्छुक नहीं है, कहीं जाने की कोई त्वरा, कोई आकांक्षा, कोई अभीप्सा, कोई इच्छा नहीं है। कही कोई मंजिल नहीं है, जहाँ पहुंचना है। जहाँ बैठा है, वही उसकी मंजिल है। जहाँ खड़ा है, वहीं उसका मुकाम है। हट गया तो हटना ही उसकी मंजिल हो गया। ऐसा व्यक्ति प्रति पल सिद्धावस्था में है। ऐसे व्यक्ति को साधक होने का सवाल ही नही है।

लाओत्से कहता है, इस मौज से भरे हुए संसार में। यह व्यंग है; क्योंकि इस मौज से भरे ससार में, इस तथाकथित मौज से भरे संसार में लाओत्से जैसा एकाध आदमी ही मौज को उपलब्ध होता है। बाकी लोग सिर्फ धोखे में होते हैं। और कहता है कि ऐसे जैसे किसी भोज में शरीक हुए हो। लेकिन सच तो यह है कि इस जगत में हमारे सब भोज सिर्फ वंचनाएं ही हैं। लाओत्से-जैसे लोग ही इस जीवन के भोज में शरीक होते हैं। और कहता है, जैसे उनके ऊपर बसन्त बरस

रहा हो ! ऐसा लगता है, लेकिन सचाई बिलकुल उलटी है। सिर्फ लाओत्से जैसे लोग वसन्त मे जीते हैं। हम सिर्फ खयाल में होते हैं, सपने में होते हैं। जीते हैं पतझड़ में, सपनों में होते हैं वसन्त के। जीते हैं दुख में, मौज का आवरण होता है। लगता है कि बड़ा आनन्द ले रहे हैं और सिर्फ दुख इकट्ठा करते हैं। लगता है कि बड़े व्यस्त हैं काम में, लेकिन सचाई यह है कि हमारी सारी व्यस्तता अपने से भागने का एक उपाय है, यह एसकेप है।

मनसविद् कहते है कि अगर आपसे काम छीन लिया जाए तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। हालांकि आप रोज रोते हैं कि इस काम से छुटकारा हो जाए तो थोड़ी शांति की साँस लूं। रोज। लेकिन आपका रोना भी आपका रस है। सांझ आप लौटते हैं दफ्तर से तो कहते हैं कि कब होगा छुटकारा ? अगर आदमी के पास पेट न होता तो आनन्द ही आनन्द होता; यह नौकरी, यह धन्धा, यह सुबह से शाम तक रोना न होता। लेकिन जब आप यह अपनी कथा सुना रहे होते हैं, तब आपको भी पता है कि आप कितनी प्रसन्नता से सुना रहे हैं, आप कितने प्रसन्न हैं, आपको कितना रस आ रहा है।

अगर कल ऐसा हो जाए कि ठीक, आप शांति से घर बैठिए, खाइए, पीइए-मौज करिए, काम आपसे छीन लेते हैं, तो मनसविद कहते हैं कि इस जमीन पर दस-पांच आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा जो बिना काम के आनन्दित रह सके। वे पागल हो जायेंगे और एकदम घबड़ा जायेंगे कि अब क्या करें। और फिर अपनी ही नजर में गिर जाएगे, क्योंकि अपने साथ ही रहना पडेगा। काम एक छुटकारा है अपने आप से। एक काम से दूसरे में लग जाते है, उससे अपने को देखने-परखने का मौका नहीं आता। न इसकी ही चिन्ता करने की सुविधा या समय मिलता है कि हम क्या कर रहे हैं जीवन का ? अपने साथ क्या कर रहे है, क्या हो रहा है, कहाँ जा रहे हैं ? इस सब का मौका नही मिलता है। व्यस्त हैं—एक दौड़ से दूसरी दौड़, दूसरी से तीसरी दौड।

अमरीका मे, लोग कहते हैं, शनिवार और रविवार लोग छुट्टी मनाते है, लेकिन छुट्टी मनाना उनका इतना बड़ा काम है, जितना कि पूरे सप्ताह भी काम नहीं होता। तब वे दूर समुद्र-तटों पर या पहाड़ों पर हजारों-सैकड़ों मील की यात्रा कर के भागते हुए पहुँचते हैं – सैकड़ों कारों के बीच फंसे हुए। जिनसे वे भाग कर जा रहे हैं, वे सब उनके साथ भागे जा रहे हैं। पूरी बस्ती बीच पर पहुंच गई। सब उपद्रव वहां खड़ा हो गया। घंटे, दो चार घंटे वहां इस भीड़-भाड़ में घूम कर के फिर वे भाग रहे हैं घर की तरफ। छुट्टी के दिन भी आदमी छुट्टी नहीं मना सकता है। बड़ा कठिन है, छुट्टी मनाना बड़ा कठिन है। बड़ा कठिन काम है। तो छुट्टी के दिन भी वे तरकीबें खोज लेते हैं—छुट्टी को मारने की, काटने की। तरकीबें हैं; काम कोई खोज लेंगे और उसमें उलझ जायेंगे।

अमरीका में, वे कहते हैं, दो दिन लोग छुट्टी मनाते हैं; फिर छुट्टी से इतने थक जाते हैं कि दो दिन आराम करते हैं। फिर दो दिन नई छुट्टी कहाँ मनानी है, इसका चिन्तन-विचार करने लगते हैं। फिर दो दिन छुट्टी मनाते हैं। और ऐसा उनका सिलसिला चलता रहता है।

फुर्सत आपको हो, आप ऐसा सोचते हैं। आज अमरीका में सर्वाधिक फुर्सत है, लेकिन सबसे कम समय लोगों के पास है। उलटा मालूम पड़ता है। पहली दफा मनुष्य-जाति उस जगह आई है, जब फुर्सत हो सकती है। सप्ताह में दो दिन की छुट्टी, पाँच-छह घंटों का दिन—वह भी ऑफिसियल रिकार्ड पर; पांच घंटे कौन काम करता है?—घंटे, दो घंटे का काम दिन में; सुविधा, समय, सब है। और फिर भी अमरीका में सबसे कम समय आदमी के पास है। एक क्षण खड़े होकर देखने का समय नहीं है कि कहीं खड़े होकर एक क्षण देख ले। भागा हुआ है।

मनसविद् कहते हैं कि आदमी रिटायर होता है, काम से जब उसे विश्राम हो जाता है, तब उसकी उम्र घट जाती है। अगर वह काम में लगा रहता तो दस साल ज्यादा जिंदा रहता। अब वह दस साल कम जिंदा रहेगा। क्या हो गया है? जिंदगी भर आदमी सोचता है कि वह दिन कब आए कि सब काम से निवृत्त हो जाए, शान्ति से घर बैठे। और जब वह शान्ति से अपनी आराम कुर्सी पर बैठता है, तब उसे पता चलता है कि अब क्या करे! क्योंकि अब न दफ्तर है, न दुकान है, न दफ्तर के कर्मचारी हैं, न नीचे-ऊपर के अफसर हैं, न कोई नमस्कार करता है सडक पर, न अब कोई चिन्ता करता है। लोग ऐसे भूल जाते हैं, जो निवृत्त हुआ, निवृत्त हुआ। अब उसका किससे लेना-देना है? बच्चे तक भी बड़े हो गए होते है, वे अपने संसार में उलझ गए होते हैं उसी नासमझी में, जिससे बाप निवृत्त होकर घर बैठे हैं। उनको समय नही है, सुविधा नहीं है। अब वह बाप निवृत्त होकर बैठे हैं; अब यह क्या करेंगे?

अमरीका में उन्होने वृद्ध लोगो के लिए बडे-बड़े आश्रम स्थापित किए हैं। और बड़े मजे की घटनाएं वहाँ घट रही हैं। वहाँ बूढ़े और बूढ़ियाँ पुनः प्रेम में पड़ जाती हैं। वृद्ध-आश्रम में क्या करेंगे वे? अब यह एक लिहाज से अच्छा है। हमारे मुल्क में भी वृद्ध-आश्रम खड़े हैं, एक-दो को मैं जानता हूँ,— वृद्ध-आश्रम को। हमारे यहाँ तो वृद्ध स्त्री-पुरुष को भी पास रखना असम्भव है।

इस मुल्क के एक वृद्ध-आश्रम को मैं जानता हूँ। एक मेरे मित्र ने काफी रुपया खर्च करके एक वृद्ध-आश्रम खड़ा किया हुआ है। वे मुझसे कहते हैं कि मुझे किसी तरह छुटकारा हो जाए इस आश्रम से; क्योंकि कोई सत्तर-पचहत्तर वृद्ध हैं और वे सब इतना उपद्रव मचाते है कि हिसाब नही। सोच सकते हैं, सत्तर-पचहत्तर वृद्ध एक ही घर में हो तो वे क्या कर सकते हैं! उनका भी कोई कसूर नहीं है। काम की आदत है जिन्दगी भर की और अब बेकाम हो तो वह काम तैयार करता

है। वह जाल रचता है, षड्यंत्र खड़ा करता है बैठे-बैठे। वह हर चीज में निन्दा निकालता है, हर चीज में सुझाव देता है, हर चीज में सलाह देता है। वह घर भर के दिमाग को चलाने की कोशिश करता है। सत्तर-पचहत्तर वृद्ध एक जगह इकट्ठे कर लिए हे। वे बताते हैं कि हम इतनी मुसीबत में पड़ गए हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। फिर वृद्धो को डांटा भी नहीं जा सकता है। वे सब अनु-भवी है, ज्ञानी है, कोई माननेवाले नहीं हैं। अमरीका में तो भी बेहतर है, वे वृद्धों और वृद्धाओ को साथ रख देते हे तो उपद्रव तो थे कम हो जाते है। फिर से जाल शुरू हो जाता है।

आदमी काम के बिना रह नही सकता है। मरते दम तक काम चाहिए उसे। क्यों? काम हमारे लिए एक पलायन है, अपने से बचने का एक ढंग है। काम एक नशा है, एक शराब है, जिसको पीकर हम अपने को भूले रहते है। नशा छीन लो तो मुश्किल मे पड़ जाते हैं।

तो लाओत्से कहता है कि सब व्यस्त है, सारा ससार काम मे लगा है, एक मैं ही अकेला, अनएम्पलॉयड हूँ, मेरे पास कोई काम नही है, कोई धन्धा नही है। मैं एक नवजात शिशु जैसा हूँ जो अभी मुस्करा भी नहीं सकता, एक बजारा, जिसका कोई घर न हो।

धार्मिक व्यक्ति ऐसा ही अजनबी व्यक्ति है -- आउटसाइडर -- परदेशी है।

आज इतना ही। फिर कल हम बात करेंगे। रुके पाँच मिनट कीर्तन के लिए।

■■

संत की वक्रोक्तियाँ : संत की विलक्षणताएँ

पैंतालीसवाँ प्रवचन :
अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई, दिनांक १८ जुलाई १९७२.

अध्याय २० : खंड २

संसार और मैं

दुनियावी लोग काफी सम्पन्न हैं, इतने कि दूसरो को भी दे सकें,
परन्तु एक अकेला मै मानों इस परिधि के बाहर हूं,
मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो,
व्यवस्था-शून्य और कोहरे से भरा हुआ !
जो गंवार हैं, वे विज्ञ और तेजोमय दीखते है;
मै ही केवल मन्द और भ्रान्त हूं।

जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त हैं;
अकेला मै उदास, अवनमित
समुद्र की तरह धीर,
इधर-उधर बहता हुआ — मानो लक्ष्यहीन !
सप्रयोजन हैं दुनिया के सब लोग;
अकेला मै दीखता हूं हठीला और अभद्र !
और अकेला मै ही हूं भिन्न – अन्यों से,
क्योंकि देता हूं मूल्य उस पोषण को जो मिलता है सीधा ही
माता प्रकृति से।

Chapter 20 : Part 2

THE WORLD AND I

The People of the world have enough and to spare,
But I am like one left out,
    My heart must be that of a fool,
    Being muddled, nebulous !
The vulgar are knowing, luminous;
    I alone am dull, confused.
The vulgar are clever, self-assured;
    I alone, depressed.

Patient as the sea,
    Adrift, seemingly aimless.
The people of the world all have a purpose;
    I alone appear stubborn and uncouth.
I alone differ from the other people,
    And value drawing sustenance from the Mother.

संसार में केवल दो वस्तुएं अनन्त हैं — एक आकाश और दूसरी मनुष्य की मूर्खता। ओनली टू थिंग्ज आर इनफाइनाइट इन द वर्ल्ड, वन, स्पेस एण्ड सेकण्ड, ह्यूमन स्टुपिडिटी। यह अरस्तू का कहना है।

आइंस्टीन ने अरस्तू को आधा गलत सिद्ध कर दिया है। आइंस्टीन ने सिद्ध कर दिया है कि आकाश असीमित नहीं है। अनन्त भी नहीं है; सान्त है, फाइनाइट है, सीमित है। अगर आइंस्टीन सही है — और सही मालूम होता है — तो फिर एक ही वस्तु अनन्त रह जाती है जगत में, वह है ह्यूमन स्टूपिडिटी, यानी मनुष्य की मूर्खता।

और आकाश अनन्त नहीं है, यह सिद्ध करना एक आइंस्टीन के लिए ही आसान हुआ। हजार आइंस्टीन भी दूसरी बार सिद्ध न कर सकेंगे कि मनुष्य की मूर्खता अनत नहीं है। मनुष्य का जो मूढ़ भाव है, वह अनन्त भी है और असीम भी है। और वह इतना व्यापक है और इतना सार्वजनीन, यूनिवर्सल है कि उसे पहचानना भी कठिन है।

मेक्सिको में एक छोटी सी पहाड़ी पर एक बहुत अद्भुत कबीले का वास है। छोटी सी जाति है। ज्यादा उसकी संख्या नहीं है, कोई तीन-साढ़े तीन सौ के बीच है। ज्यादा सख्या उसकी हो भी नही सकती। पहाड़ी निर्जन है। यह तीन-साढ़े तीन सौ लोगो की जाति आदिवासियों की, पांच-सात छोटे-छोटे गावों में आसपास बसी है। विशिष्टता है इस जाति की कि तीन सौ लोग सभी अंधे हैं। बच्चे पैदा तो होते हैं आंखवाले; लेकिन एक मक्खी है उस पहाड़ी पर, और जैसे मच्छर से मलेरिया होता है, ऐसे ही उस मक्खी के काटने से आंखें चली जाती हैं। अब तक उसका कोई इलाज भी नहीं खोजा जा सका है। तो बच्चे आंखवाले पैदा होते हैं; लेकिन महीने-दो महीने के भीतर अंधे हो जाते हैं। तीन-साढ़े तीन सौ लोग अंधे हैं।

इन अंधे लोगों का जब पहली दफा पता चला सभ्य आदमियो को और आंख वाले आदमी जब पहले इन अंधों के पास पहुंचे, तब अंधो ने मानने से इंकार कर दिया कि कोई भी हो सकता है जिसके पास आंख हो। न केवल मानने से इंकार किया, बल्कि आंखवाले आदमियों के प्रति अच्छा भाव भी नहीं लिया। सच तो यह है कि उन्होंने समझा कि तुम किसी और ही जाति के प्राणी हो, मनुष्य नहीं हो। क्योंकि मनुष्य तो अंधे ही होते हैं।

ईसाइयों के एक सम्प्रदाय ने अपने एक मिशनरी को अंधों के बीच ईसाइयत का प्रचार करने के लिए भेजा। लेकिन अंधे आंखवाले से सुनने और समझने को

राजी न हुए। आखिर में किसी ने सुझाया और बात काम कर गई। उन्होंने एक अंधे मिशनरी को भेजा। अंधे मिशनरी को सुनने को जरूर अंधे राजी हुए। अंधे और अंधों के बीच एक तादात्म्य हुआ, एक समरसता पैदा हुई। लेकिन आंखवाला आदमी पसन्द नहीं किया जा सका---स्वभावत:।

लाओत्से जैसे लोग हम अंधों के बीच आंख वाले लोग हैं। आध्यात्मिक अर्थों में शायद हम भी जब पैदा होते हैं, तब आंखवाले ही पैदा होते हैं। लेकिन सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति के जीवाणु, इसके पहले कि हमें होश आए, हमें अंधा कर जाते हैं। फिर हमारा, अंधों का, बड़ा समाज है। संख्या बड़ी बात है। तीन-साढ़े तीन सौ की है उनकी संख्या; हमारी संख्या कोई साढ़े तीन सौ करोड़ की है। सारी पृथ्वी हम अंधों से भरी हुई है। उसमें जब भी लाओत्से जैसा आंख वाला आदमी पैदा होता है, तब हम उसे पसन्द नहीं करते। दुखद है उसका होना, उसकी मौजूदगी हमे पीड़ा देती है। क्योंकि उसके कारण हमें पता चलना शुरू होता है कि हम अंधे हैं। और यह पता चलना अच्छा नहीं मालूम होता; वह हमारे अंधेपन के घाव के लिए चोट बन जाता है।

लाओत्से के ये सूत्र बहुत व्यंग्य से भरे हैं। और बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह ऐसे आदमी का वक्तव्य है, जो हमारे बीच अजनबी है, जो पाता है कि हम जो भाषा बोलते हैं, वह वह नहीं बोल सकता। और जो पाता है कि हम जिस ढंग से जीते हैं, वह उस ढंग से नहीं जी सकता। और वह यह भी देखता है कि हमारे जीने का ढंग जीने का कम, मरने का ज्यादा है। और हम जो भाषा बोलते हैं, उसमें बोलते हैं कम, छिपाते ज्यादा हैं। हम रुग्ण और बीमार हैं, स्वस्थ नहीं हैं। लेकिन फिर भी हमारी बड़ी संख्या है और हमारा बड़ा बल है। उस बल के कारण ही यह सूत्र लिखा गया है।

लाओत्से कहता है, दुनिया के लोग काफी सपन्न हैं। हम विपन्न लोगों को वह कहता है सपन्न। जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनको लाओत्से कहता है, दुनिया के लोग बड़े सम्पन्न हैं। दि पिपुल ऑफ दि वर्ल्ड हैव, एनफ एण्ड टू स्पेयर न केवल उनके पास काफी है, बल्कि वे दूसरों को भी देने के लिए तत्पर हैं। अपने लिए तो काफी है ही, दूसरों को भी बांटने के लायक हमारे पास है। और हम इतने दरिद्र हैं, दूसरों को देने की तो बात ही अलग है! हमारे पास कुछ है ही नहीं। लेकिन यह खयाल मे आना बड़ा मुश्किल है। हम थोड़ा समझें, एक-दो दिशाओं से पहचानें।

हम सब प्रेम देते हैं, बिना इसकी फिक्र किये कि क्या हमारे पास प्रेम है। मां प्रेम देती है, बाप प्रेम देता है; पति, पत्नी, भाई, मित्र प्रेम दे रहे हैं। सारी दुनिया में सभी लोग प्रेम दे रहे हैं। और दुनिया में प्रेम की कहीं एक बूंद भी दिखाई नहीं पड़ती। सारे लोग प्रेम बरसा रहे हैं; लेकिन किस मरुस्थल में खो जाता है प्रेम?

सागर बन जाना चाहिए प्रेम का, इतना प्रेम बह रहा है। एक-एक आदमी हजार-हजार दरवाजों से प्रेम बरसा रहा है। किसी के लिए वह मां है, किसी के लिए पत्नी है, किसी के लिए पिता है, भाई है, मित्र है। कितना-कितना हम प्रेम बहा रहे हैं चारों तरफ! हमारा जगत तो प्रेम का सागर हो जाना चाहिए। लेकिन जगत दिखता है घृणा का सागर। प्रेम हमें कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

जहां इतना प्रेम दिया और लिया जा रहा हो, वहां प्रेम की एक बूंद भी नहीं दिखाई पड़े तो जरूर कोई भूल हो रही है। जो हमारे पास नहीं है, वह हम दे रहे हैं। इसलिए हम देने का मजा भी ले लेते हैं और प्रेम किसी के पास पहुंचता भी नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव के एक अमीर आदमी के पास गया। सुबह-सुबह उसने द्वार खटखटाया। अमीर मुल्ला को देखकर समझ गया कि बस, कुछ दान मांगने आया होगा—मस्जिद के लिए, मदरसे के लिए। मुल्ला ने कहा कि भयभीत न हों, मैं न मदरसे के लिए आया हूं, न मस्जिद के लिए। काम ही दूसरा आ गया। अमीर आश्वस्त हुआ। उसने पूछा कि क्या काम आया है। मुल्ला ने कहा कि थोड़े पैसे की जरूरत है, एक हाथी खरीद रहा हूं। अमीर ने कहा कि पागल हो गए हो; हाथी खरीदने के लिए पैसा नहीं है तो हाथी को रखने के लिए कहां से इंतजाम जुटाओगे?

मुल्ला ने कहा, माफ करिये, मैं आपसे पैसा मांगने आया हूं सलाह मांगने नहीं। आइ हैव कम टू आस्क फॉर मनी, नॉट एडवाइस। और मुल्ला ने कहा कि आप ठीक से समझ लें, आपसे वही मांगा जा सकता है, जो आपके पास है। जो आपके पास है ही नहीं, वह आपसे मांगा नहीं जा सकता। जो नहीं है, कृपा करके उसे किसी को देने की कोशिश मत करें।

लेकिन हम सभी लोग सलाह दे रहे हैं। और सलाह किसके पास है? सलाह देने का कौन हकदार है? शायद जो हकदार है, वह चुप रह जाए और जो हक-दार नहीं है, वह सलाह दे दे। दुनिया में जितनी सलाह दी जाती है, उतनी और कोई चीज नहीं दी जाती। लेकिन किसके पास है? कौन जानता है कि क्या सही है? लेकिन देने से ऐसा भ्रम पैदा होता है कि जो हम दे रहे हैं, वह हमारे पास होगा भी।

हम हैं विपन्न। न हमारे पास प्रेम है और न हमारे पास समझ है। और जिसे हम संपत्ति कहते हैं, वह सपत्ति का धोखा है, सम्पत्ति नहीं। तो चाहे हम तिजोरियां भर लेते हों और चाहे हम गहने से अपने घर भर लेते हो, वह सपत्ति नहीं है। धोखा जरूर है। धोखा इसलिए है कि उससे हमें खयाल होता है कि सम्पदा हमारे पास है। कितना सोना है किसके पास, कितना रुपया है किसके पास, बैंक में कितना जमा है, उससे हम सोचते हैं कि हम सम्पत्तिवाले हो गए। आदमी ने,

अंधे आदमी ने झूठी सम्पत्ति पैदा कर रखी है—स्वयं को धोखा देने के लिए। क्योंकि अगर यही सम्पत्ति होती तो महावीर इसे छोड़कर भागते नहीं। अगर यही सपत्ति है तो बुद्ध पागल है और हम बुद्धिमान हैं। बुद्ध इसे छोड़कर न जाए। अगर यही सम्पत्ति है तो लाओत्से को यह व्यंग न करना पड़े। हमारे पास संपत्ति जैसी कुछ भी व्यवस्था नही है। विपत्ति हमारे पास बहुत है। और जिसे हम सपत्ति कहते है, वह भी हमारी विपत्ति ही बन जाती है; और कुछ भी नहीं।

बड़ा मजा है, जिनके पास संपत्ति नहीं है, वे विपत्ति में हैं, और जिनके पास संपत्ति है, वे दुगुनी विपत्ति में हैं। सम्पत्ति को बचाने का भी काम उन्हीं के ऊपर पड जाता है; वे पहरेदार बन जाते हैं। वे जिन्दगी भर उन चीजों पर पहरा देते हैं, जो उनकी नही थीं; उन चीजों के खोने पर दुखी होते हैं, जो उनकी नही थी। और एक दिन मर जाते हैं और वे चीजें किसी और की हो जाती हैं। और फिर कोई और उनपर पहरा देने लगता है।

लाओत्से कहता है, दुनिया के लोग काफी सम्पन्न हैं। हर आदमी यहाँ, मालूम होता है, मालिक है। और हर आदमी, मालूम होता है, किसी बडे साम्राज्य का मालिक है। और ऐसा नहीं कि मालकियत नहीं है, मालियकयत इतनी बड़ी है कि हर आदमी दूसरे को भी दे रहा है, दान भी कर रहा है, बांट भी रहा है। एक अकेला मै मानो इस परिधि के बाहर हूँ। एक अकेला मैं ही विपन्न मालूम पडता हूँ, जिसके पास कुछ भी नही है। सभी के पास बहुत कुछ है।

बुद्ध पहली बार जब काशी आए ज्ञान के बाद, तब काशी के पहले ही एक गाँव के बाहर सांझ हो गई। और वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को रुक गए। सूरज डूबता था। और तभी काशी के नरेश ने अपने सारथी को कहा कि मै बहुत उद्विग्न हूँ, मुझे गाँव के बाहर ले चलो। स्वर्ण-रथ, डूबते हुए सूर्य की किरणो में चमकता हुआ, बुद्ध के पास अचानक रुक गया। सम्राट ने अपने सारथी से कहा, रथ को रोक! यह कौन भिखमगा सम्राट–सा, कौन भिखमगा सम्राट–सा इस वृक्ष के नीचे बैठा है? रोक! सम्राट बुद्ध के पास आए और सम्राट ने कहा कि तुम्हारे पास कुछ भी दिखाई नही पडता; लेकिन तुम्हारे पास जरूर कुछ होगा; तुम्हारी आखे कहती है। यह डूबता हुआ सूर्य भी तुम्हारे सामने तेजपूर्ण नहीं मालूम हो रहा है। क्या है तुम्हारे पास? कौन-सी सम्पदा है? कौन-सा छिपा हुआ खजाना है? मेरे पास सब है जो गिना जा सके, देखा जा सके, पहचाना जा सके, और मै आत्महत्या के विचार करता हूँ।

सम्राट है जिसके पास सब है। और भिखारी है जिसके पास कुछ भी नहीं है। और फिर भी सम्राट हाथ जोडकर भिखारी के पास खड़ा है कि तुम्हारे पास क्या है, इसकी मुझे खबर दो।

बुद्ध ने कहा, जो तुम्हारे पास है, कभी वह मेरे पास भी था। लेकिन तब मैं भी

ऐसे ही विपन्न था। और जो आज मेरे पास है, वह तुम्हारे पास भी छिपा है। लेकिन जब तक तुम्हारी झूठी संपत्ति तुम्हें झूठी न दिखाई पड़े, तब तक सच्ची संपत्ति की खोज शुरू नहीं होती। जब तक तुम माने ही जाओगे कि तुम सम्राट हो, तब तक तुम उसे न खोज पाओगे, जिसे मैंने खोज लिया है। क्योंकि जो झूठे साम्राज्य को सच्चा मानकर जी रहा हो, वह सच्चे साम्राज्य से वंचित रह जाता है।

स्वभावतः, सीधा गणित है यह। अगर मैं झूठी चीज से मन को बहला रहा हूँ, और बहला लिया है मैंने अपने मन को, तो मैं सच्चे की खोज बन्द कर दूंगा।

तो बुद्ध ने कहा, इस भीतरी साम्राज्य की खोज के दो चरण हैं। पहला तो यह कि जिसे साम्राज्य समझे हो उसे साम्राज्य न समझो और दूसरा यह कि तुमने बाहर खोजा है, अब तुम भीतर खोजो। जो तुम्हारे पास है, वह मेरे पास भी था। जो आज मेरे पास है, वह अभी भी तुम्हारे पास मौजूद है। सिर्फ तुम्हें उसका पता नहीं है।

लाओत्से कहता है, दुनिया के लोग काफी सपन्न हैं, इतना कि दूसरों को भी दे सके। एक अकेला मैं मानो इस परिधि के बाहर हूँ। मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो – व्यवस्था-शून्य और कोहरे से भरा हुआ। यहाँ सभी बुद्धिमान हैं। यहाँ सभी बुद्धिमान हैं, यहाँ ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बुद्धिमान न हो। या कि कभी आपको कोई आदमी मिला, जो बुद्धिमान न हो? खोजें, ऐसा आदमी मिल न सकेगा।

ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है, जो अपने को समझता हो कि मैं बुद्धिमान नहीं हूँ; यद्यपि यह बुद्धिमत्ता का पहला लक्षण है। यहा सभी अपने को बुद्धिमान मान कर चलते हे, इसलिए वास्तविक बुद्धि से वंचित रह जाते हैं। झूठी सपत्ति को समझते हे सम्पदा, झूठी बुद्धि को समझते हैं बुद्धिमानी। तो फिर जो वास्तविक है, उससे वचित ही रह जाते हैं। उस तरफ पैर ही नहीं उठते, उस मंदिर की तरफ जाना ही नहीं होता, उस राह पर चलना ही नहीं होता। वह खोज का द्वार बन्द ही हो जाता है।

हम सब बुद्धिमान है। और कोई हमसे पूछे कि हमने क्या बुद्धिमानी की है जिसकी वजह से हम बुद्धिमान है? लौटें, अपनी जिन्दगी को खोजें कि क्या बुद्धिमानी की है जिसकी वजह से हम बुद्धिमान हैं तो मूढ़ताओं का अंबार मिलेगा, ढेर मिलेगा। लेकिन अहकार को चोट लगती है यह जानकर कि मैं नासमझ हूँ। तो हम अपनी नासमझियो पर भी सोने के पलस्तर चढ़ा लेते हैं। हम अपनी नासमझियों पर भी सुन्दर वस्त्र ढांक लेते हैं। हम अपनी व्यर्थताओं पर, अपनी विक्षिप्तताओं पर भी रंग-रोगन कर लेते हैं; रंग-रोगन करके हम व्यवस्था जमा लेते हैं।

जीसस ने कहा है कि तुम्हारे शुभ्र वस्त्रो में मुझे सिर्फ सफेद पुती हुई कब्र के

सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। कब्र को कितना ही सफेद पोत दें, उससे क्या फर्क पड़ता है! हम भी अपने को पोते हुए हैं।

क्या कभी आपने सोचा है कि क्या है बुद्धिमानी कि जिसके कारण आप कहें कि मैं बुद्धिमान हूँ? जो भी किया है, उससे दुख पाया है। जो भी किया है, उससे दुख ही दुख पाया है। पाप किया तो दुख पाया, पुण्य किया तो दुख पाया। किसी के साथ बुरा किया तो पछताए; किसी के साथ भला किया तो पछताए। मित्रता बांधी तो दुख पाया; शत्रुता बनाई तो दुख पाया। दरिद्र थे, नहीं था पास एक पैसा तो पीड़ा थी। अमीर हो गए, पैसे का ढेर लग गया तो और पीड़ा हो गई। बुद्धिमानी, कौन सी बुद्धिमानी की है?

अगर हम जिन्दगी को खोजें तो बुद्धिमानी का अर्थ होना चाहिए कि निष्कर्ष आनन्द हो तो ही बुद्धिमानी है। बुद्धिमानी की और क्या कसौटी होगी? क्या होगी मापदण्ड की व्यवस्था? एक ही व्यवस्था है कि बुद्धिमान आदमी निरन्तर आनन्द को उपलब्ध होगा। प्रतिपल उसका आनन्द बढ़ता चला जाएगा; उसके जीवन की सुगन्ध, उसके जीवन की सुवास, उसके जीवन की शान्ति बढ़ती चली जाएगी। प्रतिपल वह और भी प्रकाशोज्ज्वल होता चला जाएगा। प्रतिपल अमृत निकट और मृत्यु दूर होती चली जाएगी।

लेकिन हम जो अपने को बुद्धिमान मानकर चलते है, कौन सी सुवास पा ली है, कौन सा आनंद, कौन सा सगीत, कौन सी किरण हमें मिली है, जिसको हम अपनी परम मुक्ति और अपने परम अमृतमय जीवन का मार्ग बना सके? कुछ भी हाथ में नहीं है। सच तो यह है कि हमारी पूरी जिन्दगी है खोने की एक लम्बी यात्रा, जिसमें हम खोते हैं, पाते कुछ भी नही। प्रतिपल खोते हैं और प्रतिपल खो-खो कर अपने को और बुद्धिमान माने चले जाते है।

अगर यह खोना ही बुद्धिमानी है, तब तो लाओत्से का व्यग गलत है। लेकिन लाओत्से का व्यंग्य गलत नही है। क्योकि यदि हम अपने भीतर झाकें तो हम सिर्फ खाली, रिक्त और राख से भरे हुए अपने को पाएंगे। सारी अभिलाषाएं, सारे सपने धीरे-धीरे राख हो जाते है। सारे इन्द्रधनुष वासनाओ के, सब टूट के कीचड़ बन जाते हैं। आखिर में हमारे हाथ इन्द्रधनुष नहीं होता, सिर्फ कीचड़ होता है।

लाओत्से कहता है, मानो मेरा हृदय जैसे किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो। जब देखता है अपने चारों तरफ सब बुद्धिमानों को, तब सोचता है कि अब एक ही उपाय है कि अगर मै भी बुद्धिमान हूँ तो इन्हीं जैसा हूँ। और अगर ये बुद्धिमान है तो मैं मूर्ख हूँ। यही उचित है। दो ही उपाय है। अगर लाओत्से बुद्धिमान है तो हम बुद्धिमान नहीं हो सकते। अगर हम बुद्धिमान हैं तो लाओत्से बुद्धिमान नही हो सकता। इसमें कोई समझौता नहीं है। स्वभावतया अगर मत से तय करना हो तो लाओत्से मूर्ख है और हम बुद्धिमान हैं। इसीलिए वह व्यंग्य कर रहा है। और

उसके व्यंग्य में वजन है।

वह यह कह रहा है कि अगर मैं अकेला यह भी कहूँ कि तुम सब नासमझ हो तो उसका कोई अर्थ न होगा। मैं अकेला तुमसे कहूं कि तुम सब अंधे हो तो मेरी आंखों पर संदेह करोगे। यह भी कर सकते हो कि मेरी आंखें फोड़ दो। उचित यही है कि मैं कहूं कि मैं अंधा हूँ तुम सब आंखोवालों के बीच। तुम्हारे पास आंखें अद्भुत हैं, तुम्हें पास का ही नहीं, दूर का भी दिखाई पड़ता है; जमीन के ऊपर का ही नहीं, जमीन के नीचे का भी दिखाई पड़ता है। तुम्हारे पास आंखें ऐसी हैं कि तुम्हें जगत का सारा सत्य दिखाई पड़ता है। एक तुम्हारे बीच मैं ही ऐसा हूं, जो अंधा हो।

लाओत्से को इसीलिए हमने सूली पर नही चढ़ाया। हम बड़े प्रसन्न हुए होंगे कि आदमी तो ठीक ही कह रहा है। जीसस को हमने सूली पर चढ़ाया। जीसस ने व्यंग्य नही किया था, सीधी-सीधी बात कही थी। सुकरात को हमने जहर दिया। उसने भी व्यंग्य नहीं किया था, सीधी-सीधी बात कही थी। सुकरात ने कोशिश की बताने की कि तुम मूर्ख हो। हमें क्रोध आ गया। अदालतें हमारी हैं, कानून हमारा है। सुकरात को जहर देने में क्या अड़चन थी? जीसस ने भी हमें सीधी बात कही। जीसस और सुकरात थोड़े भोले मालूम पड़ते हैं। लाओत्से एक बहुत प्राचीन सभ्यता का नवनीत है। हजारों-हजारों वर्षों का अनुभव है जैसे लाओत्से के पीछे। वह उलटा कहता है। किसी ने लाओत्से पर पत्थर भी नहीं फेंका।

बर्ट्रेण्ड रसेल ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैंने एक बार मजाक में एक लेख लिखा राष्ट्रीयता के खिलाफ, नैशनलिज्म के खिलाफ, राष्ट्रवाद के खिलाफ एक लेख लिखा, और उस लेख में व्यंग्य में ऐसा कहा कि मेरे इस लेख को पढ़ने वाला जो पाठक है उसको छोड़कर समस्त राष्ट्र मूढ़ है। बर्ट्रेण्ड-रसेल ने लिखा है कि अनेक लोगो के अनेक मुल्को से मेरे पास पत्र आए कि आप ही ठीक पहचानने वाले आदमी हैं। पोलैण्ड के एक आदमी ने लिखा कि आप बिलकुल ठीक कहते है, पोलैण्ड को छोड़कर सारे जगत के लोग मूढ़ तो हैं ही।

व्यंग्य को समझने की बुद्धि भी तो होनी बहुत मुश्किल है।

लाओत्से अगर आकर आपसे कहे कि आप सब बुद्धिमानों के बीच मैं हूँ एक मूढ़ के हृदय जैसा तो आप कहेंगे कि हम पहले ही जानते थे। अन्यथा घर बसाते, विवाह करते, दुकान चलाते, कुछ काम की बात करते। अगर बुद्धि होती तुम्हारे पास तो आज जगत में कहीं होते, किसी पद पर होते। सफल होते, कोई स्वर्ण-पदक होते, कोई राष्ट्रपतियों से दी हुई उपाधियाँ होतीं। कहीं भी तो नहीं है। वह हम पहले ही जानते थे, सिर्फ शिष्टतावश हमने नहीं कहा था।

अब लाओत्से हमसे कहेगा कि संसार के लोग इतने संपन्न हैं, सबके पास इतना है कि वे न केवल अपने लिए काफी हैं, उनके पास जो है वह दूसरों को भी बांट देते

है, तब हम कहेंगे कि ठीक ही कहते हो। हम सभी को यह खयाल है, हम सभी बांट रहे हैं। हम सभी को यह खयाल है कि हम सभी न मालूम कितनी संपदाएं बांट रहे हैं—प्रेम की, आनन्द की, सुख की, मित्रता की, करुणा की। हम कितनी सम्पदाएं बांट रहे हैं! तो हम कहेंगे कि ठीक ही कहते हो।

लेकिन लाओत्से व्यंग्य कर रहा है। वह कह रहा है, तुम सब बुद्धिमान हो, इसलिए उचित होगा यही कि मैं कहूं कि मैं तुम्हारे बीच एक मूर्ख हूं। तुम सबके जीवन में बड़ी व्यवस्था है, मैं व्यवस्था-शून्य हूं। तुम्हारा इंच-इंच नपा-तुला है, तुम गणित से चलते हो, तुम्हारे जीवन में एक ढांचा है, योजना है। मैं ही हूं, अना-योजित (अनप्लैंड,) व्यवस्था-शून्य! तुम्हारे पास तर्क है, तुम्हारे पास समझने का ढग है, तुम दूर की खोज लाते हो। भविष्य मे भी तुम झांक लेते हो। तुम एक-एक कदम नाप के रखते हो। और तुम्हारी कोई मंजिल है, जहाँ तुम पहुँच रहे हो। एक मैं हूं—कोहरे से भरा हुआ। मेरी बुद्धि में कोई योजना नहीं है, कोई गणित नहीं है, कोई तर्क नही है। सब धुधला-धुंधला है। तुम बिलकुल साफ हो।

हम सभी को यही खयाल है कि हम बिलकुल साफ हैं। और लाओत्से हमें कोहरे से भरा हुआ लगेगा भी। क्या बातें कर रहा है कि हा और ना मे कोई अन्तर नहीं है, कि पाप और पुण्य सब समान है, कि शुभ और अशुभ में भेद क्या है? कोहरे से भरी बातें, मूढ़ ही ऐसी बातें कर सकते हैं! समझदार ऐसी बातें करेंगे कि हां और ना मे अतर क्या है, तब, फिर समझदारी और नासमझदारी में अंतर ही क्या रह जाएगा?

समझदार साफ-साफ जानते हैं कि हां और ना मे अंतर है। समझदार तो यहाँ तक जानते है कि एक हा और दूसरे हां मे भी अंतर है; एक ना और दूसरे ना मे भी अतर है। ना भी हजार तरह का होता है और हा भी हजार तरह का होता है। समझदार तो अंतर पर ही जीता है। अगर हम ठीक से समझें तो हमारी सारी समझदारी इस पर निर्भर करती है कि हम कितने अंतर, कितने भेद निर्मित कर पाते हैं। जो आदमी जितना भेद कर पाता है, वह उतना बुद्धिमान है। जो कहता है कि अभेद है, कोई भेद नही है, वह तो अराजक है, उसके पास बुद्धि नहीं है। उसकी बुद्धि कोहरे की भांति है।

लेकिन लाओत्से खुद ही कहता है। अब इसलिए हम चूक भी सकते है कि उसका प्रयोजन क्या है? वह यह कह रहा है कि इस जगत मे जो समझदार हैं और व्यवस्था से जीते हैं, वे केवल मरते हैं—जी नहीं सकते। क्योंकि जीवन का सारा रहस्य, जीवन का सारा काव्य कोहरे में है। सुबह जब कोहरा छाया होता है और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष में फर्क करना मुश्किल हो जाता है, दो इंच फासले पर कुछ दिखाई नही पड़ता है, सारी प्रकृति जैसे एक ही कोहरे के सागर में डूब जाती है, लाओत्से कहता है, तब ऐसे धुन्ध मे जो जीते हैं, वे ही जीते हैं।

लाओत्से के लिए धुन्ध और कोहरा रहस्य के प्रतीक हैं। पश्चिम में शब्द है मिस्टिक। मिस्टिक का मतलब यह होता है कि जो कोहरे में जीता है, धुन्ध में जीता है, रहस्य में जीता है। लेकिन आधुनिक पाश्चात्य जगत में किसी को मिस्टिक कहना गाली देने के बराबर है। और जब लोग किसी की बात को गलत करना चाहते हैं, तब वे कहते हैं कि तुम मिस्टीफाई कर रहे हो, तुम चीजों को धुंधला कर रहे हो। लाओत्से को पढ़कर तो बड़ी कठिनाई होती है। लेगे ने, जिसने लाओत्से का अनुवाद किया है, जगह-जगह अपने अनुवाद में लिखा है कि इस वाक्य का अनुवाद नहीं किया सकता, यह मेरी समझ में नहीं आया। क्योंकि समझ तो फासलों पर जीती है। यह तो सब फासले गिरा देना है, यह तो सब सीमाएं तोड़-कर गड्ड-मड्ड कर देना है। यह तो सब जो भेद थे, सीमान्त थे, उनको तोड़ देने का उपाय है। तो फिर अराजकता हो जाएगी।

लाओत्से, लेकिन, खुद ही कहता है, मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो—व्यवस्था-शून्य और कोहरे से भरा हुआ। जो गवार है, वे विज्ञ और तेजोमय दीखते हैं, मैं ही केवल मन्द और भ्रान्त हूँ।

जो गवार है, वे विज्ञ और तेजोमय दीखते हैं ! गवार होना और तेजोमय होना बहुत आसान है। गवार और विज्ञ होना बहुत आसान है। विज्ञ होना और विज्ञ होने के खयाल से नहीं भरना बहुत मुश्किल है। असल में मैं बुद्धिमान हूँ, यह भाव गँवारी का ही लक्षण है। बुद्धिमान को यह भाव पैदा भी नहीं हो सकता है। बुद्धिमान की तो जितनी बुद्धिमत्ता बढ़ती है, उतना उसे लगता है कि कितना कम मैं जानता हूँ।

न्यूटन ने कहा है कि जैसे कोई सागर के किनारे सीप बीन ले, कुछ रेत पर मुटठी बाँध ले, ऐसा मेरा ज्ञान है। सागर के किनारे अनन्त-अनत बालू-कणों के बीच थोड़ी सी रेत पर जैसे मैंने मुट्ठी बाध ली है। जैसे बच्चो ने सागर से थोड़े से सीप, जैसे सागर के संख बीन लिए हो, ऐसे ही कुछ सख मैंने भी बीन लिए हैं। ऐसा मेरा ज्ञान है। **जो मै जानता हूँ, वह मेरी मुट्ठी के रेतकण हे। और जो मै नहीं जानता हूँ, वे ही सागर के रेतकण हे।**

लेकिन न्यूटन कह सकता है। न्यूटन गंवार नही है। न्यूटन जैसे-जैसे जानने लगा, वैसे-वैसे अज्ञान प्रगाढ़ और स्पष्ट होने लगा। लेकिन किसी गँवार को पूछें, वह इतना भी मानने को राजी न होगा कि मेरी मुट्ठी में जितने कण हैं, उतना ही मेरा अज्ञान है। जितने सागर के कण हैं, उतना मेरा अज्ञान है ही; लेकिन जितने मेरी मुट्ठी में हैं, उतना भी मेरा अज्ञान है, यह भी वह मानने को राजी न होगा।

इसलिए मूढ़ बड़े सुनिश्चित होते है। और इन सुनिश्चित मूढ़ों के कारण जगत मे इतना उपद्रव है कि जिसका हिसाब लगाना कठिन है। क्योंकि वे बिलकुल

निश्चित हैं। जगत में दो ही कठिनाइयाँ हैं : मूढ़ों का निश्चित होना और ज्ञानियों का अनिश्चित होना।

इसलिए मूढ़ कार्य करने में बड़े कुशल होते हैं। ज्ञानी निष्क्रिय होते मालूम होते हैं। ज्ञानी इतना अनिश्चित होता है, कोहराछन्न होता है, रहस्य में डूबा होता है, इतने काव्य से घिरा होता है कि गणित की भाषा में सोच नहीं सकता। मूढ़ आँख बन्द करके वहाँ प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ देवता भी प्रवेश करने में डरते हैं। मूढ़ काफी सक्रिय होते हैं। उनकी सक्रियता उपद्रव लाती है। इसे समझें थोड़ा।

लाओत्से को एक तरफ रखें और एक तरफ हिटलर को रखें। हिटलर की सक्रियता का बेचारा लाओत्से क्या मुकाबला करेगा ? लेकिन उस दिन होगा सौभाग्य जगत का, जिस दिन हिटलर जैसे मूढ़ निष्क्रिय हो सकें और लाओत्से जैसा बुद्धिमान सक्रिय हो सके।

लाओत्से कहता है, जो गवार है, वे विज्ञ और तेजोमय दीखते हैं। उन्हें कुछ पता नही है। इसलिए जो भी थोड़ा-बहुत उन्हे पता है, उसी पर वे मजबूती से खड़े होते हैं। उनका थोड़ा सा ज्ञान भी उन्हे महासूर्य जैसा मालूम पड़ता है। ज्ञानी को उसका महाज्ञान भी एक मिट्टी के ही दीये जैसा लगता है—टिमटिमाता हुआ।

मैं ही केवल मन्द और भ्रान्त हूं। और इन सुनिश्चित लोगों के बीच, मताग्र लोगो के बीच, जहाँ सभी आश्वस्त हैं, निश्चित हैं, पूर्ण है, वहाँ एक मैं ही एक मन्द और भ्रान्त मालूम पड़ता हूँ।

महावीर किसी गाँव में आते है। उस गाँव का जो बड़ा पंडित है, वह महावीर से मिलने आता है। वह महावीर से पूछता है : ईश्वर है ? वह महावीर से पूछता है : आत्मा है ? महावीर को बोलने का अवसर भी नही है और वह प्रश्न पूछे चला जाता है। जैसे ईश्वर के सम्बन्ध मे पूछना कुछ ऐसा हो, जैसे दो और दो कितना होता है। कि आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न पूछना कुछ ऐसा हो कि जैसे कोई भूगोल का सवाल हो कि टिम्बकटू कहा है ? स्वर्ग है, मोक्ष है, वह पूछता चला जाता है। महावीर को तो कुछ बोलने का भी मौका उसने नही दिया।

जब वह सब सवाल पूछ चुकता है—एक सांस मे उसने सब कुछ पूछ लिया है, जो मनुष्य की चेतना ने अपने पूरे इतिहास मे पूछा है; करोड़ों-करोड़ो वर्षों मे मनुष्य की चेतना ने जो सवाल पूछा है और जिनके उत्तर नही पाये, वह आदमी एक क्षण में पूछ लेता है—तब महावीर उससे कहते हैं कि तुम्हारे पास इतने बड़े सवाल हैं और इतना कम समय मालूम पड़ता है कि उत्तर देना मुश्किल है। तुम्हारे पास सवाल बडे हैं और समय कम मालूम पडता है, क्योंकि तुम एक सवाल पूछकर रुकते भी नही हो। और एक सवाल ही काफी है कि अनन्त जीवन लग जाएं उसकी खोज में।

उस आदमी ने कहा कि मैं जरा जल्दी में हूँ और फिर ऐसा कोई जरूरी भी नहीं है। आपको कुछ खयाल हो तो कह सकते हैं संक्षिप्त में। और न हो खयाल में तो कोई हर्जा नहीं है। मैं यहाँ से गुजरता था, सोचा तो आप आए हैं, मिलता चलूं। महावीर ने चलते-चलते उस आदमी से कहा, और जहां तक मैं समझता हूं, आपको इनके उत्तर भी मालूम होंगे। उस आदमी ने कहा, निश्चित ही। किसको नहीं मालूम है कि ईश्वर है ? मैं आस्तिक हूं, ईश्वर है।

यह जो मूढ़ता है, उस मूढ़ता की तरफ इशारा कर रहा है लाओत्से कि तुम सभी आश्वस्त हो। पूछो किसी से ईश्वर है, वह जवाब दे देता है, झिझकता भी नहीं। हाँ कह देता है, ना कह देता है। उसे खयाल नहीं है कि वह क्या बोल रहा है, किस सम्बन्ध में बोल रहा है ? ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिससे पूछें ईश्वर की बाबत और वह चुप रह जाए। वह कुछ कहेगा। हिन्दू होगा तो हिन्दू के ईश्वर की बात कहेगा, मुसलमान होगा तो मुसलमान के ईश्वर की बात कहेगा, कम्युनिस्ट होगा तो ईश्वर के न होने की बात कहेगा, लेकिन कहेगा। सभी आश्वस्त हैं, सभी को पता है।

इसलिए तो इतना विवाद है। थोड़ा समझें। जगत मे जो इतना विवाद है, वह हमारी मूढ़ता के आश्वस्त होने के कारण है। सभी इतने आश्वस्त हैं कि वे ठीक हैं और सारी दुनिया गलत है। दूसरे को गलत सिद्ध करने मे वे इतने उत्सुक हैं कि वे यह भूल ही जाते हैं कि जिस चीज को वे ठीक कह रहे हैं, उस चीज का उन्हें भी पता है या नही। इसकी फुर्सत भी नहीं मिलती। दूसरे को गलत करने में इतना श्रम लगता है कि खुद के सही होने का पता लगाने का न तो अवसर है, न सुविधा है। और झंझट का काम भी है। दूसरे को गलत करना हमेशा आसान है।

लाओत्से कहता है कि यहां सभी को सब कुछ पता है, एक मैं ही मन्द और भ्रान्त मालूम पड़ता हूँ। जो बिलकुल ही भ्रान्त नहीं है, वह हमारे बीच भ्रान्त मालूम पड़ता है। जो बिलकुल ही मन्द नहीं है, वह हमारी झूठी प्रतिमाओं के बीच बिलकुल मन्द मालूम पड़ता है। यह करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे कागज के फूलों के बीच कोई असली फूल को रख दे। निश्चित ही कागज के फूलों के रंग ज्यादा चटकीले हो सकते हैं, ज्यादा तेजोमय हो सकते है। मौत का उन्हे डर नहीं है; ज्यादा आश्वस्त हो सकते हैं। असली फूल तो डगमगाता होगा। एक-एक पल मौत करीब आती होगी। और जो रंग है, वह भी प्रतिक्षण तिरोहित हो रहा है, प्राण-ऊर्जा क्षीण हो रही है। असली फूल कागज के फूलों के बीच बहुत दीन और दरिद्र मालूम होगा। और थोड़ी ही देर में उसे पता चल जाएगा कि मैं ही एक कमजोर हूँ, बाकी सब शक्तिशाली हैं। और हो सकता है कि मरते वक्त वह फूल कहता जाए कि एक कमजोर था, एक मैं ही था नकली असली फूलों

के बीच। असली बचे, नकली खत्म हुए। और कागज के फूल तो इस पर भरोसा करेंगे; क्योंकि यह प्रत्यक्ष है बात कि जो असली थे, वे बच गए और जो नकली था, वह सब समाप्त हो गया।

जिन्दगी बहुत उलटी है। और भीड़ के कारण बहुत भ्रम पैदा हो जाते हैं। जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त हैं; अकेला मैं हूँ उदास, अवनमित, समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ, मानो लक्ष्यहीन। कभी आपने खयाल किया है? नदियों के पास लक्ष्य है, समुद्र के पास कोई लक्ष्य नहीं है। छोटे से नाले के पास भी लक्ष्य है, उसे कही पहुंचना है। सागर के पास कोई लक्ष्य नहीं है। क्षुद्र सा नाला भी परपजफुल है, प्रयोजन-भरा है। इतना बड़ा सागर परपजलैस है--निष्प्रयोजन। पूछो इस सागर से, कहाँ पहुचना है तुझे? कही पहुचना नहीं है। तब क्षुद्र नाला भी कह सकता है, क्या व्यर्थ पडे हो निष्क्रिय? हमारी तरफ देखो, भागता हूँ, दौड़ता हूँ, व्यवस्था से चलता हूँ। पहुचना है कही, कोई मंजिल है, कोई भविष्य है। सागर का है केवल वर्तमान; नाले का भविष्य भी है।

लाओत्से कहता है, जो गवार है, वे चालाक और आश्वस्त है, गणित मे बडे कुशल हैं, बडा हिसाब रखते है। एक-एक इच, एक-एक पाई की व्यवस्था है और आश्वस्त है कि पहुचकर रहेंगे, बिना इसकी फिक्र किये कि पहुचने की कही कोई जगह है, कोई मंजिल है! उसकी बिना फिक्र किए वे आश्वस्त है कि पहुचकर ही रहेंगे। उनका आश्वासन ही उनके लिए पर्याप्त भरोसा है कि मंजिल होगी ही। हमारे मन मे लक्ष्य है तो लक्ष्य जरूर होगा। क्योकि हमी तो निर्धारक है जगत के, नियंता हमी हैं।

और लाओत्से कहता है, अकेला मै उदास हूँ। क्योकि हममे जो तेजी आती है, वह लक्ष्य मे आती है। ध्यान रखना, ये सारे शब्द व्यंग के हैं। लाओत्से कहता है ऐसा समझे कि हम सबको बुखार चढा हो और एक आदमी गैर-बुखार का हो तो बिलकुल ठडा मालूम पडेगा-- कोल्ड। हम कहेगे कि क्या तुम्हारी जिन्दगी है, जरा गर्मी भी नही है। थोड़ा गरमाओ, थोडी तेजी लाओ, कुछ जीवन का लक्षण दो! थर्मामीटर लगाते हैं तो कोई खबर ही नही देता कि तुममे कुछ गर्मी है।

लाओत्से कहता है, और सब भरे है बडी तेजी से, त्वरा से, ज्वर से; उन्हें कहीं पहुचना है, कुछ पाना है, कुछ होना है। एक मै ही उदास, अवनमित, डिप्रेस्ड हूँ इन सब के मुकाबले, जो ज्वर से भरे दौड़ रहे हैं। कभी सन्निपात में किसी को देखें। जैसी तेजी सन्निपात में आती है, वैसी कभी नही आती। चार आदमी पकड़ें तो भी आदमी को पकडना मुश्किल है। खाट पर सोया हुआ आदमी भी कहता है कि मेरी खाट आकाश मे उड रही है। सन्निपात मे जो गति आ जाती है, जो ज्वर की तेजी आ जाती है, वैसी तेजी में ही हम सब हैं।

एक राजनीतिज्ञ को देखें, उस पर एक आध्यात्मिक ज्वर चढ़ा हुआ है। उस

ज्वर में वह ऐसे काम कर लेता है, जैसा कि सामान्य स्वस्थ आदमी कभी नहीं कर सकता। एक राजनीतिज्ञ को देखें, जब वह किसी देश की रक्षा के लिए लगा हुआ है, किसी देश के निर्माण के लिए या किसी देश के ध्वंस के लिए लगा हुआ है, तब उसकी ज्वर की व्यवस्था देखें। अगर हमारे पास कभी आध्यात्मिक ज्वर नापने का कोई उपाय हो तो राजनीति एक आध्यात्मिक ज्वर सिद्ध होगी। लेकिन देखें राजनीतिज्ञ को, उसके पैरो की गति को, सुबह से शाम तक उसकी व्यस्तता को ! सारे जगत का भार उसके ऊपर है। वह नही है तो सारा जगत नहीं है। वह है तो सब कुछ है ।

यह जो ज्वर है, लाओत्से कहता है, इसे और इन ज्वरग्रस्त लोगो को देखकर यही कहने को रह जाता है कि एक मै ही उदास, ठंडा, निष्क्रिय हूँ। सभी कहीं पहुंच रहे है, एक मै ही सागर की तरह लक्ष्यहीन, अपनी जगह ही पड़ा हूँ।

सप्रयोजन हैं दुनिया के सब लोग, अकेला मै दीखता हूँ हठीला और अभद्र ।

जब सारे ही लोग दौड रहे हो, तब आपका आहिस्ता चलना हठीला दिखाई पडेगा। और जब सारे लोग ही पागल हो रहे हों, तब आपका शान्त और सौम्य बना रहना अभद्र मालूम पडेगा। जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे में उतर रहे हो और आप दूर खड़े देखते रहें, तब लगेगा कि क्या यह आदमी है ! जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान लडते हों, हिन्दुस्तान और चीन लडते हो, या बगला देश और पाकिस्तान लडते हो या विएत-नाम मे युद्ध चलता हो, तब आप दूर खडे चुपचाप देखते हो, किसी पक्ष में न हो, बटे हुए न हो, ज्वर के भीतर न हो, तब सब लोग कहेंगे : क्या हुआ आपको, जीवित है या मर गए ?

कभी आपने खयाल किया, जब युद्ध चलता है तब लोग ज्यादा जीवित हो जाते हैं। जो आदमी सुबह आठ बजे भी बिस्तर से उठने मे मुश्किल पाता था, वह पाँच बजे उठकर रेडिओ खोलकर सुनता है, क्या खबर है ? जान मे जान आ जाती है। खून तेजी से चलने लगता है। सुबह से आदमी अखबार लेकर बैठ जाता है। लोगो के चेहरो पर रौनक देखें, जब युद्ध चलता है, तब लोगो के चेहरो पर रौनक देखें। और जब युद्ध चला जाता है, तब लोग फिर मद हो जाते हैं। फिर धीमे हो जाते हैं। फिर राह देखते है कि कुछ हो जाए; कही कुछ नहीं हो रहा है, अखबार मे कोई खबर नहीं है ।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन अपने जीवन के अत मे गांव का काजी, गांव का न्यायाधीश बना दिया गया। पहले ही दिन जब वह बैठा अदालत में, सुबह से दोप-हर होने लगी, कोई मुकदमा न आया। फिर सांझ भी होने लगी, कोई मुकदमा न आया। क्लर्क उदास बेचैन है, पहरेदार बेचैन है। सिपाही बाहर-भीतर आते हैं, कोई नहीं आया। वकील बेचैन हैं। आखिर क्लर्क ने कहा कि क्या हो गया, आज ही आप बने है न्यायाधीश और कोई आया नही। नसरुद्दीन ने कहा, घबड़ाओ मत,

आई हैव लिटल फेथ इन ह्यूमन नेचर : आदमी की प्रकृति पर मुझे अब भी भरोसा है; कोई न कोई आएगा। घबड़ाओ मत। कोई न कोई अपराध होकर रहेगा। आदमी पर मुझे अब भी भरोसा है।

और जब सांझ होते-होते एक मुकदमा आ गया मारपीट का, तब सारी अदालत में रौनक आ गई। लोग अपनी-अपनी जगह बैठ गये। लोगों ने अपने-अपने रजिस्टर खोल लिए। वकील खड़े हो गये, सिपाही की जान लौट आई। मैजिस्ट्रेट में जान आ गई।

अदालत मर जाती है, जिस दिन मुकदमा नहीं आता। डाक्टर की नब्ज ढीली पड़ जाती है, जिस दिन कोई बीमार नहीं होता। स्वाभाविक है। हमारे जीवन का जो ढंग है, वह ज्वरग्रस्त है। युद्ध होता है तो सबकी रीढ़ तन जाती है।

हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में, मेन काम्फ में लिखा है कि किसी भी राष्ट्र को बड़ा होना हो तो युद्ध के बिना कभी कोई बड़ा नही हो सकता। और जो राष्ट्र बिना युद्ध के बहुत दिन जी जाते हैं, उनकी रीढ़ टूट जाती है। हो सकता है, यही कारण भारत की रीढ़ के टूट जाने का हो। महाभारत के बाद युद्ध वगैरह से हमने कोई सम्बन्ध नही रखा। हिटलर ने लिखा है कि अगर कोई युद्ध न भी हो रहा हो तो भी मुल्क में जान बनाये रखने के लिए युद्ध का अफवाह बनाए रखना चाहिए कि अब युद्ध हो रहा है, कि अब युद्ध हो रहा है। सस्पेन्स में लोगों का खून तेजी से दौड़ता है, आत्मा जोर से धड़कती है, लोग प्राणवान होते हैं।

निश्चित ही ऐसे प्राणवान लोगों के बीच लाओत्से को लगता होगा कि मैं ही हठीला और अभद्र हूँ। जहाँ सभी बीमारी से भरे हैं और ज्वर में भागे जा रहे हैं और सन्निपात में बक रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, वहाँ मेरी आवाज बड़ी धीमी मालूम पड़ती है। निश्चित ही उन सबको लगता है कि तुम हठीले हो, आओ हमारे साथ, दौड़ो हमारे साथ। अभद्र हो तुम, जो सब कर रहे हैं, वह तुम नहीं कर रहे हो।

सभ्य का मतलब ही क्या होता है? असभ्य का मतलब ही क्या होता है? सभ्य शब्द का तो यही मतलब होता है : सभ्य शब्द बनता है सभा से, जो सभा के साथ हो, वह सभ्य है। जो सबके साथ हो, वह सभ्य है। जो सब के साथ नहीं हो, वह असभ्य है। सभ्य का मतलब होता है, सभा में बैठने की योग्यता जिसमें हो। भीड़ के साथ खड़े होने की जिसमें योग्यता हो, वह सभ्य है। भद्र कौन है? जो हमारे मापदंड के अनुकूल है। अभद्र वही है, जो हमारे मापदंड के अनुकूल नहीं है।

लाओत्से कहता है, एक मैं ही दीखता हूँ हठीला और अभद्र। लोगों को मानता नहीं हूँ। लोग नाराज हैं, भीड़ के साथ बढ़ता नहीं हूँ। भीड़ समझती है, मैं विक्षिप्त हूँ।

और अकेला मैं ही हूँ भिन्न अन्यों से, क्योंकि देता हूँ मूल्य उस पोषण को, जो मिलता है सीधा ही माता धरती से। ये चारों तरफ जो लोग हैं, इनका सारा

पोषण, इनके जीवन की सारी ऊर्जा और गर्मी, इनका प्राण सहज स्वभाव और प्रकृति से उपलब्ध नहीं होता है। इनका प्राण भविष्य की ही किन्हीं आशाओं और आकांक्षाओं से उपलब्ध होता है। किन्हीं सिद्धान्तों से, शब्दों से, लक्ष्य से उपलब्ध होता है। सहज प्रकृति और स्वभाव से नहीं होता है। मैं तो उतना ही जीता हूँ, सहज, जितनी प्रकृति जिलाती है। उतना जीता हूँ। जितनी प्रकृति दौड़ाती है, उतनी ही मेरी गति है। प्रकृति रोकती है तो मैं रुक जाता हूँ। प्रकृति चलाती है तो चलता हूँ। अपनी मेरी कोई दौड़ नही है। अपनी मेरी कोई गति नहीं है। मस्तिष्क और बुद्धि से मेरा कोई परिचालन नहीं है।

इस अंतिम वाक्य को हम ठीक से समझ लें।

एक तो ढंग है सहज जीवन का। लाओत्से ने कहा है, मैं एक सूखे पत्ते की भांति हूँ। हवा पूरब ले जाती है तो पूरब चला जाता हूँ; हवा पश्चिम ले जाती है तो पश्चिम चला जाता हूँ। हवा जमीन पर गिरा देती है तो मैं विश्राम कर लेता हूं। हवा आकाश में उठा देती है तो मैं बादलों के साथ होड़ कर लेता हूँ। लेकिन मेरी अपनी कोई दिशा नही है। कहीं जाने की मेरी कोई योजना नहीं है। क्योंकि योजना जैसे ही बनी, वैसे ही संघर्ष शुरू हो जाता है। मैं पूरब जाना चाहता हूँ और हवाएं पश्चिम जा रही हैं। और हवाएं मेरी मानने वाली नहीं हैं। मैं कौन हूँ? हवाओं को मुझ से क्या प्रयोजन है?

लाओत्से कहता है, हवाएँ जिस तरफ बहती हैं, वही मेरी दिशा है। और अगर हवाएँ बीच में अपनी दिशा बदल लेती है तो मेरी दिशा भी बदल जाती है। कहता यह है कि मेरी अपनी कोई दिशा नही है, जो मैंने बुद्धि से तय की हो। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। प्रकृति का ही अगर कोई लक्ष्य मुझमे हो तो प्रकृति जाने। अगर प्रकृति ही मेरे द्वारा कुछ करवाना चाहती हो तो करवा ले। अगर प्रकृति को मुझसे कुछ न करवाना हो, मेरी कोई योग्यता-पात्रता न हो तो मैं अकारण ही अपनी पात्रता सिद्ध करने की व्यर्थता मे न पड़ूगा।

लाओत्से के लिए प्रकृति का वही अर्थ है, जो परमात्मा का है। लेकिन लाओत्से परमात्मा शब्द का उपयोग करना पसन्द नहीं करता। कारण है। लाओत्से प्रकृति शब्द उपयोग करना पसन्द करता है, बजाय परमात्मा के। क्योंकि परमात्मा को हमने एक सिद्धान्त बना लिया है। और परमात्मा को हमने आगे रख लिया है। और जब भी हम परमात्मा की बात करते है, तब परमात्मा से हमारा कम प्रयोजन होता है। हमारे परमात्मा से ज्यादा प्रयोजन होता है। परमात्मा पर दावेदारी भी है। और परमात्मा में हमने वे सब चीजें डाल दी है, जो हम चाहते हैं कि हों। हमने परमात्मा से नहीं पूछा है कि तेरी क्या मर्जी है; हमने अपनी मर्जी उसपर रख दी है और कहा है कि यह मर्जी अगर तुम्हारी है, तो तू हमारा परमात्मा है।

बाइबिल कहती है कि ईश्वर ने आदमी को अपनी अनुकृति में बनाया है: गॉड

क्रियेटेड मैन इन हिज ओन इमेज, ईश्वर ने खुद अपनी ही शकल में आदमी को बनाया है। लेकिन नीत्से कहता है कि इस वाक्य से ज्यादा गलत दूसरा वाक्य खोजना कठिन है। क्योंकि सच्चाई उलटी है। सचाई यह है कि आदमियों ने ईश्वर को अपनी शकल में बनाया है। इसलिए तो इतने ईश्वर है, क्योंकि इतने आदमी है। काला आदमी ईश्वर को गोरी शकल का नहीं बना सकता। गोरा आदमी ईश्वर को काली शकल का नहीं बना सकता। और अफ्रीकी का ईश्वर अफ्रीकी की ही अनुकृति होगा। और हिन्दू का ईश्वर हिन्दू की अनुकृति होता है। हमारे ईश्वर हमारे गढ़े हुए होते है। ईश्वर ने हमे गढा या नहीं, वह दूसरी बात है। लेकिन हम ईश्वर को रोज गढ़ते है।

और इसलिए हर दो-चार सौ साल में ईश्वर की शकल बदल जाती है। क्योंकि दो-चार सौ साल मे गढने वाले बदल जाते है। उनके ढग बदल जाते हैं, सोचने की व्यवस्था बदल जाती है। तो फिर नये ईश्वर बनाने पड़ते है। आदमी के पास ईश्वर निर्मित करने के बड़े कारखाने है। वहाँ वह उसे निर्मित करता है। फैशन बदलते है तो ईश्वर को बदलना पडता है। फैशन के हिसाब से ईश्वर के भी फैशन होते है। और पुराने ईश्वर कभी-कभी आउट ऑफ डेट पड जाते है। और उनको फेंक देना पडता है और नये ईश्वर गढ लेने पडते हैं। हमेशा हमसे उनका तालमेल रहना चाहिए।

अगर आप पाँच हजार साल का इतिहास उठाकर देखें तो पता चलेगा कि कितने ईश्वर डिसकार्डेड हो चुके है; कितने ईश्वर को हम फेंक चुके हैं उठाकर बाहर। आज हमको सवाल भी नही आएगा कि वे हमारे फेंके हुए ईश्वर हैं। हमने दूसरे गढ लिए। वक्त बदलता है, हमें बदलाहट करनी पडती है। अगर हम पाच हजार साल पुराने ईश्वर को देखे तो हमको दिक्कत मालूम पडेगी कि इसको ईश्वर माने। हमारी धारणाएँ बदल गई।

इसलिए बडी अडचन आती है। हम पुराने ग्रन्थो की पूजा करते जाते है; लेकिन उनको खोल कर कभी देखते नहीं कि उनमें ईश्वर की शकल क्या है? अगर हम ईश्वर की पुरानी यहूदी शकल को देखें तो ईश्वर बडा खूखार मालूम पडता है, तानाशाह मालूम पडता है। वह कहता है, जो मेरा नाम न लेगा उसको नरको में सडाऊंगा, गलाऊंगा, काटूंगा, आग में डालूंगा; जो मेरे खिलाफ है, उसके बचने का कोई उपाय नहीं है; जो मेरे पक्ष में है, उसी को मैं बचाऊँगा।

अगर आज हमारा ईश्वर ऐसी भाषा बोले तो हमें लगेगा कि यह तो बहुत तानाशाही हो गई। हम कहेंगे, लोकतन्त्र की भाषा बोलो, डेमोक्रेटिक बनो। यह तो डिक्टेटोरियल मामला हो गया। ऐसे ईश्वर को आज हम बर्दाश्त न करेंगे। क्योंकि ऐसा ईश्वर तो हमें हिटलर, मुसोलिनी और तोजो की शकल का मालूम पड़ेगा। और यह भी कोई ईश्वर हुआ, जो इस तरह की बाते बोलता है। वह

डिस्कार्डेड हो गया। यहूदी भी किताब की पूजा कर लेते हैं, लेकिन इस ईश्वर की चर्चा नहीं करते। बिलकुल इसकी चर्चा नहीं करते।

जीसस ने पूरी धारणा बदल दी। जीसस ने कहा कि ईश्वर है प्रेम : गॉड इज लव। अब ईश्वर जो जीसस का है, उसका, जीसस के पिता का जो ईश्वर था, उससे कोई तालमेल नहीं है।

अगर पीछे हम लौटे, अगर हम वेद के वचन पढ़ें, अगर हम प्रार्थनाएँ पढ़ें, तो हमें बड़ी हैरानी होगी कि कैसी प्रार्थनाएं हे ? एक किसान प्रार्थना कर रहा है कि हे ईश्वर, मेरे खेत में वर्षा कर देना, लेकिन मेरे दुश्मन के खेत में वर्षा मत करना। आज हमें लगेगा, यह भी क्या प्रार्थना है ? कभी थी। और जब थी, तब किसी को शक नहीं आया था। आज शक आएगा। क्योकि बुद्ध और महावीर ने धारणा बदल दी। उन्होंने कहा कि प्रार्थना में अगर वैमनस्य आ गया तो प्रार्थना तो खराब हो गई।

बुद्ध ने कहा है कि ध्यान तुम करना, और ध्यान के बाद प्रार्थना करना कि मेरे ध्यान से जो शाति मुझे मिली, वह सब में बिखर जाए। मुझे चाहे न मिले, लेकिन सब को मिल जाए। अब बुद्ध जो बीच में आ गए तो यह वेद की जो प्रार्थना है, वह मुश्किल में पड गई। इसको डिस्कार्ड करना पडा।

वेद की हम पूजा करते चले जाएगें। लेकिन आज वेद माननेवाले को भी बड़ी तकलीफ होगी। फिर एक ही रास्ता है कि वे इनके अर्थ बदले। वे बतायें कि इनमें यह अर्थ ही नही है। श्री अरविन्द ने पूरी चेष्टा यही की है कि इसमें यह अर्थ ही नहीं है। लेकिन वह चेष्टा ईमानदार नहीं है। क्योंकि एकाध सूत्र ऐसा होता तो हम समझते। वेद में नब्बे प्रतिशत सूत्र ऐसे हैं। और अरविन्द जैसी प्रतिभा का आदमी भी कितनी ही तोड-मरोड करे, इनको झुठलाया नहीं जा सकता। लेकिन अरविन्द को तकलीफ भी है। तकलीफ यह है कि वे वेद को अप-टू-डेट कर रहे हे। जो वेद पाच हजार साल पीछे पड गया, उनका श्रम यह है कि वह उसको आज के योग्य बना दें; वे वेदों को नई शकल दे दें, ताकि वे हमारे लिए ग्राह्य हो जाएं।

हमको अपने ईश्वर की शकल में रोज छेनी का उपयोग करना पड़ता है। रोज उसको बदलना पडता है। ईश्वर हमारा बनाया हुआ है।

इसलिए लाओत्से ईश्वर शब्द का प्रयोग नही करता है। लाओत्से कहता है प्रकृति। प्रकृति शब्द बहुत कीमती है। प्रकृति का मतलब होता है : बनने के भी पूर्व जो था। प्रकृति का अर्थ होता है : दैट व्हिच वाज बिफोर क्रिएशन। प्र और कृति, यानी निर्माण के पहले जो था, सब होने के पहले जो था, सब बना, उसके पहले जो था। सबके होने के मूल में जो आधार है, वह प्रकृति है। रूप जब मिट जाते हैं, तब जिसमें गिरते हैं और रूप जब उठते हें, तब जिसमें उठते हैं, वह है

प्रकृति। प्रकृति का अर्थ है वह तत्व जो रूप लेने के पहले था।

लाओत्से कहता है, वही मां है, वही मूल स्रोत है; मैं उसी से जीता हूं। मेरा अपना कोई लक्ष्य नहीं है। उस प्रकृति का कोई लक्ष्य मुझ से हो तो पूरा हो जाए। न हो तो कोई एतराज नहीं है। अगर वह प्रकृति मुझे चाहती है कि मैं बेकार ही रहूं और खो जाऊं तो यही मर्जी पूर्ण हो। अगर कोई काम उसे लेना हो, काम ले ले। लेकिन मेरी अपनी तरफ से निर्धारित कोई नियति, कोई डेस्टिनी नहीं है। यही समझने जैसा है।

लाओत्से कहता है कि छोड़ता हूं मैं अपने को उसी पर, जिससे मैं पैदा हुआ और जिसमें मैं कल खो जाऊंगा। बीच में मैं बाधा क्यों दूं? मैं क्यों कहूं कि मुझे मोक्ष चाहिए? जब मुझे अपने होने का पता नहीं है, जब मैं अपने को पैदा नहीं कर सकता, तब मैं अपने को मोक्ष कैसे पहुँचा सकता हूं?

लाओत्से कहेगा कि जितने लोग अपनी चेष्टा से कुछ पाने में लगे हैं, वे ऐसे हैं, जैसे कोई आदमी अपने जूते के बन्द को पकड़ कर खुद को उठाने की कोशिश में लगा हो। कोशिश कितनी भी करे, परिणाम कुछ भी न होगा। थोड़ा-बहुत उछल-कूद भी कर सकता है आदमी। उछलेगा, कूदेगा, तो लगेगा कि उठता भी है बीच-बीच में। फिर जमीन पर पड़ जाएगा। मुझसे जो विराट और बड़ा मुझे घेरे हुए है, अगर उसका ही कोई लक्ष्य है तो ठीक है। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। मै कौन हूं जो बीच में आऊं? न मुझसे मेरे जन्म के समय प्रकृति ने पूछा कि बनाते हैं तुम्हें; क्या इरादा है? न मेरी मौत के वक्त कोई मुझसे पूछेगा कि मिटाते हैं तुम्हें, क्या इरादा है? न प्रकृति मुझसे पूछती है कि तुम्हारे भीतर रखते हैं यह हृदय, किसलिए धड़के तुम तय करना। नहीं, प्रकृति यह करती नहीं। प्रकृति बना देती है, प्रकृति मिटा देती है।

बीच में जो हम विचार करना शुरू करते है, उससे हम अपने लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं। लाओत्से कहता है, अपने लक्ष्य निर्धारित करके हम उन नालों की तरह हो जाते हैं, जो चलते बहुत हैं, लेकिन पहुंचते उसी सागर में है जो कहीं नही जाता। नाले चलते बहुत है। और चलते वक्त नाला सागर से कह भी सकता है: क्या पड़े हो, चलो। हम छोटे-छोटे इतना चल रहे है, तुम इतने बड़े हो, चलो। लेकिन ये नाले चल-चलकर पहुंचते कहां हैं, गिरते कहां हैं, खोते कहां है? वे उस सागर में खो जाते है, जिससे इन्होंने कहा था कि क्या बेकार पड़े हो।

लाओत्से हम बुद्धिमानों को कहेगा कि तुम व्यर्थ ही दौड़ रहे हो; क्योंकि तुम वहीं पहुंच जाओगे, जहां मै पड़ा ही हुआ हूं। इसका मतलब समझें। तुम वहीं पहुंचोगे, जहा मै पहुंचा ही हूं। तुम चल-चलकर पहुंचोगे; बहुत चलोगे, बहुत परेशानी, बहुत चिन्ता लोगे, रातें खराब करोगे, निद्रा खो जाएगी, हजार बीमारियां पाल लोगे। सोचें नाले की तकलीफ, सागर तक कितनी लम्बी यात्रा है!

कितने समझौते करने पड़ते हैं, किस नदी में मिलना पड़ता है, किस तरह खुद को बचाना पड़ता है ! और बचाकर भी होता क्या है ?

मजा यह है कि सागर तक अंतिम जो घटना घटनेवाली है, वहीं घटती है — बचाए नाला तो, न बचाए तो। नाला बचाता है कि कहीं रेगिस्तान में न खो जाऊं। रेगिस्तान में भी कोई नाला खो जाएगा तो जाएगा कहाँ? सूर्य की किरणों से चढ़ेगा और सागर में पहुँच जाएगा। फिर सोचता है, नदी में चला जाऊं, बड़ी नदी का सहारा ले लूं। कहीं छोटी नदी के सहारे न पहुँच पाऊं तो बड़ी नदी का सहारा ले लूं, बड़ा सहारा ले लूं। छोटी नदियां भी वहीं पहुँच जाती हैं और बड़ी नदियां भी वहीं पहुँच जाती हैं। और मजा यह है कि सबकी अंतिम परिणति उस सागर में हो जाती है, जो कहीं जाता नहीं है।

लाओत्से कहता है, अकेला मैं हूँ उदास, अवनमित, समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ—मानो लक्ष्यहीन। ऐसा दिखता है कि लहरें यहाँ आ रही हैं, वहाँ जा रही हैं – लक्ष्यहीन। कभी आपने खयाल किया है कि सागर में जब आपको लहरें आती-जाती मालूम पड़ती हैं, तब आप एक भ्रम में होते हैं। सागर के किनारे खड़े होकर आप देखें तो लगता है, दूर बहुत फेनोज्वल, फेन के शिखर से लदी भागती चली आ रही है लहर। आती है, चली आती है, तट से टकराती है, बिखर जाती है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि लहरें अपनी जगह नहीं छोड़ती हैं। सागर में जो लहर दिखती है आपको आती हुई, वह सिर्फ आंखों का भ्रम है, इल्यूजन है। एक लहर उठती है, नीचे गड्ढा हो जाता है, एक लहर गिरती है, पास का पानी ऊपर उठ जाता है। वह जो पास का पानी ऊपर उठ जाता और पहला पानी नीचे गिर जाता है, तो आपको लगता है कि पहली लहर आगे आ गई है। कोई लहर आगे नहीं आती है।

इसीलिए तो स्टेज पर नाटक में आसानी से लहरों का भ्रम पैदा किया जा सकता है। कोई अड़चन नहीं है। आप जो बिजली के बल्बों को देखते हैं शादी-विवाह में मण्डप पर लगे हुए, लगते हैं भागे चले जा रहे हैं। वहाँ कोई भाग नहीं रहा है। बल्ब अपनी जगह जलता है और बुझ जाता है। एक बल्ब बुझता है, दूसरा जल जाता है; वहम पैदा होता है कि बिजली यात्रा कर गई।

सागर की लहरों के लिये भी वैसा ही वहम है। एक लहर उठती है, नीचे गड्ढा हो जाता है। वह गिरती है, पास और पानी ऊपर उठ आता है। आपको लगता है कि लहर यात्रा कर गई। कोई लहर यात्रा नहीं करती; सब अपनी जगह उठती और गिरती रहती है। सागर में यात्रा है ही नहीं। सागर थिर है। इसलिए सागर को हमने कहा है धीर। उसमें अधैर्य है ही नहीं। अधैर्य का मतलब क्या होता है?

अधैर्य का मतलब होता है कि कहीं पहुंचना है। जब तक नहीं पहुंचे हैं, तब तक धैर्य कैसा होगा ? सिर्फ धैर्य से तो वही रह सकता है, जिसे कहीं पहुंचना नहीं है।

पहुंचनेवाले को तो अधैर्य में जाना ही पड़ेगा। और जितनी जल्दी होगी पहुंचने की, उतना अधैर्य होगा।

पश्चिम मे देखते हैं, अधैर्य ज्यादा है—पूर्व की बजाय। और कारण? कारण सिर्फ एक छोटा-सा है। या बड़ा भी कह सकते हैं। कारण सिर्फ इतना है कि पश्चिम में ईसाइयत, यहूदी और इस्लाम, तीनों धर्मों ने एक ही जन्म को स्वीकार किया है। एक ही जिंदगी है, समय बहुत कम है, पहुंचना जल्दी है। भारत में, पूरब में, अधैर्य नही है। उसका कारण? उस कारण यह नहीं है कि आप बहुत धीर हैं। आपके पास टाइम-एक्सटेन्सन, समय का विस्तार ज्यादा है, जन्मों-जन्मों का आप सोचते हैं, इसमें नही तो अगले में पहुंच जाएंगे, अगले में नही तो और अगले में पहुच जाएगे। ऐसी जल्दी क्या है? चूंकि हमने धारणा बनाई है पुनर्जन्मो की, अनत जन्मो की श्रृंखला की, इसलिए हमारे पास समय बहुत है। इसलिए हमने घड़ी की चिंता नहीं की। समय इतना ज्यादा है कि नाप-नापके भी क्या करना है? सागर कोई नापता है? सागर को क्या नापिएगा? हमारे पास इतना समय है कि क्या नापना?

इसलिए हम धीरज मे हैं। दौड़ भी रहे हैं, तो बहुत आहिस्ते, सुस्ताते हुए। और कोई जल्दी नहीं है। पश्चिम में बहुत जल्दी पैदा हो गई है; क्योंकि ईसाइयत ने एक ही जन्म को स्वीकार किया। यह मौत जो होनेवाली है, यह आखिरी है। इसके बाद फिर समय नही है। स्वभावतः समय कम पड़ गया, घबड़ाहट बढ़ गई। और पहुचना है। और चूक गए तो सदा के लिए चूक गए। हमारे मुल्क में चूकने में कोई डर नहीं है। चूकने का मतलब सदा के लिए चूकना नहीं होता है। सिर्फ इस बार चूक गए, अगली बार देखेंगे। और परमात्मा अनंत धैर्यशाली है हमारा। वह प्रतीक्षा करेगा, कोई ऐसी जल्दी कहीं भी नहीं है। इसलिए टाईम कान्स-सनेस जो है, जो काल-चेतना है, वह पूर्व में पैदा न हो सकी। टाइम-कान्ससनेस पश्चिम में पैदा हुई। और टाइम-कान्ससनेस पैदा करने में जीसस का हाथ है। क्योकि एक ही जिंदगी है तो घबडाहट होती है।

सागर को हम कहते है धीर। उसे कहीं पहुंचना ही नही है। नदी तो अधीर होगी ही। इसलिए शोरगुल करेगी, भागेगी, तड़पेगी। उसमें बेचैनी दिखाई भी पडेगी। सागर बेचैन नहीं है।

लाओत्से कहता है, इन सब भागते हुए लोगों के बीच जो गवार है, वे विज्ञ और तेजोमय दीखते है। मे ही मन्द और भ्रांत हूँ। जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त हे; मे हूं उदास, अवनमित, समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ—मानो लक्ष्यहीन। सप्रयोजन हैं दुनिया में सब लोग, अकेला मे दीखता हू हठीला और अभद्र। और अकेला मैं ही हूं भिन्न अन्यों से; क्योंकि देता हूं मूल्य उस पोषण को, जो मिलता है सीधा माता प्रकृति से। वह जो गहनतम स्रोत है जीवन का, उसको

ही जीता हूँ। और इसलिए भिन्न हूँ। इसको हम एक तरह से और देख लें।

जो व्यक्ति फूल को लेकर जीएगा, भविष्य उसके लिए मूल्यवान है। आगे, कल मूल्यवान है। जो व्यक्ति आधार को,स्रोत को लेकर जीएगा,उसके लिए भविष्य का कोई मूल्य नहीं है। उसके लिए जड़ें मूल्यवान हैं, स्रोत मूल्यवान है। हम ऐसा समझें कि हम ऐसे वृक्ष हैं जो इस आशा में जीते हैं कि फूल लगें। इस आशा में हम जड़ों की सारी चिन्ता ही छोड़ देते हैं। हम यह भूल ही जाते हैं कि हम सिर्फ जड़ों का फैलाव हैं। हम यह भूल जाते हैं कि हम जड़ें ही हैं, जो पृथ्वी के बाहर आ गई हैं। हम यह भूल ही जाते हैं कि हम जड़े ही हैं, जिन्होंने आकाश को छूने की आकांक्षा की है। हम यह भूल ही जाते हैं कि अगर जड़ों के भीतर ही छिपा है कोई फूल तो निकल आएगा; अगर नहीं छिपा है तो निकालने का कोई उपाय नहीं है। हम ऐसे वृक्ष हैं, जो जड़ों को भूल गए हैं। और हम सोचते हैं कि फूल कैसे हो जाए।

और अगर कोई व्यक्ति फूल की चिन्ता में पड़ जाए कि फूल कैसे हो जाए, तो एक बात तो पक्की है कि फूल उस वृक्ष में कभी नहीं होंगे। चिन्ता ही उस सारे रस को सोख जाएगी, जिससे फूल बनते हैं।

चीनी कहानी है, लाओत्से के वक्त की है। एक सेन्टीपीड, शतपदी जानवर, सौ पैरवाला जानवर जंगल से गुजर रहा है। एक खरगोश बड़ी चिन्ता में पड़ गया है। सौ पैर हैं, कौन सा पहले रखता होगा, कौन सा बाद में? कैसे हिसाब रखता होगा कि कौन उठ गया, कौन सा उठाना है, कौन सा आधार है बीच में, कौन सा जमीन को छू रहा है? सौ पैर? खरगोश पास गया और उसने कहा कि चाचा, बड़ी चिन्ता होती है आपको देखकर। कैसे रखते हैं हिसाब, क्या है गणित? पहले कौन सा पैर उठाते हैं? फिर कौन सा? फिर कौन सा? फिर कौन सा? सौ का हिसाब, सौ की संख्या याद रखनी पड़ती होगी। शतपदी ने कहा, अजीब सवाल पूछा है। मैंने कभी खयाल नहीं किया। चलता तो रहा हूँ, मैंने कभी खयाल नहीं किया। अब मैं खयाल करके तुझे बताऊंगा।

शतपदी थोड़ी देर खड़ा रहा। उसके पैर कंपे और वह वहीं गिर गया। खरगोश ने पूछा, क्या हुआ? शतपदी ने कहा, नासमझ, अब यह सवाल किसी और शतपदी से मत पूछना। हम चलना जानते थे, यह हमने कभी सोचा न था कि कौन सा पैर पहले उठे, कौन सा बाद में। सौ का मामला है, सब गड़बड़ हो गया। अब कोई पैर ही नहीं उठता, या कई पैर साथ उठ गए और आपस में उलझ गए। जान पर मुसीबत आ गई है। तूने जो यह सवाल उठाया, यह बहुत कठिन है। और भगवान करे कि मैं जल्दी ही तेरे सवाल को भूल जाऊं। अन्यथा चलना मुश्किल हो जाएगा। चिन्ता आ जाएगी चलने की जगह।

कोई वृक्ष अगर सोचने लगे कि फूल को कैसे बनाऊं, कैसे कली बनाऊं, कितनी पंखुड़ियां रखूं, कैसा रंग हो, कैसी गंध भरूं तो इस वृक्ष में फिर फूल नहीं लगेंगे।

वृक्ष को फूल की क्या चिन्ता होती है ? फूल तो छिपे है जड़ों में, जड़ें संभाल लेंगी। वृक्ष को बढ़ते जाना है, जड़ों पर छोड़ देना है सब भार, कर देना है समर्पित स्रोत पर। स्रोत में ही सब छिपा है, भविष्य भी छिपा है, कल भी छिपा है। जो होगा, वह भी छिपा है।

लाओत्से कहता है, जड़ों पर सब छोड़ दिया है मैंने। और चारों तरफ जो लोग हैं, वे सब अपने-अपने भार उठाये चल रहे हैं। वे कहते हैं, हमारी मंजिल है, हमारा लक्ष्य है, हमें कुछ होना है, हमें कुछ करके दिखाना है। संसार में आये हैं, तो बिना किये नहीं जाएंगे। मां-बाप समझाते हैं बच्चों को कि ससार में आये हो, कुछ करके दिखाओ! कितने लोग ससार में आये, कितने करके दिखा गए, क्या फल हुआ? और जिन्होने नही करके दिखाया, कौन सी असुविधा हो गई? करके भी क्या दिखाइएगा? लेकिन चिन्ता पैदा हो जाएगी। चिन्ता सारे के सारे मस्तिष्क को ग्रसित कर लेगी। फिर एक-एक कदम हिलाना मुश्किल हो जाएगा। शतपदी की हालत हो जाएगी।

आज आदमी करीब-करीब चीनी कहानी की शतपदी की हालत में है। उसे कुछ भी नही सूझता कि क्या करे, क्या न करे? कैसे करे? सब अस्तव्यस्त हो गया है। हो ही जाएगा। क्योंकि जड़ों से हमने सब छीन लिया है। और उनमें ही सब छिपा है। और सब मस्तिष्क में रख लिया है।

और लाओत्से के अनुयायी कहते हैं कि खोपडी से सोचने से बचना! लाओत्से से अगर आप जाकर पूछते कि तुम्हारा मस्तिष्क कहां है तो वह अपने पेट पर हाथ रखता; वह कहता, यहाँ पेट में है। बेली इज माई माइन्ड। वह कहता कि कहाँ खोपड़ी में, इतनी दूर स्रोत से कहां जाना? बहुत दूर निकल गए है। क्योंकि मा से बच्चा जुडा होता है नाभि से। वह पहले अस्तित्व की शुरुआत है। नाभि स्रोत है। और नाभि के निकट अस्तित्व है। खोपड़ी तो बहुत दूर निकल गई, शाखाओ में चली गई, जडो से बहुत दूर चली गई। आदमी की जड़, आपको पता है, नाभि है। वही से, मा से जड जुडी होती है। उसकी मां की जड नाभि से जुड़ी थी।

इस सारे ससार मे मनुष्यों की जड़ें खोजें तो नाभि मे वे फैली हुई मिलेंगी। यों तो प्रत्यक्ष, ऊपर से भी नाभि से जुडी होती है, लाओत्से कहता है, अप्रत्यक्ष भी जड़ें नाभि से ही फैली होती हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, खोपड़ी की फिक्र छोडो, नाभि की फिक्र करो। नाभि मजबूत हों, जड़ें गहरी हों प्रकृति में, तो तुम कही पहुंचे या न पहुंचे, इससे फर्क नही पड़ता। पहुचे तो, न पहुचे तो, हर हालत में आनन्द है। और अगर तुम मस्तिष्क से जीए, पहुँचे तो न पहुँचे तो, हर हालत मे दुख है। इसलिए वह कहता है, एक अकेला मैं भिन्न हूँ अन्यों से; क्योंकि देता हूँ मूल्य उस पोषण को, जो मिलता है सीधा माता प्रकृति से।

आज इतना ही।

क्षुद्र आचरण नीति है, परम आचरण धर्म

छियालीसवाँ प्रवचन
अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक १९ जुलाई १९७२

अध्याय २१

ताओ का प्राकट्य

परम आचार के जो सूत्र हैं,
वे केवल ताओ से ही उद्भूत होते हैं।
और जिस तत्व को हम कहते हैं ताओ
  वह है पकड़ के बाहर और दुर्ग्राह्य।
दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर,
  तथापि उसमें ही सब रूप छिपे हैं।
दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर,
तथापि उसमें ही समस्त विषय निहित हैं।
  अंधेरा और धुंधला,
  फिर भी छिपी है जीवन-ऊर्जा उसी में।
जीवन-ऊर्जा है बहुत सत्य,
  इसके प्रमाण भी उसमें ही प्रच्छन्न है।
प्राचीन काल से आज तक
  इसकी नाम-रूपात्मक अभिव्यक्तियों का अन्त नहीं आया,
और हम उसमें देख सकते है सभी वस्तुओं के जनक को।
  लेकिन सभी वस्तुओं के जनक के आकार को मैं कैसे जानता हूँ ?
इन्हीं के द्वारा,
  इन्ही अभिव्यक्तियों के द्वारा।

Chapter 21

MANIFESTATIONS OF TAO

The marks of great Character
Follow alone from the Tao.
The thing that is called Tao
Is elusive,, evasive.
Evasive, elusive,
Yet latent in it are forms.
Elusive, evasive,
Yet latent in it are objects.
Dark and dim,
Yet latent in it is the life-force.
The life-force being very true,
Latent in it are evidences.
From the days of old till now
Its Named (manifested forms) have never ceased,
By which we may view the Father of All Things.
How do I know the shape of Father of All Things ?
Through These !

बर्नार्ड शॉ ने कहीं व्यंग में कहा है कि जब तक सारी दुनिया ईमानदार न हो जाए, तब तक मैं अपने बच्चों को कैसे कह सकता हूँ कि ईमानदारी ही परम उपयोगी और लाभपूर्ण है। ऑनेस्टी इज द बेस्ट पालिसी—यह मैं अपने बच्चों को तब तक कैसे कह सकता हूँ, जब तक सारी दुनिया ईमानदार न हो जाए। सारी दुनिया ईमानदार हो तो ही ईमानदारी उपयोगी हो सकती है।

बर्नार्ड शॉ जिस नैतिकता की, जिस आचरण की बात कर रहा है, लाओत्से उसे **क्षुद्र नीति और क्षुद्र आचरण कहेगा**। क्षुद्र आचरण सदा इस बात की फिक्र करता है कि आचरण भी उपयोगी और लाभप्रद होना चाहिए। क्षुद्र आचरण एक सौदे-बाजी है, एक बारगेनिंग है। उसका प्रतिफल क्या मिलेगा, इसपर ही सब कुछ निर्भर है। अगर ईमानदारी और सचाई और नेकी से जीने का परिणाम शुभ होता हो तो मै आचरण कर सकता हूँ उनके अनुकूल। पुण्य अगर प्रतिष्ठा देता हो और सदाचरण से अगर रेस्पिक्टिबिलिटी, आदर मिलता हो तो वह मेरे लिए सार्थक मालूम हो सकता है।

यह क्षुद्र आचरण की व्यवस्था है।

क्षुद्र आचरण मे और अनाचरण में बहुत फर्क नहीं है। इसे हम ठीक से समझ लें। क्षुद्र आचरण और अनाचरण में बहुत फर्क नहीं है। क्षुद्र नैतिकता और अनैतिकता में बहुत अंतर नही है। अगर ईमानदारी मै इसीलिए उपयोगी पाता हूँ कि उससे मुझे लाभ होता है तो किसी भी क्षण मैं बेईमानी को भी उपयोगी पा सकता हूँ। क्योंकि उससे भी लाभ होता है। अगर दृष्टि लाभ पर है तो ईमान-दारी और बेईमानी लक्ष्य नही है, साधन हैं। जब लाभ ईमानदारी से मिलता हो, तब मै ईमानदार हो जाऊँगा। और जब लाभ बेईमानी से मिलता हो, तब मैं बेईमान हो जाऊँगा। अगर लाभ ही लक्ष्य है तो बेईमानी को ईमानदारी और ईमानदारी को बेईमानी बनने में बहुत अड़चन नहीं होगी। **इसलिए हम सब की नैतिकता की कीमत होती है**। अगर मै आपसे पूछूं कि क्या आप चोरी कर सकते है तो इस प्रश्न का कोई अर्थ नहीं है। यह प्रश्न नॉनसेन्स है, अर्थहीन है। मुझे पूछना चाहिए, क्या आप दस रुपए की चोरी कर सकते हैं? शायद आप कहें नही। मुझे पूछना चाहिए, आप दस हजार की चोरी कर सकते हैं? तब शायद आपका 'नहीं' डगमगा जाए। मुझे पूछना चाहिए, आप दस लाख की चोरी कर सकते हैं? शायद आपके भीतर से हां उठने लगे। एक आदमी कहता है कि मै रिश्वत नहीं लेता हूँ। उससे पूछना चाहिए, कितने तक? क्योंकि रिश्वत

लेने-देने का कोई अर्थ नहीं होता। सब की सीमाएं हैं। और सब अपनी सीमाओं पर बिक सकते हैं।

क्योंकि हमारी नैतिकता कोई परम मूल्य नहीं है, अल्टीमेट वैल्यू नहीं है। हमारी नैतिकता भी साधन है कुछ पाने के लिए। जब वह नैतिकता से मिलता है, तब हम नैतिक होते हैं। जब वह अनैतिकता से मिलता है, तब हम अनैतिक होते हैं। क्षुद्र नैतिकता का अर्थ है कि नैतिकता भी साधन है किसी लाभ के लिए। और तब नीति और अनीति में बहुत फर्क नहीं होता है। तब नैतिक और अनैतिक आदमी में जो अंतर होते हैं, वे डिग्रीज के, मात्राओं के होते हैं, गुण के नहीं होते। तब आप किसी भी अनैतिक आदमी को नैतिक बना सकते हैं। और किसी भी नैतिक आदमी को अनैतिक बना सकते हैं। इन दोनों के बीच में कोई गुणात्मक, कोई क्वालिटेटिव भेद नहीं है। इन दोनों के बीच मात्रा के भेद हैं। अगर आप मात्रा की व्यवस्था बदल दें तो उनकी नीति अनीति हो जाएगी, अनीति नीति हो जाएगी।

लाओत्से का यह सूत्र शुरू होता है : द मार्क्स ऑफ दि ग्रेट करैक्टर फॉलो एलोन फ्रॉम ताओ, परम आचार के जो सूत्र है, वे केवल ताओ से ही उद्भूत होते हैं।

क्षुद्र आचार का अर्थ होता है कि आचरण अपने आप में मूल्यवान नहीं है, उससे जो कुछ मिलता है, वह मूल्यवान है। परम आचरण का अर्थ है, आचरण अपने में ही मूल्यवान है। आचरण स्वयं ही लक्ष्य है, एण्ड इन इटसेल्फ, वह किसी चीज का साधन नहीं है।

आपसे अगर हम पूछें कि आप सत्य क्यों बोलते हैं? और अगर आप कहें कि सत्य बोलने से पुण्य होता है, अगर आप कहें कि पुण्य से स्वर्ग मिलता है, अगर आप कहें कि सत्य बोलने से प्रतिष्ठा मिलती है, यश मिलता है, अगर सत्य बोलने का आप कोई कारण बताएँ तो आपका सत्य बोलना क्षुद्र आचरण होगा। और अगर हम कहें कि सत्य बोलना अपने आप में पर्याप्त है, किसी और कारण से नहीं है, कोई और कारण नहीं है जिससे हम सत्य बोलते हैं, सत्य बोलना अपने में ही आनन्द है तो फिर अगर सत्य बोलने के कारण नरक भी जाना पड़े तो भी हम सत्य बोलेंगे। और फिर सत्य बोलना चाहे पाप भी हो जाए तो भी हम सत्य बोलेंगे। और तब चाहे सत्य बोलने के कारण सूली भी मिले तो भी हम सत्य बोलेंगे।

लेकिन तब हमारे क्षुद्र आचरण को बड़ी कठिनाई हो जाएगी। हम सत्य बोलते हैं स्वर्ग जाने के लिए। और इसीलिए कि स्वर्ग संदिग्ध हो गया, सत्य बोलनेवाले जगत में कम हो गए। स्वर्ग अब संदिग्ध है। आज से हजार साल पहले संदिग्ध नहीं था। आज जो दुनिया में इतनी अनीति दिखाई पड़ती है और आज से हजार या दो हजार साल पहले जो नीति दिखाई पड़ती थी, उसका यह कारण

नहीं है कि आज लोग ज्यादा अनैतिक हो गए हैं। उसका यह भी कारण नहीं है कि पहले के लोग ज्यादा नैतिक थे। उसका कुल कारण इतना है कि पहले की नीति जिन आधारों पर खड़ी थी, वे संदिग्ध हो गए हैं। जो लाभ हो सकता था दो हजार साल पहले, निश्चित मालूम पड़ता था, आज वह निश्चित नहीं रहा है। और जब लाभ के लिए ही कोई नैतिक होता है और लाभ ही अनिश्चित हो जाए, तब फिर नैतिक होना पागलपन होगा।

दो हजार साल पहले स्वर्ग उतना ही निश्चित था, जितनी यह पृथ्वी है। शायद इससे भी ज्यादा निश्चित था। पृथ्वी तो थी माया, असत्य, स्वप्न; स्वर्ग था सत्य। नरक था सत्य। पृथ्वी के जीवन से भी ज्यादा वास्तविकताएँ थी उनमें। झूठ बोलने का अर्थ नरक था। उसके दुष्परिणाम थे, भयंकर दुष्परिणाम थे। सत्य बोलने का अर्थ स्वर्ग था। उसके बड़े पुरस्कार थे, बड़े लाभ थे। अप्सराएँ थीं, स्वर्ग के सुख थे, कल्पवृक्ष था। वह सब सुनिश्चित था। उस समय जो होशियार आदमी था, कनिंग जिसको ताओ कहेगा, चालाक, वह सत्य बोलता था। झूठ नहीं बोलता। क्योंकि जब सत्य से स्वर्ग मिलता हो और झूठ से नरक मिलता हो और नरक और स्वर्ग वास्तविकताएँ हों, तब जो चालाक है, वह सत्य ही बोलेगा।

यह बड़ी कठिन बात मालूम पड़ेगी।

आज से दो हजार साल पहले जो आदमी चालाक था, वह सत्य बोलता था, ईमानदार था। आज जो आदमी चालाक है, वह बेईमान है और झूठ बोलता है। पर वे दोनों ही चालाक हैं। आज वह आदमी झूठ बोल रहा है। क्योंकि वह पाता है कि स्वर्ग और नरक तो हो गये माया, इलूजरी, और वह जो हाथ में रुपया है नगद, वह ज्यादा वास्तविक है। यह वही आदमी है। तब इसके हाथ में स्वर्ग के सिक्के वास्तविक थे, अब वे वास्तविक नहीं हैं। उनके लिए इसने नैतिकता को वरण किया था। वे ही खो गए तो नैतिकता भी खो गई। कल का जो नैतिक आदमी था, वही आज अनैतिक है। यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा समझने मे।

सारी की सारी संभावनाएं बदल गई। आदमी अनैतिक नहीं हो गया; जो आदमी अनैतिक था, वह अनैतिक ही है। क्षुद्र नैतिक था वह कल तक। क्षुद्रता की नीति टिक नहीं सकती, वह बह गई। उसका सारा ढांचा गिर गया। जिस आधार पर खड़ी थी, वह बिखर गया। नीचे की जमीन खिसक गई। अब वही क्षुद्र नैतिक जो आदमी था, आज भरपूर अनैतिक है। उसके भीतर कोई फर्क नहीं पड़ा। कल नीति से लाभ मिलता था; आज अनीति से लाभ मिलता है। कल सच बोलने से स्वर्ग मिलता था; आज बिना झूठ बोले स्वर्ग मिलने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। कल ईमानदार होने से प्रतिष्ठा मिलती थी; आज

जो ईमानदार है, वह अप्रतिष्ठित है और जो बेईमान है, वह प्रतिष्ठित है। कल धोखा देना अपमानजनक था, ग्लानि पैदा होती थी। आज जो धोखा देने में जितना कुशल है, उतना ही सम्मानपूर्ण पद पर है। तो अब जो कल ईमानदारी से मिलता था, आज बेईमानी से मिलता हो, तब लाभ जिनकी दृष्टि में है, वे नीति से अनीति पर सरक जाएंगे।

लाओत्से इस नीति को क्षुद्र आचरण कहता है। हम दो शब्द जानते हैं: आचरण और अनाचरण, नीति और अनीति। लाओत्से एक नया शब्द प्रवेश करवाता है। वह कहता है, आचरण तुम जिसे कहते हो, और अनाचरण तुम जिसे कहते हो, उनमें कोई गुणात्मक भेद नहीं है। वह एक-दो नये शब्द निर्मित करता है। वह कहता है कि परम आचरण और क्षुद्र आचरण। अनाचरण की तो लाओत्से बात ही नहीं करता; क्योंकि क्षुद्र आचरण अनाचरण का ही एक रूप है। वह आचरण के दो विभाग करता है: परम आचरण और क्षुद्र आचरण। क्षुद्र आचरण को आचरण कहना नाम मात्र के लिए है। और परम आचरण वहां है, जहां नैतिकता स्वयं ही लक्ष्य है, जहां सत्य अपने में ही आनन्द है, और जहां ईमानदारी स्वयं ही मूल्यवान है। उससे कुछ मिलेगा, नहीं मिलेगा, खो जाएगा, ये बातें इरेलिवेन्ट हैं, असंगत हैं।

मैं सैकड़ों लोगों को जानता हूं। न मालूम कितनी बार कितने लोगों ने मुझे आकर कहा है, हम नीति से जीवन चला रहे हैं, लेकिन फल क्या है? और जो अनीति से चला रहे हैं, वे सब कुछ पा रहे हैं, सब कुछ उनका है। ऐसा व्यक्ति क्षुद्र आचरण वाला व्यक्ति होगा। नहीं तो यह सवाल ही नहीं उठना चाहिए कि हम नैतिक जीवन चला रहे हैं तो हमें मिल क्या रहा है। इस आदमी के मन में पाना तो वही है, जो अनैतिक आचरण से मिल रहा है। लेकिन उसे यह नैतिक आचरण से पाने की कोशिश में पड़ा है। यह सिर्फ समय के बाहर है। इसको पता नहीं है कि वक्त बदल गया। जो पहले नीति से मिलता था, वह अब अनीति से मिल रहा है। इसको जरा वक्त लगेगा, इसकी बुद्धि थोड़ी कमजोर है। यह नैतिक नहीं है, सिर्फ पिछड़ा हुआ है, बैकवर्ड है। सारी दुनिया समझ गई कि अब स्वर्ग ईमानदारी से नहीं मिलता; इसको इसकी खबर नहीं मिली।

इसके सोचने का ढंग, इसकी भाषा, इसके मापदंड वही हैं, जो अनैतिक आदमी के हैं। अनैतिक आदमी ने बड़ा मकान बना लिया, यह भी बड़ा मकान बनाना चाहता है नीति के द्वारा। इसलिए पीड़ित हो रहा है कि मैं झोपड़े में पड़ा हूं और बेईमान बड़े मकान बना रहा है। और मैं गांव में पड़ा हूं और बेईमान राजधानी में निवास कर रहा है। इसको जो पीड़ा हो रही है, वह पीड़ा इसके क्षुद्र आचरण का सबूत है। वह पीड़ा यह कह रही है कि चाहते तो हम भी यही हैं; लेकिन इतना हममें साहस नहीं है कि हम बेईमानी कर सकें, इतना हममें साहस नहीं है कि हम

झूठ बोल सकें तो हम पुरानी नीति से चिपके हुए हैं। लेकिन अनैतिक को जो मिल रहा है, वह हमें भी मिलना चाहिए। तो ऐसा नैतिक आदमी निरंतर भगवान को दोष देता रहता है। वह कहता है कि कैसी है तेरी दुनिया, कोई न्याय दिखाई नहीं पड़ता। इसे भगवान से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसे न्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह क्षुद्र आचरण है।

परम आचरण का अर्थ है कि लाओत्से भूखा भी मर रहा हो और बेईमान सारी दुनिया को भी जीत ले तो भी लाओत्से के मन में यह सवाल न उठेगा, यह तुलना न उठेगी कि तेरे पास सारी दुनिया है और मेरे पास तो कुछ भी नहीं। नहीं, लाओत्से तो फिर भी कहेगा कि तू दया का पात्र है; मेरे पास सब कुछ है और तेरे पास कुछ भी नहीं। लाओत्से के मन में, वे जो अनैतिक रूप से सफल हो रहे हैं, वे दया के पात्र होंगे, तुलना के पात्र नहीं होंगे। ईर्ष्या लाओत्से के मनमें पैदा नहीं होगी।

सिकन्दर भारत आता है, रास्ते में डायोजनीज से मिलता है। वह नंगा पड़ा है। सिकन्दर डायोजनीज से कहता है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ करना चाहता हूँ। डायोजनीज खिलखिलाकर हसता है और वह कहता है : तुम अपने लिए ही कुछ कर लो तो काफी है। और तुम मेरे लिए क्या करोगे, क्योंकि मेरी कोई जरूरत न रही। मेरी कोई जरूरत न रही; तुम मेरे लिए क्या करोगे ?

उस दिन सिकन्दर को लगा पहली दफा कि वह अपने से बड़े सम्राट से मिल रहा है। सिकन्दर सम्राटों से मिलने का आदी था। एक नगा फकीर था डायोजनीज, रेत पर नंगा पड़ा था। पहली दफा सिकन्दर को लगा कि वह एकदम फीका हो गया है किसी आदमी के सामने, जिससे उसने कहा था कि मैं तुम्हारे लिए क्या करू, बोलो। और वह सब कुछ कर सकता था — हमारी भाषा में। डायोजनीज कहता कि एक महल तो महल बन जाता। डायोजनीज जो भी कहता वह हो जाता, सब कुछ सिकन्दर कर सकता था। ऐसी कोई इच्छा डायोजनीज जाहिर नही कर सकता था, जो सिकन्दर पूरी न कर पाता। लेकिन डायोजनीज का यह कहना उसको बड़ी मुश्किल में डाल गया कि तुम मेरे लिए क्या कर सकोगे, अपने लिए ही कर लो तो बहुत है। और फिर मेरी कोई बहुत जरूरत भी नही है; इसलिए कोई करने का सवाल नही है।

सिकन्दर थोडी देर चुपचाप खड़ा रहा। और तब सिकन्दर ने कहा कि अगर मुझे दुबारा जन्म लेने का अवसर मिले तो परमात्मा से कहूंगा कि पहली च्वॉइस, पहला चुनाव मेरा है कि मुझे डायोजनीज बनना। डायोजनीज ने कहा कि और अगर मुझे मौका मिले तो मैं कहूंगा, मुझे कुछ भी बना देना, सिकन्दर मत बनाना।

यह आदमी परम आचरण का आदमी है। सिकन्दर से तुलना का तो सवाल ही नहीं उठता; दया का सवाल है। लाओत्से के इस भेद को ठीक से समझ लें तो यह सूत्र समझना आसान होगा।

क्षुद्र आचरण का अर्थ है किसी प्रयोजन से किया गया आचरण। परम आचरण का अर्थ है निष्प्रयोजन आचरण। यह निष्प्रयोजन आचरण ताओ से उत्पन्न होता है, स्वभाव के अनुभव से उपलब्ध होता है। यह दूसरी बात खयाल में लेनी पड़ेगी।

जो क्षुद्र आचरण है, वह सामाजिक मान्यताओं से उत्पन्न होता है। सिखावन से, शिक्षा से, संस्कार से वह उपलब्ध होता है। आप जो भी आचरण कर रहे हैं, वह आपके संस्कार से उपलब्ध हुआ है। जो अनाचरण भी आप कर रहे हैं, वह भी आपके संस्कार से उपलब्ध हुआ है। सीखा है आपने। और हमारी अड़चन यही है कि हमें दोहरे तरह के मापदण्ड सीखने पड़ते हैं। डबल बाइंड, दोरुखी हमारी पूरी शिक्षा है। बाप बेटे से कह रहा है कि सच बोलना! और बेटा हजार बार जानता है कि बाप झूठ बोलता है। यही बाप, जब थोड़ी देर बाद घर के द्वार पर कोई दस्तक देता है, तब बेटे से कहता है कि जाकर कह दो कि पिता घर पर नहीं है। इस बेटे की समझ के बाहर है कि यह क्या हो रहा है। लेकिन धीरे-धीरे उसकी समझ में आ जाएगा कि जिन्दगी में दोहरे चेहरे जरूरी है। एक चेहरा तो सिर्फ चर्चा के लिए है, विचार के लिए है, आदर्शों के लिए है, डींग हांकने के लिए है। वह आदर्शों का है, सुन्दर है, कल्पना का है, सपने का है, उसे पूरा नहीं करना होता है। और दूसरा चेहरा है, जिसे पूरा करना होता है। वही वास्तविक है। यह जो आदर्श का चेहरा है, यह वास्तविकता को छिपाने का मुखौटा है। क्योंकि वास्तविक कुरूप है उसको सुन्दर से ढांक लेना है और अपने मन मे माने चले जाना है कि मैं सुन्दर हूँ। लेकिन सुन्दर के साथ जीना मुश्किल है। जीने के लिए कुरूप चेहरा चाहिए। इसलिए हर आदमी बहुत तरह के चेहरों का इंतजाम करके रखता है। और चौबीस घंटे हम अपने चेहरे बदलते रहते है। जब जैसी जरूरत होती है, वैसे चेहरे लगा लेते है। यही कुशल और सफल आदमी का लक्षण है।

यह जो दोहरी स्थिति है, आचरण और अनाचरण, दोनों को एक साथ सीख लेने की, इससे प्रत्येक व्यक्ति विभाजित हो जाता है, स्प्लिट हो जाता है, टुकड़ों में बंट जाता है। उसे दोहरे तलो पर जीना पड़ता है। एक साथ दो नावो में सवार होना पडता है। दो दरवाजों से निकलना पड़ता है एक साथ। पूरी जिन्दगी जो तनाव से भर जाती है, उसका कुल कारण यही है कि हम एक साथ दो नावों पर सवार है। तनाव तो होगा ही। और नावें भी ऐसी है कि एक पूरब को जाती है, एक पश्चिम को जाती है।

तब तो बर्नार्ड शॉ ठीक कहता है कि मै अपने बच्चों को तभी कहूँगा कि ईमानदारी उपयोगी है, जब सारी दुनिया ईमानदार हो जाए; उसके पहले नहीं। मेरे खयाल से वह ईमानदार है। बच्चे को यही सिखाना उचित है कि ऑनेस्टी इज दि बेस्ट पॉलिसी। एक ईमानदार बाप यही सिखाएगा। लेकिन बेईमान बाप सिखायेगा कि ऑनेस्टी इज दि बेस्ट पॉलिसी। और अपने आचरण से यह भी सिखायेगा

कि तुम अपने बच्चों को यह सिखा देना, लेकिन व्यवहार कभी मत सिखाना।

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है तो वह अपने बेटे से कहता है कि तुझे आखिरी शिक्षा दे देता हूँ। व्यवसाय अब तू सम्भालेगा मेरा, दो सूत्र याद रखना। एक, वचन का सदा पालन करना। उसके बेटे ने पूछा, और दूसरा? नसरुद्दीन ने कहा, वचन किसी को कभी देना नहीं। इन दो सूत्रों का अगर तूने खयाल रखा तो सफलता तेरी है।

ये दो सूत्र हमारे समस्त आचरण सूत्रों के साथ जुड़े हुए हैं। करना कुछ, कहना कुछ; होना कुछ, दिखलाना कुछ। जो वास्तविक हो, उसे प्रकट मत होने देना, उसे छिपाए रखना अंधेरे में, और जो वास्तविक न हो, उसे प्रकट करना। इस-लिए जब दो आदमी मिलते हैं, तब दो आदमी नही मिलते, कम से कम छह आदमी मिलते है। क्योंकि हर आदमी कम से कम, मिनिमम, तीन चेहरे तो रखता ही है। एक जैसा वह है, जिसका उसे भी अब पता नहीं; क्योंकि इतना लम्बा समय हो गया उसका उपयोग किए कि उसमे पहचान टूट गई। दूसरा, जैसा वह समझता है कि मै हूँ और जैसा कि वह नही है। और तीसरा वह चेहरा, जैसा वह दिखाना चाहता है हमेशा कि मैं हूँ। जब दो आदमी मिलते हैं एक कमरे में तो छह आदमी मिलते हैं। अक्सर चर्चा चेहरो के बीच चलती है, आदमी तो चुप ही खड़े रहते हैं। असली आदमियों का मिलना ही नहीं हो पाता।

यह जो नैतिक व्यवस्था हम सीखते है खंडित व्यक्तित्व की, यह समाज से मिलती है, दूसरों से मिलती है। यह उधार है।

लाओत्से कहता है, जो परम आचरण के सूत्र है, वे केवल ताओ से निष्पन्न होते है। ताओ का अर्थ है लाओत्से का स्वभाव से, समाज से नही; बाहर से नही, भीतर से; दूसरो से नही, स्वय से। बुद्ध भी सच बोलते है। महावीर भी सच बोलते है। हम भी सच बोलते हैं। लेकिन हमारे सच और बुद्ध के सच में भेद है। हमारा सच सीखा हुआ सच है। बुद्ध का सच सीखा हुआ सच नही है। हम जब सच बोलते है, तब भीतर झूठ मौजूद होता है। इसको ठीक से समझ ले।

जब हम सच बोलते है, हमारे भीतर झूठ मौजूद होता है। हम तौल लेते हैं कि क्या बोलें, कौन सा फायदे का होगा, कौन सा हितकर होगा, अभी क्या उचित है? हम सदा चुनकर बोलते है। विकल्प हमारे सामने होता है। बुद्ध जब सच बोलते है, तब विकल्प सामने नही होता। चुन कर भी नहीं बोलते है। झूठ मौजूद नही होता। जो भीतर होता है, वह बाहर निकल आता है। इसलिए हमारा सत्य भी झूठ से मिश्रित होता है। होगा ही। हम सत्य भी इस ढंग से बोलते है कि उससे हम झूठ का ही काम ले ले। और हम सच इस ढग से भी बोलते है कि उससे भी हम हिन्सा का काम ले लें। हम सच इस ढग से बोलते हैं कि हम उससे भी किसी की छाती में छुरा भोक दें।

कई बार तो ऐसा लगता है कि हमारे सच बोलने से बेहतर होता कि हम झूठ ही बोलते। क्योंकि हमारे झूठ में कभी-कभी मलहम भी होता है; हमारे सच में छुरा ही होता है। नजर हमारी सच बोलने की कम होती है, चोट करने की ज्यादा होती है। क्योंकि सच खूब चोट करता है, इसलिए हम सच बोलते है।

बर्नार्ड शॉ ने लिखा है एक पत्र में कि अगर लोगों को चोट पहुंचानी हो तो सच बोलने से ज्यादा कारगर दूसरा कोई उपाय नहीं है। किसी की अगर बिलकुल जड़ें ही काट देनी हो तो सच बोलने से ज्यादा और सुविधापूर्ण कोई शस्त्र नहीं है। हम सच का भी उपयोग झूठ की तरह करते हे। झूठ का मतलब? हम उससे भी हिंसा ही करते है, उससे भी हम दूसरे को नुकसान और अपने को लाभ ही पहुचाते हे। वह हमारे लिए व्यवसाय का हिस्सा है।

बुद्ध सच बोलते है तो कोई चुनाव नहीं है। जो भीतर है, वह बाहर आ जाता है। कोई विकल्प नही है।

परम आचरण के सूत्रों का अर्थ है: **ऐसा हो जाए भीतर का हृदय कि उससे जो निकले, वह सच हो; उससे जो निकले, वह ईमानदारी हो; उससे जो निकले, वह प्रेम हो; उससे जो निकले, वह करुणा हो।** करुणा निकालनी न पडे, प्रेम निकालना न पडे, सत्य को खोजना न पडे। खींचा हुआ सत्य सत्य नहीं रह जाता। और चेष्टा से किया गया प्रेम नाम को ही प्रेम होता है। वह प्रेम नही रह जाता। इसको थोडा प्रयोग करके देखे तो खयाल मे आएगा।

सत्य के सम्बन्ध में मुश्किल है; क्योंकि हमारी आदत सघन हो गई है। प्रेम मे प्रयोग करके देखें; कोशिश करके कभी किसी को प्रेम करके देखें। चेष्टा करें प्रेम करने की। और तब आप पाएंगे कि आपकी चेष्टा आपके सारे प्रेम को झुठला रही है। जितनी आप चेष्टा करेंगे, जितना होगा एफर्ट आप का, उतना ही झूठा हो जाएगा प्रेम। यह भी हो सकता है कि दूसरे को आप धोखा दे दें; लेकिन अपने को धोखा न दे पाएंगे। यह भी हो सकता है कि दूसरा मान ले कि प्रेम किया; लेकिन आप जानेंगे कि अभिनय से ज्यादा नहीं हुआ। हा, निरन्तर चेष्टा से अभिनय में कुशलता आ जाएगी। फिर शायद आप भी भूल जाएं कि जो आप कर रहे हैं, वह अभिनय है, प्रेम नहीं। प्रेम को प्रयास से लाने का कोई उपाय जगत में नहीं है।

कुछ चीजें हे, जो प्रयास से नही आतीं, सहज आती हे। जैसे रात नींद न आती हो तो कोशिश करके ले आएं। तब आपको पता चलेगा कि जितनी आप कोशिश करेंगे, नींद उतनी मुश्किल हो जाएगी। असल में अनिद्रा की बीमारी कम लोगों को होती है; प्रयास की बीमारी ज्यादा लोगों को होती है। वस्तुतः अनिद्रा से कम लोग परेशान हैं; निद्रा को प्रयास से लाने में बहुत से लोग परेशान हैं। नींद का मतलब ही है कि जब कोई प्रयास ही न होगा, तब नींद आएगी। अगर आपने

प्रयास किया तो आ गई होगी नींद भी टूट जाएगी । प्रयास तो नींद को तोड़ेगा ।

लोग तरकीबें बताते हैं कि हजार तक गिनती गिन डालो रात में तो नींद आ जाएगी । हजार तक गिनती जो गिनेगा, नींद आनी तो मुश्किल है; थोड़ी-बहुत आ रही होगी, वह भी टूट जाएगी । क्योंकि हजार तक गिनती रखने के लिए जो तनाव रखना पड़ेगा, वह नींद को तोड़ देगा । नींद प्रयास से नहीं आ सकती । जब आप सब प्रयास छोड़ देते हैं, तब नींद आती है । हाँ, कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि हजार की गिनती करते-करते आप इतने ऊब जाएँ, इतने परेशान हो जाएँ कि फिर प्रयास छोड़ कर पड़ रहें कि आये न आये और नींद आ जाए । वह अलग बात है । लेकिन वह हजार की गिनती से नहीं आ गई । कान से आ सकती है । थक गये हों, प्रयास छूट गया हो तो नींद आ सकती है । नींद स्वाभाविक है; आप जब थक गए हैं, अपने-आप आ जाती हैं ।

ठीक नींद जैसे बहुत से तत्व हैं जीवन में । और लाओत्से मानता है कि जीवन का जो परम आचरण है, वह नींद जैसा है; प्रयास जैसा नहीं है । वह स्वभाव से निष्पन्न होता है । तो आदमी क्या करे ?

हमारी चेष्टा यह होती है कि झूठ न बोलें, कोशिश से झूठ को रोक लें, कोशिश से सच बोलें । बेईमानी का मन हो रहा हो तो भी दबा दें और ईमानदारी का व्यवहार करें । यह हमारी शिक्षा है । इससे क्षुद्र आचरण पैदा होता है । और इससे क्षुद्र मनुष्य पैदा होते हैं । उनका आचरण हो या अनाचरण, क्षुद्रता बराबर होती है ।

हमारे साधु और हमारे अपराधियों की क्षुद्रता में कोई भेद नहीं होता । कठोर लगेगी यह बात, लेकिन हमारे साधु और हमारे अपराधी में क्षुद्रता समान होती है । साधु ईमानदारी से वही पाने की कोशिश कर रहा है, जो अपराधी ने बेईमानी से पाने की कोशिश की थी । लेकिन क्षुद्रता बराबर होगी । लेकिन साधु की क्षुद्रता को हम न पहचान पाएंगे । अपराधी की क्षुद्रता हमें दिखाई पड़ जाती है ।

लेकिन क्षुद्रता बड़ी गहरी बात है । आप क्या करते हैं, इससे सम्बन्ध नहीं है उसका । आप क्या हैं, इससे सम्बन्ध है उसका । आप क्या करते हैं, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है क्षुद्रता का । क्षुद्रता का सम्बन्ध, आप क्या हैं, इससे है । आप अपराधी भी हो सकते हैं, साधु भी हो सकते हैं । यह आपके करने का जगत है । लेकिन इसके भीतर क्या छिपा है, आपका बीइंग क्या है, आपकी आत्मा क्या है ?

सामान्य नीति का सूत्र साफ है कि जो गलत है, उसे छोड़ो प्रयास से ही, और जो सही है, उसे पकड़ो प्रयास से ही । लाओत्से क्या कहेगा ?

लाओत्से कहता है, कर्म के जगत में कोई भी परिवर्तन कारगर नहीं है । सवाल यह नहीं है कि तुम क्या करते हो, सवाल यह है कि तुम क्या हो । इस बात की

फिक्र छोड़ो कि बुरा तुमसे न हो और भला तुमसे हो; तुम इस बात की फिक्र करो, तुम इस चिन्तना में पड़ो, तुम इस साधना में उतरो कि तुम क्या हो। इसे पहले आ जाते हो।

जीसस से कोई पूछता है कि मैं क्या करूं, कैसे मैं जीवन के परम आनन्द को उपलब्ध करूं? कैसे आयेगा सत्य? कैसे आयेगा धर्म? क्या है उपाय? और जीसस का वचन बहुत प्रसिद्ध है। जीसस ने कहा कि तुम इन सब की फिक्र न करो, सीक ई फर्स्ट दि किंग्डम ऑफ गॉड एंड ऑल एल्स शैल फॉलो: पहले तुम प्रभु का राज्य खोज लो और फिर सब अपने से चला आयेगा, फिर सब पीछे-पीछे चला आएगा, छाया की भांति चला आयेगा।

जीसस के लिए प्रभु के राज्य का वही अर्थ है, जो लाओत्से के लिए ताओ का है।

बुद्ध के पास मौलिंगपुत्त गया है, एक युवक। और उसने पूछा कि मैं भी भला होना चाहता हूं, मैं भी अच्छा करना चाहता हूं, क्या करूं? तो बुद्ध ने कहा, करने की तुम चिन्ता मत करो, पहले तुम यही खोज लो मौलिंगपुत्त, तुम्हारे भीतर कौन छिपा है? जिस दिन तुम उसे जान लोगे, उस दिन तुम से बुरा होना बन्द हो जाएगा। तुमसे बुरा होता है, यह सब लक्षण हैं, सिम्पटम हैं, बीमारी नहीं है। इसको हम ठीक से समझ लें।

आप से बेईमानी होती है, चोरी होती है, हिंसा होती है, कठोरता होती है। यह बीमारी नहीं है, यह सिर्फ लक्षण है। यह इस बात की खबर है कि अभी तक आपका अपने से सम्बन्ध नहीं हो पाया।

एक आदमी को बुखार चढ़ गया। बुखार कोई बीमारी नहीं है। शरीर उत्तप्त हो गया। उत्तप्त हो जाना कोई बीमारी नहीं है; केवल लक्षण है। शरीर में कुछ हो रहा है, कोई गहन बीमारी, शरीर के भीतर कोई संघर्ष, कोई उत्पात खड़ा हो गया है। उस उत्पात के कारण सारा शरीर उत्तप्त हो गया है। यह जो उत्तप्त हो जाना है, यह केवल बीमारी की खबर है। इसलिए आप भूल कर ऐसा मत करना कि किसी का शरीर गर्म है तो उस पर ठंडा पानी डाल कर उसका शरीर ठंडा कर दे, तो ठीक हो जाएगा। बीमारी तो शायद ही मिटे, बीमार मिट भी सकता है। क्योंकि आप लक्षण को, सिम्पटम को बीमारी समझ रहे हैं।

और यह अच्छी बात है कि शरीर पर बुखार आता है। यह स्वस्थ शरीर का लक्षण है। जब मैं कहता हूं कि यह स्वस्थ शरीर का लक्षण है तो मेरा मतलब समझ लें। भीतर कुछ उपद्रव हो रहा है, स्वस्थ शरीर तत्काल उसकी खबर देगा। बीमार शरीर देर से खबर देगा। क्योंकि खबर देने के लिए स्वस्थ होना जरूरी है। शरीर में जरा सी भी गड़बड़ होगी तो जितना स्वस्थ शरीर होगा, उतने तत्काल लक्षण प्रकट हो जाएंगे। जितना अस्वस्थ शरीर होगा, उतना सचार में

बाधा पड़ेगी। जितना स्वस्थ शरीर होगा, उतना पारदर्शी होगा। कुछ भी, जरा सी भी गड़बड़ भीतर होगी, शरीर का रोआं-रोआं उसकी खबर देने लगेगा। यह खबर देना बहुत आवश्यक है। यह बीमारी के खिलाफ है खबर। जब आपका शरीर गर्म होता है, फिवरिश हो जाता है, तब बुखार बीमारी नहीं है, बुखार केवल आपके शरीर के द्वारा दी गई सूचना है कि भीतर बीमारी है। और जो बुखार को मिटाने में लग जाए, वह पागल है। बीमारी को मिटा देना चाहिए, बुखार अपने से तिरोहित हो जाएगा।

लेकिन, मनुष्य के गहन अंतस जगत में हम यही कर रहे हैं। एक आदमी बेईमान है तो हम उसकी बेईमानी मिटाने में लग जाते हैं। एक आदमी चोर है तो हम उसकी चोरी मिटाने में लग जाते हैं। एक आदमी झूठ बोलता है तो हम उसका झूठ बोलना मिटाने में लग जाते हैं। बिना इसकी फिक्र किए ऐसा करते हैं कि एक आदमी झूठ बोलता है, चोरी करता है बेईमान है, तो क्यों?

लाओत्से कहता है, बुद्ध कहते है, वही व्यक्ति अनैतिक होता है, जिसका अपने से कोई संबंध नहीं है। इसे हम उनकी भाषा मे कहें तो अनैतिक वही व्यक्ति होता है, जो धार्मिक नहीं है। धार्मिक का मतलब हुआ . जिसका अपने से सम्बन्ध है। इसलिए अनैतिकता केवल हमारे अधार्मिक होने की सूचना है, लक्षण है। उन लक्षणो को बदलने से कुछ भी न होगा। क्योंकि जब कोई लक्षण बदलने में लगता है, तब बड़ी जटिलताएँ पैदा होती हैं। अगर एक बीमारी का लक्षण प्रकट हुआ और आपने उसको दबा दिया तो वह दूसरी बीमारी की शक्ल में प्रकट होना शुरू होगा। वहाँ से दबाएंगे तो तीसरी तरफ से शुरू होगा। और ध्यान रखें, हर बार दबाई हुई बीमारी गहन हो जाएगी और शरीर के और ज्यादा तन्तुओं में फैल जाएगी। धीरे-धीरे यह हो सकता है कि एक बीमारी हजार बीमारियाँ बन जाए।

बीमारी जब खबर देती है, तब कारण की तलाश होनी चाहिए। एक आदमी बेईमान है। साफ बात है कि इस आदमी को ईमानदार होने का कोई अनुभव नहीं है, कोई आनन्द नहीं है। इसलिए ईमानदारी को बेच पाता है, दो पैसे में बेच देता है।

कहते हैं, जीसस को जुदास ने तीस रुपए में बेच दिया। जुदास जीसस का शिष्य है और तीस रुपए में उसने जीसस को यहूदियों के हाथ बेच दिया, जहाँ उनको सूली लग गई। एक बात पक्की है कि जुदास जीसस का मूल्य नहीं समझ पाया। या तीस रुपए की कीमत समझ पाया हो; जीसस क्या हैं, जुदास को इसकी कोई खबर नहीं हो पाई। तभी उसने तीस रुपए में बेच दिया।

लेकिन जीसस के मर जाने के बाद उसको पहली दफा खबर मिली। वह भी उस भीड़ में छिपा हुआ खड़ा था, जहाँ जीसस को सूली लगी। सूली पर चढ़े हुए

जीसस को जब जुदास ने देखा, तब उसे पहली दफा दिखाई पड़ा, यह आदमी कौन है। और जब जीसस ने कहा कि हे परमात्मा, इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं, तब जुदास के भीतर कोई क्रान्ति घटित हो गई। उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक गई होगी। जिस आदमी को उसने तीस रुपए में बेच दिया था, सूली पर लटका हुआ, मृत्यु के कगार पर खड़ा, हाथ में कीले ठुकी हैं, मरता हुआ वह आदमी, जो उसे मार रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं, गालियां बक रहे हैं, उन लोगों के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता है, हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना; क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं; इसलिए ये कसूरवार नहीं है। कसूर तो उसका होता है, जो जानता हो और करता हो। इन्हें तो कुछ पता ही नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं; इन्हें क्षमा कर देना।

जुदास की पूरी कहानी लोगों को पता नहीं है। क्योंकि जीसस की मृत्यु इतनी बड़ी घटना हो गई कि फिर और सब बातें फीकी पड़ गईं।

जीसस के मरने के दूसरे दिन जुदास ने आत्महत्या कर ली। यह दूसरी बात खयाल में नहीं है। इसकी ज्यादा चर्चा भी नहीं होती। इतनी बड़ी घटना थी जीसस की सूली कि फिर सब फीका पड गया। लेकिन जुदास ने आत्महत्या कर ली पश्चाताप में। यह आदमी, जिसने तीस रुपए में बेचा था, इतनी पीड़ा से भर गया! इसे पता चला पहली दफा कि इसने हीरा बेच दिया तीस रुपये में, जिसका कोई मूल्य नहीं था, जो अमूल्य था। सारे जगत की संपत्ति भी एक तरफ रख दे तराजू पर तो भी वह तराजू का पलड़ा इसको ऊँचा उठा नहीं पाता, फिर भी यह वजनी होता। यह मैंने क्या कर दिया? और इस आदमी ने मरते वक्त भी यही कहा कि माफ कर देना इन सब को!

हम भी जब बेईमानी करते है और दो पैसे के लिए करते है, तब हमें पता नहीं है कि दो पैसे में भीतर की आत्मा को बेच रहे हैं। यह जीसस के बेचने से कोई कम मामला नहीं है। तब आप जुदास हैं और जीसस को बेच रहे है। तब आपको पता चलेगा कि जुदास ने भूल नहीं की थी। तीस रुपए काफी होते हैं। चांदी के थे। और चांदी असली थी। तीस रुपये आपको भी मिलें असली चांदी के तो आप भी बेचने को तैयार हो जाए।

यह जीसस का बिकना कोई एक दिन की घट गई घटना नहीं है। हर आदमी की जिन्दगी में यह रोज घटती है। यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है कि घट गई और समाप्त हो गई। हम रोज ही जीसस को बेचते हैं। वह जो हमारे भीतर निर्दोष आत्मा है, उसे हम कौड़ियों में रोज बेचते हैं। लेकिन, बेचते है तो उसका मतलब केवल इतना ही है कि हमें पता ही नहीं है कि भीतर क्या है। उसका पता हो तो यह बेचना असंभव हो जाए।

इसलिए लाओत्से कहेगा कि जीवन के जो परम आचरण के सूत्र है, वे ताओ

से ही उद्भूत होते हैं। जब तक कोई स्वयं को न जान ले, निजता को न जान ले, स्वभाव को न जान ले, तब तक उसकी नैतिकता का कोई, कोई भी मूल्य नहीं है।

परम आचार के जो सूत्र हैं, वे केवल ताओ से ही उद्भूत होते हैं।

और जिस तत्व को हम कहते हैं ताओ, वह है पकड़ के बाहर और दुर्ग्राह्य। और जिसे हम कहते हैं स्वभाव, अड़चन है बहुत उसे पाने में, कठिनाई है बहुत।

पहली तो कठिनाई यह है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते। कुछ चीजें हैं, जैसा मैंने कहा, कुछ चीजें हैं, जो प्रयास से नहीं आतीं; कुछ चीजें हैं, जो पकड़ने से छूट जाती हैं। और कुछ चीजें हैं, जो पकड़ से हाथ में आती हैं; कुछ हैं, जो पकड़ से छूट जाती है।

यह मेरी मुट्ठी खुली है। इस मेरी खुली मुट्ठी में हवा भरी है। इस मेरी मुठ्ठी को जब मैं बन्द करता हूँ, हवा बाहर हो जाती है। मुट्ठी खुली होती है तो भरी होती है। और बन्द होती है तो खाली हो जाती है। बहुत उलटी बात है। कोशिश तो मैं करता हू कि मुट्ठी को मैं बाध लू तो हवा मेरे हाथ में बन्द हो जाए; लेकिन जितने जोर से मैं बाधता हू, उतनी ही हवा मेरे हाथ से बाहर हो जाती है। हवा दुर्ग्राह्य है, पकड़ के बाहर है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि हवा नही है। हवा यहाँ और अभी है। जिसको हवा को पकडने का पागलपन आ गया, उसके लिए कठिन हो जाएगा। और जिसने यह राज समझ लिया कि मुट्ठी खुली हो तो हवा हाथ मे होनी है, जिसको यह समझ मे आ गया कि पकड़ छोड़ दो तो पकड़ मे आ जाती है, फिर उसके लिए दुर्ग्राह्य नहीं है।

लाओत्से कहता है, ताओ है दुर्ग्राह्य, पकड के बाहर। इसका यह मतलब नहीं समझना कि पकड नही सकेंगे हम उसे। उसे पकडने का सूत्र है यह। अगर उसे पकडना चाहते हो तो पकडना मत, पकड़ने की कोशिश मत करना। और वह तुम्हारी पकड़ मे होगा। और तुमने पकड़ने की कोशिश की और तुम उसके पीछे भागे तो वह तुम्हारे हाथ के बाहर हो जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि नॉन-क्लिगिंग—पकडना नही। यही उसका सूत्र है।

हम सभी चीजो को पकड़ते हैं। ससार में बिना पकडे कोई उपाय भी नहीं है। ससार मे जो भी पाना हो, उसे पकडना पड़ेगा। धन पाना हो, धन को पकड़ना पड़ेगा। यश पाना हो, यश को पकड़ना पड़ेगा। और जोर से पकड़ना पड़ेगा। अगर आप एक कुर्सी पर बैठे है तो इतने जोर से पकड़ना पड़ेगा कि जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि कई लोग आपकी टाग पीछे से खीच रहे होंगे; क्योकि उन्हे भी कुर्सी पर होना है। इसलिए कुर्सी पर जो होता है, उसका ज्यादा से ज्यादा समय कुर्सी पकड़ने में व्यतीत होता है। वह पकडे रहे।

और यह एकहरा काम नही है, यह दोहरा काम है। अगर आपको कुर्सी पकड़े रखना है तो ऊपर वाली कुर्सी के पैर को आपको खीचते रहना चाहिए और नीचे

जो आपके पैर खींच रहे हैं, उनसे बचाव करना चाहिए। ऊपर जो आपसे बचने की कोशिश कर रहे हैं, उनका पैर जोर से पकड़े रहना चाहिए। तब आप अपनी कुर्सी पर रह सकते हैं। यह बड़ा डायनमिक प्रोसेस है। यह कोई थिर घटना नहीं है। यह एक प्रक्रिया है, जो चौबीस घंटे जारी रहती है—सोते-जागते। अगर आप मिनिस्टर हैं तो डिपुटी मिनिस्टर आपके पैर से झूमे रहेंगे। और आप चीफ मिनिस्टर के पैर पकड़े रहेंगे। इस खींचमखांच में आप अपनी कुर्सी भी बचा सकते हैं, और अगर बहुत शोरगुल और उपद्रव मचायें तो आगे की कुर्सी पर भी आ सकते हैं। और अगर जरा सुस्ती हो जाए और हाथ छूट जाए तो चारों खाने चित्त नीचे भी पड़ सकते हैं।

अगर जगत में हम देखें तो हम सब पकड़े हुए हैं। और यह पकड़ सूक्ष्म है। हम यहां इतने लोग बैठे हुए हैं। किसी को यह खयाल नहीं हो सकता कि सब के हाथ एक दूसरे की जेब में हैं। लेकिन हैं। अगर हम सारी दुनिया की भीतरी व्यवस्था पर नजर डालें, भीतरी एकोनॉमिक्स पर नजर डालें तो हर आदमी का हाथ दूसरे की जेब में मिलेगा। मिलेगा ही। जो बहुत कुशल हैं, वे एक हाथ की जगह हजार हाथ कर लेते हैं, और हजार हाथ हजार जेबों मे डाल देते हैं। जिसके जितने ज्यादा हाथ हैं, जितनी जेबों में डाल सकता है, जितनी जेबों को पकड़ सकता है, उतना धन उसके पास होगा।

चेस्टर्टन एक दिन बगीचे में घूमता था—नाटककार चेस्टर्टन। मित्र एक साथ था। चेस्टर्टन की सदा आदत थी अपने खीसों में हाथ डाल कर घूमने की। मित्र ने पूछा कि क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि एक आदमी जिन्दगी भर अपने खीसों में हाथ डाले बिता दे। चेस्टर्टन ने कहा, हो सकता है। हाथ अपने होने चाहिए और जेब दूसरों की; अपनी ही जेब में हाथ डाले जिन्दगी बितानी बहुत मुश्किल है।

हम सब के हाथ दूसरों की जेब में फैले होते हैं। आर्थिक संरचना है यही। इसमें जो ढीला करेगा, छोड़ेगा; उसके हाथ से सब छूट जाएगा। स्वभावतः जिन्दगी में सब चीजें पकड़ने से मिलती है। तो हम सबको खयाल होता है कि परमात्मा भी पकड़ने से मिलेगा, आत्मा भी पकड़ने से मिलेगी, ताओ भी पकड़ने से मिलेगा। वहीं तर्क की भूल हो जाती है। बाहर जो भी पाना हो, पकड़ने से मिलेगा। क्योंकि बाहर जो भी है, उसमें कुछ भी आप का नहीं है। जो दूसरे का है, उसकी छीना-झपटी करनी ही पड़ेगी। पकड़ कर रखना पड़ेगा। और तब यह भी ध्यान रखना कि कितना ही पकड़ें, आज नहीं कल छूट जाएगा। मिलेगा पकड़ने से, क्योंकि आपका नहीं है; फिर भी छूट जाएगा। कम से कम मौत तो आपकी मुट्ठी को खोल ही देगी। लेकिन बाहर पकड़ने से ही मिलेगा।

भीतर के लिए सूत्र उलटा हो जाता है। वहाँ तो जो है, वह हमारा है ही। उसे

हम न भी पकड़ें तो भी हमारा है। उसे हम न भी पकड़ें तो भी छूटेगा नहीं। स्वभाव का अर्थ होता है जिसका हमसे अलग होने का कोई उपाय नही है। स्वभाव का अर्थ होता है कि मौत भी जिसे हमसे अलग न कर सकेगी। जिसका हमसे अलग होने का उपाय नहीं है, जो हम हैं उसे पकडने के पागलपन मे मत पडना। उसे पकडने की जरूरत ही नही है। अगर यह पकडन की आदत को लेकर कोई भीतर चला जाए और आत्मा को पकडने में लग जाए तो वह कठिनाई में पडेगा।

अंग्रेज विचारक ह्यूम न कहा है कि सुन-सुन कर पढ-पढ कर बहुत लोगो की बातें कि आत्मा का ज्ञान, कि नो दाइसेल्फ एक दिन मुझे भी हुआ कि मैं भी देखू कि यह आत्मा क्या है। गया भीतर बहुत पकडन की कोशिश की बडा दौडा सब उपाय किए सब तरह क व्यायाम लगाए भीतर लेकिन आत्मा बिलकुल पकड म नही आई। पकड म दूसरी चीज आइ कही कोई विचार पकड म आया कही कोई भाव पकड म आया कही कोई वासना पकड मे आई कही कोई इच्छा पकड म आई। आत्मा बिलकुल पकड म नहीं आई। स्वभावत ह्यूम विचारक था तकवादी था। उसन अपनी डाइरी म लिखा कि जो चीज पकड मे नही आती, वह नही है। होन का सबत है पकड म आना।

लाओत्से का अगर ह्यम मिलना ता लाओत्से कहता कि तुम उसे पकडने गए थ और तुम ही हो वह तो तुम पकडते कैसे? तुम जो भी पकडोग वह कुछ और होगा आत्मा नही होगी। पकडनेवाला ही आत्मा ह। वह पकडी जानेवाली चीज नही है।

मैं तो अपन हाथ स सब कुछ पकड सकता हू सिफ इस हाथ को छोडकर। इस हाथ को मै इसी हाथ से नही पकड सकता हूँ और सब कुछ पकड सकता हू। मेरी आँख से मै सब कुछ देख सकता हू सिर्फ म इसी आँख का नही देख सकता हूँ। आत्मा सब कुछ पकड सकती है सिफ स्वय का नही पकड सकती।

इसलिए लाओत्से कहता है पकड के बाहर दुर्ग्राह्य है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि हम हताश हो जाए। यह सब समझ लेन की बात है कि पकडने की गलत आदत भीतर नही ल जानी है नही तो ह्यूम जैसी हालत होगी। भीतर छोडन की आदत काम आती है। इसलिए महावीर बुद्ध मोहम्मद त्याग पर इतना जोर देते हैं।

लेकिन ध्यान रखना उनके त्याग का मतलब वह नही है जो आपका है। त्याग का मतलब है कि छोडन पर इतना जार देते है। इस सूत्र से समझिए तो खयाल में आ जाएगा। पकडने से आत्मा पकड म नही आती है त्यागने से पकड में आती हैं। लेकिन पकड की आदत है हमारी। इस आदत को अगर हम भीतर ले गए तो हम मुसीबत में पडेगे। तो यह आदत भीतर मत ले जाना। इसलिए महावीर ने

क्षुद्र आचरण नीति है परम आचरण धम

कहा कि त्याग पहला सूत्र है — अगर तुम्हें उसे जानना है, जो भीतर है। लेकिन त्याग से हम क्या मतलब समझते हैं ?

हमारा मतलब यह होता है कि एक आदमी ने कुछ रुपये का त्याग कर दिया। छो उस आदमी से, किस लिए किया त्याग तो वह कहता है कि संसार में आये तो कुछ तो उपाय कर लें आगे के लिए। वह कहता है, जिन्दगी ऐसी चली जा रही है; आज नहीं कल मरना होगा, मरने के बाद के लिए भी कुछ इंतजाम जरूरी । वह आदमी जो कुछ भी कहेगा, उसमें आपको दिखाई पड़ जाएगा कि उसने पये छोड़े नहीं, इनवेस्ट किये हैं। और इनवेस्टमेन्ट त्याग नहीं है। वह तो योजन करना है संपत्ति को, और ज्यादा बड़ा करने के लिए। उस पर ब्याज भी मलेगा, लाभ भी मिलेगा।

और लम्बा मामला है; प्लानिंग उसकी बड़ी है। सरकारें तो पांच-पांच साल की योजनाएं बनाती हैं; लोग जन्मों-जन्मों का प्लानिंग करते हैं। स्वर्ग तक फैलाते , मोक्ष तक फैलाते हैं अपनी योजना को। जमीन पर बैठे-बैठे ये लोग मोक्ष में ी धन्धा करते हैं। इसे अगर हम त्याग कहते हैं तो गलती है। इससे त्याग का कोई सम्बन्ध नहीं है।

त्याग का मतलब है छोड़ने की वृत्ति, छोड़ने की समझ। और जब कोई किसी लिए छोड़ता है, तब छोडता ही नहीं है। त्याग किसी लिए, त्याग ही नहीं है। त्याग का मतलब है सिर्फ छोडने की कला। निष्प्रयोजन है। पकड़ कर देख लिया, बहुत-कुछ पकड़ में नहीं आता। अब छोड कर देखते हैं कि छोडने से क्या आता है। दौड कर देख लिया बहुत, अब रुक कर देखते हैं कि रुक कर क्या आता है। बांध कर देख लिया बहुत, अब छोड़ कर देखते हैं कि क्या आता है। त्याग पकड़ने की आदत का एन्टीडोट है। वह जो पकड़ने की आदत है, उसके विसर्जित करने की विधि है। त्याग का कोई परिणाम नहीं है; त्याग का कोई लाभ नहीं है। त्याग तो केवल पकड़ने की जो गलत आदत है, उसका विसर्जन है। लेकिन त्याग का अनुभव होते ही वह जो पकड में नहीं आता था, तत्काल पकड़ में आ जाता है। वह जो मुट्ठी बन्द थी, पता नहीं चलता था, खुलते ही सारा आकाश मुट्ठी में आ जाता है।

लाओत्से कहता है, जिस तत्व को हम कहते हैं ताओ, वह है पकड़ के बाहर और दुर्ग्राह्य। दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर, यद्यपि उसमें ही सब रूप छिपे हैं। दूर है बहुत, लेकिन पास भी बहुत है। पकड़ में नहीं आता, फिर भी सभी रूप उस में ही छिपे हैं। जो भी दिखाई पड रहा है, उसका ही रूपांतरण है। जो भी आकृतियां है, उसके ही खेल हैं। दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर, तथापि उसमे ही सब विषय निहित हैं।

अंधेरा और धुंधला, फिर भी छिपी है जीवन-ऊर्जा उसी में। अंधेरा और

धुंधला ! जिनको बाहर देखने की गहन आदत पड़ गई है, भीतर जाकर उन्हें पहले अंधेरा ही दिखाई पड़ेगा। इस प्रतीक के कई अर्थ हैं, जिन्हें खयाल में ले लेना चाहिए।

एक, अगर आप अपने घर के बाहर दोपहरी में बहुत देर रह गए हैं तो घर में प्रवेश करते ही आपको अंधेरा मिलेगा। अंधेरा वहाँ है नहीं। आपकी आँखें नियोजित होने में, एडजस्ट होने में थोड़ा समय लेंगी। और अगर आपकी आँखों का फोकस बिलकुल ही ठहर गया है बाहर के लिए ही तो फिर घर में अंधेरा ही रहेगा। आंख तो पूरे वक्त अपना फोकस बदल रही है। आंख तो एक चलित व्यवस्था है। पूरे समय प्रकाश ज्यादा है तो आँख छोटी हो जाती है; प्रकाश कम है तो आँख बड़ी हो जाती है। आंख पूरे समय समायोजन कर रही है जगत के साथ। अगर आप सूरज की तरफ बहुत देर देखते रहें तो आँख इतनी छोटी हो जाती है कि जब आप भीतर आएंगे कमरे के तो बिलकुल अंधेरा मालूम पड़ेगा।

सूरज की तरफ अगर कोई बहुत ज्यादा देखता रहे तो वह अंधा भी हो सकता है। अंधे का अर्थ है कि उसकी आंख का फोकस जड़ हो जाए। क्योंकि तंतु बहुत कोमल है, सूरज बहुत कठोर है। अगर उनपर बहुत देर अभ्यास किया जाए सूरज को देखने का, तो तंतु सिकुड़ भी सकते हैं, जल भी जा सकते हैं। फिर घर के भीतर अंधेरा ही रहेगा।

अंधेरा, अगर हम ठीक से समझें, आंख की गत्यात्मकता पर निर्भर है। जिसको आप अंधेरा कहते हैं, उसमें भी कुछ पशु हैं, पक्षी हैं, जो बराबर देखते हैं। उनकी आंखें हमसे ज्यादा गत्यात्मक हैं। उनकी आंखें हमसे ज्यादा सरलता से तरल हैं। वे अंधेरे में भी देख पाते हैं। अंधेरा आंख पर निर्भर करता है। एक बात ठीक से समझ लें, अंधेरा और प्रकाश आंख पर निर्भर करते हैं।

लाओत्से कहता है, अंधेरा और धुंधला ! क्योंकि जो जन्मों-जन्मों तक बाहर भटके हैं और जिनकी आंख का फोकस ठहर गया है बाहर के लिए, जिन्होंने भीतर कभी झांक कर नहीं देखा, वे जब पहली बार भीतर झांक कर देखेंगे तो वहाँ घुप्प अंधेरा पाएंगे। इसलिए जो लोग भी गहरे ध्यान में जाते हैं, वे लोग एक-न-एक दिन घबड़ा कर बाहर लौट आते हैं। इतना घनघोर अंधेरा मिलता है कि भय हो जाता है। और किताबों में लिखी हुई है दूसरी ही बात। किताबों में लिखा है कि महान प्रकाश वहाँ होगा। यह पढ़ा हुआ है कि महान प्रकाश वहाँ होगा। और जब भीतर जाते हैं, तब पाते हैं कि अंधेरा है। तो लगता है, भटक जाएंगे; फिर निकलो बाहर। घबड़ाहट होती है।

और बाहर का अंधेरा इतना अंधेरा नहीं मालूम होता, जितना भीतर का अंधेरा अंधेरा मालूम होगा। अपरिचित लोक है बिलकुल, और आंख की क्षमता वहाँ देखने की बिलकुल रही ही नहीं। फिर बाहर तो अंधेरा कितना ही हो, पता है हमें कि कोई

न कोई और बहुत लोग मौजूद हैं। भीतर के अंधेरे में तो आप बिलकुल अकेले हो जाते हैं। वहां कोई भी मौजूद नहीं है। अकेलेपन का डर भी पकड़ता है। अंधेरा भी घबड़ाता है। घबड़ाहट में बाहर आ जाता है आदमी।

लाओत्से कहता है, भीतर है अंधेरा और धुंधला। यह जो अंधेरा है, यह विरोध नहीं है उन सूत्रों का, जिन्होंने कहा है, भीतर परम प्रकाश है। भीतर तो परम प्रकाश है। लेकिन उस परम प्रकाश को देखने की आंख धीरे-धीरे विकसित होती है; भीतर आकर धीरे-धीरे विकसित होती है। थके-मांदे, दोपहरी में बाहर से लौटे हैं, बैठ जाते हैं दो क्षण घर मे आकर, धीरे-धीरे अंधेरा कम हो जाता है और घर प्रकाशित मालूम होने लगता है।

कभी रात के अंधेरे मे उठ जाएं और शान्ति से अंधेरे को देखते रहें तो एक चमत्कार दिखाई पड़ेगा। जैसे-जैसे शांति से अंधेरे को देखेंगे, अंधेरा कम होने लगेगा। और अगर देखते ही रहे अंधेरे को तो आपके पास चोर की आखें उपलब्ध हो जाएंगी। चोर धीरे-धीरे अंधेरे में देखते-देखते हमसे ज्यादा अंधेरे मे देखने लगता है। आंख का अभ्यास हो जाता है। आपके घर में आपको दिखाई नही पड़ता, लेकिन उसे दिखाई पड़ता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक रात चोर घुस गये। उसकी पत्नी ने उसे जगाया और उससे कहा कि नसरुद्दीन, उठो, चोर मालूम होते है। नसरुद्दीन ने कहा कि शात भी रहो, हम को जीवन भर इस घर मे खोजते हो गया, कुछ मिला नहीं; शायद उन्हे कुछ मिल जाए। सुना है, चोरो की आखें अंधेरे में देख लेती हैं। शात रहो, कही भाग न जाए। और यह भी हो सकता है कि उन्हें कुछ भी न मिले और घबडाहट में उनके पास कुछ हो, उसे भी छोड जाएं। शात रहो।

ऐसी एक घटना और नसरुद्दीन के जीवन में है। एक रात अकेला था घर मे, पत्नी भी नहीं थी, और चोर घुस आए। पत्नी थी तो उसके सामने बहादुरी बताने में आसानी थी। पत्नी बड़ी कारगर हैं पतियो की बहादुरी बताने के लिए। ससार में कही भी नहीं दिखा पाते तो घर आकर पत्नी के सामने बहादुर हो जाते हैं। हालाकि मजा यह है कि चाहे कितने ही बड़े बहादुर हों, पति को कभी पत्नी बहादुर मानती ही नही। चाहे सिकदर ही क्यों न हों, पत्नी के सामने आप की कुछ हुकूमत नहीं चलती। लेकिन फिर यह एक समझौता है। पिटे-कुटे, जिन्दगी से लौटते हैं, पत्नी पर थोड़ी अकड बता लेते हैं; एक दुनिया निर्मित हो जाती है कि हम भी कुछ हैं। सो उस दिन पत्नी भी घर में नहीं थी।

मुल्ला बहुत घबड़ा गया; डर के मारे एक अलमारी में घुस गया। पीठ दरवाजे की तरफ करके छिप कर खड़ा हो गया। चोर सब जगह खोजते-खोजते आखिर में अलमारी पर भी पहुंचे। अलमारी खोली तो मुल्ला की पीठ दिखी। तो चोरों ने

कहा कि नसरुद्दीन, यह क्या कर रहे हो ? नसरुद्दीन ने कहा, शर्म के मारे छिपा हूँ, घर में कुछ भी नहीं है। बड़ी शर्म आती है। आये हो न मालूम कितनी दूर से और घर में कुछ भी नहीं है। कुछ मिल जाए तो मुझे खबर करते जाना। खोजते हमें भी बहुत समय हो गया।

चोर को दिख सकता है अंधेरे में। हमसे तो ज्यादा दिखता है। अभ्यास से सरलता से दिखने लगता है।

भीतर का अंधेरा भी पहले आपकी आँख को निर्मित करने के लिए चुनौती है। अगर आप बाहर भाग आते हैं तो चूक जाते है। ईसाई साधकों ने तो उसे 'डार्क नाईट ऑफ दि सोल' कहा है, आत्मा की अन्धेरी रात बताई है। और उसे पार करने की पूरी व्यवस्था और साधनाएं भी बताई हैं। उसे कैसे पार करें ? प्रकाश तो मिलेगा, लेकिन अंधेरी रात को पार करने के बाद मिलेगा। सुबह होती भी नही रात को बिना पार किए। कही सूरज निकला है बिना रात को पार किए ? भीतर भी प्रकाश का अनुभव आता है, लेकिन रात को पार करने के बाद। यह एक अर्थ है।

दूसरा अर्थ है जो लाओ का जो अपना निज है, लाओत्से का अपना निज है। लाओत्से प्रकाश से अंधेरे को ज्यादा मूल्य देता है। लाओत्से कहता है, प्रकाश तो एक उत्तेजना है, अंधेरा परम शांति है। प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। कभी खयाल किया है ? प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। प्रकाश में तो उत्तेजना है; इसलिए तो प्रकाश हो तो रात में आप सो नहीं पाते। जितना गहन हो अंधेरा, उतना विश्राम कर पाते हैं। प्रकाश आँखों पर चोट करता रहता है। प्रकाश में थोड़ी हिंसा है, अंधेरा परम अहिंसक है।

लाओत्से कहता है, प्रकाश तो पैदा करना पड़ता है, फिर भी बुझ-बुझ जाता है; अंधेरा शाश्वत है। उसे पैदा नही करना पड़ता है। वह है। प्रकाश को जलाना पड़ता है — चाहे दीये का प्रकाश हो और चाहे महा सूर्यों का। सूर्य भी चुक जाते हैं, उनका ईंधन भी चुक जाता है। वैज्ञानिक कहते है, हमारा यह सूरज चार हजार साल से ज्यादा अब नही चलेगा। इसका ईंधन चुक रहा है। यह रोज अपनी अग्नि को फेंक रहा है। चार हजार साल मे इसकी अग्नि चुक जाएगी। यह ठंडा पड़ जाएगा। अरबों-अरबों वर्ष जल चुका है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है ? समय की अनन्त धारा में एक दीया रात भर जलता है, एक सूरज अरबों वर्ष जलता है; लेकिन दोनों बुझ जाते हैं। प्रकाश बुझता है। अंधेरा कभी बुझता नहीं।

इसलिए लाओत्से तो कहता है कि जो परम प्रकृति है, वह प्रकाश जैसी कम और अंधेरे जैसी ज्यादा है। इन अर्थों में वह शाश्वत है, अनन्त है, अमृत है, निराकार और अद्वैत है।

प्रकाश में भेद पैदा हो जाता है। यहाँ हम इतने लोग बैठे हुए हैं। प्रकाश है तो

हम सब अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। अभी अंधकार हो जाए, सब भेद खो जाएंगे। सब भेद प्रकाश में दिखाई पड़ते हैं। अंधेरे में तो सब अभेद हो जाता है।

लाओत्से अंधेरे का और भी अर्थ लेता है साथ में; वह भी हमें खयाल में ले लेना चाहिए। वह कहता है, यह जो ताओ है, यह अंधेरा और धुंधला है। यहां चीजें साफ नहीं हैं। यहां सीमाएं बटी हुई नहीं हैं। एक दूसरे मे प्रवेश कर जाती हैं। सीमाएं; थिर, ठोस नही है, तरल हैं, वायवीय हैं, तरंगित है। कोई सीमा बंधी हुई नहीं है। एक रूप दूसरे रूप में रूपान्तरित होता रहता है।

यह एक अद्वैत सागर है, फिर भी छिपी है जीवन-ऊर्जा उसी में। इस परम शान्त, मौन अंधकार में ही जीवन की समस्त ऊर्जा छिपी है। जीवन की सारी शक्ति, इनर्जी, जिसे बर्गसों ने इलान वाइटल कहा है, वह अंधकार की गहन पर्त मे छिपी है। इसे हम दो-तीन तरफ से समझ लें।

लाओत्से के सारे प्रतीक अत्यत गहन हैं। कभी आपने खयाल किया है कि जीवन का जब भी जन्म होता है, अंधकार मे होता है? चाहे एक बीज फूटता हो जमीन के गर्भ में, चाहे एक बच्चा निर्मित होता हो माँ के गर्भ में, प्रकाश मे जन्म नही होता; **सब जन्म अंधकार में होता है।** एक बीज को अगर जनमाना हो, छिपा दो अंधेरे में; तब फूटेगा। एक बच्चे को जनमाना हो, वह भी बीज का छिपाना है। छिपा है माँ के अंधकार में, मा के गर्भ मे, वहाँ प्रकाश की किरण भी नही पहुचती। वहाँ वह बडा होगा, निर्मित होगा, विकसित होगा। प्रकाश मे तो वह तभी आयेगा, जब जो भी आधारभूत है; वह निर्मित हो चुका है।

जड़ें अंधेरे में छिपी रहती हैं। निकाल ले प्रकाश में, वृक्ष मुरझा जाएगा, मर जाएगा। जडो का तो काम है कि वे अंधेरे में ही छिपी रहें। क्योंकि जीवन की जो गहन ऊर्जा है, वह परम अंधकार में छिपी है।

परम अंधकार का अर्थ है **परम रहस्य**, एबसोल्यूट मिस्ट्री। अंधकार बहुत रहस्य-पूर्ण है। प्रकाश में तो सब रहस्य खो जाता है। जिस चीज पर प्रकाश पड जाता है, उसी का रहस्य खो जाता है। पूरब के लोग बहुत होशियार है, इसलिए उन्होने जीवन की जो-जो रसपूर्ण बातें थी, उनपर पर्दा डाल रखा था। स्त्री सुन्दर थी — उतनी सुन्दर नही, उतनी सुन्दर होती ही नही, जितनी सुन्दर थी। पर्दे के कारण— बेपर्दा होकर पश्चिम की स्त्री कुरूप हो गई। हालांकि मजे की बात यह है कि पश्चिम में आज सुंदरतम स्त्रियां हैं, जैसी पृथ्वी पर कभी भी नहीं थीं। लेकिन फिर भी कुछ बात खो गई। **रहस्य खो गया।** वह जो पर्दा था, वह जो घूघट था, वह कुछ छिपाता था; **वह छिपा हुआ रहस्यपूर्ण हो जाता था।** सब उघड जाए तो रस खो जाता है।

विज्ञान रस का बड़ा दुश्मन है—उघाड़ने में लगा रहता है। धर्म रस का बडा प्रेमी है—ढांकने में लगा रहता है। इसलिए लाओत्से के अंधेरे का यहाँ अर्थ ठीक समझ लें।

जीवन की जो गहनतम ऊर्जा है, वह अंधकार में छिपी है। और वहीं से वह आती है प्रकाश में; लेकिन उसकी जड़ें अंधकार में बनी रहती हैं। हम बाहर के जगत में फैलते जाते हैं, हमारी शाखाएं फैलती जाती हैं, पत्ते-फूल फैल जाते हैं; लेकिन हमारी जड़ें अंधकार में बनी रहती हैं।

अंधकार लाओत्से के लिए वैसा प्रतीक नहीं है, जैसा हम सोचते हैं। आमतौर से हमारे मन में अंधेरा मौत का प्रतीक है और प्रकाश जीवन का। इसलिए जब कोई मर जाता है, तब हम दुख में काले कपड़े पहन लेते हैं। लाओत्से से पूछेंगे तो कहेगा, क्या पागलपन कर रहे हो ? अंधेरा तो जीवन की ऊर्जा को छिपाये है; तुम काले कपडे को, अंधेरे को मृत्यु के साथ जोड रहे हो ?

हमारे मन में प्रकाश का बडा मूल्य है। यह इसलिए नहीं कि हमें पता है कि प्रकाश का कोई मूल्य है। प्रकाश का हमारे लिए मूल्य है कई कारणों से। वे कारण भी खयाल में लें तो अंधेरे का मूल्य भी समझ में आ जाए। एक, प्रकाश में हमें कम भय लगता है। हम भयभीत लोग हैं, डरे हुए लोग हैं। प्रकाश में हमें कम भय लगता है। चीजें साफ-साफ मालूम होती हैं कि कौन कहां है, कौन क्या कर रहा है, कौन पास आ रहा है, हाथ में छुरा लिए है कि नहीं, मित्र है कि दुश्मन है, चेहरा, आंख, ढंग, सब साफ होता है। हम सुरक्षित मालूम होते हैं। प्रकाश में हम सुरक्षित मालूम होते हैं। अंधेरे में असुरक्षित हो जाते हैं; इनसिक्यूरिटी हो जाती है। अंधेरे में लगता है कि पता नहीं, क्या हो रहा है। कुछ भी पता नहीं चलता।

अंधेरे में तो वही शान्ति से सो सकता है, जिसे असुरक्षा का भय न रहे। जिसे सुरक्षा का मोह है, भय है, वह अंधेरे में सो भी नहीं पाएगा।

हिटलर अपने कमरे में अपनी प्रेयसी को भी नहीं सोने देता था। क्योंकि भरोसा किसी का भी नहीं किया जा सकता। भय किसी का भी भरोसा नहीं कर सकता। और इसलिए उसने अपनी प्रेयसी से मरने तक विवाह भी नहीं किया। क्योंकि विवाह करने के बाद वह मांग करेगी कि कम से कम इस कमरे में सोने तो दो।

हिटलर ने विवाह किया —बड़ी मजेदार घटना है— मरने के आधा घंटा पहले। जब बर्लिन पर गिरने लगे बम और जहां हिटलर छिपा था, जब उसके द्वार पर ही युद्ध होने लगा, तब हिटलर ने अपने साथियों से कहा कि तत्काल कहीं से भी—आधी रात थी—कहीं से भी एक पुरोहित को पकड लाओ; कोई भी हो, चलेगा, मुझे विवाह करना है। इसी वक्त। क्योंकि अब जीने का कोई उपाय नहीं है। अब मैं मरने के करीब हूं। घड़ी, दो घड़ी में मुझे आत्महत्या करनी होगी। एक सोते हुए पादरी को जबरदस्ती उठाकर ले आया गया। और विवाह सम्पन्न हो गया। और हिटलर ने पहली दफा अपने सोने के कमरे में अपनी प्रेयसी को प्रवेश दिया— हत्या के लिए। और दोनों आत्महत्या करके मर गये।

भय कारण है, हमें प्रकाश अच्छा मालूम पड़ता है। अंधेरा घबड़ाहट देता है। पता नहीं, अंधेरे में कौन छिपा है, क्या हो रहा है ? रात हमें डर देती है; दिन हमें अभय कर देता है। इस कारण हम प्रकाश को आदर दिए चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, लेकिन जीवन की जो गहनतम जड़ें हैं, वे अंधकार में हैं। और जब तक तुम अंधेरे में जाने के लिए तैयार नहीं हो, तब तक तुम अपने से मिल भी न सकोगे। और जब तक तुम अंधेरे में जाने का साहस नहीं जुटाते, तब तक तुम्हारी स्वयं से कोई मुलाकात न होगी। अंधेरे में कूदने की हिम्मत ही धार्मिक व्यक्ति का पहला कदम है। अंधेरे में कूदने की हिम्मत अज्ञात, अनजाने, अपरिचित में उतरने की हिम्मत है।

जीवन-ऊर्जा है बहुत सत्य और इसके प्रमाण भी उसमें ही प्रछन्न हैं। लेकिन मुझसे मत पूछो, लाओत्से कहता है, कि क्या है प्रमाण तुम्हारी जीवन ऊर्जा का, इस ताओ का, इस रहस्य का, जिसकी तुम बातें करते हो और जिसकी यात्रा के लिए तुम प्रलोभित कर लेते हो और मन होने लगता है कि उतर जाएँ हम भी इस अंधेरे में। क्या है प्रमाण ? लाओत्से कहता है कि उसका प्रमाण भी उसमे ही प्रछन्न है। तुम जाओ तो ही जान सकोगे। तुम जानने के पहले जानना चाहो, जाने के पहले जानना चाहो तो कोई उपाय नही है।

लाओत्से जैसी हिम्मत की बात बहुत कम धार्मिक लोगो ने कही है। अगर आप साधारण साधु-सन्त के पास जाएँ और उससे पूछें कि क्या है प्रमाण ईश्वर का तो वह दस प्रमाण देना शुरू कर देगा। हालांकि सब प्रमाण व्यर्थ हैं, कोई प्रमाण उसका है नहीं। और जरा सी बुद्धि हो तो इन साधु-सन्तों के प्रमाणों का खंडन करने में जरा भी अड़चन नही है। अब तक धार्मिक एक भी प्रमाण नहीं दे सके हैं, जिसको नास्तिकों ने ठीक से खंडित न कर दिया हो। एक भी ऐसा प्रमाण नहीं है, जिसे नास्तिक ठीक से खंडित नही कर देता है। और अगर ठीक बात जाननी हो तो नास्तिक ही विजेता मालूम पड़ेंगे। अगर प्रमाणो से ही ठीक बात जाननी हो ! क्योंकि आस्तिकों के तर्क बचकाने हैं, उनके तर्क, उनके प्रमाण, सब बचकाने हैं। नास्तिको ने उन्हें ऐसे हाथ के इशारे से गिरा दिया है।

लेकिन वास्तविक आस्तिक ने कभी प्रमाण दिया ही नहीं है। क्योंकि वह कहता है कि प्रमाण अनुभव के अतिरिक्त और कोई नहीं है। जानो—वही प्रमाण है। उसके पहले कोई उपाय नही है। उसके पहले तो प्रमाण को वही मान लेता है, जो मानना ही चाहता है। वह बात अलग है। जो नहीं मानना चाहता है, वह फौरन इनकार कर देता है।

जब भी आप किसी आदमी को राजी कर लेते हैं, कन्वर्ट कर लेते हैं, तब यह मत समझना कि आप जीत गए। वह कन्वर्ट होना चाहता था, अन्यथा इस दुनिया में कन्वर्ट करने का कोई उपाय नहीं है। वह होना ही चाहता था। आप सिर्फ

बहाने हैं। वह तैयार ही था। आपने उसकी ही बात बाहर से कह दी।

लाओत्से कहता है, उसका और कोई प्रमाण नहीं है। सत्य है बहुत, लेकिन उसके प्रमाण उसमें ही प्रच्छन्न हैं—लेटेंट इन इटसेल्फ। उसी में चले जाओ तो तुम्हें प्रमाण मिल जाएँगे। मैं तुम्हें चलने का मार्ग बता सकता हूँ, प्रमाण नहीं दूँगा। यदि अंधा आदमी पूछे, क्या प्रमाण है प्रकाश का तो लाओत्से कहेगा: तुम्हारी आँख का इलाज बता सकता हूँ; प्रमाण क्या दूँगा? आँखें ठीक हो जाएँ, तुम देख लेना! सत्य है बहुत प्रकाश, आँख चाहिए। और आँख न हो तो कोई प्रमाण भी आँख नहीं बन सकता। और आँख हो तो कोई कितना प्रमाणों का खंडन करे, खंडन नही ही सकता।

रामकृष्ण के पास लोग जाते थे, तर्क करते थे और रामकृष्ण हँसते रहते थे। एक दफा केशवचन्द्र गए। शायद भारत में पिछले सौ वर्षों मे, डेढ़ सौ वर्षों में जो बडे से बडा तार्किक पैदा हुआ हो तो वह केशवचन्द्र थे। वैसा लॅजीसीयन, वैसी तर्क की प्रतिभा बहुत मुश्किल से होती है। केशवचन्द्र रामकृष्ण को पराजित करने ही गए थे। रामकृष्ण तो गँवार थे। रामकृष्ण तो दूसरी कक्षा भी पास नहीं थे। जानने के नाम पर तो कुछ भी नहीं जानते थे। होने की बात अलग थी। थे बहुत कुछ; जानते बहुत कुछ नहीं थे। केशवचन्द्र बहुत जानते थे। होने के नाम पर तो दीन थे। लेकिन प्रकांड थी प्रतिभा उनकी—तर्क की दृष्टि से।

बडी भीड इकट्ठी हो गई थी उस दिन। सब लोग सोचते थे, बेचारा रामकृष्ण बुरी तरह पिटेगा! पिटने की नौबत ही थी; कोई उपाय ही न था। रामकृष्ण की हैसियत ही क्या थी? केशवचन्द्र के साथ तर्क करना मनुष्य-जाति के इतिहास में दस-पाँच आदमियों की हिम्मत की बात थी। रामकृष्ण का तो कोई सवाल ही न था। वे तो कहीं गिनती में आते ही नहीं थे। कई लोग तो इसीलिए नहीं आये थे कलकत्ते से कि क्या फायदा होगा? परिणाम तो पहले से ही जाहिर है, रामकृष्ण पिटेंगे। उसमें कुछ है नहीं मामला, जाने की भी जरूरत नहीं है दक्षिणेश्वर तक।

लेकिन उस दिन वहाँ उलटी हालत हो गई। केशवचन्द्र बुरी तरह पिट गए। लेकिन ऐसी घटना कम घटती है। केशवचन्द्र ईश्वर के खिलाफ वक्तव्य देने लगे, तर्क देने लगे। और हर तर्क पर रामकृष्ण उठते और नाचने लगते और कहते, क्या सुन्दर दलील दी! केशवचन्द्र सोचकर आये थे कि रामकृष्ण कहेगा कि गलत, तो विवाद शुरू होगा। रामकृष्ण ने कहा ही नहीं गलत, तो विवाद का तो कोई उपाय न रहा। और थोड़ी देर में केशवचन्द्र को बेचैनी अनुभव होने लगी और भीड़ भी थोड़ी बेचैन होने लगी कि यह क्या हो रहा है! जिस बात के लिए आये थे, वह कुछ होता दिखाई नहीं पड़ता था। केशवचन्द्र फीके पड़ते तो रामकृष्ण उनको जोश चढ़ाते कि बहुत सुन्दर, क्यों थकते हैं, कहें, बड़ी गजब की बात कह

रहे हैं; जंचती है, बिलकुल ठीक मालूम पड़ती है। सारे तर्क चुक गए, जल्दी चुक गए। क्योंकि विवाद चलता तो चुकना बहुत मुश्किल था।

तब केशवचन्द्र ने कहा कि यदि यह सब ठीक है तो फिर आप मानते हैं कि ईश्वर नहीं है। तो रामकृष्ण ने कहा कि तुम्हें न देखा होता तो मान भी लेता। तुम्हारी जैसी प्रतिभा जब पैदा होती है तो बिना ईश्वर के कैसे होगी? तुम्हें देखकर तो प्रमाण मिल गया कि ईश्वर है। अपने पास तो छोटी बुद्धि है। रामकृष्ण ने कहा, अपने पास तो बुद्धि बहुत नहीं है, उससे ही सोचते थे कि ईश्वर है। तुम्हें देखकर तो पक्का हो गया।

यह जो आदमी है, ऐसे आदमी प्रमाण नहीं देते।

केशवचन्द्र तो उस दिन चले गए भीड़-भाड़ में, लेकिन रात वापस आ गए। और रामकृष्ण से उन्होंने कहा: तुम जैसा आदमी हो गए हो ऐसा होने का मेरे लिए भी कोई उपाय है? रामकृष्ण ने विवाद किया होता तो केशवचन्द्र दुबारा वापस आनेवाला नहीं थे। लेकिन क्या खींच लाया होगा रात के अंधेरे में? इस आदमी का होना, इस आदमी का बीइंग, इसका अस्तित्व, इसका आनन्द! यह कुछ जानता है, जो प्रमाण से टूट नहीं सकता। यह कुछ जानता है, सारी दुनिया कहे गलत तो गलत नहीं हो सकता। इसने कुछ देखा है, इसने कुछ जीया है, इसने कुछ पा लिया है।

और लाओत्से कहता है, उसके प्रमाण उसमें ही प्रछन्न हैं। प्राचीन काल से आज तक इसकी नाम-रूपात्मक अभिव्यक्तियों का अंत नहीं आया। वह जो प्रकृति है, वह जो ताओ है, वह जो स्वभाव है, वह जो सागर है अस्तित्व का, वह अनन्त-अनन्त रूपों में अनन्त काल से प्रकट होता रहा है। उसकी अभिव्यक्तियों का कोई अंत नहीं है। सतत है धारा उसकी। और हम उसमें देख सकते हैं सभी वस्तुओं के जनक को। सभी वस्तुएँ उसमें से पैदा होती हैं, उसी स्वभाव से, और उसमें ही [illegible] जाती हैं।

लेकिन सभी वस्तुओं के जनक के आकार को मैं कैसे जानता हूँ? लेकिन कैसे बताऊँ उसका आकार? कैसे कहूं, क्या है उपाय? तुम अगर मुझसे पूछो कि कैसे जानते हो उसके आकार को तो भी बड़ी कठिनाई है। लाओत्से कहता है, इन्हीं के द्वारा, इन्हीं अनन्त-अनन्त अभिव्यक्तियों के द्वारा उसे जानता हूँ। यह जो दिखाई पड़ता है, इसके द्वारा ही उसे पहचानता हूँ, जो इसके पीछे छिपा है और दिखाई नहीं पड़ता है।

एक कवि को आप कैसे पहचानते हैं? उसके काव्य के द्वारा। और एक चित्रकार को कैसे पहचानते हैं? उसके चित्र के द्वारा। और अगर चित्रकार खो भी जाए, अंधेरे में छिप जाए और चित्र भर मौजूद हो तो भी हम जानते हैं। जो दिखाई पड़ रहा है, उससे उसे जानते हैं जो दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन ये सारे

आकार उसके हैं, फिर भी उसका कोई आकार नही है। यह आखिरी बात खयाल में ले ले।

जो सब आकारों में स्पष्ट होता है, उसका अपना आकार नही हो सकता। जिसका अपना आकार होता है, वह सब आकारों मे प्रकट नहीं हो सकता। सब आकारों में तो वही प्रकट हो सकता है जो निराकार हो, जिसका अपना निश्चित कोई आकार न हो। जो सिर्फ संभावना हो, एक पोटेंशियलिटी हो; अनन्त की संभावना हो।

लाओत्से कहता है, लेकिन इसके लिए मैं कोई प्रमाण नहीं दूंगा। अगर प्रमाण देखना है तो चारों तरफ प्रमाण मौजूद है। अगर उसके हस्ताक्षर देखने हैं तो वे चारों तरफ खुदे हैं। तुम भी उसके ही हस्ताक्षर हो। वृक्ष भी, पत्थर भी, तारे भी, फूल भी, पक्षी भी, सभी उसके हस्ताक्षर हैं। अनन्त-अनन्त रूपों में वह मौजूद है। लेकिन तुम उसे देख तभी पाओगे, जब तुम कम से कम अपने आकार के भीतर उसका अनुभव कर लो। तब वह तुम्हें सब आकार में दिखाई पड़ने लग जाएगा। और इसका कोई प्रमाण, बुद्धिगत प्रमाण नही दिया जा सकता। अनुभवगत प्रमाण हो सकता है।

और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने भीतर, अपने आकार के भीतर डूबकर उस निराकार को जान लेता है, उस दिन उसके जीवन मे जो क्रान्ति घटित होती है, उस क्रान्ति का नाम परम आचरण है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने भीतर छिपे हुए सत्य को अनुभव कर लेता है, पहचान लेता है, कहें हम परमात्मा, आत्मा, जो नाम देना हो---लाओत्से नाम भी नही देता, वह कहता है ताओ, ताओ का अर्थ है ऋत, नियम, दि लॉ, वह कहता है कि वह जो नियम है जीवन का आत्यतिक, वही---उसे जिस दिन कोई जान लेता है, उसके बाद उसका आचरण सदाचरण है। उस दिन के बाद उसके आचरण मे चेष्टा नही है। उस दिन के बाद वह जो भी कर रहा है, वह सोचा, विचारा, आयोजित---पूर्व-निर्धारित नही है। उस दिन के बाद जो भी उसमें हो रहा है, वही धर्म है।

हम सोचते हैं कि धार्मिक आचरण से धार्मिक आदमी पैदा होता है। लाओत्से कहता है, उलटी है बात, धार्मिक आदमी से धार्मिक आचरण पैदा होता है। हम सोचते हैं, आचरण बदलेंगे तो धार्मिक हो जाएंगे। लाओत्से कहता है, धार्मिक हो जाओ तो आचरण बदल जाएगा। और यह सूत्र सिर्फ भाषा का भेद नही है। पूरे जीवन की आमूल दृष्टि अलग हो जाती है। आचरण से जो शुरू करता है, वह परिधि से शुरू करता है---ऊपर-ऊपर भटकता है। जो अंतस से शुरू करता है, वह केन्द्र से शुरू करता है। ध्यान रखें, केन्द्र बदल जाए तो परिधि बदल जाती है; लेकिन परिधि की बदलाहट से केन्द्र नही बदलता है। अगर केन्द्र बदल जाए तो परिधि अनिवार्य रूपेण बदल जाती है।

क्योंकि परिधि केन्द्र का फैलाव है। लेकिन परिधि को बदल दें आप, बिलकुल ही बदल दें तो भी केन्द्र नहीं बदलता। क्योंकि परिधि निष्प्राण है; केन्द्र प्राण है। केन्द्र आधार है। परिधि तो केवल बाहरी व्यवस्था है। एक वृक्ष के पत्ते को हम काट दें, उससे वृक्ष नही बदलता। बल्कि एक पत्ते की जगह चार पत्ते निकल आते हैं। हम जो करते है आचरण में, वह पत्ते काटना है। और आचरण के पत्ते काटने का मतलब होता है आचरण का कलम, कलम कर रहे हैं आप। बेईमानी काटे; दोहरी बेईमानियों के पत्ते पैदा हो जाएंगे। चोरी काटें; चोरी नये रास्ते से शुरू हो जाती है। झूठ काटें; पच्चीस नये झूठ जन्म ले लेंगे।

लाओत्से कहता है, जड़ें काटें; फिर पत्ते नहीं काटने पड़ते हैं। फिर कोई फिक्र नहीं। पत्ते की बात छोड़ दो। वे अपने से ही गिर जाते हैं, और दुबारा नहीं आते। केन्द्र को बदलना जड को बदलना है।

अब मैं दोहरा दूं।

क्षुद्र है आचरण वह जो व्यवहार के परिवर्तन से पैदा होता है। परम आचरण है वह जो अंतस की क्रांति से जनमता है। क्षुद्र आचरण उपादेयता पर निर्भर होता है, परम आचरण आनद पर। परम आचरण सहज है, क्षुद्र आचरण खींचा हुआ, सोचा हुआ, प्रयोजन, प्रयास, यत्न, व्यायाम है। क्षुद्र आचरण और अनाचरण में कोई बुनियादी अतर नहीं है। परम आचरण दूसरे ही लोक की बात है। जैसे जमीन पर चलते-चलते कोई आकाश मे उडने लगे, उतना अंतर है। पंख लग जाएँ और यात्रा की सारी भूमि बदल जाए!

आज इतना ही। पाँच मिनट रुके और कीर्तन में भाग ले। ■■

ताओ है झुकने, खाली होने व मिटने की कला

सैंतालीसवां प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २० जुलाई १९७२

अध्याय २२ : खंड १
संघर्ष की व्यर्थता

झुकना है सुरक्षा।
और झुकना ही है सीधा होने का मार्ग।
खाली होना है भरे जाना।
और टूटना—टुकड़े-टुकड़े हो जाना ही है पुनर्जीवन।
अभाव है सम्पदा।
सम्पत्ति है विपत्ति और विभ्रम।
इसलिए सन्त उस एक का ही आलिंगन करते हैं;
और बन जाते हैं संसार का आदर्श।

Chapter 22 : Part 1
FUTILITY OF CONTENTION

To yield is to be preserved whole.
To be bent is to become straight.
To be hollow is to be filled.
To be tattered is to be renewed.
To be in want is to possess.
To have plenty is to be confused.
Therefore the Sage embraces the One,
And becomes the model of the world

एक अनूठी घटना दिखाई पड़ती है संसार में। सभी सफल होना चाहते हैं और सभी असफल हो जाते हैं। नहीं है कोई जो सुख नही चाहता हो। और ऐसा भी कोई नहीं है जो चाह-चाह कर भी सिवाय दुख के कुछ और पाता हो। जीना चाहते हैं सभी, और सभी मर जाते हैं। जरूर कहीं कोई जीवन का गहरा नियम अपरिचित रह जाता है; उसका यह दुष्परिणाम है।

एक व्यक्ति असफल होता हो तो जिम्मेदारी उसकी हो सकती है। लेकिन जब जगत में सभी सफलता चाहनेवाले असफल हो जाते हों, तब जिम्मेदारी व्यक्तियों की नहीं रह जाती। तब कहीं जीवन का कोई बुनियादी नियम ही चूक रहा है। यदि एक व्यक्ति सुख चाहता हो और दुख में पड़ जाता हो तो हम समझ ले सकते हैं कि उसकी भूल होगी। लेकिन जहां सभी सुख चाहनेवाले दुख में पड़ जाते हो, वहां व्यक्तियों पर जुम्मा नही थोपा जा सकता। **जीवन के नियम को समझने में ही सभी की समान भूल हो रही है।**

लाओत्से का यह सूत्र इस बुनियादी भूल से ही सम्बन्धित है।

लाओत्से कहता है कि जो जीतने की कोशिश करेगा, वह हारेगा। हम इसलिए नही हारते हैं कि कमजोर हैं; हम इसलिए हारते हैं कि जीतने की कोशिश करते हैं। इसे थोड़ा हम समझ लें। क्योंकि मनुष्य जाति का जो बुनियादी भ्रान्त तर्क है, वह इस पर ही निर्भर है। हारता हू मैं तो सोचता हूँ कि कमजोर था। तो शक्ति और बढा लूँ तो जीत जाऊंगा। थोडी शक्ति और बढ़ा लूँ तो जीत जाऊँगा। तो शक्ति को हम बढ़ाने में लगे रहते हैं। लेकिन कितनी ही शक्ति आ जाए आदमी के हाथ में, अन्तत. हार ही हाथ लगती है। जीत उपलब्ध नही हो पाती। सिकन्दर हारा हुआ मरता है, नेपोलियन हारा हुआ मरता है, सभी हारे हुए मरते हैं। **कमजोर तो हारते ही हैं, शक्तिशाली भी हारे हुए मरते हैं।** तो यह तर्क कि शक्ति ज्यादा होगी तो हम जीत जाएंगे, गलत है।

लाओत्से कहता है, जीतना चाहोगे तो हारोगे। **हार का कारण जीतने की इच्छा में छिपा है, शक्ति की कमी में नहीं।** असल मे, जो जीतना चाहता है, उसके मन को हम समझें।

जो जीतना चाहता है, पहली तो बात एक उसने स्वीकार कर ली कि हारने की भी सम्भावना है। जो जीतना चाहता है, उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि जीतना बहुत मुश्किल है। जो जीतना चाहता है, उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि मेरी जीत दूसरों पर निर्भर करेगी। क्योंकि जीत अपने पर निर्भर नहीं

करती; कोई हारेगा तो मैं जीतूंगा। तो जीत में दूसरे की गुलामी छिपी है। सब जीतनेवालों को हारनेवालों के अनुग्रहीत होना चाहिए; क्योंकि उनके बिना वे न जीत सकेंगे। और जो जीत दूसरे पर निर्भर है, उसे क्या हम जीत कह सकते हैं?

अगर मेरी जीत आप पर निर्भर है तो आप मेरी जीत के भी मालिक हो गए। आपकी मुट्ठी मे फिर बन्द है मेरी चाबी। आप हारेंगे तो मैं जीतूंगा। और यह जगत है विराट और बड़ा। और कितनी ही बड़ी शक्ति हो हमारे पास, सदा क्षुद्र है — इस जगत की शक्तियों को देखकर। और कितने ही हम हाथ-पैर तड़फाएं, हम इस जगत की शक्ति से ज्यादा न हो सकेंगे। हम इसके हिस्से हैं, छोटे से हिस्से हैं। हम हारेंगे ही।

और जैसे ही किसी व्यक्ति ने जीतना चाहने की वासना पैदा की, एक बात उसने और स्वीकार कर ली कि अभी वह हारा हुआ है। मनसविद कहते हैं कि जो हीनता-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इनफीरियॉरिटी कम्प्लेक्स से पीड़ित होते हैं, वे ही केवल जीत में उत्सुक होते हैं। वे महत्वाकांक्षी हो जाते हैं। महत्वाकांक्षा हीन व्यक्ति का लक्षण है। जैसे दवाई की तरफ बीमार आदमी जाता है, ऐसे ही महत्वाकांक्षा की तरफ हीन आदमी जाता है। इसलिए एक अजीब घटना घटती है।

एडलर ने पश्चिम में, इस सदी मे, इस सम्बन्ध में गहरे से गहरा काम किया है। एडलर का कहना है कि जो लोग भी जीवन में किसी बड़ी कमी से पीड़ित होते हैं, वे लोग उस कमी की परिपूर्ति के लिए कोई कम्प्लीमेन्टरी रास्ता खोज लेते हैं। जैसे लेनिन कुर्सी पर बैठता था तो उसके पैर जमीन को नही छूते थे। उसके पैर बहुत छोटे थे, ऊपर का हिस्सा बड़ा था। और एडलर का कहना है कि यह घटना ही लेनिन को बड़े से बडे पद की तलाश में ले गई। बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठकर उसने दिखा दिया कि पैर चाहे जमीन न छूते हो, लेकिन ऐसी कोई कुर्सी नही है जिस पर मैं न बैठ सकू।

कठिनाई उसकी यह थी कि वह किसी भी कुर्सी पर नहीं बैठ सकता था। किसी छोटी सी कुर्सी पर भी बैठता सामान्यतः किसी के घर में तो उसे बेचैनी शुरू हो जाती। उसके पैर छोटे थे, लटक जाते थे। एडलर कहता है कि लेनिन के लिए यही कमी उसकी महत्वाकांक्षा बन गई। उसने कहा, कोई फिक्र नहीं यदि तुम्हारी कुर्सिया बडी हैं और मेरे पैर छोटे पड़ते हैं; लेकिन मैं बता दूंगा जगत को कि ऐसी कोई भी कुर्सी नही है कि जिस पर मैं न बैठ सकूं। किसी भी कुर्सी पर वह ठीक से बैठ नही सकता था, वही अभाव दौड़ बन गया।

एडलर ने, दुनिया के जिनको हम बडे-बड़े लोग कहते हैं, उनका गहरा अध्ययन किया है। और हर बडे आदमी में, जिसको हम बड़ा आदमी कहते हैं, उसने

वह कमी खोज निकाली है जो उसकी महत्वाकांक्षा का कारण है।

यह स्वाभाविक है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अंधा आदमी अपने कानों की शक्ति को बढ़ा लेता है। बढ़ा ही लेगा। आंख का काम भी उसे कान से ही लेना है। इसलिए अंधों के पास कान अच्छे हो जाते हैं। और अगर अंधे संगीतज्ञ होते हैं तो कोई और कारण नहीं है; कान अच्छे हो जाते हैं। यह कभी आपने खयाल किया कि कुरूप व्यक्ति अपनी कुरूपता को छिपाने के लिए न मालूम कितनी सुन्दर चीजों का निर्माण करता है। अगर आप दुनिया के चित्रकारों को देखें, जिन्होंने सुन्दरतम रचनाएँ रची है, तो आप हैरान हो जाएँगे. उनके खुद के चेहरे सुन्दर नहीं हैं।

ऐसा हुआ एक गाँव मे मैं घर में मेहमान था किसी के। और अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन वहाँ हो रहा था। जिन मित्र के घर मैं ठहरा था, उन्होंने कहा, आप भी चलेंगे ? भारत भर से कोई बीस महिला कवि इकट्ठी हुई हैं। मैने कहा, मै तो नही जाऊगा, लेकिन एक बात आप खयाल करके लौटना कि बीस महिलाएँ जो वहाँ हैं, उनमें कोई एकाध सुन्दर भी हैं या नहीं। वे थोड़े हैरान हुए कि मैं उनसे ऐसा पूछूगा। लेकिन लौट कर वे और हैरान हुए। उन्होंने कहा, आश्चर्य, आपने पूछा तब मैं थोडा हैरान हुआ था; वहाँ जाकर मै और हैरान हुआ। वहाँ बीस महिलाएँ कुरूप थी।

महिला जब सुन्दर होती है, तब कविता वगैरह करने मे नही पडा करती। इसलिए दुनिया में सुन्दर महिलाओ ने कुछ नहीं किया। कम्पेन्शेसन नहीं है। सौंदर्य काफी है, किसी और चीज से पूरा करने का विचार नहीं उठता।

एडलर का कहना है कि इस दुनिया में जो ठीक-ठीक स्वस्थ व्यक्ति हैं, वे किसी महत्वाकांक्षा के पद पर नहीं पहुंच सकते। सिर्फ रुग्ण, बीमार, पंगु व्यक्ति ही महत्वाकांक्षा के पदो पर पहुंच सकते हैं। इसमें सचाई है। इसमें दूर तक सचाई है। जो कम है हमारे भीतर, उसे हम पूरा करना चाहते हैं, ओवर कम्पेंसेट करना चाहते है; ताकि सारी कमी ढँक जाए, उसकी परिपूर्ति हो जाए।

जब कोई व्यक्ति जीतने की आकाक्षा से भरता है, तब उसका मतलब है कि वह जानता है गहरे में कि मैं हारा हुआ आदमी हूँ। यह उलटा दिखाई पड़ेगा। लेकिन, एडलर ने तो अभी खोजा, लाओत्से ने इसे ढाई हजार साल पहले अपने सूत्र में लिखा था।

लाओत्से कहता है, अगर जीतना चाहते हो तो तो जीतने की कोशिश मत करना। वह हार की शुरुआत है। अगर जीतना चाहते हो तो जीतने की वासना ही तुम्हारी सबसे बड़ी शत्रु है। वही सिद्ध कर रही है कि तुम जीतने योग्य भी नहीं हो। वही सिद्ध कर रही है कि तुम गहरी हीनता के गड्ढे से भरे हो। वही सिद्ध कर रही है कि तुम रुग्ण हो, पंगु हो; कहीं कोई पक्षाघात है तुम्हारी

आत्मा में। यह किसी और आयाम से भी हम समझें तो खयाल में आ जाएगा।

अभी कुछ वैज्ञानिक एक नई बात प्रस्तावित कर रहे हैं। डार्विन का खयाल था कि आदमी इसीलिए अधिक विकसित हो सका दूसरे पशुओं से, क्योंकि वह ज्यादा बुद्धिमान है, ज्यादा रैशनल है। इसलिए जो संघर्ष है प्रकृति का, उसमें आदमी जीत गया और पशु हार गये। अब तक यह बात ठीक मालूम पड़ती रही है। लेकिन अब नवीनतम शोधें इस पर संदेह पैदा करती हैं। और वे कहती हैं कि आदमी का यह जो विकसित, तथाकथित विकसित, सो-कॉल्ड विकसित रूप दिखाई पड़ता है, यह आदमी के ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा श्रेष्ठ होने के कारण नहीं है। बल्कि इसका बुनियादी कारण है कि इस पृथ्वी पर आदमी का बच्चा सब से असहाय पैदा होता है, सब से हेल्पलेस। और यदि आदमी के बच्चे को माँ और बाप पालें और पोसें नहीं, और समाज चिन्ता न करे तो आदमियत बच ही नहीं सकती। सभी जानवरों के बच्चे आदमी के बच्चे से ज्यादा शक्तिशाली पैदा होते हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का बच्चा अगर जानवर की तरह शक्तिशाली पैदा करना हो तो कम से कम मां के गर्भ में उसे इक्कीस महीने रहना चाहिए। लेकिन तब वह पैदा ही नहीं हो सकेगा, मां मर जाएगी। क्योंकि वह इतना बड़ा हो जाएगा कि उसके जन्म का उपाय नहीं रहेगा। इसलिए अगर ठीक से समझें तो पशुओं को देखते हुए मनुष्य के सब जन्म गर्भपात हैं, एबॉरशन हैं। क्योंकि बच्चा अधूरा पैदा होता है। एबॉरशन का मतलब यह है कि नौ महीनों में बच्चा अधूरा पैदा होता है। अभी बहुत-सी चीजें, जो उसमें होनी चाहिए, नहीं हैं। अभी वे विकसित होंगी।

अगर हम गौर से देखें तो घोड़े का वह बच्चा है जो पैदा हुआ, चलने लगा, और दौड़ने लगा। आदमी के बच्चे को चलने में अभी वर्षों लगेंगे। पशुओं के बच्चे हैं, उठे और अपने जीवन की तलाश में चल पड़े, आजीविका खोजने लगे। आदमी के बच्चे को आजीविका खोजने में पच्चीस वर्ष लगेंगे।

आदमी का बच्चा जगत में सबसे ज्यादा कमजोर प्राणी है। और चूंकि आदमी कमजोर है, इसलिए उसने ओवर-कम्पेंसेट कर डाला, उसने सब जानवरों को पछाड़ दिया। उसने सब चीजों की परिपूर्ति कर ली। आदमी के नाखून को जानवरों के नाखून से तौलें तो पता चलेगा। अगर आप जानवर से सीधा लड़ें तो आदमी से ज्यादा कमजोर जानवर जमीन पर खोजना मुश्किल है। उसके दांत, उसके नाखून क्षण भर में आपको चीड़फाड़ देंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि नाखून की पूर्ति आदमी ने इतनी दूर तक की कि छुरी, तलवार, एटम बम्ब तक चली गई। वह नाखून की पूर्ति है। वह बढ़ाये चला गया अपने नाखूनों को। वह अपने दांतों को बढ़ाये चला गया। कभी आपने देखा है, जब एक टैंक युद्ध की तरफ जाता है, तब आपने टैंक के दांत देखे हैं? वे आदमियों के दांत हैं, जो जानवरों से कमजोर हैं। ओवर-कम्पें-

सेट हो गया। हमने और भी दांत मशीन मे पैदा कर के जानवरो को मिट्टी में मिला दिया।

नवीनतम शोधें यह कहती है कि आदमी का जिसको हम विकास कहते हैं, वह शायद उसकी हीनता, कमजोरी, असहाय अवस्था का परिणाम है।

जो हो, एक बात तय है कि ऊपर उठने की आकांक्षा नीचे गिरे होने का सबूत है। जो निचे गिरा हुआ है ही नही, वह ऊपर उठना नही चाहेगा। जो अपने में आश्वस्त है, वह किसी दूसरे का आश्वासन नही लेने जाएगा। जिसका अपने पर भरोसा है, वह अपने भरोसे को पाने के लिए दूसरे को हराने के उपद्रव में न पड़ेगा। हम संघर्ष करते हैं कुछ सिद्ध करने को; लड़ते हैं कुछ सिद्ध करने को कि हम कुछ हैं। यह इस बात की सूचना है कि मुझे भलीभांति पता है कि मैं कुछ भी नही हूँ। वह जो नोबॉडीनेस का, जो नाकुछ होने का भाव है, वही हमारी तड़पन बन जाता है कि हम सिद्ध करे जगत मे कि हम कुछ हैं।

लेकिन कितना ही हम सिद्ध करें, वह जो नाकुछ होने का भीतर छिपा हुआ बोध है, वह दब जाएगा, नष्ट नही होगा। और कितना ही हम जीतते चले जाएं, भय बना ही रहेगा कि कोई और शक्तिशाली होगा जो मुझे पराजित कर सकता है। और मुझे अपनी शक्ति बढ़ाते ही रहनी होगी। और किसी भी स्थिति में यह स्थिति नही बन सकती कि मेरा मूल जो भय था, भीतर की हीनता का, वह मिट जाए।

एक चक्कर है, एक दुश्चक्र है, वीसियस सरकिल है। वह दुश्चक्र ऐसा है कि जो मूल चीज है, उसको तो हम स्वीकार कर लेते हैं; फिर उसके विपरीत में कुछ करने में लग जाते है। मेरे पैर मे एक घाव है। उसको तो मै नही मिटाता; लेकिन आपकी आंखो मे घाव न दिखाई पडे, इसलिए मरहमपट्टी कर लेता हूँ। वह मरहमपट्टी, आपकी आंखो मे घाव न दिखाई पडे, इसलिए है। उस मरहमपट्टी मे वह औषधि नही है, जो मेरे घाव को ठीक करे। वह मरहमपट्टी मैं अपने घाव पर नही, आपकी आंखो पर कर रहा हूँ। आपको मै धोखा दे दूंगा; पर मेरा घाव बढ़ता चला जाएगा। आज नही कल, घाव का मवाद पट्टी को फोड़कर बाहर आ जाएगा। तब और मोटा पलस्तर मुझे करना होगा। धीरे-धीरे मै पलस्तरो मे घिर जाऊँगा। और भीतर सब घाव ही घाव हो जाएगा। क्योकि मेरी पूरी चेष्टा यह है कि किसी को मेरा घाव पता न चले।

लाओत्से जैसे लोग आपके घाव को आमूल रूपान्तरित करना चाहते है। वे कहते है कि हीनता मिटनी चाहिए; विजय पाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं कुछ हूँ, इसका पता चलना चाहिए; इसे दूसरो के सामने सिद्ध करने की जरूरत नही है।

और मै कितना ही सिद्ध करूँ, अगर भीतर मुझे पता नहीं है कि मै हूँ, कुछ हो, तो मैं कितना ही दूसरों को समझा लू, आखिर मे मै पाऊंगा कि मै वही का वही खड़ा हूँ। दूसरे भला राजी हो जाए, लेकिन मेरे भीतर का कंपन तो कायम रहेगा।

जो आदमी सड़क पर खड़ा था कल, आज राष्ट्रपति हो गया हो; तो भी उसके भीतर की घबराहट और हीनता वही की वही रहेगी। आज कम प्रकट करेगा, क्योंकि उसके पास शक्ति का आयोजन है चारों तरफ। इसलिए आज वह आपके सामने प्रकट नहीं करेगा, आपके सामने उसकी कमजोरी छिपी रहेगी। लेकिन खुद के सामने तो जाहिर रहेगी।

इसलिए एक और बड़ी अजीब घटना घटती है। जब आदमी बहुत धन इकट्ठा कर लेता है, तब उसे पहली दफा पता चलता है कि मैं कितना दरिद्र हूं। और जब आदमी के चारो तरफ फौज-फांटा खड़ा हो जाता है और भारी शक्ति इकट्ठी हो जाती है, तब उसे पता चलता है कि मैं कितना कमजोर हूँ। वह और तीव्रता से पता चलता है; क्योंकि कन्ट्रास्ट मिल जाता है। जैसे किसी ने काली दीवार पर सफेद खरिये से लकीर खींच दी हो। और भी ज्यादा प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती है कमजोरी।

लेकिन हमारा तर्क यह है कि हम यदि और लोगों को हराएं, और लोगो को मिटाएँ, और लोगों को समाप्त कर दें तो हम शक्तिशाली और विजेता हो जाएँगे। मनुष्य के मन की यह बुनियादी भूल है। इस भूल के खिलाफ यह सूत्र है। झुकना है सुरक्षा। टू ईल्ड इज टू बी प्रिजर्व्ड होल। झुकना है सुरक्षा। अगर बचना है तो झुक जाओ।

कभी देखा है, जब जोर की आँधी आती है? लाओत्से को माननेवाले चित्रकारो ने इस घटना के बहुत से चित्र बनाये हैं। जोर की आँधी आती है, बड़ा वृक्ष अकड कर खड़ा रह जाता है। न केवल अकड कर खडा रहता है, बल्कि आँधी से लड़ता है। छोटे-छोटे पौधे, घास के तिनके झुक जाते हैं। क्षण भर बाद आँधी जा चुकी होगी, बहुत से बडे वृक्ष गिर चुके होगे, जडे उखड गई होंगी, पर छोटे घास के तिनके वापस अपनी जगह पर खडे हो गये होगे।

लाओत्से कहता है, पूछो राज जीवन का छोटे घास के तिनकों से, जिनको बड़ी से बड़ी आँधी उखाड़ नहीं पाती। क्या है उनका राज? पूरे के पूरे सुरक्षित रह जाते हैं। इतने कमजोर है कि जरा सा झोंका हवा का उन्हें तोड़ दे; लेकिन भयंकर झंझावात चलता है और उनकी जड़ें भी नही हिलतीं। और जरा सी उनकी जड़ें! और बड़े-बड़े वृक्ष, जिनकी गहरी जडे हैं जमीन में, भूमिसात हो जाते हैं। पूछो, उन बड़े वृक्षो की भूल क्या थी? उन बड़े वृक्षों ने लड़ना चाहा; उन बड़े वृक्षो ने जीतना चाहा; उन बडे वृक्षों ने बड़े झंझावात से युद्ध मोल लिया। उन बडे वृक्षों ने कहा कि हम कुछ हैं। वे छोटे घास के तिनके चुपचाप झुक गए। टू ईल्ड इज टू बी प्रीजर्व्ड होल। झुक गए। उन्होंने कोई झगड़ा ही न लिया। उन्होंने झंझावात को दुश्मन ही न माना। उन्होंने झंझावात को प्रेम से अंगीकार कर लिया। उन्होंने खेल समझा, युद्ध न समझा। उन्होंने कहा, ठीक है, बह जाओ। उन्होंने रास्ता दे दिया।

अगर ठीक से समझें तो बड़े वृक्ष जरूर अपने भीतर हीनता से भरे रहे होंगे। वे रास्ता न दे सके। उन्हें लगा कि यह इज्जत का सवाल है। उनकी इज्जत बड़ी कमजोर रही होगी। उन्हें लगा होगा कि यह झंझावात हमें उखाड़ने आया है। कौन झंझावात किसे उखाड़ने आता है? झंझावात अपनी गति से आता है। आँधी को कोई प्रयोजन है बड़े से या छोटे से? आँधी अपनी गति से बहती है, अपने ताओ में, अपने स्वभाव में बहती है। किसी को तोड़ने, उखाड़ने, मिटाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन बड़े वृक्ष भीतर हीन रहे होंगे। डरे रहे होंगे। इज्जत का सवाल होगा, रेस्पेक्टेबिलिटी का सवाल होगा। लोग क्या कहेंगे? चारों तरफ लोग क्या हँसी उड़ायेंगे? उन्होंने इसे चुनौती समझा। झंझावात का जो स्वभाव था, इसे अकारण बड़े वृक्षों ने चुनौती समझा, चैलेन्ज समझा।

झंझावात को किसी के लिए कोई चुनौती नहीं थी। वृक्ष न होते तो भी झंझावात ऐसे ही बहता। ये वृक्ष न होंगे, तब भी आँधियाँ बहेंगी। ये वृक्ष नहीं थे, तब भी आँधियाँ बहती थीं। आँधियों को वृक्षों से क्या लेना-देना? लेकिन वृक्ष का अपना अहंकार आड़े आ गया। वृक्ष ने सोचा कि मुझे, जो मैं इतना बड़ा हूँ, चुनौती है; लड़ूंगा, जीत कर बताऊँगा। आँधी टूट कर रहेगी। कभी कोई आँधी नहीं टूटती, वृक्ष ही टूटता है। फिर बड़ा वृक्ष टकराता है। टकराता है, तो जड़ें हिल जाती हैं। ध्यान रखना, टकराने में ही हिल जाती हैं, आँधी से नहीं। वह जो रेसिस्टेन्स है वृक्ष का, वह जो प्रतिरोध है, वही अपनी जड़ों पर आत्महत्या हो जाता है। वृक्ष गिरता है आँधी के कारण नहीं। क्योंकि छोटे-छोटे पौधे नहीं गिरते तो वृक्ष के गिरने का क्या कारण होगा? वृक्ष गिरता है प्रतिरोध के कारण, विरोध के कारण, संघर्ष के कारण, लड़ने की वृत्ति के कारण। विजय की आकांक्षा से गिरता है। उखड़ जाती हैं जड़ें, वृक्ष भूमिसात हो जाता है।

और जो लड़ कर गिरता है, वह उठने की क्षमता खो देता है। जो लड़ कर गिरता है, वह उठने की क्षमता खो देता है; क्योंकि वे जड़ें ही टूट जाती हैं जो फिर उठा सकती थीं।

छोटे पौधे झुक जाते हैं। आँधी गुजर जाती है, बड़ी-बड़ी आँधियाँ गुजर जाती हैं और छोटे पौधे फिर खड़े हैं, मुस्करा रहे हैं—वैसे के वैसे जीवित, शायद और भी जीवित। यह आँधी का जो स्पर्श है, वह उन्हें एक और जीवन दे गया। यह जो आँधी उनके ऊपर से बह गई, वह उनकी धूल-धवांस भी हटा गई। यह जो आँधी उनके पास से गुजर गई, इसमें वे स्नान कर लिए। सद्य-स्नात, वे पुनः खड़े हो गए। यह आँधी उनके लिए शत्रु न रही, मित्र हो गई। यह आँधी उन्हें जीवन का पुलक दे गई, जीवन का अनुभव दे गई। यह आँधी उनके ऊपर से गुजरी मित्र की तरह। जैसे रात कोई चादर ओढ़ कर सो जाए, ऐसे वे आँधी को ओढ़ कर सो गये।

चुनौती नहीं थी आंधी उनके लिए; संघर्ष नहीं था।

आंधी जा चुकी है, वे छोटे पौधे वापस अपनी जगह खड़े हैं— और भी ज्यादा प्रसन्न, और भी ज्यादा अनुभव से भरे। और उनकी जड़ें और भी मजबूत हो गईं। क्योंकि हर अनुभव जड़ों को मजबूत कर जाता है। और वे और आश्वस्त हो गए, अपने होने से और आनंदित हो गए। और इस जगत के साथ उन्होंने एक गहरी मैत्री भी साध ली। आंधी भी उनका कुछ बिगाड़ती नहीं; आंधी भी उन्हें बना जाती है, सहला जाती है।

लाओत्से कहता है : झुकना है सूत्र सुरक्षा का, टू ईल्ड इज टु बी प्रीजर्व्ड होल। इसे हम और पहलुओं से भी देखें।

देखा है, रोज छोटे बच्चे गिर जाते हैं; पर चोट नहीं खाते हमारे जैसे। हम भी कभी छोटे बच्चों की तरह थे, और गिरते थे और चोट नहीं खाते थे। एक बड़े आदमी को एक बच्चे की तरह चौबीस घंटे गिरा कर देखें, तब आपको पता चलेगा। सब हड्डी-पसली टूट जाएगी, जगह-जगह फ्रैक्चर हो जाएंगे। होना तो उल्टा ही चाहिए था। बच्चे की हड्डी तो है कमजोर, कोमल; आपकी हड्डी तो ज्यादा मजबूत, ज्यादा शक्तिशाली है। बच्चा गिरता है, उठता है, खेलने लगता है। आप गिरते हैं, सीधा एम्बुलेन्स गाड़ी में सवार हो जाते हैं। फर्क क्या है? अगर शक्ति ही विजय है और शक्ति ही सुरक्षा है तो बच्चे की हड्डियां टूटनी चाहिए, आपकी नहीं।

छोड़ें बच्चे को। कभी देखा है शराबी को रास्ते पर गिर जाते? आप गिर कर देखें। जो शराब नहीं पीते हैं, साधु हैं भले, जरा गिर कर देखें शराबी की तरह रास्ते पर। तब पता चलेगा कि शराबी भी क्या चमत्कार कर रहा है। रोज गिरता है, रोज घर पहुँच जाता है। न हड्डी टूटती है, न कुछ होता है। शराबी में क्या राज है? वह बच्चे वाला ही राज है। वह लाओत्से वाला सूत्र है। असल में बच्चे को पता नहीं है कि वह गिर रहा है। वह झुक जाता है। वह गिरने से राजी हो जाता है; रेजिस्ट नहीं करता। शराबी का भी राज वही है। जब वह गिरता है, तब उसे होश नहीं है कि वह गिर रहा है। वह मजे से गिर जाता है।

गिरते वक्त आपको होश होता है कि मैं गिरा। आप विरोध करते हैं कि गिरूं नहीं। वह जो जमीन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है, ग्रेवीटेशन है, वह खींचती है नीचे आंधी की तरह। और आप उठते हैं ऊपर कि नहीं गिरूंगा। तो कशमकश में हड्डियां टूट जाती हैं। रेजिस्टेन्स है। वही रेजिटेन्स, वही प्रतिरोध, जो बड़ा वृक्ष आंधी को देता है, आप समझदार होकर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को देते हैं।

लाओत्से कहता है, गिर जाओ। जब गिर ही रहे हो, ईल्ड; तब लड़ो मत, तब गिर ही जाओ। अपनी तरफ से गिर जाओ। साथ दो। और हड्डियां नहीं टूटेंगी। वह बच्चा अनजान है। उसे कुछ पता नहीं है कि क्या हो रहा है। झुक

जाता है। बच्चा छोटे पौधे की तरह व्यवहार करता है। शराबी भी छोटे पौधे की तरह व्यवहार करता है। होश नहीं है इसलिए। यही शराबी होश में दोपहर मे गिरेगा, तब चोट खाएगा। और यही रात पीकर नाली में पड़ा रहेगा, सड़क पर गिर जाएगा, और चोट नहीं खायेगा।

कई बार ऐसा होता है कि गाड़ी उलट जाती है, कार उलट जाती है, छोटे बच्चे बच जाते है। लोग समझते है, भगवान बड़ा दयालु है। तब तो बड़े को बचाना चाहिए। अगर भगवान दयालु है, इस पर ज्यादा मेहनत हो चुकी है, ज्यादा खर्चा हो चुका है। यह धन्धा दया का नही है। एक बच्चे पर अभी पचास साल खर्च होंगे; तब लायक हो पाएगा, या नालायक हो पाएगा। जिस पर पचास साल खर्च हो चुके है, पहले इसे बचाना चाहिए। इसमें काफी इनवेस्टमेन्ट है। लेकिन यह मर जाता है। छोटे बच्चे बच जाते है।

नही, भगवान का इसमें कुछ हाथ नहीं है। छोटे बच्चे बच जाते हैं; क्योंकि ईल्ड कर जाते है; जो भी हो रहा है, उसमे साथी हो जाते है; उसके विरोध में खड़े नही होते है। उसको शत्रुता से नही लेते है। उसको मित्रता से ले लेते हैं। लेते हैं, होश ही नही है इसलिए।

सन्त इसी को होश से करता है। जो बच्चे अनजाने करते हैं, जो शराबी बेहोशी मे करता है, सन्त इसी को होश में करता है।

चीन और जापान, दोनो मुल्कों मे लाओत्से के आधार पर युद्ध की कई कलाएं और कई कौशल विकसित हुए हैं। युयुत्सु है, जूडो है। उनका सारा सीक्रेट, सारा राज यही सूत्र है। ईल्ड, जब दुश्मन चोट करे, प्रतिरोध मत करो, झुक जाओ।

कभी इसका प्रयोग करके देखें। कभी कोई जब आपको जोर से घूसा मारे, तब आप घूसे के खिलाफ बचाव न करें; घूसे को आत्मसात करने के लिए तैयार हो जाए, पी जाए। और आप पाएंगे कि जिसने घूसा मारा, उसकी हड्डी टूट गई। जिसने घूसा मारा, उसकी हड्डी टूट गई।

युयुत्सु की कला कहती है कि अगर तुम प्रतिरोध न करो तो तुम सदा जीते हुए हो। इसलिए अगर युयुत्सु जाननेवाले आदमी से आप पहलवानी करें तो आप हार जाएंगे। हारेंगे ही नहीं, हाथ-पैर तोड लेंगे। क्योंकि आप चोट करेंगे और वह सिर्फ चोट को पीएगा। उसकी शक्ति तो जरा भी नष्ट नहीं होगी; आप पांच-सात चोटें करके हीन हो जाएंगे। आपकी शक्ति नष्ट हो जाएगी। बल्कि युयुत्सु की गहरी कला यह है कि जब कोई आपको घूसा मारता है, तब अगर आप शान्ति से स्वीकार कर लें तो उसके घूसे की सारी ऊर्जा आपको उपलब्ध हो जाएगी। आप से यदि लड़े न तो उसके घूसे में जितनी शक्ति व्यय हुई, उतनी शक्ति आपके शरीर में हस्तान्तरित हो जाती है। आप उसे पी गये। दस-पाँच घूंसे उसे मार लेने दें, वह अपने आप थक जाएगा, अपने आप गिर जाएगा।

और यह जो मैं कह रहा हूँ, वह युयुत्सु कोई अध्यात्म नहीं है। यह तो सीधी-सीधी कला है लड़ने की। और युयुत्सु की खूबी है कि छोटा बच्चा भी बड़े पहलवान से लड़ सकता है। क्योंकि शक्ति का कोई सवाल नहीं है। ईल्ड करने का सवाल है, झुकने का सवाल है। आत्मसात करने का। दो शब्द समझ लें, प्रतिरोध और अप्रतिरोध, रेजिस्टेन्स और नॉन-रेजिस्टेन्स। अगर आप प्रतिरोध करते हैं तो आप हार जाएंगे। और अगर आप अप्रतिरोध में जीते हैं तो आप नहीं हार सकते। आँधियाँ निकल जाएंगी, आप वापस खड़े हो जाएंगे।

झुकना है सुरक्षा।

लाओत्से कहता है, मुझे कभी कोई हरा न सका, क्योंकि मैं हारा ही हुआ हूँ। कैसा मजेदार हो मामला, आप लाओत्से से लड़ने चले जाएं, वह तत्काल चारों खाने चित्त लेट जाएगा। कहेगा, ऊपर बैठ जाओ। जीत गये, गांव में डंका पीट देंगे। आप बड़े मूढ़ मालूम पड़ेंगे, जैसे कभी छोटा बच्चा अपने बाप से कुश्ती लड़ता है और बाप नीचे लेट जाता है। छोटा बच्चा ऊपर छाती पर चढ़ जाता है और चिल्लाता है खुशी में कि जीत गये। और बाप जानता है कि कौन जीत रहा है, कि कौन जिता रहा है।

लाओत्से कहता है, मैं कभी हराया न जा सका, क्योंकि मैं सदा हारा ही हुआ हूँ। तुम आओ, हम तैयार हैं। लाओत्से कहता है, मेरा कभी अपमान नहीं हुआ। क्योंकि मैंने कभी उस जगह कदम नहीं रखा, जहां सम्मान की अपेक्षा थी। मुझे कभी किसी सभा से बाहर नहीं निकाला गया; क्योंकि मैं बैठता ही वहां हूँ, जहां से और बाहर निकालने का उपाय नहीं है। एक सभा में लाओत्से गया है। जहां लोगों ने जूते उतार दिये, वह वहीं बाहर बैठ गया है। बहुत लोग कहते हैं, अंदर चलें, मंच पर चलें, भीतर बैठें। लाओत्से कहता है कि नहीं, वहाँ से मैंने कई को निकाले जाते देखा है। हम यहीं बैठेंगे; तुम हमारा कुछ भी न कर सकोगे।

घटना मुझे याद आती है; मुल्ला नसरुद्दीन एक सभा में गया। सदा उसकी आदत थी नम्बर एक होने की। जरा देर से पहुंचा, जैसा कि बड़े आदमियों को पहुंचना चाहिए। बड़े आदमी जानकर देर से पहुंचते हैं। क्योंकि छोटे आदमियों को अगर राह देखने को मजबूर न किया जाए थोड़ा-बहुत तो बड़ा आदमी बड़ा ही क्या रहा! थोड़ी देर से पहुंचा। लेकिन उस दिन कुछ गड़बड़ हो गयी। गाँव के बाहर से एक विद्वान आ गया था; वह सभापति बनकर बैठा हुआ था। व्याख्यान चल रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन जब पहुंचा, तब श्रोतागण मग्न थे। सुन रहे थे। वह पीछे बैठ गया। और कोई उपाय न था। बैठकर उसने अपनी कहानियाँ लोगों से कहना शुरू कर दी। थोड़ी देर में, उसकी कहानियाँ ऐसी थीं कि लोग मुड़ते गये। आखिर सभापति को चिल्लाकर कहना पड़ा कि नसरुद्दीन, यह शोभा नहीं देता। तुम्हें खयाल होना चाहिए कि इस सभा का सभापति मैं हूँ।

नसरुद्दीन ने कहा कि यह ख्याल आपका भ्रम है। मेरी तो सदा की मान्यता यह है कि जहां मैं बैठता हूं, वही जगह अध्यक्ष की जगह है। जहां मैं बैठता हूं, वही जगह अध्यक्ष की जगह है। जो समझदार हैं, वे मुझे पहले ही अध्यक्ष की जगह बैठा देते हैं। जो नासमझ हैं, उनकी सभा में गड़बड़ होती है। इस गांव में मैं ही अध्यक्ष हूं।

हमारा तर्क भी यही है, जो नसरुद्दीन का तर्क है। लाओत्से से हम राजी न होंगे। हमारा मन कहेगा, यह भी कोई बात है कि जहां लोगों ने जूते उतार दिये है, वहां बैठ जाएं। होना तो ऐसा चाहिए कि जहां हम बैठें, वहीं अध्यक्ष का पद आ जाए। हमारा भी मन यही कहेगा। आदमी की नासमझी का यही तर्क है।

लाओत्से के चिन्तन का जो मौलिक आधार है, वह यही है कि तुम जीतने-जाने की वासना में मत पड़ना; नहीं तो, आखिर में हारे हुए लौटोगे। तुम अपेक्षा ही न करना प्रशंसा की; अन्यथा तुम निन्दा पाओगे। ऐसा नहीं है कि तुम अपेक्षा नहीं करोगे तो लोग निन्दा करेंगे ही नहीं। लेकिन तब उनकी निन्दा तुम्हें छुएगी नहीं। तुम अपेक्षा नहीं करोगे तो भी लोग निन्दा कर सकते हैं। लेकिन तब तुम्हें उनकी निन्दा छुएगी नहीं। छूती क्यों है निन्दा? कहां छूती है?

प्रशंसा की जहां आकांक्षा होती है, वहीं निन्दा छूती है। वहीं घाव है। इच्छा होती है कि कोई नमस्कार करे और आप एक पत्थर फेंककर मार देते हैं। सोचा था, आप फूल लाएंगे और पत्थर ले आये। वह जो घाव है, पत्थर से नहीं लगता है। ध्यान रखना, वह जो फूल की आकांक्षा थी, उसकी वजह से ही जो कोमलता भीतर पैदा हो गई थी, उस पर ही घाव बनता है पत्थर का। आकांक्षा न हो फूल की तो कोई पत्थर भी मार जाए तो सिर्फ दया आएगी कि बेचारा क्यों मेहनत कर रहा है। व्यर्थ इसका उपाय है, नाहक की इसकी चेष्टा है।

बुद्ध पर कोई थूक गया है। उन्होंने पोंछ लिया अपनी चादर से और उस आदमी से कहा, कुछ और कहना है कि बात पूरी हो गई? आनन्द बहुत आग-बबूला हो गया, जो पास ही में बैठा था। उसने कहा, यह सीमा के बाहर है बात। हद हो गई, यह आदमी थूकता है। हमें आज्ञा दें, इस आदमी से बदला चुकाया जाना जरूरी है।

बुद्ध ने कहा, आनन्द, तुम समझते नहीं हो। जब आदमी कुछ कहना चाहता है, तब कई बार भाषा बड़ी कमजोर हो जाती है। यह आदमी इतने क्रोध में है कि शब्द और गालियां बेकार हैं; यह थूक कर कह रहा है। यह कुछ करके कह रहा है। जब कोई बहुत प्रेम में होता है, तब गले लगा लेता है। अब यह कहना बेकार है कि मैं बहुत प्रेम में हूं। जब आदमी के शब्द कमजोर पड़ जाते हैं, तब कृत्य उसे जाहिर करता है। आनन्द, तू नाहक नाराज हो रहा है। इस बेचारे को देख, इसका क्रोध बिलकुल उबल रहा है।

उबल तो क्रोध आनन्द का भी रहा था। बुद्ध ने आनन्द से कहा, लेकिन यह आदमी माफ किया जा सकता है। क्योंकि इसे जीवन के रहस्यों का कुछ भी पता नहीं है। तुझे माफ करना मुझे भी मुश्किल पड़ेगा। और फिर मजे की बात है आनन्द, कि गलती इसने की है, अगर गलती भी की है; लेकिन तू अपने को दंड क्यों दे रहा है? तुझसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है; इस आदमी ने मेरे ऊपर थूका है। गलती भी अगर इसने की है, तो इसने की है। तू आग-बबूला होकर अपने को क्यों जला रहा है?

बुद्ध ने कहा है: दूसरों की गलतियों के लिए लोग अपने को काफी दंड देते हैं। दूसरों की गलतियो के लिए। लेकिन यह हमारे खयाल में नहीं बैठता।

मुल्ला नसुरुद्दीन के पास कोई पूछने आया है। गांव में अकेला वह लिखा-पढ़ा आदमी है, जैसे कि लिखे-पढ़े होते हैं। खुद भी लिखता है तो पीछे खुद भी ठीक से पढ़ नहीं पाता। मगर गांव मे अकेला ही है। और अकेला होने से कोई प्रतिस्पर्धा, कोई प्रतियोगिता भी नही है। एक आदमी ने आकर पूछा है कि मुझे कोई आदेश दें, कोई धर्म की आज्ञा दें, कोई नियम मुझे बताएँ, जिसपर चलकर मै भी सार्थक हो सकू। नसरुद्दीन ने बहुत सोचा और फिर जो कहा, वह पिटा-पिटाया एक सिद्धान्त था, जो कि विचारक अक्सर सोच-समझ कर कहते रहते हैं। वही, जो हजार दफे कहा गया है। नसरुद्दीन ने बहुत सोचकर उसको कहा कि एक सूत्र पर जीवन को चलाओ : डू नॉट गेट एंग्री, कभी क्रोधित मत होओ।

या तो आदमी मूढ़ था, या बहरा था, या उसकी समझ मे नही पडा, या उसने सुना, नहीं सुना। उसने फिर कहा, वह तो ठीक है। मुझे कोई ऐसी चीज बताए कि जीवन बदल जाए। मुल्ला ने जोर से कहा कि बता दिया एक दफा, ठीक से याद कर लो, डू नॉट गेट एंग्री, क्रोधित मत होओ। लेकिन वह आदमी मूढ था, कि बहरा था, कि क्या था? उसने नहीं समझा तो फिर कहा कि अब आ ही गया हूँ तो कोई एक ऐसा गोल्डन रूल, कोई ऐसा स्वर्ण-सूत्र दे दे कि जिन्दगी बदल जाए।

मुल्ला ने डंडा उठाकर उसके सिर पर दे दिया और कहा कि हजार दफे कह चुका कि डोंट गेट एंग्री।

शायद मुल्ला को खयाल भी नहीं आया होगा कि क्या हुआ जा रहा है। हमारे खुद के सिद्धान्त भी हमारे काम के नहीं होते। हमारी सलाह हमारे ही काम नहीं पड़ती। सलाह देना बहुत बुद्धिमानी की बात नहीं है। कोई भी दे देता है। लेकिन अपनी सलाह को भी पूरा करना अति कठिन है।

बुद्ध ने आनन्द से कहा कि तू इतने दिनों से मेरे साथ है, तू अब तक इतनी छोटी-सी बात भी नही समझ पाया। आनन्द तो आग से भर गया था। उसने बुद्ध से कहा कि आप क्या कहते है, मुझे कुछ सुनाई नही पडता। अब तक यह

आदमी यहां बैठा हुआ है, जिसने आपके ऊपर थूका है, तब तक मैं होश-हवास में नहीं हूँ। बुद्ध ने कहा, आनन्द, वह भी होश-हवास में नहीं है। नहीं तो थूकता ही क्यों ? तू भी होश-हवास में नहीं है; क्योंकि जब मैं तुझे कहता हूँ, तो तू भी कहता है कि मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। तुम दो पागलों के बीच मेरी क्या गति है, इस पर भी तो सोचो।

जीवन कुछ गहन सूत्रों पर खड़ा है। उनका खयाल न हो तो कितना ही हम उनको सिद्धान्तों की तरह मान लें, हम उनके विपरीत व्यवहार किये चले जाते हैं। लाओत्से का यह सूत्र तो परम सूत्र है : सुरक्षा का अर्थ है झुक जाना। लेकिन यह अति कठिन है। यह बहुत कठिन है। यह क्रोध न करना भी बहुत कठिन पडता है, जो कि बहुत साधारण-सा सूत्र है। झुक जाना सुरक्षा है, यह तो बहुत उलटा मालूम पड़ता है, पैराडॉक्सिकल मालूम पड़ता है। जीतना है तो हार जाओ। सम्मान पाना है तो सम्मान चाहो ही मत। यह सब बहुत उलटा है।

लेकिन जितने गहरे हम जीवन में जाएंगे, उतने उलटे सूत्र हमको मिलेंगे। इसका कारण यह नहीं है कि वे उलटे हे। उसका कारण है कि हम सिर के बल खड़े हैं; हमे उलटे दिखाई पड़ते हैं। हम सिर के बल खड़े हैं। हमारे पूरे जीवन की चिन्तना उलटी है। दुख भी पाते हैं उसके कारण, फिर भी हमे खयाल नहीं आता कि हम सिर के बल खडे है। और नहीं आने का कारण है कि आसपास हमारे जो लोग हैं, वे भी सिर के बल खड़े हैं। ऐसा समझें कि किसी गांव में आप पहुंच जाएं महायोगियो के, जहां सभी शीर्षासन कर रहे हो। अगर आप में थोड़ी भी बुद्धि हो तो आपको भी उलटा खड़ा हो जाना चाहिए। अन्यथा आप उलटे आदमी मालूम पड़ेंगे।

जीसस के पास कोई आया है और जीसस से कहता है कि आपकी बातें उलटी मालूम पड़ती हैं। उन्होने कहा कि मालूम पडेगी ही; क्योंकि तुम सिर के बल खडे हो। लेकिन तुम्हे याद भी नहीं आएगा; क्योंकि तुम्हारे चारों तरफ भी लोग वैसे ही खड़े हैं।

पुरानी पीढ़ी मरते-मरते नई पीढ़ी को सिर के बल खडा होना सिखा जाती है। सक्रामक है बीमारी, एक दूसरे को पकडते चली जाती है। फिर इन उलटे खडे लोगों मे अगर सफल होना हो तो उलटा खड़ा होना जरूरी है। इसलिए लाओत्से का सूत्र उलटा दिखाई पडता है। अन्यथा सीधा है। अगर प्रशंसा चाहिए तो निन्दा मिलेगी। नहीं चाहिए प्रशसा तो भी मिल सकती है; लेकिन छुएगी नहीं। पर क्यों, प्रशंसा चाहिए तो निन्दा क्यों मिलेगी ? क्या कारण है ? क्या हर्ज है प्रशंसा चाहने में ? निन्दा क्यों मिलेगी ?

उसके कारण हैं कि आपके आसपास जो लोग है, उनका भी तर्क यही है। इसे हम थोडा समझ लें। मैं भी प्रशंसा चाहता हूँ; आप भी प्रशंसा चाहते हैं। और

आपका पड़ोसी भी प्रशंसा चाहता है। सारा संसार प्रशंसा चाहता है। जहां सभी लोग प्रशंसा चाहते हैं, वहां जो आदमी भी प्रशंसा चाहने की चेष्टा में आगे बढ़ेगा, वे सारे लोग ही उसकी निन्दा शुरू कर देंगे। क्योंकि जो खुद को ऊपर ले जाना चाहते हैं, वे दूसरों को नीचे रखें, यह आवश्यक है, अनिवार्य है। अगर ऐसे में हर किसी को ऊपर जाने दू तो मैं अपनी सम्भावनाए खो रहा हूँ। और इस जगत में ऊपर कम स्थान होते जाते हैं। जितने ऊपर जाइए, उतने स्थान कम। पहाड़ की चोटी है, पिरामिड की तरह है यह। जितने ऊपर जाइए, उतना स्थान कम होता चला जाता है।

और जितने ऊपर जाइए, उतने दुश्मन बढ़ते चले जाते हैं। और जो आदमी बिलकुल शिखर पर पहुँचता है, सारा संसार उसका दुश्मन हो जाता है। और सारा संसार चाहेगा कि तुम जमीन पर आओ। और सारा ससार साथी हो जाएगा आपको जमीन पर उतारने में। उन सबके भी आपस के कलह हैं, वह अलग बात है। लेकिन मैकेवेली ने लिखा है कि अपने शत्रु का शत्रु अपना मित्र है। ठीक है। जिस आदमी को नीचे गिराना है, सब गिराने वाले उसके खिलाफ इकट्ठे हो जाएगे। हालाकि बात अलग है, कल यह जब गिर जाएगा, तब ये आपस में फिर लड़ेंगे। क्योंकि फिर सवाल उठेगा कि कौन ऊपर उठे।

देखा, पिछले महायुद्ध में क्या हुआ? जो सदा के दुश्मन थे, वे मित्र हो गए। कोई सोच सकता था कि स्तालिन और चर्चिल और रुजवेल्ट साथ खड़े होंगे। कल्पना के बाहर है। लेकिन हिटलर जरा सीमा के बाहर चला जा रहा था। वह बिलकुल शिखर पर ही होने की कोशिश कर रहा था। तब तो रुजवेल्ट, चर्चिल और स्तालिन को साथ खड़े होने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। वे एकदम मित्र बन गय। लेकिन यह बात जाहिर थी कि हिटलर के मरते ही यह मित्रता तत्क्षण टूट जाएगी। यह मित्रता ज्यादा देर तक नही टिक सकती। यह मित्रता तो सिर्फ हिटलर की वजह से थी। हिटलर के मरते ही खत्म हो गई। दूसरे महायद्ध में जो मित्र थे, युद्ध के हटते ही शत्रु हो गए। रूस और अमरीका फिर शत्रुता में खड़े हो गए।

चीन कम्युनिस्ट है, कोई सोच नही सकता कि अमरीका से कैसे उसकी मित्रता बन सकती है। लेकिन बिलकुल सहज है नियम से; बनेगी। बननी ही चाहिए। क्योंकि अपने शत्रु का शत्रु मित्र है। चीन और रूस के बीच अगर जरा-सा भी कलह खड़ा होता है तो अमरीका और चीन के बीच मैत्री बन जाएगी।

इस जगत में जो आदमी प्रशंसा की आकांक्षा करता है, सभी प्रशंसा चाहनेवाले उसके शत्रु हो जाते हैं। सब उसको नीचे खींचने की कोशिश करेंगे। वे निन्दा करेंगे।

और ध्यान रहे, किसी की प्रशंसा करनी बहुत मुश्किल काम है और निन्दा करनी बहुत आसान काम है। क्योंकि जब भी आप किसी की प्रशंसा करेंगे, तब लोग पूछेंगे, प्रमाण क्या है? लेकिन आप किसी की निन्दा करें तो कोई प्रमाण

नहीं पूछता कि प्रमाण क्या है? क्यों? क्योंकि हम चाहते ही हैं कि निन्दा सही हो। अपनी प्रशंसा का हम प्रमाण नहीं मांगते; दूसरे की निन्दा का हम प्रमाण नहीं मांगते।

लेकिन अपनी निन्दा का हम प्रमाण मांगते हैं; दूसरे की प्रशंसा का प्रमाण मांगते हैं। प्रमाण क्या है? गवाह कौन है? अगर कोई आपसे आकर कहता है कि फलां आदमी बहुत ईमानदार है तो आप कहते है कि प्रमाण क्या है? अभी बेईमानी का मौका न मिला होगा। या तुम्हारे पास सबूत क्या है? और अगर यह आदमी सबूत भी ले आये तो हम सोचेंगे कि यह आदमी, खुद लानेवाला भी ईमानदार है या नहीं? जरूर कोई साजिश होगी, कोई षडयंत्र होगा, कोई हाथ होगा। नहीं तो कोई किसी की प्रशंसा क्यों करेगा? कोई आपसे कहे कि फलां आदमी बेईमान है, चोर है; आप कहते है कि मैं पहले ही जानता था, यह होगा ही। इसके लिए कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

तो जो व्यक्ति प्रशसा चाहेगा, वह सारे जगत से निन्दा को आमत्रित कर लेगा। अपनी ही तरफ से निमत्रण बुला रहा है। फिर वह जितना सिद्ध करने की कोशिश करेगा, उतना ही दूसरे लोग भी कोशिश करेंगे कि तुम गलत हो। इस सूत्र का शीर्षक है · फ्यूटिलिटी ऑफ कन्टेंशन, दावे की व्यर्थता। जब आप दावा करेंगे तो सारी दुनिया दावा करेगी कि गलत हैं। और बडा कठिन है दावे को बचा लेना। कोई उपाय नहीं है। वे सिद्ध कर ही देंगे कि आप गलत है। एक और बड़े मजे की बात है कि एक बार दावा गलत हो जाए, सही या गलत, फिर उसे कभी भी झुठलाया नही जा सकता है।

हमारे हृदय मे इच्छा यह है कि मेरे सिवाय कोई ठीक नहीं है। यह हम जानते हैं। अरब मे वे कहते है कि ईश्वर हर आदमी को बनाकर एक मजाक कर देता है, उसके कान में कह देता है कि तुमसे बढ़कर आदमी मैंने बनाया ही नही। सभी से कह देता है, यही खराबी है। और प्राइवेट में कह देता है, इसलिए दूसरे को पता ही नही है कि दूसरे को भी यही कहा हुआ है। वे सभी यह खयाल लेकर जिन्दगी भर चलते है कि मुझसे बेहतर आदमी जगत मे दूसरा नहीं है। और सभी यह खयाल लेकर चलते है।

तो लाओत्से का सूत्र हमारे खयाल में आ सकता है। झुकना है सुरक्षा, झुकना ही है सीधा होने का मार्ग। अगर किसी व्यक्ति को सीधा, सादा, सरल, ऋजु व्यक्तित्व चाहिए तो उसे झुकने की कला सीख लेनी चाहिए। हम सब अकड़ने की कला सीखते है। हम कहते हैं कि अगर तुम्हें सीधा रहना है, रीढ़ के बल खडे रहना है, तो झुकना मत, चाहे टूट जाना। सब शिक्षाएं यही समझाती है कि झुकना मत, चाहे टूट जाना। हम बड़ा आदमी उसे कहते हैं, जो झुका नहीं, भला टूट गया। अहंकार का सूत्र यही है, झुकना मत, टूट जाना।

लेकिन जीवन का यह सूत्र नहीं है। ध्यान है आपको, बच्चों के सब अंग कोमल होते हैं, झुकनेवाले होते हैं। बूढ़े के सब अंग सख्त हो जाते हैं, झुकते नहीं हैं। वैज्ञानिक कहते है कि बूढ़े के मरने का जो बुनियादी कारण है, वह उम्र नहीं है, अंगों का सख्त हो जाना है। अगर बूढ़े के अंग भी इतने ही कोमल बनाए रखे जा सकें, जैसे बच्चे के हैं, तो मृत्यु का कोई बायलॉजिकल कारण नहीं है।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि आजतक वैज्ञानिक यह नहीं समझ पाए कि आदमी क्यो मरता है। क्योंकि जहा तक शरीर का सम्बन्ध है, ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता है कि आदमी बहुत-बहुत समय तक क्यों न जी सकेगा। सिर्फ एक बात दिखाई पड़ती है कि धीरे-धीरे अग सख्त होते चले जाते हैं। वह जो नमनीयता है, फ्लेक्जिबिलिटी है, वह खो जाती है। वह नमनीयता का खो जाना ही मृत्यु का कारण बनता है। जितना सख्त हो जाता है सब भीतर, उतनी ही मौत करीब आ जाती है। जितना भीतर सब होता है नमनीय, तरल, उतनी मृत्यु दूर है।

यह जो बात शरीर के सम्बन्ध मे सही है, मनुष्य की अतरात्मा के सम्बन्ध मे और भी ज्यादा सही है। जो झुकने के लिए जितना राजी है, उतना ही वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। और जो झुकने से बिलकुल इनकार कर देता है, वह तत्क्षण मृत्यु को उपलब्ध हो जाता है। यह दूसरी बात है कि हम मरे हुए भी जी सकते है, और आत्मा मरी-मरी रहे, तो भी उसे शरीर ढो सकता है। अकड मौत है आध्यात्मिक अर्थों में। नमनीयता जीवन है।

लाओत्से कहता है : और झुकना है सीधा होने का मार्ग, टू बैण्ड इज टू बिकम स्ट्रेट। उलटी बाते हैं न। झुकोगे तो लोग कहेंगे, ऐसे बार–बार झुकोगे, आदत हो जाएगी झुकने की, फिर सीधे कैसे हो सकोगे? इसलिए सीधे रहो, झुको मत। लेकिन खयाल है आपको, इसको कोशिश करके देखे, झुके मत, सीधे रहें। एक चौबीस घटे बिलकुल न झुकाए शरीर को, सीधा रखे; तब आपको पता लगेगा कि बस, अब मौत आती है। नही, झुकने से कोई झुकता नही है; हर बार झुक-कर सीधा होने की ताकत पुनर्जीवित होती है। इसको समझ ले।

दिन भर आप जागते हैं। यह तो अच्छा है कि कोई समझाने आपको आता नही है कि सोये मत, नही तो सुबह जागेगे कैसे? कुछ है ऐसे लोग जो सोने से डरते है कि सुबह जागेंगे कैसे? मनोवैज्ञानिकों के पास बहुत से लोग पहुंच जाते हैं, जिनको यह भय रहता है। और बीमारी सख्त होती है, तभी अनेक लोक डरते हैं सोने मे। उन्हें लगता है कि पता नही, फिर उठ पाएं कि न उठ पाए। कम से कम जागते-जागते तो मरें। कहीं सोये-सोये ही मर गये तो पता भी नही चलेगा कि मर गए। जिन्दा रहने पर तो कभी पता चला ही नहीं; मरने का भी पता नहीं चलेगा। दोनो बातें ही चूक गई।

लेकिन कोई आपसे कहता नहीं, सोओ मत, नहीं तो जागोगे कैसे ?

हालांकि सोना उलटी प्रक्रिया है; सोना बिलकुल उलटा है जागने से। लेकिन कभी खयाल किया है कि जो आदमी जितना सोता है, उतना गहरा जागता है, उतना चैतन्य जागता है। रात जितनी गहरी होती है नींद, सुबह उतना गहरा होता है जागरण।

आपको एक बीमारी का पता तो होगा, अनिद्रा का, कि रात अनेक लोग हैं जो सो नहीं पाते। लेकिन उनको भी यह खयाल नहीं है कि जब रात वे सो नहीं पाते, तब दिन वे जाग भी नहीं पाते हैं। वह दूसरी बात उनके खयाल में नहीं है। अनिद्रा की जिसको बीमारी है, उसको अजागरण की भी बीमारी होगी। वह बात खयाल में नहीं आती उसे। क्योंकि नींद की गहराई पर जागने की गहराई निर्भर है। जितनी गहरी होगी नींद, जितनी तलस्पर्शी होगी, उतना ही सुबह गहरा जागरण होगा। अगर रात नींद उथली है तो सुबह जागरण भी उथला है। अगर रात नींद बिलकुल नहीं हुई तो सुबह सिर्फ आपकी आँखें खुल गईं, आप जागे नहीं।

रात आदमी आखे बन्द कर लेता है; लेकिन आंख बन्द कर लेने से सोने का कोई सम्बन्ध है? हम सब सोचते है कि आंख बन्द कर ली तो सो गये। नहीं, नींद आती है तो आख बन्द होती है। आंख बन्द कर लेने से दुनिया मे कोई नहीं सो सकता। आखे बन्द किये पड़े रहिए रात भर। नींद नहीं आती तो आंखें बन्द करने का नाम नींद नहीं है। तब ठीक दूसरी बात भी खयाल रख लें; सुबह आंख खोल ली है तो उसका नाम जागरण नहीं है। क्योंकि जागरण का अनुपात निर्भर करता है नींद की गहराई पर। इसे और तरह से देखें।

एक आदमी दिन भर मेहनत करता है। जितनी उसकी मेहनत होती है, उतना गहरा उसका विश्राम होता है। कई लोग सोचते है कि दिन भर विश्राम करते रहें तो विश्राम का अच्छा अभ्यास रहेगा, और रात काफी गहरा विश्राम हो जाएगा। वे गये, उनको विश्राम कभी नहीं हो पाएगा। बल्कि रात उनको बिस्तर पर व्यायाम करना पड़ेगा। क्योंकि जितना व्यायाम करने से बच गए हैं, वह कौन करेगा? और सुबह वे थके हुए उठेंगे; क्योंकि रात भर जब व्यायाम करेंगे, तब सुबह थके हुए उठेंगे ही। उनकी जिन्दगी में दुष्ट चक्र पैदा हो गया।

वे सोचते हैं, विश्राम ज्यादा करेंगे तो ज्यादा विश्राम उपलब्ध हो जाएगा। जिन्दगी उलटे, विपरीत सूत्र से चलती है; वह जो अपोजिट पोलरिटी है, जो ध्रुवीयता है विरोधों की, उससे चलती है। अगर गहरा विश्राम चाहिए तो गहरा श्रम करना होगा। गहरे श्रम में उतर जाएं, विश्राम अपने आप आ जाएगा। गहरी नींद में चले जाएँ, जागरण अपने आप आ जाएगा। ठीक से जाग लें, नींद अपने आप आ जाएगी। अगर आपको रात नींद न आती हो तो मैं नहीं कहूंगा कि नींद लाने का उपाय करें। मैं आपसे कहूँगा कि दौड़ें, मकान के सौ-पचास चक्कर

लगाएँ। नींद न आने का मतलब इतना है कि आपने कोई श्रम नहीं किया, आप थके नहीं है। दौड़ें, सौ चक्कर मकान के लगा आएँ। फिर आपको नींद लानी न पड़ेगी, आ जाएगी।

लाओत्से कहता है, और झुकना ही है सीधा होने का मार्ग। इस भ्रान्ति में मत पड़ना कि अकड़ कर खड़े रहें तो सीधे हो जाएंगे। अकड जाएंगे, लकवा लग जाएगा, पैरालसिस हो जाएगी। पैरालसिस का नाम सीधा होना नहीं है। जो झुकने में जितना कुशल है, उसके खड़े होने में उतनी जीवन्तता होती है, स्वास्थ्य होता है। जीवन के समस्त तलों पर झुकना सीखें तो आप खड़े हो जाएंगे।

लेकिन हर जगह हर आदमी अकड़ा हुआ है और अपने को बचा रहा है कि कहीं झुकना न पड़े, कही झुकना न पडे। सभी इस कोशिश में लगे हैं, सभी अकड गये है, फ्रोजन हो गए हैं। अब उनमें खून नहीं बहता है। सब अकड़े खड़े हुए है। इस-लिए एक दूसरे से मिल भी नहीं सकते, मैत्री भी सम्भव नहीं है। प्रेम असंभव हो गया है। निकट आना मुश्किल है।

यह जो हमारी अकडे होने की दुर्दशा है आज, उसका कारण वह सूत्र है, जो हमारे खयाल मे बैठा हुआ है: झुकना ही मत, टूट भला जाना। मिट जाना, लेकिन झुकना मत। लेकिन ध्यान रहे, हमारा मिटना भी मुर्दा होगा और हमारा टूटना भी सिर्फ विध्वस होगा।

इस सूत्र के आगे लाओत्से कहता है: खाली होना है भरा जाना, टू बी हॉलो इज टू बी फिल्ड। वर्षा होती है। पहाड़ो पर भी होती है, खड्डो मे भी होती है। पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं, खड्डे झील बन जाते है। खड्डे भर जाते हैं, खाली थे इसलिए। और पहाड खाली रह जाते है; क्योकि पहले से ही भरे हुए हैं। पहाड पर भी उतनी ही वर्षा होती है। कोई गड्ढो पर वर्षा विशेष कृपा नही करती। सच तो यह है कि गड्ढे पहाड़ पर गिरे पानी को भी खींच लेते है, अपने में भर लेते हैं। क्या है उनकी ताकत? खाली होना ही उनकी ताकत है।

लाओत्से कहता है कि जो जितने खाली हैं, इस जगत मे जो परमात्मा का प्रसाद है, वह उतना ही ज्यादा उनमें भर जाता है। जो अहंकारी है, अकडे खड़े हैं पहाड़ो की तरह, वे खड़े रह जाएंगे। जो खाली है, वे भर जाएगे। इसका मत-लब यह हुआ कि हमे खाली करने की कला आनी चाहिए। भरने की फिक्र हम न करें। हम सब भरने की फिक्र करते है। खाली करने में हमें डर लगता है। भरे चले जाते है; कूड़ा, कबाड, कचरा, सब भरे चले जाते है। इकट्ठा करे चले जाते हैं, जो मिल जाए। बर्नार्ड शा ने कही कहा है कि कई चीजें मैं फेंक सकता हू अपने घर की; लेकिन इसलिए नही फेंकता कि कहीं दूसरे न उठा लें। वह भी फिक है। ये बेकार हो गई है, कोई मतलब की नही है; लेकिन दूसरे इकट्ठा कर लेंगे तो उनका ढेर बडा हो जाएगा। तो इकट्ठा करता चला जाता है आदमी।

कभी आपने सोचा है, आप क्या-क्या इकट्ठा करते हैं ? क्यों करते रहते हैं ? कुछ लोग कुछ नहीं तो वे डाक-टिकट ही इकट्ठा कर रहे हैं, पोस्टल स्टैम्प इकट्ठा कर रहे हैं। पूछें उनको, क्या हो गया है ?

लेकिन कोई फर्क नहीं है। एक आदमी रुपया इकट्ठा करता है; उसको हम पागल नहीं कहेंगे। एक आदमी डाक-टिकट इकट्ठा करता है; एक आदमी कुछ और इकट्ठा करता है। इकट्ठा करना विचारणीय है; क्या इकट्ठा करता है, यह बड़ा सवाल नहीं है। हम अपने को भर रहे हैं। खाली न रह जाएं; कहीं ऐसा न हो कि मौत आए और पाए कि बिलकुल खाली है, कोई फरनीचर ही नहीं है इनके पास। तो हम सब कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा करके मौत के वक्त कहेंगे कि देखो, इतना सब सामान इकट्ठा कर लिया। लेकिन आप खाली ही रह जाएंगे। यह सब सामान आपको खाली रखने का कारण बनेगा।

जिस आदमी को भरना है, उसे अपने को खाली करना आना चाहिए। खाली करने का मतलब यह है कि आदमी के भीतर स्पेस चाहिए, जगह चाहिए। जो भी विराट उतर सकता है, उसको जगह चाहिए। हमारे भीतर अगर परमात्मा आना भी चाहे तो जगह कहां है ? है कोई जगह, थोड़ी-सी भी, जहां उससे कहें कि कृपा करके आप यहां बैठ जाइए। खुद के बैठने की जगह नहीं है, खुद अपने बाहर खड़े हैं। भीतर तो कोई जगह है ही नहीं। अपने बाहर-बाहर घूमते हैं, भीतर तो कोई जगह है ही नहीं। परमात्मा मिल भी जाए और कहे कि आते हैं आपके घर में तो वहां स्थान कहां है ?

जीवन का जो भी परम रहस्य है, वह खुद को खाली करने की कला में निहित है। इसे हम ऐसा समझें।

अगर आप पूछें शरीरशास्त्री से और अगर आप लाओत्से से पूछें तो शरीर-शास्त्री की जो अब की समझ है, वह वही कहती है जो लाओत्से कहता है। आपने कभी खयाल किया है कि आप जब सांस लेते हैं, तब आप आती सांस पर जोर देते हैं कि जाती सांस पर ? लाओत्से कहता है कि खाली करनेवाली सांस पर जोर देना। लेने की फिक्र ही मत करना, वह अपने से आ जाएगी। उसकी आपको क्या चिन्ता करनी है ? आप को सिर्फ सांस को उलीच कर बाहर कर देना है। आप सांस लेना मत अपनी तरफ से। वह काम परमात्मा कर लेगा, प्रकृति कर लेगी। आप सिर्फ खाली कर दें।

जीवन में जो परम रहस्य है स्वास्थ्य का, वह इतने से फर्क से भी हल हो जाता है। अगर कोई व्यक्ति सिर्फ सांस को खाली करे और लेने का काम न करे, आने दे अपने से, उसे अपूर्व स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाएगा। आप सीढ़ियां चढ़ते हैं; थक जाते हैं। अबकी दफा ऐसा करना, सीढ़ियां चढ़ते वक्त सिर्फ सांस छोड़ना, लेना मत। और आप थकेंगे नहीं। सीढ़ियां चढ़ते वक्त सिर्फ सांस छोड़ना, खाली कर

देना बाहर; और लेते वक्त आप फिक्र मत करना, शरीर को लेने देना। और आप पाएंगे कि आप कितनी ही सीढ़ियां चढ़ सकते हैं, और नहीं थकेंगे। क्या हो गया? जब आप सांस लेते हैं, तब भीतर की जो गन्दी सास है, वह तो भीतर ही बनी रहती है। आप ऊपर से सांस लेते हैं, वह ऊपर से बाहर चली जाती है। भीतर की गंदगी तो भीतर ही भरी रह जाती है। वह भीतर की गंदी सांस, वह कार्बन-डायाक्साइड ही आपकी हजार बीमारी और कमजोरी और सब चीजों का कारण है। लेकिन हमारा जोर लेने पर ही क्यों है? हमारी वृत्ति के कारण है। हम हर चीज को लेना चाहते हैं, छोड़ना किसी चीज को भी नहीं चाहते। यह एक आध्यात्मिक कब्जियत, स्पिरिचुअल कंस्टिपेशन है। कोई भी चीज छोड़ना नहीं चाहते, मल-मूत्र भी छोड़ना नहीं चाहते; उसको भी संभाल के रखे हुए हैं।

एक वैज्ञानिक विचारक है पश्चिम में, मेथियार अलेक्जेन्डर; उसने सारी जिंदगी लोगों की कब्जियत पर काम किया है। और वह कहता है कि कब्जियत मानसिक कजूसी का परिणाम है। शारीरिक उसका कारण नही है। जो लोग कुछ भी नहीं छोडना चाहते हैं, आखिर में वे मल भी नही छोडना चाहते। फ्रायड ने तो बहुत अजीब प्रतीक खोजा है। वह एकदम से कठिन मालूम पडता है। वह कहता है कि सोने को पकड़ना और मल को पकडना एक ही प्रक्रिया है। और पीला रग सोने का और मल का भी पीला रंग, वह कहता है, महत्वपूर्ण है।

फ्रायड ने तो बहुत मेहनत की है बच्चों पर। क्योंकि मां और बाप सब छुडवाने की कोशिश करते है बच्चे से। जा, शरीर को साफ कर, मल को बाहर निकाल! लेकिन बच्चे को एक बात समझ में आ जाती है कि एक चीज ऐसी है कि जिसके द्वारा वे मा-बाप से भी विद्रोह शुरू कर सकते है। वह नही जाता है। वह कहता है कि नही, कोई खयाल ही नही है। वह रोकता है, वह मा-बाप को बताता है कि तुम क्या समझते हो, एक चीज तो कम-से-कम मेरे पास भी है, जो मै ही कर सकता हूं, और तुम करवा नही सकते।

फ्रायड कहता है, ट्रोमैटिक, भारी अभिघातज हो जाती है यह घटना। बच्चे की पहली ताकत यही है। और तो कोई दूसरी ताकत भी नहीं है गरीब के पास। और मां-बाप के पास तो सब कुछ है; वे कुछ कर सकते हैं। बच्चे के पास एक ताकत है; मां-बाप को प्रसन्न कर सकता है अगर वह चला जाए पाखाना। मां-बाप को प्रसन्न कर देगा। न जाए, घर भर में चिन्ता खड़ी कर देगा। वह दो दिन सम्हाल ले, सयमी हो जाए, सब को बेचैन कर डालेगा। उसके हाथ में एक ताकत आ गई। यह बच्चा सीख रहा है चीजों को रोकना। फिर जिंदगी भर उसका सम्बन्ध गहरा होता चला जाएगा; हर चीज को रोकने की वृत्ति मजबूत होती चली जाएगी।

कंजूस आदमी अक्सर कब्जियत से भरे होंगे। जो आदमी सहज चीजें दे सकता

है, बांट सकता है, वह कब्जियत का शिकार नहीं होगा। हमारे जीवन में एक ऑर्गैनिक यूनिटी है; सब चीजें जुड़ी हैं, अलग अलग नहीं हैं। छोटी सी चीज भी जुडी है, बहुत छोटी चीजें भी जुड़ी हैं।

आप खाना खा रहे हे। लोग भरते चले जाते हैं। मनोवैज्ञानिक पूछते हैं कि चबाते क्यों नहीं लोग, भरते क्यों चले जाते हैं? चबायेंगे तो देरी लगेगी। भरने की इतनी जल्दी है, भर लेना है। अगर आप ठीक से चबायें तो आपको कम-से-कम एक कौर बयालीस बार चबाना ही पड़ेगा। तभी वह ठीक से चबा पाएंगे। लेकिन, बयालीस बार एक कौर? सोच कर ऐसा लगेगा कि जिंदगी तो चबाने में ही चली जाएगी। भर दो। आपको पता ही नहीं है कि पेट के पास फिर कोई दात नही है और पेट सिर्फ एक तरह की चमडी है। और पेट के पास उसे पचाने का कोई उपाय नहीं है। ऊपर से भरते चले जाएं, नीचे से निकलने मत दें। और य दोनो घटनाएं एक साथ चलती है। तो आदमी की जिंदगी एक कचरे का ढेर हो जाती है।

यह में इसलिए कह रहा हूँ कि सब चीजे जुडी हुई हैं। जो आदमी ठीक से नही चबायेगा, वह हिंसक हो जाएगा। उसका व्यवहार हिंसक हो जाएगा। क्योकि जो आदमी ठीक से चबा लेता है, उसकी हिंसा की बडी मात्रा चबाने में निकल जाती है। ठीक से चबानेवाले लोग मिलनसार होंगे। ठीक से नही चबानेवाले लोग मिलनसार नहीं होगे। जो ठीक से चबा लेगा, उसका क्रोध कम हो जाएगा। क्योकि दात हमारी हिंसा के साधन हैं। जो ठीक से नही चबाएगा, वह कही और क्रोध निकालेगा, वह किसी और को चबाने के लिए तैयार रहेगा।

और भरने की जल्दी है कि भरते चले जाओ। यह आपको हैरानी होगी जानकर कि यूनान मे, जब सभ्य था यूनान, अपनी ऊंचाई पर पहुचा था, लोग खाने के टेबल पर साथ में पक्षी का पंख भी रखते थे। जैसे दांत साफ करने के लिए हम कुछ लकडिया रखते है, ऐसे वे हर टेबल पर खानेवाले के साथ एक पक्षी का पंख रखते थे। वह इसलिए था कि निगलो, गटको, फिर पंख को मुँह में डाल कर के वोमिट कर दो, वमन कर दो। फिर और खाओ। सम्राट नीरो दिन में आठ-दस दफे खाना खाता था। दो डॉक्टर रख छोड़े थे। वह खाना खाएगा, डॉक्टर उसको उलटी करवा देंगे, वह फिर अपने टेबल पर आकर खाना खाएगा। भरते आओ। क्या कारण है ऐसा हमे भरने का? यह क्या पागलपन है?

मैं घरों मे जाता हूँ, कभी अमीरो के घर में पहुंच जाता हूँ तो वहाँ समझ भी नहीं पड़ता कि वे रहते कहा होंगे? सब भरा हुआ है। सब भरा हुआ है। निकलने का भी रास्ता नही है। कैसे निकल कर बाहर आते है, कैसे भीतर जाते है, कुछ पता नहीं। मगर यह घर का ही सबूत नही है, यही भीतर मन का भी सबूत है। क्योंकि हमारे घर हमारे मन है। और हमारे मन हमारे घर है, उसका ही फैलाव है।

लाओत्से कहता है, खाली होना है भरे जाना। तुम अपने को भीतर से खाली करने की सोचो; भरने का काम प्रकृति पर छोड़ दो। वह सदा भर देती है। तुम सिर्फ गड्ढे बनाओ, तुम सिर्फ खाली करो, तुम सिर्फ खाली करो।

और टूटना, टुकड़े-टुकड़े हो जाना है पुनर्जीवन। और घबड़ाओ मत कि टूट जाऊंगा। और घबड़ाओ मत कि मिट जाऊंगा। और घबड़ाओ मत कि मर जाऊंगा। क्योंकि मरना नये जीवन की शुरुआत है। जन्म शुरुआत है मृत्यु की और मृत्यु पुनः शुरुआत है जन्म की। टूटने से मत घबड़ाओ। टूटने को तैयार रहो। क्योंकि तुम टूट सकोगे तो नये हो जाओगे। नया होने का ढंग एक ही है कि हम बिखरना भी जानें, टूटना भी जानें, समाप्त होना भी जानें। हम पकड़ कर रखना चाहते हैं अपने को, कि कुछ मिटे न, कुछ टूट न जाए। हम जीवन की प्रक्रिया के विपरीत चल रहे हैं।

यह जीवन की पूरी प्रक्रिया एक वर्तुल है। एक नदी सागर में गिरती है। सागर में धूप और सूरज की किरणें उसे भाप बनाती हैं। वह भाप फिर आकर पहाड़ पर वर्षा कर जाती है। फिर गंगोत्री में भर जाता है पानी। फिर गंगा बहने लगती है। फिर गगा जाकर सागर में गिर जाती है। एक वर्तुल है। गगा अगर सागर में गिरते वक्त कहे कि अगर मैं सागर में गिरूं और बिखरूं तो नष्ट हो जाऊंगी, गगा अपने को रोक ले, न जाए सागर में गिरने तो क्या होगा? उस दिन गगा मर जाएगी। क्योंकि पुनर्जीवन का उपाय नही रह जाएगा। गंगा को सागर में खोना ही चाहिए। वही उसके नये होने का उपाय है। फिर ताजा हो जाएगी।

और ध्यान रखें, इतनी यात्रा में गगा गन्दी हो जाती है—स्वभावतः। सागर उसे फिर नया और ताजा कर देता है। बिखर जाती है, सब रूप खो जाता है। फिर नया और ताजा कर देता है। बिखर जाती है, सब रूप खो जाता है, फिर निमज्जित हो जाती है मूल में। फिर धूप, फिर बादल बनते हैं। फिर इन बादलों में गदगी नहीं चढ़ सकती है। बादल शुद्धतम होकर आकाश मे आ जाते हैं। फिर हिमालय पर बरस जाते हैं। फिर गगोत्री नई और ताजा है। फिर यात्रा शुरू हो जाती है।

लाओत्से कहता है, जीवन एक वर्तुल यात्रा है। टूटना पुनः होने का उपाय है; मिटना नये जीवन की शुरुआत है। मृत्यु नया गर्भाधान है। इसलिए घबड़ाओ मत कि टूट जाएंगे, टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे, अगर झुकेंगे तो मिट जाएंगे, अगर खाली रहेंगे तो क्या भरोसा, भरें न भरें, किसपर विश्वास करें? अपनी सुरक्षा अपने ही हाथ करनी है। ऐसा बचाने की कोशिश जिसने की, वह सड़ जाएगा। उसकी गति अवरुद्ध हो जाएगी। गति का सूत्र है: मिटने की सदा तैयारी। जीवन का महासूत्र है प्रतिपल मरने की तैयारी, प्रतिपल मरते जाना। प्रतिपल मरते जाना।

बायजिद रात जब बिदा होता है अपने शिष्यों से रोज नमस्कार करता और कहता, शायद सुबह मिलना हो, न हो मिलना, आखिरी प्रणाम! वह रोज आखिरी नमस्कार! सुबह उठकर कहता है कि फिर एक मौका मिला नमस्कार का। शिष्यों ने कई बार बायजिद को कहा कि आप यह क्या करते हैं रोज रात को? बायजिद कहता कि रोज रात को मृत्यु में जाने की तैयारी होनी चाहिए। और तभी तो मैं सुबह इतना ताजा उठता हूँ; क्योंकि तुम सिर्फ सोते हो, मैं मर भी जाता हूँ। इतना गहरा उतर जाता हूँ, सब छोड़ देता हूँ जीवन को।

इसलिए बायजिद की ताजगी पाना बहुत मुश्किल है। सुबह बायजिद जब उठता तो वैसे जैसे नया बच्चा जनमा हो। उसकी आंखों में वही निर्दोषिता है। क्योंकि शाम जो मर सकता है, सुबह फिर वह पुनर्जीवित हो जाता है। हम तो रात में नींद में भी अपने को पकड़े रहते हैं कि कहीं खिसक न जाएँ, सम्भाले रखते हैं, कहीं कोई गड़बड़ न हो जाए। तो सुबह हम वैसे ही उठते हैं, जैसे हम रात भर सोते हैं।

अभाव है संपदा। सम्पत्ति है विपत्ति और विध्वंस। अभाव है संपदा, न होना संपत्ति है। होना विपत्ति है।

लाओत्से कहता है, जितना ज्यादा तुम्हारे पास होगा, उतने ही तुम अड़चन और मुसीबत में रहोगे। क्योंकि भोग तो तुम उसे पाओगे नहीं, सिर्फ पहरा दे पाओगे। और धन जितना ज्यादा होता जाएगा, उतना तुम्हारी चिन्ता का विस्तार होता चला जाएगा। जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह प्रतिपल भारहीन, निर्भार होकर जी पाता है।

पाम्पेई का नगर जला, सारा गाँव भागा। जो-जो बन सका जिससे ले जाते, ले चला। ज्वालामुखी फूट पड़ा आधी रात। कोई अपनी तिजोरी ले जा रहा है, कोई अपने कागजात ले जा रहा है। कोई अपने बच्चे को, कोई अपनी पत्नी को। जिसको जो सुविधा थी, वह लेकर भागा। और सभी दुखी हैं; सभी दुखी हैं। क्योंकि सभी का बहुत-कुछ छूट गया है। आग इतनी अचानक थी और क्षण भर रुकना मुश्किल था कि जो हाथ में लगा, वह लेकर भागा। सभी रो रहे हैं।

सिर्फ एक आदमी पाम्पेई के नगर में नहीं रो रहा है, अरिस्टीपक नाम का आदमी नहीं रो रहा है। तीन बजा है रात का; उसी भीड़ में जहाँ पूरे नगर के लोग अपना सामान लेकर भाग रहे हैं, वह अपनी छड़ी लिए जा रहा है। अनेक लोग उससे कहते हैं, अरिस्टपीक, कुछ बचा नहीं पाये? अरिस्टपीक कहता है, कुछ था ही नहीं। हम इकट्ठा करने की झंझट में ही नहीं पड़े तो बचाने की भी कोई झंझट नहीं रही। सारे लोग भाग रहे हैं और अरिस्टपीक टहल रहा है। लोग उससे पूछते हैं, तू भाग नहीं रहा है? अरिस्टपीक कहता है कि इतने वक्त हम रोज ही सुबह घूमने जाते हैं। वह अपनी छड़ी लिए घूमने जा रहा है। चिंतित नहीं हो? पीछे तुम्हारा मकान तो होगा? अरिस्टपीक कहता है, अपने सिवाय

अपने पास और कुछ भी नही है। अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है, यह अर्थ है अभाव का। अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है। और इसलिए मौत भी अरिस्टीपक से कुछ छीन न पाएगी।

इसका यह मतलब नहीं कि आपके पास कुछ भी न हो। इसका यह मतलब भी नहीं है कि अरिस्टपीक के पास भी कुछ नहीं था। कम-से-कम छड़ी तो थी। इसका मतलब कुल इतना है कि यह जो परिग्रह का भाव है कि मेरे पास यह है, यह है, यह है, वही दुख का कारण बनेगा। क्या है, क्या नहीं है, यह महत्वपूर्ण नहीं है। भीतर सम्पत्ति को पकड़ने की जो वृत्ति है, कि मेरे पास है, कि मेरा है, वही दुख का कारण बनेगी। और वहीं चिन्ताओं का जन्म है।

अभाव है सम्पदा। कुछ भी नहीं है तो उसी के साथ सारी चिन्ताएं भी विलीन हो गईं। यह एक आतंरिक दशा है।

एक छोटी सी कहानी है, जो मुझे बहुत प्रीतिकर रही है। एक सम्राट एक साधु के प्रेम मे पड गया। साधु था भी अद्भुत। मोह बढ़ता गया सम्राट का। आखिर सम्राट ने एक दिन कहा कि इस वृक्ष के नीचे न पडे रहे, मेरे महल मे चलें। साधु तत्क्षण उठकर खड़ा हो गया और उसने कहा, चलो। सम्राट बडा चिन्तित हुआ। सोचा था, साधु कहेगा कि कहाँ संसार मे उलझाते हो। महल? हम महल नही जा सकते, हम ने सब त्याग कर दिया है। सम्राट भी प्रसन्न होता अगर साधु ऐसा कहता। और सम्राट और जोर से आग्रह करता कि नहीं महाराज, चलना ही पड़ेगा। पैर पकड़ता, हाथ-पैर जोड़ता और सोचता, यह साधु महातपस्वी है। लेकिन साधु खड़ा ही हो गया। भिक्षा का पात्र उठा लिया, जो छोटी-सी पोटली में बंधे हुए कपड़े-लत्ते थे दो-चार, उन्हें कधे पर टांग लिया और पूछा : कहां है रास्ता?

सम्राट के बिलकुल प्राण ही निकल गए। उसने मन मे कहा, किस साधारण आदमी के पीछे मैने इतने दिन गंवाए? यह तो तैयार ही बैठे थे। प्रतीक्षा ही थी। सिर्फ हमारी राह ही देख रहे थे। हम भी बुद्धू निकले।

लेकिन अब कह ही चुके थे, फंस ही गये थे तो रास्ता भी बताना पड़ा, लेकिन बड़े बेमन से। महल पहुचते-पहुंचते साधु तो विदा ही हो चुका था। साधु तो बचा ही नही—उसी क्षण जब साधु खडा हो गया चलने के लिए। अब तो एक जबरदस्ती का मेहमान था—बिना बुलाया मेहमान। लेकिन जब कह दिया था सम्राट ने तो उसे ठहराना पडा। उसे ठहरा दिया। परीक्षा की दृष्टि से ही श्रेष्ठतम जो भवन था, उसमे ही ठहराया। अच्छे से अच्छे जो भोजन थे, उसकी व्यवस्था की। अच्छे से अच्छे कपडे दिये। और साधु गजब का था—साधु था ही नही सम्राट की नजरों में—जो भी सम्राट कहता, करने को राजी हो जाता। कहा, यह कपडे छोड दो, वह उतार कर तत्काल खडा हो जाता। कीमती वेषभूषा पहना दी, पहन ली। बड़े शानदार बिस्तरे पर सोने को कहा, मजे से सो गया। सुन्दरतम स्त्रियां

सेवा में लगाई, पैर फैला दिए। सम्राट ने कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया मैं। एक दफा तो यह ना कहे ! पन्द्रह दिन में ही सम्राट ऊब गया और घबड़ा गया। एक दिन सुबह आकर उसने कहा कि महाराज, बहुत हो गया। मुझमें और आपमें को फर्क ही नही है। साधु ने कहा, फर्क ? जानना कठिन है। लेकिन अगर जानना चाहते हो तो मेरे पीछे आओ।

साधु ने कपड़े सम्राट के वापस उतार कर रख दिए, अपने कपडे पहन लिए, अपना डंडा उठा लिया, अपनी झोली, अपना भिक्षापात्र सभाला और बाहर निकल आया महल के। सम्राट पीछे-पीछे चला। नदी आ गई। सम्राट ने कहा, अब बता दे। फकीर ने कहा, जरा नदी के उस पार चलें। नदी के पार भी निकल गया। सम्राट बोला, अब बता दें वह भेद। उसने कहा, थोडा और आगे। राज्य की सीमा आ गई। सम्राट ने कहा, अब ? उस फकीर ने कहा, अब मैं पीछें नहीं जाना चाहता, तुम भी मेरे साथ मे चलो। सम्राट ने कहा, यह कैसे हो सकता है? मेरा महल है पीछे, मेरा राज्य है।

उस फकीर ने कहा, अगर तुम्हे समझ मे आ सके फर्क तो समझ लेना। मेरा कोई महल पीछे नही है, मेरा कोई राज्य पीछे नही है। **मैं तुम्हारे महल में था, लेकिन तुम्हारा महल मुझमें नहीं है।** सम्राट ने पैर पकड लिया और कहा, महाराज, बड़ी भूल हो गई। साधु ने कहा, लौट चल सकता हूँ, कोई हर्जा नहीं है। लेकिन तुम फिर मुसीबत मे पड जाओगे। अब तुम लौट ही जाओ, मुझे कोई अड़चन नही है वापस... । जैसे ही उस साधु ने कहा वापस, सम्राट का पसीना छूट गया। साधु ने कहा, फिर तुम पूछोगे कि महाराज, फर्क क्या है ? मुझे तुम जाने ही दो, ताकि तुम्हें फर्क याद रहे। अन्यथा और कोई कारण मेरे जाने का नहीं है। वापस चल सकता हूँ।

क्या है आपके पास, यह सवाल नही है; कितना आपके भीतर चला गया है, यही सवाल है। भीतर न गया हो तो आप खाली है। अभाव है। **उस अभाव में ही विश्रान्ति है, आनन्द है, मुक्ति है।**

इसलिए सन्त उस एक का ही आलिंगन करते है और बन जाते है ससार का आदर्श। इस एक नियम का, एक ताओ का, इस खाली होने के सूत्र का, इस झुक जाने की कला का, इस मिट जाने की तैयारी का, इस एक नियम का पालन करते है और बन जाते है संसार का आदर्श।

बनना नहीं चाहते ससार का आदर्श, नहीं तो कभी नही बन पाएंगे। जो बनना चाहते हैं, वे कभी नही बन पाते। जो इन कलाओं को जानते हैं जीवन की, वे अनजाने संसार का आदर्श बन जाते है।

आज इतना ही। कीर्तन करें, फिर जाएँ।

समर्पण है सार ताओ का

अड़तालीसवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनाक २१ जुलाई १९७२

अध्याय २२ : खंड २

संघर्ष की व्यर्थता

वे अपने को प्रकट नहीं करते,
और इसलिए ही वे दीप्त बने रहते हैं ।
वे अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते,
इसलिए दूर-दिगन्त उनकी ख्याति जाती है ।
वे अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं करते,
इसलिए लोग उन्हें श्रेय देते हैं ।
वे अभिमानी नहीं हैं,
और इसीलिए लोगों के बीच अग्रणी बने रहते हैं ।

चूंकि वे किसी वाद की प्रस्तावना नहीं करते,
इसलिए दुनिया में कोई भी उनसे विवाद नहीं कर सकता है ।

और क्या यह सही नहीं है, जैसा कि कहा है प्राचीनों ने :
" समर्पण में ही है संपूर्ण की सुरक्षा । "
और इस तरह सन्त सुरक्षित रहते हैं और संसार उनको सम्मान देता है ।

Chapter 22 : Part 2

FUTILITY OF CONTENTION

He does not reveal himself,
And is therefore luminous.
He does not justify himself,
And is therefore far-famed.
He does not boast of himself,
And therefore people give him credit.
He does not pride himself,
And is therefore the chief among men.

It is because he does not contend
That no one in the world can contend against him.

Is it not indeed true, as the ancients say,
' To yield is to be preserved whole ? '
Thus he is preserved and the world does him homage.

मनुष्य की तीव्र आकांक्षा है कि दूसरे उसे जानें और दूसरे उसे पहचानें। इस आकांक्षा का मौलिक कारण क्या है ?

मौलिक कारण है कि मनुष्य स्वयं को नहीं जानता है और स्वयं को नहीं पहचानता है। यह गहरी कमी है। और इस कमी को वे दूसरे से सम्मान पाकर, मान पाकर, श्रेय पाकर, भर लेना चाहते हैं। जो हमारे पास नहीं है, वह हम दूसरों से उधार मांग लेना चाहते हैं।

लेकिन कितने ही लोग जान लें और कितने ही लोग पहचान लें, जो अपने को ही नहीं पहचानता है, उसका जो गड्ढा है, उसकी जो कमी है, वह दूसरों के पहचानने से भर नहीं सकती। और जब मैं अपने को ही नहीं जानता तो मैं लोगों को भी क्या पहचनवा सकूंगा कि मैं कौन हूँ। वह एक झूठ होगा। लेकिन अगर बहुत लोग उस झूठ को दोहराने लगें तो मुझे भी भरोसा आ जाएगा। हमारे सच और झूठ में बहुत फर्क नहीं होता। हमारे सच और झूठ में इतना ही फर्क होता है कि जिस झूठ पर हम भरोसा करते हैं, वह हमारा सच हो जाता है।

एडॉल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है -- और हिटलर ने बड़ी महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं, वह आदमी बहुत महत्वपूर्ण था -- उसने लिखा है कि सत्य और असत्य में मैंने कोई ज्यादा फर्क नहीं पाया। असत्य को बार-बार दोहराते रहें, धीरे-धीरे वही सत्य हो जाता है। और यह उसने अनुभव से कहा है। उसने खुद बहुत असत्य दोहराये और वे सत्य हो गए। और वे इतने सत्य हो गये कि दूसरों ने उन्हें सत्य माना सो माना ही, हिटलर भी उनपर भरोसा करने लगा।

अगर आप एक झूठ लोगों से कहते रहें तो थोड़े दिनों में आप भी भूल जाएंगे कि वह झूठ है। पुनरुक्ति विस्मरण बन जाती है। पुनरुक्ति, बार-बार दोहराने से, सत्य की जन्मदात्री हो जाती है -- उस सत्य की जो हमारा सत्य है। इसलिए हमारे सत्य में और झूठ में इतना ही फर्क होता है कि झूठ कम दोहराया गया है और सत्य ज्यादा दोहराया गया झूठ है।

इसीलिए पुराने झूठ बहुत सत्य मालूम पड़ते हैं; क्योंकि हजारों साल से आदमियों ने उन्हें दोहराया है। नया सत्य भी झूठ मालूम पड़ता है; क्योंकि वह दोहराया नहीं गया है। अभी नया है। तो हम पुराने झूठ को भी मान लें; लेकिन, नये सत्य को मानने की तैयारी नहीं होती है। क्योंकि हमारे लिए सत्य का एक ही अर्थ है कि कितना दोहराया गया है।

इसलिए हम पूछते हैं कि कोई शास्त्र कितना पुराना है। जितना पुराना, उतना

सत्य। इसलिए सभी धर्मों के लोग अपने-अपने शास्त्र को बहुत पुराना सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। और अगर कोई सिद्ध करे कि उतना पुराना नहीं है तो उन्हें भी पीड़ा होती है। वे चाहते हैं कि उनका धर्म-ग्रन्थ सबसे ज्यादा पुराना हो तो सबसे ज्यादा सत्य हो जाएगा। क्योंकि हमारे मन में सत्य का यही अर्थ है कि कितनी बार दोहराया गया है। पुराना होगा तो ही ज्यादा दोहराया गया होगा।

लेकिन असत्य को कोई हजारों साल तक दोहराये तो भी सत्य नही होता। और सत्य को शायद किसी ने एक बार भी नहीं कहा हो तो भी वह सत्य ही होगा। सत्य और असत्य में बुनियादी अन्तर है, गुणात्मक अंतर है; कोई परिमाण का अतर नहीं।

लेकिन जैसा आदमी है, उसके सभी सत्य दोहराये गये झूठ हैं। आप अपने सम्बन्ध मे ही कुछ बातें दोहराते रहते हैं। फिर लोग भी उनको दोहराने लगते हैं। फिर भरोसा आ जाता है आपको कि मैं यह हूँ। और यह भरोसा जिन्दगी को व्यर्थ कर देता है।

लाओत्से इस सूत्र में कहता है: वे अपने को प्रकट नहीं करते और इसलिए वे दीप्त बने रहते हैं। सत की परिभाषा है इस सूत्र में। लाओत्से जिसे संत कहेगा, उसकी; हम जिसे सत कहेंगे, उसकी नही। क्योंकि हमारा सत भी दोहराया हुआ झूठ होता है। इसलिए हिंदू के संत को मुसलमान सत नही मानेंगे। और मुसलमान के संत को हिन्दू सत नही मानेंगे। और जैन के सत को हिन्दू सत नही मानेंगे। क्योंकि हमारे संत का भी अर्थ, हमने किस झूठ को दोहराया है बहुत बार, उसपर निर्भर है। और लाओत्से, सतत्व की जो शुद्धता है, जो शुद्धतम सतत्व है, जो सतत्व का सत्य है---हिंदू, मुसलमान, ईसाई का नहीं---उसके सम्बन्ध में बात कर रहा है।

वह कहता है, वे अपने को प्रकट नही करते। प्रकट करने की जो आकां[illegible] दूसरा मुझे जाने --- यह अज्ञान से ही उपजती है। दूसरा मुझे पहचाने कि मैं [illegible] हूँ, यह, मेरे भीतर कोई घाव है, उसे छिपा लेने का उपाय है। और दूसरा जो स्वय को नही जानता, वह मेरे सम्बन्ध मे कुछ जानकर मेरे अज्ञान को मिटाने का कारण कैसे हो सकता है? संत अपने को प्रकट नहीं करते, इसका यह अर्थ नही है कि वे प्रकट नही हो जाते। लेकिन वह प्रकट हो जाना उनकी चेष्टा नहीं है, आकांक्षा नही है।

सूफी फकीरों के सम्बन्ध में थोड़ी बात यहाँ समझ लेनी उपयोगी होगी। सूफी फकीर संसार छोड़ कर भी नहीं जाते हैं --- सिर्फ एक कारण से। इसलिए नहीं कि संसार छोड़ना व्यर्थ है। ससार छोड कर भी पाया जा सकता है। शायद ज्यादा सरलता से भी पाया जा सकता है। लेकिन सूफी सत कहते हैं कि संसार छोड़ कर जाओ तो लोगों को पता चल जाता है। और लोगों को पता चल जाए, ऐसा कुछ भी करना भीतर छिपी किसी गहरी वासना का परिणाम है। तो इतना

भी क्या बताता कि हम छोड़ कर जा रहे हैं। तो सूफी संत, हो सकता है, चमार हो और गांव में जूते बनाता हो; वह जूता ही बनाता रहेगा।

उसका पड़ोसी भी, हो सकता है, न जानता हो कि पड़ोस में कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लेकिन दूर-दूर से जाननेवाले उसके पास आते रहेंगे। उनको भी अभी वह जिज्ञासा की जरूरत के लिए स्वीकार नहीं करेगा। उनको भी वह जूता बनाने की कला सिखाने के लिए ही स्वीकार करेगा। प्रकट बाजार की दुनिया में वह जूता बनानेवाले का शिष्य होगा; रात के अंधेरे में, एकांत में, वह साधक होगा।

और कई बार ऐसा होगा कि एक फकीर दूसरे फकीर के पास किसी को भेज देगा। वह दो-चार वर्ष तक उससे जूता बनवाता रहेगा, कपड़ा बुनवाता रहेगा। दो-चार वर्ष तक उससे पूछेगा ही नहीं कि तुम आये किस लिए थे। दो-चार वर्ष चुपचाप वह आदमी जूता बनाता है, चटाई बुनता है, कपड़ा सीता है; जो उसका गुरु कह देता है, वह दिन भर करता रहता है। दो-चार साल बाद वह संत उसे भीतरी जगत में प्रवेश करवाता है। क्यों? इतनी, चार साल तक, प्रतीक्षा क्या थी?

सूफी कहते हैं, जो जल्दी यह भी प्रकट करता हो कि मैं साधना करने आया हूँ, उसकी प्रकट करने की वासना प्रबल है। और ऐसा आदमी सत्य को नहीं खोज पाएगा। ऐसा आदमी, मैं सत्य खोज रहा हूँ, इसके प्रचार में ज्यादा उत्सुक होगा, सत्य को खोजने में कम। ऐसा आदमी, मैं साधु हूँ ऐसा दूसरे लोग जान लें, इसमें ज्यादा उत्सुक होगा, बजाय इसके कि साधु हो जाए। सूफी फकीर हसन अपने शिष्यों से पूछता था, तुम सन्यासी होने आए हो या सन्यासी बनने? तुम धार्मिक होना चाहते हो या धार्मिक बनना? और वह कहता, दूसरा काम सरल है। अगर धार्मिक बनना है, साधु बनना है, महात्मा बनना है, तो वह बहुत सरल काम है। और उसके [illegible] पास आने की भी जरूरत नहीं है, थोड़े से प्रचार और विज्ञापन की कला आनी चाहिए। धार्मिक होना है तो लम्बी यात्रा है। और उसका पहला सूत्र है कि प्रकट करने की भूल मत करना। क्यों? यह प्रकट करने को इतनी बड़ी भूल समझने का कारण क्या है?

आदमी के हाथ में एक कदम उठाना है, और दूसरा कदम अनिवार्य हो जाता है, फिर तीसरा कदम अनिवार्य हो जाता है।

जिब्रान ने लिखा है कि एक फकीर गांव-गांव घूमता था और कहता था कि जिसे प्रभु के पास चलना है, मेरे पीछे आ जाए। कई लोगों ने कहा कि बड़ी आकांक्षा होती है तुम्हारे पीछे आने की, लेकिन अभी बहुत काम संसार में बाकी है। किसी की लड़की बड़ी है और विवाह करना है। और किसी के बच्चे अभी छोटे हैं, मासूम हैं, थोड़े बड़े हो जाएं, सम्हल जाएं। और किसी ने अभी-अभी दुकान जमाई है। और किसी ने अभी-अभी खेत में दाने डाले हैं; फसल कट जाए। ऐसे हजार काम हैं।

यह फकीर गांव-गांव चिल्लाता है कि जिसको ईश्वर के पास चलना हो, मेरे पास आ जाए; मैं ईश्वर का रास्ता जानता हूं। गांव में लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते थे।

एक गांव में बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई। एक आदमी उसके पीछे चलने को राजी हो गया। फकीर मुसीबत में पड़ा। क्योंकि वह आदमी दो-चार दिनों से उसको पूछता कि कितनी देर और? कहां है रास्ता? उस फकीर ने उसको कठिन से कठिन काम बताये। लेकिन वह भी आदमी जिद्दी था। वह सब काम पूरा करके खड़ा हो जाए और बोले कि कौन है रास्ता, विधि, मार्ग?

छह साल हो गए। फकीर सूख कर हड्डी-हड्डी हो गया — इस आदमी की वजह से। क्योंकि चौबीस घंटे तनाव हो गया; रात सोने न दे, दिन जागने न दे। अब उसकी मौजूदगी भी भारी होने लगी। आखिर एक दिन फकीर उसके पैरों में पड़ गया और कहने लगा कि मुझे माफ कर दे, तेरी वजह से मैं भी रास्ता भूल गया हूं। और मुझसे गलती हो गई, अब मैं किसी को भी न कहूंगा।

यह जो आदमी है, जो कह रहा था कि मैं रास्ता जानता हूं, इसे कोई रास्ता पता नहीं है। लेकिन मैं रास्ता जानता हूँ, ऐसा भी लोग मानें तो इसमें भी बड़ा सुख है। और न कभी कोई पीछा करने आता है, और इसलिए न कभी कोई परीक्षा होती है। जिन्हें आप सन्त कहते हैं, उनमें से सौ में से निन्यानबे एकदम पानी में डूब जाएं, अगर आप उनके पीछे चलने को राजी हो जाएं। आप कभी पीछे चलते नहीं, वे नेता बने रहते हैं। क्योंकि बिना अनुयायी के नेता बना रहना बड़ी सरल बात है। और धीरे-धीरे उन्हें भी भरोसा आ जाता है कि वे जानते हैं। जब आपकी आंखों में चमक आती है और आपको लगता है कि हां, यह आ[illegible] जानता है तो उस आदमी को भी तृप्ति होती है।

हम एक दूसरे का उपयोग दर्पण की भांति करते हैं; अपनी [illegible] में देख लेते हैं।

यह जो प्रकट करने की वृत्ति है, वह जिस अहंकार से जनम[illegible]हंकार बाधा है। संत अगर प्रकट हो जाए तो दूसरी बात है। कोई उ[illegible], जान ले, पहचान ले, दूसरी बात है। लेकिन वह जो गहन वासना है[illegible]मुझे जाने, वह संतत्व का हिस्सा नहीं है। दूसरा मुझे जाने, यह सांसारि[illegible] वृत्ति है। मैं स्वयं को जानूं, यह धार्मिक मन की वृत्ति है। कोई मुझे[illegible]केला मैं ही अपने को जान लूं, यह धार्मिक खोज है। मैं अपने को[illegible] जानूं, सारा संसार मुझे जान ले; ऐसा न हो कि एकाध आदमी ऐसा [illegible] कि मुझे जाने बिना रह जाए, यह सांसारिक मन की वृत्ति है।

एक सांझ मुल्ला नसरुद्दीन के काफी हाउस में बड़ी [illegible]। गांव के काफी हाउस में। एक योद्धा आया है। योद्धा आया है, वह[illegible]र हाथ में निकाल

कर अपनी युद्ध की बातें कर रहा है। और वह कहता है कि हम युद्ध से सीधे लौट रहे हैं। और लोग बड़े सकते में आ गये है; उसकी बहादुरी ऐसी है। और वह कहता है कि मैंने भाजी-मूली की तरह लोगों को काटा। नसरुद्दीन के बर्दाश्त के बाहर हो गया। नसरुद्दीन ने खड़े होकर कहा कि हमें भी जवानी की याद आती है; एक दफा ऐसा हमने भी भाजी-मूली की तरह लोगों को काट दिया था। दस-पन्द्रह आदमियों के पैर तो एक झपट्टे में काट दिया था। उस योद्धा ने कहा, पैर ? कभी सुना नहीं। अगर आप सिर काटते तो ज्यादा बेहतर होता।

नसरुद्दीन ने कहा, सिर तो पहले ही कोई काट कर ले जा चुका था। मगर बड़ा कठिन हो गया उस योद्धा का रुकना।

नसरुद्दीन, हमारे भीतर वह जो बचकाना अहंकार छिपा है, उसका ही प्रतीक है। अगर कोई ईश्वर को जानने की बात कर रहा है तो फिर आप से नहीं रहा जाता है। आप भी कुछ कहेंगे। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बिना जाने न बोलता हो। हम सब बिना जाने बोलते रहते हैं। हम बिना जाने बताते रहते हैं। हम बिना जाने सलाह देते रहते हैं। इमर्सन ने लिखा है अपनी डायरी में कि अगर दुनिया में लोग बिना जाने सलाह देना बन्द कर दें तो पृथ्वी किसी भी दिन स्वर्ग हो सकती है। लेकिन जो कुछ भी नही जानते हैं, उनके भी मन में यह तो मजा आता ही है कि कोई जाने कि हमे पता है।

यह मजा इतना महगा है। और इसके पीछे कुछ लोग तो अपने जीवन को भी डाल लेते हैं; बडा कष्ट भी उठाते है। ऐसा भी नही है कि ऐसे लोग दूसरों को धोखा दे रहे हैं। ऐसे लोग अपनी आंख मे अपने को धोखा देने का बडा कष्ट भी [illegible]ते हैं। अब एक आदमी है कि एक ही बार भोजन करता है, नग्न रहता है, [illegible] है, मकान में नही सोता है। वह कम कष्ट नही उठा रहा है, क[illegible]हा है। लेकिन सिर्फ एक भरोसा, दूसरे लोगों को भरोसा दिलाने के [illegible]ाये जा रहा है कि मै साधु हूँ तो सारा कष्ट व्यर्थ जा रहा है।

[illegible] कि नासमझ तप भी करते हैं तो भी नरक ही जाते हैं। नासमझ तप भी[illegible] भी नरक की ही यात्रा करते हैं।

उनक[illegible]का आधार क्या है ? हमारे सारे अज्ञान का आधार क्या है ?

दूसरे [illegible]र्पण की तरह व्यवहार करना सारे अज्ञान का आधार है। दूसरे की [illegible] और सीधी अपनी फिक्र करें। मैं क्या हूँ, इसे मैं पहले जान लू। और म[illegible] जो यह जान लेता है कि मैं क्या हूँ, कौन हूँ, उसकी बिलकुल आका[illegible] आती कि मुझे कोई जाने। यह बात ही समाप्त हो जाती है। स्वयं [illegible]ही दूसरे को प्रभावित करने की वृत्ति विलीन हो जाती है।

और लाओत्से [illegible]से ही वे लोग हैं, वे अपने को प्रकट नही करते और

इसीलिए ही वे दीप्त बने रहते हैं। जो अपने को प्रकट करते हैं, वे क्षीण और दीन हो जाते हैं।

प्रकट करने में भी शक्ति, ऊर्जा खोती है। जो अपने को छुपा कर रखता है, जैसे अंगारा छिपा हो, जैसे सूरज छिपा हो, प्रकट न हो, उसकी सारी ऊर्जा बची रहती है। प्रकट करने में भी शक्ति का व्यय है। और शक्ति का व्यय ही दीप्ति का खो जाना है। अगर कोई व्यक्ति अपने को प्रकट करने की वासना से छुटकारा दिला ले तो उसके भीतर जैसे सूरज आ जाए, ऐसे सारी ऊर्जा भीतर इकट्ठी होने लगती है। वह जो दूसरे को हम प्रभावित करने जाते हैं तो उसमें हम व्यय होते हैं, चुकते हैं। दूसरे को प्रभावित करने की चेष्टा में जरूरी नहीं है कि दूसरा प्रभावित ही होगा। इतना पक्का है कि हम क्षीण होंगे, हम दीन होंगे, हम चुकेंगे, हमारी जीवन-ऊर्जा कम होगी।

दूसरा प्रभावित होगा या नहीं, यह बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरा भी हमारे पास हमें प्रभावित करने आता है। वह कोई प्रभावित होने नहीं आता। आप ध्यान रखना कि कई बार जब कोई आदमी आप से प्रभावित भी होता है, तब थोड़ा सोच-समझ लेना, हो सकता है वह आपको प्रभावित करने का उसका ढंग हो। आदमी की चालाकियों का अंत नहीं है। अगर किसी को प्रभावित करना है तो पहला रास्ता है उसमे प्रभावित होने का ढोंग करना। क्योंकि यह ढोंग उसकी खुशामद बन जाता है। जब आप ऐसे लगते है कि दूसरे से बिलकुल प्रभावित हो गये, पानी-पानी उसके चरणों में हो गये, तब आपको पता नहीं है कि उस आदमी को भी आपने पानी-पानी कर लिया। अब जरा धक्के की जरूरत है कि वह आप के पैरों में गिरा। खुशामद हमें इतना क्यो छूती है?

इसका कारण यह है कि खुशामदी बताता है कि मैं कितना प्रभावित हूं, आपसे कितना प्रभावित हूं। हम जानते है कई दफे कि खुशामद बिलकुल झूठी है; फिर भी कोई आदमी हमें खुशामद करने के योग्य मान रहा है, यह भी दिल को बहुत बहलाता है। खुशामद इतनी नहीं छूती, जितनी यह बात छूती है कि किसी ने हमें इस योग्य माना है कि मेरी खुशामद करे। यह भी क्या कम है? और इस जगत में जहां हर आदमी अपने अहंकार से जीता है, वहां दूसरे के अहंकार को जरा [illegible] भी फुसलाएं तो बड़ी चमत्कारिक घटना मालूम पड़ती है।

लेकिन खुशामदी आपको प्रभावित करने के लिए प्रभावित हो रहा [illegible] दूसरे को प्रभावित कर पाएगे, इसकी संभावना कम है। हां, ए[illegible] कि आप अपनी ऊर्जा व्यय कर रहे है, आप अपने को खो रहे [illegible]

झेन फकीर हुआ रिंझाई। जब भी कोई उसके पास आ[illegible]हता कि दो बातें पहले तय हो जाएं। एक कि तेरा इरादा अपने को [illegible] का तो नहीं है? मेरा शिष्य बनने आया है, तब उसका कुल कार[illegible] तो नहीं है कि

गाँव में जाकर तू कह सके कि रिंझाई का मैं शिष्य हूँ, रिंझाई महान संत है ? शिष्य अपने गुरु की बाबत सदा प्रचार करते हैं। लेकिन यह गुरु का प्रचार नहीं होता है; क्योंकि गुरु जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे शिष्य भी बड़ा होने लगता है। बड़े गुरु का बड़ा शिष्य होता है। अगर किसी के गुरु को आप कुछ गलत कह दें तो शिष्य को जो चोट लगती है वह इसलिए नहीं कि गुरु को गलत कर दिया। गुरु के गलत होते ही शिष्य की गति बिगड़ जाती है। शिष्य की स्थिति क्या रह जाती है, यदि गुरु गलत है ? तो शिष्य भी गलत हो गया। गुरु बड़ा है तो शिष्य भी बड़ा है।

ठीक से हम गौर करके देखें। अगर कोई आप के मुल्क को गाली देता है तो आपको तकलीफ इसलिए नहीं होती कि आपके मुल्क को गाली दे रहा है। किसको मतलब है मुल्क से ? कोई आपके धर्म को गाली देता है तो आपका क्या मतलब है? कोई राम को, कृष्ण को, महावीर को गाली देता है तो आपका क्या प्रयोजन है ? नहीं, लेकिन उनको गाली देने का मतलब है कि गाली आप को लग जाती है। हिंदू मानना चाहता है कि हिंदू श्रेष्ठतम धर्म है; क्योंकि मैं हिंदू हूँ। मुसलमान मानना चाहता है, इस्लाम श्रेष्ठतम धर्म है; क्योंकि मैं मुसलमान हूँ। इस्लाम श्रेष्ठ है तो ही मुसलमान श्रेष्ठ हो सकता है। हिंदू धर्म श्रेष्ठ है तो हिंदू श्रेष्ठ हो सकता है। और अगर भारत ऐसी भूमि है कि देवता भी वहाँ पैदा होने के लिए तरसते हैं तो फिर आपने पैदा होकर भारत पर जो कृपा की है, उसका कोई अंत नहीं। जब देवता तरसते हैं और आपको पैदा होने का मौका मिला तो देवता दो इंच नीचे छूट गये। मन को यह बात जो खुशी देती है, इस खुशी को मुल्क की जमीन से कुछ लेना-देना नहीं है।

अहंकार सब तरफ से अपने को भरता है। और अहंकार का सूत्र है अपने को प्रकट करना। क्योंकि अहंकार अगर अप्रकट रहे तो मर जाता है। यह खयाल रखें। अहंकार प्रकट होने में जीता है। कितने दूसरे लोग मुझे मान लें, उसमें ही उसके प्राण हैं। अहंकार के प्राण दूसरे लोगों के प्रभावित होने में हैं। अगर मुझे कोई भी नहीं जानता है तो अहंकार कहाँ टिकेगा ? आप अकेले हैं जमीन पर तो [illegible]पके अहंकार के खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। अहंकार होता भीतर [illegible]ता दूसरों के कंधों पर है। दूसरों के कंधे न मिलें तो अहंकार के खड़े होने [illegible]पाय न रह जाए।

[illegible]र है, संतत्व के लिए वह पहली बाधा है। आत्मा को जिसे जानना हो, [illegible]टकारा चाहिए। अहंकार से छुटकारा, अर्थात् दूसरे को प्रभावित करने [illegible] छुटकारा। और ध्यान रहे, दूसरे को प्रभावित करना हिंसा है। दूस[illegible] हो जाए, यह दूसरी बात है। दूसरे को प्रभावित करना हिंसा है। दूसरे [illegible]की कोशिश, बनाने की कोशिश, आदर्श बनाने की

कोशिश, बच्चा बनाने की कोशिश भी हिंसा है।

असल में दूसरा जैसा है, हम उसे वैसा स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। हम जैसा चाहते हैं, दूसरे को वैसा बनाने की हमारी उत्सुकता है। बाप बेटे को बना रहे हैं, मित्र मित्रों को बना रहे हैं, गुरु शिष्यों को बना रहे हैं। सब एक दूसरे को बनाने में लगे हैं। कोई किसी से राजी नहीं हैं। आप जैसे हैं, वैसा स्वीकार करने को कोई राजी नहीं है। न आपकी पत्नी, न आपके पिता, न आपके पति, न आपके बेटे, न आपके भाई, कोई राजी नहीं हैं उससे, जैसे आप हैं। आप जैसे हैं, वह गलत होता है। हरेक उत्सुक है आपको बनाने के लिए, जैसा वह चाहता है, वैसा आपको होना चाहिए। वह काटेगा आपको। एक कान गड़बड़ है, अलग करो; एक आंख खराब है, निकाल दो; हाथ तोड दो; पैर ठीक कर दो; सब ठीक कर दो।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन की खिड़की पर एक दिन पक्षी आकर बैठ गया। अजनबी पक्षी था, जो मुल्ला ने कभी देखा नहीं था। लम्बी उसकी चोंच थी, सिर पर कलगी थी, रंगीन, बडे उसके पंख थे। मुल्ला ने उसे पकड़ा और कहा, मालूम होता है, बेचारे की किसी ने फिक्र नहीं की। कैंची लाकर उसके पंख काटकर छोटे किये; कलगी रास्ते पर लाये और चोंच भी काट दी। और फिर कहा, अब ठीक कबूतर जैसे लगते हो। मालूम होता है, किसी ने तुम्हारी चिंता न की। अब मजे से तुम उड सकते हो।

लेकिन अब उड़ने का कोई उपाय न रहा। वह पक्षी कबूतर था ही नहीं। मगर मुल्ला कबूतर से ही परिचित थे; उनकी कल्पना कबूतर से आगे नहीं जा सकती थी।

हर बच्चा जो आपके घर में पैदा होता है, अजनबी है। वैसा बच्चा कभी दुनिया में पैदा नहीं हुआ। जिन बच्चो से आप परिचित हैं, उनसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पक्षी और है। लेकिन आप इसके पंख वगैरह काटकर, चोंच वगैरह ठीक करके कहते हैं, बेटा, अब तुम जगत में जाने योग्य हो गये हो।

यहाँ सब आदमी कटा हुआ जी रहा है। क्योंकि सब लोग चारों तरफ से उसे प्रभावित करने, बनाने, निर्मित करने में इतने उत्सुक हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। जब बाप अपने बेटे में अपनी तस्वीर देख लेता है, तब प्रसन्न हो जाता है। क्यों? इससे बाप को लगता है कि मैं ठीक आदमी था; देखो, बेटा भी ठीक मेरे जैसा है। अगर मुझे मौका मिले और हजार लोग मेरे जैसे हो जाएं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, क्योंकि मेरे अहंकार का भारी फैलाव हुआ। जब हजारों लोग मेरे जैसे होने के लिए तैयार हैं, तब इसका मतलब यह हुआ कि मैं ठीक आदमी हूँ, हजारों लोग मेरा अनुकरण करते हैं। दूसरे को प्रभावित करने के पीछे अहंकार की यही आकांक्षा है: तुम मेरे जैसे हो जाओ।

लाओत्से कहता है, वे अपने को प्रकट नहीं करते और इसलिए दीप्त बने रहते

हैं। उनकी ऊर्जा, उनकी अग्नि समाप्त नहीं होती; वे सदा चमकते रहते हैं। लेकिन उनकी चमक किसी की आंखों को लुभाने के लिए नहीं है। उनकी चमक अपनी आंतरिक चमक है। वह ज्योति किसी को भरमाने के लिए नहीं जनमी है। वह ज्योति अपनी ही ऊर्जा है।

वे अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते। ही इज नॉट जस्टीफाई हिमसेल्फ एण्ड इज देयरफोर फारफेम्ड। और इसलिए दूर-दिगन्त तक उनकी ख्याति हो जाती है। संत कभी अपने को जस्टीफाई नहीं करते, वे अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते।

जीसस को सूली दी जा रही है। पाइलट जीसस से पूछता है, मैं अभी भी तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ, तुम सिद्ध कर दो कि तुम ईश्वर के पुत्र हो। और जीसस चुप रह जाते हैं। पाइलट कहता है कि तुम्हें एक मौका है, तुम इतना ही कह दो कि मैं निरीह हूँ, मेरा कोई कसूर नहीं है, तुम इतनी अपील कर दो रोमन सम्राट के नाम कि मैं बेकसूर हूँ। लेकिन जीसस चुप रहते हैं। सूली पर जाना उचित मालूम पड़ता है, बजाय औचित्य सिद्ध करने के कि मैं जस्टीफाइड हूँ। क्या कारण होगा?

उचित यही हुआ होता, हम भी कहेंगे, किसी वकील की सलाह ले ली होती। ऐसी क्या सूली पर जाने की जल्दी थी? सिद्ध करना था कि जो मैं कहता हूँ, वह ठीक कहता हूँ। मेरे अर्थ और हैं।

ईसाइत दो हजार साल से सिद्ध कर रही है कि जीसस के अर्थ और थे। गलत समझे लोग। लेकिन जीसस ने खुद क्यों न सिद्ध कर दिया? ज्यादा आसान होता। जीसस के लिए गवाही दी जा रही है दो हजार साल से कि जीसस का मतलब और था, और जिन्होंने सूली दी, वे उस मतलब को नहीं समझ पाए। जीसस ने कहा था, किंगडम ऑफ गाड; वह ईश्वर के राज्य की बात थी, इस जगत के राज्य की बात नहीं थी। पर इस जगत में जो राजा थे, वे घबड़ा गये। वे समझे कि यह जीसस जो है, इस जगत का सिंहासन पाने की कोशिश कर रहा है। मगर जीसस खुद ही कह सकते थे। इतनी सीधी सी बात थी। एक वक्तव्य देते और कहते कि मेरा मतलब यह है, कि मेरा मतलब ऐसा नहीं है।

जीसस क्यों चुप रह गये? यह औचित्य सिद्ध क्यों न किया?

असल में औचित्य सिद्ध करने की जो चेष्टा है, वह दूसरे को मालिक मान लेना है। किसके सामने औचित्य? सन्त उत्तरदायी नहीं है किसी के प्रति। आप जाकर पूछिए लाओत्से से कि सिद्ध करो कि तुम साधु हो। लाओत्से कहेगा, तुम्हें असाधु मानना हो, असाधु मान लो; साधु मानना हो, साधु मान लो, यह तुम्हारा धन्धा है; हमसे कुछ लेना-देना नहीं है। आप यह भी कह सकते हैं, हम मानकर चले जाएँगे कि तुम असाधु हो तो लाओत्से कहेगा, मौज तुम्हारी है; लेकिन तुम्हारे सामने मैं सिद्ध करने जाऊँ कि मैं साधु हूं तो इसका मतलब यह हुआ कि मेरी

साधुता के लिए तुम्हारे प्रमाण की, तुम्हारे सील की, तुम्हारे हस्ताक्षर की कोई जरूरत है।

ऐसी मजेदार बात हुई कि मैं एक नौकरी की तलाश में था। उस राज्य के शिक्षा मंत्री से मिला। उन्होंने कहा कि नौकरी तो मैं आपको अभी दे दूं किसी भी यूनिवर्सिटी या कालेज में; लेकिन अपने चरित्र का प्रमाण-पत्र, कैरेक्टर सर्टिफिकेट चाहिए। जिस यूनिवर्सिटी में आपने पढ़ा हो, वहां के वाइस चान्सलर या जिस कालेज में आपने पढ़ा हो, वहां के प्रिंसिपल से कैरेक्टर-सर्टिफिकेट ले आयें।

मैंने उनको कहा कि अभी तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला, जिसके कैरेक्टर का, चरित्र का मैं सर्टिफिकेट दे सकूं; न कोई प्रिन्सिपल, न कोई वाइस चान्सलर। तो जिसके कैरेक्टर का सर्टिफिकेट मैं नहीं लिख सकता, उससे मैं करेक्टर सर्टिफिकेट लिखवा कर लाऊं तो बड़ी अजीब-सी बात होगी। तो अगर बिना कैरेक्टर-सर्टिफिकेट के नौकरी मिलती हो तो दे दें। अन्यथा बिना नौकरी के रह जाना ठीक है, बजाय इसके कि चरित्रहीनों से चरित्र का प्रमाण लाया जाए। आखिर चरित्र का प्रमाण कौन दे सकता है? और कैसे दे सकता है? और फिर, मैं चरित्रवान हूं या नहीं, इसकी जिम्मेदारी मेरे और परमात्मा के बीच है।

मैंने उनको कहा कि नौकरी में जो आप मुझे तनख्वाह देंगे, वह पढ़ाने की देंगे या मेरे चरित्र की देंगे? कोई मेरे चरित्र की कीमत आप चुकानेवाले हों तो चरित्र की चिन्ता की जाए। लेकिन हमारा जो जगत है, हमारा जो जीवन है, वहां सब औचित्य पर निर्भर है, वहां सब सिद्ध करना होता है। वहां सब सिद्ध करना होता है, और सिद्ध करने की तरकीबें मजेदार हैं।

क्वेकर ईसाई अदालत में कसम नहीं खाते हैं। अदालत में कसम खानी चाहिए कि मैं कसम खाता हूं कि सत्य बोलूंगा। क्वेकर ईसाई कहते हैं कि अगर मैं झूठ ही बोलनेवाला हूं तो यह कसम भी झूठ खा सकता हूं।

यह बड़ी अजीब पागलपन की बात है कि एक आदमी से, जो झूठ बोलनेवाला है, निष्णात झूठ बोलनेवाला है, अदालत में हम कसम खिलवाते हैं कि तुम कसम खाओ, सच बोलोगे। वह कसम खाता है कि हम कसम खाते हैं कि सच बोलेंगे। बड़े आश्चर्य की बात है कि कसम खाने से किसी आदमी का झूठ बोलना मिट जाता है। और जो आदमी कसम खाने से झूठ बोलना छोड़ देता हो, उसने बहुत पहले, कभी का झूठ बोलना छोड़ दिया होता। मगर बहुत बचकाना काम अदालतें भी किये चली जाती हैं। कहीं से शुरुवात होनी चाहिए; कहीं से हम मानकर चलें कि तुम सच बोल रहे हो। कसम कैसे तय कर सकती है कि कौन आदमी सच बोल रहा है?

मजा यह है, लेकिन, कि जो झूठ बोलता है, वह जोर से कसम खाएगा; सच बोलनेवाला शायद थोड़ा झिझके भी कि कसम खानी कि नहीं खानी है। सच

बोलनेवाला ही झिझकेगा कि कसम खानी है कि नहीं खानी; झूठ बोलनेवाला बेझिझक खाएगा। क्योंकि जिसे झूठ ही बोलना है, कसम उसको क्या अड़चन पैदा करेगी? सच बोलनेवाले को कसम अड़चन पैदा कर सकती है। वह सोच सकता है कि कसम खाने का मतलब सच बोलना है; लेकिन झूठ बोलनेवाला तेजी से खाएगा।

बट्रेण्ड रसेल ने लिखा है कि इस जगत में जो लोग अपना औचित्य जितनी तेजी से सिद्ध करने में लगे रहते हे, वे प्रमाण देते हैं कि वे आदमी उचित नहीं हैं। उनकी सिद्ध करने की चेष्टा ही कहती है कि उनको तो खुद भी शक है, खुद भी भीतर संदेह है। उस संदेह को झुठलाने के लिए वे सब तरह के उपाय करते हें।

इसीलिए एक बडे मजे की बात है कि इस जगत में जो श्रेष्ठतम जन हुए हैं, उन्होंने जो भी कहा है, उसके लिए कोई प्रमाण नही दिये हैं। वे सीधे वक्तव्य हैं, स्टेटमेन्ट हैं, उनके कोई प्रमाण नहीं हैं। बुद्ध कहते हैं कि मुझे ऐसा-ऐसा हुआ। अगर कोई पूछता है प्रमाण तो वे कहते हैं कि तुम भी ऐसा-ऐसा करो और तुम्हें हो जाएगा। तुम्हारा करना ही तुम्हारे लिए प्रमाण बनेगा। और मैं अगर चार गवाह खडे करूं, देखो, यह भी कहते हैं कि मुझे हुआ तो एक इनफिनिट रिग्रेस शुरू होती है, तो एक अंतहीन वापसी का सिलसिला शुरू होता है। क्योंकि मजा यह है कि मैं एक गवाह खड़ा करता हूँ और आश्चर्य यह है कि हम यह भी नही पूछते कि यह जो गवाह बोल रहा है, इसके गवाह कहाँ है, जो कहे कि यह ठीक बोल रहा है। यह गवाहो का सिलसिला कहाँ अंत होगा?

ऋषियों ने एक बात कही है, उन्होने कहा है कि सत्य जो है, वह सेल्फ एवीडेण्ट है, स्वतः प्रमाण है। झूठ सेल्फ एवीडेण्ट नही है, झूठ स्वतः प्रमाण नही है। क्योंकि झूठ हमेशा गवाह साथ लेकर आता है। सत्य खुद ही अपना गवाह है। और कोई गवाह नहीं है उसका। झूठ पहले से ही इंतजाम करके चलता है, पच्चीस गवाह लेकर आता है।

मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा चला। उसने किसी की हत्या कर दी। और अदालत में दस गवाहों ने बयान दिया कि हमारे सामने यह हत्या हुई। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि इसमे क्या रखा है; मैं सौ गवाह खड़े कर सकता हूँ कि जो कहने को राजी है कि उनके सामने हत्या नही हुई। दस से क्या होता है? सौ गवाह खड़े कर सकता हूँ। जब यह हत्या हुई, जिस आदमी की हत्या हुई, नसरुद्दीन कहता, मैंने नही की, किसी और ने की होगी; मैं मौजूद जरूर था। तो अदालत में वकील उससे पूछता है कि तुम कितनी दूर खडे थे उस आदमी से, जब वह आदमी मरा? उसने कहा कि मैं तेरह फूट सात इंच दूर खडा था।

मजिस्ट्रेट भी चौंका, उसने कहा कि हैरानी की बात है, तुम पहले ही आदमी हो जो ऐसा कहे! तेरह फूट सात इंच, यह तुम्हें कैसे पता चला? नसरुद्दीन ने

कहा कि मैंने पहले ही सब सोच लिया था, कोई न कोई मूढ़ अदालत में जरूर पूछेगा। मैंने सब नाप-जोख कर ही काम किया है।

वह जो आदमी गलत है, वह गलती करने के पहले ही गवाह खोज लेता है। जो आदमी सही है, उसे तो बाद में ही पता चलता है कि सही के लिए भी गवाह देने होते हैं।

लाओत्से कहता है, संत अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते। वे क्या हैं, इसके लिए उनके पास कोई गवाह नहीं है। उनका क्या अनुभव है, इसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण देने की कोई इच्छा भी नहीं है। कोई जस्टीफिकेशन नहीं है। संत बिलकुल अनजस्टीफाइड खड़े होते हैं, बिना किसी औचित्य की चिन्ता के खड़े होते हैं। जिसको दिखाई पड़ सकता हो, वे सीधा देख लें, और जिनको दिखाई न पड़ता हो, वे न देखें, आगे बढ़ते रहें। लेकिन संत के मन में अगर यह आकांक्षा हो कि मैं सच्चा हूँ, अहिंसक हूँ, व्रती हूँ, त्यागी हूँ, या और कुछ हूँ, इसको प्रमाणित करूं, तो अभी वह संत नहीं है।

एक गाँव में मै गया। एक साधु वहाँ ठहरे थे। कोई उन्हें मुझसे मिलने लिवा लाया। जो मिलाने लाये थे, वे उनके शिष्य थे। उन्होंने कहा कि ये बड़े त्यागी है, महातपस्वी है। इन्होंने अब तक इतने-इतने हजार उपवास किये। मैंने उन साधु से पूछा कि ये कहते है कि इतने हजार उपवास किये तो उन्होने कहा कि हा, और अब तो संख्या और भी बढ गई है। वे तो पुरानी सख्या बता रहे हैं। मैंने उन से पूछा, आपने हिसाब रखा है? उन्होंने कहा कि मै बिलकुल डायरी रखता हूँ।

यह डायरी किसको बताई जानेवाली है? क्या ये परमात्मा के पास डायरी ले जाएगे? यह डायरी किसको बताई जानेवाली है? नहीं, यह लोगो को बतायी जाती है कि कितने उपवास किये है। और जो बताने को उत्सुक है, वह दो के चार उपवास भी डायरी मे लिख सकता है। जो बताने को उत्सुक है, उसका कोई भरोसा नही है। क्योकि उपवास असली चीज नही है, संख्या असली चीज है। उपवास का मूल्य ही इतना है कि कितनी संख्या बढ़ती जाती है।

यह जो औचित्य है त्याग का, यह बताता है कि आदमी अभी बाजार में है। उसकी भाषा, उसके सोचने के ढंग अभी दुनियादारी के हैं। अभी उसे सन्यास की कोई किरण भी नहीं मिली है। अभी उसे त्याग का कोई आनन्द नहीं मिला है। अभी उसे त्याग से आनन्द मिलता है, त्याग का आनन्द नही मिला है। इसका फर्क ठीक से समझ लें।

उसे त्याग से आनन्द मिलता है। क्योंकि त्यागी को लोग सम्मान देते है, आदर देते है, पैर छूते हैं, जयजयकार करते हैं, रथयात्रा निकालते है, बैंड-बाजे बजाते हैं। त्याग अभी साधन है। लेकिन आनन्द अभी सम्मान का है। अभी उसे त्याग का आनन्द नहीं मिला है।

जिस दिन उसे त्याग का आनंद मिल जाएगा, उसी दिन वह समझेगा, सम्मान का त्याग ही बड़े से बड़ा त्याग है। तो उसने जो भी अभी छोड़ा है, खाना वगैरह, कपड़े-लत्ते, मकान वगैरह, वह न कुछ है। जब इनको छोड़ने से इतना आनंद मिलता है, तब जिस दिन कोई सारे अहंकार को ही छोड़ देता है, सम्मान के भाव को ही छोड़ देता है, उस दिन उसे परम आनन्द मिलता है। लेकिन उसका उसे अभी कोई पता नहीं है। जो आज बैंड-बाजा बजाते हैं उसके चारों तरफ, कल अगर वे बैंड बाजा बजाना बन्द कर दें तो उसके उपवास भी बंद हो जाएंगे। कारण ही खो जाता है।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था। वह हर वर्ष जब नवदुर्गा होती, तब बड़ा उत्सव मनाता था। बहुत बकरे कटते। फिर अचानक उत्सव बंद हो गया, बकरे कटने बन्द हो गए। रामकृष्ण ने उससे पूछा, बहुत दिन से देखता हूँ, वर्ष, दो वर्ष बीत गए, उत्सव का क्या हुआ? धर्म का क्या हुआ? पूजा का क्या हुआ? अब बकरे वगैरह नहीं कटते हैं? उस आदमी ने कहा कि अब दांत ही नहीं रहे, दांत ही गिर गए। रामकृष्ण सोचते थे कि उत्सव हो रहा है धर्म का। वे बड़े चौंके। उन्होंने कहा, दांत से इसका क्या लेना-देना है? तो उस आदमी ने कहा, जब दांत ही न रहे, तब उत्सव कैसा? बकरे कैसे कटेंगे? खाने-पीने का आनन्द ही चला गया।

धर्म तो एक बहाना था, एक आड़ था। तो अगर मूल कारण गिर जाए तो फिर धर्म भी नहीं रहा। साधु को जिस दिन आप सम्मान न दें, उस दिन आपको पता चलेगा, कितने साधु आपके पास हैं। जब तक साधु को सम्मान मिलता है, तब तक तय करना मुश्किल है। क्योंकि सौ में से निन्यानबे लोग सम्मान के कारण ही साधु होते हैं। और एक बड़े मजे की बात है कि साधु होने के लिए बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है; किसी गुण की जरूरत नहीं है, किसी टैलेन्ट की, किसी जीनियस की, किसी मेधा की कोई जरूरत नहीं है। इस दुनिया में सब तरफ सम्मान महंगा है, साधु होकर बहुत सस्ता है। आप अपने साधुओं को जरा गौर करके देखें, इनको किस दिशा में आप लगा देंगे तो ये कारगर हो सकते हैं।

एक साधु छोड़ना चाहते थे साधु-वेश। उन्होंने मुझे पत्र लिखा। तो मैंने कहा कि छोड़ दीजिए, इसमें पूछना क्या है? यह भी पूछ कर छोड़ोगे? पूछ कर पहले फंसे कि लिया, अब भी पूछकर छोड़ोगे? छोड़ दो छोड़ना है तो। इसमें क्या बुराई है? उन्होंने मुझे पत्र लिखा, आप समझे नहीं। मैट्रिक फेल हूँ और अभी वाइस चान्सलर भी मेरे पैर छूते हैं आकर। कल मुझे क्लर्क की भी नौकरी नहीं मिल सकती है। इसलिए पूछता हूँ कि छोड़ूं कि न छोड़ूं? तो मैंने कहा कि तुमने गलत सवाल पूछा। तुम्हें यह पूछना ही नहीं था कि साधुता छोड़ दूं। साधुता

है ही नहीं। तुम व्यवसाय में हो और अच्छा व्यवसाय है, तुम जारी रखो। क्योंकि इसमें साधुता का कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम्हें ठीक धधा मिल गया है, उसे तुम जारी रखो। लेकिन धन्धे को साधुता मत कहो।

साधु होना सबसे सस्ता है। बिना किसी योग्यता के घटनेवाली घटना है। तो आसान है। सौ में से निन्यानबे इसलिए साधु हैं कि साधुता से कुछ और मिलता है, जो उन्हें अन्यथा नहीं मिल सकता है। लेकिन सम्मान की आधार-शिलाएँ हट जाएँ तो आपके साधु एकदम तिरोहित हो जाएगे। तब शायद वही साधु रह जाएगा बाकी, जिसके लिए सम्मान का कोई प्रयोजन ही न था, जो प्रकट ही न होना चाहता था, या प्रकट भी हो गया था तो उसकी कोई वासना न थी। वह दुर्घटना थी।

अपना औचित्य हम तभी सिद्ध करते हैं, जब हमे लगता है कि जिनके सामने हम सिद्ध कर रहे हैं, वे हमारे न्यायाधीश हैं।

नीत्से से किसी ने कहा कि तुम जीसस के इतने खिलाफ लिखते हो—नीत्से न केवल लिखता था जीसस के विरोध में, दस्तखत भी करता था तो लिखता था एन्टी-क्राइस्ट फ्रेडरिक नीत्से, जीसस-विरोधी फ्रेडरिक नीत्से—तो तुम इस सबके लिए प्रमाण दो। तो नीत्से ने कहा कि जिस अदालत मे जीसस की प्रमाणिकता आंकी जाएगी, उसी अदालत में हम भी प्रमाण दे देंगे। अगर कही कोई परमात्मा है, जो सिद्ध करेगा कि जीसस ईश्वर के पुत्र है तो उसी के सामने हम भी सिद्ध कर देंगे। लेकिन तुम्हारे सामने नही, क्योंकि तुम न्यायाधीश नही हो। तुम कौन हो? तुमसे क्या लेना-देना है?

और नीत्से तो कोई संत नही है। लेकिन, संतत्व के बडे करीब है।

नीत्से ने जो किताबें लिखी हैं, वे सुसम्बद्ध नही है, सिस्टेमेटिक नहीं है, फ्रैगमेन्ट है, टुकडे है। उनके बीच कोई सिलसिला नही है। कई बार लोगों ने कहा कि तुम कुछ सिलसिला बनाओ। उसने कहा, तुम कौन हो? विचार मेरे हैं, जिम्मेदार मै हूँ। और जिनके पास आंखें है, वे सिलसिला देख लेंगे। और जिनके पास आखें नहीं हैं, उनको सिलसिला बताने की जरूरत भी क्या है?

नीत्से ने कहा है कि लोगों ने एक-एक किताब लिखी है जितने विचार से, उतने विचार से मैंने एक-एक वाक्य लिखा है। लेकिन वह बीज है। पर कोई न्यायाधीश नही है; उत्तरदायित्व नहीं है किसी के प्रति।

असल में सत का वक्तव्य यह है कि मै जैसा हू, वह मेरे और परमात्मा के बीच की बात है। किसी और से उसका कोई लेना-देना नही है।

लेकिन हम मान नहीं सकते बीच में बिना कूदे। हम एक दूसरे की खिड़कियों से झांकने के ऐसे आदी हो गए हे! हम पीपिंग टॉम हैं; किसी की चाबी का छेद है, उसी में से झांक रहे है। हम सब को दूसरो में झांकने की ऐसी वृत्ति हो गई।

है ! और दूसरे भी इतने कमजोर हैं कि वे अपने औचित्य सिद्ध करने लगते हैं कि मैं ठीक हूँ; ऐसा कर रहा था उसका कारण यह था; ऐसा कहा, उसका कारण यह था। दूसरे भी कारण बताते हैं, उसका कारण यह है कि दूसरे भी कमजोर हैं।

लेकिन संत कमजोर नहीं है। वह अपने में पूरी तरह निर्भर है। वह अपने में पूरे का पूरा ठहरा हुआ है। कोई प्रमाण की जरूरत नहीं है। किसी को कुछ समझाने की, किसी औचित्य की, किसी तर्क की, किसी गवाही की जरूरत नहीं है।

और लाओत्से कहता है, इसीलिए उनकी ख्याति दूर-दिगन्त तक जाती है। जो अपना औचित्य सिद्ध करते रहते हैं, वे दो-चार को भी समझाने में सफल हो जाएँ तो कठिन है। जो अपना औचित्य सिद्ध ही नहीं करते, उनकी सुगन्ध दूर-दिगन्त तक चली जाती है। क्योंकि उनका खंडन नहीं किया जा सकता।

यह बड़े मजे की बात है कि जिसने कभी सिद्ध नहीं किया कि मैं चरित्रवान हूँ, उसको आप चरित्रहीन सिद्ध नहीं करते। जिसने सिद्ध करने की कोशिश की कि मैं चरित्रवान हूँ, उसको चरित्रहीन सिद्ध किया जा सकता है। सच तो यह है कि उसने खुद ही खबर दे दी है कि मैं चरित्रहीन हूँ—चरित्रवान सिद्ध करने की चेष्टा में। जब कोई आदमी कहता है कि मैं बेईमान नहीं हूँ, जब कोई आदमी कहता है कि मैं बेईमान नहीं हू, जब कोई आदमी दिन भर यही कहे चला जाता है कि मैं झूठ नहीं बोलता हूँ, तब कोई भी संदिग्ध हो जाएगा कि बात क्या है ? इतनी चेतना क्या है ? इतना होश क्या है ? बार-बार दोहराने की इतनी जरूरत क्या है ? नहीं हो तो ठीक है।

लेकिन जो आदमी भीतर गिल्ट, अपराध अनुभव करता है, वह हर बार कोशिश करता रहेगा। उसकी हर तरह की चेष्टा सिद्ध करती रहती है कि इसके भीतर कोई अपराध छिपा है। फ्रायड कहता था कि कुछ लोग दिन भर बैठे-बैठे हाथ ही मलते रहते हैं। फ्रायड कहता था कि ये हाथ मलनेवाले वे लोग हैं, जिन्होंने कोई पाप किया है। ये हाथ धो रहे हैं। इनका जो हाथ मलना है, वह अकारण नहीं है।

कुछ लोगों को हाथ धोने का मैनिया होता है। वे दिन मे दस-पचास दफे हाथ धोएंगे। इनके भीतर कोई अपराध घना है और जिसका प्रतीक यह इनका हाथ धोना है। कोई अपराध है जिससे इनको लगता है कि हाथ मेरे गन्दे हैं, उन्हे मैं साफ कर रहा हूँ। कुछ लोग है, खास कर महिलाएं हैं, जो घर की सफाई में पागल हो जाती हैं। उनके लिए सफाई भी पागलपन हो जाती है। एक कचरे का टुकड़ा नहीं टिकने देंगी। अदर किसी को आना, मेहमान का आना, उन्हे भय का कारण हो जाता है कि पता नहीं, कचरा आ जाए, कुछ गन्दगी आ जाए, कुछ हो जाए। सफाई अच्छी बात है। लेकिन हर चीज पागलपन की सीमा तक खींची जा सकती है। फ्रायड कहता है कि इन महिलाओं के मन में कहीं कोई डर्ट, कहीं कोई गन्दगी

बसी है; उसका यह बाहर फैला हुआ क्रम है कि बाहर कहीं कोई गन्दगी न जम जाए। बाहर की गंदगी उनके भीतर की गन्दगी की याद दिलाती है। इसलिए इतना पागलपन है।

एक मित्र मेरे साथ थे। वह किसी के घर चाय नहीं पीते, किसी के घर पानी नहीं पीते, किसी का दिया पान नहीं खाते। वे कहते यही थे कि नहीं, मैं कहीं बाहर की चीज नहीं लेता। बहुत बार यह सब देखकर मुझे लगा कि इसमें कुछ मैनिया, कुछ पागलपन की बात है। खोजबीन की, उनसे चर्चा की, समझने की कोशिश की। उन्होंने किसी आदमी को जहर खिलाने की कोशिश की थी। उसके बाद वे किसी के घर कुछ नहीं खा सकते थे। वह जो भीतर छिपा है, वह अभी भी कंपित हो रहा है। और अब किसी से भी कुछ लेना उनके अपने ही अपराध का पुनःस्मरण है।

आदमी बहुत जटिल है। आप क्या करते हैं, क्यों करते हैं, आपको भी पता न हो। आदमी का मन बहुत गहरा उलझाव है। और आदमी हजार काम करता है, जिसका उसे पता नहीं कि क्यों कर रहा है। लेकिन उसके कारण भीतर छिपे हैं।

ये जो व्यक्ति निरन्तर औचित्य सिद्ध करते रहते हैं कि मैं ठीक आदमी हूँ, इनके भीतर गलत होने की धारणा पक्की है। इनको खुद ही भरोसा नहीं है कि ये ठीक आदमी हैं। जब कोई आदमी आपसे आकर कह देता है कि आप ठीक आदमी नहीं हैं, तब अगर आप नाराज होते हैं तो इसका मतलब यह है कि उसने कोई घाव छू दिया। नहीं तो नाराज होने का कोई कारण नहीं है। या तो वह आदमी सही है तो धन्यवाद देना चाहिए; या वह आदमी गलत है तो हंस देना चाहिए। बात खत्म हो गई। नाराज होने की क्या बात है?

गुरजिएफ के पास लोग जाते थे और कहते थे कि आज फलां आदमी मिला था, वह बहुत अभद्र बातें आपके सम्बन्ध में कह रहा था, गालियां दे रहा था, बहुत गंदी बातें कह रहा था। गुरजिएफ कहता, यह कुछ भी नहीं है। और भी लोग हैं, तुम फलां आदमी से जाकर मिलो, वह इससे भी ज्यादा गंदी बात मेरी बाबत कहता है। और अगर तुम्हारी तृप्ति उससे भी न हो तो मैं तुम्हें और भी आदमी बताऊंगा जो और भी बढ़कर कहेगा। यह कुछ भी नहीं है।

जब पहली दफा ऑसपेन्सकी गुरजिएफ से मिला, तब वह बहुत चकित हुआ इस इस तरह की बात देखकर। जब भी कोई आकर उसकी निन्दा की बात करता, तब वह कहता कि यह कुछ भी नहीं है। जिस आदमी के भीतर कोई घाव नहीं है, आप उसकी कितनी भी बुराई करें, उसको चोट नहीं पहुंचा सकते। चोट आपकी बुराई से नहीं पहुंचती, भीतर के घाव से पहुंचती है।

कोई आदमी आकर आपसे कह देता है कि फलां आदमी कहता था कि आप चरित्रहीन हैं। आपको जो चोट पहुंचती है, वह उस आदमी से नहीं पहुंचती। जानते तो आप भी हैं कि चरित्रहीन हूँ, अब फजीहत हुई, अब फजीहत हुई, अब

औरों को भी पता चलने लगा। तो आप औचित्य सिद्ध करने में लगते हैं कि नहीं, कौन कहता है? मैं चरित्रवान हूं। सिवाय चरित्रहीनों के चरित्र का औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा कभी भी किसी ने नहीं की।

संत अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते; लेकिन उनकी ख्याति दूर-दिगन्त तक पहुंच जाती है। यह पहुंच जाना सहज घटना है। यह अनायोजित, अचेष्टित है। न इसकी कोई कामना है, न इसकी कोई आकांक्षा है। अनभीप्सित है। लेकिन यह घटती है। और जब घटती है, तब इस सुगन्ध को रोकना बहुत मुश्किल है। क्योंकि इसको कभी गलत सिद्ध नहीं किया जा सकता। जो सही सिद्ध करने की चेष्टा में नहीं है, उसे हम गलत सिद्ध नहीं कर सकते।

वे अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं करते; इसलिए लोग उन्हें श्रेय देते हैं। उनका एक ही श्रेय है कि वे श्रेष्ठता का दावा नहीं करते। श्रेष्ठता का दावा सिर्फ हीन जन ही करते हैं, श्रेष्ठ जन नहीं करते। जो श्रेष्ठ है ही, वह दावा क्यों करेगा? जो श्रेष्ठ नहीं है, उसी के भीतर दावा पैदा होता है।

वे अभिमानी नहीं हैं और इसलिए लोगों के बीच अग्रणी बने रहते हैं। वे आगे बने रहते हैं; क्योंकि आगे बने रहने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है। पीछे खड़े होने की उनकी पूरी तैयारी है। पीछे ही वे खड़े होते हैं। इसको हम थोड़ा समझ लें।

दो तरह से लोग आगे खड़े होते हैं इस जगत में। एक तो वे जो क्यू में धक्कम-पेल करके आगे पहुंचते हैं। राजनीतिज्ञ हैं, काफी धक्का-मुक्की करके वे आगे पहुंचते हैं। आगे पहुंचने में बड़ी उनकी फजीहत होती है; लेकिन वे सब झेल लेते हैं। आगे पहुंचने का लोभ इतना है कि कितनी भी फजीहत झेली जा सकती है। और एक दफा आदमी आगे पहुंच जाए तो लोग भूल जाते हैं कि इसकी बहुत फजीहत हुई थी। इसलिए बीच में धक्कम-धक्का खा लेने में कोई हर्ज नहीं है। एक दफा आगे पहुंच गए तो सब इतिहास बदल जाता है। सफल आदमी की सब असफलताएं भूल जाती हैं। आगे पहुंचे गए आदमी की बात ही भूल जाती है कि कभी वह पीछे क्यू में खड़ा था।

और बड़ा मजा यह है कि किसी तरह धक्कम-धक्का देकर वह आगे आया है, वह लोगों को समझाने लगता है क्यू में लाइन लगाकर खड़े रहो, धक्कम-धक्का करना ठीक नहीं है। इन्दिरा गांधी को पूछें निजलिंगप्पा, जो बातें वे उनको समझाते थे, वही बातें अब उसने दूसरों को समझाना शुरू कर दिया है। यह बड़ी आश्चर्य की बात है। लेकिन आदमी का मन ऐसा है। और सब आदमियों का मन ऐसा है।

आप ट्रेन के डब्बे में बैठे हैं। चिल्लाते हैं दरवाजे से, किसी को घुसने नहीं देते। कहते हैं, बिलकुल भरा है, एक इंच जगह नहीं है, आगे जाओ! और आप भूल गए कि पिछले स्टेशन पर आप आगे खड़े थे और तब जो दलीलें आप दे रहे थे,

वही दलीलें बाहर खड़ा आदमी दे रहा है कि बिलकुल मत घबराइए, मैं पाँव पर ही खड़ा रहूंगा, पैर के लायक जगह मिल जाएगी, आप चिन्ता मत करिये, तकलीफें मैं झेल लूंगा। आप कहते हैं, है ही नहीं जगह। यही बातें किसी ने डब्बे के भीतर से आप से कही थी।

लेकिन डब्बे के भीतर प्रवेश करते ही आदमी की आत्मा बदल जाती है। डब्बे के बाहर एक आत्मा होती है; डब्बे के भीतर दूसरी आत्मा होती है। आपको पता ही नहीं चलता कि आत्मा इतनी जल्दी कैसे बदलती है। और ऐसा नहीं है कि अभी जो आदमी गिड़गिड़ा रहा है, वह नहीं बदलेगा। डब्बे के भीतर आने दो और अगले स्टेशन पर उसकी बातें सुनो कि वह बाहर के लोगों को क्या कह रहा है।

तब आपको पता चलेगा कि आदमी जो कहता है, वह परिस्थिति पर निर्भर होनेवाली बातें हैं। जिसको नेता बनना है, उसे सब तरह के उपद्रव करने होते हैं। लेकिन जो नेता बन गया और नेता जिसे बने रहना है, उसे बाकी को समझाना पड़ता है कि उपद्रव मत करना। सच तो यह है कि जो उपद्रव करके आगे आता है, वह उपद्रव के बहुत खिलाफ होता है; क्योंकि उसे पक्का पता है कि आगे आने का रास्ता क्या है और जो आगे पहले से हैं, इनको गिराने का रास्ता क्या है।

मैकेवेली ने लिखा है कि जिस सीढ़ी से चढ़ो, चढ़ते ही पहले उसे नष्ट कर देना। और मैकेवेली मनुष्य के मन में झाकनेवाले गजब के लोगों में से एक है। थोड़े ही लोग इतने गहरे देखते हैं आदमी के अस्तित्व में। मैकेवेली कहता है, पहला काम चढ़ जाने पर सीढ़ी के यह करना कि सीढ़ी तोड़ देना। क्योंकि ध्यान रखना, सीढ़ी निष्पक्ष है, जैसा तुम्हे चढ़ा दिया, किसी दूसरे को भी चढ़ा देगी। मैकेवेली कहता है कि नेता को अपने और अनुयायियों के बीच बहुत फासला रखना चाहिए। क्योंकि पास के लोग खतरनाक होते हैं।

इसलिए कोई भी नेता बुद्धिमान लोगों को अपने आसपास पसन्द नहीं करता, बुद्धुओं को पसन्द करता है। उनमें फासला इतना होता है कि अगर उनको सीढ़ी भी लगा दो तो उनकी समझ में न आयेगा कि इसपर चढ़ना है। ऐसे आदमी ठीक रहते हैं। इसलिए हर नेता के पास बुद्धुओं की जमात होती है। उन्हीं पर वह जीता है।

एक तो रास्ता है क्यू में इस तरह उपद्रव करके आगे खड़े हो जाने का। नेता इस भांति खड़े होते हैं। यह पॉलिटिकल रास्ता है, राजनीतिक रास्ता है।

सन्त भी कभी–कभी आगे पाए जाते हैं। लेकिन उनके खड़े होने का ढंग दूसरा है। वे क्यू में पीछे खड़े हो जाते हैं। जहाँ भी धक्कम-धक्का है, वहा वे पीछे खड़े हो जाते हैं। लेकिन उनके पीछे खड़े होने की जो शान्त स्थिति है, वह और ही बात है। क्योंकि जिसे आगे नही जाना है, उसे अशान्त होने का कोई कारण नहीं

है। जिसे आगे नहीं जाना है, उसे चिन्तित होने की कोई वजह नहीं है। जिसे आगे नहीं जाना है, उसकी न कोई प्रतिस्पर्धा है, न कोई प्रतियोगिता है, न कोई ईर्ष्या है, न कोई संघर्ष है। जिसे आगे नहीं जाना है, उसका कोई दुश्मन नहीं है। कोई प्रयोजन नही है दुश्मनी का। लेकिन, जिसका कोई दुश्मन नही, जिसकी कोई अशान्ति नहीं, चिन्ता नही, पीड़ा नहीं, कुछ नहीं, उसमें जो दीप्ति आनी शुरू हो जाती है, उस दीप्ति के कारण कुछ लोग उसके पीछे क्यू लगाने लगते है।

यह दूसरी प्रक्रिया है। और ये लोग उसके पीछे खड़े होते जाते हैं। इनको इतना चुप खड़ा होना होता है कि उनको पता न चल जाए कि पीछे और लोग खड़े हो गये हैं। नहीं तो वे उनके पीछे आकर खड़े हो जाएंगे। गुरुजिरफ कहता था कि सन्तो के पीछे चलना हो तो पता मत चलने देना, तुम्हारे पैर की आवाज मत होने देना। क्योंकि सन्त पीछे खड़े होने के बड़े प्रेमी है। वे तुम्हें आगे कर लेंगे। उनके पीछे ऐसे चलना कि जैसे कोई है नही।

कभी-कभी ऐसा होता है कि सन्तों के पीछे भी लाखों लोग इकट्ठे हो जाते हैं। लेकिन यह आगे होने की प्रक्रिया गुणात्मक रूप से भिन्न है। इस आगे होने में किसी को पीछे नही किया गया है। इसमें लोग पीछे हो गए हैं। राजनीति में अनुयायी बनाने पड़ते हैं; धर्म में अनुयायी बन जाते है। राजनीति मे लोगों को पीछे रखना पड़ता है; धर्म में पीछे लोग खड़े हो जाते है। यह एक सहज घटना है। इस सुगन्ध को दूर-दिगन्त तक हवाएं अपने आप ले जाती हैं।

इसलिए जो अभिमानी नही हैं, वे लोगों के बीच अग्रणी बने रहते हं। चूंकि वे किसी बात की प्रस्तावना नही करते, इसलिए दुनिया में कोई उनसे विवाद नही कर सकता।

वाद की प्रस्तावना विवाद के लिए निमन्त्रण है। अगर मं कहता हूँ कि यही सत्य है तो मै किसी न किसी आदमी के भीतर आकांक्षा पैदा कर दूंगा, जो कहे कि यह सत्य नही है। जगत एक संतुलन है। जब कोई दावा करता है तो प्रतिदावा तत्काल खड़ा हो जाता है। अगर कोई महावीर के पास जाए तो उनकी कोई प्रस्तावना नही है। महावीर से कोई विवाद करने में सफल नहीं हो पाया; क्योंकि उन्होंने जो कहा, वह वाद नही है। कोई आदमी आकर कहता है, ईश्वर है, तो महावीर कहते है, ठीक है, यह भी ठीक है। और घड़ी भर बाद कोई आदमी आकर कहता है कि ईश्वर नहीं है तो महावीर कहते, यह भी ठीक है।

महावीर कहते हैं कि ऐसा कोई असत्य नहीं है, जिसमें सत्य का अंश न हो। और ऐसा कोई सत्य नही है जो मनुष्य उच्चारित करे और जिसमें असत्य सम्मिलित न हो जाए। इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं क्यो चिन्ता करूं, कोई चीज पूर्ण नहीं है इस जगत मे, तो कोई भी, वह कैसा ही वाद हो, उसमें एक अंश तो सत्य होगा ही। कोई भी वाद कहूं, उसमे एक अंश तो सत्य होगा ही। और कोई चीज

पूर्ण सत्य नहीं है; क्योंकि मनुष्य की भाषा में पूर्ण को प्रकट नहीं किया जा सकता है। तो महावीर का कोई वाद नहीं है।

लेकिन अनुयायी तो वाद बनाते हैं। क्योंकि बिना वाद के अनुयायी को बड़ी कठिनाई होगी। अगर आप महावीर के अनुयायी, जैन को कहें कि ठीक है, कोई वाद नहीं है तो चलो मस्जिद, क्यों मन्दिर जा रहे हो; तो क्यों रटे बैठे हो महावीर के वचन, रटो कुरान; क्यों करते हो नमस्कार महावीर को, चलो आज नमस्कार हो जाए राम को; वह कहेगा नहीं: इसका वाद है। ये इतिहास में घटनेवाली दुर्घटनाए हैं। महावीर का कोई वाद नहीं है। लेकिन अनुयायी तो बिना वाद के नहीं रह सकता। उसको तो फासला बनाना पड़ेगा कि मैं दूसरों से अलग हूँ, मेरा गिरोह अलग है। सीमा बनानी पड़ेगी। सीमा बनाने में वाद शुरू हो जाएगा।

महावीर का कोई वाद नहीं है। लेकिन मजे की बात है कि जैन दार्शनिकों और पंडितों ने जितना विवाद भारत में किया है, उतना और किसी ने नहीं किया है। पक्के विवादी हे। और एक-एक चीज की बाल की खाल निकालने में कुशल हैं। और जैन तर्क विकसित तर्क हैं। सच तो यह है कि जैन अनुयायियों को तर्क को खूब विकसित करना पड़ा; क्योंकि महावीर ने तर्क को बिलकुल छुआ नहीं। उनको मुसीबत में छोड़ गये। तो उसकी काफी सुरक्षा उन्हें करनी पड़ी, उन्हें काफी ईजाद करनी पडी। और महावीर का जो वाद ही नहीं था, उसको भी जैनों ने स्यातवाद नाम दे दिया।

अब यह बड़ा उल्टा नाम है। स्यात शब्द बहुत अद्भुत है। यह सिर्फ पॉसिबिलिटी का, संभावना का सूचक है। कोई पूछता है, ईश्वर है? महावीर कहते, स्यात है। स्यात का मतलब यह है कि न तो मैं पूर्ण रूप से कहता कि नहीं है और न पूर्ण रूप से कहता कि है। स्यात का अर्थ यह है कि मैं मध्य में खड़ा हूँ।

स्यात के लिए अंग्रेजी मे कोई शब्द नहीं है। अभी एक अमरीकन विचारक है डिबोनो; उसने एक शब्द निकाला है, वह काम का है। वह शब्द है पो। वह नया शब्द है। भाषा में कोई शब्द है नही। दो शब्द है अंग्रेजी में, यस और नो, हां और नहीं। डिबोनो ठीक महावीर की पकड़ का आदमी मालूम होता है। वह कहता है कि ये दोनो शब्द खतरनाक हैं; क्योंकि इसने पूरा हो जाता है मामला। हां या नहीं। और जिन्दगी ऐसी नहीं है। जिन्दगी ऐसी नही है। तो वह कहता है, यस और नो के बीच मे एक मिडिल टर्म पो, PO हो। वह कहता है, पो का मतलब शायद है।

आप पूछते हैं कि आपको मुझसे प्रेम है या नही? तो हा या ना के बजाय डिबोनो कहता है, पो, स्यात। क्योंकि हजार चीजों पर निर्भर करता है, इसलिए जल्दी में हा या ना में जवाब देना खतरनाक है। हां का मतलब यह हुआ कि अब यह प्रेम जो है, वह एबसोल्यूट हो गया। अगर मैं कहू हा और घड़ी भर बाद

आपसे नाराज हो जाऊं तो आप कहेंगे, कहां है वह प्रेम ? कहां गया वह प्रेम ? हां भी गलत होगा, नहीं भी गलत होगा। जीवन में सभी चीजें रिलेटिव हैं, एबसोल्यूट नहीं हैं; सब सापेक्ष हैं, कोई पूर्ण नही है। जो भी प्रेम है, क्षण भर बाद प्रेम नहीं रह जाएगा। और जहां प्रेम की कोई खबर भी नहीं है, क्षण भर बाद वहां प्रेम का पौधा उग आयेगा। कुछ नही कहा जा सकता। तो डिबोनो कहता है पो, स्यात।

महावीर ने स्यात का प्रयोग किया है। लेकिन उनके अनुयायियों ने उसको भी वाद बना दिया है --- स्यातवाद। वाद नही हैं। स्यात का मतलब ही यही है कि कोई भी वाद जगत में नही है। तुम जितने भी वाद प्रस्तावित करते हो, उस वाद का मतलब यह होता है कि कोई दावा है, कि ऐसा है। ऐसा ही है, तब वाद खडा होता है। महावीर कहते हैं, ऐसा ही है मत कहो; इतना ही कहो, ऐसा भी है। बस, इतना कहो। ही पर जोर मत दो, भी पर जोर दो तो कोई कलह नहीं है, कोई विवाद नही है। विवाद खडा होता है वाद के आग्रह से। अनाग्रह हो, कोई दावा नही हो।

चूंकि वे किसी वाद की प्रस्तावना नहीं करते, इसलिए दुनिया मे कोई भी उनसे विवाद नहीं करता है। और क्या यह सही नहीं है, जैसा कि कहा है प्राचीनों ने, समर्पण मे ही है सम्पूर्ण की सुरक्षा। और इस तरह सत सुरक्षित रहते है और ससार उनको सम्मान देता है।

समर्पण में ही है सपूर्ण की सुरक्षा, यही सूत्र का सार अश है। इस सारे सूत्र में अलग-अलग पहलुओ से --- लड़ना नही, छोड देना, सघर्ष मत करना, झुक जाना, विवाद मत करना, दावा मत करना, कोई प्रस्तावना ही मत करना, अपनी तरफ से कोई औचित्य मत सिद्ध करना, अपनी तरफ से झुक जाना, कड़ा मत होना, अकड कर मत खडा होना --- इसी सत्य को अलग-अलग पहलुओं से लाओत्से ने कहा है। **सार है समर्पण, सरेन्डर।**

इस आखिरी बात को हम ठीक से समझ ले। वह इसका सार है।

सघर्ष एक शब्द है, एक शब्द है समर्पण। सघर्ष में दूसरे से लड़ना है, जीतना है, जीतने की आकांक्षा है, हार परिणाम है। समर्पण में दूसरा दूसरा नहीं है, दूसरे से कोई विरोध नहीं है, दूसरे से कोई शत्रुता नही है। समर्पण में दूसरा स्वीकार है, अविरोध से स्वीकार है। जैसे आयें आधी और छोटा घास का तिनका झुक जाए, समर्पित हो जाए। घास का तिनका आधी से शत्रुता नही बाधता है, मित्रता मानता है। सोचता है, आंधी खेल रही है साथ मेरे। आधी को गुजर जाने देता है, राह दे देता है। यह जो छोटे तिनके का समर्पण है आधी के लिए, यही उसके प्राणो की सुरक्षा है। आधी बीत जाएगी, तिनका खडा हो जाएगा। बड़े वृक्ष गिर जाएंगे, तिनका बच जाएगा।

इस पूरे जगत को अगर हम एक आंधी समझें, इस पूरे अस्तित्व को एक झंझा-वात समझें तो समर्पण एक झंझावात में सुरक्षा का उपाय है। यहां ठीक झुक जाना है। झुक जाना शब्द अच्छा नहीं लगता हमारे मन में; क्योंकि हमारी भाषा न झुकने की है। लेकिन लाओत्से को समझेंगे तो झुक जाना शब्द बड़ा अद्भुत है। और बहुत कम लोग इस महानता को उपलब्ध होते हैं कि झुक जाएं। झुक जाना है इस झंझावात में जो कि जगत है। क्योंकि हम इसके अंग हैं, इससे पृथक नहीं है। इससे लड़ाई बेमानी है, पागलपन है। जैसे मैं अपने ही दोनों हाथों को लडाऊं, ऐसा पागलपन है। जैसे मेरी आंख मेरे शरीर से लड़ने लगे, मेरे पैर मेरे पेट से लड़ने लगें, ऐसा पागलपन है। लडाई शब्द खतरनाक है।

अस्तित्व के रहस्य में जिसे प्रवेश करना है, वह अपने को ऐसा छोड़ दे, जैसे बूंदें सागर में छोड़ देती हैं, एक हो जाती हैं; जैसे सूखा पत्ता हवा में छोड़ देता है, हवा के साथ एक हो जाता है। इस पूरे अस्तित्व की झंझा में मै एक अंश मात्र हूँ, पृथक नहीं, अलग नहीं। मेरा कोई अलग अस्तित्व नहीं है, इस अस्तित्व का ही एक कण हूँ। तो लड़ाई बेमानी है, महंगी है; नाहक कष्ट, नाहक दुख है।

पश्चिम में आज इतनी चिन्ता का जो कारण है, वह इस बात से पैदा हुआ है कि व्यक्ति अस्तित्व से अलग है। जो लोग भी अपने को अस्तित्व से अलग मानेंगे, वे चिन्ता में पड जाएंगे। क्योंकि तब सारा जगत शत्रु है और मुझे अपनी रक्षा करनी है। और यह रक्षा हो नही सकती; तब मैं टूटूंगा, मिटूंगा, परेशान होऊंगा। अगर यह सारा अस्तित्व मैं ही हूँ और इसके साथ एक हूँ तो मेरी मृत्यु भी मेरी मृत्यु नही है।

उमर खैयाम ने कहा है कि क्या हुआ, अगर मै मर भी गया। मेरी जो मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी, कोई पौधा उसमें से उगेगा, कोई फूल खिलेगा, तो मैं उस फूल में खिलूंगा। मेरे प्राण विसर्जित हो जाएंगे हवा में, किसी के फेफड़ों में प्रवेश करेंगे, कोई हृदय धड़केगा, तो मैं उस हृदय में धड़कूंगा।

मैं मिट नहीं सकता हूँ; क्योकि मैं नहीं हूँ। मै मिट सकता हूँ; अगर मै हूँ। अगर मैं नहीं ही हूँ, यह अस्तित्व ही है तो मेरे मिटने का कोई उपाय न रहा। आज जो मेरे हाथ में बहता हुआ खून है, वह किसी पक्षी में किसी दिन आकाश में उड़ा होगा। आज मेरी हड्डी में जो मिट्टी है, वह मिट्टी कभी किसी वृक्ष में फूल बनी होगी; फिर कभी फूल बनेगी। आज जिस शब्द से मैं बोल रहा हूँ, वह शब्द कभी किसी वृक्ष में हवा के टक्कर से पैदा हुआ होगा; फिर कभी वृक्षों के बीच बहेगा। मेरा होना अगर अस्तित्व से अलग है तो मेरा मिटना निश्चित है। लेकिन अगर मैं अस्तित्व से एक हूँ तो कभी फूल में, कभी पक्षी में, कभी आकाश में, कभी मिट्टी में अनन्त-अनन्त रूपों में बना ही रहूँगा। मेरे मिटने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए लाओत्से कहता है, समर्पण में है सुरक्षा। जिसने अपने को खो दिया

अस्तित्व में पूरा, उसकी फिर कोई असुरक्षा नहीं है। उसकी इनसिक्यूरिटी का अब कोई सवाल नहीं है। और बचाया अपने को तो असुरक्षा निश्चित है। फिर मुसीबतें खड़ी हैं।

और हम सब अपने को बचाने में लगे हैं। बचाना ही हमारा दुख है। और बचा भी नहीं पाते हैं। बचा भी नहीं पाएंगे। मिटेंगे तो भी, खोयेंगे तो भी। और ऐसा भी नहीं है कि जो बचाने में लगा है, वह अलग ढंग से खोता है और जो समर्पण करता है, वह अलग ढंग से खोता है। सिर्फ दृष्टि बदल जाती है। खोना तो दोनों को ही पड़ता है। खोना तो दोनों को ही पड़ता है; दृष्टि बदल जाती है। आप मरते हैं, क्योंकि आप सोचते थे आप हैं। लाओत्से सिर्फ विसर्जित होता है विराट में। वह दृष्टि बदल जाती है। लाओत्से की मृत्यु भी एक शान्त मृत्यु है। कोई पीड़ा नहीं है। क्योंकि लाओत्से और बड़ा होने जा रहा है, किसी कारागृह से छूट रहा है। कारागृह की दीवारें गिर जाएंगी, कारागृह के भीतर छिपा हुआ आकाश विराट आकाश में मिल जाएगा। यह तो मुक्ति का क्षण है। हमारे लिए जो मृत्यु का क्षण है, वह लाओत्से के लिए मुक्ति का क्षण है। हमारे लिए जो बड़ी उदास, दुख-भरी घटना है, वह बुद्ध और महावीर के लिए निर्वाण है। विराट के साथ वे एक होने जा रहे हैं।

मंसूर ने, सूली पर लटके हुए, कहा है कि तुम इतना ही मत देखना कि मुझे सूली दी जा रही है; जरा आंख खोलो ! एक लाख लोग इकट्ठे थे, जो पत्थर मार रहे थे, गालियां दे रहे थे। वे उसकी हत्या के लिए आये थे। मंसूर ने कहा, मैं तो मर रहा हूं; इतना ही मत देखना कि मैं मर रहा हूं; जरा आँखें खोलो, शोरगुल बन्द करो। इस तरफ मैं मर रहा हूं, उस तरफ मैं परमात्मा से मिल रहा हूँ; इसको भी तुम देखना। इधर से विदा हो रहा हूं, उधर मेरा स्वागत हो रहा है। इधर से मैं हट रहा हूं, उधर मेरा प्रवेश हो रहा है। तुमसे मैं दूर जा रहा हूं, उसके मैं पास जा रहा हूं; इसको भी देख लेना।

लेकिन, जब एक आदमी मरता है, तब हमें सिर्फ उसकी विदाई दिखाई पड़ती है। वह कहीं जा रहा है, यह नहीं दिखाई पड़ता है। हम अंधे हैं। लेकिन इस जगत में कोई चीज खोती नहीं है। एक मिट्टी का कण भी नहीं खोता। विज्ञान कहता है कि डिस्ट्रक्शन इज इम्पॉसीबुल, असंभव है नष्ट करना किसी वस्तु को। एक रेत के कण को भी हम नष्ट नहीं कर सकते। रहेगा; किसी भी रूप में रहे, रहेगा। अस्तित्व बना ही रहेगा। अस्तित्व उतना ही रहेगा, उसकी मात्रा जरा भी कम नहीं हो सकती।

तो जहाँ रेत का कण न मिटता हो, वहाँ आपके मिटने की इतनी क्या फिक्र है? जहाँ कुछ भी मिटना संभव नहीं है, वहाँ आदमी को लगता है कि मैं मर जाऊंगा, मैं मिट जाऊंगा। यह लगना किसी भ्रान्ति पर खड़ा है। यह भ्रान्ति है अपने को अलग मान लेना। मैं अलग हूं तो घबड़ाहट शुरू हो जाती है कि मैं मिटूंगा।

रामकृष्ण मर रहे हैं। उनको कैंसर हो गया है। वे भोजन भी नहीं ले पाते हैं। गले में कुछ डालते हैं, बाहर गिर जाता है। विवेकानन्द रामकृष्ण से जाकर कहते हैं, आप एक बार क्यों नहीं कह देते मां को, काली को क्यों नहीं प्रार्थना कर लेते ? एक दफा आप कह देंगे, बात घट जाएगी। विवेकानन्द की बात मानकर रामकृष्ण ने आँख बन्द की, फिर खिलखिलाकर हंसने लगे और उन्होंने कहा, मैंने कहा और काली बोली : अपने गले से बहुत दिन भोजन किया, अब दूसरों के गले से करो। तो विवेकानंद आज तुम जब भोजन करो, तब तुम्हारे गले से मैं भोजन करूंगा। और यह उचित ही है, रामकृष्ण ने कहा; क्योंकि इस गले से कब तक बंधा रहूंगा ? वक्त करीब आता है, जब दूसरे गलों में मुझे फैल जाना होगा।

लेकिन अगर यह गला मेरा गला है तो फासी लगेगी। लेकिन अगर सारे गले मेरे हैं तो लगती रहे फांसी, कितने ही फन्दे बनाए जाएं, कोई न कोई गला बचता ही रहेगा। कितनी ही सांस घुटे, कोई न कोई सांस चलती ही रहेगी। और कितने ही फूल कुम्हलाएँ, कहीं और फूल खिल जाएंगे। इस जगत में कुछ नष्ट नहीं होता है। सिर्फ आदमी के अहंकार की भ्रान्ति है कि उसे लगता है कि मैं अलग हूँ। इसलिए भय पैदा होता है कि मैं नष्ट हो जाऊंगा।

समर्पण अहंकार की भ्रान्ति का विसर्जन है। मैं अलग नहीं हूँ। फिर इस जगत मे कोई संघर्ष नही है।

आज इतना ही। पाँच मिनट कीर्तन करें।

ताओ है परम स्वतन्त्रता

उनचासवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २२ जुलाई १९७२

अध्याय २३

ताओ से एकात्मता

निसर्ग है स्वल्पभाषी
यही कारण है कि तूफान सुबह भर भी नहीं चल पाता;
और आंधी-पानी पूरे दिन जारी नहीं रहता है।
वे कहां से आते हैं?
निसर्ग से।
जब निसर्ग का स्वर भी दीर्घजीवी नहीं,
तो मनुष्य के स्वर का क्या पूछना?
इसलिए ऐसा कहा जाता है:
ताओ का जो करता है अनुगमन, वह ताओ के साथ एकात्म हो जाता है।
आचार सूत्रों पर चलता है जो, वह उनके साथ एकात्म हो जाता है।
और जो ताओ का परित्याग करता है,
वह ताओ के अभाव से एकात्म होता है।

जो ताओ से एकात्म है
ताओ भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है।
जो नीति से एकात्म है
नीति भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है।
और जो ताओ के परित्याग से एक होता है
ताओ का अभाव भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न होता है।
जो स्वयं में श्रद्धावान नहीं है
उसे दूसरों की श्रद्धा भी नहीं मिल सकेगी।

CHAPTER 23

IDENTIFICATION WITH TAO

Nature says few words :
Hence it is that a squall lasts not a whole morning;
A rainstorm continues not a whole day.
Where do they come from ?
From Nature.
Even Nature does not last long (in its utterances),
How much less should human beings ?
Therefore it is that :
He who follows the Tao is identified with the Tao.
He who follows Character (Teh) is identified with Character.
He who abandons (Tao) is identified with abandonment (of Tao)

He who is identified with Tao—
Tao is also glad to welcome him
He who is identified with Character—
Character is also glad to welcome him.
He who is identified with abandonment—
Abandonment is also glad to welcome him.
He who has not enough faith
Will not be able to command faith from others.

विटमिंस्टिन ने कहा है : जो कहा जा सकता है वह थोड़े में कहा जा सकता है, और जो नहीं कहा जा सकता, उसे विस्तार से भी कहने का कोई उपाय नहीं है।

लेकिन संत और भी गहरी बात कहते रहे हैं। वे कहते रहे हैं, जो कहा जा सकता है, वह मौन में भी कहा जा सकता है, और जो नहीं कहा जा सकता, उसे कितने ही विस्तार में कहा जाए तो भी वह अनकहा ही रह जाता है। जो कहा जा सकता है, वह बिन कहे भी कहा जा सकता है। जो नही कहा जा सकता, कितना ही हम कहें, वह अछूता, अस्पर्शित रह जाता है।

लाओत्से बहुत स्वल्पभाषी है। सच तो यह है कि थोड़ा सा उसने जो कहा है, वह भी बड़ी मजबूरी में। अधिकतर लाओत्से चुप रहा है। या कहें कि उसने अपनी चुप्पी ही से अधिकतर कहा है। कहा तो बहुत है, कहा तो बहुत गहरा है। लेकिन जीवन भर अपने शिष्यो के पास वह अधिकतर मौन ही था। शिष्य उसके साथ बैठते, उठते, चलते, यात्रा करते, सोते, खाते-पीते; बोलना अधिक व्यवसाय न था। उस मौन में, लाओत्से के उठने मे, बैठने मे, उसकी आंखो मे, उसके हाथ के इशारों में, उसकी भाव-भंगिमा मे, उसकी मुद्राओ में, उसकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओ में, जो सूचन मिल जाता है, वही उसका संदेश था।

लाओत्से ने जीवन भर कुछ नही कहा है। जीवन के अन्त में यह ताओ-तेह्-किंग किताब, अति छोटी-से-छोटी किताब है यह, उसने कही है। लाओत्से से कभी कोई पूछता कि कुछ कहो तो लाओत्से कहता कि जो समझ सकते हैं, वे बिना कहे भी समझ लेंगे और जो नहीं समझ सकते हैं, उनके साथ कहकर भी समझाने का कोई उपाय नही है। अगर दृष्टि हो और गहराई हो, भाव हो, प्रेम हो तो मौन भी समझा जा सकता है। दृष्टि न हो, गहराई न हो, भाव न हो, प्रेम न हो तो शब्द भी बहरे कानों पर पड़ते हैं और बिखर जाते हैं। सुनकर भी सुना हो, यह जरूरी नहीं है; देखकर भी देखा हो, यह अनिवार्य नही है।

हम देखकर भी अनदेखा छोड़ सकते हैं। हम सुनकर भी अनसुनी हालत मे रह सकते हैं। क्योंकि सुनना अगर सिर्फ कान का ही काम होता तो बड़ा आसान हो जाता। कान के साथ भीतर प्राणो का तादात्म्य भी चाहिए। अन्यथा कान सुन लेंगे यंत्रवत और प्राणों का कोई तालमेल भीतर न हो तो बात कहीं भी उतरेगी नहीं। आंख अगर देख लेती तो काफी था। हम परमात्मा को कभी का देख लेते, अगर आंखें अकेली देखने में समर्थ होतीं। आंख के साथ प्राणों का तालमेल चाहिए।

जब आंखों के पीछे से प्राण झांकते हैं, तब कहीं से भी देखें तो परमात्मा दिखाई पड़ जाता है। और जब आंखो के पीछे से प्राण नहीं झांकते, आंखों से ही बाहर की वस्तुएं भीतर झांकती हैं, तब सभी जगह पदार्थ का अनुभव होता है।

पदार्थ का अनुभव यह खबर देता है कि हमने अभी प्राणों से देखना नहीं सीखा है। अभी सिर्फ आंखें देख रही हैं। अगर कान ही सुनते हों तो शब्द सुनाई पड़ते हैं। अगर प्राण कानों के भीतर से सुनने लगें तो सत्य सुनाई पड़ना शुरू हो जाता है। और जिसके प्राण कानों से झांक रहे हों, उसे वृक्षों की हवा में हिलती पत्तियों के स्वर में भी सत्य का अनुभव होगा। और जिसके प्राण कान से न झांक रहे हों, बुद्ध कहते हों उसके सामने खड़े होकर कुछ, कि कृष्ण कहते हों, कि लाओत्से कहता हो, शब्द सुनाई पड़ेंगे और ऐसे ही बिखर जाएंगे, जैसे हवा मे पत्तियां हिली हो और बिखर गयी हो। कहीं भीतर कुछ स्पन्दित नही होगा। कहीं भीतर गहरे में कोई हलचल न मचेगी। कहीं भीतर केंद्र तक कोई किरण प्रवेश न करेगी।

एक गहरा सहयोग चाहिए प्राणों का इन्द्रियो के साथ।

संतों ने मौन से बहुत कुछ कहा है। लेकिन सभी से मौन से नहीं कहा जा सकता; उनसे ही कहा जा सकता है जो अपनी समस्त इन्द्रियों के पीछे अपने प्राणों को एकजुट करने को तैयार हो। शिष्य का इतना ही अर्थ है। शिष्य का इतना ही अर्थ है कि वह अपनी इन्द्रियो के पीछे अपने प्राणो को जोड़कर सीखने को तैयार है। डिसिप्लिन का इतना ही अर्थ है। आप अनुशासित हैं, इसका इतना ही अर्थ है कि आपकी इन्द्रिय और आपके प्राण टूटे हुएअलग–अलग, नही हैं; संयुक्त हैं, जुड़े है। और जब आख देखती है, तब आख ही नही देखती, आत्मा देखती है। आख द्वार बन जाती है। और जब कान सुनते हैं, तब कान ही नहीं सुनते, आत्मा सुनती है। कान द्वार बन जाते हैं। तब आप अपनी इन्द्रियो के द्वारा बाहर आते हैं। साधारणतया आपकी इन्द्रियों के द्वारा जगत भीतर है। जब जगत भीतर आता है, तब कोई गहरी अनुगूंज नही होती है। और जब आप फैलते हैं बाहर, तब गहनतम अनुगूंज होती है। शिष्य का अर्थ है, जो तैयार है इस भीतरी अलकेमी के लिए, इस भीतरी रसायन के लिए कि प्राणो को साथ जोड़ दे।

हुआ एक सद्गुरु था। एक व्यक्ति उसके पास आया और उसने हुआ से कहा कि मैं सत्य सीखने आया हूँ। तो हुआ ने कहा कि रुको और सीखो। बहुत दिन बीते। शिष्य ने कहा कि अब तक आपने सिखाया नहीं। हुआ ने कहा कि अगर मेरे होने से ही जब तुम्हें शिक्षा नहीं मिल सकती तो मेरे कहने से तो नही मिल सकेगी। कहना बहुत कमजोर है; होना बहुत शक्तिशाली है। अगर मेरा समग्र अस्तित्व और मेरी मौजूदगी तुम्हें कुछ नहीं सिखा सकती तो मेरे शब्द, मेरे होठों का कंपन, मेरी आवाज तुम्हे क्या सिखा सकेगी ? बहुत फीकी है आवाज; मेरा होना तो बहुत विराट स्वर है। सीखो।

फिर और कुछ महीने बीते। शिष्य ने फिर कहा, मैं कब तक ऐसे रुका रहूंगा? आप कुछ सिखाते नहीं। हुआ ने कहा, जो सीखने को तैयार है, उसे सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। और जो सीखने को तैयार नहीं है, उसे अभी तक जगत में कोई सद्‌गुरु सिखा नहीं सका। यह काम मेरा नहीं है। यह काम तुम्हारा है कि तुम सीखो।

वर्ष बीता। शिष्य ने कहा, अब क्या मैं चला जाऊं? मै थक भी गया, ऊब भी गया। न आप कुछ बोलते, न आप कुछ कहते।

हुआ ने कहा, तुम्हारी मरजी! लेकिन अगर मेरे होने का आघात भी तुम्हारे ऊपर नही पड़ता तो मेरी शिक्षाएं व्यर्थ ही होंगी। फिर तुम यह मत कहना किसी से जाकर कि मैंने कुछ सिखाया नहीं। सुबह तुमने जब मुझे नमस्कार किया, तब क्या मैंने तुम्हें नमस्कार का उत्तर नही दिया? और सुबह जब तुम मेरे लिए चाय लेकर आये हो, तब क्या मैंने चाय तुमसे स्वीकार नही की? काश, तुम देखते जब मैंने तुम्हारे नमस्कार का उत्तर दिया है! तब तुम मुझे देखते! जब मैंने तुम्हारी चाय स्वीकार की है, तब तुम मुझे देखते! और जब तुमने मेरे चरणों पर सिर रखा हो और मैंने तुम्हारे सिर पर हाथ रखा, काश, तब तुम अनुभव करते! मैं तो तुम्हें प्रतिपल सिखा रहा हूं।

लेकिन इस तरह की शिक्षा तो केवल शिष्यो को दी जा सकती है। लाओत्से ने मरने के पूर्व यह किताब लिखने की रजामंदी जाहिर की, उसका कुल कारण इतना है कि जो शिष्य नही हैं, जिन्हें लाओत्से सीधा अब नहीं मिल सकेगा, जिनको लाओत्से के पास होने का अब कोई उपाय नहीं रहेगा, जिनको लाओत्से के अस्तित्व का सस्पर्श अब मिलना असभव है, उनके लिए शब्द छोड़े जा रहे हैं। शायद कोई उनमे से इन शब्दो के सूत्र को पकड़ कर भी लाओत्से के अस्तित्व में प्रवेश कर जाए। कोई करना चाहे तो कर सकता है।

लाओत्से इस सूत्र मे कहता है, निसर्ग है स्वल्पभाषी। नही, ज्यादा नही बोलती है प्रकृति; लेकिन पर्याप्त बोलती है। ज्यादा नही बोलती, अल्प बोलती है; लेकिन सब बोल देती है, जो बोलने योग्य है। एक फूल खिलता है सुबह, साझ गिर जाता है। जो कहना था, वह कह दिया गया; जो सुवास छोड़नी थी, वह छोड़ दी गई। सूरज निकलता है, महासूर्य सुबह, और साझ अस्त हो जाता है। जो खबर देनी थी, वह दे दी गई। प्रकृति बहुत सूक्ष्म इशारे करती है, बहुत स्वल्प।

लाओत्से कहता है, यही कारण है कि तूफान सुबह भर भी नहीं चल पाता। उठता है तूफान, लेकिन पूरी सुबह भी नहीं चल पाता। आंधी-पानी पूरे दिन जारी नहीं रहता है। कहा से आते हैं ये और कहाँ चले जाते हैं? क्या है ये, किस बात के प्रतीक हैं? कौन सा संदेश है? आते हैं निसर्ग से, विलीन हो जाते हैं निसर्ग में। निसर्ग की भाषा हैं ये। अगर कोई इसमें झाकना सीख जाए तो वह देखेगा कि

निसर्ग भी प्रतिपल अनन्त-अनन्त संदेश भेज रहा है।

लेकिन बड़े स्वल्प हैं ये संदेश। क्षण भर भी चूके तो चूक जाएंगे। वही निसर्ग के संदेश ग्रहण कर सकता है, जो प्रतिपल सजग है। निसर्ग कोई स्कूल के शिक्षक की भांति सिर पर डंडे लेकर चौबीस घंटे सिखाता नहीं रहता है। और अच्छा ही है कि निसर्ग लम्बी शिक्षाएं नहीं देता। क्योंकि लम्बी शिक्षाए अक्सर लोगों को बधिर बना देती हैं। लम्बी शिक्षाएं अक्सर लोगों को उबा देती हैं। लम्बी शिक्षाओं से लोग सीखते कम हैं, सुनने के आदी हो जाते हैं, शब्दों से परिचित हो जाते हैं। और आदी हो जाते हैं तो फिर कोई चोट नहीं पड़ती।

सत्य का प्रथम संस्पर्श अगर प्रवेश न कर पाए तो उसकी पुनरुक्ति प्रवेश नहीं करती। सत्य का पहला संस्पर्श ही अगर प्रवेश कर जाए तो ही आसान है बात। अगर हम सत्य को सुनने के भी आदी हो जाएं तो जितना हम सुनते हैं, उतनी ही हमारे आसपास दीवार मजबूत हो जाती है। द्वार बन्द हो जाता है।

इसलिए अक्सर यह होता है कि जिन मुल्कों में धर्म की बहुत चर्चा होती है, वहाँ लोग अधार्मिक हो जाते हैं। हमारा ही मुल्क है। जितनी धर्म की चर्चा हमने की है, उतनी पृथ्वी पर कभी किसी ने नहीं की। और शायद कभी कोई अब करेगा भी नही। इस भूल को दोहराना उचित नही है। जितने तीर्थंकरों, जितने अवतारों को हमने इस पृथ्वी के खण्ड पर मौका दिया है, उतना पृथ्वी के किसी दूसरे खण्ड पर मौका नहीं मिला। लेकिन परिणाम बहुत विपरीत है। परिणाम यह है कि हम महावीर और बुद्ध और कृष्ण के भी आदी हो गये है। अगर कृष्ण भी अचानक खड़े हो जाए तो हमारे भीतर कोई तूफान और आँधी नही उठेगी। हम कहेंगे, जानते हं, पहचानते हैं, परिचित है। परिचय अन्धा कर देता है। निकटता बहरा बना देती है। महावीर भी अचानक खड़े हो जाए तो हमारे भीतर कोई हलचल, कोई आन्दोलन नहीं हो जाएगा। हम कहेंगे, ठीक है, पहले भी होते रहे है। महावीर जैसी महा घटना भी हमारे बीच एक साधारण घटना होगी। हम आदी हो गए हैं।

सूर्य भी रोज सुबह निकलता है तो हमें कोई पता नहीं चलता। आदी हो गये हैं। हम सारी चीजो के, जो पुनरुक्त होती रहती हैं हमारे चारों ओर, आदी हो जाते हैं।

थोड़ा सोचें, आदम ने जिस दिन पहली बार सूरज को निकलते हुए देखा होगा, उसका आनन्द, उसकी पुलक, उसका आह्लाद कैसा रहा होगा! आदम ने जिस दिन पहली बार रात में कोई आकाश के तारे देखे होंगे, वह नाच उठा होगा। उस रात सोना मुश्किल हुआ होगा। तारे अब भी वही हैं और हमारे भीतर का आदम, आदमी भी वही है। लेकिन हम आदी हो गए हैं। सब ठहर गया है। हमें सब पता है कि सब ठीक है, रात तारे होते हैं। जरूरी नहीं है कि हमने जाना हो।

हो सकता है कि हमने सुना हो, या हमने फिल्म के पर्दे पर देखा हो।

जिसमें स्वल्प संदेश देता है — प्रत्यक्ष भी नहीं, परोक्ष, छिपे हुए। इशारा करता है, बोलता भी नहीं। धीमी-सी पुलक, धीमी-सी सिहरन पैदा करता है। अगर हम संवेदनशील हो तो ही समझ पाएंगे। कोई वीणा पर हथौड़े नहीं पटक देता; धीमे से इशारा कर देता है और तार झनझना जाते हैं। लेकिन लुहार जो दिन भर हथौड़ा पटकता रहता है, उसको अगर ऐसे तार झनझनाएं तो वह कहेगा कि कैसी आवाज आ रही है, सुनाई भी नहीं पड़ती है। कान बादी हो गए हैं।

संवेदना खो गई है। स्पर्श की क्षमता क्षीण हो गई है। स्वाद मंद पड़ गया है। सब कुछ जड़ हो गया है। हमें कुछ भी पता नहीं चलता। हवा हमारे पास से गुजर जाती है — पूरे परमात्मा को बहाती हुई, पर हमारे रोए में उसकी खबर भी नहीं उठती।

क्या आपको पता है कि आप श्वास से ही सांस नहीं लेते, रोएं-रोए से सांस लेते हैं? लेकिन आपको पता नहीं चलता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आप की नाक खुली रहने दी जाए और सारे रोएँ बन्द कर दिए जाए और सिर्फ नाक खुली और मुह खुला छोड दिया जाए और मजे से सास लेते रहे तो आप तीन घंटे से ज्यादा जिन्दा नही रह सकेंगे। क्योंकि एक-एक रोआं श्वास ले रहा है। पूरे शरीर मे करोडो रोए सास ले रहे है। लेकिन आपको पता है? सिर्फ छोटे बच्चों को अनुभव होता है, या लाओत्से जैसे बूढ़ो को अनुभव होता है।

लाओत्से ने कहा है, कहा से लेता हूँ मै सास, सब तरफ से, सब दिशाओं से, रोए-रोए से। हमे तो इसकी पुनर्खोज करनी पड़े।

ताओ-परम्परा मे यह एक गहन प्रयोग है -- सवेदनशीलता को जगाने का। कभी इस पर प्रयोग करे। कभी दिन मे पद्रह मिनट लेट जाएं और अनुभव करें कि श्वास से ही नहीं, शरीर के रोए-रोए से सास ले रहा हूँ। इसकी पुनर्खोज करनी पड़े। जरूर कुछ दिन प्रयोग करने पर अनुभव होना शुरू हो जाएगा कि श्वास रोएं-रोए से आ रही है। पूरा शरीर तब जीवन्त मालूम होगा। अभी पूरा शरीर जीवन्त नहीं मालूम होता। सिर के आसपास थोड़ी सी जीवन्तता है; बाकी पूरा शरीर जड़ हो गया है। पूरे शरीर मे आप नही है, खोपड़ी के पास थोड़ी-सी जगह मे सीमित हो गए है। आपका बाकी सब शरीर तो आप ढोते हैं, उसमें जीते नही। जिस दिन श्वास-श्वास का अनुभव होगा रोएं-रोएं से, उस दिन पता चलेगा कि पूरा शरीर जीवित है। और उस दिन आपकी आत्मा खोपड़ी में मालूम नहीं पड़ेगी, तत्काल नाभि पर सरक जाएगी। उस दिन आपको ऐसा नहीं लगेगा कि मेरा केंद्र सिर के भीतर है, केन्द्र नाभि के पास है। क्योंकि जब सब तरफ से स्वांस आती है, सब तरफ से स्वांस का वर्तुल बनता है, सब तरफ की सांस आती

है, तब आपको पता चलेगा कि मैं नाभि से जी रहा हूँ। तब नाभि केन्द्र बन जाएगी। नाभि ही केन्द्र है। लेकिन जो पूरे शरीर से श्वास के अनुभव को उपलब्ध होता है, वही नाभि केन्द्र है, इसके अनुभव को उपलब्ध होता है।

और जिस दिन आप पूरे शरीर से श्वास लेने में सक्षम हो जाएंगे, उस दिन जब हवा का झोंका आपके पास से निकलेगा, तब सिर्फ हवा का झोंका नहीं होगा, परमात्मा का झोंका भी होगा। और जब आपकी आंख के सामने एक फूल खिलेगा और हंसेगा, तब सिर्फ फूल ही नहीं खिलेगा, फूल से सारी प्रकृति खिलेगी और हंसेगी। और तब वह जो स्वल्पभाषी प्रकृति है, निसर्ग है, उसकी भाषा, उसकी कोड-लैंगुएज आपकी समझ में आनी शुरू होगी।

हम आदमी की भाषा समझते हैं; वह भी ठीक से नहीं समझते। मतलब सदा हमारे होते हैं। प्रकृति की भाषा तो वही समझ सकता है, जो उसे सीखे; या आदमी की जो भाषा सीख ली है, उसे भूले। दोनों का एक ही मतलब है। अन-लर्न करे, आदमी की भाषा भूले; ताकि निसर्ग की भाषा सीख सके।

निसर्ग की भाषा तो प्रतीक-भाषा है। और प्रतीक परोक्ष है, सीधे, स्पष्ट नहीं हैं; सिर पर चोट की तरह नहीं पड़ते हैं। बहुत हलकी सवेदना, हलका सस्पर्श करते हैं और विदा हो जाते हैं। द्वार पर इतनी हलकी दस्तक कि केवल वे ही सुन पाएंगे जिनका पूरा रोए-रोए सुनता है; नहीं तो नहीं सुन पाएंगे। परमात्मा के पैरों की जो ध्वनि है, वह केवल वे ही सुन पाएगे, जो इतने मौन हैं। इतने शान्त है कि अगर अदृश्य का पैर भी जमीन पर पडे तो उसकी ध्वनि उन्हे सुनाई पड़ सकती है। हमें तो तुमुल नाद हो, तब थोडा-बहुत सुनाई पडता है।

आदमी की भाषा भी हम ठीक से नहीं समझते है। हमारे अपने-अपने अर्थ हैं। मैं जो बोल रहा हूँ वही आप समझते है, इस भूल में कभी भी मत पड जाना। सुनाई तो वही पड़ता है जो मैं बोलता हूँ; लेकिन समझ मे वही पडता है जो आप समझ सकते है। समझ में वही नहीं पड सकता है जो मैं समझाना चाहता हूँ। अर्थ हैं भीतर हमारे और हमारे अपने प्रयोजन हैं। यहाँ इतने लोग हैं तो इतने ही अर्थ हो जाते हैं। और फिर अपना-अपना स्वार्थ है, अपने-अपने लाभ हे, अपनी-अपनी उपयोगिता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक नदी के किनारे पर बैठा है। वहाँ दस अन्धे आये हैं और वे नदी पार करना चाहते हैं। मुल्ला ने उनके साथ सौदा किया और कहा, एक-एक पैसा एक-एक आदमी को नदी के पार करने का मैं लूगा। ज्यादा मैं नहीं मांगता हूँ। अन्धे राजी हो गए; कोई महंगी बात न थी।

मुल्ला ने एक-एक अंधे को नदी पार किया। नौ अंधों को पार कर चुका, थक भी गया। जब दसवें को पार कर रहा था, तब दसवा हाथ से छूट गया। डुबकी खायी, तेज थी धार नदी की, अंधा बह गया। नौ अंधों में हलचल मची। झक

हुआ, आवाज आई डुबकी खाने की, किसी के गिरने की। उन्होंने पूछा, क्या हुआ नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहा, कुछ भी नहीं हुआ, तुम्हारे लाभ में है, एक पैसा कम देना पड़ेगा।

नसरुद्दीन के लिए तो प्रयोजन दस पैसे से है। उसने कहा, कुछ भी नहीं हुआ; तुम्हारे लाभ में है, एक पैसा कम देना। औ को ही मैं पार करवा पाया। वह जो एक आदमी का मर जाना है, खो जाना है, वह नसरुद्दीन के प्रयोजन में नहीं है। एक पैसा प्रयोजन में है।

डाक्टर अक्सर एक दूसरे से कहते सुने जाते हैं कि मरीज तो मर गया, पर ऑपरेशन बडा सफल हुआ। ऑपरेशन की सफलता अलग ही बात है; उसका मरीज के जिंदा रहने या मरने से कोई सम्बन्ध नही है। है भी? डाक्टर के लिए मरीज गौण है। ऑपरेशन एक कुशलता है, बात ही अलग है।

एक अंग्रेज सरजन था कनेटवाटर। बड़ा सरजन था, लंदन के बडे से बड़े सर्जनो में से था। फिर पीछे वह गुरजिएफ का अनुयायी हो गया और सब छोडकर साधना में लग गया। उसने अपने संस्मरणों में कहीं कहा है कि पहली दफा एक ऐसा मरीज आया, जिसकी बाबत सर्जरी को कुछ भी पता न था। मै ही पहला आदमी था उसका ऑपरेशन करनेवाला। मरीज तो मर गया, लेकिन ऑपरेशन बिलकुल सफल था। और जो शब्द मेरे मुँह से निकला था पहली दफा, जब मैंने उसके पेट को चीडफाड करके बीमारी की ग्रंथि को बाहर निकाल लिया था, वह जो बीमारी की ग्रन्थि थी, उसको देखकर मेरे मुह से जो पहला शब्द निकला था, वह था ब्युटीफुल, सुन्दर! मैं ही पहला आदमी था उस ग्रन्थि को देखनेवाला—मनुष्यता के इतिहास में। और वह अनुभव अनूठा था।

वह जो मरीज मरा पडा है टेबल पर, वह ठीक वैसे ही है, जैसे मुल्ला नसरुद्दीन का अंधा डूब गया। एक पैसा कम देना पड़ेगा!

हमारे प्रयोजन ही हमारे अर्थ बन जाते हैं। अगर आंधी जोर से चल रही है तो आप आंधी को नहीं देखते, आप अगर एक दीया जलाकर बैठे हैं तो आपको यही फिक्र हो जाती है कि यह दीया बुझ न जाए। अगर आकाश में बादल घिरे हैं और अपने कपडे आप बाहर सूखने टांग आये हैं तो बादल नही दिखाई पडते हैं, पडते हैं कि कहीं वे भीग न जाएं। घर रस्सी पर टंगे हुए कपडे दिखाई चले आ रहे हैं! वर्षा की बूंदे गिरने लगी हैं तो आपको वर्षा की बूंदे नही दिखाई पड़तीं, कपडे की सब क्रीज बिगडी जा रही है, वही दिखाई पड़ती है। एक पैसा कम देना पड़ेगा!

हमारे प्रयोजन ही हमारे अनुभव बनते हैं। इतनी महान घटना घट रही है कि आकाश आप पर बूंदें बरसा रहा है, लेकिन उससे कोई लेना-देना नहीं है। वह कहीं पता ही नहीं चलता, आदमी भागने लगता है कि कपडे न भीग जाएं। कपडे

भीग भी आयेंगे तो कितना महंगा है यह कपड़ा। हम देखते हैं वही, जो हमारे क्षुद्र स्वार्थों से बंधा है। इसलिए प्रकृति का जो विराट निहित अर्थ है, जो रहस्य है, जो संकेत है, वह सब खो जाता है। हम सब अपने आसपास एक दुनिया बनाकर जीते हैं—अपने संदर्भ की। उसमें सब कुछ हमारे हिसाब से होता है।

खलिल जिब्रान ने एक कहानी लिखी है कि एक रात एक होटल में बहुत से लोग आये, बहुत उन लोगो ने खाया-पीया, बहुत आनंदित हुए। रात आधी रात हो गई। और जब वे बिदा होने लगे, तब उस होटल के मालिक ने अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे मेहमान रोज आये तो हमारे भाग्य खुल जाए। जिसने पैसे चुकाये थे, उसने कहा कि दुआ करो परमात्मा से कि हमारा धंधा ठीक से चले; हम रोज आयेंगे। उसने कहा कि हम दुआ करेंगे। लेकिन अचानक उसे खयाल आया और पूछा, लेकिन तुम्हारा धंधा क्या है? उसने कहा कि मरघट पर लकडी बेचने का काम है। दुआ करो, हमारा धन्धा ठीक चले; हम रोज आयेंगे।

धंधा ठीक तभी चल सकता है, जब बस्ती मे रोज लोग मरें। वह लकडी बेचने का काम है मरघट पर। लेकिन सभी धंधे ऐसे हैं। कोई मरघट पर लकड़ी बेचने वाला धन्धा ही ऐसा है, ऐसा मत सोचना। सभी धन्धे ऐसे हैं।

लेकिन अपना-अपना धन्धा है, अपना-अपना निहित स्वार्थ है। उसी के भीतर हम जीते है। इसलिए वह जो प्रकृति का स्वल्प भाषण है, अति मृदु, मौन, जरा सा छूती है और गुजर जाती है, उससे हम वंचित रह जाते है। उस संवेदनशीलता के लिए हमारा जो निहित स्वार्थ का घेरा है, वह टूट जाए और विराट अनंत का जो घेरा है उसके साथ तादात्म्य हो, तो ही हम समझ पाएगे।

लाओत्से कहता है, जब निसर्ग का स्वर ही दीर्घजीवी नही है, तब मनुष्य के स्वर का क्या पूछना? वह कहता है, जब निसर्ग भी बोलता है और इतना अल्प, इतनी परम ऊर्जा और इतनी स्वल्प भाषा, तो मनुष्य के संदेश का क्या?

इसलिए लाओत्से ने जो सूत्र लिखे है, वे अति संक्षिप्त हैं। संक्षिप्ततम हैं। और इसी कारण लाओत्से की किताब समझी नही जा सकी। लाओत्से की किताब अभी भी अनसमझी पडी है। लोग उसे पढ़ भी लेते है, घंटे भर में पढ़ लेते है। आधे घंटे मे पढ़ सकते है। छोटी सी तो किताब है। ऐसी है कि जितनी देर मे अखबार पढते हैं सुबह का, उतनी देर मे पढ़कर फेंक दे सकते है।

क्यो स्वल्प है? इतना छोटा-छोटा क्यों है? इतने अनखुले और रहस्यपूर्ण वचन क्यों हैं?

लाओत्से कहता है, इसलिए क्षेप मे जो मुझे कहना है, वह इतना है। इसलिए ऐसा कहा जा सकता है। इन तीन वचनों में लाओत्से की पूरी किताब का सार है।

ताओ का जो करता है अनुगमन, वह ताओ के साथ एकात्म हो जाता है। आचार-सूत्रों पर चलता है जो, वह आचार-सूत्रों के साथ एकात्म हो जाता है।

और जो करता है परित्याग ताओ का, वह ताओ के अभाव से एकात्म हो जाता है। जो ताओ से एकात्म है,ताओ भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है। जो नीति से ही है एकात्म, नीति उसका स्वागत करने में आह्लादित है। और जो ताओ के परित्याग से एक होता है, ताओ का अभाव भी उसका स्वागत करता है।

यह बड़ी अनूठी बात है। और एकदम खयाल में न आए, ऐसी बात है। इसके बड़े अन्तर-निहित अर्थ है। दो-तीन आयामों से इसे हम समझने की कोशिश करेंगे।

पहला लाओत्से कहता है, तुम जिसका करोगे अनुगमन, तुम वैसा ही हो जाओगे। तुम चलोगे जिसके पीछे, उसकी ही छाया बन जाओगे। तुम भाव से जिसके साथ जोड़ लोगे अपने को, वही हो जाओगे। अगर तुमने पदार्थ के साथ जोड़ लिया अपने को भाव से तो तुम पदार्थ हो जाओगे। हम सब पदार्थ हो गए हैं। क्योंकि पदार्थ के अतिरिक्त हम और किसी का अनुगमन नहीं करते। कोई मकान का अनुगमन करता है, कोई कार का, कोई धन का, कोई पद का। पदार्थ का हम सब अनुगमन करते हैं; हम सब अनुयायी हैं पदार्थ के।

दिखाई नही पडता है ऐसा। दिखाई तो पडता है कि कोई महावीर का अनुयायी है, कोई बुद्ध का, कोई कृष्ण का। लेकिन यह सब ऊपरी बकवास है। भीतर आदमी को हम खोजने जाए तो वे सब पदार्थ के अनुगामी हैं। वह जो महावीर का अनुगामी है, वह भी रुपए के पीछे जा रहा है। वह जो बुद्ध का है, वह भी रुपए के पीछे जा रहा है। और वह जो जीसस का है, वह भी।

चीन का सम्राट था एक। खडा है अपने महल पर। और उसके साथ खड़ा है च्वागत्से, लाओत्से का शिष्य। च्वागत्से से सम्राट पूछता है, इतने जहाज आ रहे हैं पानी में, कोई पूरब से, कोई पश्चिम से, कोई पूरब जा रहा है, कोई पश्चिम, कोई दक्षिण, कोई उत्तर; कितनी दिशाओं से और कितने जहाज आ-जा रहे हैं? च्वागत्से कहता है, महाराज, देखने के भ्रम में मत पड़े। ये सब जहाज एक ही दिशा से आते हैं और एक ही दिशा को जाते हैं। सम्राट ने कहा, क्या कहते है? च्वांगत्से ने कहा, रुपये के लिए आते है, और रुपये के लिए जाते है। बाकी सब दिशाएं भ्रांति है, बाकी सब दिशाएं ऊपरी है। उनका कोई मूल्य नही है। सब रुपये के लिए है जो जा रहा है वह भी, जो आ रहा है वह भी।

अगर हम लोगों के धर्मो के नीचे देखें तो धन का धर्म मिलेगा। सब भेद हिंदू और मुसलमान और ईसाई के टूट जाते है वहा। बाकी सब भेद ऊपरी है। और जब तक यह भीतरी धर्म नही बदलता, तब तक जीवन नहीं बदलता। कोई ईसाई हो जाए, कोई हिंदू हो जाए, कोई मुसलमान हो जाए, इस से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो भीतरी धर्म है, वह जो एक ही दिशा में संसार चलता है, वह पदार्थ की दिशा में चलता है।

लाओत्से कहता है, जिसका करोगे अनुगमन, वैसे ही हो जाओगे। तीन सूत्र

उसने दिये है।

ताओ का अनुगमन-मूल ऊर्जा का, प्रकृति का, निसर्ग का, स्वभाव का—श्रेष्ठतम अनुगमन है। और वह श्रेष्ठतम व्यक्ति की संभावना है। जो अपने स्वभाव के साथ चलेगा; चाहे कुछ भी अड़चन झेलनी पड़े, चाहे कुछ भी परिणाम हो, चाहे कोई भी फल आए, वह अपने स्वभाव के अनुकूल चलेगा। जिसे कृष्ण ने कहा है स्वधर्म, वही है ताओ। कृष्ण ने तो कहा है कि परधर्मो भयावहः, स्वधर्मे निधन श्रेयः; अपने स्वभाव में मर जाना श्रेयस्कर है बजाय दूसरे के स्वभाव में जीकर जीना; उससे अपने में मर जाना बेहतर है। लेकिन अक्सर लोग समझते है, शायद यह कहा है कि हिंदू धर्म में पैदा हुए तो हिन्दू धर्म मे मर जाना श्रेयस्कर है, कि मुसलमान धर्म मे पैदा हुए तो मुसलमान धर्म में मर जाना श्रेयकर है। नही, स्व और पर का इससे कोई संबध नही है। स्वधर्म का अर्थ है ताओ, स्वधर्म का अर्थ है मेरा निज स्वभाव, उसके लिए चाहे कुछ भी हो, चाहे मरना पड़े, तो भी उसका ही अनुगमन करूंगा। क्योंकि वही मुझे अमृत की तरफ ले जाएगा।

जो करता है अनुगमन ताओ का, वह ताओ के साथ एकात्म हो जाता है। जो अपनी निज प्रकृति का अनुगमन करता है, वह इस महाप्रकृति के साथ एक हो जाता है। प्रकृति का अनुगमन प्रकृति के साथ तादात्म्य करवा देता है। यह श्रेष्ठतम अनुगमन है— अपना ही अनुगमन, अपने ही पीछे चलना, अपने ही स्वभाव की लकीर को पकड़ कर सब दाव पर लगा देना।

दूसरा उससे नीचे का सूत्र है : आचार-सूत्रो पर जो चलता है, वह उनके साथ एकात्म हो जाता है।

महावीर चलते है स्वधर्म पर, कृष्ण चलते है स्वधर्म पर, बुद्ध और लाओत्से चलते है स्वधर्म पर। लेकिन बुद्ध का अनुयायी बुद्ध के वचन पर चलता है। वह आचार-सूत्र का अनुगमन है।

बुद्ध चलते है स्वभाव पर—अपना ही स्वभाव। बुद्ध को जो मानकर चलता है, उसके लिए दो सभावनाए है। अगर वह सच मे बुद्ध को मानकर चले तो उसे भी अपने स्वभाव पर चलना चाहिए। अगर वह न समझ पाए और बुद्ध से मोहित हो जाए और बुद्ध की बात उसे अच्छी लगे, लेकिन इस रहस्य को न समझ पाए कि जैसे बुद्ध चलत है अपने स्वभाव पर, ऐसे ही मै भी चलू अपने स्वभाव पर, यही असली रहस्य है समझने का, तो फिर बुद्ध जैसे है, वैसे मैं चलू, यह दूसरा परिणाम होगा। यह विकृति है। तो बुद्ध जैसे उठते है, वैसे मै उठू; बुद्ध जैसे बैठते है, वैसे मै बैठू; बुद्ध जो खाते है, वह मैं खाऊ; बुद्ध जो पीते हैं, वह मै पीऊ; बुद्ध जैसे करते हैं, जो करते है, वैसे मं करू।

कोई अनुगमन करेगा तो लाओत्से कहता है कि आचार-सूत्रों का अनुगमन करनेवाला आचार-सूत्रों के साथ एक हो जाएगा।

लेकिन, ऐसा व्यक्ति एक छाया मात्र होगा। ऐसे व्यक्ति के पास आत्मा नहीं होगी, सिर्फ छाया होगी। आत्मा तो उसके पास होगी, जो स्वयं का अनुगमन करेगा। और बड़े शिक्षक जो हैं, उनकी सारी चेष्टा यह है कि तुम अपना अनुगमन करो। लेकिन उनकी यह बात हमें इतनी प्रीतिकर लगती है, और हम ऐसे सम्मोहित हो जाते हैं कि हम कहते हैं कि ठीक है, जंचती है बात आपकी, हम आपका अनुगमन करेंगे। यहां बहुत बारीक फासला है, और उस बारीक फासले में सारे का सारा उपद्रव होता है।

बुद्ध आनन्द को कहते हैं कि मुझे छोड़ दो, मैं ही तेरे लिए बाधा हूं। बुद्ध मर रहे हैं। आनन्द छाती पीट कर रोने लगता है। बुद्ध कहते है कि आनन्द, तू क्यों रोता है? आनन्द कहता है कि आपके रहते हुए मैं ज्ञान को उपलब्ध न हो सका तो अब आपके जाने पर कैसे उपलब्ध हो सकूंगा? बुद्ध कहते हैं, मुझसे पहले, जब मैं नहीं था, तब भी लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए; मैं खुद ही अज्ञानी था, मैं भी बिना किसी बुद्ध के ज्ञान को उपलब्ध हुआ; मैं नहीं रहूंगा, तो आनन्द, क्या तू सोचता है कि जगत में फिर कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं होगा? सच तो यह है आनन्द, कि तू आनन्द मना; क्योंकि अब जब मैं न रहूंगा, तब शायद तू अपना अनुसरण कर सके। मेरे रहते तू अपना अनुसरण नहीं कर पाएगा।

मरते क्षण के आखिरी शब्द जो हैं बुद्ध के, वे पहले सूत्र के शब्द हैं: अप्प दीपो भव अपने लिए स्वयं दीपक बन जाओ। दूसरे को दीया मत मानो; दीया तुम्हारे भीतर है। तुम अपने ही दीपक बन जाओ।

लेकिन बुद्ध की यह बात इतनी प्रीतिकर लगती है कि हम बुद्ध को दीया बनाने की गलती कर सकते हैं। और उस गलती में हम छाया रह जाएंगे। फिर हम अनुगमन करते रहेंगे। लेकिन हमारा तब एकात्म महाप्रकृति के साथ नहीं होगा; उस महाप्रकृति को जिन्होंने अनुभव किया है, उनके आचरण से होगा। उसमें हम छायावत हो जाएंगे।

इसलिए वास्तविक अनुयायी वही करता है, जो उसके गुरु ने अपने साथ किया। झूठा अनुयायी वही करता है, जो अनुयायी को दिखाई पड़ता है कि गुरु करता है। इन दोनो मे फर्क है। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। गुरु ने क्या किया, वही करता है वास्तविक अनुयायी। और गुरु क्या करता दिखाई पडता है अनुयायी को, झूठा अनुयायी वही करने लगता है। तब नकल ऊपरी हो जाती है। और तब अनुयायी एक कारबन कॉपी हो जाता है। फिर मूल प्रति को खोजना असंभव है। क्योंकि जिसने कार्बन कॉपी को समझ लिया कि यह मूल हो गया, तो लाओत्से कहता है कि खतरा यह है प्रकृति का, जीवन के परम नियम का खतरा यह है कि तुम आचार-सूत्रों के साथ एक हो जाओगे और तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि तुमने छाया के साथ अपने को एक मान लिया है। यह एकात्म

इतना हो आएगा कि तुम समझोगे, मैं छाया ही हूं।

बुद्ध के बहुत बड़े अनुयायी बोधिधर्म ने कहा, कोई शिष्य पूछता है कि बुद्ध का नाम सुबह लेना चाहिए या नहीं, तब बोधिधर्म ने कहा कि जब भी बुद्ध का नाम लो, तब कुल्ला करके मुंह भी साफ कर लेना। क्यों? उस आदमी ने कहा, क्या कहते है आप? बुद्ध का पवित्र नाम और उसको लेने पर कुल्ला करके मुंह साफ करना पड़े? बोधिधर्म ने कहा, होगा नाम पवित्र, लेकिन तुम मुंह साफ कर लेना! और रास्ते मे तुम्हें कहीं अगर बुद्ध मिल ही जाएं तो उस रास्ते से ऐसे भागना कि लौटकर मत देखना। वह अनुयायी तो बहुत घबड़ा गया। पर बोधिधर्म ने कहा कि घबडाओ मत, यह तो कुछ भी नहीं है। अब मैं तुम्हें असली बात बताये देता हूँ। जब बुद्ध के साथ मेरा भीतरी सत्संग चलता था, तब आखिर में वह हालत आई कि मुझे बुद्ध को एक तलवार से काट कर टुकडे-टुकडे कर देना पडा। तभी मै अपने को उपलब्ध हो सका।

और बोधिधर्म के पीछे बुद्ध की प्रतिमा रखी हुई है। और आज सुबह भी बोधिधर्म ने बुद्ध के चरणो मे नमस्कार किया है। और आज सांझ फिर वह दीया जलायेगा। उस अनुयायी ने कहा, यह क्या हो रहा है? फूल तुमने सुबह जो चढाये थे, वे अभी कुम्हलाये भी नही है। और जानता हूँ, रोज मैं देखता हूँ, कि तुम सांझ दीया भी जलाओगे।

बोधिधर्म ने कहा, इसीलिए कि बुद्ध ने खुद ही समझाया था कि तुम मुझे भी जब छोड दोगे, तभी तुम अपने को पा सकोगे। वह मेरे गुरु है।

यह जरा जटिल हो गई बात। गुरु को मानकर चलने का अर्थ ही यही है कि एक दिन गुरु व्यर्थ हो जाए। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि अनुग्रह छूट जाता है। बोधिधर्म जीवन भर अनुग्रह से भरा है। बुद्ध को मरे तो कई सौ साल हो गए, और बोधिधर्म अब भी दीया जला रहा है, और अब भी फल चढा रहा है। और यह भी कहने की हिम्मत रखता है कि मिलें बुद्ध रास्ते में तो टुकडे-टुकडे कर दू। यह परम अनुयायी है। यह आचार-सूत्रो का अनुसरण नही कर रहा है; नही तो प्राण कंप जाएगे यह कहने में, हिम्मत नही जुटेगी। यह बुद्ध का ठीक-ठीक जो भाव है अप्पदीपो भव का, वह वही कर रहा है। और इसलिए अनुग्रहीत भी है।

लेकिन यह अनुग्रह हमारा अनुग्रह नही है। हमारा अनुग्रह याचना से भरा अनुग्रह है। हम डरेंगे यह कहने में कि बुद्ध का नाम लो तो मुह कुल्ला कर लो; लगेगा कि बुद्ध कहीं नाराज न हो जाएं।

जो नाराज हो जाते हैं, वे बुद्ध नहीं हैं। और जो डरता है इतना कि कहीं नाराज न हो जाए, उसके सम्बन्ध अभी प्रेम के नहीं है। उसके संबंध अभी लेन-देन के है। अभी भय के हैं। और जो घबड़ाता है इतना कि बुद्ध के साथ लड़ न सके, वह अभी बुद्ध के बहुत पास नहीं आया है। बुद्ध की परम्परा में, सिर्फ

बुद्ध की परम्परा मे यह संभव हो सका कि बुद्ध के चरणों में रोज सिर रखनेवाला भी बुद्ध को कह सकता है कि हटा दो, तोड़ दो यह मूर्ति ! यह बड़ी आत्मीयता का परिणाम है। यह पहले सूत्र की आत्मीयता का परिणाम है।

अधिकतर धर्म के अनुयायी दूसरे सूत्र के आसपास चलते हैं। आचरण का जिसने अनुगमन किया, वह आचरण के साथ एकात्म हो जाएगा। यही खतरा है। फिर उसे यह पता भी नही चलेगा, उसको लगेगा कि यह मैं ही कर रहा हूँ। आचरण इतना सघन हो जाएगा कि उसे लगेगा कि यह मैं ही कर रहा हूँ। आप बुद्ध के जैसा चलना सीख लें, अभ्यास घना हो जाए, तो अंतिम परिणाम यह होगा कि आपको लगेगा कि मैं ही चल रहा हूं। लेकिन आप नहीं चल रहे हैं। यह सिर्फ अभिनय है कि आप बुद्ध की तरह मूर्तिवत बनकर बैठ जाएं।

तनका के पास लोग आते हैं और वे कहते हैं, हमें ध्यान करना है, और हमें बुद्ध जैसा जीना है। तो तनका कहता है कि भाग जाओ यहां से, क्योंकि हमारे मंदिर में एक हजार बुद्ध, पत्थर के, पहले से ही बैठे हैं। वह एक हजार बुद्धोंवाले मंदिर का पुजारी था। चीन मे एक मंदिर है एक हजार बुद्ध की मूर्तियोंवाला, वह उसका पुजारी था। वह कहता है कि भाग जाओ, यहां और ज्यादा भीड़ मत करो, एक हजार वैसे ही पालथी मारे बैठे हुए हैं। और तुम पालथी मार कर बैठ जाओगे तो यहाँ जगह कहाँ है ?

आप बिलकुल पालथी मार कर, आँख बन्द कर, बुद्ध बनकर बैठ सकते है। कई साधु-सन्यासी फोटो उतरवाते वक्त बैठ जाते हैं -- बिलकुल बुद्ध बन कर, बुद्धवत। लेकिन बुद्धवत होना बुद्ध होना नही है; वह सिर्फ आवरण है, झूठा है। भीतर तूफान उबल रहा है, आंधियाँ चल रही हैं; भीतर सब उपद्रव मौजूद है। आचरण के सूत्र का खतरा यही है कि कोई ठीक से पालन करे तो भूल ही जाएगा कि जो मेरे हाथ मे है, वह नकली प्रति है; वह वास्तविक नही है, वह केवल छाया है, प्रतिबिंब है।

और जो ताओ का परित्याग करता है—मजे की बात तीसरी है, आखिरी है—जो स्वधर्म को बिलकुल ही छोड देता है, न सिर्फ स्वधर्म की दृष्टि से, न सिर्फ आचार की दृष्टि से, सब दृष्टियों से छोड़ देता है, जो ताओ का परित्याग करता है, वह भी परित्याग के साथ एकात्म हो जाता है।

लाओत्से का यह सूत्र बहुत गहरा है। वह कहता है, यह प्रकृति इतनी उदार है कि अगर तुम इसके विपरीत भी चले जाते हो तो भी वह तुम्हें बाधा नहीं देती है। अगर तुम परमात्मा की तरफ पीठ भी कर लेते हो तो परमात्मा उसमें भी तुम्हारी सहायता करता है।

साधारण धार्मिक आदमी को लगेगा, यह तो बात ठीक नहीं है, परमात्मा को रोकना चाहिए कि तुम क्यों गलत जा रहे हो ? बाप, अगर बेटा गलत जाने लगे

तो रोकता है। अगर परमात्मा के मन में दया है तो उसे कहना चाहिए कि पीठ मत करो मेरी तरफ, लौटो। किसी का आचरण खोने लगे तो उसे आचरण पर लाना चाहिए।

लाओत्से की दृष्टि—स्वभाव और परमात्मा की तरफ—हम से बहुत गहन है। हमारी तो उपयोगिता की दृष्टि है।

लाओत्से कहता है, **ताओ है परम स्वतंत्रता।** इसलिए अगर तुम उसके विपरीत भी जाओ तो तुम उसी के साथ एकात्म हो जाओगे। जो आदमी कहता है कि ईश्वर नहीं है, ईश्वर उसे भी बाधा नहीं देगा। वह आदमी नास्तिकता से भी एकात्म हो जाएगा।

यह बड़ी खतरनाक बात है। बड़ी महान, बड़ी खतरनाक और बड़े दायित्व की! क्योंकि इतनी परम स्वतंत्रता का हम दुरुपयोग कर रहे हैं। जो आदमी कहता है, मैं ईश्वर को नहीं मानता और जब तक ईश्वर मुझे मिल न जाए, तब तक मैं मानूंगा नहीं, वह आदमी जन्मों-जन्मों तक भी ईश्वर से न मिल पाएगा। क्योंकि ईश्वर से मिलने का जो द्वार था, उसकी तरफ वह पीठ करके पहले से खड़ा हो गया। और ईश्वर इतनी भी बाधा नहीं देता है कि जबरदस्ती करे और सामने आकर खड़ा हो जाए। **अस्तित्व इतना उदार है, इतना परम उदार है कि तुम जो भी होना चाहो, हो सकते हो।** तुम अस्तित्व के विपरीत जाना चाहो, विपरीत जा सकते हो। वहां भी कोई बाधा नहीं होगी।

अगर बुराई की स्वतंत्रता न हो **तो फिर भलाई एक मजबूरी हो जाएगी।** अगर नरक जाने की स्वतंत्रता न हो तो स्वर्ग जाना एक जबरदस्ती हो जाएगा। और नरक के द्वार पर अगर बहुत मुश्किल पड़ती हो, भीतर न घुसने दिया जाता हो तो स्वर्ग के द्वार पर प्रवेश करने में मन बड़ी ग्लानि अनुभव करेगा। क्योंकि जबरदस्ती मिला हुआ स्वर्ग भी नरक जैसा हो जाता है। और अपने मौज से जो नरक को चुनता है, उसका नरक भी स्वर्ग हो जाता है। **असल में स्वतंत्रता ही स्वर्ग है।**

इसलिए लाओत्से कहता है कि जो ताओ का परित्याग करता है, वह ताओ के अभाव में एकात्म हो जाता है। इससे भी बड़ी मजे की बात है आगे।

वह कहता है: जो ताओ से एकात्म है, ताओ उसका स्वागत करने में प्रसन्न है। जो नीति से एकात्म है, नीति उसका स्वागत करने में प्रसन्न है। और जो ताओ के परित्याग से एक हो गया, ताओ का अभाव भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है।

यह बहुत अद्भुत बात है। लाओत्से यह कह रहा है कि इस तरह जगत में तुम कुछ भी करो, यह जगत हर हालत में तुमसे प्रसन्न है। हर हालत में, अनकंडीशनल, कोई शर्त नहीं है कि तुम ऐसा करोगे तो अस्तित्व प्रसन्न होगा, तुम ऐसा नहीं करोगे तो अस्तित्व नाराज हो जाएगा। **अस्तित्व हर हालत में प्रसन्न है।**

तुम जो करो, अस्तित्व तुम्हें उसी तरफ बढ़ाने के लिए सारी शक्ति देने को तैयार है। तुम अस्तित्व के ही विपरीत चलो तो भी अस्तित्व तुम्हें अपनी ऊर्जा देने को तैयार है—प्रसन्नता से। कही कोई खिन्नता नही है।

इस लिहाज से लाओत्से अनेक धर्म-गुरुओं से बहुत गहरा जाता है, बहुत ऊपर उठ जाता है। अगर हम और धर्मों की बातो को समझें तो ऐसा लगता है कि ईश्वर की शर्तें है। ऐसा लगता है कि तुम अगर अच्छा कर्म करोगे तो ईश्वर प्रसन्न होगा, बुरा कर्म करोगे तो ईश्वर अप्रसन्न होगा। लेकिन लाओत्से कहेगा, बेहूदी बात है यह। ईश्वर भी अप्रसन्न हो सके तो तुम मे और ईश्वर में कोई भेद न रहा। और अगर ईश्वर भी शर्त रखता हो, यह शर्त तुम पूरी करोगे तो मै राजी हूँ और यह शर्त तुम पूरी नही करोगे तो मं नाराजी, तो फिर ईश्वर और हमारे बीच मे लेन-देन हो गया।

जीसस की एक कहानी इस अर्थ में बड़ी महत्वपूर्ण है। और इसलिए ईसाइयत अब तक इस कहानी को नहीं समझ पाई। और समझ नहीं पायेगी, क्योंकि लाओत्से के बिना इस कहानी को समझना एकदम असम्भव है। कुछ ऐसा मजा है कि महावीर को समझना हो तो बहुत दफे महावीर को सीधा समझनेवाला नही समझ पाता है। कभी कोई सूत्र लाओत्से से मिलेगा, जो महावीर को खोलता है, कभी कोई सूत्र जीसस से मिलेगा, जो महावीर को खोलता है। और कभी महावीर में कोई सूत्र मिलेगा, जो जीसस की कहानी को एकदम से प्रकाशित कर देता है।

असल मे जीसस, मोहम्मद, कृष्ण, क्राइस्ट या लाओत्से, इस तरह के लोग उस परमात्मा की एक झलक देते हैं; वह झलक हमेशा अधूरी होगी। क्योंकि परमात्मा विराट है। लाओत्से जैसा व्यक्ति भी उसकी एक झलक देगा तो वह एक झलक ही होगी। वह झलक अधूरी ही होगी। कभी किसी दूसरे की झलक उसको पूरा कर जाती है, कभी किसी दूसरे की झलक मे उसका अधूरापन पहली दफा पूरा होकर दिखाई पड़ने लगता है।

जीसस की कहानी है, जो ईसाइयों के लिये कठिनाई का कारण बनी और जो अब तक उसको सुलझा नहीं पाए है। और बिना इस सूत्र के कभी सुलझा भी न पाएगे। लेकिन धार्मिक लोग, धर्मों से बंधे लोग, एक दूसरे की तरफ से कुछ भी सहायता लेने को तैयार नहीं होते हैं। जीसस को माननेवाला यह तो मानने को तैयार होगा ही नही कि लाओत्से से जीसस साफ होंगे। वह यह मानने की कोशिश जरूर करेगा कि लाओत्से और जीसस में दुश्मनी है। दोस्ती तो मानने को तैयार नही होगा। क्योंकि दुश्मनी पर सम्प्रदाय खड़े होते है। दोस्ती पर तो सम्प्रदाय गिर जाएगें; दुश्मनी पर चर्च खड़े होते है। दोस्ती पर तो चर्चों का कोई उपाय न रहेगा। एक चर्च का दरवाजा दूसरे मंदिर में खुल जाएगा। बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

जीसस ने कहानी कही है कि एक धनपति ने अपने अंगूर के बगीचे में काम करने के लिये मजदूरों को बुलाया। सुबह बहुत मजदूर आये; लेकिन मजदूर कम थे। धनपति ने और लोगों को बाजार भेजा। और दोपहर भी मजदूर आये; लेकिन फिर भी मजदूर कम थे। धनपति ने और लोगों को बाजार भेजा। कुछ लोग सांझ ढलते-ढलते आये। लेकिन तब सूरज ढलने के करीब आ गया।

कुछ तो अभी-अभी आये थे; उन्होंने हाथ में सामान भी न लिया था काम करने का। और कुछ सुबह जब सूरज उग रहा था, तब आये थे, और दिन भर के काम से पसीने से तरबतर हो गए थे, और थक गये थे। लेकिन धनपति ने सभी को इकट्ठा किया और सभी को बराबर पुरस्कार दिया। जो सुबह आये थे, वे चिल्लाने लगे कि यह अन्याय है। हम सुबह से मेहनत कर रहे हैं, और हमें भी उतना ही, जो दोहपर आये थे, आधे दिन जिन्होंने काम किया, उन्हें भी उतना ही, और जो अभी-अभी आये, जिन्होने कोई काम न किया, उन्हे भी उतना ही?

उस धनपति ने कहा, तुम दूसरी तरह से सोचो। तुमने जितना काम किया, उतना तुम्हें मिल गया या नही? तुमने जितना काम किया, उससे तुम्हें ज्यादा मिल गया है। तुम दूसरों की चिन्ता छोडो। उन्हे मै उनके काम के कारण नही देता; मेरे पास बहुत है, इसलिए देता हूँ।

मगर यह अनजस्टीफाइड है, यह बात न्याययुक्त नहीं है। फिर भी सुबह के मजदूर दुखी लौटे, हालाकि उन्हे काफी दिया गया था। और अगर ये दो वर्ग के मजदूर न आये होते दिन मे तो वे बडे खुश लौटते। उन्हे बहुत मिला था। लेकिन अब तुलना खड़ी हो गई थी। अब जो मिला था, उसका सवाल नही था। दूसरो को भी जो मिल गया था, वह कठिनाई में डाल रहा था।

थोड़ा सोचें कि संत भी खडे हो परमात्मा के सामने और शराबी भी वही पहुच गया हो और परमात्मा दोनो को बराबर बाट दे! सन्तो की कैसी गति होगी? प्राण निकल जाएगे। वे मर गये, लुट गए, अगर संतो को पता चले कि पापी भी स्वर्ग मे प्रवेश पा रहे है, उसी मौज से स्वर्ग का द्वार उनके लिए भी खुलता है, बैंड बाजे बजते हैं, जैसा उनके लिए। स्वर्ग बिलकुल नरक हो जाएगा। यह कहानी बड़ी खतरनाक है।

लेकिन अगर कहीं कोई परमात्मा है तो मै आप से कहता हूँ कि उस का द्वार सभी के लिए एक जैसा खुलता है। और जब पापी भी आता है, तब परमात्मा प्रसन्न होता है कि आ गये।

जीसस ने एक और कहानी कही है। जीसस ने कहा है कि एक बाप के दो बेटे थे। बडा बेटा आज्ञाकारी था; छोटा बेटा आज्ञाकारी नही था। बाप बूढा हो गया। दोनो बेटों में कलह था और दोनों को अलग करने की मजबूरी आ गई। संपत्ति बाँट दी गई।

छोटा बेटा सारी संपत्ति को लेकर शहर चला गया। क्योंकि गाँव में संपत्ति हो भी तो उसका कोई उपयोग नहीं है। गाँव में अमीर आदमी भी गरीब है। और शहर में गरीब आदमी भी अमीर हो जाता है।' कुछ कर सकता है। छोटा लड़का शहर चला गया। पांच-सात साल उसकी कोई खबर न आई। फिर अचानक खबर आई कि उसने सब बर्बाद कर दिया और वह भिखारी हो गया और सड़कों पर भीख मांग रहा है।

बड़े बेटे ने इन पांच-सात वर्षों में, जितनी सम्पत्ति उसे मिली थी, उससे पांच-सात गुनी कर दी। बडो मेहनत उठाई, व्यवसाय किया, खेतीवाडी की, बगीचे लगाये। धन बढता चला गया।

लेकिन बाप को जब खबर मिली कि उसका बेटा भिखारी हो गया है, तब उसने संदेशवाहक भेजे कि अभी मै जिन्दा हूँ, भिखारी होने की कोई जरूरत नहीं है, तुम वापस आ जाओ। फिर एक दिन सांझ खबर आई कि बेटा वापस लौट रहा है। तो बाप के पास जो सबसे तगड़ी भेंड़ें थी, उसने कहा कि आज वे काटी जाएं और भोज की तयारी हो। और जो सबसे पुरानी शराब थी तहखाने में, उसने कहा कि वह निकाली जाए और आज भोज की तैयारी हो। मेरा छोटा बेटा वापस लौट रहा है! गांव भर को उस उत्सव में बुला लिया जाए, गाँव भर को भोज का निमत्रण दे दिया जाए। आज की रात उत्सव की रात हो!

गाव भर मे खबर फैल गई, उत्सव का निमत्रण पहुच गया। बड़ा बंटा साझ को खेत मे थका-मादा लौट रहा था, पसीने की धारा उसके मुह पर सूख गई थी। और जब गाव मे उत्सव होते देखा तो उसने लोगो से पूछा, क्या बात है? उन्होने कहा, अरे, तुम्हें पता नही, तुम्हारा छोटा भाई वापस लौट रहा है और तुम्हारे पिता ने उसके स्वागत मे भोज का आयोजन किया है। उसकी छाती पर पत्थर पड़ गया। उसने कहा कि मै सात साल से अपने को जला रहा हू, इस बुढ्ढे की सेवा कर रहा हू, धन इकट्ठा कर रहा हू, और वह पुत्र, सुपुत्र सब बर्बाद करके, भिखमंगा बनकर वापस लौट रहा है, और उसके स्वागत की तैयारी!

बडा बेटा नाराज घर लौटा। उसने अपने बाप को कहा कि यह अन्याय है! ऐसा मेरा कभी स्वागत नहीं हुआ।

बाप ने कहा, तुम मेरे साथ थे सदा। और जब एक गड़ेरिया सांझ को घर लौटने लगता है अपनी भेड़ों को लेकर, उसके पास सौ भेड़ें हो और एक भेड़ खो जाए, तब वह निन्नानबे को वहीं अन्धेरे में छोड़कर उस खोई एक भेंड़ को खोजने जंगल में चला जाता है, और जो भेड खो गई है, उसे कन्धे पर रखकर लौटता है। क्या तुम कहोगे कि निन्नानबे भेंडें आवाज उठाए कि अन्याय हो रहा है, सदा तुम्हारे साथ रहे, हमें कभी कन्धे पर न ढोया, और हम सदा तुम्हारे साथ रहे और तुम इतनी चिन्ता और व्यग्रता से न भरे और हमें खोजने न आये और कन्धे पर ढो

रहे हो उस खोयी हुई भेंड को, आवारा भेंड को, भाग गई भेंड को ! क्योंकि भेड़ भागती ही तब है, जब आवारा होती है, नही तो भागती नहीं। भेड़ तो भीड़ में चलती है। शरारती भेंड हो, बगावती भेंड हो, तो ही भागती है, तो ही भटकती है। नहीं तो भटकने का कोई सवाल नहीं है।

उस बाप ने कहा कि वह लौट रहा है। वह आवारा भेंड है, भटक गई भेंड है। उसे मैं कन्धे पर लेकर लौटू, इससे तुम दुखी मत होओ। तुम्हारे लिए मेरा सब है। लेकिन बाप का हृदय बडा है, और तुम पर चुक नही जाता है। और मेरे पास अतिरिक्त है, वह उसे भी देने दो।

यह अन्यायपूर्ण बात है; लेकिन परम न्याय के अनुकूल है।

लाओत्से कहता है कि तुम जो भी करो, यह प्रकृति प्रसन्न है। इसके आनन्द मे रत्ती भर कमी नही पडेगी। चाहे तुम ताओ से एकात्म हो जाओ तो प्रकृति प्रसन्न है; चाहे तुम आचार से एकात्म हो जाओ तो प्रकृति प्रसन्न है, चाहे तुम विपरीत चले जाओ धर्म के तो प्रकृति प्रसन्न है।

लेकिन एक बात खयाल में रखें, यह सूत्र अधूरा है। और लाओत्से ने आधी बात नही कही है सूत्र में — जानकर कि जो उसे समझ लेंगे, वे उसे समझ लेंगे। वह स्वल्पभाषी है। वह दूसरी बात भी मै आपको कह दू; क्योंकि पक्का नही है कि आप समझ पाएंगे।

अगर आप ताओ के साथ एकात्म हो जाए तो ताओ प्रसन्न है और आप भी प्रसन्न होंगे। अगर आप आचार-सूत्रो के साथ एक हो जाए तो आचार-सूत्र प्रसन्न हैं, पर आप उतने प्रसन्न नही होंगे। और अगर आप ताओ के विपरीत चले जाए तो ताओ की विपरीतता में भी ताओ का अभाव प्रसन्न है, लेकिन आप दुखी हो जाएंगे। वह दूसरा हिस्सा है। उससे ताओ का कोई लेना-देना नही है; आप से लेना-देना है। और अपने दुख को आप ताओ के ऊपर मत डालना। ताओ तो आपके नरक में भी जाने से प्रसन्न है; लेकिन आप प्रसन्न न हो सकेंगे। ताओ तो, आप शराब पीकर नाली में पड गए हों, तो भी प्रसन्न है; लेकिन आप प्रसन्न नहीं हो सकेंगे। ताओ तो, आप अपनी हत्या कर रहे हो, तो भी प्रसन्न है; लेकिन आप प्रसन्न न हो सकेंगे।

आपकी प्रसन्नता तो एक ही स्थिति में पूर्ण हो सकती है कि आप ताओ के साथ एकात्म हो जाएं। और इसलिए जो ताओ के साथ एकात्म हो गया है, उसको आप अप्रसन्न नहीं कर सकते। आप कुछ भी करें, वह प्रसन्न है। आप कुछ भी करे, वह प्रसन्न ही है। आप उसके विपरीत चले जाएं तो प्रसन्न है; आप उसके अनुकूल चले जाएं तो प्रसन्न है। आप, लेकिन, उसके प्रतिकूल जाकर प्रसन्न न हो सकेंगे। आपकी सीमाए है, आपकी शर्ते है।

इसलिए लाओत्से की इस बात का खयाल रखकर दूसरा हिस्सा भी खयाल

में रख लेना।

जो स्वय में श्रद्धावान नही है, उसे दूसरों की श्रद्धा भी न मिल सकेगी।

लेकिन यह जो महायात्रा है ताओ के साथ एकात्मता की, यह शुरू होती है स्वय मे श्रद्धा से। जो स्वय में श्रद्धावान नहीं है, उसे दूसरो की श्रद्धा नही मिल सकेगी। हम सब श्रद्धा पाना चाहते हैं, आदर पाना चाहते हैं, बिना इसकी फिक्र किये कि हमारी खुद की स्वय में कोई श्रद्धा नहीं है, हम खुद के प्रति भी आदरपूर्ण नही है। सच तो यह है कि जितना अनादरपूर्ण हम अपने प्रति होते है, उतने किसी के प्रति नही होते। अगर हम अपने से ही पूछें कि अपनी बाबत क्या खयाल है तो पता चलेगा कि वह खयाल अच्छा नही है।

यह महायात्रा शुरू होती है अपने मे श्रद्धा से। क्योकि जो अपने मे श्रद्धा करता है, वही एक दिन अपने निज स्वभाव के साथ एक होने की हिम्मत जुटा पाएगा।

हम अपने में श्रद्धा नही करते, इसलिए हमने एक तरकीब निकाल ली है। अपने में श्रद्धा के अभाव को खटकने न देने के लिए हम दूसरो में श्रद्धा करते हैं। कोई महावीर में, कोई बुद्ध मे, कोई कृष्ण में श्रद्धा करता है। कृष्ण मे जो इसलिए श्रद्धा करता है कि अपने मे तो कोई श्रद्धा नही, चलो उनमे श्रद्धा रखकर शायद कोई रास्ता बन जाए, वह दूसरे सूत्र पर पहुच जाएगा। वह आचरण का अनुगमन करेगा। और जो इस कारण से कि अपने में ही जब श्रद्धा नही है तो किसी पर क्या रखना, वह किसी पर श्रद्धा नही रखेगा। वह नास्तिक हो जाएगा और तीसरे सूत्र पर पहुच जाएगा।

जिसकी अपने में श्रद्धा है, वह कृष्ण से भी सीख लेगा और लाओत्से से भी सीख लेगा। लेकिन अपनी श्रद्धा उसकी सघन होगी इस शिक्षण से। इस सत्सग से उसकी स्व की श्रद्धा बढती चली जाएगी। वह अगर कृष्ण के चरणों में भी झुकता है तो सिर्फ इसलिए कि **कृष्ण उसके भविष्य के लिए प्रतीक हैं**, कल वह भी कृष्ण जैसा हो पाएगा। **वह जो कल हो सकता है, वह उसके चरणो में झुक रहा है।**

बुद्ध से कोई पूछता है कि लोग जब आपके चरणों में झुकते हैं, तब आप रोकते क्यों नही? बुद्ध कहते है, अगर वे मेरे चरणो मे झुके तो मैं उन्हे जरूर रोकूं। लेकिन वे अपने ही भविष्य के चरणो में झुकते हैं, मैं तो केवल बहाना हू। मुझमें उन्हे अपना भविष्य दिखाई पड़ता है; कल वे बुद्ध हो सकते है। इसलिए झुकते है। इसलिए रोकने का कोई कारण नही है।

अपने मे श्रद्धा अगर हो तो हम ताओ के साथ एकात्म हो सकते हैं। और अपने मे श्रद्धा न हो तो दो खतरे हैं। या तो हम दूसरे पर श्रद्धा कर के सब्स्टीट्यूट पा लेगें और तब हम आचरण का अनुगमन करेंगे। और या चूकि अपने मे श्रद्धा नहीं है, इसलिए हम किसी में भी श्रद्धा नहीं करेंगे, और तब हम ताओ के विपरीत चले जाएंगे।

ताओ हर हाल प्रसन्न है; आप हर हाल प्रसन्न नहीं हो सकेंगे। इसलिए अपने दुख को देखते रहना। जितना ज्यादा हो दुख आपको, समझना कि तीसरे सूत्र में पड़े हैं। दुख हो, बहुत ज्यादा न हो, सन्तोष के लायक हो, समझना कि दूसरे में पड़े है। दुख बिलकुल न हो, सन्तोष की भी जरूरत न हो, तो समझना कि पहले के निकट आ गए हैं।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें। कीर्तन करे।

■■

न नया, न पुराना; सत्य सनातन है

पचासवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २३ जुलाई १९७२

- ताओ की परिभाषा क्या है ?
- आप तो इतना बोलते हैं !
- *अस्तित्व में स्वतंत्रता का स्थान क्या है ?*
- प्रकृति सदा प्रसन्न है तो मेरी प्रसन्नता में फर्क क्यों ?
- शैली और शब्द के अलावा अन्तर क्या है ?

बहुत से प्रश्न है ।

एक मित्र ने पूछा है, ताओ की परिभाषा क्या है ?

उसी की परिभाषा का हम प्रयास कर रहे हैं । और सारा प्रयास पूरा हो जाने पर भी परिभाषा उसकी समझ में आएगी नही । क्योंकि जब समझाने का सारा प्रयास भी पूरा हुआ जाता है, तब भी ताओ परिभाषा के बाहर छूट जाता है । वह तो जब आप उसका प्रयोग भी करेंगे, तभी समझ में आएगा ।

जैसे प्रेम को समझाया जाए; कितना ही समझाया जाए, जब तक आप प्रेम में उतर न जाए, तब तक उसे नही जान पाएगे । प्रेम की कोई भी परिभाषा प्रेम को प्रकट न कर पाएगी; प्रेम का अनुभव ही उसको प्रकट करेगा । फिर भी प्रेम की परिभाषा करने की कोशिश की जाती है । इसलिए नही कि आप उससे प्रेम को जान लेगे, बल्कि इसीलिए कि **शायद प्रेम को जानने की प्यास उससे पैदा होगी ।**

अगर ताओ को समझने की कोशिश में आपको ताओ की परिभाषा समझ में न आये तो यह उचित ही है । लेकिन अगर ताओ को समझने की प्यास जग जाए तो किसी दिन उसके अनुभव में उतरा जा सकता है । जिन्हे अनुभव हुआ है, वे भी परिभाषा कर सकेगे, ऐसा नही है । जिन्हे अनुभव हुआ है, वे खुद तो जान लेगे, लेकिन दूसरो को बताते समय वही कठिनाई खडी हो जाएगी । अनुभव कहा नही जा सकता है । इशारे हो सकते हैं । लेकिन शब्दो में प्रकट करने का कोई उपाय नही है । और जितना बडा हो अनुभव, उतनी ही बडी असमर्थता हो जाती है ।

ताओ बडे से बड़ा अनुभव है । **उससे बड़ा कोई अनुभव नहीं है ।**

ताओ शब्द का अर्थ होता है **धर्म** । ताओ शब्द का अर्थ होता है वह परम नियम, जिसके आधार पर पूरा अस्तित्व चलता है । तो जब तक हम अस्तित्व में न डूबें और उस परम नियम के साथ एक न हो जाए, तब तक ताओ हमारी समझ में आयगा ही नहीं । सागर के किनारे खड़ा होकर लहरो को समझा जा सकता है । दूर की समझ परिचय ही होगी, ज्ञान नही । जिसे सागर को ही जानना हो, उसे सागर में डूबना होगा, डुबकी लगानी होगी । और वह डुबकी भी ऐसी नही है कि आप सागर से अलग बने रहें । वह डुबकी ऐसी चाहिए कि जैसे नमक का पुतला सागर मे कूद जाए, फिर लौट न सके, नमक उसका पिघल जाए, बह जाए, सागर के साथ एक हो जाए । तभी सागर को जाना जा सकेगा ।

अगर शब्द को ही जानने की इच्छा हो तो ताओ का अनुवाद होगा धर्म, परम

नियम, अस्तित्व का मूल आधार। जिसको वेदो ने ऋत कहा है, वही ताओ का अर्थ है। लेकिन यह शब्द का अर्थ हुआ। इसे जान लेने से कुछ जान लिया, ऐसा जो मानता है, वह भ्रान्ति में पडेगा। यह सब इशारा हुआ, यात्रा की तरफ जाने के लिए पहला इशारा। यात्रा पर निकलना जरूरी है। फिर परिभाषा का क्या अर्थ होता है ?

परिभाषा का अर्थ होता है किसी एक चीज को किसी दूसरी चीज के द्वारा बताना। किसी एक चीज को किसी दूसरी चीज के द्वारा बताना; जैसे कि अगर आपने नीलगाय नही देखी है, जो हिमालय की तराइयों में होती है, तो हम कह सकते हैं कि वह गाय जैसा एक जानवर है, तो थोडी सी समझ आएगी। थोडा सा खयाल आएगा। लेकिन ताओ या धर्म तो अकेला ही अनुभव है। उस जैसा दूसरा अनुभव नहीं है, जिससे इशारा किया जा सके; कोई दूसरा अनुभव नही है जिससे हम कह सके . उस जैसा।

फिर ताओ तो एक जटिल, गहनतम अनुभूति है।

छोटे-मोटे जीवन के अनुभव भी परिभाष्य नही है, डिफाइनेबल नही है। अगर कोई आपसे पूछ ले कि पीला रग क्या है तो आप क्या कहेगे ? क्योंकि पीले रग जैसा और कोई रंग तो होता नही है। और अगर पीले रग जैसा कोई रग होगा तो वह पीला ही होगा। पीले रग की क्या परिभाषा करियेगा ?

इस सदी के बहुत बडे विचारक जी. ई. मूर ने, जिसने डेफीनेशन पर, परिभाषा पर सर्वाधिक काम किया है, दो-ढाई सौ पृष्ठो में चर्चा करने के बाद यह कहा है कि व्हाट इज यलो इज इनडिफाइनेबल, पीला क्या है उसकी परिभाषा नही हो सकती। पीला पीला है, यलो इज यलो। मगर क्या यह कोई बात हुई ?

इसको तर्कशास्त्री कहते हैं टॉटॅलॉजी। इसका मतलब तो हुआ, जब आप कहते हैं कि यलो इज यलो, पीला पीला है, तब इसका मतलब हुआ कि आपने परिभाषा करने से इकार कर दिया। पीला क्या है, हम यह पूछ रहे है। आप कहते है कि पीला पीला है; यह तो कोई उत्तर नही हुआ। यह बात तो वही के वहीं रह गई।

जी. ई. मूर ने कहा है, जितनी परिभाषा है, वह सब जोड है। जैसे कि कोई पूछे कि पानी क्या है तो हम कह सकते हैं कि हाईड्रोजन और ऑक्सिजन का जोड है : एच टू ओ। यह परिभाषा हो गई पानी की। क्योंकि पानी दो चीजों का जोड़ है, इसलिए दो को तोडकर बता सकते है कि पानी यह है। जितनी भी चीजें कई चीजों की जोड़ हैं, उनकी परिभाषा आसान है। लेकिन अब कोई पूछे, ऑक्सि-जन क्या है तो अड़चन होगी। क्योकि ऑक्सीजन किसी चीज का जोड़ नहीं है; लेकिन फिर भी तोडा जा सकता है। अब हमने परमाणु को तोड लिया तो हम कह सकते हैं कि वह इतने इलेक्ट्रोन और इतने न्यूट्रोन का जोड़ है। नीचे उतरते जाए; जब एक ही चीज रह जाएगी, तब तोड़ा भी नही जा सकता।

ताओ आखिरी बिन्दु है, जिसको तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। धर्म आखिरी अनुभव है, आत्यंतिक, अल्टीमेट; उसकी कोई परिभाषा नही हो सकती। लेकिन उसका अनुभव हो सकता है। माना कि पीले की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, लेकिन उसका यह मतलब नहीं है कि पीले का अनुभव नहीं हो सकता। आप पीले का अनुभव रोज करते हैं, कोई अड़चन नही है।

लेकिन अगर आप जिद्द कर लें कि पहले परिभाषा, फिर अनुभव करूंगा, तो फिर अनुभव भी बन्द हो जाएगा। आप पहले अनुभव करते हैं प्रेम का। कोई आदमी पूछे कि पहले मैं परिभाषा कर लू, समझ लू ठीक से, फिर उतरूंगा, क्योंकि अनजाने रास्ते पर नही उतरना है, तो वह प्रेम के रास्ते पर कभी नही उतरेगा। आप समय का उपयोग करते है रोज। लेकिन कोई आपसे पूछ ले समय की परिभाषा, तब आप कठिनाई मे पड़ जाएंगे। अगस्टीन ने कहा है, मुझसे पूछो मत तो मैं जानता हू, और मुझसे पूछा कि मैं मुश्किल मे पड़ जाता हूं!

जानना कुछ ऐसी बात है, जिसके लिए परिभाषा जरूरी नही है। तो ताओ जानना होगा, और जानकर भी ताओ गूंगे का गुड़ ही रहेगा। कबीर ने कहा है कि पूछो मत मुझसे कि वह क्या है? रास्ता पूछ लो, कैसे उस तक मैं पहुचा, वह मैं तुम्हे बता दूगा। तुम भी पहुच जाओ, तुम भी जान लो। मुझसे मत पूछो कि वह क्या है। क्योंकि वह मुझसे भी बडा है, उसे प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। तो हम क्या कर रहे है?

ताओ के सम्बन्ध मे जो चर्चा कर रहे हैं, यह चर्चा ताओ के इर्द-गिर्द है, ताओ के आसपास है। हम एक वर्तुल में घूम रहे हैं ताओ के आसपास। कही कोई चीज आपके हृदय पर चोट कर जाये और आप भीतर केन्द्र में प्रवेश कर जाएं! सारी चर्चा परिधि पर है, सरकमफरेन्स पर है-- इस आशा में कि कोई भी परिधि का बिन्दु आपके लिए द्वार बन जाएगा और आप भीतर प्रवेश कर जाएंगे, और केन्द्र पर पहुच जाएंगे। लेकिन अगर आप परिधि पर ही केन्द्र को चाहते हो तो वह असभव है। आपको जाना पडेगा।

आदमी का मन ऐसा है कि वह एक कदम उठाने के पहले ही सब कुछ तय कर लेना चाहता है। सुरक्षा इसमें मालूम होती है कि सब साफ हो जाए कि मैं कहां जा रहा हू, क्यों जा रहा हू, क्या रास्ता है, क्या परिणाम होगा, कितना लाभ है, कितनी हानि है। सब तय हो जाए तो आदमी कदम उठाता है। लेकिन जो सब तय करके कदम उठाता है, वह कभी ताओ तक, धर्म तक नहीं पहुचेगा। क्योंकि धर्म तक पहुचते ही वे है जो कलकुलेटिव नहीं है, जो हिसाब नही लगाते। हिसाबी तो ससार से जुडे रहते हैं; गैर-हिसाबी धर्म मे प्रवेश करते है।

कोई परिभाषा नही है। कोई परिभाषा कभी की नही गई है। कभी की भी नही जाएगी। लेकिन ध्यान रहे, इससे निराश हो जाने की कोई जरूरत नहीं

है। यह केवल इस बात की सूचना है कि अनुभव से ही जाना जा सकता है।

शेख फरीद एक मुसलमान सूफी फकीर हुआ है। कोई उसके पास गया है ईश्वर की परिभाषा पूछने। ईश्वर हो, कि धर्म हो, कि आत्मा हो, कि सत्य हो, इससे कोई बहुत फर्क नही पड़ता। ये सब शब्द हैं उसके लिए, जिसको नहीं कहा जा सकता। उस आदमी ने शेख फरीद से पूछा कि कुछ मुझे भी अपने अनुभव की बात बताओ।

शेख फरीद के पास एक डडा पड़ा था। उसने डंडा उठा कर उस आदमी के पैर पर मार दिया। पैर में चोट लगी, उस आदमी ने चीख मारी और कहा कि यह आप क्या करते है, मुझे बहुत दर्द हो रहा है। शेख फरीद ने कहा, दर्द तुम्हें हो रहा है, थोड़ा मुझे बताओ कि क्या हो रहा है? वह आदमी बडी मुश्किल में पडा। शेख फरीद ने कहा, मैं कैसे मानू कि तुम्हें दर्द हो रहा है? और क्या है दर्द? वह आदमी बडी बेचैनी मे पडा, कुछ बता नही सका।

शेख फरीद ने फिर कहा, पागल, उठा डंडा और मार मुझे! डडा पड़ा है, उठा और मार मुझे! बताने की फिक्र छोड। मुझे भी दर्द होगा, मै भी जान लूंगा।

यही रास्ता है। दर्द होगा तो जान सकेगे। धर्म होगा तो जान सकेंगे।

●

एक मित्र ने पूछा है, कल आपने कहा कि सन्त अत्यन्त अल्पभाषी होते है; लेकिन आप तो इतना अधिक बोलते हे।

ठीक पूछा है, थोडा सोचना पड़ेगा। मै जो बोलता हू, वह अल्प ही है; आपको ज्यादा मालूम होता होगा। क्योकि जो मै बोलना चाहता हू, उससे तौलता हू तो अल्प है, और जो आप समझ सकते हैं, उससे तौलू तो बहुत ज्यादा है। कम और ज्यादा सापेक्ष शब्द हे। इनमें सीधा कोई अर्थ नही होता, किसी तुलना मे अर्थ होता है। जो मै बोलना चाहता हू, उस लिहाज से जो मैं बोला हू, वह कुछ भी नही है। जो आप सुन सकते हैं, उस लिहाज से जो मैं बोला हूँ, वह बहुत ज्यादा है। मेरी तरफ से वह अल्प ही हे।

लाओत्से ने ऐसा नहीं कहा कि सत जो बोलते है, वह सुननेवालो की तरफ मे अल्प होता है, वह सतों की तरफ अल्प होता है। सुननेवालो को बहुत ज्यादा हो सकता है।

●

एक मित्र ने पूछा है, आप कहते हैं कि समस्त अस्तित्व इकट्ठा, सयुक्त, अद्वैत है, और उसमें जो भेद दिखता है वह अहंकार का खेल है। इस संदर्भ में मनुष्य की स्वतत्रता, जिसकी कल आपने यहा चर्चा की, बहुत दुर्बल हो जाती है। यहा तो नियतिवाद ही अधिक संगत दीखता है। समस्त द्वारा सचालित व्यक्ति स्वतंत्र कैसे हो सकता है, इसे स्पष्ट करें।

हमारी सारी अड़चन शब्दों की है; जैसे हम विपरीत शब्दों में सोचने के आदी हैं। हम सोचते हैं, या तो मनुष्य स्वतंत्र है या परतंत्र। अगर स्वतंत्र है तो पृथक होना चाहिए और समस्त का उस पर कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। और अगर समस्त का अधिकार है उसके ऊपर, और समस्त का ही वह एक अंश मात्र है, तो परतंत्र हो गया, फिर स्वतंत्र कैसे होगा?

लेकिन स्वतत्र हो या परतंत्र, इन दोनों के बीच एक बात हमने मान रखी है कि मनुष्य पृथक है। जब हम कहते हैं, कोई स्वतंत्र है तो उसका मतलब हुआ पृथक है, लेकिन समस्त की शक्ति के बाहर है। जब हम कहते हैं, परतंत्र है तो उसका अर्थ हुआ कि पृथक है, लेकिन समस्त की शक्ति के भीतर है।

लाओत्से कहता है, पृथक है ही नहीं। इसलिए स्वतत्रता और परतंत्रता का कोई अर्थ नही है। पृथक है ही नही। **मनुष्य प्रकृति ही है, या मनुष्य परमात्मा ही है।** जब हम दो मानें परमात्मा को और मनुष्य को, तब स्वतंत्रता का और परतंत्रता का सवाल उठता है। परमात्मा दूसरा हो तो हम उसके खिलाफ स्वतंत्र हो सकते हैं, या उसके अनुगत होकर परतत्र हो सकते हैं। लेकिन अगर हम परमात्मा के साथ एक ही हैं तो स्वतत्रता और परतंत्रता का हमारी भाषा में जो अर्थ होता है, वह खो गया।

अगर परमात्मा के साथ हम एक ही है, और परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी दूसरा नही है, तो परमात्मा स्वतंत्र है, ऐसा कहना ठीक नहीं; **परमात्मा स्वतंत्रता** है कहना ठीक होगा। इसमें फर्क है। स्वतत्र तो हमें किसी के खिलाफ होना पडता है। **स्वतंत्रता हमारा स्वभाव होता है।** परमात्मा स्वतत्र नही हैं; क्योकि स्वतत्र का तो मतलब हुआ कि कोई और है जिसके विपरीत वह स्वतत्र है, जिससे वह स्वतत्र है। **परमात्मा अकेला है।** कोई दूसरा नही है, जो उसे परतत्र कर सके या स्वतत्र कर सके। **उसका स्वभाव ही स्वतंत्रता है।** उसके अलावा कोई दूसरा है ही नही। गॉड इज नॉट फ्री, गाड इज फ्रीडम। और हम उसके साथ एक हैं; **इसलिए हम भी स्वतंत्रता है।** मनुष्य स्वतत्र है, ऐसा नही, **मनुष्य भी स्वतंत्रता है।** कोई है नही जो उसे परतत्र कर सके, कोई है नही जो उसे स्वतत्र कर सके। ध्यान रखें, जब कोई आपको स्वतत्र करता है, तब भी आप परतत्र ही होते हैं; क्योकि किसी ने आपको स्वतत्र किया। जो स्वतंत्रता दी जाती है, वह स्वतंत्रता नही है। वह परतंत्रता का ही एक उदार रूप है। स्वतंत्रता किसी पर निर्भर न होने का नाम है।

लेकिन तब सवाल उठता है कि फिर तो आदमी नियतिवाद मे घिर जाएगा। प्रकृति सब कुछ कर रही है। लेकिन हम एक बात माने चले ही जाते हैं कि आदमी अलग है। तो फिर नियति खड़ी हो जाएगी, भाग्य खड़ा हो जाएगा। आदमी कहेगा, मैं क्या कर सकता हूं, जो परमात्मा करता है, वही होता है। लेकिन

लाओत्से कहता है कि तुम जिस दिन जानोगे, पाओगे तुम हो ही नहीं। तो यह सवाल ही नहीं उठता है कि तुम क्या कर सकते हो। परमात्मा जो कर रहा है, वही तुम कर रहे हो। नियति इसमें नहीं है।

नियति में, डेस्टिनी में, भाग्य में पुनः हमने भेद स्वीकार कर लिया। हमने मान लिया कि मैं भी हूं, और परमात्मा मेरे भाग्य को निर्धारित कर रहा है। मैं अलग हूं, वह निर्धारक है। लाओत्से की बात को ठीक समझें, अद्वैत की बात को ठीक से समझें, तो नियति का भी कोई सवाल नहीं है। क्योंकि कोई मेरा भाग्य-निर्माता नहीं है। मुझसे पृथक कोई है नहीं। कौन मेरे भाग्य का निर्णय करेगा? मैं समस्त के साथ एक हूं। **और इस समस्त के साथ ऐक्य का नाम ही मोक्ष है।**

इसलिए हमने स्वतंत्रता शब्द का भारत में उपयोग नहीं किया। क्योंकि स्वतंत्रता में भाव बना रहता है कि कोई स्वतंत्र करनेवाला है। हमने शब्द उपयोग किया है मोक्ष, मुक्ति। और हमने कहा है, **मोक्ष जो है वह आत्मा का स्वभाव है।**

नियति, परतंत्रता, स्वतंत्रता, सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं, अगर हम प्रकृति के साथ एक हैं। एक बूंद नदी के साथ बही जा रही है। अगर वह बूंद कहे कि मुझे नदी के साथ बहना पड रहा है **तो परतंत्र हो गई।** अगर वह बूंद कहे कि मैं अपनी इच्छा से नदी के साथ बह रही हूं **तो स्वतंत्र हो गई।** और अगर वह बूंद कहे कि मैं नदी हूं **तो मुक्त हो गई।** वह जो मुक्तता है, **वह एकता का नाम है।** अब नदी कोई और है ही नहीं, जिससे सम्बन्ध बनाया जाए स्वतंत्रता का या परतंत्रता का। कोई दूसरा नहीं है, जिससे हमारा सम्बन्ध बने। सम्बन्ध खो गए, मैं ही हूं। अपने से ही कोई स्वतंत्र और परतंत्र कैसे होगा? अपने से ही कोई स्वतंत्र और परतंत्र कैसे होगा?

अगर आप इस पृथ्वी पर बिलकुल अकेले हों, इस अस्तित्व में बिलकुल अकेले हों, समझें कि सब खो गया, आप अकेले हैं अस्तित्व में, उस समय आप स्वतंत्र होंगे कि परतंत्र होंगे? उस समय आप क्या कहेंगे, आप स्वतंत्र हैं या परतंत्र हैं? दोनों बात व्यर्थ हो गई। आप मुक्त होंगे। यह मुक्तता आपकी निजता होगी, आपका अंतर-भाव होगा।

हमारी स्वतंत्रता तो परतंत्रता का ही एक रूप है। और हमारी परतन्त्रता भी स्वतन्त्रता का एक रूप है। उन दोनों में बहुत फासला नहीं है। एक आदमी घर में है तो हम कहते हैं कि स्वतन्त्र है। और जेल में है तो कहते हैं परतन्त्र है। कहां स्वतन्त्रता समाप्त होती है, कहां परतन्त्रता शुरू होती है, कहना मुश्किल है। और जो घर में है, वह भी कितना स्वतंत्र है? क्योंकि बुद्ध घर से भाग गये, क्योंकि घर उन्हें परतन्त्रता मालूम पड़ता था। आप नहीं भागे, परतन्त्रता के आदी हो गए होंगे। जेल के भी लोग आदी हो जाते हैं।

फ्रेन्च रेवोलूशन, फ्रान्सिसी क्रांति के वक्त बैस्टील के किले को तोड़ दिया क्रान्ति-

कारियों ने; कैदी थे वहा बन्द, उनको निकाल बाहर कर दिया। कोई चालीस साल से, कोई पचास साल से कैदी थे। आजन्म कैदियों का निवास था वहां। आधे कैदी सांझ वापस लौट आये। और उन्होंने कहा, बाहर हमें अच्छा नहीं लगता।

जो आदमी चालीस साल जेलखाने रहा हो, बाहर की दुनिया उसके लिए खत्म हो गई। चालीस साल ! बाहर की दुनिया मर गई, वह बाहर की दुनिया के लिए मर गया। न उसका कोई पहचाननेवाला है; न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। और बाहर सब अजीब सा लगने लगा। और बाहर जाकर रोटी भी कमानी पड़ेगी। वह परतन्त्रता मालूम पड़ने लगेगी। जेलखाने में रोटी सुबह ठीक वक्त पर मिल जाती थी। कोई चिंता नही थी, कोई जिम्मेदारी नही थी। बाहर जाकर उस आदमी को फिक्र करनी पड़ेगी कि छप्पर कहां है, जिसके नीचे मैं सोऊं। जेलखाने में छप्पर निर्मित था, उसे उसकी चिन्ता नही थी। जब वर्षा आती, जेलखाने के अधिकारी छप्पर को ठीक करते थे। कोई चिन्ता न थी। यह जेल बड़ी स्वतंत्रता थी।

और फिर बड़ी तकलीफ हुई कि हाथ में जो बड़ी-बड़ी जजीरें पड़ी थी, पैर में जो बेडिया पडी थी चालीस साल तक, उनके बिना कैदी सो न सके बाहर, नींद न आई। लगा कि कुछ खाली है, कुछ खो रहा है। उन्होंने आकर कहा कि बिना ज़ंजीरो के अब हम सो नही सकते। उनके बिना ऐसा लगता है कि हाथ नगा हो गया है। आभूषण थीं वे ज़ंजीरें।

कौन जाने, आपके आभूषण जजीरें हैं या क्या है ? उनके बिना आप भी न सो सकेंगे। क्या है स्वतन्त्रता और क्या है परतन्त्रता ? मात्राओ के भेद हैं। जिसके आप आदी हो गए है, उसको आप समझते है स्वतन्त्रता। लेकिन हमारी स्वतन्त्रता और हमारी पारतन्त्रता दोनो मे हमारा अहकार मौजूद है।

ताओ, धर्म, सन्यास, जो भी हम नाम दे, मुक्ति है — न स्वतन्त्रता, न परतन्त्रता। इसे एक दूसरी तरफ से समझ लें तो खयाल में आ जाएगा।

हम जीते हैं द्वन्द्व में। या तो होते हैं दुख में, या सुख मे। तो हम पूछते हैं, जब परमात्मा में होगे तो सुख होगा कि दुख ? दोनो नहीं होंगे। हमारे सुख और दुख एक ही चीज के भेद हैं।

इसलिए हमें एक नया शब्द गढ़ना पड़ा : आनन्द। आनन्द का अर्थ सुख नहीं है। आनन्द का अर्थ है सुख-दुख दोनो का अभाव। हालांकि जब हम सुनते हैं आनन्द, तब हमें सुख का ही खयाल आता है। और जब हम आनन्द की तलाश करते है, तब भी हम सुख की ही खोज कर रहे होते हैं। हमारे मन में आनन्द का अर्थ होता है महासुख। हमारे मन में आनन्द का अर्थ होता है, जहा दुख बिलकुल नहीं है। हमारे मन में आनन्द का अर्थ होता है, जहा सुख शाश्वत है। यह सब गलत है। ये सब गलत बातें हैं। जब तक सुख है, तब तक आनंद हो नहीं

सकेगा। क्योंकि सुख के साथ दुख जुड़ा ही रहेगा। आनन्द है अभाव सुख का भी, दुख का भी।

इसलिए बुद्ध ने आनन्द शब्द का भी उपयोग नहीं किया है। क्योंकि यह भ्रामक है; इससे सुख की झलक मिलती है। इससे सुख की झलक मिलती है। बुद्ध ने शान्ति शब्द का प्रयोग किया। सब शान्त हो गया--सुख भी, दुख भी। सब उत्तेजना खो गई।

लेकिन सभी शब्दों के साथ अड़चन खड़ी रहेगी। क्योंकि हमारे सब शब्द द्वैत में चलते हैं। शान्ति है तो अशांति; उसके विपरीत हमारे मन में खयाल उठता है। ठीक ऐसे ही स्वतंत्रता-परतंत्रता, दोनो जहा खो जाती हैं, **वहां मुक्ति है, वहां मोक्ष है**। मोक्ष स्वतंत्रता नहीं है, परतंत्रता भी नही है; वह दोनो के पार उठ जाना है, दोनों का अतिक्रमण है। और जब व्यक्ति एक हो जाता है अस्तित्व के साथ, तब अकेला ही हो जाता है, अकेला ही बच रहता है। और तब वह कह पाता है कि अहं ब्रह्मास्मि, मैं हूँ ब्रह्म। अब कोई दूसरा न रहा।

इसलिए द्वैत के सब शब्द व्यर्थ हो जाते है।

●

एक मित्र ने पूछा है कि मै प्रकृति के साथ, अतरतम तादात्म्य के साथ चलू, बाह्यतम तादात्म्य के साथ चलू या प्रतिकूल चलू, तीनो परिस्थितियो मे प्रकृति समान रूप से प्रसन्न है; किसी भी एक परिस्थिति का चुनाव करने को मै सपूर्ण रूप से स्वतत्र हूँ, तो फिर तीनो चुनावो में मेरी प्रसन्नता में फर्क क्यों पडेगा ?

फर्क पड़ेगा। क्योंकि तीनों के अलग-अलग अनुभव हैं। ऐसा समझें, जमीन में गुरुत्वाकर्षण है, आप रास्ते पर चलते हैं; आप सीधे चलते है, नही गिरते है। स्वतत्र है आप, आप चाहे आडे-तिरछे चले और गिर जाए। गुरुत्वाकर्षण नही कहेगा कि आड़े-तिरछे मत चलो। आप की मर्जी, आडे-तिरछे चलें, गिर जाएं, टाग टूट जाए, दर्द हो, तक्लीफ हो। जब आप आड़े होकर गिरते है जमीन पर, तब भी वही गुरुत्वाकर्षण काम करता है, जो जब आप खडे चल रहे थे, तब काम कर रहा था। कोई फर्क नहीं है। वही नियम काम कर रहा है। **नियम निरपेक्ष भाव से काम कर रहा है**। आपने गलती की चलने में, या गलत का चुनाव किया, चोट खायेंगे। ठीक का चुनाव किया, चोट नही खायेंगे।

सुख का अर्थ ही क्या है ?

सुख का अर्थ है नियम के अनुकूल, और दुख का अर्थ है नियम के प्रतिकूल। **नियम निष्पक्ष है**। आपने जहर पी लिया; प्रकृति आपको मार डालेगी। आप बीमार हैं, जहर की एक मात्रा ली; बीमारी मर जाएगी। आप स्वस्थ हो जाएगे। पानी भी आप ज्यादा पी लें तो जहर हो जाएगा। तो पानी पीने में भी संयम रखना पडता है; शराब पीने में ही नहीं। पानी भी ज्यादा पी लें तो मौत आ

जाएगी। पानी निष्पक्ष है। कोई पानी आपसे कहता नहीं है कि कितना पीएं। वह स्वतंत्रता आपकी है। लेकिन पानी की एक प्रकृति है। अगर आप नियम के अनुकूल पीएंगे, सुखदायी हो जाएगा; नियम के बाहर जाएंगे, दुखदायी हो जाएगा।

नियम के अनुकूल सुख है; नियम के प्रतिकूल दुख है। जब भी आप दुख पाते हैं, जान लेना कि कहीं नियम के प्रतिकूल पड़ गए हैं। और किसी कारण कोई दुख नहीं पाता है। विज्ञान इसीलिए कहता है कि हम आदमी के लिए ज्यादा सुख जुटा लेंगे; क्योंकि हम उन नियमों की खोज करते चले जाते हैं जिनको जान लेने पर तुम प्रतिकूल व्यवहार नहीं करोगे। और तो कोई विज्ञान की खोज नहीं है; इतनी ही खोज है कि हम नियम को खोजते चले जाते हैं, तुम्हें बताते चले जाते हैं कि यह है नियम, अब तुम प्रतिकूल नहीं चलोगे तो सुख होगा, अनुकूल नहीं चलोगे तो दुख होगा। नहीं जानने से नियम हम कई बार प्रतिकूल चले जाते हैं। लेकिन एक बात पक्की है, जानते हो नियम या न जानते हो, दुख बता देगा कि हम प्रतिकूल चले हैं, और सुख बता देगा कि हम अनुकूल चले हैं।

लाओत्से कहता है कि चाहे ताओ के अनुकूल हो, चाहे बाह्य सूत्रों के अनुकूल हो और चाहे प्रतिकूल हो, **प्रकृति हर हाल प्रसन्न है**। जब आप गिरते हैं और आपकी टांग टूट जाती है, तब गुरुत्वाकर्षण कोई दुखी नहीं होता, आप दुखी होते हैं। ग्रेवीटेशन को कोई पीडा नहीं होती। जब आप जहर पीकर मर जाते हैं, तब जहर भी दुखी नहीं होता। न कोई प्रकृति आंसू बहाती है। कोई प्रयोजन नहीं है। आप स्वतंत्र हैं। आपने जो चाहा, वह किया। फिर जो परिणाम होगा, वह होगा। इसे समझें ठीक से। आप कर्म करने को स्वतंत्र है, परिणाम में स्वतंत्र नहीं हैं। परिणाम है कि आपने किया कर्म और आप बंध गए।

मोहम्मद से अली ने पूछा है कि हमारी स्वतंत्रता कितनी है? तो मुहम्मद ने कहा कि एक पैर उठाकर तू खड़ा हो जा! वह बायां पैर ऊपर उठाकर खड़ा हो गया। मुहम्मद ने कहा कि अब तू दायां भी ऊपर उठा ले। अली ने कहा, आप भी क्या-क्या मजाक करते हैं? दायां मैं कैसे उठा सकता हूं? मैं तो बायां उठाकर बंध गया, अब दायां नहीं उठा सकता। तो मुहम्मद ने कहा, अगर तू पहले दायां उठाता तो उठा सकता था? अली ने कहा, बिलकुल उठा सकता था। क्योंकि तब तक मैं बंधा नहीं था, कोई कर्म मैंने नहीं किया था। दायां उठाता तो बंध जाता, फिर बायां नहीं उठा सकता। तो मुहम्मद ने कहा, करने को तुम स्वतंत्र हो; लेकिन हर कर्म बन्धन दे जाएगा, हर कर्म।

इसलिए हम ने अपने मुल्क में कर्म को बंधन कहा और अकर्म को मुक्ति कहा। क्योंकि जब भी मैं कुछ करूंगा तो बंध ही जाऊंगा। क्योंकि बंधा, क्योंकि जो मैंने किया है उसके परिणाम होंगे। और वे परिणाम नियम के अनुसार होंगे, मेरे अनुसार नहीं। मैं झाड़ से कूदने को स्वतंत्र हूं, लेकिन टांग टूटेगी। उसके लिए स्वतंत्र

नहीं हूँ कि नहीं टूटेगी, कि टूटेगी। आप हवाई जहाज से कूदें, आपकी मर्जी! कोई रोकेगा नहीं संसार में। लेकिन फिर जब पैर टूट जाए, हड्डी चूर-चूर हो जाए, इसके लिए फिर किसी को दोष मत देना। **क्योंकि वह आपके ही कर्म का फल है, वह आप की ही स्वतंत्रता का चुनाव है।** जहर पीने को मैं स्वतन्त्र हूं, लेकिन फिर मैं यह नहीं कह सकता कि मैं मरूंगा भी नहीं।

कर्म के लिए व्यक्ति स्वतंत्र है। **स्वतंत्रता का अर्थ ही कर्म की स्वतंत्रता है. परिणाम की स्वतंत्रता नहीं।** अगर परिणाम की भी स्वतन्त्रता हो तो जगत एक अराजकता होगा, अनार्की। कॉसमॉस नही रह जाएगा। क्योंकि मैं पीऊं जहर और अमृत का परिणाम पाऊ; गिरूं आकाश से और जमीन पर मजे से चलने लगूं; दुख के उपाय करू और सुख पाऊ; तब तो जगत एक अराजकता होगा। तब तो जगत में फिर कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा। कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा।

लेकिन जगत अराजकता नही है, नियम है। ताओ का यही अर्थ है, जगत एक नियम है, जगत ताओ है। उस नियम के दो पहलू हैं। एक पहलू है, आप स्वतंत्र है सदा चुनने को, क्या करना चाहते है। लेकिन करते ही आप नियम के अतरगत आ गए। और करते ही परिणाम निश्चित हो गया।

इसलिए बुद्ध ने, महावीर ने, लाओत्से ने, सभी ने यह कहा कि जब तक कर्म जारी है, तब तक कोई मुक्ति नही हो सकती। **पूर्ण मुक्ति का अर्थ होगा पूर्ण अकर्म।** इस अकर्म को साधने के कई उपाय हैं।

लाओत्से का उपाय यह है कि तुम प्रकृति के साथ अपना फासला छोड दो। तुम यह भूल ही जाओ कि तुम कर्म करते हो। कहो परमात्मा से कि तू ही करता है और तू ही भोगता है, हम नही हैं मौजूद। **तुम स्वतंत्र हो गये।** तब न तुम चुनते हो करते वक्त; न तुम चुनते हो भोगते वक्त। दोनो हालत में परमात्मा चुनता है, परमात्मा भोगता है। या हम कहें कि समस्त सृष्टि चुनती है, समस्त सृष्टि भोगती है। मैं बाहर हो गया। मैं मौजूद न रहा। **यह मुक्ति हो गई।**

लेकिन जैसे ही मैं चुनता हू, वैसे ही चुनाव का अनिवार्य परिणाम होगा। उस परिणाम को मुझे भोगना पडेगा। मैंने चुना, इसलिए मुझे भोगना पडेगा। अपना-अपना कर्म भोगना ही पडेगा। उससे अनभोगे निकल जाने का कोई उपाय नही है। कोई उपाय नही है।

बुद्ध की मृत्यु हुई विषाक्त भोजन से तो आनद ने उनसे पूछा : इस आदमी ने बहुत बुरा किया, अज्ञान में ही सही, लेकिन आपको विषाक्त भोजन करा दिया? भूल से ही हुआ था, जानकर नही हुआ था, फूड-पाइजन से बुद्ध की मृत्यु हुई थी। अनजाने हो गया था। गरीब आदमी था, कुकरमुत्ते इकठ्ठे करके सुखाये थे; उनमें जहर था। उनकी सब्जी बनाई थी। बुद्ध की उस सब्जी के खाने से मृत्यु हुई।

बुद्ध ने क्या कहा?

बुद्ध ने कहा, आनंद, उसकी भूल बह जाने! लेकिन यह जहर से मेरी मृत्यु का होना मेरे ही किन्हीं कर्मों का फल है। उससे कुछ इसका लेना-देना नहीं है। वह संयोग मात्र है। मैंने कुछ किया होगा, उससे मैं बंधा हूं। उससे छुटकारा हुआ, आनंद! शायद अब मेरे किये हुए का मुझ पर कोई बोझ नहीं रहा। अब मैं बिलकुल अनकिया हो गया; अब सब समाप्त हो गया। शायद इसी के लिए अब तक मैं जिंदा भी था। यह मेरी मृत्यु नहीं है, यह मेरा विसर्जन है। अब सब लेना-देना समाप्त हो गया। जो मैंने किया था, वह सब पूरा हो गया। और तुम इस आदमी के प्रति कोई दुर्भाव मत लेना; क्योंकि वह दुर्भाव तुम्हारा कर्म हो जाएगा। और उस कर्म का फल तुम्हें भोगना पड़ेगा, इस आदमी को नहीं।

आनंद ने पूछा, तो हम क्या करें? क्योंकि आदमी बिना किये नहीं रह सकता। कुछ तो करें, अगर दुर्भाव न करें; इसकी खिलाफत न करें, जाकर इसकी निन्दा न करें, तो क्या करें?

बुद्ध ने कहा, तुम एक घंटा हाथ में लेकर गांव में डुग्गी पीटो कि यह आदमी धन्यभागी है, क्योंकि बुद्ध को अंतिम भोजन देने का सौभाग्य इसे मिला। तुम जाओ, गांव में शोरगुल मचाओ : यह आदमी धन्यभागी है कि बुद्ध को अंतिम भोजन देने का सौभाग्य इसे मिला। यह उतना ही धन्यभागी है, जितनी बुद्ध की मां थी; क्योंकि उसे प्रथम भोजन देने का सौभाग्य मिला था। तुम जाओ!

आनंद ने कहा, लेकिन यह भी कर्म होगा। तो बुद्ध ने कहा, यह भी कर्म है, लेकिन तुम कर्म से बच नहीं सकते। अगर तुम पहला कर्म करोगे, उस आदमी की निंदा करोगे, अपमान करोगे, तो दुख पाओगे। वह नियम के प्रतिकूल है। और अगर तुम उस आदमी की इस घड़ी में भी प्रशंसा करोगे तो तुम नियम के अनुकूल हो, तुम सुख पाओगे। दोनों ही कर्म हैं। आनंद तो इन दोनों से भी न मिलेगा। अगर तुम कुछ भी न करो, बिलकुल शांत हो जाओ, तो तुम मुक्त हो जाओगे, तुम आनंद को पाओगे।

जब भी हम चुनते हैं, तब हम या तो विधायक चुनते हैं या नकारात्मक चुनते हैं। या तो हम किसी की निंदा करते हैं, या किसी की प्रशंसा करते हैं। या तो हम किसी को सुख देने जाते हैं, या किसी को दुख देने जाते हैं। जब भी हम कोई कर्म करते हैं, तब हमने चुनाव कर लिया। उस चुनाव से सुख या दुख फलित होंगे। अगर दुख फलित हो तो समझना कि नियम के प्रतिकूल चुना है। अगर सुख फलित हो तो समझना कि नियम के अनुकूल चुना है। अगर आपको दुख ही दुख होते हों तो समझना कि आपकी जिंदगी नियम के प्रतिकूल चुनने में चल रही है।

लोग कहते हैं कि दुख ही दुख है। एक सज्जन आये थे कुछ दिन हुए। उन्होंने कहा कि मैं दुख ही दुख में पड़ा हूं। आपसे एक ही बात पूछने आया हूं कि ज्योतिषी

कहते हैं कि मेरे पीछे शनि देवता लगे है, उनसे कब मेरा छुटकारा होगा ? किसी के पीछे कोई शनि देवता नहीं लगे हैं। अगर शनि देवता आपको दुख देने का काम कर रहे हैं तो शनि देवता की क्या गति होगी ? उन्हें किस नरक में डालिएगा ! इतने लोगों को दुख देने का धंधा जो कर रहे हं, उनका क्या होगा ? कोई आपके पीछे नही लगा है; आप ही अपने पीछे लगे है। और शनि देवता का अर्थ है कि आप नियम के प्रतिकूल चुनते चले जा रहे है; दुख भोगते रहे हे, दुख भोग रहे हैं।

आपका दुख आपकी जिम्मेवारी है, आपका सुख आपकी जिम्मेवारी है। अगर बहुत दुख होता है तो समझ लेना कि आपके सोचने, सुनने और जीने के ढंग गलत हैं। वे नियम के प्रतिकूल हैं। दुख सिर्फ सूचन है। और दुख बड़ा अच्छा सूचन है। प्रकृति ने इंतजाम किया है, दुख से आपको सूचना मिलती है कि आप कहीं नियम के बाहर चले गये हैं। लेकिन हम बड़े पागल हैं, हम दुख को मिटाने की कोशिश करते हैं, नियम के भीतर लौटने की कोशिश नही करते।

और अक्सर ऐसा होता है कि चूंकि दुख को मिटाने की कोशिश में कोशिश हमी करते है जो नियम के प्रतिकूल चले गए होते हैं, इसलिए हम दुख को मिटाने को और नियम के प्रतिकूल चले जाते हैं। तब हम एक दुख से दस दुख पैदा कर लेते हैं। और हम इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि हर दुख को मिटाएँ। हम कभी वापस लौटकर नही देखते कि दुख सूचक है कि मैं नियम के प्रतिकूल जी रहा हूँ, इसलिए नियम के अनुकूल हो जाऊं। दुख विलीन हो जाएगा। हम दुख को विलीन करने की कोशिश करते हैं, नियम के अनुकूल होने की नही।

तब दुख विलीन नहीं होता; एक दुख से दस दुख हो जाते हैं, दस से हजार हो जाते हैं। **सब आदमी दुख-शून्य पैदा होते हैं और दुख से भरे हुए मरते है।** लेकिन वे ही अपने हाथ से फैलाये चले जाते हैं। वह जो फैलाव है, वह जो विस्तार है, वह इसी गणित के न जानने का परिणाम है। जब भी दुख हो, तब दुख की फिक्र छोड़ना, तत्काल अपने पूरे जीवन का निरीक्षण करना, पूरे जीवन पर एक पुन: अवलोकन कि कहाँ मैं नियम के प्रतिकूल चला गया। यह बड़े मजे की बात है और मनुष्य के अधिकतम दुखो का कारण यही है।

एक मित्र शराब पीते हैं। बीस साल से पत्नी उनके पीछे पड़ी है, कि शराब मत पीयो। यही कलह का सूत्र हो गया। बीस साल जिन्दगी के इसी उपद्रव में उलझ गये। पत्नी भी कहती है कि पति अच्छे हे, सब तरह अच्छे है, भले हैं; बस यह एक शराब, यही कष्ट का कारण है। इस एक शराब के कारण सब खराब हो गया। पति नही छोड पाते है। तो मैंने पत्नी को कहा कि एक काम कर ! बीस साल तुझे कहते हो गये, कुछ छूटा नही। अब तू तीन महीने के लिए कहना छोड़ दे। बाद में, तीन महीने बाद तेरे पति से मै बात करूँगा।

पाच-सात दिन बाद पत्नी ने मुझसे आकर कहा कि बडा मुश्किल है; जैसे

उनकी शराब पीने की आदत है, वैसे मुझे छेड़ने और रोकने की आदत है। बिना रोके मैं नही रह सकती।

और यह बडा मजा है। कौन शराब पी रहा है, तय करना मुश्किल है। अब मैं सोचता हूं कि अगर पति हिम्मत करे और शराब छोड़ दे तो पत्नी मुश्किल में पड़ जाएगी। पहली दफा जिन्दगी में दुख आएगा। अभी तक दुख रहा, अब एक नया दुख शुरू होगा। अब तक पत्नी दुख उठा रही है, बहुत दुख उठा रही है। लेकिन दुख उठाने का कारण वह समझती है कि पति शराब पीते हैं, इसलिए मैं दुख उठा रही हू। उसे पता नही है कि यह कारण नही है। यह कारण नही है। क्योंकि अगर पति शराब बन्द भी कर दें तो भी वह दुख उठाएगी। यह कारण नहीं है। और अगर पति शराब न पीते तो भी वह दुख उठाती। क्योकि दुख उठाने का कारण कुछ दूसरा है। वह नियम की प्रतिकूलता है।

जब भी एक व्यक्ति दूसरे पर किसी तरह की मालकियत करता है, तब वह प्रकृति के नियम के प्रतिकूल जा रहा है। वह दुख उठाएगा। जब भी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को डोमिनेट करता है, तब वह दुख उठाएगा। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता है। और जब भी कोई व्यक्ति किसी को परतंत्र करने की कोशिश करता है, तब वह नियम के प्रतिकूल जा रहा है। वह दुख उठाएगा। और जो लोग भले-भले कामों में अधिकार करने की कोशिश करते है, वे और ज्यादा दुख उठाएगे। क्योकि उनको दिखाई ही नही पडेगा कि हम कुछ गलत कर रहे हैं। अब पत्नी को दिखाई पडना मुश्किल है कि मैं कुछ गलत कर रही हू। साफ है कि वह ठीक कर रही है कि पति की शराब छुडा रही है। बीमारी हो सकती है, दुख-दर्द आ सकता है शराब के कारण, इसलिए अच्छा काम कर रही है।

लेकिन ध्यान रखना, अच्छे काम से दुख नही होता है। एक ही कसौटी है कि अगर आप अच्छा काम कर रहे है तो उसका परिणाम सुख होगा। लेकिन बीस साल काम करने का परिणाम अगर दुख ही दुख है तो अच्छे सिर्फ शब्द है, असली चीज भीतर कुछ और है। यह शराब सिर्फ बहाना है।

मैंने सुना है एक पत्नी को कहते हुए कि मेरे पति में कोई दुर्गुण नही है, इस वजह से मैं, इसी वजह से मैं दुखी हू। अगर आपको बिल्कुल संत पति मिल जाए, तो दुख का अत न रहेगा। क्योकि उसको काबू में रखने का कोई उपाय न रहा। उसको कहा से डराओ, कहा से धमकाओ, कहा से कब्जा करो, कहा से गर्दन दबाओ; कुछ भी नही रहा। इसलिए एक मजे की घटना है कि संत पतियों को आज तक पत्नियो ने कभी बरदाश्त ही नहीं किया। चोर, बेईमान, बदमाश पति भी चलेगा; क्योकि उसमें एक रस है। बेईमान, शराबी, चोर कुछ भी हो, चलेगा। क्योंकि पत्नी ऊपर है, उसका अपर हैन्ड है। पति डरा हुआ घर में प्रवेश करता है; तैयार है कि कुछ उपदेश मिलेगा। लेकिन दुख कौन उठा रहा है?

और बड़े मजे की बात है कि जब एक पत्नी चेष्टा में लगी है कि पति अच्छा हो जाए तो शायद वही जिम्मेवार बन जाए उसके बुरा होने का। क्यों? क्योंकि पति को यह अपनी स्वतंत्रता पर हमला है। यह सवाल शराब का नहीं रह गया। यह सवाल रह गया है कि कौन किसकी मानता है। यह पत्नी अगर कहना छोड़ दे, बिलकुल छोड़ दे तो शायद पति को जितना मजा शराब पीने में आ रहा हो, उतना न आए। क्योंकि शराब पीकर वे पत्नी को ठिकाने लगा रहे है, रास्ते पर लगा रहे है। वे बता रहे हैं कि मालिक कौन है; चिल्लाती रहो, लेकिन मालिक कौन है!

यह शराब मालकियत के बीच उपद्रव का केन्द्र बन गई है। पत्नी कहे चली जाएगी; क्योंकि यही मालकियत का ढंग है। पति पीये चला जाएगा, क्योंकि उसको भी अपनी मालकियत सिद्ध करनी है। पति भी दुख पाएगा; पति दुख पा रहा है बीस साल से। दुख पायेगा ही; क्योंकि वह भी शराब के द्वारा मालकियत सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। और पत्नी से ज्यादा दुख पाएगा; क्योंकि पत्नी एक ही नियम का उल्लघन कर रही है, पति दोनो नियम का उल्लघन कर रहा है।

पत्नी एक नियम का उल्लंघन कर रही है कि पति की स्वतंत्रता पर बाधा डाल रही है। पति दो नियमो का उल्लघन कर रहा है। एक तो स्वतत्रता को शराब पीकर सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है; आत्मघात, सूसाइड कर रहा है। क्योंकि जहर पीकर कोई अपनी स्वतंत्रता सिद्ध कर रहा हो तो वह दोहरे उपद्रव कर रहा है। शराब पीने के जो दुष्परिणाम होंगे, वे भी उसे भोगने पडेंगे।

लेकिन इन दुष्परिणामो को भी वह भोगेगा, और कभी यह नही सोचेगा। उसके मन में यही रहेगा, सदा यही रहेगा कि यह स्त्री एक उपद्रव है, कोई दूसरी स्त्री होती तो शायद ठीक हो जाता। नही, इससे कोई फर्क नही पडनेवाला है। स्त्री मात्र यही करेगी। क्योंकि पुरुष और स्त्री के बीच जो कलह का मौलिक कारण है, वह यही है कि वे एक दूसरे पर अधिकार जमाने की कोशिश कर रहे हैं।

और जहां अधिकार की चेष्टा है, वहां प्रेम की हत्या हो जाती है। और तब दुख घना हो जाता है।

हम सब जो दुख भोगते हैं, अगर थोड़ी खोज करेंगे तो कही न कहीं पाएंगे कि उसका कारण है। और वह कारण सदा किसी गहरे नियम के विपरीत जाने से पैदा हो रहा है। लेकिन हम दुख मिटाने की कोशिश करते हैं। आदमी अपनी पत्नी बदल सकता है। पत्नी अपने पति बदल सकती है। यह सब हो सकता है। लेकिन इससे दुख का कोई अत नहीं होगा। क्योंकि हम वही के वही बने रहेंगे। वह शनि हमारा पीछा करेगा; क्योंकि वह शनि हम ही हैं। वह कोई दूसरा होता तो उससे छुटकारे का उपाय था। कोई पूजा-पाठ करवा लेते, कोई मत्र-तंत्र करवा

लेते, और छुटकारा हो जाता। लेकिन इतना आसान छुटकारा नहीं है। आप ही हैं अपना नरक, आप ही हैं अपना स्वर्ग।

लेकिन इस बात को हम बचाने की कोशिश करते हैं। हम जिम्मा किसी और पर डालना चाहते हैं। जब एक ज्योतिषी आपको बता देता है कि शनि आपके पीछे पड़ा है, आपके सिर से बोझ उतर जाता है। यह कोई और दुष्ट पीछे पड़ा है, उसको ठीक करना है। उसको रास्ते पर लगाने का कोई उपाय करना है — पूजा करके करें, समझा-बुझाकर करें, किसी मंत्र-तंत्र से करें। मगर एक बात पक्की हो गई कि आप जिम्मेवार नहीं हैं। ज्योतिषियों को हाथ दिखाने से जो आपको सुख मिलता है, उसका और कोई कारण नहीं है। आप जिम्मेवार नहीं हैं। भाग्य, हाथ की रेखाएं, विधि की रेखाएं, कोई और जिम्मेवार है। कहीं भी मेरी जिम्मेवारी मुझसे उतर जाए तो हलकापन लगता है।

लेकिन वह हलकापन आपको सुख नहीं देगा, वह और गहरे दुख में ले जाएगा; क्योंकि आप ही जिम्मेवार हैं। और यह हलकापन का अनुभव होते ही आप नया बोझ रखने के लिए स्वतंत्र हो गए। अब आप सिर्फ वही करते जाएंगे, जो आप कर रहे हैं। स्वतंत्र है आदमी कर्म करने को, फल भोगने को नहीं।

श्रीकृष्ण ने कहा है, कर्म तू कर और फल मुझपर छोड दे। तू अगर फल भी खुद पकडता है तो मुसीबत में पडेगा; क्योंकि फल तेरे हाथ में नहीं है। फल की आकांक्षा मत कर, तू कर्म कर। फल की आकांक्षा मत कर। क्योंकि फल की आकांक्षा तुझे गलत दिशा में ले जाएगी। फल तेरे हाथ में नहीं है। कर्म तेरे हाथ में है। और अगर कर्म का फल दुखद आता है तो तुझे जानना चाहिए कि तुझे कर्म बदलना है, फल नहीं। अगर कर्म का फल सुखद आता है तो तुझे जानना चाहिए कि तू इस कर्म की दिशा में जा सकता है।

लेकिन एक घटना घटती है। जो आदमी दुख में पडा है, वह सुख की तरफ जाना चाहता है — स्वभावत। लेकिन जो सुख मे पड जाता है, वह सुख से भी ऊपर उठना चाहता है — स्वभावत। दुखी आदमी सुख की तरफ जाना चाहता है; इसलिए उसे नियमों की प्रतिकूलता छोडकर अनुकूलता पकडनी चाहिए। सुखी आदमी सुख के भीतर ऊब जाता है। सुखी आदमी को फिर सुख भी बासा मालूम पड़ने लगता है। सुखी आदमी को फिर सुख में भी स्वाद नहीं आता। रोज-रोज मीठा खाते-खाते मीठा भी कड़वा मालूम पड़ने लगता है। सुख से जब आदमी ऊब जाता है, तब वह तीसरे आयाम में प्रवेश करता है। तब न नियम की अनुकूलता है, न प्रतिकूलता; क्योंकि अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों में मै मौजूद हूं। तब वह अपने को ही नियम में विसर्जित कर देता है। तब वह न नियम के अनुकूल होता है, न प्रतिकूल; नियम के साथ एक हो जाता है। और यह नियम के साथ एक हो जाना ताओ है। तब वह कहता है कि अब तक मैं कर्म चुनता था, अब मैं कर्म भी

नहीं चुनता।

तो कृष्ण कहते हैं कि तू फल की आकांक्षा छोड़, कर्म किये जा; दुख तुझे नहीं होगा। लाओत्से कहता है, तू कर्म भी छोड़ और ऋत के साथ एक हो जा; फिर तुझे सुख भी नही होगा। **सुख भी नहीं होगा; दुख भी नहीं होगा।** फिर ये द्वन्द्व के सारे अनुभव खो जाएगे, **और अद्वैत के आनन्द का प्रारम्भ होगा।**

उस एक को संत पकड़ लेते हैं, लाओत्से कहता है। वे दो को छोड़ देते हैं और एक को पकड़ लेते हैं।

●

एक मित्र ने प्रश्न नहीं पूछा है। जैसे मैंने उनसे कुछ पूछा हो, उन्होने जवाब दिया है। संक्षेप में, वे कहते हैं कि लाओत्से ने बहुत अच्छी बाते कही हैं।

लाओत्से ने अच्छी बातें नही कही है; **बड़ी खतरनाक बातें कही हैं।** अच्छी बातें उन्हे कहते हैं, जिनसे सान्त्वना मिले। खतरनाक बातें उन्हे कहते हैं, **जिनसे आपको मिटना पड़े, मरना पड़े, टूटना पड़े, और नया होना पड़े।** लाओत्से ने अच्छी बातें नही कही हैं; बहुत खतरनाक, बहुत डैन्जैरस बाते कही है। लाओत्से ने आपको सुलाने के लिए कोई लोरी नही गाई है। लाओत्से ने आपको जगाने की चेष्टा की है। और जगाने की चेष्टा हमेशा दुखद होती है। लेकिन आप कहते हैं कि लाओत्से ने अच्छी बातें कही हैं, यह आप अपने को समझा रहे है। जिन बातो को आप अच्छा समझते होगे, उनको आपने लाओत्से में सुन लिया होगा। आगे पता चलता है।

"परन्तु शैली और शब्दो के अतर के अलावा ऐसी कौन सी नयी बात लाओत्से ने कही है, जो वेदो और उपनिषदो मे ही क्यो, गीता मे भी न कही गई हो?"

जानकार हैं बडे। वेद भी जानते हैं, गीता भी जानते हैं, उपनिषद भी जानते हैं। इतने बड़े जानकार यहां कैसे आ गए? इतना सब जान लेने के बाद जानने को कुछ बचता नही है। अर्थ नही है अब और जानने का आपके लिए।

शैली और शब्दो का भेद उन्हे दिखाई पड़ता है। **बहुत गहरे भेद हैं।** और बडा भेद तो यही है कि लाओत्से समस्त ज्ञान के विपरीत है, वह चाहे वेद का ज्ञान हो, चाहे गीता का, चाहे उपनिषद का। वह समस्त पांडित्य के विपरीत है। वह आपके विपरीत है। आप जो गीता, उपनिषद और वेद को बीच में ले आये हैं, उसके कारण आप लाओत्से को समझ ही न सके होगे। मैं इधर लाओत्से की बात बोलता रहा हूगा, वहा आपके भीतर वेद की ऋचाए उठती रही होगी। उस धुएं में सब गडबड हो गया होगा, कन्फ्यूज्ड हो गया होगा।

पडितजन अति कन्फ्यूज्ड होते हैं – भ्रान्त। क्योकि वे कभी किसी बात को सीधा नही सुन पाते। उनके पास ज्ञान तो पहले से ही होता है। यह नयी बात भी आकर उसी ज्ञान के ढेर में गिरती है। उस ढेर मे जो आवाजें होती हैं, वही उनको

सुनाई पड़ती हैं; वह बात सुनाई नहीं पड़ती। तो स्वभावत: उनको फिर दिखाई पड़ेगा कि ठीक शब्दों का ही भेद है। और क्या है? यह अपने को समझा लेने की कोशिश है।

अगर आप गीता को, उपनिषद को और वेद को समझ ही गए होते, तब तो ठीक था। तब तो शब्दो का भी भेद नहीं है। तब तो शब्दों का भी भेद न दिखाई पड़ता; शैली का भी भेद न दिखाई पड़ता। तब तो भेद ही न दिखाई पड़ता। लेकिन अभी भेद दिखाई पड रहा है; शब्दो का दिखाई पड़ रहा है, शैली का दिखाई पड़ रहा है। भीतर के अर्थ का भी कोई पता है? क्या है अर्थ भीतर?

शब्द और शैली का भेद है। ससार का कोई भी आदमी कभी भी कोई मौलिक बात, नयी बात कह सका है क्या? फिर ध्यान रखना, वेद भी मौलिक बात न कह सकेंगे, गीता भी न कह सकेगी, उपनिषद भी नहीं कह सकेंगे। फिर कोई बात मौलिक रहेगी ही नही। इसे थोड़ा समझें।

धर्म बडी जटिल बात है। धर्म के सम्बन्ध में दोनो बातें कही जा सकती हैं। कभी धर्म के सम्बन्ध मे कोई मौलिक बात नही कही जा सकती, एक, और धर्म के सम्बन्ध में सदा ही मौलिक कही जाती है, दो।

धर्म के सम्बन्ध मे मौलिक बात नही कही जा सकती; क्योकि वह जिस अनुभव मे आती है, वह अनुभव शाश्वत, सनातन का है। चाहे कोई बुद्ध, चाहे कोई कृष्ण, चाहे कोई लाओत्से, जब भी कोई उस अनुभव को पहुंचता है, वह अनुभव एक है। और पहुचनेवाला उस तक पहुचते-पहुंचते मिट जाता है, जिससे भेद पैदा होता है। वह पहुचते-पहुंचते मिट जाता है, समाप्त हो जाता है। इसलिए धर्म के सम्बन्ध में कभी कोई मौलिक बात नही कही जा सकती। लेकिन ध्यान रखना, यह बात उनके लिए है, जो जानते है। अगर कृष्ण लाओत्से को सुनें, या लाओत्से बुद्ध को सुने, तो लाओत्से समझेगा कि कोई मौलिक बात नही कही गई है। लेकिन आप ऐसा समझेंगे तो मुश्किल में पड़ेंगे। आपके लिए तो हर बात धर्म की मौलिक है। क्योंकि आपको तो इसका कोई अनुभव नहीं है।

इसलिए दूसरी बात भी सत्य है, पहली जैसी ही, कि धर्म के सम्बन्ध में सदा ही मौलिक बात कही जाती है। क्योंकि जब कोई बोलता है, तब वह बिलकुल नयी बात है। नयी किस अर्थ में? नयी इस अर्थ में कि जिन्हे वेद कंठस्थ हैं, उन्हे इसका कोई भी पता नही है, जिन्हे गीता कठस्थ है, उन्हें इसका कोई भी पता नही है। बात बिलकुल मौलिक है। कृष्ण के लिए मौलिक नही है; लेकिन कृष्ण बुद्ध को सुनने भी नही आते हैं।

बुद्ध और महावीर एक ही गांव में कई बार ठहरे; मिलना नही हुआ। एक बार तो एक ही धर्मशाला में, एक कमरे में बुद्ध और एक में महावीर ठहरे। आधी धर्मशाला में बुद्ध का डेरा, आधी धर्मशाला में महावीर का डेरा, लेकिन मिलना नहीं हुआ। बडे विचार की बात रही है। कई को लगता है कि यह तो बड़ी बुरी

बात है, दो भले आदमियों को मिलना चाहिए। भले आदमी वे थे नहीं, जिनको हम भले आदमी कहते हैं। बड़े खतरनाक आदमी थे। और मिलने का कोई कारण नहीं था, क्योंकि दोनो उसी जगह खड़े थे, दोनो तो मिट गए थे। एक ही जगह खड़े थे। मिलता कौन? मिलने का क्या उपाय है? और क्या अर्थ है?

तो अगर कृष्ण सुनने जाएं लाओत्से को तो कोई मौलिक बात नहीं है। लेकिन कृष्ण सुनने नहीं जाते। और कृष्ण अगर सुनने जाएं तो उसका मतलब है कि अभी भी खोज जारी है। अभी कृष्ण को पता नहीं चला होगा; अभी भी पता लगा रहे होंगे। लेकिन आपके लिए तो सब बातें मौलिक हैं। क्योंकि जो आपके पास होता है, वह बासा होता है, आपके अनुभव का नहीं होता है। इसलिए जब भी कोई धर्म का पुरुष पैदा होता है, तब वह जो भी कहता है, वह मौलिक होता है। और यही तो मजा है।

इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि पुराने धर्म के माननेवाले लोग, जब भी कोई धर्म की ज्योति पैदा होती है, उसके तत्काल खिलाफ हो जाते हैं। जीसस ने कोई नयी बात नहीं कही थी। यहूदी शास्त्रों में सब कुछ लिखा हुआ था, जो जीसस ने कहा। यहूदी पैगम्बर पहले जान चुके थे, कह चुके थे, जो जीसस ने कहा। और जीसस ने खुद भी कहा है कि मैं किसी का खण्डन करने नहीं आया हूं। मैं वही कहने आया हूं, जो सदा कहा गया है। और जीसस ने खुद ही कहा—यहूदियों का बड़े से बड़ा पैगम्बर था अब्राहम—जीसस ने कहा, अब्राहम बोला, उसके पहले भी मैं था। मैं कोई नया नहीं हूं। लेकिन फिर भी यहूदियों ने जीसस को सूली दे दी; क्योंकि यहूदियों को जीसस की बातें बड़ी अलग मालूम पड़ी। क्या मामला है? जीसस कहते हैं, मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूं। लेकिन यहूदियों को जीसस की बातें नयी क्यों मालूम पड़ती हैं?

और यहूदियों को शास्त्रों का ठीक अध्ययन है। उनके पंडित हैं, पुरोहित हैं, बड़े ज्ञानी हैं। वे सब जानते हैं। उन्होंने कहा, नहीं, ये बातें यह आदमी गड़बड़ कह रहा है। क्या मामला है? और यह आदमी खुद कहता है कि मैं वही कह रहा हूं। और ये जानकार हैं, जो कह रहे हैं। और जीसस से ज्यादा जानकार हैं। जीसस बहुत पढ़े-लिखे आदमी नहीं हैं। पंडित, जिन्होंने जीसस को सूली दी, वे जीसस से बहुत ज्यादा कुशल और योग्य थे—जानकारी में। जीसस उनसे जीत नहीं सकते थे। उन्हें रत्ती-रत्ती ज्ञान कंठस्थ था। एक-एक बात उन्हें याद थी। फिर क्या बात हो गई? उनके पास सब बासा था, जो कंठस्थ था। सब शब्द थे। अनुभव कोई न था। और जिनके पास शब्द हैं, उनके लिए अनुभव सदा मौलिक है। सदा मौलिक हैं। जिनके पास शास्त्र ही हैं सिर्फ, उनके लिए अनुभव सदा मौलिक हैं। लेकिन जिनके पास अनुभव हैं; उनके लिए तो पुराने और नये का फासला गिर जाता है। इस आखिरी बात को समझ लें।

असल में सब द्वन्द्व, जैसा मैंने कहा, सुख और दुख का है, जैसा मैंने कहा; शांति और अशान्ति का है, स्वतंत्रता और परतंत्रता का है; वैसे ही इस द्वन्द्व को समझ लें, यह नये और पुराने का है। सत्य न तो नया है, और न पुराना। क्योंकि नयी चीज वही होती है, जो कभी पुरानी हो सकती है। और पुराने का मतलब ही यह होता है कि कभी नया रहा होगा। आज जो नया है, कल पुराना हो जाएगा। आज जो पुराना है, कल नया था। सत्य न तो नया है, न पुराना। क्योंकि सत्य न तो पुराना हो सकता है, और न नया हो सकता है। इसलिए सत्य को हम कहते हैं सनातन। उसको हम कहते हैं शाश्वत; उसको हम कहते हैं : जो सदा है।

तो सत्य के सम्बन्ध में कोई मौलिक नहीं हो सकता है। लेकिन सत्य के सम्बन्ध में कोई प्राचीन भी नहीं हो सकता। सत्य का अनुभव समय के बाहर है। नया और पुराना समय के भीतर घटते हैं। सत्य कोई कपड़े जैसा नहीं है; कल नया था, आज पुराना हो गया। सत्य आपकी आत्मा है। कभी आपने खयाल किया कि आपकी आत्मा कब पुरानी हो जाती है? कभी आख बन्द करके सोचा कि आपकी आत्मा की उम्र कितनी है? कितनी पुरानी, कितनी नयी? एकदम भीतर जाकर खाली हो जाएंगे। शरीर की उम्र मालूम होती है; शरीर से नया-पुराना मालूम हो जाएगा। भीतर तो कुछ नया नहीं है, कुछ पुराना नहीं है। भीतर तो कुछ है, बस है — न नया, न पुराना। या कहें कि रोज नया है और रोज पुराना। सत्य का अनुभव न तो नया है, न पुराना।

और ध्यान रखना, अनुभव की बात कह रहा हू। शब्द तो पुराने पड़ जाते है, शब्द नये होते हैं। कृष्ण के शब्द पुराने शब्द पड गए। महावीर के शब्द पुराने पड गए। जिस दिन महावीर ने कहे थे, उस दिन नये थे। उस दिन वेद के शब्द पुराने थे। जिस दिन बुद्ध बोले, उस दिन शब्द नये थे; आज तो पुराने पड गए। जिस दिन बुद्ध बोले, वेद के शब्द पुराने थे; बुद्ध के नये थे। शब्द पुराने और नये हो जाते हैं, सत्य तो पुराना और नया नहीं होता।

और इसलिए उपद्रव पैदा होता है। जिनके पास शब्दो की भीड होती है, उनके पास सब पुराना होता है। और जब किसी को सत्य का अनुभव प्रकट होता है, तब वह बिलकुल नया होता है। और इस कारण संघर्ष हो जाता है।

इस जगत में धार्मिक आदमी का संघर्ष अधार्मिक आदमी से नहीं है। इस जगत में वास्तविक संघर्ष धार्मिक आदमी का धार्मिक पंडित-पुरोहित से है। अधार्मिक से कोई झगड़ा नही है। अधार्मिक तो कहता है, हम बाहर है, इसके हम लेन-देन में नहीं हैं। धर्म के दो वर्ग है। एक, जिनके पास शब्दो की शृंखला है, बासा शब्दों का संग्रह है। और दूसरे, जिनके पास अनुभव की ताजा किरण है। इनके बीच सारा संघर्ष है।

अगर आपको समझना हो लाओत्से को तो कृष्ण को, महावीर को, बुद्ध को विदा दें। विदा दे देने का मतलब कोई दुश्मन हो जाना नहीं है। विदा दे देने का मतलब है, फिलहाल उनको कहें कि भीतर शोरगुल न मचाए, उनको अलग करें। आप सीधे लाओत्से को समझें। और अगर आपको कृष्ण को समझना हो किसी दिन तो लाओत्से को विदा दे दें। उसे हट जाने दें, उसे बीच में मत आने दें। क्योंकि वे बड़े अनूठे लोग हैं। उनके सबके शब्द अपने हैं, अनूठे हैं, निज हैं। उनकी पहुंच, उनकी यात्रा का पथ, उनकी आंखें-भिन्न, भिन्न है। उनका अनुभव एक है, लेकिन अनुभव तो आपको उस दिन समझ में आएगा, जब आपको अनुभव होगा, उसके पहले नही। उससे पहले एक के शब्द को दूसरे के बीच में मत आने दें।

यही दो उपाय है। दो उपाय है। एक तो उपाय यह है कि जब आप लाओत्से को सुनें, तब आपको लगे कि वेद गलत है, कृष्ण गलत है, बुद्ध गलत हैं। पकड़ो लाओत्से को, छोड़ो इनको। एक तो उपाय यह है। हिम्मतवर कोई आदमी हो, साहसी हो, एडवेन्चरस हो, वह यही करेगा। यह गलत है। इतनी जल्दी नहीं। समझें। और लाओत्से क्या कहता है, उसका प्रयोग करे। कृष्ण को गलत कहने से प्रयोग नही होगा। महावीर को छोड़ देने से प्रयोग नही हो जाएगा। लाओत्से क्या कहता है, उसका प्रयोग करे। और जिस दिन प्रयोग पूरा होगा, उस दिन आप पाएगे कि लाओत्से के सही होने में कृष्ण, महावीर, बुद्ध सब सही हो गए। एक सही हो जाए अनुभव से, सब सही हो जाते है।

लेकिन हम होशियार लोग हैं। अनुभव की झझट में हम नही पड़ते। ऊपर ही हेर-फेर कर लेते हैं, लेबल बदल लेते हैं — हटाओ यह लेबल, अब दूसरा लगा लो। भीतर का कन्टेन्ट वही का वही बना रहता है। उसमे कभी कोई फर्क नही होता। कभी लाओत्से का लेबल जचा तो वह लगा लिया; कभी नही जंचा तो हटा दिया। बड़ी जल्दी करते है।

एक मित्र मेरे पास आये। दो-चार दिन से ध्यान शुरू किया था। जिस दिन लाओत्से का सूत्र आया कि ध्यान की भी कोई जरूरत नही है, क्योंकि ध्यान भी क्रिया है, वे मेरे पास आये और कहा कि बड़ा अच्छा हुआ, हम ने दो-चार दिन से शुरू किया था, छोड़ दिया। एक मित्र संन्यास लेने आनेवाले थे। एक दिन पहले कह कर गए थे कि कल सुबह आकर मैं सन्यास में प्रवेश कर जाऊंगा। लेकिन उसी दिन शाम को लाओत्से का सूत्र था, जिसमें मैंने कहा कि लाओत्से ने कभी संन्यास नही लिया। वे फिर दूसरे दिन आये ही नही। वे समझ गये, बात ठीक है।

आदमी बहुत चालाक है। जिन मित्र ने ध्यान छोड़ दिया चार दिन करके, मैंने उनसे पूछा, लाओत्से को समझकर और क्या छोड़ दिया? उन्होंने कहा, और

तो कुछ भी नही, ध्यान से शुरू करता हूं । ध्यान को अभी उन्होंने पकड़ा भी नहीं था, पाया भी नही था; छोड़ना तो बहुत मुश्किल है । जो तुम्हारे पास हो, वही छोड़ा जा सकता है । मैंने उनसे पूछा, ध्यान तुम्हें मिल गया ? उन्होंने कहा कि तीन-चार दिन से अभी शुरू किया है । जो है ही नही, उसे छोड़ दिया । छोड़ना चाहते होंगे, लाओत्से बहाना बन गया । हम बड़े होशियार लोग हैं । संन्यास लेने में डर लग रहा होगा, लाओत्से ने हिम्मत दे दी कि ठीक, संन्यास की क्या जरूरत है ? अपने डर को लाओत्से के ज्ञान से जोड़ दिया ।

यह ज्ञान नहीं है । यह डर है, यह भय है । इस सब बेईमानी को ध्यान में रखना जरूरी है ।

तो मैं कहता हूं कि छोड़ दो कृष्ण को, बुद्ध को, महावीर को; जब लाओत्से को समझ रहे है तो लाओत्से को समझिए । और अगर लाओत्से ठीक लगता हो तो समग्रता से उसके प्रयोग में उतर जाएं । एक दिन आप पाएंगे बुद्ध छूटे नही, कृष्ण छूटे नही, सब पा लिये । और अगर कृष्ण ठीक लगते हैं, कृष्ण को लेकर चल पड़ें । लेकिन चलें ।

अक्सर लोग हैं कि रास्ते के किनारे बैठे है और वही बैठकर बदलते रहते हैं कि कौन अच्छा लगता है, कौन बुरा लगता है । चलते नही हैं । और हमारी बदलाहट भी हम तभी करते हैं, जब हमें ऐसा डर लगता है कि अब कोई हमें चला ही देगा । उस वक्त हम बदल लेते है कि अब दूसरे को पकड़ लेना ठीक है, जो भी आश्वासन देता हो कि बैठे रहो ।

आदमी आत्म-वंचक है । और इस जगत में हम दूसरे को कोई धोखा नही दे पाते, अपने को जीवन भर देते हैं, जन्मों-जन्मों देते हैं । और हम इतने कुशल हैं कि अपने मतलब का अर्थ निकाल लेते हैं ।

मैंने सुना है कि एक आदमी शराब पीता था । वह कुरान का भी भक्त था । उससे किसी फकीर ने पूछा कि कुरान के इतने भक्त हो और शराब पीते हो ? उस आदमी ने कुरान खोल दिया और कहा कि देखो, कुरान में क्या लिखा है ? कुरान मे लिखा है . शराब पीने से प्रारम्भ करो और तुम्हारा अंत नरक में होगा । उसने कहा कि यह वाक्य देखो । उस फकीर ने कहा कि यह वाक्य दिखाई पड़ रहा है, लेकिन यह वाक्य तुम्हारे खिलाफ है । उसने कहा, लेकिन अभी मैं आधे वाक्य तक ही पहुँचा हू । शराब पीना शुरू करो, यह कुरान का आदेश है । और मेरा अभी पूरा वाक्य मानने का सामर्थ्य नही है । जितना बने, उतना तो मानना ही चाहिए । कोशिश करते-करते आधे हिस्से पर भी कभी, आप लोगो की कृपा रही, पहुंच जाऊंगा ।

हम सब बहुत होशियार है । हम चुन लेते है, क्या हमारे मतलब का है । और तब हम धोखा खा जाते है ।

लाओत्से को समझना है तो मन को साफ कर लें सब जानकारी से; कृष्ण को समझना है तो मन को साफ कर लें सब जानकारी से। उनको समझ लें और समझ लें करने के लिए।

पंडित समझता है संग्रह करने के लिए, करने के लिए नहीं। समझता है : ठीक है, लाओत्से ने क्या कहा, कृष्ण ने क्या कहा, बुद्ध ने क्या कहा। किसने क्या कहा, यह उसका हिसाब लगाता है।

बुद्ध कहते थे कि मेरे गांव में एक आदमी था जो रास्ते के किनारे बैठकर रोज सुबह जंगल जाती हुई गायो भैंसो को गिनता था। सांझ आती गाय-भैंसों को गिनता था। मैंने उससे पूछा कि तू बड़ा हिसाब लगाता है, बात क्या है? उसने कहा कि इतनी गायें सुबह गईं, इतनी शाम को लौटी। बुद्ध ने पूछा, इनमें तेरी कितनी है? उसने कहा, मेरी तो एक भी नही हैं। यह तो गाव की हैं, मैं तो ऐसे बैठकर गिनती करता हू। तो बुद्ध ने कहा कि वह आदमी कई बार मुझे जिन्दगी में मिलता है, बहुत-बहुत रूपों में।

कुछ लोग हिसाब लगाते रहते हैं कि वेद ने क्या कहा, कुरान ने क्या कहा, बाइबिल ने क्या कहा। आपकी गायें कितनी है? आपका अनुभव कितना है? ऐसा किसने क्या कहा, और किसने किसके विपरीत कहा, और अनुकूल कहा, और कौन किसके साथ है, और किसकी शैली भिन्न है, और किसके शब्द भिन्न है, इस सब गोरखधन्धे से क्या मिलनेवाला है?

आज इतना ही। पाँच मिनट कीर्तन करें। ■■

सद्‌गुण के तलछट और फोड़े

इक्यावनवाँ प्रवचन
अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई · दिनांक १७ अगस्त १९७२

२४. सद्गुण के तलछट और फोड़े

जो अपने पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं होता;
जो अपने कदमों को तानता है, वह ठीक से नहीं चलता;
जो अपने को दिखाता फिरता है, वह वस्तुतः दीप्तिवान नहीं है;
जो स्वयं अपना औचित्य बताता है, वह विख्यात नहीं है;
जो अपनी डींग हाँकता है, वह श्रेय से वंचित रह जाता है;
जो घमंड करता है, वह लोगों का अग्रणी नहीं होता।
    ताओ की दृष्टि में
    उन्हें सद्गुणी के "तलछट और फोड़े" कहते हैं।
    वे जुगुप्सा पैदा करने वाली चीजें हैं।
    इसलिए ताओ का प्रेमी उनसे दूर ही रहता है।

Chapter 24

THE DREGS AND TUMOURS OF VIRTUE

He who stands on tiptoe does not stand (firm);
He who strains his strides does not walk (well);
He who reveals himself is not luminous;
He who justifies himself is not far-famed;
He who boasts of himself is not given credit;
He who prides himself is not chief among men.
    These in the eyes of Tao
    Are called 'the dregs and tumours of Virtue,'
    Which are things of disgust.
Therefore the man of Tao spurns them.

अमृत भी सदा अमृत नहीं होता। कुछ लोग उसे पीकर भी मर जाते हैं। कुछ लोग अमृत का भी उपयोग जहर की भांति करते हैं। और जो समझदार हैं, वे जहर का उपयोग भी औषधि की तरह कर लेते हैं।

न तो अमृत अपने में अमृत है, और न जहर अपने में जहर। निर्भर है आदमी पर और उसके उपयोग पर।

कुछ लोगों को धर्म भी बीमारी की तरह मिलता है। कुछ लोग धर्म को भी अपना कारागृह बना लेते है। कुछ लोग प्रकाश के साथ भी वैसा व्यवहार करते हैं, जैसे अधकार के साथ। जीवन सभी के लिए आनंद नहीं है। मृत्यु भी सभी के लिए दुख नही है। कुछ लोग जीवन में सिवाय मरने के और कुछ भी नही करते है। और कुछ लोग मृत्यु में भी परम जीवन का अनुभव करते हैं। वस्तुएं अपने में नही है कुछ भी, व्यक्ति पर निर्भर है। सभी कुछ व्यक्ति पर निर्भर है।

यह सूत्र इस महत धारणा से सबधित है। लाओत्से कहता है, कुछ लोगों के लिए धर्म फोडे की भाति है, दुखता है। उसमें उन्हें आनन्द नही मिलता। बीमारी की तरह उन्हें ग्रस लेता है। उससे वे खिलते नही, और सिकुड जाते हैं। उससे उनकी कली फूल नही बनती, और मुर्दा हो जाती है। इस महत सूत्र की गहराई में उतरना जरूरी है। और गहरी है यह बात। क्योंकि हम सब ऐसा सोचते हैं कि वस्तुए तय है। जहर जहर है, अमृत अमृत है। धर्म धर्म है, अधर्म अधर्म है। हम सोचते है, वस्तुए तय है। वस्तुए तय जरा भी नही हैं। व्यक्ति कैसा उपयोग करता है, उससे सब कुछ तय होता है।

धर्म को भी और लोग फोड़ा कैसे बना लेते होंगे, और धर्म भी जीवन को खिलाने के बजाए सकुचित करने का कारण कैसे बन जाता होगा, उसे समझना हो तो दूर जाने की जरूरत नही है। धार्मिक आदमी को कही भी देखा जा सकता है। इसीलिए तो आश्चर्यजनक घटना पृथिवी पर घटी है कि सभी लोग अपने को धार्मिक मानते हुए मालूम पड़ते है और जीवन में आनन्द कही भी नही है। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कुछ न कुछ है; कोई मदिर, मस्जिद या गुरुद्वारे से कही न कही जुडा है। कहीं न कही से सभी ने परमात्मा की तरफ अपनी आखें उठाई हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। लेकिन जमीन बिलकुल अधार्मिक है। और आदमी की आत्मा एक फोड़े से ज्यादा नहीं है, जो सिर्फ दुखती है। यह कैसे सभव हुआ होगा?

और यह हम सबके जीवन में रोज हो रहा है। जरूर कहीं कोई एक तरकीब है आदमी के हाथ में, जिससे वह अमृत को जहर बना लेता है। कोई विधि है उसे मालूम जिससे जो भी सुखद हो सकता है, दुखद हो जाता है, और जिससे मुक्ति सम्भव है, उसीसें कारागृह बन जाता है। जिन पंखों से आकाश में उड़ा जा सकता है, हम उन्हीं को जंजीरें बनाने में कुशल हैं। उस विधि का हीं उल्लेख है इस सूत्र में; उसे हम पढ़ें।

जो अपने पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं होता। जो अपने कदमों को तानता है, तनाव देता है, वह ठीक से नहीं चलता है।

जहा भी जीवन में कुछ करने में हम तनाव लाएं, वहीं सब विकृत हो जाता है। अगर हम प्रेम करने में भी तनाव लाएं तो प्रेम भी दुख का जन्मदाता है। फिर उससे बढ़कर दुख का जन्मदाता खोजना मुश्किल है। अगर प्रार्थना भी हमारा तनाव बन जाए तो वह भी एक पत्थर की तरह छाती पर रखा हुआ है। उससे हम और डूबेंगे अंधकार में, प्रकाश की तरफ उड़ेंगे नहीं। लेकिन हम हर चीज को तनाव बना लेने में कुशल हैं। हम किसी चीज को बिना तनाव के करना ही भूल गए हैं।

निसर्ग तनाव-रहित है। जब एक कली फूल बनती है, तब कोई भी प्रयास नहीं होता। बस कली फूल बन जाती है। यह कली का स्वभाव है फूल बन जाना, इसलिए कोई चेष्टा नहीं करनी पडती। और नदी जब सागर की तरफ बहती है, तब हमें लगता है कि वह रही है; **लेकिन नदी का होना ही उसका बहना है।** बहने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना होता। इसलिए नदी कहीं भी थकी हुई नहीं दिखाई पड़ेगी। कली खिलने में थकेगी नहीं। अगर कली खिलने में थक जाए तो उससे फूल नहीं बन पाएगा। क्योंकि थकान से कहीं फूल का कोई जन्म है? कली तो जब खिलती है, तब थकती नहीं, खिलती है, और ताजा होती है, और नई हो जाती है। और नदी जब सागर में गिरती है, तब थकी हुई नहीं होती है लम्बी यात्रा के बाद वह; प्रफुल्लित होती है।

आदमी थकता है हर चीज में। वह जो भी करता है, उसमें ही थक जाता है। लेकिन कभी आपने खयाल किया है इस थकान के सूत्र का? आप थके हुए मालूम होते हैं कोई भी काम करते क्षण में। लेकिन अचानक कभी ऐसी घटना घटती है कि सब थकान तिरोहित हो जाती है।

विन्सन वानगॉग एक दक्ष पेन्टर हुआ है, और इन पिछले डेढ़ सौ वर्षों में कुछ थोड़े से कीमती आदमियो में से एक है। कुरूप था। इसलिए कोई स्त्री कभी उसके प्रेम में नहीं गिरी। उसकी जिन्दगी एक थकान थी, एक लम्बी ऊब। वानगॉग ने लिखा है कि सुबह उठने का मुझे कोई कारण नहीं मालूम पड़ता, क्यों उठूं? उठना पड़ता है, मजबूरी है, उठा तो। सांझ सोने का कोई कारण नहीं मालूम पडता।

आंख भी खोलूं, इसकी भी कोई वजह नहीं; क्योंकि कोई भविष्य नहीं है। वानगॉग चलेगा भी तो उसके पैर लड़खड़ाते हुए होंगे। वह काम भी करेगा तो उसके काम में उदासी छायी होगी। वह जिस दुकान पर काम करता है, एक चित्र बेचनेवाली, पेंटिंग बेचनेवाली दुकान पर काम करता है, उसके मालिक ने कभी नहीं देखा कि उसने कभी किसी ग्राहक में कोई रस लिया हो। ग्राहक को आते देखकर उसे लगता है कि एक मुसीबत आ गई। उठता है, चित्र दिखा भी देता है, लेकिन जैसे कोई ऑटोमेटा, कोई यंत्र सब कर रहा हो।

लेकिन अचानक एक दिन देखा उसके मालिक ने कि वानगॉग गीत गुनगुनाता हुआ सीढ़ियां चढ रहा है। यह पहला मौका है कि उसे किसी ने गीत गुनगुनाते देखा। जब वह पास आया, उसके मालिक ने देखा कि न केवल वह गीत गुनगुना रहा है, आज मालूम पड़ता है कि उसने स्नान भी किया है। स्नान वह रोज भी करता था, लेकिन वह सिर्फ पानी डाल लेता था। पानी डाल लेने में और स्नान करने मे बडा फर्क है। जब कोई अपने लिए ही डाल लेता है, तब पानी डालना होता है। और जब किसी और के लिए डालता है, तब स्नान होता है। और दोनों में बुनियादी फर्क है। कपड़े उसके वही थे, लेकिन आज उनका तर्ज बदल गया। आदमी वही था, लेकिन चाल बदल गई। मालिक ने पूछा, वानगॉग क्या हुआ ?

वानगॉग ने कहा कि आज मेरी जिन्दगी में एक स्त्री आ गई -- प्रेम की एक घटना।

उस दिन ग्राहको में उसका रस और है। उस दिन ग्राहक को आता देख कर वह आनन्दित है। उस दिन उसके काम में अंतर पड़ गया है। जिन्दगी में कोई अर्थ आ गया है। वानगॉग ने उस रात अपनी डायरी में लिखा कि पहली दफा एक ऐसा दिन बीता, जिसमें मै थका नही; नहीं तो मै सुबह थका हुआ ही उठता हूं। शाम थका हुआ तो सोता ही हूं, सुबह थका हुआ ही उठता हूँ, उस दिन शाम भी मैं ताजा था, थका हुआ नही था। और काम मैने हर दिन से ज्यादा किया।

क्या फर्क पड गया ? जो कल तक तनाव था, आज वह तनाव नहीं रहा। जिस काम के करने में तनाव होगा, वह आपको थका जाएगा। और जिस काम के करने में तनाव नहीं है, सहजता है, वह आपको और भी ताजा कर जाएगा। न तो काम थकाता है, न ताजा करता है। आदमी पर निर्भर है। हम पूरे जीवन को काम बना लेते हैं, तनाव बना लेते हैं।

मैं सुनता हूं, लोग मेरे पास आते हैं, कहते हैं कि पिता बीमार है, उनकी सेवा कर रहा हूं, कर्तव्य है, ड्यूटी है। ड्यूटी होती है पुलिसमैन की, कर्तव्य होता है नौकर का। बेटे का कर्तव्य नहीं होता। कर्तव्य का मतलब है कि करना चाहिए; इसलिए कर रहे हैं। लेकिन अगर पिता की सेवा करना कर्तव्य है तो फिर सेवा एक पत्थर की तरह छाती पर पड़ जाएगी। और भीतर मन के किसी कोने में

यह भाव अगर आना शुरू होगा तो यह मत सोचना कि यह भाव कहां से आया है कि यह पिता समाप्त हो जाए। हालांकि आप कहेंगे भी कि यह बुरा विचार कहां से आ रहा है, यह नहीं आना चाहिए। आप उसको प्रकट भी नहीं करेंगे। लेकिन जिस दिन आपने सेवा को कर्तव्य माना, उसी दिन उस विचार का बीज भी आपने बो लिया अपने भीतर। यह कोई और नहीं ला रहा है। क्योंकि जहां कर्तव्य है, वहां फिर छुटकारे का मन होगा।

लेकिन पिता की सेवा अगर कर्तव्य न हो तो वह बोझ नहीं होगी। और तब सच तो यह है कि पिता की सेवा करते वक्त पहली दफा आपके जीवन में वह फूल खिलेगा, जिसका अर्थ पुत्र होना होता है। नहीं हो, तो वह फूल कभी नहीं खिलेगा। पिता आपको जन्म देकर पिता नहीं हो जाता है, और आप किसी से जन्म पाकर पुत्र नहीं हो जाते। पुत्र आप उस दिन होते हैं जिस दिन पिता की सेवा आनन्द होती है। और पिता भी आप उस दिन होते हैं जिस दिन बेटे के प्रति जो प्रेम है, वह आनंद होता है, काम और कर्तव्य नहीं।

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह निसर्ग से खिलता है। और जीवन में जो भी कचरा है, जिसको लाओत्से कह रहा है तलछट, कचरा, फोड़े की भांति जो घाव बन जाता है, वह सब तनाव से पैदा होता है। और हम जो भी करते हैं, वह तनाव है। हमारा पूरा जीवन एक लम्बी यात्रा है -- एक तनाव से दूसरे तनाव तक।

इसलिए मौत हमारे जीवन की पूर्णता नहीं है, केवल समाप्ति है। अन्यथा अगर एक आदमी का जीवन विकसित हुआ है तो उसकी मृत्यु भी पूर्णता होगी। सांझ जब सूरज डूबता है, तब सुबह के सूर्य से कम सुन्दर नहीं होता। सांझ के डूबते हुए सूरज का सौन्दर्य भी वैसा ही अनूठा होता है, जैसा उगते हुए सूरज का होता है। लेकिन आदमी का उगता हुआ सौन्दर्य सौन्दर्य होता है, और डूबता हुआ सब कुरूप हो जाता है। आदमी के जीवन का सूर्यास्त क्यों सुन्दर नहीं है? जिन्दगी एक तनाव की यात्रा है। तो हम समाप्त होते हैं मृत्यु में, पूर्ण नहीं होते। धार्मिक व्यक्ति की मृत्यु पूर्णता है। अधार्मिक व्यक्ति के लिए सिर्फ अंत है, सिर्फ समाप्ति है। यह जो घटना घटती है, यह घटना प्रत्येक काम को तनाव बनाने से घटती है।

लाओत्से कहता है, जो अपने पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं होता। आप कभी अपने पंजों के बल खड़े होकर देखें। वैसे तो सभी लोग पंजे पर जीवन में खड़े हैं, लेकिन ऐसे कभी पंजों के बल खड़े होकर देखें। जल्दी ही थक जाएंगे। और पंजों के बल आप कितने ही सध के खड़े रहें, आप कंपित होते रहेंगे भीतर, और खड़ा होना प्रतिपल एक श्रम होगा।

लेकिन हम सब पंजों के बल खड़े हैं। हमारा खड़ा होना सहज खड़ा होना नहीं है। कोई आदमी पंजों के बल क्यों खड़ा होता है? ऊंचा दिखना चाहता है, बड़ा

दिखना चाहता है; दूसरों की आंखों में कुछ दिखना चाहता है। दूसरों की आंखें बहुत मूल्यमान हैं; अपनी सहजता स्वीकार नहीं है। वह लम्बा होना चाहता है।

पश्चिम में स्त्रियों ने बड़ी एड़ी के जूते ईजाद किये हैं—वह सिर्फ पुरुष के साथ स्पर्धा में। पुरुष थोड़ा लम्बा है। उन लम्बी एडी के जूतों पर चलना सुखद नहीं है; क्योंकि प्रकृति के बिलकुल प्रतिकूल है। असल में लम्बी एड़ी के जूते पहनने का मतलब है कि पजे के बल आप खड़े होना चाह रहे हैं, सहारा चाहिए, कि लम्बी एड़ी का सहारा मिल जाए। स्त्री की भी पुरुष जैसा लम्बा होने की तृष्णा स्वीकृति नहीं है। दूसरों से कुछ तुलना है, और दूसरे के मुकाबले में होने का कोई भाव है।

फिर यह एड़ी की ऊचाई तक ही बात नहीं टिकेगी, यह तो फिर पूरे जीवन में फैल जाएगी। यह तो दृष्टि और आधार हुआ। जिस दिन पश्चिम में आज से कोई तीन सौ साल पहले स्त्रियों ने लम्बी एडी के जूते खोजे, उसी दिन कहा जा सकता था कि आज नहीं कल, जो भी स्त्रियां आज पश्चिम में कर रही हैं, वह करेंगी। आज वे जो कर रही हैं, वह उस एडी के जूते से तय हो गया था। एक भाव है भीतर।

लेकिन लम्बी एड़ी के जूते पर खडे होने में सुख नहीं हो सकता। खडा होना भी एक दुख हो जाएगा। चलना एक कष्ट होगा। चलना एक आनन्द हो सकता है। चलना आनन्दपूर्ण है। लेकिन जिनकी भी आदत पजों पर खडे होने की हो गई है, फिर वे चल नहीं सकते। सारे शरीर को घसीटना पड़ेगा।

और लाओत्से कहता है कि जो पजो के बल खडा है, वह दृढता से खडा नहीं हो सकता। वह कम्पित भी रहेगा। क्योंकि जो भी सहारे उसने लिये हैं, सब झूठ हैं और कृत्रिम हैं। वे अपने पैर नहीं हैं लम्बे, वे जूते की एडी हैं। वह जिन सहारों से भी लम्बा हो गया है, वे सब झूठ है।

एक राजनीतिज्ञ अपनी कुर्सी पर बड़ा हो गया है; वह कुर्सी इतनी ही झूठी है। इसलिए राजनीतिज्ञ अपनी कुर्सी पर कभी शांति से बैठ नहीं सकता। कुर्सी पर होना और शाति में होना बडा मुश्किल है। क्योंकि वह कुर्सी जिस चीज के लिए काम में लाई जा रही है—दूसरो से ऊपर दिखाई पड़ने के लिए—यह जो चेष्टा है, यह चेष्टा ही कुर्सी पर शांति से बैठने नहीं देती है। इसलिए सम्राटो की रातें अगर कष्टपूर्ण हैं, और सम्राटों ने कभी-कभी भिखारियों से भी ईर्ष्या की है अपने मन में, तो उसका कारण है।

अगर एक व्यक्ति ने धन का ढेर लगा लिया है, और उसके ऊपर होने की कोशिश में लगा है, तो वह कितना ही सोचता हो कि वह ढेर के ऊपर खड़ा है, वह समझे, या न समझे, उसे पता नहीं है, असलियत में यह ढेर उसके सिर पर बैठ जाएगा। वह दब जाएगा। वह इस ढेर से ऊपर नहीं उठनेवाला है।

लाओत्से कहता है, अगर दृढ़ता से खड़ा होना हो तो ऐसे खड़ा होना चाहिए कि खड़े होने में कोई तनाव न हो। पंजों के बल खड़ा नहीं हुआ जा सकता। और जब आप पंजो के बल खड़े होते हैं, तभी पता चलता है कि आप खड़े हैं। जब आप पूरे पैर के बल खड़े होते हैं, तब आपको पता भी नहीं चलता कि आप खड़े हैं। लेकिन हमारी आदत सन्तुलन की नहीं है।

इसलिए लाओत्से की परम्परा में एक प्रक्रिया है। लाओत्से अपने शिष्यों को कहता था कि खड़े हो जाओ, फिर आंख बन्द कर लो, फिर ध्यान करो कि तुम पैर के किसी हिस्से पर जोर तो नहीं दे रहे हो। पूरे दोनो पैरों पर सन्तुलन बराबर बांट दो। तो हमें तो पता ही नहीं चलेगा। तो पता चलाने के लिए लाओत्से कहता था कि खड़े हो जाओ; फिर एक पैर पर जोर दो; बाएं पैर पर पूरा जोर दे दो; बाएं पर ही खड़े हो, भीतर शिफ्ट कर दो, भीतर पूरा बल बाएं पर शिफ्ट कर दो। तब तुम्हे पता चलेगा कि दांया पैर नपुंसक हो गया, उसमें प्राण नहीं रह गया। फिर दाएं पर पूरे का पूरा जोर हटा दो। तब तुम पाओगे कि बायां रिक्त और खाली हो गया। तब दोनों पर बराबर जोर बांटो। और लाओत्से कहता था, जिस दिन तुम्हारा सन्तुलन बिलकुल बराबर हो जाएगा, तुम्हे बाए और दाएं पैर का पता नहीं चलेगा कि कौन-सा पैर दायां है और कौन-सा पैर बायां है, और जिस दिन सन्तुलन बराबर हो जाएगा, उस दिन तुम कितनी ही देर खड़े रहो, तुम थकोगे नहीं।

यह पैर की बाबत ही सही नहीं है, पूरे शरीर की बाबत सही है। अगर हमारे प्राण पूरे शरीर पर समान रूप से वितरित हों तो जिस भांति हम थकते और परेशान होते हैं, वैसे थकने और परेशान होने का कोई कारण न रह जाए। कभी लोगों को देख लें--खुद को देखना तो मुश्किल होता है--दूसरों को देखें तो आसानी होगी। किसी परीक्षा भवन में चले जाएं और विद्यार्थियों को लिखते देखें तो आप हैरान हो जाएंगे। लिखा तो जाता है हाथ से, लेकिन उनके पैर तक तने हुए हैं। पैरों से लिखने का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अगर कुशल लेखक हो तो कलम उंगलिया जितनी पकड़ती हैं, उतना ही बल हाथ को देने की जरूरत है, उससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। लेकिन सारा शरीर तन जाता है, सिर से लेकर पैर तक एक-एक नस खिंच जाती है।

आदमी को साइकिल चलाते देखें; सिर्फ पैर के पंजे काफी है साइकल को चलाने के लिए, लेकिन उसका पूरा शरीर संलग्न है। यह जो पूरे शरीर की संलग्नता है, यह अकारण थकावट है। और यह अगर आदत बन गई हो तो हमारा पूरा जीवन व्यर्थ के तनाव में टूटता है।

इंगलैण्ड में मैथ्यू अलेक्जेन्डर नाम का एक बहुत बड़ा शिक्षक था। वह शिक्षक ही इस बात का था कि लोगों को सिखाए कि कैसे खड़े हों, कैसे बैठें, कैसे लेटें, कैसे

चलें। और आप हैरान होंगे यह जानकर कि अलेक्जेन्डर ने हजारों लोगों की हजारों बीमारियां सिर्फ उनको ठीक खड़े होना, ठीक लेट जाना, ठीक बैठ जाना सिखाकर दूर की। वह शिक्षक था केवल मनुष्य की गतिविधियों का, लेकिन वह चिकित्सक सिद्ध हुआ। और अलेक्जेन्डर ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैंने अब तक ऐसा एक आदमी नहीं पाया, जो शरीर के साथ सद्-व्यवहार करता हो। लेकिन उसे उसका कोई पता ही नहीं है।

अलेक्जेन्डर ने लाओत्से को स्मरण किया और उसने कहा कि इस आदमी को राज पता था। वह कहता है कि अगर अपने पंजों के बल कोई खड़ा होगा तो दृढ़ता से खड़ा नहीं हो सकेगा। उसकी पूरी जिन्दगी एक कमजोरी बन जाएगी। उसकी पूरी जिन्दगी में एक भय का कम्पन भीतर प्रवेश कर जाएगा। वह जो भी करेगा, कम्पित रहेगा, डरा हुआ रहेगा। और उसका कारण क्या है?

इसका कारण यह नहीं है कि वह कमजोर है। उसका कारण सिर्फ यह है कि दूसरों के सामने वह शक्तिशाली दिखाई पड़ने की कोशिश कर रहा है। जब भी आपको लगे कि भीतर कमजोरी पकड़ रही है, तब समझ लेना कि आप दूसरों के सामने शक्तिशाली दिखाई पड़ने की व्यर्थ चेष्टा में लगे हैं। जब आपको लगे कि आपके भीतर डर पैदा हो रहा है—कहीं मैं बुद्धिहीन तो नहीं हूं—तब आप समझ लेना कि आप पंजों के बल पर खड़े होकर लोगों को दिखला रहे हैं कि मैं बुद्धिमान हूं।

जीवन बड़ा विपरीत है।

अमरीका में एक मनोविद है, अब्राहम मैसलो। एक मरीज उसके पास आया। वह एक बहुत बड़े बैंक का डायरेक्टर है और उसका सारा काम उसके लिखने-पढ़ने पर टिका है। और आज तक उसकी प्रतिष्ठा और प्रशंसा उसकी बहुत ही सुघड़ और सुडौल लिखावट की रही है। लेकिन इधर कुछ दिनों से उसका हाथ कांपने लगा है और उसकी लिखावट खराब होने लगी है। वह जितनी कोशिश करता है अपनी लिखावट को बचाने की, उतनी ही लिखावट और खराब होती चली जाती है। और अब उसे डर पैदा हो रहा है कि वह यह काम छोड़ दे, क्योंकि उसकी जीवन भर की प्रतिष्ठा नष्ट हुई जा रही है। उसने नमालूम कितने लोगों से सलाह ली है। लेकिन सब सलाहें खतरनाक साबित हुईं। और सब सलाहों का परिणाम यह हुआ कि उसका हाथ और खराब हो गया। वह मैसलो से पूछता है।

मैसलो उससे कहता है कि तुम एक काम करो। जब तुम्हारी लिखावट अच्छी थी, तब तुम्हें खयाल है कि तुमने लिखावट अच्छी रखने के लिए कोई प्रयास किया था? तो उसने कहा कि मुझे कोई खयाल नहीं है। तो मैसलो ने कहा कि एक काम करो, जानकर जितना खराब लिख सकते हो लिखो—चेष्टा से। जितना

बिगाड़ सको, उतना अपनी लिखावट को बिगाड़ो। और जो वर्षों से उसकी चिन्ता थी, वह विदा हो गई। क्योंकि जितनी उसने चेष्टा की बिगाड़ने की, उतना उसने पाया कि वह बिगड़ती नहीं, सुडौल होती गई।

चेष्टा से हम जो भी करते हैं, वह बिगड़ जाता है। चेष्टा से अगर बिगाड़ना चाहें लिखावट को तो यह श्रम भी व्यर्थ हो जाएगा; सुधर जाएगी लिखावट। अगर चेष्टा से सुधारना चाहे तो यह श्रम भी व्यर्थ हो जाएगा; लिखावट बिगड़ जाएगी। इसको जर्मन मनोवैज्ञानिक फ्रेन्कल ने लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट कहा है — **विपरीत का नियम**। जो भी हम करते हैं चेष्टा से, उससे विपरीत परिणाम आता है।

एक आदमी सब के साथ भला होने की कोशिश करता है, और करीबन छाती पीट कर कहता है कि मैं सबके साथ भला होने की कोशिश कर रहा हू और सारे लोग मेरे प्रति बुरे हो गए है। लोग निरतर कहते सुने जाते हैं कि हम नेकी करते हैं और लोग हमारे साथ बदी करते हैं, मैंने उस व्यक्ति की इतनी सहायता की और वक्त पर उस व्यक्ति ने बिलकुल मेरी तरफ पीठ कर दी।

यह आपकी चेष्टा का परिणाम है; नियमानुसार हो रहा है। कोई आदमी *बुरा नहीं कर रहा है आपके साथ। जब भी कोई भला करने की* ***कोशिश*** *करता* है किसी के साथ, तब बुरा हो जाता है। **कोशिश** में ही बुराई आ जाती है। किसी पर दया करने की कोशिश करो, वह आदमी आपको कभी माफ नही कर पाएगा। वह आपसे कभी न कभी बदला लेगा आपकी दया का। क्योंकि दया करने की जो कोशिश है, उसमें दया क्रूरता हो गई, उसमें दया हिंसा हो गई। जब किसी के साथ अच्छा करने की आप कोशिश करते हैं तो आप यह दिखा रहे हैं कि आप अच्छे हैं। **वह दिखाना ही बीज हो गया जहर का**। इसलिए तथाकथित अच्छे लोगो को कोई कभी माफ नहीं कर पाता है। खुद के मा-बाप तक को माफ करना मुश्किल होता है। क्योकि मा-बाप इतना अच्छा करने की कोशिश करते हैं कि दुश्मन मालूम पड़ने लगते हैं।

यह इस सीमा तक पहुंच सकती है बात कि इंगलैण्ड के एक विचारक आर. डी. लेंग ने अपनी एक किताब इस वाक्य से शुरू की है कि मां का बच्चे के प्रति पहला चुबन ही इस जगत में उपद्रव की शुरुआत है। चुंबन, मां का पहला चुबन इस जगत में उपद्रव की शुरुआत है! बच्चे के साथ हिन्सा शुरू हो गई! लेंग ने लिखा है कि बच्चे के साथ हिन्सा शुरू हो गई।

यह कुछ दूर तक सच है। लेकिन इतनी ही दूर तक सच है, जहा तक यह चुबन चेष्टा से निकला हो। यह चेष्टा से न निकला हो तो चुंबन की याद भी नहीं रह जाती। लेकिन माताएं बाद में बहुत याद करती हैं। इसलिए लगता है कि चेष्टा से निकली हुई चीज है। माताएं बाद में कहती हैं कि मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या

किया, रात रात भर तुम्हारी बीमारियों में जागी! कैसे कष्ट उठाए, माताएं इसका पूरा हिसाब रखती हैं। यह हिसाब रखना माताओं जैसा है ही नहीं; यह किसी संस्था के सेक्रेटरी को शोभा देता है।

अगर यह चेष्टा से निकला हो तो इसकी स्मृति बनती है; अगर यह सहज निकला हो तो इसकी कोई स्मृति नहीं बनती। अगर यह सहज निकला हो तो इसका फल उसी समय मिल गया, इससे किसी और फल की आशा नहीं बँधती। और अगर यह चेष्टा से निकला हो तो यह इनवेस्टमेन्ट है, भविष्य में इसके फल लेने की आकांक्षा होती है। तो बूढ़ी मां अपने बेटे से कहेगी कि मैंने तुम्हारे लिए क्या किया और तुम मेरे लिए क्या कर रहे हो? इसका मतलब यह है कि मां ने जो किया था, उसका आनन्द करने में नहीं मिल पाया। आनन्द बच गया। काम हो गया, फल शेष रह गया। लेकिन अगर मां का चुंबन आनन्द था तो उसको आनन्द मिला गया, अब उसको बदले में कुछ और पाने का सवाल कहां है? और अगर याद है तो वह बताती है याद कि वह पूंजी लगाई थी भविष्य के लिए — लाभ की आशा से। लाभ तत्क्षण नहीं मिला; आगे मिलेगा, उसका हिसाब रखना पडेगा। उसकी स्मृति बनी रहती है।

लाओत्से कहना है कि जो भी हम तनाव से करेंगे, वह हमारे जीवन को भीतर से कुरूप कर जाता है, और क्रिपल्ड कर जाता है, जकड़ जाता है, पंगु कर जाता है। खड़े होकर देखें और खड़ा होना कष्ट हो जाएगा। जो अपने कदमों को तानता है, वह ठीक से नहीं चलता। जीवन में हमें चारों तरफ ऐसी घटनाएं रोज अनुभव में आती हैं, जिन्हें हम खयाल में ले तो अच्छा।

हम सभी बोलते है, सौ में निन्नानबे लोग अच्छी तरह बोलते हैं। बातचीत में कुशल होते हैं। उन्हे यहा मच पर खडा कर दिया जाए और बोलना मुश्किल हो जाएगा। क्या हो गया? उनकी जबान में कोई खराबी नहीं है, उनका कंठ ठीक है, रोज बात करते हैं — बात ही करते हैं दिन भर, और क्या करते हैं? अचानक इस माइक के सामने खडे होकर उनका कंठ अवरुद्ध क्यो हो जाता है? हाथ-पैर कपने क्यो लगते हैं? ये बोलने में इतने कुशल है, इन्हें चुप होना मुश्किल होता है, मौन कठिन मालूम पड़ता है! अचानक इनसे मौन क्यो सघ जाता है? मच पर खड़े होकर इनसे बोला क्यो नहीं जाता?

बोलना प्रयास है अब। अब यह पजे के बल खड़ा होना हो गया। अब प्रयास है बोलना। जो रोज दिन भर बोलते थे, वह अप्रयास था। उसमें कोई चेष्टा न थी, उसमें कोई खयाल ही नहीं था कि हम बोल रहे है। बोलना हो रहा था। अब खयाल है कि हम बोल रहे हैं। और खयाल क्यो है? खयाल इसलिए है कि कुछ ऐसा न बोल जाएं कि लोगों के सामने प्रतिष्ठा गिर जाए, कुछ ऐसा बोलें कि प्रतिष्ठा बढ जाए। लोगों पर दृष्टि है।

ऐसा समझें कि यहां कोई भी नहीं है और माइक पर आप अकेले खड़े हैं; तब फिर आप मजे से बोल सकते हैं, बड़े आनन्द से बोल सकते हैं। अपनी ही आवाज सुनना बहुत आनन्दपूर्ण होता है। लेकिन लोग बैठे हैं, तब अड़चन होती है। आप तनाव से भर गए।

मनसविद् कहते हैं, आपको अनुभव हुआ होगा, गोली गटकनी मुश्किल होती है दवा की; खाना आप रोज गटक जाते हैं। कभी खयाल भी नहीं आता कि खाने का कोई कौर अटक गया हो और आपको चेष्टा करके लीलना पड़ा हो। लेकिन दवा की गोली जीभ पर रखें तो पानी अंदर चला जाता है और गोली जीभ पर रह जाती है। इस गोली में क्या खूबी है? जब आप खाना ले रहे हैं, तब कोई चेष्टा नहीं है। गोली को गटकना है। यह प्रयास है। और यह प्रयास अटकाव बन जाता है।

जीवन के सब तलो पर विपरीत का नियम काम करता रहता है। जितनी आप चेष्टा करेंगे, उतने ही आप विफल हो जाएंगे। सफलता का एक ही सूत्र है: **चेष्टा ही न करें।** इसका मतलब यह नही है कि कुछ करें ही नही। यह मतलब नही है। इसका मतलब है कि ऐसे करे, जैसे करना आपसे निकलता हो, उस पर कोई बोझ न हो, उसपर कोई भार न हो, उस पर कोई जबरदस्ती न हो, अपने को खींचना न पडता हो। नदी की तरह बहना होता हो, कली की तरह खिलना होता हो, पक्षी की तरह गीत होता हो!

जो अपने कदमो को तानता है, वह ठीक से नही चलता है। जो अपने को दिखाता फिरता है, वह वस्तुत. दीप्तिवान नही है। दूसरे मुझे देखें, दूसरे मुझे जानें, दूसरे मुझे पहचानें, आखिर दूसरो के मन में मेरी अच्छी धारणा बने, इसकी इतनी कामना क्यो होती है? इसका इतना मन मे रस क्यो होता है? **अपने पर कोई भरोसा मुझे नहीं है, इसलिए।** अपनी कोई प्रतिमा भी मेरे पास नही है, इसलिए। अपना कोई तादात्म्य भी नही है, कोई आइडेन्टिटी भी नही है। मै कौन हू, इसका मुझे कुछ पता नही है। दूसरे मुझे क्या मानते हैं, वही मुझे पता है। उसका ही जोड मेरी आत्मा है। अ कुछ कहता है, ब कुछ कहता है, स कुछ कहता है। मेरी बाबत लोग जो कहते हैं, उनको ही जोड़कर मै अपनी आत्मा बना लेता हू। लोग कहते हैं कि मै अच्छा हू तो मुझे लगता है कि मैं अच्छा हूं। और लोग कहने लगें, मै बुरा हू, तो मेरे भवन की आधारशिलाएं डगमगा जाती हैं।

इसलिए जब कोई आदमी आपको बुरा कहता है, तब आपको जो क्रोध आता है, वह इसलिए नही आता है कि उसने गलत कहा। अगर गलत कहा है, तब तो क्रोध आने की कोई जरूरत नही है। गलती उसकी है, आप क्यो परेशान होते हैं। डर यह है कि कही उसने सही ही न कहा हो। उससे क्रोध आ जाता है। और अगर उसने सही कहा है तो जो हमने अपनी प्रतिमा बना रखी है, वह मोम की

तरह पिघलने लगेगी। एक आदमी मेरे प्राण खींच ले सकता है। एक आदमी कह दे कि बुरे हो तो मेरा सारा अस्तित्व डगमगा जाए। मैंने अस्तित्व बनाया ही है दूसरों के विचारो से, उनके ओपीनियन इकट्ठे कर लिये, उनकी फाइल बना ली। वही मेरी आत्मा है। उसमें एक पन्ना उड़ता है तो मेरे प्राण उड़ते हैं।

कभी आपने सोचा है, लोग आपकी बाबत क्या कहते हैं अगर वे सब आप को बता दें तो आपके पास शून्य के सिवाय क्या बचेगा ? तब आपको कैसे पता चलेगा कि आप अच्छे हैं, या बुरे हैं, सुन्दर हैं कि कुरूप हैं, बुद्धिमान हैं कि बुद्धिहीन हैं, कैसे पता चलेगा ? दूसरे क्या कहते हैं, वही हमारा आत्मज्ञान है। इसलिए हम दिखाते फिरते हैं। इसलिए बड़ी झंझटें खड़ी होती हैं, और जीवन बड़ी उलझन में पड़ जाता है।

एक व्यक्ति किसी के प्रेम में पड़ जाता है। दोनों प्रेमी एक दूसरे को दिखाते हैं। प्रेमी ऐसा दिखाई पड़ता है कि ऐसा प्रेमी जगत में कभी हुआ ही नहीं। प्रेयसी ऐसी मालूम पड़ती है कि अभी-अभी स्वर्ग से उतरी है। दोनों एक दूसरे को दिखा रहे हैं। लेकिन यह पंजों के बल खडा होना है। ज्यादा देर नहीं रहा जा सकता है इसके बल पर। जब बीच पर मिलें घड़ी भर को तो पंजों के बल खड़े रह सकते हैं। पूर्णिमा के चाद में चोरी-छिपे मिलें तो पंजों के बल पर खड़े रह सकते हैं। फिर ये अगर भूल से विवाह कर लें तो पजो के बल कितनी देर खड़े रहेंगे ? फिर जमीन पर उतरना पडेगा। फिर वह जो दिखाने की चेष्टा थी, वह समाप्त हो जाएगी। तब अचानक लगता है कि एक साधारण सी स्त्री है, जिसको मै अप्सरा समझे था; एक साधारण सा पुरुष है, जिसको समझा था देवता उतर आया है। धोखा हो गया।

तब भी हम यही सोचते हैं कि दूसरे ने धोखा दे दिया। दोनों ही यही सोचते हैं। कोई भी यह नही सोचता कि हम दोनों पंजे के बल खडे होकर एक दूसरे को दिखाने की कोशिश कर रहे थे। वह कोशिश ज्यादा देर नही चल सकती, वह स्थायी नही हो सकती। तीन दिन काफी हैं, सब प्रेम उजड़ जाता है।

अगर पुराने दिनों में नही उजडता था तो उसका कारण था कि तीन दिन भी इकट्ठे साथ नही मिलते थे। बहुत कठिन मामला था। पुराने लोग जरूर होशियार थे, बुद्धिमान थे। अपनी पत्नी को भी देखना एक चोरी का काम था। अपनी पत्नी से मिलना भी एक बड़े सयुक्त परिवार में बड़ी मुश्किल बात थी। लम्बा चल पाता था। अब हमने पति-पत्नियों को आमने-सामने बिठा दिया है। और उनकी हालत वैसी हो गई, जैसी सार्त्र ने अपने एक उपन्यास में कल्पना की है।

एक आदमी मरता है। वह सदा से डरा हुआ है; उसको पाप का, अपराध का डर है। और उसको डर है कि वह नरक जाएगा। लेकिन मर कर जब उसकी आख खुलती है, तब पाता है कि एक अच्छे कमरे में बैठा हुआ है। सब साज-

सामान लगा हुआ है। बड़ा हैरान होता है कि क्या मैं स्वर्ग में आ गया ! सब सुन्दर है, सब व्यवस्थित है। जो व्यक्ति उसे उस कमरे में ले आया है, वह उससे कहता है कि क्षमा करें, आप नरक मे आ गए हैं। और तब और दो व्यक्ति कमरे में लाए जाते हैं — एक महिला है बूढ़ी और एक जवान लड़की है। वह पूछता है कि यह नरक कैसा है, यहां तो सब सुविधा है ! वह आदमी कहता है कि सभी को ऐसी तकलीफ होती है; थोड़ी देर में समझ मे आ जाएगा।

और थोड़ी देर में समझ में आना शुरू हो जाता है। उस कमरे के बाहर जाने का कोई उपाय नही है। उसमें दरवाजा भीतर की तरफ खुलता है, बाहर की तरफ खुलता ही नही। उसमें कोई बाहर से भीतर आ सकता है, भीतर से बाहर नही जा सकता। लेकिन उस आदमी को शुरू मे अच्छा लगता है, जवान है लड़की, सुदर है; सगी-साथी हैं इस कमरे मे, कोई डर नही है। लेकिन चौबीस घटे वे अपनी-अपनी कुर्सियों पर वहां बैठे हैं — उस कमरे के भीतर। एक घटा, दो घटे, रात, दिन, चौबीस घटे हो गए, वहा से बाहर जाने का कोई उपाय नही है। अगर आख बन्द करके सोयें भी तो पता है कि दो लोग वहां मौजूद हैं, वे देख रहे होगे। नरक मे और कोई तकलीफ नही है. उन तीनो को एक ही कमरे मे रहना पड़ता है।

और तीन दिन के भीतर उसको लगता है कि इससे वह जो पुराना नरक था, आग मे जलाए जानेवाला, वही ज्यादा बेहतर था। यह नया इवेन्शन तो खतरनाक मालूम होता है। कम से कम थोड़ा इक्साइटमेंट होता, आग में जलाए जाते, फेंके जाते, कुछ होता ! यहा तो कुछ होता ही नही है। बस ये तीनो बैठे हुए हैं एक कमरे मे। पूछताछ भी समाप्त हो गई, जैसे कि ट्रेन मे मिलते हैं लोग, समाप्त हो जाती है बात, वेटिंग रूम मे मिलते हैं, कहाँ जा रहे है, क्या है, पूछ कर बात खत्म हो जाती है। फिर लोग अपने टाइम-टेबल को दुबारा पढ़ने लगते हैं, तिबारा पढने लगते हैं। सब खत्म हो गई बातचीत, हो गई जानकारी, पहचान हो गई, अब कोई उपाय नहीं रहा। तीन दिन में उसे पता चलता है कि यह तो महा नरक है, और किसी बहुत ही बड़े शैतान की ईजाद है। पुराना शैतान इतना आविष्कारक नही था।

दो प्रेमी जब एक ही कमरे में बन्द कर दिए जाते हैं, तब तीन दिन में प्रेम नरक हो जाता है। हो जानेवाला है। उसका कारण प्रेम का कोई कसूर नहीं है। उसका कारण पंजो के बल खड़े होने की चेष्टा है। इस जगत मे तब तक विवाह सफल नही हो सकता है, जब तक लोग दिखाने की कोशिश नही छोड़ते। तब तक विवाह असफलता रहेगा, जब तक लोग दिखाने की कोशिश नहीं छोड़ते। तब तक इस दुनिया में परिवार स्वर्ग नही हो सकता। तब तक मित्रता में जहर रहेगा और तब तक सब सम्बन्ध रोग पैदा करेंगे। क्योंकि जो भी हम दिखाने की कोशिश करते हैं, वह ज्यादा देर नही चल सकता।

मैं जो हूं, वह मैं सदा हो सकता हूं। जो मैं दिखाने की कोशिश करता हूं, वह मैं कभी-कभी हो सकता हूं। वह मैं कभी-कभी हो सकता हूं। और वह होना कष्टपूर्ण होगा। उस होने में मुझे चेष्टा करनी पड़ेगी। चेष्टा श्रम लाएगी। और जिसके लिए मुझे चेष्टा करनी पड़ेगी, उसके प्रति मेरा सद्भाव नष्ट हो जाएगा।

आदमी जैसा है, वैसे की स्वीकृति लाओ है। और उस स्वीकृति से भी जीवन में गति आती है। यह मत सोचना कि उससे गति बंद हो जाती है। उससे भी गति आती है। लेकिन गति में कोई तनाव नहीं होता। तब आदमी जैसा है, **उसमें से भी बहाव निकालता है।** अभी हमें खीचना पड़ता है अपने को। इस खीचने के लिए दो तरकीबें काम में लाई जाती हैं—या तो पीछे से हमें धक्का दिया जाए, या फिर आगे से हमें रस्सिया बांध कर खीचा जाए। हमारी सब गतिया ऐसी हैं। या तो पीछे से कोई हमे धक्का दे रहा हो, या आगे खीच रहा हो।

मा-बाप बेटे को धक्का देते रहते हैं कि पढ़ो-लिखो, "पढ़ोगे, लिखोगे तो बनोगे नवाब।" नवाब की क्या हालत है, यह किसी को प्रयोजन ही नही है। वे अभी भी कहे चले जा रहे हैं कि 'पढोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब।' यह महत्वाकाक्षा का, कुछ बन पाओगे का धक्का पीछे से दिया जा रहा है। और जब आदमी खुद योग्य हो गया अपने को धक्का देने मे, तब पीछे से तो खुद को धक्का नहीं दिया जा सकता—दूसरे धक्का देते है—तब यदि खुद को धक्का देना हो तो महत्वाकांक्षा भविष्य मे रखनी पडती है। यह कि अगर आज इतनी मेहनत करता हूँ तो कल मुझे यह मिलेगा; एक तारा आकाश में है, वहा पहुंच जाऊगा कभी, अगर मेहनत की तो। तो आदमी फिर दौडता है। आगे का तारा खीचता है। दो ही उपाय हैं; या तो कोई पीछे से धक्का दे, या आगे के लिए हम खुद दौडें।

लेकिन ये दोनो ही कृत्रिम व्यवस्थाएँ हैं। **एक और गति है।** न कोई पीछे से धक्का दे रहा है, और न कोई आगे से खींच रहा है; बल्कि मेरे प्राणो की जो ऊर्जा है, वही बह रही है। **मेरे प्राणों की जो ऊर्जा है, वही बह रही है।**

हम कहते हैं कि नदी सागर की तरफ बह रही है। यह ठीक नही है कहना, नदी के साथ न्याय नही है। हमे ऐसा लगता है, क्योंकि नदी की सब अवस्थाएं देखते हैं। लेकिन नदी को सागर का क्या पता है? नदी सिर्फ बह रही है। **बहने का नाम नदी है।** बहते-बहते सागर पहुंच जाती है, यह दूसरी बात है। बहते-बहते सागर मिल जाता है, यह दूसरी बात है। लेकिन नदी सागर के लिए बह नहीं रही है।

अगर किसी नदी को हम तैयार कर सकें, प्रशिक्षित कर सकें सागर की तरफ बहने के लिए, तो सभावना कम है कि नदी सागर तक पहुंच पाए। क्योंकि जैसे ही कोई नदी इस कोशिश में पड़ जाएगी कि मुझे सागर पहुचना है, वह बहना भूल जाएगी। वह जो सागर पहुंचना है, वह बहने का भूलना हो जाएगा। सागर पहुंचना ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया, बहना कम महत्वपूर्ण हो गया। नदी अपने बहने

में आनन्दित है। **यह आनन्द उसे एक दिन सागर पहुंचा देगा।**

कली फूल नहीं बनना चाहती, बन जाती है। **कली तो जो है, उसके इस होने से फूल निकल आता है।**

जीवन में, मनुष्य के जीवन में जो श्रेष्ठतम फूल खिलते हैं, बुद्ध के, कृष्ण के या लाओत्से के, **वे बड़े सहज फूल हैं।** हम जो बिना खिले रह जाते हैं, उसका कारण यह है कि हम बड़े होशियार हैं। हम बुद्ध से ज्यादा बुद्धिमान हैं, हम लाओत्से से ज्यादा होशियार हैं, वाइज हैं। क्योंकि हम पहले से ही योजना बांधते हैं, कहाँ पहुंचना है, क्या होना है। मंजिल हम पहले तय करते हैं। अक्सर हम मंजिल तय करने में ही समाप्त हो जाते हैं। **मंजिल तो आदमी के भीतर है।**

अगर कली फूल बनना चाहे तो उसका मतलब यह हुआ कि फूल कहीं बाहर है, जो कली बनना चाहती है। लेकिन कली तो कली ही हो जाए पूरी तरह तो फूल बन जाएगी। क्योंकि कली के भीतर छिपा है फूल। इस बात को ठीक से समझ लें।

जो भी हम हो सकते हैं, **वह हमारे भीतर छिपा है।** वह कहीं कोई भविष्य की मंजिल नही है, **वह अभी और यहीं मौजूद है।** इसलिए अगर हम अभी और यही अपनी परिपूर्णता में हो जाएं तो हम उसको रस दे रहे हैं जो हमारे भीतर छिपा है। उसको हम सींच रहे हैं, उसको पानी दे रहे हैं। अगर मैं अभी और यही अपनी परिपूर्णता में हो जाऊ तो मेरे भीतर जो बीज छिपा है, वह प्राण पा रहा है मेरे इस होने से, आनन्द पा रहा है, बह रहा है। एक दिन वह खिल जाएगा।

लेकिन हमारे लिए मंजिल कोई बाहरी चीज है। हम सोचते हैं, कुछ होना है जो मैं हूं नही। वह होना है। और लाओत्से कहता है, जो तुम नही हो, वह तुम कभी नहीं हो सकोगे। और जो तुम हो, **केवल वही तुम हो सकते हो।**

लेकिन एक बात और जोड देने जैसी है कि जो तुम हो, जरूरी नही है कि हो पाओ; चूक भी सकते हो। जो तुम नही हो, कभी नही हो सकोगे, जो तुम हो, वही हो सकते हो। लेकिन तुम जो हो सकते हो, उस होने की अनिवार्यता नहीं है। **चूक भी सकते हो।** कली कली भी रह सकती है; जरूरी नही है कि फूल हो। बीज बीज भी रह सकता है, जरूरी नहीं है कि वृक्ष हो। लेकिन गुलाब की कली कोई भी उपाय करे तो कमल का फूल नहीं हो सकती। खतरा यह है कि कमल के फूल होने की चेष्टा में गुलाब की कली कही गुलाब होने से भी वंचित न रह जाए। अक्सर ऐसा होता है।

आदमी योजना से पीड़ित है। योजना क्या है ? और जो मंजिल हम चुनते हैं, वह भी किस लिए चुनते है ? वह भी हम दिखाते फिरते हैं किसी और को। हमारे आदर्श भी हमारे आभूषण हैं। और हमारे आदर्श भी हमारे श्रृंगार से ज्यादा नही हैं। दूसरों को हम दिखाते फिरते हैं कि हम क्या हैं, क्या होना चाहते हैं, क्या होने की योजना है।

और जो अपने को दिखाता फिरता है, वह वस्तुतः दीप्तिवान नहीं है। अगर दीप्ति है तो लोग देख लेंगे। और लोग न देखें तो दीप्ति के होने में अन्तर नहीं पड़ता है। अगर आपके घर में दीया जला है तो आपके मकान की खिड़कियों से रोशनी बाहर आएगी। कोई राहगीर निकलेगा तो देख लेगा। और राहगीर अंधा हो, निकले, अपने में व्यस्त हो, अंधा भी न हो, न देखे, तो दीये के होने में क्यो फर्क पड़ता है? और अगर राहगीर खड़ा होकर प्रशंसा भी कर जाएगा कि दीया जला है और रोशनी हो रही है, तो इससे दीये को कोई तेल नहीं मिल जानेवाला है। और न यह प्रशंसा दीए की ज्योति को बढ़ा देगी।

हां, हम जरूर ऐसे दीए हैं कि भभक के जल उठेंगे, अगर कोई अच्छा कह जाए। उसमें हमारा तेल, जो भी थोड़ा-बहुत होगा, चुक जाएगा। और अगर कोई न निकले तो हम अपनी उदासी में डूब कर बुझ जाएंगे। हमें पूरे समय दूसरे का उकसावा चाहिए। हम अपने से नही जीते, कोई हमें जिलाने को चाहिए; कोई हमें धक्का देता रहे, कोई हमें सहारा देता रहे, कोई हमें कहता रहे।

आप ऐसा मत सोचना कि यह किसी और के सम्बन्ध में बात हो रही है। यह आपके ही सम्बन्ध में बात हो रही है। जब कोई आपसे कह देता है कि कितने सुन्दर हैं तो भीतर कोई चीज भभक उठती है। और जब कोई आपकी तरफ से मुह फेर लेता है, और उसकी आखें कह जाती हैं कि देखने योग्य कुछ भी नहीं है तो भीतर कोई ज्योति बुझ जाती है। यह ज्योति आपकी नहीं है, इतना पक्का आप समझ लें। यह कोई और जलाता है, कोई और बुझाता है। आप लोगो के हांथ के खिलौने हैं।

इसको अगर हम धर्म की भाषा में कहें तो कहना होगा कि आपके पास अपनी कोई आत्मा नहीं है। आप उधार हैं। आप दूसरे की पूजी से चल रहे हैं।

इसलिए एक मजे की घटना घटती है, राजनेता जब तक ताकत में होते है, आमतौर से मरते नही। ऐसा नही कि मरते ही नही, मरना तो पडता ही है, लेकिन आमतौर से मरते नही। और राजनैतिक नेता आमतौर से जब तक ताकत में होते है, बड़े स्वस्थ होते हैं। लेकिन कोई धक्का लगे उनकी प्रतिष्ठा को और वे बीमार होना शुरू हो जाते हैं। और अगर उनकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जाए तो उनकी मृत्यु करीब आ जाएगी। वह जो चमक और दीप्ति दिखाई पड़ती है, वह उधार है। इसलिए जब भी कोई राजनेता अपने जीवन में जल्दी शिखर छू लेता है, तब मुश्किल में पड़ जाता है। क्योंकि उसके बाद उतरने के सिवाय कोई उपाय नही रह जाता। और हर उतार उसके जीवन को क्षीण कर जाता है। फिर जीने का कोई उपाय नही रह जाता।

मनसविद कहते हैं कि लोग अपने कामो से निवृत्त होकर, रिटायर होकर दस साल पहले मर जाते हैं; कम से कम दस साल उनकी उम्र कम हो जाती है—भला

ही वे कुछ भी रहे हों, स्कूल में हेड मास्टर ही क्यों न रहे हों। हेड मास्टर ही सही, लेकिन दो-चार सौ बच्चों के ऊपर होने की अकड़ तो होती ही है। बच्चों के लिए तो हेडमास्टर करीब-करीब परमात्मा ही होता है। और अगर बच्चों से पूछें भी कि परमात्मा कैसा है तो उनको जो तस्वीर खयाल में आएगी, वह हेडमास्टर की होगी। कोई और आ नहीं सकती। हेडमास्टर रिटायर्ड हो जाता है, अब कोई बच्चा रास्ते पर नमस्कार नहीं करता। वह अब किन्हीं मास्टरों को भी धमका नही सकता है, चपरासियो पर रोब नही गांठ सकता है। आदत थी। जीवन-ऊर्जा एकदम फीकी पड़ जाती है। लगता है, बेकार है सब, अब होने का कोई अर्थ नहीं है।

औरंगजेब ने अपने बाप को बद कर दिया था जेलखाने में। तो शाहजहा ने खबर भिजवाई कि मेरी आदतो को देखते हुए तू इतना तो कम से कम कर दे कि तीस बच्चे मुझे दे दे कि मै उन्हें पढाने का काम करू। शाहजहां ने खबर भिजवाई कि मुझे तीस बच्चे दे दे तो मैं एक छोटा मदरसा चलाऊं।

औरगजेब ने अपने सस्मरणो में लिखवाया है कि शाहजहा को सब कुछ होने का, साबरेन होने का ऐसा शौक था कि जेलखाने मे भी उसको अकेले होने में चैन न पड़ी। तीस बच्चे भिजवाने पड़े। और तब तीस बच्चो के बीच में कुर्सी पर बैठ कर वह फिर दरबार मे बैठ गया। तीस बच्चो को पढाने लगा, सिखाने लगा, डाँटने-डपटने लगा। फिर सम्राट हो गया। छोटी कक्षा मे शिक्षक भी एक सम्राट ही है। क्लासें हैं; छोटी हैं, या बडी हैं, कोई बहुत फर्क तो पडता नही। आप चालीस करोड की क्लास में बैठे हैं, कि चालीस की क्लास मे बैठे हैं, क्या फर्क पडता है? जितने हैं, उनके ऊपर आप हैं, बस काफी है। दीवार के बाहर बडा जगत है, उससे क्या लेना-देना है? उससे क्या प्रयोजन है।

शाहजहाँ बीमार था, जेलखाने में स्वस्थ हो गया। प्रसन्न हो गया, काम में उसे मजा आने लगा। ये तीस बच्चो की आखें फिर दीये में ज्योति डालने लगी। पर यह ज्योति अपनी बिलकुल नही है?

यह जो उधार जीवन है; **यह अधार्मिक जीवन है**। और इस उधार जीवन का सूत्र क्या है? जो अपने को दिखाता फिरता है, वह समझ ले ठीक से कि उसमे कोई दीप्ति नही है। और यह भी समझ ले कि उधार दीप्ति सिर्फ धोखा है। अच्छा हो कि वह अपनी दीप्ति को खोजने में लगे, बजाय इसके कि दूसरो की आखों से दीप्ति चुराए और धोखा पैदा करे। अच्छा हो कि वह अपना दीया जलाए, बजाय इसके कि दूसरो के दीयों के सामने अपने आईने को करके उसमे दीयो को देखे। हम देख सकते हैं। जरूरी नही है कि मेरे मकान की खिडकी में भी दीया जले तो प्रकाश निकले। आपके मकान मे से निकल रहा हो और मैं अपने मकान की खिड़की पर आईना लगा सकता हूं। और तब यह भी हो

सकता है कि राहगीर मेरी खिड़की से ज्यादा प्रकाश को निकलते देखे, बजाय आपकी खिड़की के।

लेकिन आईना सिर्फ धोखा है। हम सब सिर्फ आईने के मकान में रहते हैं। हम अपने चारो तरफ व्यक्तित्व में आईने लगा लेते हैं। उनमें दूसरो की छायाएं हम इकट्ठे करते रहते हैं।

इसलिए कोई भी आदमी अपने से श्रेष्ठतर लोगो के पास रहना पसन्द नहीं करता है। सभी लोग अपने से निकृष्ट लोगों के पास रहना पसन्द करते हैं। अपने से नीचे आदमी को खोजना हमेशा अच्छा लगता है। क्योंकि वह जब पास होता है, तब हमारे आईने में अकड़ आ जाती है। श्रेष्ठतम व्यक्ति के पास में हम खड़े हो तो हम उसमे छोटे पड़ जाते हैं।

जिस व्यक्ति ने यह तय कर लिया कि अब मैं अपने से श्रेष्ठतर व्यक्ति के पास रहूंगा, उसको धर्म की भाषा में शिष्य कहते हैं—डिसाइपल। लेकिन हम गुरुओ से डरते हैं। **गुरुओं के पास होना भी खतरनाक है**। इसलिए अगर कोई गुरु हमे समझाए कि गुरु की कोई जरूरत नही हैं, हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न होता है कि बिलकुल ठीक। अपने से श्रेष्ठतर के पास होने में हम छोटे मालूम पड़ते हैं। हमारा दीया बुझने लगता है। अपने से निकृष्ट के पास हम श्रेष्ठ मालूम पड़ते हैं।

कोई पति अपने से लम्बी पत्नी से शादी करना पसन्द नहीं करेगा। कोई पसन्द नही करेगा। यह हो सकता है, इसी कारण से स्त्रियो की लम्बाई लाखों वर्षो में कम हो गई। क्योंकि कोई पुरुष लम्बी स्त्री से शादी करना पसन्द नही करेगा। यह अयोग्यता हो जाएगी। पुरुष अपने से ज्यादा बुद्धिमान स्त्री से भी शादी करना पसन्द नहीं करता है, अपने से ज्यादा पढी-लिखी स्त्री से भी शादी करना पसन्द नही करता। क्यो ? वह जो पुरुष का अहकार है, दिन भर बाजार से कुटापिटा घर लौटता है, वहा भी पिटाई उसकी हो जाए तो असह्य हो जाएगा जीवन। इतनी सुविधा बनाने की उसे हम आज्ञा दे देते है, इसीलिए। दिन भर न मालूम कहा-कहा फिरना है, कितने कंपेटीशन है, कितनी स्पर्धा है, जगह-जगह अपने से पहाड़ मिल जाते है; वहा से लौटता है, घर आकर पत्नी को देखता है तो बड़ी तृप्ति होती है।

यह जो आदमी का मन है, यह सदा अपने से छोटे लोगों को अपने पास खोजने में लगा रहता है। उधार जिसकी ज्योति है, उनके लिए यही सूत्र है।

जिन्हे अपनी ज्योति खोजनी है, उन्हे निरतर शिखर की तलाश करनी चाहिए। जिन्हे अपनी ज्योति खोजनी है, उन्हें अपने सब दर्पण तोड़ देने चाहिए। उन्हे नग्न, वे जैसे हैं वैसे ही, अपने को स्वीकार कर लेना चाहिए। सारे वस्त्र हटाकर अपनी नग्नता को जानना उसकी तथ्यता में, फैक्टिसिटी में, जीवन-कान्ति की तरफ पहला कदम है।

जो स्वयं अपना औचित्य बताता है, वह विख्यात नहीं है । जो स्वयं कोशिश करता है समझाने की कि मैं विख्यात हूं, जो स्वयं कोशिश करता है समझाने की कि मैं सही हूं, उसे खुद भी शक है । असल में हमारे अपने ही शक हमें परेशान करते हैं । दूसरों के शकों से क्या प्रयोजन है ? एक आदमी आकर आपको कह जाता है कि आप चरित्रहीन हैं; अगर आपको खुद भी शक है तो उस आदमी की बात घाव कर जाएगी। अगर आपको खुद शक नहीं है तो आप उस आदमी पर हँस सकते हैं।

बंगला के प्रसिद्ध कथाकार हुए शरतचन्द्र । एक सद्गृहिणी शरतचन्द्र के उपन्यासों से बहुत प्रभावित हुई । वह एक बहुत कुलीन परिवार की महिला थी । वह एक दिन शरतचन्द्र को निमन्त्रण दे आई भोजन के लिए। लेकिन शरतचन्द्र ने एक किताब लिखी थी चरित्रहीन । और ऐसे भी शरतचन्द्र का ऐसा चरित्र नहीं था कि साधारण बुद्धि के लोग उन्हें चरित्रवान कह सकें। उन्हें चरित्रवान कहने के लिए बड़ी असाधारण समझ चाहिए । जिनको हम सब चरित्रवान कह पाते हैं—उसका मतलब तो यही है कि वे हमारी समझ से भी चरित्रवान हैं—वे कोई बहुत गहरे चरित्रवान नहीं हो सकते। जो हमारे मापदण्ड में भी चरित्रवान उतर जाते हैं, वे कोई चरित्रवान नहीं हैं । तो शरतचन्द्र को तो लोग चरित्रहीन ही समझते थे ।

जैसे ही घर में पता चला कि गृहिणी निमंत्रण कर आई है तो नौकरानी ने उसकी सास को कहा कि एक चरित्रहीन चटर्जी को निमन्त्रण कर आई है; ऐसे आदमी को घर में घुसने भी नहीं देना चाहिए। तो सास ने तो कहा कि इसी वक्त जाकर इंकार कर आओ; कहना कि मेरी सास की तबीयत खराब हो गई है। उसने बहुत समझाया कि यह पागलपन होगा; फिर एक दफा भोजन ही की बात है, आधा घंटा चरित्रहीन ही सही, भोजन करने चले जाएंगे, निमन्त्रण दिया है, अब जाकर मना करू, यह बहुत अशोभन है । फिर उसके मन में बहुत आदर भी था । लेकिन किसी तरह सास राजी न हुई तो उसे जाना पड़ा। लेकिन आदर इतना था शरत बाबू के प्रति कि उसने झूठ बोलना ठीक नहीं समझा। उसने सारी घटना वैसे ही बता दी कि नौकरानी ने खबर दे दी कि आप चरित्रहीन हैं और मेरी सास छाती पीट रही है, रो रही है । और अब असम्भव है आपको ले जाना ।

शरतचन्द्र खूब हँसे । और उन्होंने कहा कि बिलकुल बेफिक्र रह। और तो और है। पत्नी को भीतर से बुलाया और कहा, इससे मैंने विधिवत विवाह किया है, फिर भी लोग कहते हैं कि मेरी रखैल है । इससे मैंने विधिवत विवाह किया है, फिर भी लोग कहते हैं कि मेरी रखैल है। तो उस महिला ने कहा, आप इसका प्रतिवाद क्यों नहीं करते ? तो शरतचन्द्र ने कहा, अगर मुझे शक होता तो प्रतिवाद करता। और मैंने विधिवत विवाह किया है, अब इसमें और क्या प्रतिवाद करना है ? और जिनको मेरी विधि और मेरा विवाह आश्वस्त नहीं कर पाया, मेरा औचित्य उन्हें

आश्वस्त कर पाएगा, इस वंचना में पड़ने का कारण क्या है ?

शरतचन्द्र ने कहा कि तुम जो मानना चाहते हैं, वह हम मान ही लेते हैं। किसी का औचित्य बहुत फर्क नहीं कर पाता।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब भी अपने घर लौटता था, तब पत्नी उसके कपड़ों पर बाल खोजती थी। अक्सर मिल जाते थे। मुल्ला शौकीन आदमी था। तो कलह निरंतर होता था। आखिर मुल्ला ने सोचा कि इतनी सी ही बात से चरित्र का सब तय होता है तो एक काम करूं। एक दिन घर आने के पहले एक लांड्री में जाकर उसने सारे कपड़ों पर ब्रश करवा के सब तरह से सफाई करवा दी, और फिर घर लौटा। उसने सोचा, आज तो पक्का है कि कोई कलह का कारण नही है। उसकी पत्नी ने उसके सारे कपड़े देखे और छाती पीट कर रोना शुरू कर दिया और कहा कि अब तुमने गंजे सिर की स्त्रियों से भी प्रेम करना शुरू कर दिया! किसी बात की हद होती है, उसकी पत्नी ने कहा।

आदमी जो मानना चाहता है, मानता ही रहता है। कोई तर्क बहुत फर्क नहीं लाता है। हां, उचित सिद्ध करने की चेष्टा में व्यक्ति अपने संदेहों को प्रकट कर देता है।

तो लाओत्से कहता है : जो स्वयं अपना औचित्य बताता है, वह विख्यात नहीं है। जो अपनी डींग हाकता है, वह श्रेय से वंचित रह जाता है। और जो घमंड करता है, वह लोगों में कभी अग्रणी नहीं हो पाता। ताओ की दृष्टि में उन्हे सद्-गुण के तलछट और फोड़े कहते हैं। तीन चीजो को, जो चीजें लाओत्से ने ऊपर गिनाई हैं, वह ऐसा कहता है। तनाव से भरा हुआ व्यक्ति, जो अपने को दिखाता फिरे ऐसा व्यक्ति, जो अपना औचित्य सिद्ध करे ऐसा व्यक्ति, जो डींग हांके, जो घमंड करे ऐसा व्यक्ति, इन्हे लाओत्से कहता कि ये सद्गुण के तलछट और फोड़े हैं। ऐसे व्यक्ति सद्गुणी नही हैं।

लेकिन हम जिनको भी सद्गुणी मानते हैं, वे इसी तरह के व्यक्ति हैं। आपको अपने त्याग का भी प्रचार करना पड़ता है, तब लोग आपको त्यागी जानते हैं। जरूरी नही है कि आपने त्याग किया ही हो, ठीक प्रचार जरूरी है। अगर आप अपने सद्गुणो की खुद ही चर्चा नही करते तो कोई भी आपके सद्गुणों की चर्चा करनेवाला नही है। लोगों को अपने सद्गुणो की चर्चा से फुर्सत मिले तो आपके सद्गुणों की चर्चा करें। और जहां सब अपने में उत्सुक हैं, किसको फिक्र है कि आपमें सद्गुण है ? तो हर आदमी को अपना ही प्रचार करना पड़ता है। प्रचार ठीक से आप करें, यही जरूरी मालूम पड़ता है—जैसे समाज में हम जीते हैं, जहां हम जीते हैं। अगर लोग नही मान पाते हैं तो उसका मतलब ही यह है कि प्रचार में कोई त्रुटि रह गई। अगर फिर भी लोग अन्यथा पता लगा लेते हैं तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि आपकी प्रचार की जो संरचना है, वह भूल-भरी है। ठीक प्रचार करने पर लोग मानेंगे ही।

लोग मानते ही उसी बात को हैं, जिसको उनके मस्तिष्क पर ठोका जाता है और प्रचार किया जाता है। हमारे सद्गुणी, हमारे महात्मा, हमारे साधु, हमारे चरित्रवान, हमारे नीतिनिष्ठ व्यक्ति, हम अपने प्रचार को हटा लें, फिर कहां खड़े रह जाएंगे ?

बहुत अजीब हैं हम, प्रचार से जीते हैं।

मैंने सुना है कि गुजरात के एक बड़े समाज-सेवी, ठक्कर बापा एक ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। गांधीजी के अनुयायी थे, इसलिए थर्ड क्लास में चलते थे। बड़ी भीड-भाड थी, बडी मुश्किल से अन्दर हो पाए। बम्बई की तरफ आते थे। एक मोटा आदमी पूरी सीट पर कब्जा किए लेटा हुआ है। बीसो लोग खड़े हैं, स्त्रियाँ, बच्चे खडे हैं। बड़ी भीड़, बड़ी गर्मी ! और वह आदमी पूरी सीट रोके अपना अखबार पढ़ रहा है। ठक्कर बापा ने उससे कहा कि मैं बूढा आदमी हू. मुझे थोडी सी जगह दे दें। उसने कहा कि चुप रह बूढे, फिजूल गड़बड मत कर। और बगलवाले आदमी से वह कहता है कि कल बम्बई में ठक्कर बापा का व्याख्यान है। सुनना है मुझे भी, और ठक्कर बापा उसके पास खडे है ! आदमी को मानिए कि अखबार को मानिए ? खबर बड़ी चीज है।

एक बहुत क्रान्तिकारी विचारक व्यक्ति थे महात्मा भगवान दीन। वे मेरे एक मित्र के घर नागपुर में मेहमान थे। उस मित्र ने मुझे घटना बताई। आये थे कुछ चन्दा करने। कोई एक आश्रम, वृद्ध और विधवाओ का आश्रम चलाते थे। उसके लिए आए थे। तो मित्र से कहा कि मैं चन्दा करने आया हूँ। और चदा करने निकल गए। दिन भर मेहनत करके कोई पाच-सात रुपये लेकर लौटे। तो मित्र ने कहा, यह भी हद हो गई, पाच-सात ही रुपया ! तो आपको मालूम नही है कि चन्दा कैसे किया जाता है। कल हम निकलेंगे।

उसके पहले उसने अखबारो में ठीक से खबर निकाली कि महात्मा भगवान दीन कौन हैं, क्या हैं। फिर दस-पाच लोगो की भीड-भाड लेकर वे लोगो के घर पहुंचे। और फिर एक झूठी फेहरिश्त लेकर पहुँचे, जिसमें दो-चार बडे आदमियो के नाम थे और जिनके नामो के सामने हजार रुपये, पाच सौ रुपये लिखे थे। वे सब झूठ थे। और जिसकी दुकान पर वे गये, उसने चार नाम देखे, महात्मा भगवान दीन से उसका परिचय हुआ, वह उठकर खड़ा हुआ, पैर भी छुए। कई दूकानें तो वे थी, जिनपर वे कल जाकर चार आने लेकर लौट आये थे। उन्होने एक सौ एक रुपये दिये। किसी ने दो सौ एक रुपये भी दिये।

कल जो आदमी आया था, वह महात्मा भगवान दीन नही था। आज जो आदमी आता है, वह बड़ा महात्मा है। और हम आदमी को थोडे ही देते है, हम प्रचार को देते है। हम सब को लगता ऐसा है कि हम आदमियो से ही सम्बन्धित हैं। सच में हम प्रचार से सम्बधित है।

मैं एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। पहला ही वर्ष था मेरा और बुद्ध जयंती आई। तो उस विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर ने व्याख्यान दिया और उन्होंने कहा कि मेरे मन में एक पीड़ा हमेशा बनी रहती है। जब बुद्ध का नाम आता है तो मुझे ऐसा लगता है कि काश, हम उनके जमाने में होते तो उनके चरणों में बैठकर कुछ सीखते! मैं उठकर खड़ा हो गया और मैंने उनसे कहा कि आप इस पर फिर से सोचें। जहां तक मैं समझता हूं, आप बुद्ध के जमाने में होते तो आप आखिरी आदमी होते उनके चरणों में जानेवाले। उन्होंने पूछा, क्या मतलब? मैंने कहा, आपको कम से कम ढाई हजार साल का प्रचार चाहिए पहले; ढाई हजार साल का प्रचार है, तब आपको ऐसा खयाल उठ रहा है।

मैंने उनसे पूछा कि इस जमाने में किस जाग्रत व्यक्ति के चरणो में जाकर आप बैठे हैं? या तो आप कहिए कि कोई जाग्रत व्यक्ति है ही नही। छोडिए जाग्रत व्यक्ति को। आपसे भी कोई श्रेष्ठ व्यक्ति इस जमीन पर इस समय है? वे थोड़े बेचैन हुए। मैंने कहा, आप ढाई हजार साल बाद फिर पैदा होकर इसी तरह सिर पीटेंगे कि काश, उस वक्त हम होते तो चरणो में जाकर बैठते। चरणो मे बैठने की आपकी वृत्ति नही है। लेकिन ढाई हजार साल का लम्बा प्रचार है। बुद्ध से आपकी कोई पहचान नही हो सकती है। प्रचार से आपका सम्बन्ध है।

जिन्होंने जीसस को सूली लगाई, उन्हे जरा भी नही लगा कि कोई खास आदमी को सूली लगा रहे हैं। और अब वे पैदा हो जाए तो वे सोचें कि काश, जीसस के वक्त मे होते तो चरणों में बैठकर अमृत मिल जाता। और यही उनको सूली लगानेवाले थे! एक लाख आदमी इकठ्ठे थे जीसस को सूली लगाते वक्त, एक को नही लगा कि किसी आदमी को हम मार रहे हैं जिसके चरणो में बैठने को कभी लोग तड़पेंगे। लेकिन हमें चरणो से मतलब नही है। **चरणों का प्रचार चाहिए हमें।**

श्रीलंका में केंडी के मंदिर में एक दात रखा हुआ है। उसको लोग हजारों साल से सिर झुकाते है। खयाल है कि वह बुद्ध का दात है। और यह सिर्फ प्रचार है। क्योंकि उसकी खोजबीन हुई तो पता चला कि वह आदमी का भी दात नही है। बुद्ध का तो हो ही नही सकता। वह दात किसी जानवर का है। लेकिन वे जो लाखों लोग सिर झुका रहे हैं, उनको दात से थोड़े ही मतलब है, प्रचार से मतलब है। हम जीते है प्रचार से।

और लाओत्से कहता है, यह जो वृत्ति है सतह पर नीति, आचरण, साधुता, सबको तौल लेने की, इसका धर्म से कोई सम्बन्ध नही है। यह तो सद्‌गुणों का तलछट है। सद्‌गुण तो दूर है बहुत, यह तो कूड़ा-कचरा है, जो बचा हुआ है। इसका कोई सम्बन्ध नहीं है सद्‌गुणो से। और न केवल कचरा है, बल्कि ये फोड़े हैं।

और जिनको आप पूजते हैं जिस सद्‌गुण के कारण, उस सद्‌गुण के कारण उन

आदमी को कोई आनंद नहीं मिल रहा है। और आप पूजन कर रहे हैं। फोड़े होने का यह मतलब है, उनको दुःख रहा है। मैं ऐसे बहुत साधुओं को जानता हूं, जिनके हजारो भक्त हैं। और उन साधुओं से मैं मिला हूं अकेले में। वे मुझसे कहते हैं कि अभी हमें ध्यान ही नही हुआ, कोई रास्ता बताएं। और हजारों हैं जो सोच रहे हैं उनके चरणो में बैठकर, उनको ध्यान हो जानेवाला है।

यहां बम्बई में कोई दस वर्ष पहले एक बडे साधु के साथ मैं बोल रहा था। उन्होंने आत्मज्ञान पर बडी अद्‌भुत बातें कहीं। जानते थे सभी कुछ, जिसको जानने में कोई अड़चन नही है। पीछे मै बोला। और जब वे जाने लगे तो मैंने उनसे बहुत धीरे से कहा कि आपने जो भी कहा है, उसका आपको पता नही है। पता होता तो कोई झगड़ा ही नही था। लेकिन उनको भी पता तो था ही कि पता नही है। चोट लग गई, नाराज दिखाई पडे और कहा कि आपने ऐसा कैसे कह दिया? मैंने कहा, अब आप सोचना। मैंने कह दिया, अब आप सोचना।

रात भर सो नही सके। उनको बेचैनी रही। पर आदमी ईमानदार थे। दूसरे दिन सुबह उन्होंने मुझे बुलवाया। यह देखकर कि मै जा रहा हूं, दस-बीस उनके भक्त इकठ्ठे हो गए। लेकिन उन्होंने कहा कि मै तो अकेले में मिलना चाहता हू। वो दरवाजे बंद कर लिए। और तब वे मुझसे बोले, साठ साल का मै हो गया, मुझसे कभी किसी ने यह कहा ही नहीं कि आपको पता नही है। सब मानते है कि मुझे पता है। और धीरे-धीरे मैं भी भूल गया था कि मुझे पता नही है। कल अचानक चौंका दिया आपने। इसलिए पहले तो क्रोध आया, फिर रात मैंने सोचा कि क्रोध का क्या प्रयोजन है? पता तो मुझे नहीं है।

फिर मैंने कहा कि अगर ठीक सच मे ही समझ मे आ गया तो दरवाजा खोल दें और वे जो बीस-पच्चीस आदमी बाहर बैठे हैं, उनको भी भीतर बुला लें। उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप, सब प्रतिष्ठा पानी मे मिल जाएगी! वे मानते हैं कि मुझे पता है, इसलिए तो सारी प्रतिष्ठा है। पर मुझे कोई रास्ता बता दें। लेकिन यह भी वे चोरी मे पूछते हैं! मैंने कहा कि रास्ते की शुरुआत हो जायेगी उन लोगो को बुला ले, उनके सामने ही पूछें। पर इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि उनके सामने बुलाकर पूछे।

जो साधु समझाते है लोगो को ब्रह्मचर्य पर, एकान्त में मुझे मिलते हैं और पूछते है, ब्रह्मचर्य कैसे सधे, सधता तो नही है। और जितना कम सधता है, उतना व्याख्यान में ज्यादा जोर लगाते है कि ब्रह्मचर्य साधो। वे आपको कम समझा रहे हैं, खुद को ज्यादा समझा रहे हैं! चौबीस घंटे ब्रह्मचर्य की बात करते रहेंगे। लेकिन भीतर फोड़ा है वह उनका। आप समझ रहे हैं कि वे उपदेश कर रहे हैं; वह उनका फोड़ा है। यह मवाद वह रही है फोड़े से। वह उनका दुख है भीतर।

आदमी अपने को धोखा देने में अति कुशल है। वह यह भी मानने को राजी

नहीं होता है कि मैं बीमार हूं। इसमें भी तकलीफ होती है मानने में कि मैं बीमार हूं। वह कहता है कि हूं तो मैं स्वस्थ, लेकिन दवा दे दें—अगर कोई दवा हो। लेकिन स्वस्थ की कोई दवा होती है क्या? बीमारी स्वीकार करना आवश्यक है।

आपने कभी खयाल किया? इस को सूत्र समझ ले कि जो सद्‌गुण आपको आनन्द न देता हो तो वह सद्‌गुण आप के लिए फोड़ा है। लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि हम ईमानदार हैं, लेकिन कष्ट भोग रहे है। ईमानदार है तो कष्ट कैसा? वे कहते हैं, बेईमान बड़ा मजा कर रहे हैं। ईमानदार कष्ट भोग रहे हैं, बेईमान मजा भोग रहे हैं। मत भोगें ऐसा कष्ट, बेईमान हो जाएँ। यह ईमानदारी झूठी है, यह तलछट है; यह सद्‌गुण नहीं है। यह फोड़ा है। इससे कुछ मिलता नहीं है। मजा यह है कि यह फोड़ा ऐसा है कि इससे बेईमान भी ज्यादा लाभ में है, यह मालूम पडता है।

आश्चर्य की बात है! एक आदमी कहता है कि हम सत्य बोलते हैं और दुख पाते हैं, और झूठ बोलनेवाले आगे बढे जाते हैं। अगर सत्य बोलना काफी नहीं है आनन्द के लिए तो यह सत्य फोड़ा है। तब इसका मतलब केवल इतना ही है कि आपमें झूठ बोलने की भी हिम्मत नही है, इसलिए झूठ भी नहीं बोलते। लेकिन झूठ बोलने से जो मिलता है, उसका लोभ आपको सता रहा है। वह आप चाहते है। बडे बेईमान है, बेईमान से भी ज्यादा बेईमान है।

बेईमान बेईमानी करता है और बेईमानी से जो मिलता है वह पाता है। आप बेईमानी भी नही कर सकते, उतनी भी हिम्मत नही है। ईमानदार होने का ढोंग भी जारी रखते हैं और बेईमानी से जो मिलना है, वह भी पाना चाहते हैं। आपकी चालाकी ज्यादा है, आप ज्यादा कनिंग हैं। बेईमान का हिसाब साफ है। बेईमान मुझे कभी कहता नहीं मिलता कि हम इतनी बेईमानी कर रहे हैं, फिर भी सुख नही पा रहे और फला ईमानदार आदमी सुख पा रहा है। बेईमान कहता ही नहीं है। बेईमान कभी नही कहता कि हम इतनी बेईमानी करके भी सुख नही पा रहे हैं और फला ईमानदार आदमी सुख पा रहा है, बिना बेईमानी किए।

असल में ईमानदार आदमी सुखी दिखाई नही पडता। बेईमान को लगता है कि वह हम से भी ज्यादा दुख पा रहा है। कोई ईमानदार आदमी सुखी दिखाई नही पडता। और जिस आदमी की ईमानदारी सुख नही है, उसकी ईमानदारी फोडा है।

जो आदमी सच में सद्‌गुण में जीता है, उसके लिए इस जगत में कोई तुलना नहीं है किसी से। फिर उसके सामने कोई स्वर्ग को लाकर रख दे और कह दे कि तुम सच बोलना छोड दो और स्वर्ग ले लो तो वह कहेगा, अपना स्वर्ग ले जाओ अपने साथ, क्योंकि मेरे लिए सत्य बोलना ही स्वर्ग है। और अगर सत्य बोलना स्वर्ग नहीं है तो कोई स्वर्ग स्वर्ग सिद्ध नही हो सकता। लेकिन स्वर्ग तो बात

बहुत दूर की बात है, हमें कोई नये ढंग का नरक भी बता दे तो हम झूठ बोलने को तैयार हैं। कम से कम नये ढंग का नरक तो है; पुराने से छुटकारा हुआ, थोडी राहत मिली।

लाओत्से इसको फोडा कहता है—सद्गुण को फोड़ा, जैसे सद्गुण हम जानते हैं। लेकिन फोड़ा कहने का प्रयोजन क्या है? फोडे का मतलब होता है कि आपके व्यक्तित्व की, आपके प्राणो की जो व्यवस्था है, उसमें कोई फॉरेन एलीमेन्ट है, कोई विजातीय तत्व है। स्वास्थ्य का अर्थ है कोई विजातीय तत्व खटकता नहीं है, आप एक गहरे संगीत की व्यवस्था में है, एक लयबद्धता में, जहाँ कोई चीज खटकती नही है।

लेकिन ऐसा तभी हो सकता है, जब व्यक्ति के सद्गुण दूसरों को दिखाने के निमित्त नही हैं, अपने आनन्द से निष्पन्न हुए हैं। और ऐसे सद्गुण तभी फलित हो सकते हैं, जब उन्हे पूरा करने के लिए हमने अपने ऊपर जबरदस्ती दबाव न डाला हो, बल्कि अपनी सहजता के प्रवाह में उन्हें उपलब्ध किया हो।

अगर कोई आदमी सहज बहे और एक दफा जिन्दगी में बेईमानी भी आ जाए, तो हर्जा नही है, क्योकि सहज बहनेवाला बेईमानी मे ज्यादा देर नही रह सकता। क्योंकि बेईमानी इतनी असहज है। कभी आपने झूठ बोला है? एकाध दफा बोला हो तो ही खयाल में आयेगा; रोज बोला हो तो बिलकुल खयाल मे नही आयेगा। अगर आपने एकाध दफा झूठ बोला हो तो आपको पता चलेगा कि आपको इस झूठ के लिए अब जिन्दगी भर झूठ बोलना पडेगा। वह इतना असहज है! और अब आप किससे क्या कहते हैं, वह खयाल रखना पडेगा। क्योकि वह एक झूठ है, जो आप ने बोल दिया है। अब उसके हिसाब से आपको बोलना पडेगा। आपकी सारी जिन्दगी झूठ हो जाएगी। झूठ इतना असहज है, झूठ को याद रखना पड़ता है।

इसलिए ध्यान रखें, जिनकी स्मृति कमजोर है, उनको झूठ नही बोलना चाहिए। झूठ बोलने के लिए बडी गहरी स्मृति चाहिए। इसलिए अक्सर स्मृति जिनकी कमजोर है, वे ईमानदार रहते हैं। उसका कारण यह है, झूठ बोलने में बड़ा झंझट है, उसमें बडा हिसाब रखना पडता है। वह शतरंज का खेल है, उसमें कई चालें आगे की भी याद रखनी पडती हैं।

सच बोल कर भूला जा सकता है; सच को याद रखने की कोई जरूरत नही है। इसलिए सच का कोई बोझ नही पड़ता। इसलिए जितना सच्चा आदमी होता है, उसके मन पर उतना कम बोझ होता है। जितना झूठा आदमी होता है, उसके मन पर उतना बोझ पडता चला जाता है। पहाड़ खड़े हो जाते हैं। हजारों झूठों का बोझ उसको पूरा तना हुआ रखता है। फोड़ा बन जाता है।

अगर कोई सच को सहजता से बोल रहा है तो उसके जीवन में फोड़े नही होंगे।

अगर ईमानदारी को कोई सहजता से जी रहा है तो उसके जीवन में फोड़े नहीं होंगे।

एक अमरीकी मनसविद् ने, फ्रेडरिक पर्ल्स ने अपनी मृत्यु के पहले—अभी उसकी मृत्यु हुई है—एक छोटा सा कम्यून बनाया था। उस कम्यून में जितने परिवार थे, दस-पांच मित्रों के परिवार थे, उनके लिए उस कम्यून का एक मोटो—आदर्श-वचन—बनाया था पर्ल्स ने। वह आदमी मर गया। पता नहीं, वह कम्यून चल सकेगा, कि नहीं चल सकेगा। लेकिन वह मोटो मुझे बहुत पसन्द पड़ा। इतना ही सहज हो तो जीवन में प्रेम का फूल खिल सकता है। मोटो यह था, पर्ल्स ने अपने कम्यून के दरवाजे पर लिखा था. "आइ एम आइ; यू आर यू। इफ आइ कैन लव यू इट इज ब्युटीफुल; इफ यू कैन लव मी, इट इज ब्युटीफुल; इफ आइ कैननाट लव यू, आइ एम हेल्पलेस; इफ यू कैननाट लव मी, यू आर हेल्पलेस। मैं मैं हूं, तुम तुम हो; यदि मैं तुम्हें प्रेम कर पाऊं, सुखद है; यदि तुम मुझे प्रेम कर पाओ सुखद है; यदि मैं तुम्हें प्रेम न कर पाऊं तो असहाय हूं; यदि तुम मुझे प्रेम न कर पाओ तो तुम असहाय हो। और कुछ भी नहीं किया जा सकता।

यह परिवारों के लिए सूत्र था। लेकिन इतनी सरलता से अगर आप किसी को प्रेम करें तो आपका प्रेम घाव नहीं बनेगा। कर पाएं तो सुन्दर है; न कर पाएं तो आदमी असहाय है। खिल जाए प्रेम, सुखद है; न खिल पाए तो चेष्टा से खिलाने का कोई उपाय नहीं है। यह मतलब है असहाय होने का—आइ एम हेल्पलेस। अगर मैं आपको प्रेम कर पाऊं तो ठीक है। अगर न कर पाऊं तो चेष्टा से करने का कोई उपाय नहीं है। और अगर चेष्टा से करूंगा, तो सब जहर हो जाएगा। फिर मैं खड़ा हो गया अपने पंजों के बल। और जिस जीवन में प्रेम भी सहज नहीं है, उस जीवन में कुछ भी सहज नहीं हो सकता, ध्यान रखना। **जिसके जीवन में प्रेम सहज नहीं है, पैसा कैसे सहज होगा?** पैसा तो अनिवार्य रूप से असहज चीज है। प्रेम अनिवार्य रूप से सहज चीज है। जिनका प्रेम तक तनाव है, उनका सब कुछ तनावग्रस्त हो जाता है।

लाओत्से कहता है, वे हैं सद्गुण के तलछट और फोड़े। वे जुगुप्सा पैदा करने-वाली चीजें हैं, घृणा पैदा करनेवाली चीजें हैं। बड़ी हैरानी की बात लाओत्से कहता है। वह कहता है कि जब सद्गुण फोड़ा होता है, तब उससे ज्यादा जुगुप्सा, उससे ज्यादा घृणा-उत्पादक कोई चीज नहीं होती। यह होगा भी। क्योंकि चीजें विपरीत से जुड़ी होती हैं। **प्रेम से ज्यादा सुन्दर इस जगत में कोई भी चीज नहीं है;** लेकिन प्रेम जहां अभिनय है, प्रेम जहां असत्य है, वहां प्रेम से ज्यादा कुरूप चीज भी खोजनी असंभव है। 'वे जुगुप्सा पैदा करती हैं।'

जहा सद्गुण फोड़े की तरह मवाद से भरे होते हैं, और जहां साधु सिर्फ छिपे हुए असाधु होते हैं, और जहां वस्त्रों के सिवाय सफाई भीतर कही भी नही होती, और जहा आत्मा भी अपने लिए उधार होती है, दूसरों से मांग कर भिक्षापात्र में

जहां आत्मा इकट्ठा करनी पड़ती है, वहां उससे ज्यादा जुगुप्सा पैदा करनेवाली और कोई चीज नहीं होती। इसका मतलब यह हुआ कि एक बार एक अपराधी भी सुन्दर हो सकता है, लेकिन झूठा साधु सुन्दर नहीं हो सकता। एक बार क्रोध में भी त्वरा और चमक हो सकती है, लेकिन झूठे, चेष्ठित प्रेम में उतनी चमक भी नहीं होती। एक बार क्रोध भी ताजा हो सकता है, लेकिन चेष्टा से दिखाया गया प्रेम सदा बासा होता है। और जब प्रेम बासा होता है, तब वह जितनी दुर्गन्ध देता है उतना ताजा क्रोध भी नही देता। ताजगी क्रोध की भी भली है, और बासापन प्रेम का भी बुरा है। जब प्रेम ताजा होता है, तब की बात ही करनी उचित नहीं है।

जब प्रेम ताजा होता है, तब की बात ही करनी उचित नहीं है। और जब क्रोध भी बासा होता है, तब आदमी बिलकुल मुर्दा है। वह कब्र है, आदमी नहीं। जीसस ने कहा है कि तुम सफेदी से पोते गए ताबूत हो, कब्रें हो सफेदी से पोती गईं। और तुम्हारी सफेदी ऊपर है, भीतर सब सड़ रहा है। हमारे सद्गुण ऊपर से पोती गई सफेदी हैं अगर, तो लाओत्से कहता है, इससे ज्यादा जुगुप्सा पैदा करनेवाली और कोई चीज नही है।

इसलिए ताओ का प्रेमी उनसे दूर ही रहता है। ताओ का प्रेमी ऐसे सद्गुणो से दूर रहता है। क्योंकि ताओ का प्रेमी उस सद्गुण के लिए आतुर होता है, जो सहज विकसित होता है और खिलता है; जो एक बहाव है, जो लाया नहीं जाता; जिसको खींच कर लाने का कोई मार्ग नही है, जिसके लिए सब हृदय के द्वार खोल देने पड़ते हैं, और जो आता है। आप उसे आने दे सकते हैं, ला नही सकते।

यह करीब-करीब ऐसा है, जैसे सूरज बाहर निकला हो और मैं अपना द्वार खोल दू और उसकी किरणें भीतर आ जाएं। मै आने दे सकता हूं। मै अपना द्वार बन्द कर दू, सूरज बाहर रह जाएगा और उसकी किरणें द्वार से टकराएंगी और वापस लौट जाएंगी।

मै सूरज को आने से रोक भी सकता हू। लेकिन मै सूरज को ला नही सकता। रोक सकता हूं, आने दे सकता हू, लेकिन ला नहीं सकता। कोई सूरज की किरणो को पोटली में बांध कर लाने का उपाय नही है। और अगर अपने बाधा भी तो पोटली भीतर आ जाएगी और किरणें बाहर निकल जाएंगी। तब उस खाली पोटली को आप अगर रखे बैठे रहें तो इससे ज्यादा जुगुप्सा पैदा करने वाली कोई स्थिति नही है।

आज इतना ही। रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें, और फिर जाए।

■■

वर्तुलाकार अस्तित्व में यात्रा प्रतियात्रा भी है

बावनवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक १७ अगस्त १९७२

अध्याय २५ : खण्ड १

चार शाश्वत आदर्श

स्वर्ग और पृथ्वी के अस्तित्व में आने के पूर्व
सब कुछ कोहरे से भरा था :
मौन, पृथक,
एकाकी खड़ा और अपरिवर्तित,
नित्य व निरन्तर घूमता हुआ,
सभी चीजों की जननी बनने योग्य !
मैं उसका नाम नहीं जानता हूं,
और उसे ताओ कहकर पुकारता हूं ।
यदि मुझे नाम देना ही पड़े तो मैं उसे " महान " कहूंगा ।
महान होने का अर्थ है अन्तरिक्ष में फैलाव की क्षमता,
और अन्तरिक्ष में फैलाव की क्षमता है दूरगामी,
यही दूरगामिता मूल बिन्दु की ओर प्रतिगामिता भी है ।

Chapter 25 : Part 1

THE FOUR ETERNAL MODELS

Before the Heaven and Earth existed
There was something nebulous :
Silent, isolated,
Standing alone, changing not,
Eternally revolving without fail,
Worthy to be the Mother of All things.
I do not know its name
And address it as Tao
If forced to give it a name, I shall call it 'Great'.
Being great implies reaching out in space,
Reaching out in space implies far-reaching,
Far-reaching implies reversion to the original point.

लाओत्से, जीवन का जो परम रहस्य है, उसे नाम देने के पक्ष में नही है। नाम देते ही हम उससे वंचित होना शुरू हो जाते है। नाम देना उससे बचने का उपाय है, उसे जानने का नही। लेकिन हम सब यही सोचते है कि नाम दे दिया उसे तो जान लिया। इसके कारणो को समझना जरूरी है।

हम अपने पूरे जीवन को नाम देने को ही ज्ञान मानते हैं। एक बच्चा पूछता है सामने खड़े पशु को देखकर, क्या है ? और हम कहते हैं गाय है। या हम कहते है कुत्ता है, या हम कहते हैं घोडा है। और बच्चा नाम सीख लेता है। इस सीखने को ही वह जानना मानेगा। जो हमारा ज्ञान है, वह इसी तरह सीखे गए नाम हैं। न हम गाय को जानते हैं, न हम घोड़े को जानते हैं। हम नाम जानते हैं, हम लेबल लगाना जानते हैं। और जो आदमी जितना ज्यादा लेबल पहचानता है, वह उतना बडा ज्ञानी समझा जाता है।

यह नाम जान लेना भी बडे मजे की बात है। क्योंकि न तो गाय कहती है कि उसका नाम गाय है, न घोडा कहता है कि उसका नाम घोडा है। हमने ही दिया है नाम और फिर हम ही उन नामो से परिचित होकर ज्ञानी हो जाते है। और वह जो अस्तित्व है, अपरिचित ही रह जाता है, अनजाना ही रह जाता है।

अब्राहम मैसलो ने एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि मैं जिस विश्व-विद्यालय में पढ़ता था, उस विश्वविद्यालय में एक बहुत बड़े ज्ञानी प्रोफेसर थे। और उनको चीजों को नाम देने की और हर चीज को व्यवस्थित करने की ऐसी विक्षिप्त आदत थी कि अखबार भी पुराने वह तारीखें व नाम लगाकर फाईल करते जाते थे। दाढी बनाने का ब्लेड भी जब खराब हो जाए तो किस तारीख को शुरू किया और किस तारीख को खराब हुआ, वे उनका लेबल लगाकर और सभाल कर रखते थे। मैसलो ने लिखा है कि एक दिन वह उनके घर गया तो उसने पियानो का ढक्कन उठाकर देखा; उसमें बड़े अक्षरों में लिखा था पियानो।

यह प्रोफेसर हमें पागल मालूम पड़ेगा। लेकिन अगर यह पागल है तो हम भी थोड़ी मात्रा में पागल हैं। वह अन्तिम सीमा तक पहुंच गया है। कुर्सी में लिखा हुआ है कुर्सी, दरवाजे पर लिखा हुआ है दरवाजा, यह हमें पागल मालूम पड़ता है। लेकिन हमारा ज्ञान भी और क्या है ? हमारा सारा ज्ञान नामकरण है, लेबलिंग है। और हम में मजा यह है कि उस प्रोफेसर ने पियानो पर ही लिखा पियानो, दर-वाजे पर ही लिखा दरवाजा, कुर्सी पर ही लिखी कुर्सी, हमने ईश्वर पर ही लिख

छोड़ा है ईश्वर। वैसे ही हैं आत्मा, मोक्ष, स्वर्ग और नरक।

नाम देने से ऐसा भ्रम पैदा होता है कि हम जानते हैं। जब मैं कहता हूं मोक्ष तो आपके भीतर थोड़ी-सी गुदगुदी पैदा होती है, आपको लगता है कि आप जानते हैं। क्योंकि नाम आपका सुना हुआ है। जब मैं कहता हूं ईश्वर तो आपके भीतर में धड़कन होती है और आपको लगता है कि जानते है। क्योंकि यह नाम सुना हुआ है। लेकिन क्या जानते हैं आप ईश्वर को? क्या जानते हैं मोक्ष को? क्या जानते हैं गाय को? क्या जानते हैं घोड़े को? **नाम जानते है**। और आदमी भाषा को तत्व-ज्ञान समझ लेता है। नामो के संग्रह को आदमी सम्पदा समझ लेता है ज्ञान की।

इसलिए लाओत्से सख्त खिलाफ है नामकरण के। कही भी वह नाम नही देता है। वह कहता है, **जिसे नाम दिया जा सके वह सत्य नहीं होगा**। जिस पर हम लेबल लगा सके, वह सत्य न होगा। असल में हम लेबल लगाते ही इसलिए हैं ताकि हम जानने की झंझट और यात्रा से बच जाएं। लेबल लगाने पर हम निश्चिन्त हो जाते हैं। फिर हमें कोई चिन्ता नही रह जाती। एक आदमी से हम पूछ लेते हैं कि क्या है तुम्हारा नाम, क्या है तुम्हारी जाति, क्या है तुम्हारा धर्म, किस गांव से आते हो किस देश के नागरिक हो, और ये बाते जानकर हम निश्चिन्त हो जाते है कि वह आदमी जान लिया गया। एक आदमी इतनी बड़ी घटना है! और हमने इन चार नामो को इकट्ठा कर लिया, हिन्दू है, राम उसका नाम है, हिन्दुस्थान का नागरिक है, और जानकारी पूरी हो गई। और आदमी इतनी बड़ी घटना है, इतना बड़ा सागर! ओर-छोर उसके खोजने मुश्किल हैं। हमारा सारा परिचय नाम देने के धोखे से निर्मित होता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, मैं उस परम सत्य को कोई नाम नही देता हू। उसे ईश्वर नही कहता हू, उसे मोक्ष नही कहता हू। क्योकि जैसे ही मै उसे नाम दूगा, तुम समझोगे कि तुम जानते हो।

और बड़ी से बड़ी कठिनाई लाओत्से, कृष्ण या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के सामने यही है कि वे कैसे आपको समझाएं कि आपको कुछ भी पता नही है। आप आश्वस्त हैं अपने ज्ञान में। आपको अपने ज्ञान का बिलकुल पक्का भरोसा है। और लाओत्से जैसे व्यक्ति के लिए यही सबसे पहली जरूरत है कि **वह आपको आपके ज्ञान से छुटकारा दिलाए, और आपको बताए कि आपको कुछ भी पता नहीं है**। जो भी पता करने योग्य है, अभी वह अनजाना पड़ा है। और जो भी आप जानते हैं, वह कचरा है। वह पियानो पर लिख दिया है पियानो, दरवाजे पर लिख दिया है दरवाजा! बस वे हमारे दिए हुए नाम है। और उन्ही लेबलो को इकट्ठा करके हम ज्ञानी बन जाते हैं। और जो जितने ज्यादा लेबल जानता है, वह उतना बड़ा ज्ञानी हो जाता है।

सद्गुरु के समक्ष पहला काम यही है कि वह व्यक्ति को अज्ञान के प्रति सचेत कर दे। लाओत्से ने सबसे सुगम तरकीब खोजी है कि वह आपसे नाम छीन ले। वह आपको यह बता दे कि जो भी आप समझते हैं कि वह आप जानते हैं, वह आप जानते नहीं हैं। सब धोखा है। अगर आपके सब नाम छीन लिए जाएं, आपकी जानकारी छीन ली जाए, तब आपको पता चलेगा कि आपका जीवन बिना जाने बीता जा रहा है। किसी ने गीता पढ़ ली है, किसी ने कुरान पढ़ लिया है, किसी ने रामायण पढ़ ली है, किसी ने उपनिषद पढ़ ली है। वह उनका जानना बन गया। आपने किया क्या है? कुछ शब्द सीख लिये हैं। और बारबार इन शब्दों को दोहराने से यह भ्रम आपको पैदा हो गया है कि अब इन शब्दो से जो इशारा किया गया है, वह भी आप जान गए। **वह आप बिलकुल नहीं जानते हैं।**

अंधा भी प्रकाश शब्द को बहुत बार सुनता है। यह शब्द उसे भी मालूम हो जाता है। अंधों की ब्रेल लिपि होती है, इसमें वह अपने हाथ को फेर कर इसको पढ़ भी लेता है कि प्रकाश है। वह प्रकाश की परिभाषा भी पढ सकता है। प्रकाश के सम्बन्ध में जो भी आदमी ने खोजा है, वह सब भी पढ़ सकता है। और तब अंधे को भी यह वहम पैदा हो सकता है कि वह जानता है कि प्रकाश क्या है। और उसकी सारी जानकारी व्यर्थ है; क्योकि उसकी आंखो पर कभी प्रकाश का कोई सस्पर्श नही हुआ। और उसकी सारी जानकारी व्यर्थ है, क्योंकि उसके हृदय तक प्रकाश की कोई किरण नही पहुची।

उसकी सारी जानकारी न केवल व्यर्थ है, बल्कि खतरनाक भी है। क्योकि यह भी हो सकता है कि अधा धीरे-धीरे यह भी सोचने लगे कि जब मै प्रकाश के सम्बन्ध में सब जानता हू तो मै अधा नही हू। क्योंकि अधे प्रकाश के सम्बन्ध मे जान ही कैसे सकते हैं?

हम सब की भी तकलीफ यही है। हम सब परम सत्य के सम्बन्ध में बिलकुल अधे हैं। लेकिन शब्द हमें कठस्थ हो गए हैं। और भारत जैसे मुल्क का तो और भी बड़ा दुर्भाग्य है। क्योकि जितनी पुरानी हो सस्कृति, उतने शब्दो का बोझ होता है ज्यादा। जितनी लबी यात्रा हो किसी जाति की, उतना ही ज्ञान उसके पास सग्रहीत हो जाता है; जो उसकी मौत बन जाती है, उसकी गर्दन पर फांसी लग जाती है।

पुरानी कौमें अपने ज्ञान से दब कर मरती हैं; नई कौमें अपने अज्ञान से परेशान होती हैं। पुरानी कौमें अपने ज्ञान से परेशान होती हैं। बच्चे भटकते हैं अज्ञान के कारण, बूढ़े भटकते हैं ज्ञान के कारण। बच्चों की सारी तकलीफ यह है कि उन्हें रास्तों का कोई पता नहीं है, इसलिए भटक जाते हैं। बूढ़ों की तकलीफ यह है कि उन्हें सभी रास्तों का पता है बिना किसी रास्ते पर चले, इसलिए भटक जाते हैं। बच्चे क्षमा किये जा सकते हैं; बूढ़ों को क्षमा करने का कोई उपाय नही है। अज्ञान

क्षमा किया जा सकता है; लेकिन झूठा ज्ञान क्षमा नहीं किया जा सकता। इस जगत में जो बड़े से बड़ा अपराध आदमी अपने साथ कर सकता है, वह अज्ञानी रहते हुए ज्ञान के भ्रम का अपराध है।

हमने इस मुल्क में इस सम्बन्ध में दूर तक चिन्तन किया है। हमारे पास तीन शब्द हैं। एक को हम कहते हैं ज्ञान, दूसरे को हम कहते हैं अज्ञान। लेकिन अज्ञान के साथ एक शब्द और है, जिसको हम प्रयोग करते हैं। वह है अविद्या। लेकिन बड़े मजे की बात है कि जिसको हमने अविद्या कहा है, उसको ही आमतौर से हम ज्ञान समझते हैं। अविद्या का मतलब अज्ञान नहीं है। अविद्या का मतलब है ऐसी विद्या जो विद्या नहीं है, ऐसा ज्ञान जो ज्ञान नहीं है, जो सिर्फ ज्ञान का धोखा है। उससे भ्रम तो पैदा होता है।

जैसे हम छोटे बच्चे को मुह में कुछ चूसने को लकड़ी का एक टुकड़ा दे देते हैं। उसे भ्रम तो होता है कि शायद वह मा का स्तन चूस रहा है, लेकिन उससे कुछ पोषण नहीं मिलता। हालाकि उसका रोना बन्द हो जाएगा और अपनी भूख को भी वह झुठला लेगा; क्योंकि जब बच्चा देखता है कि मुह में स्तन है और वह दूध पी रहा है, चूस रहा है, तब वह अपनी भूख को झुठला देता है, आंख बन्द करके, विश्राम करके सो जाता है।

करीब-करीब हम ऐसी हालत में हैं। जो हम नहीं जानते हैं, उसे हम समझते है कि वह हमारा जाना हुआ है। फिर वह हमारी जो भूख है सत्य के लिए, वह मर जाती है। या छिप जाती है, दब जाती है। और हम छोटे बच्चो की तरह झूठे ज्ञान को पोषण समझकर सोये रहते हैं।

इसलिए लाओत्से की पहली और गहरी चोट है नाम के विरोध में। वह कहता है, नाम सत्य का कोई भी नहीं है।

लेकिन तब एक अड़चन खड़ी हो जाती है। क्योंकि उसकी अगर चर्चा करनी हो, उसकी तरफ अगर इशारा करना हो तो कोई नाम तो देना ही पड़ेगा। अन्यथा किसकी चर्चा, किसकी बात, किसकी तरफ इशारा? यह भी कहना तो मुश्किल है कि हम उसे नाम न देंगे। पूछा जा सकता है किसे, किसे नाम न देंगे आप?

तो लाओत्से चीनी भाषा का एक शब्द चुनता है, जो कि कम से कम नाम है। वह है ताओ। ताओ के लिए अगर हम अपनी भाषा में अनुवादित करने चलें तो वेद में एक शब्द है ऋत, बस उससे ही वह शब्द अनुवादित हो सकता है। या बुद्ध ने जिस अर्थ में धम्म शब्द का प्रयोग किया है, वह उसका अनुवाद हो सकता है। लेकिन धम्म या धर्म कहते ही हमारे मन में कुछ और खयाल उठता है, हमारे मन में खयाल उठता है ईसाई धर्म, हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म, जैन धर्म। बुद्ध ने धम्म या धर्म का प्रयोग किया है परम नियम के अर्थों में—दि इटरनल लॉ—जिस अर्थ

में वेद ने ऋत का प्रयोग किया। ऋत का अर्थ है वह नियम, जिससे सब संचालित है।

लाओत्से कहता है, मैं उसे ताओ कहता हूं। इस जगत का जो स्वभाव है, इस जगत के भीतर छिपा हुआ जो सारभूत है, इसेन्स है, वह मैं उसे कहता हूँ।

लेकिन यह मजबूरी में दिया गया नाम है। इस नाम को समझ कर कोई यह न समझे कि उसने ताओ को समझ लिया। ताओ शब्द को कोई समझकर यह न समझे कि उसने ताओ को समझ लिया। धम्म को समझकर कोई यह न समझे कि उसने धर्म को समझ लिया। ऋत शब्द को कंठस्थ करके कोई यह न समझे कि उसने उस परम नियम को जान लिया, जिसके लिए इशारा किया गया है।

इशारे छोड़ने के लिए हैं, पकड़ने के लिए नही। इशारे कही पहुंचाने के लिए हैं, रोकने के लिए नही। इशारे से दूर हटना चाहिए, इशारे से जकड़ नहीं जाना चाहिए। वह मील का पत्थर लगा है रास्ते पर, तीर का इशारा करता है कि मंजिल आगे है। उस मील के पत्थर पर रुकना नही है। वह मील का पत्थर लगाया ही इसलिए गया है कि कोई वहां मंजिल समझकर रुक न जाए। वह तीर आगे के लिए है। सब शब्द मील के पत्थर हैं। और सब शब्दों का तीर सत्य की तरफ है। लेकिन तीर हमे बिलकुल भूल गए हैं। और हम सब शब्दो को पकड़ कर बैठ जाते हैं, और उनके निकट विश्राम करते हैं। और जो मील का पत्थर था, वह मंजिल मालूम पड़ने लगता है।

इसके कारण हैं, अपने को धोखा देने के कारण हैं। यात्रा कष्टपूर्ण है। मानकर सपने देखना आसान है। मील के पत्थर को ही मंजिल मानकर बड़ी चैन मिलती है। और अगर मील के पत्थर को मान कर यात्रा करनी पड़े तो श्रम उठाना पडता है। और हम हजारो-हजारों साल तक झूठे शब्दो को सत्य मानकर इस भांति के भ्रम में पड जाते हैं कि याद भी नहीं आता कि सत्य इससे भिन्न कुछ हो सकता है। इस सूत्र को समझें।

स्वर्ग और पृथिवी के अस्तित्व में आने से पूर्व सब कुछ कोहरे से भरा था। मौन, पृथक, एकाकी, अपरिवर्तित, नित्य निरन्तर घूमता हुआ, सभी चीजो की जननी बनने योग्य!

जो लोग आधुनिक विज्ञान से परिचित हैं, उन्हे तत्काल इस सूत्र में प्रतिध्वनि मिलेगी। तब यह सूत्र आम धर्मों से बहुत गहरा हो जाता है। ईसाइयत कहती है कि ईश्वर ने एक विशेष दिन सारे जगत को निर्मित किया। इस्लाम भी करीब-करीब ऐसा ही मानता है। फिजिक्स की आधुनिकतम खोजें कहती हैं कि जगत का निर्माण कभी भी नही हुआ; ज्यादा से ज्यादा हम इतना कह सकते हैं कि जब पृथिवी नहीं थी, तब सारा जगत एक कोहरे से भरा था। यह सारे जगत का निर्माण नेबुला से हुआ, गहन कोहरे से हुआ।

इस कोहरा शब्द का प्रयोग करने वाला लाओत्से सम्भवतः मनुष्य जाति में पहला आदमी है। जिसको आज विज्ञान कहता है कि ऐसा कुछ सम्भव लगता है कि पृथिवी एक कोहरा थी, जैसे कि बादल वर्षा होने के पहले आकाश में घिरा हो। फिर पानी गिरे और फिर पानी जमे और बर्फ बन जाए। ऐसा ही सारा पदार्थ एक दिन कोहरा था।

विज्ञान कहता है कि प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं: ठोस या सॉलिड, लिक्विड या तरल, और गैसियस या वाष्पीय। हर पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं। पत्थर भी तरल हो सकता है एक विशेष तापमान पर। और पत्थर भी एक विशेष तापमान पर गैस बन जाएगा, भाप बन जाएगा। हम सिर्फ पानी के बादल ही जानते हैं। लेकिन हर चीज के बादल हो सकते हैं। पत्थर के भी बादल हो सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक वस्तु की तीन अवस्थाएं है। लेकिन पत्थर को बादल होने के लिए बहुत बडे तापमान की जरूरत है, जैसा तापमान सूरज पर है। अगर हम पृथिवी को सूरज के करीब ले जाएं, करीब ले जाएं, जैसे-जैसे पृथ्वी करीब पहुंचेगी, वैसे-वैसे पृथिवी के तत्त्व वाष्पीभूत होने लगेंगे। सूरज के बिलकुल करीब जाकर पृथिवी एक कोहरे का गोला भर रह जाएगी। उसके सारे तत्त्व अपनी दृढ़ता खो देंगे, ठोसपन खो देंगे और वाष्पीय हो जाएंगे।

लाओत्से कहता है कि इस सारी सृष्टि के पहले सभी कुछ कोहरे से भरा था। विज्ञान की जो आधुनिकतम खोज है, उसका बोध लाओत्से को जरूर था। और अगर आज कोई विज्ञान के करीब से करीब आदमी पड़ेगा पुराने जगत से खोजने पर तो लाओत्से के वचन हैं। लाओत्से कहता है, देयर वाज समथिंग नेबुलस, कुछ था कोहरे जैसा। उस कोहरे का कभी जन्म नही हुआ और उस कोहरे का कभी अंत नही होगा। जब कोहरा सघन हो जाता है, तब पृथिवियां निर्मित होती हैं। और जब कोहरा फिर कोहरा हो जाता है, तब पृथिवियां बिलीन हो जाती हैं। लेकिन वह मूल कोहरा न कभी निर्मित हुआ है, और न कभी नष्ट होता है।

इसलिए जिसको हम सृजन और विनाश कहते हैं, वह सृजन और विनाश नही है, केवल रूपान्तरण है। जब पानी की बूंद आग पर पड़कर भाप बन जाती है, तब हम सोचते हैं कि विनष्ट हो गई। वह जरा भी विनष्ट नही होती, सिर्फ भाप बन जाती है। और आज नहीं कल फिर, पुनः पानी बन जाएगी। भाप बन जाना नष्ट हो जाना नही है, सिर्फ रूपान्तरण है।

लाओत्से के हिसाब से जगत का होना और जगत का न होना पानी की बूंद के भाप बनने जैसा है। जो मौलिक है दोनो के बीच, वह कभी नष्ट नहीं होता। बूंद दिखाई पड़ती है तो हम सोचते हैं कि है। फिर आग की लपट में भाप बनकर उड़ जाती है तो हम सोचते हैं कि नहीं है। ठीक यह जगत भी कभी ठोस होता है तो वह हमें मालूम पड़ता है; उसे हम सृष्टि कहते हैं। और जब वह तरल होकर

वाष्पीभूत हो जाता है तो उसे हम प्रलय कहते हैं। लेकिन जगत कभी नष्ट नहीं होता है, और कभी निर्मित नहीं होता। विज्ञान भी इससे सहमति देता है।

विज्ञान कहता है कि हम एक छोटे से रेत के कण को भी नष्ट नहीं कर सकते। पदार्थ अविनाशी है—इनडिस्ट्रक्टिबल। और हम एक रेत के छोटे से कण को निर्मित भी नहीं कर सकते हैं। जब विज्ञान कहता है कि हम निर्मित नहीं कर सकते हैं तो उसका मतलब यह है कि शून्य के बाहर निर्मित नहीं कर सकते; किन्हीं चीजों को मिलाकर बना सकते हैं, लेकिन वे चीजें पहले से ही मौजूद थीं। जब विज्ञान कहता है कि हम उसको नष्ट नहीं कर सकते तो उसका मतलब यह नहीं है कि हम मिटा नहीं सकते; हम मिटा सकते हैं। लेकिन रेत मिट जाएगी और फिर कुछ और शेष रह जाएगा। बिलकुल नहीं मिटा सकते, किसी चीज को हम शून्य में नहीं बदल सकते। और किसी चीज को हम शून्य के बाहर पैदा भी नहीं कर सकते।

जो भी है, वह किसी रूप में पहले था। और जो भी है, वह किसी भी रूप में आगे भी रहेगा। इस जगत में सभी कुछ अविनाशी है। विनाश असंभव है। और तब सृजन भी असम्भव है।

इसलिए लाओत्से किसी स्रष्टा को, किसी क्रिएटर को नहीं मानता है। लाओत्से नहीं कहता कि कोई ईश्वर है, जो सब को बनाता है। बनाने की धारणा ही बच-कानी है। और इस बनाने की धारणा की वजह से आस्तिक बड़ी तकलीफ में रहे। क्योंकि नास्तिक उनकी इस बात को उँगलियो पर तोड़ देते हैं। इसमें कुछ जान नहीं है। आस्तिको की यह दलील कि हम ईश्वर को इसलिए मानते हैं, क्योंकि बनानेवाला कोई चाहिए, नास्तिको को हंसी योग्य मालूम होती रही है। और हंसी योग्य है भी। अगर कोई इसीलिए आस्तिक है और सोचता है कि उसके पास प्रमाण है, क्योंकि हर चीज को बनानेवाला चाहिए, इसलिए इस जगत को भी बनानेवाला कोई होगा तो वह बड़ी द्विविधाओ में पड़ जाएगा।

अगर सोचे नहीं तो ठीक है; अगर सोचेगा तो मुसीबतें खड़ी हो जाएंगी। पहली मुसीबत तो यह खड़ी होगी कि ईश्वर भी शून्य के बाहर नहीं बना सकता। शून्य से निर्माण असम्भव है। अगर ईश्वर भी बनाए तो ज्यादा से ज्यादा अरेन्जमेन्ट कर सकता है, क्रिएशन नहीं कर सकता। चीजें होनी ही चाहिए। हम कहते हैं कि कुम्हार घड़ा बनाता है। घड़ा बनाता है; क्योंकि घड़ा कोई सृजन नहीं, केवल मिट्टी का आकार बदलना है। मिट्टी मौजूद है। जो लोग कहते हैं कि कुम्हार की तरह ईश्वर जगत को निर्मित करता है, उनके लिए ईश्वर बनानेवाला नहीं है, सिर्फ संयोजन करता है, एक रूप देता है। वह एक मूर्तिकार है। लेकिन पत्थर पहले से चाहिए। अगर ईश्वर शून्य के बाहर बना सके तो ही सृजन की बात निर्मित हो सकती है। लेकिन शून्य के बाहर बनाने की धारणा भी असंभव है। शून्य से कुछ पैदा करने की धारणा भी असंभव है।

शून्य के बाहर तो सिर्फ स्वप्न ही निर्मित हो सकते हैं। और इसलिए शंकर की बात ठीक है; अगर ईश्वर बनानेवाला है तो जगत माया है, सत्य नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें।

अगर ईश्वर बनानेवाला है तो जो घड़ा उसने बनाया है, वह वास्तविक घड़ा नहीं है, स्वप्न का घड़ा है। हां, शून्य से स्वप्न पैदा हो सकता है। रात आप सपने में कुछ निर्मित कर सकते हैं। उसके लिए किसी वस्तु की जरूरत नहीं होती। इसलिए जो लोग मानते हैं कि ईश्वर जगत का बनानेवाला है, उनके पास शंकर को मानने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। जगत झूठा है।

लेकिन तब बड़ी कठिनाइयां खड़ी होती हैं। क्योंकि अगर हम जगत को झूठा मान लें तो उसके बनानेवाले को सच मानने में बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि सारा तर्क इस बात पर निर्भर है कि जगत है और जगत को बनानेवाला कोई चाहिए। तब हमने माना कि ईश्वर है। अब ईश्वर को मानकर तकलीफ खड़ी होती है कि जगत झूठा होना चाहिए, स्वप्नवत होना चाहिए। क्योंकि शून्य से स्वप्न ही निर्मित हो सकता है। तो जगत माया है।

लेकिन अगर इस झूठे जगत के कारण ही हम मानते हैं कि कोई बनानेवाला है तो बनानेवाला भी झूठा हो जाता है, मायिक हो जाता है।

इसलिए शंकर को दूसरा कदम भी उठाना पड़ा। शंकर इस जगत में बहुत हिम्मतवर विचारकों में से एक हैं। एक तो यह कदम उठाना पड़ा शंकर को कि जगत माया है, झूठ है, इल्यूसरी है, मिथ्या है। लेकिन तब शंकर जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को तत्काल दिखाई पड़ गया कि ईश्वर, इसका बनानेवाला, सच नहीं हो सकता। इसलिए शंकर ने कहा कि ईश्वर भी माया है, ईश्वर भी माया का हिस्सा है। और जब कोई ईश्वर के भी पार जाता है, तब ब्रह्म की उपलब्धि है। संसार के पार तो जाए ही, ईश्वर के भी पार जाए, तब ब्रह्म की उपलब्धि है।

लाओत्से कहेगा कि जिनके पार ही जाना है, उन्हें व्यर्थ उठाने की कोई जरूरत नहीं है। उस ऊहापोह में कोई सार नहीं है। लाओत्से कहता है, जगत शाश्वत है। इसलिए स्रष्टा को बीच में वह नहीं लाता है। यह जो शाश्वत जगत है, यह अपने नियम से ही गतिमान है। उस नियम का नाम ताओ है।

हमें बहुत कठिनाई होती है। कठिनाई हमें होती है, क्योंकि हम मनुष्य की भाषा सब जगह थोपते हैं। लेकिन विज्ञान मनुष्य से छुटकारा करवाता है चीजों का। और धीरे-धीरे मनुष्य से छूटकर चीजें नियमों के अन्तर्गत चली जाती हैं।

समझ लें, एक छोटा बच्चा गिर पड़ता है तो वह फौरन गाली देता है जमीन को, कुर्सी से टकरा जाता है तो वह फौरन कहता है नॉटी, कुर्सी शैतान है। और अगर उसकी मां कुर्सी को दो चपत लगा दे तो वह प्रसन्न हो जाता है, खुश हो जाता है। निबटारा हो गया। कुर्सी ने शरारत की उसके साथ, उसको जवाब

दे दिया गया। बच्चा यह सोच ही नही सकता कि कुर्सी बिना शैतानी करने के इरादे के उसे गिराती होगी। कुर्सी में कोई इरादा नही होगा, कोई व्यक्ति नही होगा, यह बच्चा नहीं सोच सकता। और अगर जमीन गिरा कर उसके पैर में चोट लगा देती है तो वह यह नही मान सकता कि न्यूटन कहता है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण तुम गिर गए। बच्चा मानेगा? वह गुरुत्वाकर्षण का मतलब पूछेगा कि कौन छिपा है उसके भीतर जो मुझे गिरा रहा है? बच्चे को कोई न कोई व्यक्ति चाहिए। तब निश्चिन्तता हो जाती है : मुझे गिरानेवाला कोई चाहिए, कोई दुश्मन वहा बैठा है जो मुझे गिरा रहा है।

बच्चों की भाषा में जो लोग सोचते हैं, उनके लिए नियम को समझना बड़ा कठिन पड़ेगा। लेकिन विज्ञान चाहे धर्म का हो, चाहे पदार्थ का, व्यक्तियों की भाषा में नही सोचता, इंपरसनल लॉज, निर्वैयक्तिक नियमो की भाषा में सोचता है। जमीन आपको गिराना नही चाहती। जमीन का कोई इरादा नही है। आप गलत चलते हैं, गिर जाते हैं। जमीन तो सिर्फ एक नियम है, एक कशिश है, एक आकर्षण का नियम है। आप ठीक नियम मानकर चलते हैं, जमीन आपको कभी गिराएगी नही। आप नियम के विपरीत चलते हैं. आप गिर जाते है। जमीन का कोई इरादा आपको गिराने का नही है। और जमीन को आपका पता भी नहीं है कि आप कब गिरे, क्यों गिरे। और जमीन की आप कितनी ही प्रार्थना और पूजा करें, अगर आप गलत चलेंगे तो कशिश आपके प्रति कोई दया-भाव नही कर सकती। आप गिरेंगे।

धर्म के दो रूप हैं। एक धर्म का बचकाना रूप है। जिनकी बच्चों जैसी बुद्धि है, वे ईश्वर को व्यक्ति मानकर चलते हैं कि वह वहा आकाश में बैठा हुआ देखता है कि आप रात में पानी पी रहे हैं कि नही पी रहे हैं, कि आप किसी से झूठ बोले कि नही बोले। हिसाब लगा रहा है, बही-खाते लिये बैठा है। अब तक पागल हो जाता, अगर परमात्मा आपके सब कारनामों का हिसाब रखता होगा। एक-एक आदमी अपने कारनामो से पागल हो जाता है। उसकी क्या गति होती, ईश्वर अगर यह सब हिसाब लगाता? ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। लेकिन हम उसे व्यक्ति मान कर चलते हैं तो हम हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं उससे कि मुझ पर जरा दया रखना, मेरा जरा खयाल रखना। किससे आप बात कर रहे हैं? क्यों यह बात कर रहे हैं?

यह आपका वही तर्क है जो कि बच्चे का है—कुर्सी से चोट लग जाए तो बच्चा समझता है कि कुर्सी कोई शरारत कर रही है, शैतान कुर्सी है, अच्छी कुर्सी नही। दूसरी कुर्सी जिसपर से वह कभी नही गिरा, उसको मानता है साधु कुर्सी—जो गिराती नहीं। जिस दरवाजे से उसे खरोंच लग जाता है, वह समझता है यह दरवाजा शरारती है। यह बच्चे की भाषा है। यह बच्चे की भाषा हम जब जगत

पर लगा देते हैं, तब हमारे बचकाना धर्मों का जन्म हो जाता है। फिर अगर ईश्वर हमें नौकरी लगवा देता है तो हम प्रसन्न होते हैं। और अगर नहीं लगवाता ह तो हम नाराज होते हैं।

एक आदमी ने आकर मुझे कहा कि तीन दिन का समय दिया था। पत्नी बीमार थी और मैंने तीन दिन का समय जाकर मंदिर के भगवान को दे दिया और कहा कि अब सब दांव पर लगा दिया है। अगर तीन दिन में पत्नी ठीक नहीं होगी तो समझ लूंगा कि कोई ईश्वर नहीं है, और अगर ठीक हो गई तो, सदा के लिए तुम्हारा भक्त हो जाऊंगा। पत्नी ठीक हो गई। वे सदा के लिए भक्त हो गए हैं। मैंने उनसे कहा कि आप दुबारा ऐसा मत करना। संयोग सदा काम नही करेगा। एक दफा परीक्षा ले ली है, बहुत है। अब अपनी आस्तिकता को बचाना। अब दुबारा यह भूल मत करना। नहीं तो आस्तिकता मिट्टी में मिल जाएगी।

पर आदमी का मन ऐसा है कि उसकी पत्नी बीमार है, इसके लिए भी ईश्वर को कुछ करना चाहिए। और अगर वह यह भी सोचता है और कहता है कि मैं तुम्हें मानना छोड़ दूंगा तो धमकी भी दे रहा है। और वह खुशामद भी कर रहा है कि है तुम्हारी पूजा करूंगा, फूल चढ़ाऊंगा; जैसे कि सारे फूल उस पर ही चढ़े हुए नहीं है। वह एक सलाह दे रहा है बुद्धिमानी की कि थोडी समझ से काम करना, नहीं तो एक आदमी को चूकोगे, खो दोगे। जैसे कि ईश्वर का होना कोई लोकतांत्रिक मतों पर निर्भर है; एक मत, एक वोट हाथ से जाता है। वह आदमी यह कह रहा है कि पार्टी बदल लूगा तीन दिन के भीतर।

मगर हमारी सारी अस्तिकता ऐसी ही है। इसलिए ध्यान रखें, जो आस्तिकता शर्त से बंधी है, वह अभी बचकाना है, अभी प्रौढ नहीं हो पाई है। अभी समझ पैदा नहीं हुई है; अभी हम बच्चों की तरह जगत के साथ व्यवहार कर रहे हैं।

लाओत्से एक प्रौढ़ धर्म की बात कर रहा है। वहां ईश्वर व्यक्ति नही है, नियम है। फर्क इसलिए समझ लेना जरूरी है कि जब नियम ईश्वर हो जाता है, तब प्रार्थना नहीं, आचरण मूल्यवान हो जाता है। और जब ईश्वर व्यक्ति होता है, तब आचरण नही, प्रार्थना मूल्यवान होती है। जब व्यक्ति ईश्वर होता है, तब हम जो कर रहे हैं उसके आसपास, उसे हम एक आदमी मानकर करते हैं। फुसला भी सकते हैं; नाराज भी कर सकते है, प्रसन्न भी कर सकते हैं। लेकिन जब ईश्वर एक नियम है, तब ये सारी बातें व्यर्थ हो गईं। न फुसलाया जा सकता है; न राजी किया जा सकता हे; न धमकी दी जा सकती है, न भयभीत किया जा सकता है। कुछ भी नहीं किया जा सकता है। फर्क समझ लें।

जब तक ईश्वर एक व्यक्ति है, तब तक हमारी कोशिश होती है ईश्वर को बदलने की। जब एक आदमी जाकर कहता है कि मेरी पत्नी बीमार है, उसे ठीक

करो; तब वह यह कह रहा है कि अपना निर्णय बदलो, मेरी पत्नी बीमार है, उसे ठीक करो। तब वह यह कह रहा है कि अपना निर्णय बदलो, मेरी पत्नी को बीमार करने की तुमने जो कोशिश की है, उसे बदलो। एक आदमी कह रहा है कि मैं मर रहा हूं, मुझे बचाओ; एक आदमी कह रहा है कि मैं गरीब हूं, मुझे अमीर करो; कुछ भी कह रहा है, कुछ माग रहा है। वह यह कह रहा है कि ईश्वर, तुम अपने को बदलो; तुम्हारे निर्णय से मैं राजी नही हूँ; तुम्हारे निर्णय में कोई भूल है; तुमने जो भी निर्णय लिया है, अभी वह योग्य नहीं है; उसे बदलो।

जब तक कोई व्यक्ति ईश्वर को व्यक्ति मानता है, तब तक ईश्वर को बदलने की कोशिश चलती है। हमारी प्रार्थनाएं, हमारी पूजाएं, हमारी उपासनाएं, हमारे उपवास, सब ईश्वर को बदलने की कोशिश हैं।

लेकिन ध्यान रखना, ईश्वर को बदलने का कोई उपाय नहीं है। और जो ईश्वर आदमियो से बदला जा सके, उस ईश्वर का फिर कोई भरोसा करने की जरूरत नही है। जिस दिन ईश्वर नियम हो जाता है, उस दिन सारी चीजें उलटी हो जाती हैं। **तब हम अपने को बदलने के सिवाय कोई रास्ता नहीं देखते हैं।** अगर ईश्वर नियम है, तो मुझे अपने को बदलना पड़ेगा।

क्योंकि नियम न किसी को क्षमा करता है, न किसी का पक्षपात करता है। नियम निर्वैयक्तिक है—इम्परसनल। कितनी ही करूं प्रार्थना, कोई परिणाम न होगा। आचरण का ही परिणाम हो सकता है। कितनी ही उपासना करूं, कितना ही उपवास, कुछ परिणाम न होगा। कितनी ही माग करू, कितनी ही कातरता से चिल्लाऊं, इससे कोई हल न होगा। नियम सुनता नही है, नियम शब्दो को नही मानता है। नियम तो आचरण को, भीतर जो बदलाहट होती है व्यक्तित्व की, उसको मानता है। मैं कितना ही पृथिवी से कहूं कि मैं इरछा-तिरछा दौड़ूं, मेरी टांग मत तोड़ देना, उससे कोई फर्क न होगा। मैं गिरूं तो मुझे चोट मत देना; यह कहने से कोई फर्क न होगा। मुझे अपने को ही बदलना पड़ेगा।

हा, मैं अपने को इतना बदल सकता हूं कि पृथिवी का सारा गुरुत्वाकर्षण भी मुझे जरा सी भी चोट न पहुंचा पाए। क्योंकि गुरुत्वाकर्षण चोट पहुंचाने के लिए नहीं है। गुरुत्वाकर्षण किसी को गिराने के लिए नही है, न किसी को उठाने के लिए है। गुरुत्वाकर्षण एक निर्वैयक्तिक नियम है। उस निर्वैयक्तिक नियम के बीच अगर मैं अपने को बदल लेता हूं—बदलने का मतलब है कि अगर मैं उस नियम के और अपने बीच तालमेल, हारमॅनी निर्मित कर लेता हूँ, अगर उस नियम के और मेरे बीच एक छन्दबद्धता आ जाती है, उस नियम से और मेरे बीच कोई शत्रुता और कोई विरोध नहीं रह जाता, उस नियम के और मेरे बीच एक अविरोध निर्मित हो जाता है; वह नियम और मैं एक हो जाते हैं, उस नियम से मेरी कोई अलग सत्ता नहीं रह जाती, उस नियम की मुझसे अलग कोई सत्ता नही रह जाती;

हम मिल जाते हैं और एक हो जाते हैं—तो फिर उस नियम से मुझे दुख नहीं पहुंचता; उस नियम से मुझे आनन्द मिलने लगता है।

जगत से हमें दुख पहुंचता है, क्योंकि हम नियम के प्रतिकूल हैं। जीवन हमारा नरक बन जाता है, क्योंकि हम नियम के प्रतिकूल हैं। जीवन स्वर्ग हो जाता है, जब हम नियम के अनुकूल हैं। और जीवन हो जाता है मोक्ष, जब हम नियम से एक हैं। इस फर्क को थोड़ा समझ लें।

जब हम प्रतिकूल हैं, तब जीवन नरक हो जाता है। हम अपने ही हाथों दुख में उतरते चले जाते हैं। हम जो भी करते हैं, उससे हम कष्ट पाते हैं; क्योंकि वह नियम के अनुकूल नहीं है। हम कितना ही उपाय करें, हम सफल नहीं हो सकेंगे। नियम की विपरीतता में कोई सफलता नहीं है। लोग सोचते हैं, विज्ञान ने कितनी सफलता पाई! लेकिन क्या आपको पता है, विज्ञान की सारी सफलता इस बात पर निर्भर है कि उसने प्रकृति के नियमों के अनुकूल चलना सीख लिया! और तो कोई सफलता नहीं है। अगर विज्ञान के इतने शिखर उठ गए हैं आज सफलता के तो वह प्रकृति पर विजय के कारण नहीं है। यह बिलकुल भ्रान्त है धारणा। वह प्रकृति के नियम को समझ कर उसके अनुकूल चलने के कारण है। जो विजय है विज्ञान की, वह समझ की दिशा में है; प्रकृति के ऊपर नहीं है। बिना समझे अनुकूल चलना मुश्किल है, समझकर अनुकूल चलना आसान हो जाता है। विज्ञान की सारी खोज प्रकृति के नियमों को समझ लेने की खोज है।

धर्म की सारी खोज, वह जो परम नियम है—प्रकृति का ही नहीं, मनुष्य की चेतना के अंतरतम का भी—**उसकी खोज है**; उसके अनुकूल की खोज है। उसका नाम है ऋत, उसका नाम है ताओ।

उसके जो प्रतिकूल चलता है, वह दुख पाता है। इसलिए जब भी आप दुख पाएं, तब न तो किसी ईश्वर को दोषी ठहराना, न किसी और को दोषी ठहराना, क्योंकि वे सब भ्रान्तियां हैं। तब एक ही बात समझना। किसी को दोषी मत ठहराना; न अपने को ही दोषी ठहराना। क्योंकि खुद को भी दोषी ठहराने से कुछ हल नहीं होता है। कुछ लोग खुद को दोषी ठहराने में भी मजा लेने लगते हैं। कुछ लोगों को खुद के अपराधी होने की चर्चा करने में ही आनन्द होने लगता है। किसी को दोषी मत ठहराना।

इसलिए हमने इस मुल्क में ठीक उस तरह से नहीं सोचा है, जिस तरह से ईसाइयत ने सोचा है। ईसाइयत बोलती है जो भाषा, उसमें पाप, अपराध बड़े महत्वपूर्ण हैं। ईसाइयत कहती है कि तुम जो गलती कर रहे हो, वह तुम्हारा पाप है। हिन्दू-चिन्तन कहता है, वह तुम्हारा अज्ञान है, पाप नहीं।

यह बड़े मजे का फर्क है, और गहरा फर्क है। हिन्दू-चिन्तन कहता है कि वह अज्ञान है, पाप नहीं। क्योंकि पाप में तो अपराध का भाव हो जाता है। अज्ञान

का तो केवल इतना ही मतलब है कि चूंकि तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो, इसलिए दुख पा रहे हो। पाप का तो मतलब है कि तुम्हें पता है कि तुम क्या कर रहो हो और फिर भी तुम कर रहे हो। पापी ज्ञानी हो सकता है। अज्ञानी को पापी कहना ठीक नहीं है। अज्ञान में क्या पाप है?

उसे पता ही नहीं है। यदि मुझे पता नहीं है, रास्ता कौन-सा है और मैं भटक जाता हूँ, तो मैं पापी नहीं हूं, कोई अपराध नही कर रहा हूं। कोई उपाय ही नहीं है, मैं भटकूंगा ही। पापी तो मैं उसी दिन होता हूं, जिस दिन मुझे पता हो कि रास्ता क्या है, और मैं जानकर हटता हूँ। लेकिन हिन्दू-चिन्तन कहता है कि जानकर कोई दुनिया में पाप नहीं कर सकता। जानकर आदमी वैसे ही पाप नहीं कर सकता, जैसे कि आग में जानकर कोई हाथ नहीं डाल सकता। छोटा बच्चा डाल सकता है, क्योकि उसे पता नहीं है। लेकिन छोटा बच्चा पापी नहीं है।

इसका यह मतलब नहीं है कि अगर पापी नहीं है और आग में हाथ डाल देगा तो आग जलाएगी नहीं। इसका यह मतलब भी नहीं है कि आग में हाथ डालेंगे आप अज्ञान में तो कष्ट न पाएंगे। कष्ट तो पाएंगें ही। लेकिन वह कष्ट अज्ञान का कष्ट है। इसलिए जब आपके जीवन में दुख हो तो न तो ईश्वर को दोषी ठहराना, न भाग्य को, न दूसरे को, न अपने को ही, सिर्फ इतना ही समझना कि नियम के कही प्रतिकूल चले गए हैं। नियम को भी दोषी ठहराने का कोई कारण नही है। क्योकि नियम आपसे कहता नहीं कि प्रतिकूल चले जाएँ। और अपने को भी दोषी ठहराने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि पता नही है, इसलिए प्रतिकूल चले गए।

लेकिन हम दोषी ठहराकर बड़ी मुश्किल में पड जाते हैं; मूल बात चूक जाते है। मूल बात इतनी है कि नियम से जितनी प्रतिकूलता होती है, उतना सघन दुख हो जाता है—उसी मात्रा में। अगर दुख बढ़ता ही चला जाए तो आप समझना कि आप नियम के प्रतिकूल चले ही जा रहे हैं, आप दूर हटते जा रहे हैं नियमो से। और जब कभी जीवन मे आपको सुख की झलक मिले, तब यह मत सोचना कि परमात्मा की कृपा है; यह भी मत सोचना कि आप बड़े पुण्यशाली हैं; इतना ही सोचना कि आप जाने-अनजाने नियम के करीब, अनुकूल पड़ गए हैं। सुख की जो हलकी हवा आ गई है, एक झोंका सुख का आकर आपको घेर गया है, वह इस अनुकूलता के कारण है।

इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटती है कि जब भी आदमी को पता चलता है कि वह सुख में है, तभी दुख शुरू हो जाता है। जैसे उसे पता चलता है कि वह सुख में है, वैसे ही दुख शुरू हो जाता है। क्यों हो जाता है? जैसे ही उसे पता चलता है कि सुख में है, वह यह नहीं समझ पाता कि नियम के करीब

है और खोज करे कि कहाँ से नियम के करीब है; वह सोचने लगता है कि मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ, मुझसे सौभाग्यशाली और कोई भी नहीं है। वह कुछ गलत दिशा में यात्रा शुरू हो गई। वह सोचता है कि मैं बहुत बुद्धिमान हूं, इसलिए यह सुख मुझे मिल रहा है। या वह यह सोचने लगता है कि सुख मैंने पा लिया, इसलिए अब जब मैं चाहूंगा, वह सुख पा लूंगा। तब मुसीबतें खड़ी हो जाएंगी।

करीब-करीब ऐसी हालत है कि जैसे हम अंधे भाग रहे हों और अचानक दरवाजे पर हाथ पड़ जाए और हवा का एक झोंका लग जाए। नियमो के करीब जब हम पड़ जाते हैं जाने-अनजाने, तब सुख का अनुभव होता है। अगर आपका सुख बढ़ता चला जाए तो समझना आप नियम के करीब पहुंच रहे हैं।

लेकिन करीब भी एक तरह की दूरी है। इसलिए सुख में भी दुख का एक मिश्रण है। जब तक हम नियम से एक न हो जाएं, तब तक आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता। कितने ही निकट हों, फिर भी एक दूरी है। और इसलिए सभी सुख थोड़े दिनों बाद दुख हो जाते हैं। उनके हम आदी हो जाते है। जब पहली दफा हवा का झोंका लगता है तो लगता है कि एक ताजगी बरस गई, स्नान हो गया, किसी एक परम अनुभव में उतरना हो गया। फिर जब आदमी खिड़की पर ही खड़ा रहता है, आदी हो जाता है; फिर भूल जाता है। तब सुख भी शीघ्र ही दुख हो जाता है। सिर्फ आनन्द कभी बदलता नही है। क्योंकि दूरी इतनी भी नही रह जाती कि हम कहें कि निकटता है। एकता ही हो जाती है। मोक्ष, निर्वाण, ताओ, उस एकता के नाम हैं।

लाओत्से कहता है, जब कुछ भी न था, अर्थात, जब कुछ भी प्रकट न था, जब कुछ भी अभिव्यक्त न हुआ था, तब सब कोहरे से भरा था—मौन। क्योंकि शब्द भी एक अभिव्यक्ति है। शब्द भी आकार है। शब्द भी ठोस है। इसे थोड़ा हम समझ लें।

जब मैंने कहा कि सभी चीजों की तीन अवस्थाए होती हैं, तब शब्द की भी तीन अवस्थाए हैं।

एक अवस्था है शब्द की, जब हम बोलते हैं। लेकिन बोलने मे भी कभी खयाल किया होगा, कुछ शब्द तरल होते हैं। जब हमें लगता है, किसी शब्द में बड़ी मिठास है, लगता है किसी शब्द में बड़ा काव्य है, लगता है किसी शब्द मे सौन्दर्य के फूल खिल गए, तब शब्द तरल होता है। काव्य एक तरलता है। प्रोज और पोयटरी मे वही फर्क है—ठोस और तरल होने का। गद्य ठोस है, जैसे बर्फ जमी हुई हो। पद्य तरल है, जैसे बर्फ पिघल गई और बहने लगी। इसलिए विज्ञान कविता की भाषा में नहीं लिखा जा सकता। विज्ञान सीमा मांगता है—ठोस, स्पष्ट परिभाषा। प्रेम-पत्र कविता में लिखे जा सकते हैं; गणित कविता में

नहीं किया जा सकता है। गणित ठोस शब्द मांगता है। काव्य है तरल बात।

कोई पूछता था दांते से, जब दांते ने एक गीत लिखा। किसी को वह प्रीतिकर लगा और दांते से पूछने गया कि इसका अर्थ क्या है? तो दांते ने कहा कि जब मैंने लिखा था, तब दो आदमियों को इसका अर्थ पता था--मुझे और परमात्मा को। अब सिर्फ परमात्मा को ही पता है; अब मुझे अर्थ पता नहीं है।

कवि को भी, वह जो लिखता है, उसका पूरा अर्थ पता नही होता। और अगर पता हो तो वह कवि बहुत छोटा है। उसका मतलब है कि कविता कम है, तुकबन्दी ज्यादा है। अगर काव्य सचमुच जन्म ले तो बिलकुल तरल होता है, उसकी कोई सीमाएं नहीं होतीं। उसके अनेक अर्थ हो सकते हैं; अर्थ पर कोई पाबन्दी नहीं होती।

इसीलिए वेद हैं, उपनिषद हैं, उनके हम इतने अर्थ कर पाए। फिर अर्थ चुक नहीं सकते; क्योंकि वे सब काव्य हैं, तरल हैं। गीता पर हजारों टीकाएं हो सकती हैं, हुई और होती रहेंगी। और कभी ऐसा दिन नही आएगा कि हमें कहना पड़े कि बस अब गीता पर किसी और टीका की कोई भी जरूरत नहीं रही। क्योंकि गीता एक काव्य है, गणित का ग्रन्थ नही। तरल है, कोई सीमा नहीं है। इसलिए परिभाषाओ में कुछ बँधता नही है। पुरानी सब भाषाए काव्य-भाषाएं हैं · अरबी है, ग्रीक है, सस्कृत है।

इसलिए अरबी, ग्रीक या संस्कृत में एक-एक शब्द के दस-दस, बारह-बारह, पंदरह-पंदरह अर्थ हैं। इससे खोलने की बड़ी सुविधा है। इसलिए वेद की एक कड़ी के पचास अर्थ किये जा सकते हैं। कोई गलत और कोई सही नहीं है। वही भ्रान्ति शुरू होती है, जब कोई कहता है कि दूसरे ने जो अर्थ किया, वह गलत है। वह काव्य-कड़ी है, तरल है।

इसलिए अरविन्द उसमें से चाहें तो वह अर्थ निकाल सकते है, जो आइस्टीन का है। आइंस्टीन के पहले वह अर्थ उसमें से नहीं निकाला जा सकता था। अब निकाला जा सकता है। अब जैसे वेद कहते हैं कि सूर्य के सात घोड़े हैं, अश्व हैं। अब अश्व के संस्कृत में कई अर्थ होते हैं। उसका अर्थ किरण भी होता है। उसका अर्थ घोड़ा भी होता है। सूरज के सात घोड़े हैं। सूरज के रथ में चित्रकारों ने सात घोड़े जोते हैं। लेकिन हम चाहे तो अब कह सकते हैं कि नहीं, वे घोड़े नही हैं, सात रंग हैं, सूरज की किरण में सात रग हैं। वह अभी फिजिक्स की नवीनतम खोज है; हम उसका दर्शन कर सकते हैं। क्योकि कोई अड़चन नही है। क्योकि अश्व के दोनों ही अर्थ होते हैं, किरण भी और घोड़ा भी।

पुरानी सब भाषाए काव्य-भाषाएं हैं। नई भाषाए गद्य-भाषाएं हैं, ज्यादा ठोस हैं। इसलिए अगर सस्कृत में विज्ञान लिखना हो तो बड़ी मुश्किल बात है। और अगर एस्प्रेन्टो में कविता लिखनी हो तो मुश्किल बात है। क्योंकि एस्प्रेन्टो नवीन-

तम आदमी की बनाई हुई भाषा है। वह बिलकुल गणित जैसी है। उसमें जो कहा गया है, वही अर्थ होता है। जो कहा जाए, अगर वही अर्थ हो तो कविता का जन्म मुश्किल है। जो कहा जाए, उससे बहुत अर्थ हो सके ज्यादा, तो ही कविता पैदा हो सकती है।

प्रेम मे जब हम बोलते हैं, तब शब्द तरल होते हैं। कभी आपने खयाल किया कि दो जवान व्यक्ति अगर प्रेम में पड़ जाए तो वे फिर से बच्चो की भाषा बोलने लगते हैं, बेबी-लैंगुएज शुरू हो जाती है। दो प्रेमी जो भाषा बोलते हैं आपस में, वह बच्चो जैसी बोलते हैं। बच्चों की भाषा ज्यादा तरल है। और प्रेम को तरल भाषा की जरूरत है। इसलिए प्रेमी अगर अपनी प्रेयसी को बेबी कहने लगता है तो कोई अकारण नही है। कारण है। वे दोनो फिर से बच्चे हो गए।

लेकिन भाषा की एक तीसरी, शब्द की एक तीसरी अवस्था भी है, जहा गद्य-पद्य दोनों खो जाते हैं। वह है वायवीय अवस्था, जहा गैस बन जाता शब्द। उसका नाम है मौन। मौन भी शब्द की ही अवस्था है।

ठोस बोला जा सकता है। जब आप किसी को क्रोध में बोलते हैं, तब शब्द ठोसतम होते हैं। गाली वजनी होती है, उसमें वजन होता है, वेट। इसलिए हम कहते हैं कि बड़ी वजनी गाली दी। ठोस होती है। इसलिए छिद जाती है, पत्थर की तरह चोट करती है। प्रेम में बोले गए शब्द तरल होते हैं। उनकी चोट पत्थर की तरह नही होती, उनकी चोट वैसी होती है, जैसे उन पर फूल की वर्षा हो जाए।

मौन शब्द की तीसरी अवस्था है, जहा शब्द भाप बन जाते हैं, कोहरे में खो जाते हैं।

लाओत्से कहता है, वह जो कोहरा था, मौन था, पृथक, एकाकी खडा, कोई दूसरा न था, अकेला था; अपरिवर्तित, कोई परिवर्तन न था, नित्य, निरतर घूमता हुआ, सभी चीजो की जननी बनने योग्य! इस फर्क को थोडा खयाल में लेगे।

जो लोग मानते हैं ईश्वर ने जगत को बनाया, वे हमेशा गॉड दि फादर, ईश्वर पिता है, इस भाषा में सोचेगे। लेकिन लाओत्से कहता है मा, पिता नही। वह जो कोहरा था, सारे जगत की जननी बनने योग्य, मा बनने योग्य! ईश्वर का पिता की तरह सोचना कई-कई बातों की तरफ सूचना देता है। पहली बात, पिता का बच्चे के जन्म में न के बराबर सम्बन्ध होता है, न के बराबर। पिता बच्चे का जन्म दूर से देता है, अपने भीतर से नही। बच्चे के विकास, उसकी ग्रोथ, उसके निर्माण में उसका कोई हाथ नही होता है। प्रारम्भ मे उसका हाथ होता है। जैसे आपके कार में बैटरी है स्टार्टर, बस वह स्टार्टर भर है। जैसे ही इजन शुरू हो गया, उसका कोई उपयोग नही है। अगर ईश्वर पिता है तो जगत को बनाकर वह दूर हट जाएगा।

लेकिन ईश्वर अगर मा है तो जगत उसका गर्भ है। अगर ईश्वर पिता है तो

बनाना एक कृत्य है — एटॉमिक, आणविक। लेकिन अगर ईश्वर मां है तो सृजन एक शाश्वत्ता है — ईटरनल।

इसलिए लाओत्से कहता है कि वह जो कोहरा था मौन, अकेला, अपरिवर्तित, स्वयं में घूमता हुआ, वह सबकी जननी बनने योग्य है। सब उससे पैदा हो सकता है। सबकी सभावना है उससे पैदा होने की। इसलिए कई बार इन दोनो के बीच आदोलन होता रहा है। कुछ लोगों ने परम सत्ता को मां की तरह सोचा है। कुछ लोगों ने परम सत्ता को पिता की तरह सोचा है। लेकिन जो लोग भी गहरे गये हैं, उन्होंने उसे सदा मा की तरह सोचा।

मा के लिए बच्चे का जन्म बड़ी और बात है। उसका ही खून, उसका ही हड्डी-मास, बच्चा उसका हिस्सा है। उसकी ही सासें उसमें प्रविष्ट हो जाती हैं। उसकी ही आकांक्षाएं, उसके ही स्वप्न उसके खून में गतिमान हो जाते हैं। उसकी धड़कनें उसमें धड़कती हैं। मां और उसके बच्चे का सम्बन्ध ज्यादा आतरिक है, गहन है।

पिता एक धूमकेतु की तरह जीवन में आता है और अलग हो जाता है। पिता के बिना चल सकता है; मा के बिना नही चल सकता। शायद भविष्य में विज्ञान थोडा विकसित हो तो पिता व्यर्थ भी हो जाए। क्योंकि ऐसे बॉयलोजिकली जो वह करता है, वह एक इजेक्शन से भी हो सकता है। पिता का होना कोई बहुत गहन अर्थ नही रखता है। इसलिए पिता एक सामाजिक सस्था है, नैसर्गिक नही। मा नैसर्गिक है, वह सस्था नही है। पिता एक सस्था है, इंस्टीट्यूशन; हमने बनाया है। मां हमने बनायी नही है, वह है।

लाओत्से कहता है, जननी बनने योग्य! उसके एक-एक शब्द बहुत विचारणीय हैं। क्योकि वह शब्दो के मामले में बहुत कृपण है। शब्दों के मामले में वह बहुत कृपण है; वह बामुश्किल बोलता है — टेलीग्राफिक। अगर एक शब्द काट सके तो वह जरूर काट देगा। जितना कम बन सके, उतना ही कहने की उसकी मर्जी है। तो वह ऐसे ही उनका उपयोग नही कर लेता है; जब वह कहता है जननी बनने योग्य, तब वह बहुत सी बातें कहता है। वह कहता है, जगत का अस्तित्व और जगत की अभिव्यक्ति एक ही चीजें हैं, दो नहीं। परमात्मा कही दूर बैठा हुआ नही है; वह परम सत्य, वह परम नियम जगत में अनुस्यूत है। जैसे आपकी मां आपकी हड्डी में, आपके खून में, आपकी चर्बी में, अनुस्यूत है, वैसे ही वह परम नियम आपके रोएं-रोएं में अनुस्यूत है। वह आपके पिता की तरह दूर खड़ा नहीं होगा।

और पिता के सम्बन्ध में सदा सदेह हो सकता है, मां भर असंदिग्ध है। इसलिए पिताओं को सदा सदेह बना ही रहता है कि वे सच में अपने बेटे के पिता है या नहीं। और इसलिए उन्होंने बड़ा इंतजाम किया है इसको व्यवस्थित करने का कि संदेह न हो। इतनी जो ईर्ष्या, इतना जो नियम, इतना जो परिवार, इतना

जो बन्धन, स्त्री पर इतना जो जाल है, इस सारे जाल का मौलिक कारण इतना है कि पिता संदिग्ध है। उसे पक्का भरोसा कभी नहीं आता कि जो बेटा है, वह उसका ही है। इतना सब इंतजाम करके वह भरोसे में हो पाता है।

इसलिए विवाह करें तो कुंवारी लड़की से; वह भरोसे के लिए है। आपका पूरा भरोसा रखना चाहता है। इसलिए हम कुंवारे लड़के की फिक्र नहीं करते कि विवाह के वक्त लड़का कुंवारा था कि नहीं। अगर लड़का थोड़ा भी लड़का है तो कुंवारा होना बहुत मुश्किल है। लेकिन लड़की कुंवारी होनी चाहिए। फिर हम फिक्र नही करते, हम कहते हैं कि पुरुष तो पुरुष हैं। अगर वे कुछ यहां-वहां भटकते हैं तो हम कहते है कि पुरुष तो पुरुष है। लेकिन स्त्री पर हमारा पहरा सख्त है। उसका कारण है। उसका कारण है कि पुरुष कभी भी निश्चित नही हो पाता; भीतर एक संदेह का बीज बना ही रहता है।

सिर्फ मा असंदिग्ध है। मा भर जानती है कि बेटा उसका है। उस मामले में संदेह का कोई उपाय नही है।

जिन लोगो ने परमात्मा को पिता की तरह माना है, उन्होने बडी दूरी खड़ी कर दी। पिता की तरह परमात्मा भी एक संस्था हो गया—दूर की। मा की तरह परमात्मा एक संस्था नहीं है, एक नैसर्गिक व्यवस्था है—निकट की। लाओत्से कहता है, जननी बनने योग्य वह कुहासा था। सब उसमें पैदा हो सकता था। स्रष्टा नही है वह, जननी है। सब उससे निकल सकता है, जैसे मा से बेटा निकल सकता है। वह कोई कुम्हार की तरह घडा बनानेवाला नही है। मा की तरह है, उसके ही गर्भ से सब पैदा हो सकता है, सब संभावित है।

मैं उसका नाम नही जानता। लाओत्से कहता है, मैं उसका नाम नही जानता हूं। यह नही कहता कि उसका नाम कहा नही जा सकता है, वह यह कहता है कि मैं उसका नाम जानता ही नही।

यह तो बहुत लोगों ने कहा कि उसका नाम कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसमें यह भी लग सकता है कि उनको तो पता है, कह नही सकते; कहने मे तकलीफ है जैसे हम कहते हैं कि गूंगे का गुड़ है। हम कहते हैं कि गूंगा कह नही सकता कि गुड मीठा है, लेकिन गूंगे को पता तो है कि मीठा है। इसमें कोई शक नही है कि गूंगे को पता है, वह सिर्फ कह नही पाता। हमने कहा है कि संतों को पता है, पर कह नही पाते। क्योंकि भाषा असमर्थ है।

लाओत्से बहुत हिम्मत से कहता है, वह कहता है कि मैं उसका नाम नहीं जानता। मुझे उसका नाम पता ही नही है। **क्योंकि उसका नाम है ही नहीं।** यह सिर्फ अभिव्यक्ति की कठिनाई नही है; **अस्तित्व अनाम है।**

बोधिधर्म चीन गया। लाओत्से जैसा ही अनूठा आदमी था। भारत ने जो दस-पांच अनूठे आदमी पैदा किए, उनमें बोधिधर्म एक है। वह चौदह सौ वर्ष पहले

चीन गया। सम्राट ने उसका स्वागत किया। और सम्राट ने बड़ी आशाएँ बांध कर रखी थीं। इतना महान मनीषी आता था तो सम्राट के मन में बड़े लोभ थे, बहुत कुछ हो सकेगा। सम्राट ने आते ही उससे पूछा, बोधिधर्म से, कि मैंने इतने-इतने मंदिर और विहार बनवाए, इनका क्या लाभ होगा? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं होगा, नथिंग।

सम्राट थोड़ा चौंका। क्योंकि संन्यासी आमतौर से ऐसी भाषा नहीं बोलते हैं। ऐसी भाषा बोले तो संन्यासी जी नहीं सकते।

संन्यासी समझाते हैं कि इतना पुण्य करो तो इससे हजार गुना मिलेगा। पुण्य तो संन्यासियों को मिलता है। यह हजार गुना मौत के बाद का सवाल है। उसकी बाबत अब तक कुछ तय नहीं हुआ है कि कितना गुना मिलता है, कि नहीं मिलता है, कि पाप लगता है, कि क्या होता है। कुछ पता नहीं है। पुरोहित अगर ऐसी भाषा बोले, बोधिधर्म जैसी, तो सारा धंधा टूट जाए। पुरोहित का धंधा आपके लोभ के शोषण पर निर्भर है। वह आपको कहता है कि एक पैसा छोड़ो गंगा जी में, करोड़ मिलेंगे वहां, करोड़ गुना पाओगे। करोड़ गुना के लोभ में आदमी एक पैसा छोड़ता है। और यह एक पैसा पुरोहित को मिल जाता है। बाकी करोड़ उसको मिलते हैं या नहीं मिलते, यह वह आदमी जाने।

बोधिधर्म के पहले और भी बौद्ध भिक्षु आये थे चीन में। उन्होंने सम्राट को समझाया था, विहार बनवाओ, मंदिर बनवाओ, बुद्ध की प्रतिमा बनवाओ, बड़ा पुण्य होगा। स्वर्ग तुम्हारा होगा। स्वर्ग तुम्हारा होगा। और बोधिधर्म कहता है, कुछ भी नहीं। सम्राट ने दुबारा सोचा, शायद बोधिधर्म ने समझा नहीं। उसने कहा, मैंने इतने पवित्र कृत्य किये हैं, उनका पुण्य क्या है? बोधिधर्म ने कहा, कोई कृत्य पवित्र नहीं है। तब सम्राट ने पूछा, धर्म क्या है? सोचा उसने, छोड़ो पुण्य की बात। बोधिधर्म ने कहा, पूछो और उत्तर मिल जाए, ऐसा धर्म नहीं है। जीओ, तब पा सकते हो।

तब सम्राट ने सोचा, यह हद हो गई। वह एक सम्राट था, साधारण आदमी नहीं था। उसके अहंकार को भारी चोट लग रही है बार-बार। हजारों लोग इकठ्ठे थे। सुनकर बोधिधर्म का उत्तर वे मुस्कराते थे। और सम्राट को दीनता मालूम होने लगी। तो सम्राट ने कहा, ये सब बातें छोड़ो। इसका भी पता नहीं, उसका भी पता नहीं; तुम कौन हो? हू आर यू? बोधिधर्म ने कहा, आई डू नॉट नो, मुझे बिलकुल पता नहीं है। हम सोचेंगे कि शायद बोधिधर्म को कहना था, कि मैं आत्मा हूं, मैं ब्रह्म हूं। लेकिन उन्होंने कहा, आई डू नॉट नो, मुझे कुछ भी पता नहीं है। तो सम्राट ने कहा कि जब तुम्हें कुछ ही पता नहीं है तो तुम हमें क्या बताओगे? सम्राट वापस लौट गया।

बोधिधर्म के शिष्यों ने कहा, आपने यह क्या किया? आपने ऐसे उत्तर दिये कि

वह हताश हो गया। बोधिधर्म ने कहा कि मैंने तो सोचकर कि सम्राट है, श्रेष्ठतम उत्तर दिये थे। अंतिम उत्तर दिये थे, यह सोचकर कि बुद्धिमान होगा। अशिक्षित निकला। मैंने तो अंतिम उत्तर दिये थे। मुझे क्या पता था कि अशिक्षित गंवार है, नहीं तो मैं कह देता कि मेरा नाम बोधिधर्म है। इसमें क्या अड़चन थी? सोचकर कि सम्राट है, सुसंस्कृत है, मैंने अंतिम उत्तर दिये थे——अल्टीमेट। यह आखिरी उत्तर है।

लाओत्से कहता है, मैं उसका नाम नहीं जानता हूं, और उसे ताओ कहकर पुकारता हूं। यह उसका नाम नहीं है, यह मेरा दिया हुआ नाम है। जैसे आपके घर में एक बच्चा पैदा होता है, उसको कोई नाम नही है। आप उसे नाम देते हैं। अगर समझ हो तो कहना चाहिए कि उसे मैं मुन्ना कह कर पुकारता हू। यह उसका नाम नही है। हमें उसका नाम पता नहीं है। लेकिन बिना नाम के उसे कैसे पुकारें, इसलिए हमने उसे यह नाम दे दिया अ, ब, स। यह उस बच्चे को भी समझाया जाना चाहिए कि यह उसका नाम नही है, केवल एक इंतजाम है पुकारने का। एक कामचलाऊ इंतजाम है। अज्ञान है गहन और हमें नाम का कोई पता नही है। इसलिए हमने यह नाम रख लिया है। यह बच्चे को भी पता होना चाहिए।

लेकिन मां-बाप भी भूल जाते है कि यह नाम सिर्फ पुकारने के लिए है। फिर बेटा भी सुनते-सुनते भूल जाता है कि नाम पुकारने के लिए था। जब कोई आपके नाम को गाली देता है तो आपको लगता है कि गाली आपको दी गई। अगर आपको पता होता यह नाम सिर्फ पुकारने के लिए है तो आप कहते कि मेरे नाम को गाली दी गई, मेरा इससे कुछ लेना-देना नही है। जब आपके नाम का कोई जयजयकार करता है तो आप कहते कि मेरे नाम का जयजयकार किया जा रहा है, मेरा इससे कोई सम्बन्ध नही है। मैं तो अनाम हू, यह काम-चलाऊ है। अगर कोई व्यक्ति अपने नाम के सम्बन्ध में इतना स्मरण रख सके तो यह स्मरण भी ध्यान बन जाता है।

लेकिन बड़ा मुश्किल है। एक क्षण भी याद रखना मुश्किल है, चूक हो जाएगी।

हुइ हाइ अपने गुरु के पास गया था। और उसके गुरु ने हुइ हाइ को समझाया कि पहला सूत्र तुझे देता हूं कि तू तेरा नाम नहीं है; इसको स्मरण रख। उसने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, स्मरण रखूंगा। तभी जोर से उसके गुरु ने कहा हुइ हाइ और उसने कहा जी! उसके गुरु ने कहा, कैसे तू स्मरण रखेगा? जरा तो संयम रखता जी कहने में!

ऐसे ही हमारा विस्मरण हो जाएगा। कितना भी हम मन को समझाते रहें कि यह जो गाली दी जा रही है, मेरे नाम को दी जा रही है; लेकिन गाली भीतर लगती ही चली जाएगी। छेद हृदय में हो जाएगा, नाम में नहीं। तीर वहा भीतर घुस जाएगा, नाम में नहीं।

लाओत्से कहता है, मुझे उसका नाम पता नहीं है। मैं उसे ताओ कह कर पुकारता हूं। और यदि मुझे नाम देना ही पड़े, अगर तुम मानो ही न बिना नाम के, तो मैं उसे महत् कहूंगा। इफ फोर्स्ड टू गिव इट ए नेम, आइ शैल कॉल इट ग्रेट; अगर कहना ही पड़े कुछ नाम तो मैं उसे महत् कहूंगा।

महत् का उपयोग सांख्य में भारत ने किया। महत् का मतलब होता है, जो इतना महान है कि हम उसकी सीमा न बना सकें। महान का मतलब है, जो फैलता ही चला गया है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। महान होने का अर्थ है **अंतरिक्ष में फैलाव की क्षमता।** इससे भी विज्ञान का बड़ा सम्बन्ध है। आज तो विज्ञान कहता है कि यह जो हमारा यूनिवर्स है, ऐसा मत सोचें कि यह ठहरा हुआ है, **यह इक्सपैन्डिंग है।**

इस विचार ने फिजिक्स की सारी आधार-शिलाएं हिला दीं और बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। क्योंकि यह तो हमारी समझ में आता है कि यह जगत कितना ही बड़ा हो, हमारी बुद्धि इसको कितना ही बड़ा सोचे, फिर भी ऐसा लगता है कि कहीं तो सीमा होगी—कितनी ही दूर हो वह सीमा। लेकिन यह हमारी बुद्धि के लिए ग्रहण करना असम्भव है कि कहीं भी सीमा न होगी। हमारा मन कहेगा, और आगे सही, और आगे सही, और आगे सही; कहीं तो भी होगी। यह भी हो सकता है कि हम न पहुंच सकें वहा तक, लेकिन फिर भी तो होगी।

मन असीम को नहीं सोच सकता। **मन की सोचने की क्षमता सदा सीमा के भीतर है।**

महान का अर्थ है, जो मन से सोचा न जा सके। इसलिए जब आप कहते हैं कि फला व्यक्ति बहुत महान है, तब आपको पता नहीं कि आप क्या कह रहे हैं। महान का मतलब है, जो आपकी पकड़ मे न आए, जिसको आप कितना ही खोजें और जिसकी सीमा न खोज पाएं। लेकिन उसको आप महान नहीं कहते हैं। आप तो उसको महान कहते हैं जो आपके तराजू में तुल जाए। आप कहेंगे, बिलकुल ठीक है। जितने कपड़े पहनना चाहिए, उतने ही कपडे पहने हुए है; लगोटी लगानी चाहिए, लगोटी लगाए हुए है; एक दफा खाना खाना चाहिए, एक दफा खाना खाता है; पैदल चलना चाहिए, पैदल चलता है; आंखें नीचे रखनी चाहिए, नीचे रखता है; हिंसा नहीं करता; बुरे वचन नहीं बोलता; महान है। आपके तराजू पर जो तुल गया, वह महान है। आपके तराजू पर जो तुल जाए, वह क्षुद्र भी नहीं है, महान होना तो बहुत दूर है। आपके तराजू की औकात कितनी है?

महान का अर्थ है: जिसको आप तौल न पाए, अमाप, जिसकी कोई सीमा न बना पाए, जिसको आप तय न कर पाएं, जिसको आप यह भी न कह सकें कि महान है। तब, तब जिसको आप इतना ही कह पाएं कि बेबूझ है, समझ के परे है; हम चुक जाते हैं, वह नहीं चुकता।

यह जो जगत है, यह दोहरे अर्थों में बेबूझ है। एक तो यह बेबूझ है कि यह असीम है। पहली तो यह बेबूझ बात है। दूसरी बेबूझता यह है कि न केवल यह असीम है, बल्कि यह असीमता इक्सपैंडिंग है। यह जो असीमता है, यह बढ़ती चली जा रही है। यह और कठिन मामला है। क्योंकि हम समझ सकते हैं कि सीमित चीज बढ़ती जा रही हो। लेकिन असीम चीज बढ़ रही हो तो उसका मतलब पहला तो है कि वह असीम नहीं होगी; वह बढ़ रही है, कोई सीमा होगी, उससे आगे बढ़ती जा रही है।

जब आइंस्टीन ने पहली दफा कहा कि यह फैल रहा है, तब सवाल उठा कि यह कहां फैल रहा है? स्थान चाहिए फैलने को, स्पेस चाहिए। और अगर स्पेस आगे है तो स्पेस जगत का हिस्सा है। और आइंस्टीन कहता है कि स्पेस भी फैल रहा रहा है, आकाश भी फैल रहा है। इधर पिछले तीस-चालीस वर्षों में फिजिक्स मेटाफिजिक्स हो गई है। वह जो भौतिक शास्त्र है, वह अध्यात्म हो गया है। उसकी बातें ठीक अध्यात्म जैसी बेबूझ हो गई हैं। और आनेवाले भविष्य मे अगर वैज्ञानिक लाओत्से जैसी भाषा बोलें तो बहुत हैरानी नहीं होगी।

इसलिए लाओत्से के सम्बन्ध में पश्चिमी वैज्ञानिक को बड़ी उत्सुकता बढ़ गई है। अभी एक बहुत अद्‌भुत किताब, दि ताओ ऑफ साइंस, लिखी गई है—ताओ और विज्ञान के बीच कहीं तालमेल है इसपर।

लाओत्से कहता है, महान होने का अर्थ है अन्तरिक्ष मे फैलते चले जाना। ब्रह्म का भी यही अर्थ है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है विस्तार। लेकिन सिर्फ मृत विस्तार नहीं, जीवित विस्तार। अर्थात विस्तीर्ण होता विस्तार, फैलता जाता फैलाव। इसलिए हम इसको ब्रह्मांड कहते हैं; यह फैलता हुआ विस्तार है। यह कहीं रुक नहीं जाता। जैसे एक सागर फैलता ही जा रहा हो, जिसपर कोई सीमा न हो कहीं, जहा कोई दीवार न हो, जो रोकती हो फैलाव को।

लेकिन अगला हिस्सा बहुत कठिन है। और अन्तरिक्ष में फैलाव की क्षमता है दूरगामी। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि यह साधना के लिए भी बहुत कीमती है।

और अन्तरिक्ष में फैलाव की क्षमता है दूरगामी। यह जो फैलाव है, इतना दूर-गामी है, इतना दूरगामी है कि अनन्त तक दूर चला जाता है। यह तो कठिन है ही समझना, लेकिन आखिरी कड़ी समझना असम्भव है। यही दूरगामिता मूल बिन्दु की ओर प्रतिगामिता भी है। दिस फार रीचिंग इम्प्लाइज रिवर्सन टू दि ओरिजि-नल प्वाइंट। जो लोग फिजिक्स समझते हैं, गहरे में वे ही समझ पाएंगे।

लाओत्से कहता है, यह जो इतनी दूर चला जाना है, यह इतनी दूर चला जाता है, यह इतनी दूर चला जाता है कि फिर वर्तुल बन जाता है, और वह दूर जाना पास आना होता है। इतनी दूर, इतनी दूर, इतनी दूर; फिर वर्तुलाकार हो जाता है और

यह दूर चला जाना फिर पास आना हो जाता है। और जो अपने से सर्वाधिक दूर चला जाता है, वह अचानक पाता है कि वह अपने बिलकुल पास आ गया है।

आइंस्टीन ने कहा है कि यह जो स्पेस है, यह सरकुलर है, वर्तुलाकार है। यह और भी कठिन मामला है। आइंस्टीन कहता है कि यह जो आकाश है, वह वर्तुलाकार है, और वह फैलता जा रहा है। लेकिन इससे यह मत समझना कि वह दूर ही चला जा रहा है। एक सीमा के बाद इसका फैलाव लौट पड़ता है अपनी ही तरफ, घर की तरफ, और मूल बिन्दु पर आ जाता है। वापस लौट आता है। जैसे आप अपने घर से निकले यात्रा पर और अपनी नाक की सीध में चल पड़े तो आप अपने घरसे प्रतिपल दूर होते जा रहे हैं। लेकिन चूंकि पृथिवी गोल है, आपका हर कदम आपको घर की तरफ भी ला रहा है। अपने घर से आप निकल पड़े, दस कदम दूर हो गए घर से, बारह कदम दूर हो गए घर से; लेकिन चूंकि पृथिवी गोल है, इसलिए अगर आप नाक की सीध में चलते ही गए तो एक दिन आप अपने घर वापस लौट आएगे। तो हर कदम जो आपको दूर ले जा रहा है, वह आपको पास भी ला रहा है--दूसरी दिशा से, दूसरे आयाम से।

आकाश को आइंस्टीन कहता है कि वर्तुलाकार है, सरकुलर है। तो जितनी दूर फैलता जा रहा है यह ब्रह्माड, उतना ही पास भी आता जा रहा है।

यह बडी हैरानी की बात है कि लाओत्से को यह खयाल आज से पच्चीस सौ साल पहले हुआ। लाओत्से कहता है, यही दूरगामिता का बिन्दु प्रतिगामिता भी है, रिवर्सन टू दि ओरिजनल प्वाइंट। वापस लौटना भी है। इसका मतलब यह हुआ कि सिर्फ वे ही लोग भटक जाते है, जो बीच में अटक जाते है। या तो दूर जाए ही मत, और या तो फिर इतनी दूर चले जाए कि वापस अपने पास आ जाए। या तो घर छोडें ही मत, और या फिर घर छोड़ें तो फिर रुकें ही मत। तो किसी दिन वापस घर लौट आएगे।

इसको ऐसे हम समझें। एक बच्चा पैदा हुआ, चला जिन्दगी में। जीवन भी वर्तुलाकार है। ध्यान रखें, इस जगत में सभी गतिया वर्तुलाकार हैं। गति का अर्थ ही वर्तुल है, सरकुलर है। कोई भी गति हो, चाहे तारे घूमते हो, चाहे पृथिवी घूमती हो, चाहे सूरज घूमता हो, चाहे स्पेस घूमता हो, चाहे ब्रह्मांड घूमता हो, सब घूमना वर्तुलाकार है। और चाहे जीवन घूमता हो, सब घूमना वर्तुलाकार है। एक बच्चा पैदा हुआ। यह बच्चा चल पड़ा जीवन में। अब यह जन्म से दूर होता जा रहा है। मौत करीब आएगी, जन्म दूर होता जा रहा है। लेकिन यह उनकी दृष्टि नहीं है, जिन्हें अगले जन्म का कोई पता नही है। अन्यथा यह फिर जन्म के करीब होता जा रहा है। यह जन्म से शुरू हुआ, मौत की तरफ जाता हुआ दिखाई पड़ रहा है; लेकिन हर मौत नये जन्म की शुरुआत है। मरते वक्त ठीक व्यक्ति वहीं पहुंचता है, ठीक उसी बिन्दु पर, जहां जनमते वक्त होता है। एक वर्तुल पूरा

हो जाता है। हम पहले बिन्दु पर वापस लौट जाते हैं।

इसलिए जो लोग मृत्यु को समझ लें, वे जन्म को भी समझ लेंगे। जन्म को समझना मुश्किल है, क्योंकि आपको पता ही नहीं है कि क्या हो रहा है? लेकिन मृत्यु को आप समझ सकते हैं। और जो व्यक्ति मृत्यु को समझ ले, मृत्यु के बिन्दु को ठीक से समझ ले, उसको जन्म का रहस्य भी समझ में आ गया। **जिसने जान ली मृत्यु, उसने जीवन भी जान लिया।** लेकिन मृत्यु से हम डरते हैं। इसलिए हम जीवन को जानने से भी वंचित रह जाते हैं। मृत्यु और जीवन, जन्म, एक ही बिन्दु पर मिलते हैं। हमारी सारी की सारी जीवन की गतिविधियां वर्तुलाकार हैं। और हम कहीं भी चले जाएं, हम अपने मूल बिन्दु पर वापस लौट आते है।

लाओत्से यह क्यों कह रहा है?

लाओत्से यह कह रहा है कि तुम कितना ही कुछ करो, **तुम अपने स्वभाव से दूर न जा सकोगे।** तुम कितनी ही दूर चले जाओ, तुम्हारा दूर जाना भी पास आने का ही रास्ता बनेगा। लाओत्से यह कह रहा है कि अपने से दूर जाने का कोई भी उपाय नहीं है। तुम भटक सकते हो, धोखा दे सकते हो, सपने देख सकते हो, लेकिन तुम अपने से दूर जा नही सकते। और कितनी ही दूर चले जाओ, तुम्हारा सब दूर जाना तुम्हारा अपने ही पास आने का उपाय है।

इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि जो बहुत गहरे ससार में चला जाता है, वह अचानक अध्यात्म में आ जाता है। बीच में जो मेडिआकर्स है, वे हमेशा मुश्किल में होते हैं। इसलिए कभी कोई बाल्मीकि अचानक धार्मिक हो जाता है। हैरानी होती है, कोई अंगुलीमाल एकदम हत्या की दुनिया से बदलता है और बुद्ध उससे कहते है कि तुझसे ज्यादा शुद्ध ब्राह्मण खोजना मुश्किल है अंगुलीमाल! यह हत्यारा अचानक शुद्ध ब्राह्मण हो जाता है। क्या हुआ? यह इतनी दूर चला गया हत्या में कि वर्तुलाकार हो गई यात्रा। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पापी और निरपराधी तक संत बन जाते हैं, तथाकथित साधु नही बन पाते। **जिन्दगी जटिल है।** और उसके रास्ते इतने सीधे-साधे नहीं हैं जैसे हमें दिखाई पड़ते हैं। बहुत उलझे हुए है।

यह लाओत्से का सूत्र बहुत कीमती है, साधक के लिए बहुत कीमती है। तीन बातें स्मरण रख लेने जैसी हैं। एक, लाख करो उपाय अपने से दूर नहीं जाया जा सकता। सब तरफ भटक कर, सब तरफ की यात्रा आखिर में अपने पर ले आती है। क्योंकि वह हमारा मूल बिन्दु है। दूसरी बात, जीवन की सब गतियां वर्तुल में है; इसलिए ऐसा सोचने की कोई भी जरूरत नहीं है कि कोई भी इतने पाप में पड़ गया है कि पुण्य को उपलब्ध न हो सके। ऐसा सोचने की कोई भी जरूरत नही है कि कोई इतना संसार में गिर गया है कि मोक्ष का अधिकारी न हो सके। सब यात्रा वर्तुल है। किसी भी बिन्दु से लौटना हो सकता है। और किसी भी बिन्दु

से वापसी शुरू हो जाती है। और सच तो यह है कि अगर कोई जिद्द किये ही चला जाए नाक की सीध में तो हर यात्रा अपने पर ले आती है। इसलिए जिद्दी अक्सर पहुंच जाते हैं। उसको हम जिद्द नहीं कहते, उसको हम हठयोग कहते हैं। उसको हम दृढ़ता कहते हैं, उसको हम संकल्प कहते है।

तनका अपने गुरु के पास है। वह ध्यान की साधना कर रहा है। महीनो बीत गए हैं। गुरु उसके पास गया है। और उसने तनका को बैठा हुआ देखा बुद्ध की मुद्रा में आखें बन्द किए—पत्थर की तरह। उसके गुरु ने, एक ईंट पड़ी थी दरवाजे पर, उसको उठाकर पत्थर पर घिसना शुरु कर दिया। ईंट की करर-करर आवाज सुन कर दांत किसमिसाने लगे तनका के। आखिर उसने आख खोली और पूछा कि यह क्या कर रहे हैं? और अपने गुरु को देखा तो बहुत हैरान हुआ। उसने सोचा था कोई बच्चा है, या कोई शैतान आकर आसपास कुछ कर रहा है। उसका गुरु पत्थर घिस रहा है। तनका ने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं ? उसके गुरु ने कहा, इस ईंट को घिस-घिस कर मैं दर्पण बनाना चाहता हू।

गुरु तनका को कहना चाहता था कि जैसे यह ईंट घिस-घिस कर दर्पण नही बन सकती, ऐसे ही तू यह जो बैठा है आखें बन्द किये, कितना ही बैठा रहे, इससे ध्यान नही मिल सकता। लेकिन तनका हसा और उसने कहा कि आप आखिरी तक घिसते ही गए तो दर्पण बन जाएगी। उसने फिर आख बन्द कर ली। और आख बन्द किए-किए बैठे-बैठे तनका ज्ञान को उपलब्ध हुआ।

जब ज्ञान को वह उपलब्ध हुआ, तब उसके गुरु ने कहा कि मैं तो यह सोचकर तेरे सामने ईंट घिस रहा था कि तू पूछेगा कि आप पागल तो नही हो गए हैं। ईंट कितनी ही घिसो, कही दर्पण बनेगी ? तो मन को कितना ही घिसो, ध्यान कैसे हो जाएगा मन ? यह मैं तुझे कहने आया था। और अगर तू यह सवाल मुझसे पूछ लेता कि कितना भी ईंट को घिसो, दर्पण कैसे बनेगी तो पक्का था कि तू कितने ही मन को घिसता, ध्यान नही बन सकता था। लेकिन तूने यह पूछा ही नही और आख बन्द कर ली। मैं तुमसे पूछता हूँ, तेरे मन को क्या हुआ ? तो तनका ने कहा कि मेरे मन को हुआ कि अगर कोई घिसता ही चला जाए तो कभी न कभी दर्पण बन ही जाएगा। और मैं घिसता ही चला गया। सीमा है। अगर कोई जिद्द किए ही चला जाए, सीधा चलता ही चला जाए तो ईंट भी घिसी जाए तो दर्पण बन सकती है। और नरक की तरफ मुह करके चलनेवाला आदमी भी एक दिन स्वर्ग में पहुच सकता है। **और संसार की तरफ चलनेवाला आदमी भी एक दिन निर्वाण के द्वार पर खड़ा हो सकता है।**

झेन फकीरो ने कहा है : संसार और निर्वाण में जरा भी, रत्ती भर का भी फर्क नही है। जो ठहर जाते है बीच-बीच में, वे संसार में रह जाते हैं; **जो चलते ही चले जाते हैं, वे निर्वाण में पहुंच जाते हैं।**

आज इतना ही। फिर कल। रुके पाच मिनट और कीर्तन करें।

स्वभाव की उपलब्धि अयात्रा में है

तिरपनवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : : दिनांक १८ अगस्त १९७२

अध्याय २५ : खंड २
चार शाश्वत आदर्श

इसलिए : ताओ महान है,
स्वर्ग महान है,
पृथ्वी महान है,
सम्राट भी महान है।
ब्रह्माण्ड के ये चार महान हैं,
और सम्राट उनमें से एक है।
मनुष्य अपने को पृथिवी के अनुरूप बनाता है;
पृथिवी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है;
स्वर्ग अपने को ताओ के अनुरूप बनाता है;
और ताओ अपने को स्वभाव के अनुरूप बनाता है।

Chapter 25 : Part 2
THE FOUR ETERNAL MODELS

Therefore : Tao is Great,
The Heaven is great,
The Earth is great,
The King is also great.
These are the Great Four in the universe,
And the King is onc of them.
Man models himself after the Earth;
The Earth models itself after Heaven;
The Heaven models itself after Tao;
Tao models itself after Nature.

लाओत्से ने चार आदर्श बताये हैं। ताओ महान है, स्वर्ग महान है, पृथिवी महान है और सम्राट भी। पहले इन चारो का लाओत्से का अर्थ समझ लें।

ताओ परम आदर्श है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं है। ताओ का अर्थ है जीवन के आत्यतिक नियम के अनुसार हो जाना, कोई विरोध न रह जाए अस्तित्व में और स्वय में।

हमारा जीवन, जैसा है, प्रतिपल विरोध है। हम जीते कम, जीवन से लड़ते ज्यादा हैं। जीवन हमारे लिए एक संघर्ष है, एक स्ट्रगल है, एक छीनाझपटी है। वह एक प्रसाद नही है, एक अनुकम्पा नही है, एक द्वन्द्व है। जो भी हमें पाना है, वह हमें छीनना है, झपटना है। अगर हम न झपटें, न छीनें, तो खो जाएगा। और हमें लगता है ऐसा कि जो जितना छीन लेते हैं, उतना ज्यादा पा जाते हैं। और जो खड़े रह जाते हैं, छीनते नही, संघर्ष नहीं करते, युद्ध मे नही उतरते, वे हार जाते हैं।

लाओत्से की दृष्टि बिलकुल विपरीत है। लाओत्से कहता है, जो छीनेगा, झपटेगा, वह और कुछ भला पा ले, जीवन से वंचित रह जाएगा। धन पा ले, यश पाले, पद पा ले, लेकिन जीवन से वचित रह जाएगा। और जब कोई जीवन को चुका के पद पा लेता है तो उससे दयनीय कोई भी नही होता। और जब जीवन की कीमत पर कोई धन कमा लेता है तो उससे ज्यादा दरिद्र कोई नही होता। और जो जीवन को बेचके यश कमाता है, आखिर में पाता है हाथ में राख के सिवाय कुछ भी नही है। अंततः जीवन के मूल्य पर कुछ भी पाया गया पाया गया सिद्ध नहीं होता, खोया गया सिद्ध होता ह। लाओत्से कहता है, जीवन को पाना हो तो छीना-झपटी उसका उपाय नही है। फिर क्या उपाय है?

उपाय है ताओ के अनुकूल होते चले जाना, उपाय है जीवन की वह जो सरिता है, जो धारा है, उसमें तैरना नही बल्कि बहना, उससे लडना नही, उसके साथ एक हो जाना, और वह सरिता जहा ले जाए वही चले जाना। क्योंकि जिनको जीवन पर भरोसा नहीं. उनका फिर किसी चीज पर भरोसा नहीं हो सकता। जीवन आपको जन्म देता है, जीवन आपकी श्वास है, जीवन आप के हृदय की धड़कन है। अगर आपका जीवन पर भी भरोसा नहीं है, जिससे आपका हृदय धड़कता है और जो आपके खून में बहता है और जो आपकी श्वांस में सरकता है, अगर उसपर भी भरोसा नहीं है, तो फिर आपका किसी पर भरोसा नही हो सकता। अगर लाओत्से

को हम समझें तो लाओत्से के लिए श्रद्धा का यही अर्थ है। यह अर्थ बडा गहरा है — जीवन के प्रति भरोसा, ट्रस्ट इन लाइफ।

लाओत्से यह नही कहता है कि ईश्वर में विश्वास करो। ईश्वर का हमें कोई पता ही नही है। और जिसका पता ही नही है, उसका विश्वास कैसे होगा? और होगा भी तो झूठा होगा।

इसलिए जगत में दो तरह के लोग हैं: अविश्वासी और झूठे विश्वासी। तीसरे तरह का आदमी खोजना मुश्किल है। और अविश्वासी ज्यादा ईमानदार हैं झूठे विश्वासियो से। क्योंकि अविश्वासी आज नही कल विश्वास पर पहुंच भी सकता है; लेकिन झूठे विश्वासी कभी विश्वास पर नही पहुच सकते। क्योंकि झूठे विश्वासियो को तो यह खयाल है कि उनमें तो श्रद्धा है ही। जिस ईश्वर को आप जानते नही है, उसमें श्रद्धा हो नही सकती। कितना ही झुठलायें और कितना ही समझाएं अपने को, कितना ही अपने ऊपर सिद्धान्तों का आवरण ओढ़ें और कितना ही अपने हृदय को दबायें और कितनी ही अपनी बुद्धि को कहे कि संदेह मत उठा, लेकिन जिसे आप जानते नही हैं उस पर आपकी श्रद्धा हो नही सकती। श्रद्धा आप कर सकते हैं, लेकिन श्रद्धा हो नही सकती। गहरे में अश्रद्धा मौजूद ही रहेगी। केंद्र पर अश्रद्धा मौजूद ही रहेगी।

और परिधि की श्रद्धा का कोई भी मूल्य नही है। जब तक कि आत्मगत न हो, जब तक कि भीतर तक उसका तीर प्रवेश न कर जाए, जब तक आपके भीतर ऐसी कोई जगह न रह जाए जहा तक श्रद्धा प्रविष्ट न हुई हो, सब कुछ श्रद्धा से भर जाए, रोआ-रोआ प्राणो का श्रद्धा मे डूब जाए, संदेह को जरा भी सुविधा न रह जाए, तब तक श्रद्धा का कोई मूल्य नही है। हम श्रद्धा के वस्त्र ओढ़े हुए होते हैं, आत्मा हमारी अश्रद्धा की होती है।

इसलिए आस्तिक से आस्तिक आदमी को थोडा खरोचे तो अश्रद्धा निकल आएगी। जिन्दगी मे खरोच कभी-कभी अपने आप लग जाती है और अश्रद्धा निकल आती है। दुख आता है और आदमी कहने लगता है, ईश्वर का भरोसा डगमगा गया। खरोच लग गई। पराजय हो गई, हानि हो गई, सफलता न मिली, खरोंच लग गई। श्रद्धा डगमगा जाती है।

और इसी कारण जिनको हम श्रद्धालु कहते है, वे श्रद्धा के सम्बन्ध में बात करने से भी भयभीत होते हैं। नास्तिक से चर्चा करने में भी उनकी आत्मा थर्राती है। क्या डर हो सकता है नास्तिक से आस्तिक को? यह बडे मजे की बात है कि नास्तिक आस्तिक से चर्चा करने से नही घबड़ाते, परन्तु आस्तिक नास्तिको से चर्चा करने में घबड़ाते हैं। निश्चित ही नास्तिक की अश्रद्धा आस्तिक की श्रद्धा से ज्यादा मजबूत मालूम होती है। नास्तिक का संदेह ज्यादा प्रामाणिक मालूम होता है आस्तिक के विश्वास से। और कोई छोटा सा नास्तिक भी आपकी आस्तिकता

को हिला दे सकता है।

सच यह है कि आप आस्तिक हैं नहीं। आस्था इतनी सस्ती नहीं है। वह मां के साथ दूध पीने में नही मिलती है, न मा के खून से आती है, न समाज के शिक्षण से मिलती है, न धर्मशास्त्रों से मिलती है। आस्था इतनी सस्ती बात नही है। और हम एक ऐसा असभव कृत्य करने मे लगे हैं हजारों वर्ष से कि उस पर श्रद्धा करना चाहते हैं जिसे हम जानते ही नही।

और तर्क हमारा बड़ा मजेदार है। जिसे हम जानते नही, उसपर हम श्रद्धा इसलिए करना चाहते हैं कि हम उसे जान सके। आस्तिक लोगो को समझाते हुए सुनाई पड़ते हैं कि अगर श्रद्धा करोगे तो ही जान पाओगे। और मजा यह है कि श्रद्धा बिना जाने हो नही सकती। यह सारा भवन ही बेबुनियाद है। जानकर ही श्रद्धा हो सकती है। न जाने तो सदेह बना ही रहेगा। सदेह का मतलब ही इतना है, अगर हम गहरे मे खोज करें तो सदेह का मतलब ही इतना है कि आपको पता नहीं है इसलिए सदेह है। सदेह अज्ञान है।

इसलिए अज्ञान मे श्रद्धा हो ही नही सकती। और अगर अज्ञान में भी श्रद्धा हो जाए तो इसका मतलब हुआ कि फिर ज्ञान मे भी सदेह हो सकता है। अज्ञान मे अगर श्रद्धा हो सकती है तो फिर ज्ञान मे क्या होगा? फिर ज्ञान के लिए कुछ बचा ही नही। अज्ञान के साथ होता है सदेह। अज्ञान टूट जाए तो सदेह टूट जाता है। ज्ञान के साथ आती है श्रद्धा। ज्ञान का आगमन हो तो श्रद्धा छाया की तरह प्रवेश करती है।

इसे हम ऐसा समझे कि सदेह भीतर के अज्ञान का सिर्फ सकेत है, सूचक है। श्रद्धा भीतर के ज्ञान की सूचक है। ज्ञान और अज्ञान तो होते है भीतर, सूचनाए बाहर तक आती है। सदेह सूचना है। श्रद्धा भी एक सूचना है। जो ऊपर की सूचनाओ को बदल लेना है, वह अपने को धोखा दे रहा है। भीतर तो है अज्ञान, सदेह की खबर आ रही है और आप अपने ऊपर, अपने वस्त्रो में श्रद्धा या राम-नाम लिखकर चदरिया ओढ लेते है। वह भीतर से सदेह आता ही चला जाएगा। आपकी चादर पर लिखा है जो राम-नाम, वह सदेह को मिटा न पाएगा। वह संदेह अथेन्टिक है, प्रामाणिक है। वह आपसे उठ रहा है। और यह चदरिया आप बाजार से खरीद लाये है, इसे ऊपर से आपने ढाक लिया है।

इससे दूसरे को धोखा हो सकता है। लेकिन सच तो यह है कि दूसरे को भी धोखा होने की कोई जरूरत नही है। क्योंकि जिसके भीतर से राम उठ रहा हो, उसके लिए चादर महत्त्वपूर्ण न रह जाएगी। और अगर ओढनेवाले को चादर बहुत महत्वपूर्ण है तो दूसरे को भी धोखे में पड़ने की कोई जरूरत नही है। यह अपने ही संदेह को ढाकने की व्यवस्था है। लेकिन दूसरा धोखे में पड़ भी जाए, मजा तो यह है कि हम खुद भी धोखे में पड़ जाते हैं। अपने ही ऊपर ओढ़ी हुई चादर को

देखकर कहते हैं कि श्रद्धा से भरे हुए हैं। सब तथाकथित श्रद्धाओं के भीतर संदेह का कीड़ा होता है। और जब तक वह मिट न जाए, तब तक श्रद्धा का कोई आगमन नहीं है।

इसलिए सारी दुनिया को सिखा-सिखाकर कि ईश्वर पर भरोसा करो, ईश्वर पर भरोसा करो, धर्म को हम नही ला पाये, केवल लोगो को बेईमान बना पाये। उस पर भरोसा किया कैसे जा सके, जिसे हम जानते न हो। उस पर भरोसे का शिक्षण दे-देकर हमने लोगो को झूठे धार्मिक बनाने में सफलता पा ली है। इसलिए सारी जमीन धार्मिक और एक धार्मिक आदमी नही है। सब धार्मिकता ओढ़ी हुई है।

लेकिन धार्मिक आदमी अभी भी चिल्लाए चले जाते हैं, वे कहते है कि हर बच्चे को दूध के साथ धर्म पिला दो। उन को डर लगा रहता है पूरे वक्त कि जरा बच्चे में अपनी बुद्धि आई तो फिर चदरिया ओढाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। वह बुद्धि भीतर से सवाल उठाने लगेगी। तो इसके पहले कि बुद्धि जगे तुम जहर डाल दो, तुम्हे जो पिलाना है पिला दो, उसको इतने गहरे मे पड जाने दो कि कल उसकी वुद्धि भी अगर सवाल उठाए तो भी उसे ऐसा लगे कि भीतर से नही आ रहा है। और उसकी झूठी श्रद्धा जो बाहर से डाली गई है, वह इतने गहरे में जड़ जमा ले कि उसे धोखा होने लगे कि भीतर से आ रही है।

इसलिए हम छोटे-छोटे अबोध बच्चो के साथ जो बड़े से बडा अपराध कर सकते है, वह करते है। हम उन्हे ज्ञान के मार्ग पर नही ले जाते, हम उन्हे विश्वास के मार्ग पर ले जाते हे। विश्वास धोखा है ज्ञान का। विश्वास श्रद्धा नहीं है। विश्वास अधापन है। श्रद्धा आख का नाम है। इस जगत में जो गहरी आंख हो सकती है, वह श्रद्धा है।

लाओत्से ईश्वर की बात नही करता है। और लाओत्से की चितना बहुत वैज्ञानिक है। और अगर कभी इस जमीन पर कोई धर्म आता हो तो उसे कही लाओत्से की सीढियो से आना पडेगा। बाकी सीढिया असफल साबित हुई है।

लाओत्से कहता है, ईश्वर से तो क्या सबध होगा आपका? इतना दूर है मामला। निकट से शुरू करो। दूर की बात मत करो, निकट से शुरू करो। कल दूर भी पहुच सकते हो, लेकिन यात्रा निकट से शुरू करो। जीवन निकटतम है। और अगर मेरा जीवन पर ही भरोसा नही है, उससे भी मैं छीना-झपटी कर रहा हू, तो फिर मेरा कोई भरोसा किसी पर नही रह सकता। जीवन तो हमारे रग-रग मे समाया हुआ है। जीवन तो हम है, जीवन के कारण हम हैं। जीवन का होना भी हमारा होना है। हमारे होने में जीवन छिपा है। इस पर भी हमारा भरोसा नही है। ऐसा जो गैर-भरोसा है, वह तोडा जा सकता है। क्योंकि जीवन से परिचय कोई दूर की बात नही है, किसी आकाश पर बैठे ईश्वर की बात नही है। यहां रग-रग में दौड़ते हुए जीवन की बात है। इससे सम्बध बन सकता है।

लाओत्से चार आदर्शों की बात करता है। एक-एक क्रम से वे आदर्श हम समझें, तो अन्ततः जो निकटतम है और दूरतम मालूम पडता है, उस तक हम पहुच सकते हैं। कहता है : ताओ महान है, स्वर्ग महान है, पृथिवी महान है, सम्राट महान है। ये सीढ़ियाँ हैं।

ताओ है श्रेष्ठतम, अंतिम। लेकिन ताओ हमारी पकड के बहुत दूर है। हमारे हाथ वहा तक नही पहुच पाएंगे। यद्यपि वह हमारे हाथों के भीतर भी छिपा है, लेकिन यह उस दिन की बात है जब हमारी पहचान हो जाएगी उससे। अभी तो ताओ बहुत दूर है।

दूसरी सीढ़ी पर लाओत्से रखता है स्वर्ग को। स्वर्ग का अर्थ है आनन्द का सूत्र। स्वर्ग का अर्थ है महासुख। ताओ तो हमारे लिए दूर है, लेकिन सुख, आनन्द, उतना दूर नही है। उसकी थोडी सी भनक कभी हमारे कान में पडी है, कभी अचानक सुबह आख खुली है और आकाश में आखिरी तारा डूबता हुआ दीखा है और कोई चीज हृदय के अदर कंपित हो गई है। वह स्वर्ग है। कभी काले बादल आकाश मे घिरे हैं और झील के किनारे उनकी छाया झील में बन गई है और आपके भीतर भी कोई प्रतिबिंबित हो उठा है एक क्षण को। कि अंधेरी रात में, अमावस में रात की साय-साय आपके हृदय को स्पर्श कर गई है, भीतर सितार के तार पर चोट पड गई है क्षण भर को। ऐसे क्षण शायद जीवन में दस-पाच हो। उन क्षणो में हमें स्वर्ग की जरा सी झलक मिलती है। किसी के प्रेम में क्षण भर को सब कुछ भूल गया है जगत और वह प्रेम का क्षण ही शाश्वत होकर ठहर गया है। घडी बन्द हो गई है, समय रुक गया है, और लगा, सब खो गया है। बस प्रेम ही है, शायद उस क्षण के लिए हम सब दान कर सकते हैं, सब खोने को तैयार हो सकते हैं। ऐसे कुछ क्षण अकस्मात हमें स्वर्ग की झलक मिलती है।

झलक कह रहा हू, स्वर्ग का हमें पता नही है। स्वर्ग भी हमसे बहुत दूर है। और स्वर्ग से लाओत्से का अर्थ है आनन्द का सूत्र। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो ताओ की खोज कर रहा हो, सत्य की खोज कर रहा हो। लेकिन ऐसा आदमी भी मिलना मुश्किल है जो आनन्द की खोज न कर रहा हो। ताओ बहुत दूर है। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर सत्य में उत्सुक होते हैं। लेकिन बुद्ध के पास जो लोग आते हैं, बुद्ध के अनुगमन में जो चलते हैं, वे भी सत्य में उत्सुक नही होते, वे बुद्ध के आनन्द में उत्सुक होते हैं। वह नम्बर दो की सीढी है।

बुद्ध के पास सारिपुत्त आया है। सारिपुत्त कहता है, भगवान, कैसे ऐसा ही आनन्द मुझे मिले?

बुद्ध जब तलाश कर रहे थे गुरु की, तब वे अनेक गुरुओं के पास गये हैं। लेकिन वे पूछते हैं कि सत्य क्या है? एक योगी ने उन्हें कहा, आनन्द को खोजो। बुद्ध ने कहा, अगर सत्य को पाकर आनन्द मिलता हो तो ठीक। सत्य को पाकर आनन्द

खोता हो तो भी ठीक; क्योंकि झूठे आनन्द में समय को व्यर्थ करने की मेरी इच्छा नहीं है। अगर असत्य के साथ आनन्द मिलता हो तो मैं लेने को राजी नहीं हूं। क्योंकि असत्य आनन्द का क्या अर्थ? वह एक स्वप्न होगा। आनन्द अगर सत्य हो तो ही सार्थक है। इसलिए आनन्द की बात छोड़ देता हूं; सत्य की बात काफी है। सत्य क्या है?

लेकिन सारिपुत्त बुद्ध के पास आया है तो वह पूछता है: आपको जो आनन्द मिला वह आनन्द हमें कैसे मिल जाए?

आनन्द हमारी समझ में आ सकता है। वह भी काफी दूर है। और जब भी हम आनन्द की बात करते हैं, हमारा मतलब सुख होता है, आनन्द नहीं। हमारी भाषा-कोश में भी आनन्द का अर्थ सुख लिखा होता है। सुख सिर्फ आनन्द की झलक है, आनन्द नहीं है। जैसे आकाश में चांद हो और झील में हमने चांद को देख लिया हो तो वह जो झील का चांद है वह सुख है, और आकाश का जो चांद है वह आनन्द है।

लेकिन झील के चांद का क्या है? जरा सा एक कंकड़ पड़ जाए झील में, वह छार-छार हो जाएगा। वह चांद टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाएगा। एक छोटा सा कंकड़ उस चांद को मिटा देगा। एक मछली की छलांग और झील का दर्पण कंप जाएगा, वह चांद खंड-खंड हो जाएगा। हमारा सुख ऐसा ही है। जरा सा कंकड़, सब छार-छार हो जाता है। जरा सी एक मछली की छलांग, सब टूट जाता है। और हम छाती पीटते रह जाते हैं कि सब सुख खो गया। हमारा सुख आनन्द की झलक है, प्रतिबिंब है।

लेकिन जिस आदमी ने देखा ही न हो चांद, जब भी देखा हो उसे झील में ही देखा हो, तो हम चांद की बात करें और वह अपनी झील का चांद समझे तो इसमें कुछ अनहोनी नहीं है। लेकिन फिर भी, झील का चांद ही सही, चांद से किसी तरह जुड़ा है। इसलिए आनन्द की बात हमें थोड़ी सी समझ में आ सकती है। हम सुख से जुड़े हैं। पर आनन्द भी बहुत दूर है।

और दूर इस कारण भी कि आनन्द की पहली शर्त जो है, वह बहुत कठिन है। और वह यह है कि जब तक हम सुख का त्याग न कर दें। स्वभावतः जो आदमी झील के चांद को छोड़ने को राजी न हो, उसकी आंखें आकाश के चांद की तरफ उठेंगी भी कैसे? झील के चांद को ही जो चांद समझ रहा हो और वहां से आंखें हटाने को राजी न हो, वह आकाश को चांद को तरफ देखेगा कैसे? माना कि झील का चांद आकाश के चांद से जुड़ा है, लेकिन विपरीत है। सब प्रतिबिम्ब विपरीत होते हैं। रिफ्लेक्शन है, उलटा है।

इसलिए अगर हम इस झील के चांद की तलाश में लगे रहें तो एक बात पक्की है कि आकाश का चांद हमें कभी भी नहीं मिलेगा। हमें इसके विपरीत चलना

होगा। इसके हम जितनी उलटी यात्रा करेंगे, उतना ही हम आकाश के चाद के पास पहुचेंगे। तप का यही अर्थ है। वह सुख की विपरीत यात्रा है। चांद की खोज है झील के चाद का त्याग। यद्यपि हमें समझ मे आता है आनन्द, लेकिन जिसके कारण समझ में आता है, वही बाधा भी है। सुख ही समझने का कारण है, सुख ही हमारी बाधा है, अडचन है। आनन्द को पाना हो तो सुख छोड़ना पडेगा। दुख को हम सब छोडना चाहते है। वडे मजे की बात है, दुख को हम छोडना चाहते हैं और दुख हमे कभी नही छोडता। सुख को हम पकडना चाहते हैं और सुख को हम कभी पकड़ नही पाते। लेकिन कितनी बार यह अनुभव होता है, और इस अनुभव से हम कोई निष्कर्ष नही निकालते: दुख को हम छोड़ना चाहते हैं और छोड नही पाते, सुख को हम पकडना चाहते है और पकड़ नही पाते।

तप इससे उलटा प्रयोग है। तप इस बात का प्रयोग है कि अब तक सुख को पकडने की कोशिश की और नहीं पकड पाए, अब सुख को छोड़ेंगे; अब तक दुख से छूटने की कोशिश की और दुख को नही छोड पाये, अब दुख को पकडेंगे। और बडे मजे की बात है कि जैसे सुख को पकड़ने से सुख नही पकड मे आता, वैसे ही दुख पकडने से दुख पकड मे नही आता। और जैसे दुख को छोडने से दुख नही छूटता, वैसे ही सुख को छोड़ने से सुख नहीं छूटता। असल मे जिसे हम पकड़ना चाहते हैं, वही छूट जाता है। और जिसे हम छोड़ देते है, वह हमारी पकड़ के भीतर आ जाता है।

लेकिन यह उलटा नियम अनेक-अनेक बार अनुभव मे आने पर भी हम कभी इसका विज्ञान नही बना पाते। वही विज्ञान धर्म है। सामान्य आदमी के अनुभव और वैज्ञानिक के अनुभव में इतना ही फर्क है। आपको अनुभव होते है, अनुभव आणविक रह जाते है — एक अनुभव, दो अनुभव, तीन अनुभव। वैज्ञानिक बुद्धि तीन अनुभवो के बीच जो सार-सूत्र है, उसको खोज लेती है। अनुभव को छोड देती है। जिन्दगी मे मुझे हजार अनुभव हुए हो, लेकिन उनकी राशि इकट्ठी करता चला जाऊ, आणविक राशि, सब पर लगा दू एक, दो, हजार अनुभव हुए, लेकिन हजार अनुभव जिस नियम के कारण हो रहे हैं, उसका अगर पता न लगा पाऊ, तो मै खोजी नही हू। वैज्ञानिक बुद्धि का इतना ही अर्थ है कि हजार जो अनुभव हुए, उनका सार-सूत्र हम खोज लें।

न्यूटन के पहले भी वृक्ष से फल जमीन पर गिरता था। और सेब का फल बड़ा पुराना इतिहास है उसका, अदम को भी ईव ने जो पहला फल तोडकर दिया था, वह सेब का ही फल था। तो अदम के जमाने से लेकर सदा सेब का फल जमीन पर गिरता रहा है। लेकिन गुरुत्वाकर्षण का नियम न्यूटन ही निकाल पाया।

फल रोज गिरते थे। हजारो लोगो ने फलो को गिरते देखा था। लेकिन यह अनुभव नियम नही बन पाया। लेकिन न्यूटन ने पहली दफा पूछा कि यह फल

नीचे ही क्यों गिरता है ? यह पागलपन का सवाल है। वैज्ञानिक हमेशा पागलपन का सवाल पूछते है। सामान्य आदमी नही पूछते; इसलिए सामान्य आदमी सामान्य आदमी रह जाते हैं। यह बिलकुल पागलपन का सवाल है न्यूटन का यह पूछना कि फल नीचे ही क्यों गिरता है ? हम बुद्धिमान लोग कहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि तो ठीक है, फल नीचे गिरता ही है, बात खत्म हो गई। इसमें और क्या पूछने का है ? लेकिन न्यूटन ने कहा कि सभी फल नीचे गिरते हैं तो जरूर नीचे गिरने में कोई राज होना चाहिए। **जमीन खींचती है,** नही तो फल नीचे नहीं गिर सकते। तो जमीन के खीचने का नियम सार है। फिर सब फल बेकार हो गये, गिरे हो या न गिरे हो, पत्थर गिरे हो या न गिरे हो, सब खत्म हो गए। सब गिरने के सब अनुभवो में से एक सार ग्रेवीटेशन का, गुरुत्वाकर्षण का हाथ में आ गया।

धर्म भी एक विज्ञान है, अतस जीवन का। जितना सुख को पकडो, पकड में नही आता; जितना दुख से भागो, भाग नही पाते; दुख को छोडो छूटता नहीं, सुख को पकडो, पकड में नही आता। कितने-कितने जन्मो का आदमी का अनुभव है, लेकिन हम कभी पूछते नही कि इसके पीछे कारण क्या होगा ? क्या बात है कि जिसे पकडते है वह पकड में नही आता और जिसे छोड़ते है वह छूटता नहीं ? छोडने की कोशिश निमत्रण मालूम पडती है, छोड़ने की कोशिश बुलावा है। और पकडने की कोशिश, मालूम होता है, जिसे हम पकड़ना चाहते है उसे रिपेल करती है, उसे हटाती है।

इसे जीवन मे जरा चेष्टा या प्रयोग करके देखें। किसी को भुलाना चाहते हैं मन से, जितना भुलाएगे उतना मुश्किल हो जाएगा, जितना भुलाएगे उतनी याद आयेगी। **भुलाने की कोशिश भी एक ढंग की याद है।** बैठे है आंख बन्द करके, भुला रहे है, मगर भुलाना भी याद करना है। तो जिसे भुलाना चाहते हैं, वह भूलता नही है। और कभी इससे उलटा करके देखें, प्रयासपूर्वक किसी की याद करके देखें। और आप पाएगे, याद हाथ से छूट गई। आख बन्द कर लें, जिस चेहरे को आप खूब प्रेम करते है उस चेहरे को आप पूरी तरह याद करें, पूरा एकाग्र करें, सारी ताकत लगा दें कि वह चेहरा कैसा है; पहली दफा आपको पता चलेगा कि आपके खुद के प्रेमी या प्रेयसी का चेहरा आपकी याद में नही पकड़ाता। आप चकित हो जाएगे कि जो चेहरा इतना निकट है, जो सपनों में छाया रहता है, वह इस भाति क्यो खो गया है ! अपनी मा का चेहरा भी याद करना आसान नहीं है कोशिश से। कोशिश करके देखेंगे, तब आप ही पता चलेगा कि खो गया चेहरा। रेखाए डगमगा जाएंगी, धुंधली हो जाएगी; चेहरा खो जाएगा। जिसको चेष्टा से याद करेंगे, वह खो क्यों जाता है ?

शायद आपकी चेष्टा विकर्षण हो जाती है। जिसको चेष्टा से आप भुलाना चाहते हैं, वह याद क्यों आ जाता है ? कोई विपरीत नियम काम कर रहा है, लौं

ऑफ रिवर्स इफेक्ट काम कर रहा है। विपरीत परिणाम आ जाते हैं। इसको जो समझ लेगा, वह फिर दुख को हटाना न चाहेगा, वह फिर सुख को बुलाना न चाहेगा। **और जो दुख को हटाता नहीं है, और सुख को बुलाता नहीं, वह आनन्द में प्रवेश कर जाता है।**

आनन्द का मतलब ही है, अब दुख आते नहीं है, सुख जाता नही। आनन्द का मतलब ही इतना है कि अब दुख आते नही, सुख जाता नही।

लेकिन यह एक कीमिया है, अलकेमी है, एक भीतरी रसायन है।

हम अपने ही हाथो नियम के विपरीत चलकर दुख निर्मित करते है। और हम अपने ही हाथो नियम के विपरीत चलकर सुख को नष्ट करते है। अगर हम आदमी को देखें और उसकी जिन्दगी में झांके तो हर आदमी अपने लिए दुख के गड्ढे खोद रहा है। हर आदमी। उसको जरा भी पता नही है कि वह क्या कर रहा है। वह गड्ढे खोद रहा है। और जब वह उस गड्ढे में गिरता है, तब उसे पता चलता है। तब वह चिल्लाता है कि न मालूम किस दुष्ट ने यह गड्ढा खोद दिया! हर आदमी दुख को बुला रहा है और हर आदमी सुख को तोड रहा है। और जब उसका सुख खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाता है, तब वह छाती पीटता है कि कौन दुश्मन मेरे पीछे पडा है, प्रकृति निर्दय मालूम पडती है, परमात्मा कठोर है! लेकिन आप इस गहरे नियम को समझ लें तो आप जो गड्ढे खोदते है वे बन्द हो जाएगे और अपने हाथ जो सुख की प्रतिमा खडित करते है, वह भी बन्द हो जाएगी।

दूर है, लेकिन, आनन्द भी जो सुख और दुख दोनो के पार है। वह भी दूर है।

तीसरा सूत्र लाओत्से कहता है; वह और भी आपको आपके पास लाता है। दि अर्थ इज ग्रेट, पृथिवी महान है। आनन्द भी बहुत दूर है। पृथिवी से अर्थ सुख का है। आनन्द बहुत दूर है। उस तक भी हम नही जा सकते है। पृथिवी बहुत ग्रॉस है, पृथिवी का मतलब है बहुत स्थूल। सूक्ष्म है आनन्द, ताओ सूक्ष्मतम है। और पृथिवी है पदार्थ। ठोस है। सुख को हम पकड पाते हैं। सुख स्थूल है, और हमारी आखो में आ जाता है, हमारे हाथो में आ जाता है, हमारे जाल में पड जाता है। लेकिन सच में क्या है? सुख भी क्या हमारे हाथ मे पड पाता है?

थोड़ा गौर से देखें तो पडता हुआ मालूम पडता है, कभी पड नही पाता। बस करीब-करीब होता है, पर कभी हम पा नही पाते उसे भी। **सुख भी हमारा आशा है, अनुभव नहीं।** कठिन होगी यह बात समझना। हम सबको यह खयाल होता है, इसमें भी बहुत भरोसा रहता है कि कम से कम सुख का तो अनुभव है, न सही आनन्द का। मगर सुख का भी हमे अनुभव नही है, सिर्फ आशा है। सुख हमेशा कल मिलनेवाला होता है, आज कभी नहीं मिलता। करीब-करीब होता है, पहुचे-पहुंचे, ऐसा लगता है कि बस क्षण भर की देरी है और पहुंचे जाते हैं; लेकिन कभी

आपने खयाल किया कि जब भी आप पहुंचते हैं, तब हताशा हाथ लगती है, निराशा हाथ लगती है। जिसे चाहा था, जिसे सोचा था, जिसे खोजा था, वह हमेशा डिस-अपॉइंटिंग, हमेशा अपेक्षा तोड़नेवाला सिद्ध होता है। सब सुख डिसइल्यूजनमेन्ट सिद्ध होते हैं। पास जाकर भ्रम टूट जाता है।

कितनी आशा की थी कि मित्र घर आ रहा है, पता नही कितना सुख होगा! और फिर मित्र आ जाता है, और कही कुछ नही होता। फिर घडी, दो घडी व्यर्थ की बात करके कि कैसे हो, कैसे नही हो, घडी, दो घडी के बाद पता लगता है कि इसी आदमी के लिए इतना रास्ता देखा था; सब खत्म हो गया, राख हाथ लगी! मित्र घर आ गया, कुछ और नही आया। दिन, दो दिन के बाद लगता है कि कब यह आदमी चला जाए। और ऐसा नही है कि यह कोई नया अनुभव है। दो महीने बाद इसी आदमी का फिर हम ऐसे ही रास्ता देखेंगे। और दो महीने पहले भी ऐसे ही देख चुके है। आदमी अनुभव से कुछ निष्कर्ष नहीं लेता है।

सुख हमारी आशाओं में है। लगता है कि बस अब मिला ही जाता है। इन्द्रधनुष जैसा है, दूर-दूर तो बनता है, पास जाओ तो खो जाता है। निकट पहुंचो पकड़ने को इन्द्रधनुष को, कुछ पकड़ में नही आता। पकड भी आए तो थोडी सी पानी की बूंदे हाथ को छू जाए और सब समाप्त हो जाए। वे रंग जो इस शान मे आकाश में तने थे, उनकी छाप भी, हलकी सी छाप भी हाथ पर नही पडती।

करीब-करीब सुख इन्द्रधनुष जैसा है। वह भी हमारा अनुभव नही, हमारी आशा है। सोचते है कि मिलेगा, लेकिन मिलता नही है।

और आदमी इतना होशियार है कि कभी-कभी ऐसा भी सोचने लगता है बाद में कि मिला था। इसे थोड़ा समझ ले। मिलता कभी नही है। या तो सोचता है कि मिलेगा भविष्य में या फिर कभी-कभी पीछे लौटकर सोचता है कि मिला था अतीत मे। लेकिन वर्तमान मे सुख का कोई सस्पर्श नही होता। कभी आपको ऐसा कोई आदमी मिला है जिसने आपको कहा हो कि मै सुखी हू? हा, ऐसा आदमी आपको मिलेगा जो कहे कि मै सुखी था। ऐसे आदमी आपको मिलेंगे जो कहे कि ज्यादा देर नही है, मै सुखी हो जाऊगा। ऐसा आदमी आपको नहीं मिल सकता जो कहे, अभी, यही मे सुखी हू, इसी क्षण मै सुखी हू। और इसी क्षण अगर कोई सुखी नहीं है तो वह अपने को धोखा दे रहा है।

लेकिन धोखे जरूरी हैं। क्योकि जहा सुख भी न हो और सुख की आशा भी न हो तो आदमी जीए कैसे? धोखे बडे आवश्यक हैं। माना कि झूठे है, लेकिन जीने के लिए सहारे है। बूढा आदमी कहता है, बचपन स्वर्ग था। बच्चे से पूछो, तब पता चलेगा। बच्चों से पूछो, तब सब बूढे झूठे मालूम पडेंगे। क्योकि एक बच्चा नहीं कहता है कि बचपन स्वर्ग है। सब बच्चे जल्दी में हैं कि कैसे जवान हो जाए। स्वर्ग जवानी में मालूम पडता है। बच्चे कमजोर मालूम पडते है। बच्चो से पूछो।

आप अपने बचपन की याद मत करना, वह झूठी है; आपने उसे खडी कर ली है। वह कल्टीवेटेड है, वह आपकी संयोजित है। आप याद नही कर सकते हैं अपने बचपन की। आप जब अपने बचपन की याद करते हैं, तब आपने जो कविताए वगैरह पढी हैं बचपन के सम्बन्ध मे, उसे समझते हैं कि वह आपके बचपन की बाबत है।

सच तो यह है कि मनसविद कहते हैं कि आदमी चार साल की उम्र के पहले का स्मरण नही कर पाता है। और उसका कारण यह है कि चार साल तक का जीवन बच्चे का इतना दुखद है कि उस स्मृति को रखना मनुष्य के लिए हितकर नही है। इसलिए आदमी भूल जाता है। आपको याद आती है पीछे लौटकर तो ज्यादा से ज्यादा चार साल तक की। बहुत बुद्धिमान हुए तो तीन साल तक का आपको स्मरण आएगा। लेकिन वे तीन साल बिलकुल ब्लैंक हो जाते है, भूल जाते हैं। क्या हो गया ?

मनसविद कहते है कि जब अति दुख होता है मन मे तो उसकी स्मृति रखनी मन मे उचित नहीं है। इसलिए मन उसकी स्मृति पोछ डालता है। खतरनाक है, वह स्मृति पत्थर की तरह छाती पर बैठ जाएगी। इसलिए मन की आयोजना है कि अति दुख हो तो उसे भुला देते हैं। वह अचेतन में डूब जाता है।

हा, बच्चे को बेहोश किया जाए, हिप्टोनाइज किया जाए, सम्मोहित किया जाए, तो याद आ जाती है। लेकिन सम्मोहन में कोई बच्चा नही कहता है कि मै स्वर्ग में था। और सब बूढे कहते हैं कि हम स्वर्ग मे थे, बचपन बडा सुखद था। असल में आपको बचपन का अब कोई खयाल नही रह गया है। यह बचपन आपने निर्मित किया हुआ है।

पहले आदमी भविष्य में सुख को रखता है, जब तक उम्र शेष रहती है। और जब मौत करीब आने लगती है, तब भविष्य तो समाप्त हो जाता है, तब भविष्य में तो सिर्फ मौत दिखाई पडती है; इसलिए आदमी पीछे अपने सुख को रखने लगता है। एक बात पक्की है कि **जहां आदमी है, वहां सुख नहीं होता**। वह फिर पीछे रख लेता है। फिर वह सोचता है कि कैसा आनन्द था। फिर ऐसा लगता है, बचपन में सभी कुछ आनन्द था।

अगर बचपन इतना आनन्दपूर्ण हो तो बच्चे बचपन छोड़ने से इकार कर दें। लेकिन बच्चे जल्दी बड़ा होना चाहते है। यहा तक कि बच्चे जितने बड़े होते हैं, उससे भी ज्यादा अपने को बड़ा बताना चाहते हैं। क्योकि बड़ो के पास ताकत मालूम पड़ती है, स्वर्ग मालूम पड़ता है, सुख मालूम पडता है; नियत्रण, मालकियत, सब उनके पास मालूम पडता है। बच्चा तो एकदम दीनहीन, कमजोर मालूम पड़ता है। उसको लगता है कि कैसे जल्दी-जल्दी बड़ा हो जाए।

इसलिए बच्चे बड़ो की आदतें सीख लेते हैं। अगर बच्चे सिगरेट पीते हैं तो इसका

कारण यह नहीं है बच्चों को सिगरेट में सुख मिलता है। जरा भी नहीं मिलता है। बच्चों को बडी तकलीफ मिलती है, क्योकि सिगरेट बच्चे को किसी तरह का सुख नही दे सकती। सिगरेट से सुख लेने के लिए जरा ज्यादा उम्र की मूढ़ता चाहिए। बच्चा उतना मूढ नही होता है। अभी इतनी ताजा कली है उसके मन की कि सिगरेट का धुआ सिर्फ दुख ही दे सकता है। लेकिन बच्चा उस दुख को झेल लेता है, कोई फिक्र नही करता; क्योकि सिगरेट पीते ही पावरफुल मालूम होता है।

वे जितने लोग सिगरेट पी रहे हैं, फिल्म अभिनेता हैं, राजनेता हैं, वे ताकतवर लोग हैं, वे सडको पर अपनी गाडी मे बैठे हुए सिगरेट पी रहे हैं। वह बच्चा भी जब सिगरेट अपने मुह में रख लेता है, तब उसका बचपन खो जाता है। अब वह बडों की दुनिया का भागीदार हो गया, हिस्सेदार हो गया। बच्चे सिगरेट पीना सीखते हैं, क्योकि सिगरेट जो है, वह पावर-सिम्बल है, शक्ति का प्रतीक है।

अनेक बच्चे हैं, मनसविद उनकी बाबत जानकारी रखते हैं, जो जाकर जल्दी दाढी-मूछ बढ़ाना चाहते हैं। पिता घर न हो तो उसके रेजर का उपयोग करके चेष्टा करते है कि जल्दी किसी तरह दाढी-मूछ आ जाए। कोई बच्चा बच्चा रहने को राजी नही है। भागना चाहता है बचपन से। स्कूल कारागृह से ज्यादा नही मालूम होता है। शिक्षक समाज मे सबसे बड़े चुने हुए दुष्ट मालूम पडते हैं। और यह खयाल बच्चो का कुछ दूर तक सही भी हो सकता है। क्योकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक होने की जिनमे वृत्ति होती है, वे असल में डॉमिनेट करना चाहते है, वे लोगो पर रुआब बाधना चाहते हैं। इसलिए कम तनख्वाह में भी शिक्षक राजी रहता है। क्योकि जो रस मिल रहा है, वह बहुत दूसरा है। वह किसी हिटलर, किसी नेपोलियन से कम नही है अपने क्लास मे; सारी दुनिया का सम्राट मालूम होता है।

बच्चो से अगर उनके दुख कभी पूछे जाए तो बूढो को यह भ्रम छोड देना पड़ेगा कि बचपन एक स्वर्ग है। जहा चौबीस घटे परतंत्रता अनुभव होती है, यह मत करो, यह मत करो यह मत करो, ही सुनना पडता है, जहा मा-बाप मत करो मे इतना रस लेते मालूम पडते हैं कि कई बार तो माताए यह भी फिक्र नही करती कि बच्चा क्या कर रहा है, उसके पहले ही कहती हैं मत करो, वह स्वर्ग कैसे होगा?

सब के मन में अहकार की तृप्ति अधूरी रह जाती है, वासना अधूरी रह जाती है। सब अपने अहंकार को तृप्त करने के लिए चारो तरफ उपाय खोजते हैं। बच्चो से ज्यादा सुगम उपाय और सस्ता उपाय दूसरा नहीं है। एक स्त्री के पास चार-आठ बच्चे हैं तो फिर समझो कि उसके अहकार को अब इससे और ज्यादा पुष्टि का कोई दूसरा उपाय नही है। पुष्ट हो जाएगा उसका अहकार। हर चीज में आखिरी वचन उसका है।

यह जो पीछे से खयाल आता है कि सुख था, यह धोखा है। न तो सुख पीछे हुआ है, और न आगे है; **सुख होता है सदा अभी।** और जो उसकी कला जानता है, **वह अभी सुखी होता है।**

वानगॉग से कोई पूछ रहा है कि तुम्हारा सब से श्रेष्ठ चित्र कौन सा है? वानगॉग कहता है, यह जो अभी मैं पेन्ट कर रहा हूं। वह जो पेन्ट कर रहा था, वह। वह आदमी पन्द्रह दिन बाद वापस आया देखने कि अब वह क्या कहता है। तो वानगाग दूसरा चित्र पेन्ट कर रहा था। और उस आदमी ने पूछा: तुम्हाराश्रेष्ठतम चित्र? उसने कहा कि यही। वानगॉग का यह उत्तर सुनकर उस आदमी ने कहा, लेकिन पन्द्रह दिन पहले वह चित्र जो पूरा हो गया, तुमने उसकी बाबत मे कहा था। वानगॉग ने कहा कि वह गए जमाने की बात हो गई, उससे क्या लेना-देना है? मैं अभी सुखी हूँ।

जो अभी सुखी होता है, अतीत बेमानी हो जाता है उसके लिए। आपके लिए जो अतीत में मूल्य मालूम पडता है, वह वर्तमान के दुख के कारण है। आप इतने दुखी हैं कि अब और कोई उपाय नही है। पीछे सुख को बना लेते है, आगे सुख अपना लेते हैं। ऐसी जिन्दगी आगे-पीछे में डोलती चली जाती है। एक झूठा ब्रिज, सेतु बना लेते हैं, उस पर यात्रा होती चली जाती है। और प्रतिपल जो वास्तविक जगत है, **वह चूकता चला जाता है।**

जो आदमी सुखी है, वह अभी सुखी है। और जो आदमी सुखी है, इसी क्षण जगत के शिखर पर सुखी है। लेकिन आप यह मत समझना कि अगले क्षण वह दुखी हो जाएगा। उसके शिखर कभी छोटे नही होते। हर क्षण उसका शिखर एक पीक है और उसकी कोई तुलना नही है आगे-पीछे। जब भी अतीत आपको याद आए, समझना वर्तमान दुखी है। जब भी भविष्य आपको खीचे, समझना वर्तमान दुखी है। **जब वर्तमान सुखी होता है, अतीत खो जाता है, भविष्य मिट जाता है। जब सुख होता है, तब क्षण शाश्वत हो जाता है।**

लाओत्से कहता है तीसरा महान सुख है पृथिवी। पृथिवी सुख है। लेकिन वह भी हमारी आशा है, वह भी हमें कामना है कि मिले, वासना है कि मिले।

चौथी हमारे निकटतम जो बात है, लाओत्से कहता है, सम्राट भी महान है। सम्राट लाओत्से के लिए अहकार का प्रतीक है, इगो का। ताओ बहुत दूर है, आनन्द भी काफी दूर है सुख भी मिला-मिला मालूम पड़ता है, मिलता नही; लेकिन हर आदमी अपने को सम्राट तो मानता ही है। यह मिला हुआ है। हर आदमी सम्राट तो है ही, चाहे प्रजा कोई भी न हो। इससे कोई बहुत फर्क नही पडता है। राजा होने के लिए राज्य का होना जरूरी नही है। लेकिन हर आदमी अपने भीतर राजा तो है ही। और हर आदमी छोटी-मोटी किंगडम भी बना ही लेता है। सडक पर जो भिखारी है, उसका भी अपना राज्य है, उसकी भी टेरीटरी

है। उसकी टेरीटरी में दूसरा भिखारी नही प्रवेश कर सकता है। क्योंकि उसकी अपनी सीमाएं हैं, कही दगा-फसाद न हो जाए। वे भी भिखारी नहीं हैं एकदम, उनकी भी अपनी सीमाएं हैं, राज्य है। नंगे से नगा आदमी भी किसी छोटे-मोटे राज्य का राजा है।

हमारे निकटतम जो बात है, वह है अहंकार। यह हमें मिला हुआ है। इसमें हम जीते हैं। इसमें ही हम जीए चले जाते हैं। अहंकार का मतलब क्या है? सम्राट का मतलब क्या है?

अहकार का मतलब है,, मै केन्द्र हू सारे अस्तित्व का। चाद-तारे मेरे लिए घूमते है, हवाए मेरे लिए बहती हैं, नदिया मेरे लिए दौडती हैं, पशु-पक्षी मेरे लिए गीत गाते हैं। जो कुछ भी हो रहा है कही, मै केन्द्र हू उसका। मेरे लिए सब हो रहा है। जिस दिन मैं नही, उस दिन सब बिखर जाएगा। जिस दिन मैं नही था, उस दिन कुछ भी नही था। जिस दिन मैं मरूगा, मैं नही मरूंगा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, प्रलय हो जाएगा।

यह तो बड़ा अच्छा है कि कब्र से लौटने का मौका लोगो को नही मिलता। नही तो उनको ऐसा सदमा पहुंचे कि मौत से भी बडी दुर्घटना मालूम हो। काश कोई राजनेता लौटकर देख ले कि मेरे बगैर भी दुनिया चल रही है और जब मै मरा था तो इन्ही लोगो ने कहा था कि अब यह क्षति कभी पूरी नही होगी, अपूरणीय है, और कही कोई चर्चा ही नही है कि मेरी खाली जगह का क्या हुआ?

इस जगत में जगह खाली होती ही नही, आदमी पहले से तैयार होते हैं। उधर राजनेता मरता है, उसके पहले से सीढिया लगाये हुए लोग तैयार होते हैं उसकी कुर्सी पर बैठ जाने के लिए। ये वही लोग है, जो दूसरे दिन सुबह कहते हैं कि अपूरणीय क्षति हो गई। ये वही लोग है, ये ही पूर्ति कर देंगे। इस जगत में किसी भी आदमी के हटने से कोई जगह खाली नही होती है। लेकिन अहकार मानता है कि मेरे हटने से जो छिद्र हो जाएगा इस जगत में, वह कभी नही भरा जाएगा। अहकार मानता है कि मै इस जगत में अपरिहार्य हू, अनिवार्य हू, मेरे बिना कुछ भी नही हो सकता।

कभी सोचें मन में कि आप नही होंगे, तब भी पूर्णिमा का चांद निकलेगा, कैसी उदासी छा जाती है! आप नही होगे, तब भी यह सागर ऐसे ही गर्जना करेगा! और आप नही होगे, तब भी सुबह पक्षी गीत गायेंगे! कैसी उदासी छा जाती है! यह खयाल आ जाएगा तो पक्षी का गीत सुनकर भी बड़ी पीड़ा होगी, चाद को आकाश में देखकर हृदय पर सदमा पहुचेगा कि मै नही होऊगा और फिर भी सब ऐसे ही होता रहेगा। इसका मतलब यह है कि मेरे होने न होने से कोई भी फर्क नही पड़ता है। मै था या नही था, उससे कोई फर्क नही है। लेकिन अहंकार यह मानने को राजी नही है।

अहंकार का मतलब यह है कि मैं इस अस्तित्व मे कुछ हू, जिसका मूल्य है, वजन है। और मेरे बिना यह अस्तित्व रीता-रीता, खाली-खाली हो जाएगा। मैं ही इस जगत का नमक हू, मेरे बिना सब रोना-रोना हो जाएगा। यह हमारे निकटतम है। यह हमारी भावदशा है।

अहकार हमारी स्थिति है। **ताओ हमारी मंजिल है।**

अहकार में हम खड़े हैं; ताओ तक हमें पहुचना है।

लेकिन अहकार झूठी स्थिति है।

लाओत्से कहता है कि ब्रह्माड के ये चार महान है। साथ ही कहता है, और सम्राट भी उनमे एक है। इसे भी गिना देना जरूरी है, क्योंकि इसके बिना फिर हम यात्रा शुरू न कर पाएंगे। इसलिए ताओ कहता है कि सम्राट भी उनमे एक है। हम यही खडे है। यह हमारी स्थिति है।

लेकिन महान कहना अहंकार को जरा हैरानी की बात मालूम पडेगी। ताओ को महान कहना समझ में आ सकता है, लेकिन अहकार को महान कहना ? लेकिन इसे थोडा समझ ले। अहकार भी महान है इस अर्थ मे कि उसकी भी कोई सीमा नही है। और वह कितना ही बडा हो जाए, कोई तृप्ति नही है। और कुछ भी आप करें, कभी आप्तकाम नही होता है. भरता नहीं है। दुष्पूर है। इस अर्थ में महान है। ऐसा एबिस, ऐसी खाई है कि जिस मे कितना ही डालते चले जाए, कोई अतर नही पडता।

अहकार निगेटिव अर्थ मे महान है, नकारात्मक अर्थ मे महान है। झूठ है, इसलिए असीम है। सत्य इसलिए असीम है कि असीम होना उसका स्वभाव है। झूठ इसलिए असीम होना है कि वह है ही नही। जो है ही नही, उसकी सीमा कैसे होगी ? **जो नहीं है, वह असीम होता है।** जो है, वह भी असीम होता है। लेकिन जो है, उसकी असीमता विधायक होती है; जो नही है उसकी असीमता नकारात्मक होती है। इसलिए नहो गिनना चाहता है लाओत्से, फिर भी गिनता है और कहता है, और सम्राट भी उनमे से एक है।

ये चार महान तत्व है, और यह अहकार भी उनमे से एक है।

आज तक किसी का अहंकार भर नही पाया। कभी भरेगा भी नही। कोई उसके भरने का उपाय भी नही है। आप उसको जितना दे, उतनी उसकी माग बढ़ जाती है। मागना उसका स्वभाव है। जितना आप उसको देते हैं, उतना उसका स्वभाव और मागता चला जाता है। मजे की बात है. अहंकार को जो मिल जाता है वह व्यर्थ हो जाता है, और जो नही मिलता वही सार्थक होता है। अहकार जहा पहुंच जाता है, अधा हो जाता है। और जहा नही पहुचता है, वहा उसकी आखे टगी रहती हैं।

आप भी कही पहुंच गए हैं। सभी कही पहुच गए है। लेकिन जो जहा है, वहा

तृप्त नहीं है। अगर आप डिप्टी मिनिस्टर हैं तो परेशान हैं। जब नहीं थे, तब भी परेशान थे। तब सिर्फ एम. एल. ए. थे। जब एम. एल. ए. नहीं थे, तब भी परेशान थे। तब एक साधारण नागरिक थे। साधारण नागरिक से बड़ी चेष्टा के बाद एम. एल. ए. हो गए। सोचा था सब भर जाएगा। जाकर पाया कि एम. एल. ए. होना कोई होना है जब तक कि डिप्टी मिनिस्टर न हो जाएं। फिर बड़ी दौड़-धूप, बड़ी मेहनत और डिप्टीमिनिस्टर भी हो गए हैं। अब डिप्टीमिनिस्टर हो गये हैं, उपमंत्री हो गए हैं। लेकिन अब मिनिस्टरशिप नहीं दिखाई पड़ती, सिर्फ डिप्टीशिप खटकती है। वह जो डिप्टी है वह अखरता है, मन को चोट देता है, कील की तरह चुभता है कि डिप्टी होना भी कोई होना है। कम से कम मिनिस्टर तो चाहिए। और मिनिस्टर होते ही चीफ अखरने व खलने लगता है। और यात्रा चलती चली जाती है।

जो आदमी जहा है, वहीं अतृप्त होता है। यही अहंकार का लक्षण है। और जहा नहीं है, वहा के लिए सोचता है कि तृप्त हो सकूंगा। इन चार के बीच हमारे जीवन की व्यवस्था ह।

लाओत्से कहता है, मनुष्य अपने को पृथिवी के अनुरूप बनाता है। पृथिवी सुख है। मनुष्य अपने को पृथिवी के अनुरूप बनाता है। मनुष्य पूरे समय कोशिश कर रहा है कि सुखी हो जाए। सारी कोशिश यही है। आप कुछ भी कर रहे हो, इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप क्या कर रहे है, एक बात तय है, आप सुखी होने की कोशिश कर रहे हैं। यह पूछना जरूरी नहीं है कि आप क्या कर रहे हैं, चोरी कर रहे है, कि साधुता कर रहे है, कि ईमानदारी कर रहे है, कि बेईमानी कर रहे हैं, जो भी कर रहे हैं। यह बडे मजे की बात है कि बेईमान और ईमानदार, साधु और असाधु, सबकी खोज एक है। सब सुख खोज रहे हं। यह दूसरी बात है कि कोई बेईमानी मे सोचता है कि मिल जाएगा, काई ईमानदारी से सोचता है कि मिल जाएगा। यह उनकी समझ का फर्क है, लेकिन खोज मे कोई अन्तर नही है। मिलेगा या नही मिलेगा, यह भी दूसरी बात है। लेकिन खोज सुख के लिए है।

हर आदमी सुख खोज रहा है। और हर आदमी दुख पा रहा है। और हर आदमी तेजी से सुख को तरफ दौड रहा है, और हर आदमी तेजी से दुख के गर्त मे गिरा जा रहा है। मनुष्य अपने को पृथिवी के अनुरूप बनाता है। मनुष्य पूरे वक्त कोशिश कर रहा है कि मैं कैसे सुख के अनुरूप हो जाऊं? लेकिन क्या है अड़चन? यह सुख नाराज क्यों है मनुष्य पर? इतनी चेष्टा असफल क्यो हो जाती है? मनुष्य सुखी क्यो नही हो पाता?

और दुर्घटना यह है कि मनुष्य जितना निकट पहुचता मालूम पड़ता है, उतना दुखी होता जाता है। हम जितने पीछे लौटें, जितना अशिष्ट समाज हो, असभ्य समाज हो, प्रीमेटिव हो, सुख के साधन न हो, वह कम दुखी मालूम पड़ता है।

होना उलटा चाहिए । हमें ज्यादा सुखी होना चाहिए और आदिम लोगों को ज्यादा दुखी होना चाहिए । लेकिन उलटा मालूम पड़ता है, हम ज्यादा दुखी और वे ज्यादा सुखी मालूम पड़ते है । क्या हो गया है ? हमारे दुख का इतना घनापन क्यों है ? इतनी त्वरा क्यो है ? हमारा दुख इतना बुखार की तरह हमारी छाती पर क्यो है ?

हमारे पास सुख के बहुत साधन हो गये है । और इतने साधन के बाद हमें समझ में आता है कि सुख बिलकुल भी नही मिल रहा है । इससे हमारी बेचैनी बढ गई है । एक गरीब आदमी है, भिखमगा है, सड़क पर भीख मांग रहा है; सोचता है, महल मिल जाए तो सुख मिलेगा । महल सिर्फ उनके लिए होते हैं, जो महलों मे नही होते है । महल सिर्फ उनके लिए होते हैं, जो महलो में नही होते हैं । उनके लिए जो महलो की महिमा है, उसका कोई अन्त नही है । फिर एक दिन यह भिखमगा महल मे पहुच जाता है, तब इसे पहली दफा पता चलता है कि महल तिरोहित हो गया । वह जो महिमावान महल था, जो रास्ते पर सोकर सपने में दिखा था, जो सदा मन को घेरे रहा, आच्छादित किये रहा, जिसके लिए सब तरह की यात्राए की और बामुश्किल इस महल में प्रवेश किया, वह महल यह नही है । वह महल कोई और है । असली महल सपनो के महल को तोड देते है । **असलियत सदा ही सपनो को तोड़नेवाली सिद्ध होती है** । सपनो की नावें असलियत के तट से लगकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है । इसलिए हम इतने दुखी है ! हमने सब महल पा लिए हैं, जो गरीब आदमी पाना चाहता था ।

इसलिए अगर अमरीका भारत से ज्यादा दुखी मालूम पड़े तो हैरानी की बात नही है । और अगर अमरीका के आदमी को लगता हो कि ध्यान कैसे पाऊ, और धर्म कैसे पाऊ, और कैसे ऋषीकेश पहुचू, और कैसे साधना करू, तो हमको लगता है कि पागल तो नही हो गये है ये लोग । वे जो ऋषीकेष में रहते है, उनको लगता है कि जरूर इनका दिमाग फिर गया है । क्योंकि वे जिन्दगी से वहा रह रहे हैं और उन्हे कुछ भी नही हुआ है । ये अमरीका मे लोग भागे क्यो चले आ रहे हैं ऋषिकेश की तरफ ? इनको वह महल मिल गया है, जो ऋषिकेश के लोगो को मिलने में देरी है । इस महल को पाकर इनके सब सपने टूट गए है ।

सुख जब उपस्थित हो जाता है, तब हमे पता चलता है कि वह मिला नही है । यह बडी कठिन बात हो गई है । जब मिलता नही, तब भी दुख देता है, और जब मिल जाता है, तब भी दुख देता है । बुद्ध ने इसे देखकर कहा कि दुख है इस जगत का स्वभाव । जो मिल जाए वह दुख देता है, जो न मिल जाए वह दुख देता है । जिस स्त्री को चाहो, वह न मिले तो जिन्दगी भर दुख होता है । मजनू से पूछो, दुखी है । और उसको पता नही कि लैला मिल जाती तो कितना दुख होता । वह उनसे पूछो जिनको मिल जाती है । जिनको मिल जाती है, वे तलाक के दफ्तर में

खड़े हुए हैं। उनको तलाक चाहिए, डाइवोर्स चाहिए। जिनको नहीं मिलती है, वे कविता गा रहे हैं, आसू बहा रहे हैं। पता नहीं इनमें दुखी कौन है ?

एक बात तय है कि जो नही मिलता है वह भी दुख देता है और जो मिल जाता है वह भी दुख देता है। और शायद इन दोनों दुखों में पहला बेहतर है। कम से कम आशा तो बनी रहती है। दूसरे में आशा भी टूट जाती है। लेकिन इसका राज क्या है ? इतनी सुख की तलाश और सुख हाथ में क्यों नही है ?

लाओत्से बड़ी अद्भुत बात कहता है। लाओत्से कहता है, मनुष्य अपने को पृथिवी के अनुरूप बना रहा है और पृथिवी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बना रही है, **यह तकलीफ है।** इसलिए मिलन कभी नही हो पाता। आप जिसके पीछे दौड़ रहे हैं, वह किसी और चीज के पीछे दौड़ रहा है। वह आपकी तरफ दौड़ ही नही रहा है। इसलिए आप तकलीफ में हैं। **यह जरा सूक्ष्म है।** मैं आपको पाना चाहता हू और आप किसी और को पाना चाहते हैं। तो यह मिलन होगा कैसे ? इस मिलन का एक ही रास्ता है कि मै उसे पाने में लग जाऊं, जिसे आप पाना चाहते हैं। **तो वह मिलन हो सकता है।** नही तो यह मिलन नही हो सकता। और अगर मैं आपको पकड़ भी लू तो आप छूटकर मुझसे भागेंगे। क्योंकि आप मुझसे मिलने को उत्सुक नही हैं। आप कही और जाना चाहते हैं।

लाओत्से कहता है, मनुष्य अपने को पृथिवी के अनुरूप बनाना चाहता है, पृथिवी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाना चाहती है, स्वर्ग अपने को ताओ के अनुरूप बनाना चाहता है और ताओ अपने को स्वभाव के अनुरूप बनाना चाहता है; यह उपद्रव है। यहा हम जिसके पीछे भाग रहे हैं, वह कही और भाग रहा है। तो जब तक हम उसको न पकड़ ले, जिसकी तरफ सब कुछ भाग रहा है, तब तक हम कुछ भी न पकड पाएंगे।

पृथिवी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाना चाहती है, इसका क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है कि जहा-जहा हमें सुख दिखाई पड़ता है, जहा-जहा हमें सुख की झलक है, जहा-जहां हमें लगता है कि सुख है, इस बिन्दु पर सुख हमें घनीभूत दिखाई पड़ता है, उस बिन्दु के लिए सुख व्यर्थ हो जाता है। जो मिल जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। वह बिन्दु आनन्द की तरफ यात्रा कर रहा है। वह बिन्दु आनन्द होना चाहता है। यह कठिनाई है कि वह बिन्दु आनंद होना चाहता है। पृथिवी स्वर्ग बनना चाहती है।

अगर आप आनन्द की तरफ यात्रा कर रहे हैं तो आपका सुख से मिलन हो जाएगा। क्योंकि तब आप दोनों के लक्ष्य एक हो जाते हैं।

इसलिए मजे की बात है, जो आनन्द की तरफ जाता है, वह सुख को पा लेता है, और जो सुख की तरफ जाता है, वह सिर्फ दुख को पाता है। बुद्ध की आखों में सुख की झलक है। महावीर के चलने में सुख की हवा है। महावीर बैठते हैं तो

लगता है कि कोई सुख बैठा, उठते है तो लगता है कि कोई सुख उठा। उनके होने में एक भीनी सुगन्ध है सुख की। वह चारो तरफ बरस रही है। वही सुख तो हमें आकर्षित करता है, हमें खीचता है। तो हम सोचते हैं कि हम भी महावीर जैसे हो जाएँ, यह सुख हमे कैसे मिल जाए!

लेकिन महावीर को यह सुख मिल रहा है आनंदित होने से, आनन्द की यात्रा पर निकल जाने से। वे प्रतिपल आनन्द को पाने की कोशिश में लगे है तो यह सुख मिल रहा है।

अगर हम सुख के पाने की कोशिश मे लगे है तो हमें दुख मिलेगा। इसलिए महावीर के पीछे चलनेवाले साधु-सन्यासियो को देखें, दुखी बैठे हैं। बड़ी हैरानी की बात है, महावीर की प्रतिमा देखो और एकाध जैन मुनि को देखो उसके साथ रखकर। तब तुम्हे पता लगेगा कि दुश्मन है दोनो। क्या बात है? महावीर की प्रतिमा से ज्यादा सुंदर काया खोजनी मुश्किल है। महावीर की काया ऐसी सुंदर है कि फिर दूसरी काया उसके साथ रखनी मुश्किल है। और काया इतनी सुंदर थी, इसलिए तो महावीर नग्न खडे हो सके। कुरूप आदमी नग्न कैसे खडा होगा?

असल मे वस्त्र सौंदर्य को नही ढांकते, सिर्फ कुरूपता को ढाँकते हैं। इसलिए ध्यान रखना, जब भी सौदर्य बढेगा, लोगो के शरीर उघडने लगेगे। जहा सौंदर्य ज्यादा होगा, वहा शरीर उतना ही उघड जाएगे। अगर पश्चिम की स्त्रिया शरीर को ज्यादा उघाड रही है और भारत की स्त्रियो को बेचैनी होती है तो सोच ले। उसमें कही ईर्ष्या काम कर रही है, और कोई मामला नही है। शरीर सुंदर होगा तो ढाँकना कोई अर्थ नही रखता है।

महावीर का शरीर तो अति सुंदर है। और उनकी काया तो ऐसी है कि जैसे मूर्ति बनाने के लिए ही बनी हो। मूर्ति बनानेवाले को भी दिक्कत होती होगी। मूर्ति थोडी मदा फीकी मालूम पडती हो, क्योकि इतनी जिन्दा तो नही हो सकती। एक तरफ महावीर हैं, इनके श्वांस-श्वांस में सुख है। और दूसरी तरफ उनके पीछे चलनेवाले साधु है। वह जितना उपवास करके शरीर को सुखा-सुखा करके पीला पडता चला जाता हैं, जितना वह पीला, पीतल जैसा लगने लगता है, उतना उसके भक्त कहते है कि कैसी तप की आभा प्रकट हो रही है! तपे दुखवाला पीलापन स्वर्णिम मालूम पडता है। जैसे-जैसे शरीर सूखता जाता है और प्राण केवल आखो में टके रह जाते है, लोग कहते हैं कि आखे तो देखो! और अब कुछ बचा नही है देखने को। लोग कहते है कि आखें तो देखो, कैसा तेज प्रकट हो रहा है। यह तेज नही, यह आखिरी झलक है दीये के बुझने के पहले की।

महावीर के पास एक सुख है, एक छाया है; जैसे बरगद के नीचे छाया होती है, वैसी। उस छाया के पास कोई आये, तो जैसे दूर की यात्रा की थकान मिट जाए, हजार-हजार लोग उनके पास बैठे तो शीतल हो जाए।

लेकिन उसका कारण है कि वे कुछ और खोजने में लगे हैं। सुख बाई-प्रोडक्ट है; वह खोज नही है उनकी। जो सुख को खोजने उनके पास आया, वह तपस्वी के दुख में पड जाएगा। क्योंकि तब वह महावीर की नकल करेगा; वह सोचेगा जो-जो महावीर कर रहे हैं वह-वह मैं करू, तो यह सुख मुझे मिल जाएगा। सुख इमीटेटिव है। आपको दिखता है कि किसी के हाथ में एक छल्ला है हीरे का तो लगता है कि पता नही कितना सुख मिल रहा है इसको। अब यह हीरे का छल्ला हीरे का हो, या किसी और चीज का हो, मिलते ही सिर्फ बोझ का अनुभव होता है, बन्धन हो जाता है। महावीर कुछ और खोज रहे हैं।

जहा-जहा हमे झलक दिखाई पडती हो, अगर आपको रात के सन्नाटे में सुख की झलक दिखाई पडती हो, तो उसका मतलब है कि **रात अपने से बड़े सूत्र के साथ एक हो गई।** अगर आपको चाद से झलक मिलती है किसी शीतलता की तो इसका अर्थ है कि **पूर्णिमा का चाँद किसी बड़े सूत्र के साथ एक हो गया।** अगर आप जगल मे जाते है और हरियाली आपको मोह लेती है और मन नाचने लगता है तो उसका अर्थ है कि **यह जगल किसी आनन्द के सूत्र में डूबा हुआ है।** इसके उस डूबने से ही सुख पैदा हो रहा है।

यह पृथिवी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है। पृथिवी, चारो तरफ जो है पदार्थ, वह सब अपने को स्वर्ग बनाने मे लगा हुआ है। एक छोटा सा बीज भी अकुरित होकर फूल बनना चाहता है। एक छोटा सा बीज भी पृथिवी से स्वर्ग बनना चाहता है। चारो तरफ चेष्टा चल रही है। आदमी पृथिवी के अनुरूप होने की कोशिश मे ही भटकता है।

लेकिन पृथिवी भी स्वर्ग को उपलब्ध नही हो पाती। फूल खिलते है और मुरझाते है। चाद पूरा हो जाता है और फिर घटने लगता है। यहा कोई चीज शाश्वत नही हो पाती। पृथ्वी भी अपने को स्वर्ग नही बना पाती है। क्योंकि स्वर्ग अपने को तारों के अनुरूप बना रहा है। स्वर्ग भी किसी और की तलाश मे है।

हमे स्वर्ग का कोई पता नहीं है, इसलिए मुश्किल होगा। पृथिवी तक समझ आसान है कि पृथिवी भी स्वर्ग बनना चाहती है। इसलिए कही-कही, कश्मीर मे हम कहते है पृथिवी का स्वर्ग है। कुछ खिल रहा है। झीलें, आकाश, पहाड, पर्वत, वृक्ष, सबमे कोई चीज खिल गई है—कुछ जो पृथिवी के दूसरे हिस्सो में मुर्झायी है, तो लगता है कि यहा स्वर्ग है। वह झलक है। लेकिन स्वर्ग का हमे कोई पता नही है। पृथिवी भी स्वर्ग को उपलब्ध हो नही पाती, सिर्फ कोशिश करती रहती है पाने की। क्योंकि स्वर्ग तारों के अनुरूप होना चाह रहा है।

समझने के लिए ऐसा खयाल कर लें कि जिसे हम जानते है, यह अस्तित्व का अत नही है। जिस पृथिवी को हम जानते है, यह जीवन की समाप्ति नही है। और पृथिवियाँ है, और तारे है, और ग्रह है, और उपग्रह है। वैज्ञानिक कहते है कि कोई

पचास हजार पृथिवियों पर जीवन की सम्भावना है। कोई तीन अरब महासूर्य हैं। हमारा तो यह एक छोटा सा सूरज का परिवार है। इस तरह के तीन अरब सूर्य-परिवार हैं। और हमारा सूर्य तो बहुत मीडियोकर, मध्यम वर्गीय सूरज है। इससे साठ-साठ हजार गुना बड़े सूर्य हैं। बड़ा विस्तार है।

महावीर ने, बुद्ध ने, लाओत्से ने, कृष्ण ने, इस पृथिवी से ज्यादा सुख के तल अनुभव करनेवाले ग्रहों, उपग्रहों की चर्चा की है; उनका नाम स्वर्ग है—इससे भी जहाँ जीवन श्रेष्ठतर हो गया है, इससे भी जहा जीवन ज्यादा खिल गया है।

ऐसा समझें हम, एक कली अधखिली रह गई हो, एक कली खिल गई हो, एक कली फूल बन गई हो। अगर बहुत पृथिवियाँ हैं, तो कोई पृथिवी अभी सिकुडी पड़ी होगी, कोई पृथिवी खिल रही होगी, कोई बहुत खिल गई होगी, कहीं चेतना ने नये आयाम पा लिये होंगे। स्वर्ग का मतलब है ऐसी पृथिवियाँ, ऐसे जीवन के तल इस ब्रह्माड में, जहां सुख उपलब्ध हो गया है, जहा सुख स्थिति बन गया है। यहा दुख स्थिति है, सुख आशा है। वहा सुख स्थिति बन गई है।

लेकिन वहां भी जहां सुख स्थिति बन गई है, जहा आनन्द बरस गया है, वहा भी अभी थोड़ी सी यात्रा शेष है। क्योंकि जब तक हम कहते हैं, मै आनदित हूँ, तब तक भी मै और आनन्द में थोडा सा फासला बना रहता है। उतना फासला भी कष्टपूर्ण है, उतने फासले में भी बेचैनी है, उतनी दूरी भी अखरती है।

लाओत्से कहता है, स्वर्ग भी अपने को ताओ के अनुरूप बना रहे हैं। वे स्वर्ग भी दौड रहे हैं; वे उस परम नियति में प्रवेश कर जाना चाहते है, उस के साथ एक हो जाना चाहते है, जो सभी नियमों का आधार है। लेकिन उनकी दौड भी पूरी न हो पाएगी। क्योंकि ताओ भी—यह थोडो अतिम, कठिन बात है—ताओ भी अपने को स्वभाव के अनुरूप बनाने में लगा हुआ है। जिस ताओ की हम बात कर सकते हैं, वह ताओ भी वास्तविक नही, सिद्धान्त हो जाता है। जिस ताओ की हम कल्पना कर सकते हैं, जो कसीवेबल है, जिसको हम धारणा बना सकते है, वह भी हमारी धारणा हो जाता है। वैसा धारणा का ताओ भी अतिम नही है। अंतिम तो वह ताओ है, जहां सब धारणाएं गिर जाती हैं और सिर्फ स्वभाव, होना मात्र, जस्ट इग्जिस्टेन्स, शेष रह जाता है। ताओ भी सिर्फ रह जाए होने मात्र में, होना मात्र ही जहा अत हो जाए! इसे थोडा समझ ले।

एक अग्रेजी में शब्द है बिकमिंग, होने की दौड़। और एक शब्द है बीइग, होना मात्र। जब तक दौड़ है, तब तक दुख है। अगर ताओ भी स्वभाव के अनुकूल होना चाह रहा है तो दुख शेष रहेगा। क्योंकि होना तो सदा भविष्य मे है, अभी तो नही हो सकता। समय लगेगा। कुछ यात्रा करनी पड़ेगी। बीइग, अस्तित्व, सत्य अभी है।

मिलरेपा, तिब्बत का एक फकीर, अपने गुरु मार्पा के पास गया। मार्पा आंख

बन्द किए बैठा था। मिलरेपा ने कहा, क्या आप भीतर प्रवेश कर रहे हैं, एक भीतरी यात्रा पर हैं? मार्पा ने आंख खोली और उसने कहा, यात्राएं सब समाप्त हो गईं। नहीं, मैं भीतर प्रवेश नहीं कर रहा हूं, **मैं भीतर हूं**। प्रवेश तो वह करता है जो बाहर हो। मार्पा ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, **मैं केवल हूं**।

यह जो होना मात्र है, इसका नाम स्वभाव है। स्वभाव में फिर कोई यात्रा नहीं है, कोई भविष्य नहीं है, कहीं जाना नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि जाना नहीं होगा। इसका यह भी मतलब नहीं है कि भविष्य नहीं होगा। इसका केवल इतना मतलब है कि यात्रा नहीं होगी, दौड़ नहीं होगी, पहुंचने की कोई वासना नहीं होगी, कामना नहीं होगी। जहां सब कामनाएं गिर जाती हैं, जहां सब होने के स्वप्न बिखर जाते हैं, जहां होने में तथाता हो जाती है, एकता हो जाती है, **वह स्वभाव है**।

लाओत्से कहता है, इसका अर्थ हुआ कि चाहे कोई कहीं भी यात्रा कर रहा हो, किसी भी दिशा में, **अंतिम यात्रा स्वभाव की दिशा में हो रही है**। इसलिए जो व्यक्ति इस सूत्र को समझ ले और सीधे स्वभाव की यात्रा में लग जाए, वह जीवन में जो भी पाने योग्य है, उसे पा लेगा। और जीवन में जो भी पाने योग्य नहीं है, वह अपने आप गिर जाएगा, तिरोहित हो जाएगा। और जो व्यक्ति बीच की यात्राएं चुनेंगे, वे कष्ट में रहेंगे। क्योंकि जिससे मिलने वे जा रहे हैं, वह खुद ही यात्रा पर है।

ऐसा समझें कि आप बम्बई से दिल्ली की यात्रा पर निकलते हैं। दिल्ली पहुंच जाते हैं आप, क्योंकि दिल्ली का स्टेशन एक जगह ठहरा है। अगर दिल्ली का स्टेशन भी यात्रा पर हो तो फिर बहुत मुश्किल है। फिर आप पहुंच नहीं पाएंगे। वह तो दिल्ली ठहरी है, इसलिए आप दिल्ली पहुंच जाते हैं। लेकिन जीवन में सब यात्रा पर है, वहां कोई ठहरा हुआ नहीं है। **सिर्फ स्वभाव ठहरा हुआ है**। तो जो स्वभाव की तरफ जाता है, वही केवल पहुंचता है। बाकी लोग भटकते हैं। वे उनके पीछे दौड़ते हैं, जो खुद ही दौड़ रहे हैं।

आखिरी बात।

लाओत्से ने ताओ-परम्परा में सद्गुरु की परिभाषा की है। और कहा है कि **सद्गुरु वह है जो कहीं नहीं जा रहा है**। अगर कहीं जा रहा है तो वह गुरु नहीं है। अगर उसे पाने को कुछ शेष है तो वह गुरु नहीं है। अगर कुछ होने को शेष है तो वह गुरु नहीं है। और जो ऐसे गुरु के पीछे चल पड़े जो कहीं जा रहा है, वह मुश्किल में पड़ेगा। मुश्किल में पड़ना अनिवार्य है। क्योंकि आपने जो मंजिल चुनी है, वह मंजिल नहीं है। मंजिल का अर्थ है वह बिन्दु इस अस्तित्व के बीच, जो सदा शाश्वत रूप से वहीं है। सब चीजें उसी की तरफ जा रही हैं, वह किसी की तरफ नहीं जा रहा है।

इसका अर्थ हुआ कि अगर हम स्वभाव की तरफ जा रहे हैं तो उस सुख को छोड़

रहे हैं जो कृत्रिम है, उस सबको छोड रहे है जो चेष्टित हैं, उस सबको छोड रहे हैं जो प्रयास से है, उस सबको छोड रहे हैं जो दूर है, वरन् उसमें डूब रहे है जो हमारे भीतर ही मौजूद है। **स्वभाव भीतर ही मौजूद है** । सुख को बाहर खोजना पड़ता है। आनद को भी बाहर खोजना पडता है । सत्य की खोज में भी लोग न मालूम कहाँ-कहाँ जाते हैं । सिर्फ स्वभाव भीतर है । स्वभाव का अर्थ : जो आप अभी है, इसी क्षण । अगर दौड़ें न, रुक जाए, तो उससे मिलन हो जाएगा । अगर दौड़ते रहे, तो उससे चूकते चले जाएंगे ।

तीन शब्दों में लाओत्से को हम सक्षेप में रख लें। लाओत्से कहता है, जो खोजेगा वह खो देगा । अगर पाना है तो पाने की कोशिश मत करो। क्योंकि जो दूर है, उसे पाने के लिए चलना पडता है । **और जो भीतर ही है, उसे पाने के लिए रुक जाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है ।**

आज इतना ही। रुकें, कीर्तन करें, फिर जाए ।

■■

अद्वैत की अनूठी दृष्टि लाओत्से की

चौवनवां प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक १९ अगस्त १९७२

अध्याय २६

गुरुता और लघुता

जो हलका है, उसका आधार ठोस है, गंभीर है;
और निश्चल चलायमान का स्वामी है ।
इसलिए सन्त दिन भर यात्रा करता है,
लेकिन जीवन-ऊर्जा के स्रोत से जुड़ा रहता है ।
सम्मान व गौरव के बीच भी
वह विश्रामपूर्ण व अविचल जीता है ।
एक महान देश का सम्राट कैसे अपने राज्य में
अपने शरीर को उछालता फिर सकता है ?
हलके छिछोरेपन में केंद्र खो जाता है,
जल्दबाजी के काम में स्वामित्व, स्वयं की मालकियत नष्ट हो जाती है ।

CHAPTER 26

HEAVINESS AND LIGHTNESS

The Solid is the root of the light,
The Quiescent is the master of the Hasty.
Therefore the Sage travels all day
Yet never leaves his provision-cart
In the midst of honour and glory,
He lives leisurely undisturbed
How can the ruler of a great country
Make light of his body in the empire ?
In light frivolity, the centre is lost;
In hasty action, self-mastery is lost.

मन सोचता है सदा द्वन्द्व में। निर्द्वन्द्व की उसे कोई झलक भी नही है। विचार बांट लेता है अस्तित्व को दो में। एक का उसे कोई अनुभव नहीं है।

जो अद्वैत की बात भी कहते हैं, वे भी द्वैत में ही ग्रस्त होते हैं। जो एक की चर्चा भी करते हैं, उनकी चर्चा मे भी दो ही समाये रहते हैं। जो कहते हैं कि एक ही है, वे भी ससार और मोक्ष में फर्क करते हैं। जो कहते हैं कि सब अद्वैत है, वे भी कहते हैं कि ब्रह्म और माया अलग-अलग हैं। जो कहते हैं कि एक का ही विस्तार है, वे भी सुख और दुख में भेद मानते हैं। शुभ और अशुभ में तो निश्चित ही भेद मानते हैं।

लाओत्से अद्वैत का इस जगत में अब तक के हुए मनीषियों में सबसे बड़ा प्रतिपादक है। यह थोडी हैरानी की बात लगेगी; क्योंकि हमने शंकर को पैदा किया और ऐसा लगता है कि शकर से बडा अद्वैतवादी खोजना मुश्किल है। लेकिन शंकर के अद्वैत मे भी द्वैत की चर्चा जारी ही रहती है। बहुत चेष्टा शंकर करते हैं दो को मिटाने की, लेकिन जिसको मिटाने की हम चेष्टा करते हैं, उसे हमने स्वीकार कर ही लिया। जिसे हम इंकार करने की कोशिश करते हैं, कहीं गहरे तल पर हमने उसे मान लिया है। शकर अथक चेष्टा करते हैं कि माया नही है, लेकिन पूरे जीवन शकर माया नही है यह सिद्ध करने में लगे हैं। जो नही है उसकी इतनी चिन्ता भी क्या? जो नहीं है वह नहीं है, ऐसा सिद्ध करने का प्रयोजन भी क्या?

शकर को भी उसका होना कही खटकता है। सपना ही सही, लेकिन सपना भी होता है। और कितना ही इनकार करो, कितना ही कहो झूठ है, फिर भी नही तो नही हो जाता है। होता तो है ही। और रात सपने के बाद सुबह जागकर भी जब पता भी चल जाता है कि सपना था, तब भी उसके परिणाम तो जारी रहते हैं। जिसने रात एक सुखद सपना देखा है, सुबह जागकर भी उसके चेहरे पर उसकी खुशी होती है। और जो रात एक दुख-स्वप्न से घिरा रहा है, सुबह उठकर उसका मन उदास और म्लान बना रहता है। जाग कर भी। तो सपना भी एकदम सपना तो नही है। और जब हम कहते हैं कि सपना सपना ही है, तब भी हम सिर्फ इतना ही कह रहे है कि वह ठोस जागृति के जगत जैसा नही है। लेकिन फिर भी है तो।

लाओत्से अद्वैत को दार्शनिक की तरह नहीं, एक अनुभोक्ता की तरह प्रतिपादित करता है; उसे वह एक सिद्धात की तरह नही देखता है। क्योंकि यही कठिनाई है। और यह कठिनाई थोड़ी जटिल है। जब भी हम सिद्धान्त बनाते हैं, तभी विचार

का उपयोग करना पड़ता है। और विचार द्वैत के पार नही जा सकता। वह उसकी मजबूरी है। इसलिए जब हम विचार से द्वैत के पार जाने की कोशिश करते हैं, तब हम अद्वैत की चर्चा भला करते रहें, लेकिन द्वैत उस चर्चा के भीतर भी तलहटी में मौजूद रहता है। विचार दो के पार जा ही नहीं सकता। तो या तो अद्वैत के सम्बन्ध में कुछ कहना हो तो चुप रहना ही उपाय है; और या फिर एक उपाय है जिसे लाओत्से ने अख्तियार किया है। यह उपाय शंकर से बहुत बुनियादी रूप से बहुत भिन्न है। इसे थोड़ा हम समझें।

लाओत्से कहता है कि विरोध दिखाई पड़ता है, पर विरोध है नही। विरोध केवल भासमान है। संसार और मोक्ष में जो विरोध है, वह भी सिर्फ दिखाई पड़ता है। क्योंकि हम पूरा नही देख पाते, अधूरा देखते हैं। हमारे देखने की एक सीमा है। आप मुझे देख रहे हैं तो मेरा चेहरा दिखाई पड़ता है, लेकिन मेरी पीठ दिखाई नही पड़ती। आप मेरी पीठ देखें तो मेरा चेहरा दिखाई देना बंद हो जाता है। आप मुझे पूरा नही देख सकते। जब भी देखेंगे, आधा ही देखेंगे। शेष आधा अनुमानित है। मेरी पीठ भी होगी, यह आपका अनुमान है, क्योंकि देख तो आप हमारा चेहरा ही रहे हैं। कभी आपने मेरी पीठ भी देखी है। इन दोनो को अब जोड़ लेते हैं और एक का निर्माण करते हैं। लेकिन एक को आपने कभी देखा नही। देखते आप दो को हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि एक छोटा सा कंकड़ भी आप पूरा नही देख सकते। उसका भी एक हिस्सा अनदेखा रह जाता है। एक रेत का छोटा सा टुकड़ा भी आप पूरा नही देख सकते हैं। छोटे होने से कोई फर्क नही पड़ता, आधा ही देखते हैं। आधा-आधा दो बार देखते हैं और दोनो को विचार मे जोड़कर पूरा बना लेते हैं। इसलिए जिस रेत के टुकड़े को आप कल्पना में देखते है, वह आपके अनुमान से निर्मित है—हाइपोथेटिकल है, परिकल्पित है। वह आपका अनुभव नही है। अनुभव तो आधे का ही है। दो आधे आपने देखे हैं और दोनो को जोड़कर विचार मे एक का निर्माण किया है।

विचार की सीमा है। वह आधे को ही देख पाता है, पार्ट को, हिस्से को देख पाता है। इस देखने की वजह से हमे विरोध दिखाई पड़ता है— अंधेरा अलग और प्रकाश अलग। और उन दोनो को हम जोड़ नही पाते, क्योंकि वे बड़ी घटनाएं हैं। हम जोड़ नही पाते कि अंधेरा और प्रकाश एक ही चीज के दो पहलू हैं। अगर प्रकाश चेहरा है, अंधेरा पीठ है। लेकिन प्रकाश और अंधेरे को हम जोड़ नही पाते हैं। वे बहुत बड़ी घटनाएं हैं, विराट घटनाएं हैं।

लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि अंधेरे का अर्थ इतना ही होता है, जितना कम प्रकाश कहने से होगा। और प्रकाश का अर्थ इतना ही होता है जितना कम अंधेरा कहने से होगा। आप प्रकाश को अंधेरे के बिना सोच भी नहीं सकते हैं। अंधेरे को

प्रकाश के बिना कल्पना करने का कोई उपाय नहीं है। अगर अंधेरा मिट जाए तो आप ऐसा मत सोचना कि प्रकाश ही प्रकाश शेष रह जाएगा। **अंधेरा मिट जाए तो प्रकाश बिलकुल शेष नहीं रह जाएगा।** और आप यह मत सोचना कि प्रकाश नष्ट हो जाए तो जगत अंधकार ही अंधकार में डूब जाएगा। **प्रकाश के नष्ट होते ही अंधेरा भी नष्ट हो जाएगा।**

वे दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। उनमें जो अंतर है, वह विरोध का नहीं है। विरोध हमारे आंशिक देखने के कारण पैदा होता है। यह बात बहुत मौलिक है लाओत्से की, यह समझ लेनी चाहिए।

सुख और दुख में हम विरोध देखते हैं। लाओत्से कहता है कि वे विरोधी नहीं हैं। इसलिए जो आदमी सोचता है कि ऐसा कोई क्षण आ जाए कि जब दुख बिलकुल न रहे तो उसे पता नहीं है कि उस क्षण सुख भी बिलकुल न रह जाएगा। अगर आप सुख चाहते हैं तो दुख को चाहना ही पड़ेगा। अगर आप सुख चाहते हैं तो दुख को बनाए ही रखेंगे। **दुख आपकी सुख की चाह से ही निर्मित हो रहा है।** क्योंकि वे दोनों एक हैं। आपने जाना है कि दो है, लेकिन आपके जानने से अस्तित्व में कोई फर्क नहीं पड़ता है। यह आपका जानना बिलकुल भ्रान्त है।

थोड़ा सोचें कि आपके घर कोई मित्र आये और आपको खुशी हो तो आपके घर कोई शत्रु आएगा तो दुख होगा। आप सोचते हो, कुछ ऐसा कर लें कि शत्रु आये तो दुख न हो। जिस दिन आप ऐसा इंतजाम कर लेंगे, उस दिन मित्र भी आएगा और सुख न होगा। आप सोचते हों कि यश मिले और सुख न हो तो अपयश मिलेगा और दुख न होगा। **वे संयुक्त घटनाएं हैं।** उन घटनाओं को हम तोडकर देख ले, लेकिन अस्तित्व मे तोड नही सकते।

लाओत्से कहता है कि विरोध केवल दिखाई पडते हैं; विरोध हैं नहीं। विरोध एक ही अस्तित्व के दो छोर है। लेकिन इतना विस्तार है अस्तित्व का कि जब हम देखते है तो एक छोर को देख पाते हैं और जब तक हम दूसरे छोर तक जाते हैं, तब तक एक छोर हमारे लिए ओझल हो जाता है। और इन दोनो को हम अब तक नही जोड पाए। **जो जोड़ लेते है, वे परम संत है।** इन दोनो छोरों को जो जोड़ लेते हैं, देख लेते हैं जुडा हुआ, वे परम सत हैं। और जो नहीं जोड़ पाते, उन्हे हम अज्ञानी कहते हैं। इतना ही अज्ञान है कि अस्तित्व हमारे लिए सदा दो में बंटा हुआ दिखाई पडता है। मित्र में, शत्रु में, प्रेम में, घृणा में, प्रकाश में, अंधकार में, शुभ में, अशुभ में, स्वर्ग में, नरक में वह हमें बंटा हुआ दिखाई पडता है।

स्वर्ग और नरक एक ही चीज के दो छोर हैं। और इसलिए स्वर्ग से नरक जाने में ओर नरक से स्वर्ग आने में अडचन नहीं होती। यात्रा सुगम है। सुख से दुख में जाने में कितनी देर लगती है? कभी आपने खयाल किया है कि जब आप सुख से दुख में प्रवेश करते हैं, तब कौन सा क्षण है जहा सुख दुख बन आता है? किस

जगह आकर सुख समाप्त होता है और दुख शुरू होता है?

अगर आप इतनी खोज करें तो आपको पता चलेगा, वह क्षण आता ही नहीं कभी। जितना आप खोजेंगे उतना आप पाएंगे कि सुख और दुख के बीच में कोई अंतराल नहीं है, कोई खाई नहीं है। सुख और दुख के बीच में कोई गैप नहीं है। जितना आप खोजेंगे, उतना आप पाएंगे कि सुख दुख का ही एक छोर है। दुख कभी शुरू नही होता है। जब आप सुख में थे, तब भी वह मौजूद था। सिर्फ आप आधे को देख रहे थे। धीरे-धीरे जब पूरा आपकी झलक में आता है, दूसरा छोर तब दिखाई पडता है, तब दुख हो जाता है। सब दुख सुख बन सकते हैं, सब सुख दुख बन सकते हैं। वे इन्टरचेन्जेबुल हैं, उनमें कही कोई अवरोध नही है। कही कोई झटका भी नही लगता, जब आप सुख से दुख में जाते है। इतना भी नही जितना कि गाडी में गियर बदलने में लगता है। इतना भी नहीं। कोई बदलाहट ही नही होती; आप एक ही पटरी पर होते है।

इसलिए एक बहुत मजे की बात है और वह यह है कि जहा-जहा आपको विरोध दिखाई पड़ता है, वहा-वहा विरोध नहीं है। अविरोध है। यह जो अविरोध है, यह सिर्फ अविरोध ही नही है। लाओत्से दूसरी बात भी कहता है। वह कहता है, न केवल यह अविरोध है, बल्कि यह परिपूरक है, यह कम्पलीमेन्टरी है। इतना ही नही है कि सुख और दुख मे विरोध नही है, बल्कि इतना भी है कि सुख का आधार दुख है और दुख का आधार सुख है। इतना ही नही कि शुभ और अशुभ दुश्मन नही हैं, बल्कि मित्र हैं, और एक दूसरे के सहयोगी हैं।

ऐसी कोई दुनिया की कल्पना करें जहा कोई असाधु न हों तो वहां साधुओं की एकदम मृत्यु हो जाएगी। जहा-जहा अज्ञानी न हो, वहा-वहा ज्ञानी एकदम व्यर्थ हो जाएंगे। उनका पता ही नही चलेगा। एक के साथ दूसरा जुडा है। और एक के सहारे दूसरा खडा है।

यह साधक के लिए बहुत कीमत की बात है। क्योकि साधक पूरी जिन्दगी मे इसी उपद्रव में पडा होता है। ससारी भी इसी उपद्रव मे पड़ा होता है और साधक भी। फर्क उनके विषयों के चुनाव का होता है। ससारी इसमें पडा होता है कि सुख बचे और दुख हट जाए। और साधक इसमे पडा रहता है कि शुभ बचे और अशुभ हट जाए। लेकिन दोनो की भूल एक ही है। जिसको आप सन्यासी कहते हैं, वह भी उसी भूल मे होता है जिसमें ससारी होता है। उनके चुनाव अलग हैं। ससारी कहता है कि मै सुख बचा लूगा और दुख को काट डालूगा। आज नहीं कल श्रम से, पुरुषार्थ से दुख को मिटा दूगा और सुख को बचा लूगा। सन्यासी कहता है कि सुख-दुख मे मुझे रस नही है, मै शुभ को बचाऊगा और अशुभ को मिटा दूगा। जो बुरा है उसे हटा दूगा और जो भला है उसे बचा लूगा।

ऊपर से दोनो बडे विपरीत दिखाई पडते है, लेकिन लाओत्से के हिसाब से दोनो

की दृष्टि एक भी भ्रान्त है। शुभ और अशुभ भी एक ही चीज के दो छोर हैं। कहाँ शुभ अशुभ बन जाता है, कहना मुश्किल है। और कहाँ अशुभ शुभ बन जाता है, यह कहना भी मुश्किल है। और जिन्दगी इतना बड़ा विस्तार है कि अगर हम पूरे को देख पाएं तो हम यह द्वैत की भाषा ही छोड़ दें।

अच्छा करनेवालो ने अच्छा किया है जगत मे या बुरा करनेवालो ने बुरा किया है, अगर हम विस्तीर्ण इतिहास देखे तो बडी कठिनाई हो जाएगी। बडी कठिनाई हो जाएगी। एक सीमा पर जाकर बुराई अच्छाई बन जाती है।

अब जैसे उदाहरण के लिए लें। जिन्होने परमाणु-बम खोजा और जिन्होने नागासाकी और हिरोशिमा पर उसे गिराया, शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में उनके इस कृत्य से बुरा कृत्य दूसरा नही है। इस मामले मे निश्चित हुआ जा सकता है। गिरानेवाले भी निश्चित है कि इससे बुरा कृत्य दूसरा नही है। लेकिन संभावना यह है कि परमाणु - बम के कारण ही दुनिया में युद्ध समाप्त हो जाए। नागासाकी और हिरोशिमा के कारण ही दुनिया मे अब तीसरा महायुद्ध हो नही सकता। तब बड़ी मुश्किल है। यह हो सकता है कि आनेवाला भविष्य अब महायुद्धो का नही होगा। तब नागासाकी और हिरोशिमा पर गिराए गए बम शुभ थे या अशुभ, लम्बे विस्तार में यह तय करना मुश्किल हो जाता है।

अगर एक-एक घटना को हम अकेला-अकेला सोचें तो तय करना आसान है कि शुभ है या अशुभ है। लम्बे विस्तार मे देखे तो शुभ अशुभ मे बदलता दिखाई पडता है।

अब जैसे महावीर और बुद्ध, दोनो ने भारत को अहिंसा की शिक्षा दी। इस शिक्षा को कोई भी अशुभ नही कह सकता है। लेकिन इस शिक्षा का हाथ है भारत के ढाई हजार साल की दीनता में, गुलामी मे। शिक्षा को कोई अशुभ नही कह सकता है। इससे ज्यादा शुभ कोई बात नही हो सकती। लेकिन जब भी किसी भी मुल्क को आप अहिंसा सिखा देंगे, तब उसकी क्षमता संघर्ष की क्षीण हो जाएगी। प्रतिकार की क्षमता टूट जाएगी, और उसके परिणाम होंगे।

आपने अहिंसा सीख ली, इसलिए आपका पडोसी भी सीख लेगा, यह जरूरी तो नही है। बल्कि हो सकता है कि आपकी अहिंसा पड़ोसी को हिंसक होने के लिए मौका दे। यह भी हो सकता है कि आपकी अहिंसा के कारण ही आपका पड़ोसी हिंसक हो जाता हो। उसकी हिंसा की भी जिम्मेवारी आपकी होगी। क्योंकि कमजोर दूसरो को निमत्रण देता है कि मेरा शोषण करो। जब कोई आपके गाल पर एक चांटा मारता है, तब सिर्फ उसके हाथ का ही हाथ नही होता, आपके गाल का भी हाथ होता है। आपका गाल बुलाता है कि मारो। यह बुलावा ऐसा ही है कि जैसे कि पानी बहता है और गड्ढा बुलाता है, और वह गड्ढे मे समा जाता है।

जीवन में भी गड्ढे हैं। जब आप लड़ने की क्षमता खो देते हैं, तब आप गड्ढा

बन जाते है। तब किसी की लड़ाई की वृत्ति आप में प्रवाहित हो जाती है; कोई चाटा आपके चेहरे पर पड जाता है । इसमें अकेला एक जिम्मेवार नही है, आप भी जिम्मेवार हैं। **इस जिन्दगी में जिम्मेवारी बँटी हुई नहीं है, संयुक्त है।**

महावीर और बुद्ध की शिक्षा तो श्रेष्ठतम है। लेकिन अगर लम्बे विस्तार में दखे तो परिणाम क्या हुआ ? महावीर खुद तो एक क्षत्रिय है, लेकिन उनको माननेवाला पूरा वणिक वर्ग खडा हो गया । बनियो की एक जमात उनके पीछे खडी हो गई । यह जरा हैरानी की बात है कि एक बहादुर क्षत्रिय -- उनको हमने नाम दिया महावीर इसीलिए, उन जैसा वीर खोजना मुश्किल है--के पीछे कमजोरो और कायरो की एक जमात क्यो खडी हो गई। अहिंसा कायरता क्यों बन जाती है लम्बे अर्से मे ? बहादुरी अच्छी चीज है । पर लम्बे अर्से मे वह हिंसा क्या बन जाती है ?

सभी चीजे बदल जाती है अपने से विपरीत मे । विपरीत विपरीत नही है, दूसरा छोर है। सिर्फ समय की जरूरत है और आप दूसरे छोर मे बदल जाएगे। बच्चे ही तो बूढे हो जाते है। जन्म ही तो मृत्यु बनता है। कब बच्चा बूढा होता है, आप बता सकते है ? कब जन्म मौत बन जाता है, आप बता सकते है ? साथ ही साथ चलते है । साथ साथ चलते है, यह कहना भी भाषा की भूल है। एक ही चीज के दो छोर हैं। **एक ही चीज है -- जन्म यानी मौत, बचपन यानी बुढ़ापा ।**

और मजा यह है कि दूसरा सूत्र जो है लाओत्से का वह यह है कि **ये परिपूरक हैं** । अगर हम बुढापे को मिटा दें तो दुनिया से बचपन मिट जाएगा। यह मुश्किल पडता है समझना, क्योंकि हम सोच सकते है कि यह हो सकता है कि बुढ़ापा न हो । ईजाद हो जाए दवाइया स्वास्थ्य की, व्यवस्था ठीक हो जाए, तो यह हो सकता है कि आदमी बूढा न हो। **लेकिन जिस दिन हम यह कर पाएगे कि आदमी बूढा न हो, उस दिन बचपन तिरोहित हो जाएगा** । क्योंकि वह जो बचपन है, वह बुढापे का छोर है। वह उसके साथ ही जो सकता है। वह उससे अलग नही जी सकता। वे कम्प्लीमेन्टेरी है, दोनो जुडे है और एक दूसरे के आधार है ।

अब इस सूत्र को हम समझें ।

जो हलका है, उसका आधार ठोस है, उसका आधार गभीर है। जो निश्चल है, वह चलायमान का स्वामी है।

गाडी का चाक चलता है एक कील पर। वह कील ठहरी होती है और चाक घूमता रहता है। गर्मी के दिनो मे अधड उठता है, हवा के बवडर खडे होते है, धूल उठती है। गोल वर्तुलाकार घूमती हुई धूल आकाश की तरफ उठती है। कभी जाकर जमीन पर उसका छोडा हुआ चिह्न देखे तो आप बहुत चकित हो जाएगे। वह हवा का बवडर नीचे की रेत पर अपना चिह्न छोड जाता है, लेकिन बीच में एक बिन्दु होता है जो बिलकुल शान्त होता है, जिसमे जरा भी चिह्न नहीं होता।

वह जो बवडर है, उसके बीच में एक केन्द्र बिलकुल शात और थिर होता है।

गति स्थिर के ऊपर चलती है। स्थिर को तोड़ दें, गति टूट जाएगी। गति को तोड दें, स्थिर समाप्त हो जाएगा। वह जो हलका है, वह ठोस पर खडा है। वह जो गम्भीर है, वह गैर-गभीर पर निर्मित है।

ऐसा समझे, जिस दिन आदमी हसना बन्द कर देगा, उस दिन आदमी का रोना भी खो जाएगा। जानवर न तो हसते हैं और न रोते है। जब तक जानवर हस न सकें, तब तक रो भी न सकेगे। जिस जानवर को हम रोना सिखा सकते है, उसे हम हसना भी सिखा सकते हैं। अकेला आदमी ऐसा जानवर है जो हसता है। और अनिवार्य रूप से अकेला वही है जो रोता है।

किसी जानवर को आप ऊब से भरा हुआ न पाएगे, बोरियत से, बोर्डम से भरा हुआ न पाएंगे। देखें एक भैस को, घास चर रही है, एक गधे को, वृक्ष के नीचे खडा चिन्तन कर रहा है। कोई ऊब नही है। ऊब का कोई पता ही नही है। बोर्डम है ही नही। वे ऊबते ही नही है। रोज वही घास है, रोज वही वृक्ष है। और गधा कुछ नया-नया सोचता होगा, उसकी भी सभावना नही है। सोचता होगा, इसकी भी कोई सभावना नही है।

सिर्फ आदमी ऊबता है। इसलिए आदमी का मनोरजन के साधन खोजने पडते है। ऊब के साथ मनोरंजन है। गरीब आदमी कम ऊबता है। इसलिए वह कम मनोरजन के साधन खोजता है। अमीर आदमी ज्यादा ऊबता है तो ज्यादा मनोरजन के साधन खोजता है। सम्राट हुए जो चौबीस घटे मनोरजन मे पडे रहते थे; क्योंकि बिलकुल ऊबे हुए थे, जिदगी मे कोई रस ही न था। दूसरा छोर तत्काल निर्मित हो जाता है।

आदमी को छोडकर किसी पशु-पक्षी को सौन्दर्य का बोध नही मालूम होता; क्योंकि कुरूपता की कोई पहचान नही है। आदमी हट जाए, जमीन से तो सुन्दर और कुरूप दोनों शब्द व्यर्थ हो जाएगे। आदमी के साथ, विचार के साथ द्वन्द्व निर्मित होता है। चीजें बट जाती है। एक चीज सुन्दर हो जाती है, एक कुरूप हो जाती है। हमारा मन चाहेगा कि ऐसी घडी आ जाए, जब कुरूप बिलकुल न रहे, सुन्दर ही सुन्दर रह जाए। ऐसी घडी आ सकती है। लेकिन तब सुन्दर को सुन्दर कहने मे कोई अर्थ न रह जाएगा। वह सदा कुरूप के विपरीत ही सार्थक है।

हमारी सारी भाषा ही द्वन्द्व में सार्थक है।

लाओत्से कहता है, जो निश्चल है, वह चलायमान का स्वामी है। जहा-जहा गति है, वहा-वहा खोजना, बीच मे एक केन्द्र होगा जहां कोई गति न होगी। मगर हमारी अडचन है कि हम एक को पकड लेते है। अगर हम गति को पकडते है तो हम केन्द्र को भूल जाते हैं। अगर हम केन्द्र को पकडते हैं तो हम गति को भूल जाते है।

दुनिया ने दो तरह के लोग पैदा किये है। वे दोनों ही अधूरे है।

एक आदमी है जो गति को इतना पकडता है, बाजार में, दुकान में, व्यापार में, राजनीति में वह गतिमान रहता है कि वह यह भूल ही जाता है कि मेरे भीतर एक केन्द्र भी है और उसी केन्द्र के ऊपर यह सारी गति है। और वह केन्द्र चलता नही है, चलायमान नही है, थिर है। वह भूल ही जाता है। यही भूल उसका दुख बन जाती है।

फिर इस भूल से एक दूसरी भूल पैदा होती है। फिर वह सोचता है, जब थक जाता है, ऊब जाता है इस दौड धूप से, इस आपाधापी से बेचैन हो उठता है, तब वह सोचता है, छोडो सब गति, अब तो थिर हो जाओ, ठहर जाओ, हटाओ सब यह भागदौड, अब तो उस केन्द्र को पा लो जो चलता ही नही है। तब वह सारी गति के विपरीत केन्द्र को खोजने लगता है। तब वह सारी गति छोडकर, आँख बन्द कर, प्रतिमा बनकर सोचता है कि केन्द्र को पा लू। तब वह दूसरी भूल कर रहा है। पहले उसने एक भूल की थी कि केन्द्र को छोडकर गति को पा लू। अब वह दूसरी भूल कर रहा है कि गति को छोडकर केन्द्र को पा लू। चुनाव कर रहा है अधूरे का।

लेकिन, अधूरा इस जगत में नही है। **गति में ही जो केन्द्र को पा ले, वही केन्द्र को पा सकता है। केन्द्र के साथ भी जो गति में रह ले, उसी ने केन्द्र को पाया है, ऐसा जानना।** जो अपनी सारी भागदौड मे भी थिर हो, वही साधु है। और जो अपनी थिरता मे भी भाग सके, दौड़ सके, वही साधु है।

जगत मे दो तरह के असाधु हैं। असाधु का मतलब है अश को चुननेवाले लोग। एक वे जो कहते हैं कि हम ससारी हैं, हम ध्यान कैसे करें ? क्योकि ध्यान तो उस बिन्दु को खोजने की विधि है, जहा गति नही है। वे कहते हैं, हम ससारी हैं, हम ध्यान कैसे करे ? वे कहते हैं, हम ससारी हैं, हम सन्यासी कैसे हो जाए ? जब संसार छोड़ेंगे, तब सन्यासी हो जाएगे। और जब छोडेंगे सब दौडधूप, तब ध्यान करेंगे। इसलिए कुशल, होशियार, चालाक लोगो ने नियम-सा बना रखा है कि जब मरने के करीब हूगा--जब गति छोडना भी नही पडेगी, अपने-आप छूटने लगेगी, जब दौडना भी चाहेगे तो पैर जवाब दे देंगे--तब हम ध्यान कर लेंगे। वह मौका अच्छा है।

इसलिए हमने संन्यास को बूढ़े के साथ जोड रखा है। उसका कोई सम्बन्ध बूढे से नही है। मगर हमारी द्वैत की सोचने की व्यवस्था में यही उचित मालूम पड़ता है।

वह तो हमारा बस नही है, नहीं तो हम मरने के बाद इसे रखते। क्योकि तब कोई उपद्रव ही न रह जाएगा, न दुकान न बाजार; मर ही गए, फिर कब्र में ध्यान साधते रहेंगे। लेकिन वह उपाय नहीं मालूम पड़ता, इसलिए बिलकुल मरते तक उसे टालते हैं। आदमी मर रहा है और लोग उसको गंगाजल पिला रहे हैं और

रामनाम पिला रहे हैं। इनको जिन्दगी भर फुर्सत न मिली गंगाजल पीने की। बहुत काम था, व्यस्त थे। और जल्दी भी क्या थी? आखिरी क्षण पी लेंगे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम ससारी हैं, हम ध्यान कैसे कर सकते हैं? वे यही कह रहे हैं कि अभी हम गति में हैं तो हम ठहर कैसे हैं? उनको हम जरा और तरफ से समझें।

आप जाकर किसी से कहें कि मै तो दिन भर काम में लगा रहता हू, इसलिए विश्राम कैसे कर सकता हू? विश्राम तो विपरीत है। किसी से आप कहे कि मेरा तो काम जागने का है, मैं सो कैसे सकता हूं? लेकिन दिन भर आप जागते हैं और रात आप सो जाते है। न केवल इतना, बल्कि जितना ठीक से जागते हैं, उतना ठीक से सो जाते हैं। सोना और जागना विपरीत आपको दिखाई पड़ते हो, **लेकिन विपरीत नहीं हैं, परिपूरक हैं।** जो आदमी दिन मे ठीक से जागा है, रात गहरी नींद सो जाएगा। जो आदमी दिन में ऊंघता रहा है, वह रात सो नही पाता। जो दिन भर बिस्तर पर खाली पडा रहा है, वह रात कैसे सो पाएगा?

अगर हमारा तर्क सही होता तो जिसने दिन भर ऊघने का अभ्यास किया, उसको गहरी नीद आनी चाहिए, क्योंकि दिन भर का अभ्यासी है। और अभ्यास का तो फल मिलना चाहिए। यह क्या उलटा हो रहा है? और जो आदमी दिन गड्ढा खोदता रहा, लकडी काटता रहा, पत्थर तोडता रहा, इसको तो रात नीद आनी ही नही चाहिए। दिन भर का अभ्यास है उसे जागने का।

लेकिन जिसने दिन भर लकडी काटी है, वह बिस्तर पर गिरता भी नही है और नीद आ जाती है। उसे पता भी नही चलता कि कब उसके शरीर ने बिस्तर को छुआ, उसके पहले प्राण निद्रा को छू लेते हैं। और वह जो आदमी दिन भर ऊंघता रहा है, अपनी आराम कुर्सी पर बैठा रहा है, बिस्तर पर लेटा रहा है, वह रात करवटें बदलता है।

आपको पता है, ये करवटें परिपूरक हैं। जो दिन में नही कर पाया, वह उसे रात में करना पड़ता है। उतना श्रम तो करना जरूरी है। हजार या पाच सौ करवटें बदलकर थोडा-बहुत सुबह-सुबह सो पाता है। ये करवटें, जिसने लकड़ी फाडी है, दिन में ही बदल ली हैं उसने। बिस्तर भी कोई जगह है व्यायाम करने के लिए? लेकिन अधिक लोग जो दिन में व्यायाम नही कर रहे हैं रात बिस्तर मे व्यायाम करेंगे ही। उनकी जिन्दगी बडी अस्त-व्यस्त हो जाएगी। जब व्यायाम करना था, तब वे ऊंघते रहे; जब सोना था, तब वे व्यायाम करते रहे। उनका सब जीवन विपरीत जालों में उलझ जाएगा—अपने ही कारण।

नीद विपरीत नहीं है जागने के। और लाओत्से कहता है, गति विपरीत नहीं है थिरता के। वह परिपूरक है।

तब एक नया आयाम खुलता है सोचने का। इसका मतलब यह हुआ कि दौड़ते

हुए भी ऐसा हुआ जा सकता है कि भीतर कोई न दौड़े। और जब तक ऐसा सूत्र न मिल जाए कि दौड़ते हुए भी आप जानें कि आप नहीं दौड़ रहे हैं, तब तक आपको जिन्दगी के रहस्य का द्वार नहीं मिलेगा। तब काम करते हुए भी कोई विश्राम में बना रह सकता है। और तब, तब जीवन के सब द्वन्द्वों के बीच में एक सूत्र मिल जाता है। तब रात सोये हुए भी भीतर कोई जागा रह सकता है। और तब दिन के सारे श्रम के बीच भी भीतर कोई विश्राम में बैठा रह सकता है। और तब चाहे जीवन में कितनी ही धूप हो, भीतर एक छाया बनी ही रहती है। और चाहे कितनी ही बेचैनी के बवंडर उठें, एक केन्द्र पर सब शांत और मौन रहता है।

और मजा यह है कि जितनी तीव्रता होती है इन बवडरों की, उतनी ही गहरी वह शाति अनुभव होती है। वह इससे नष्ट नही होती है। क्योंकि ये परिपूरक हैं। इसलिए जीवन में जितना तूफान होता है, उतनी ही गहन शाति का अनुभव होता है। और जीवन में चारो तरफ कितने ही दुखो की वर्षा होती रहे, भीतर एक सुख की वीणा बजती ही रहती है। जितने जोर से दुखो की होती है वर्षा, उतने ही जोर से उस वीणा का स्वर गतिमान हो जाता है। क्योकि वे परिपूरक हैं, विपरीत नही हैं। एक दूसरे के दुश्मन नही हैं, साथी हैं।

अद्वैत की यह अनूठी ही बात है। लाओत्से अद्वैत की दिशा में यह अनूठा कदम उठा रहा है। वह यह कह रहा है कि जहा-जहा तुम्हें विपरीत दिखाई पडती है, वहाँ-वहाँ तुम विपरीत मान लेते हो, वही भूल हो जाती है। विपरीत मानना ही मत। और जहा तुम्हें विपरीत दिखाई पडे, वहां तुम विपरीत को साधना, एक को छोडकर नही, दोनो को साथ ही साथ साधना। इसका मतलब हुआ कि संन्यास अगर वास्तविक है तो संसार में ही हो सकता है।

मुझसे आकर लोग कहते है कि हम ससारी है, हम सन्यासी कैसे हो जाएं? लोग मुझसे आकर कहते है कि आप यह क्या उपद्रव कर रहे हैं, ससारियो को संन्यास दे रहे हैं। सन्यास तो तभी हो सकता है, जब कोई घरबार छोडकर, सब छोड़कर भाग जाए। पलायन में भी संन्यास हो सकता है, त्याग में ही सन्यास हो सकता है। उनका कसूर नहीं है। द्वन्द्व की भाषा में सोचने की आदत है।

मेरी दृष्टि में सन्यास हो ही केवल संसार में सकता है। और जिसका सन्यास ससार मे नही हो सकता, उसका संन्यास कभी भी नही हो सकता।

लाओत्से कहता है, इसलिए सन्त दिन भर यात्रा करता है, और फिर भी यात्रा नही करता।

बुद्ध चालीस वर्ष तक चलते रहे ज्ञान के बाद। ज्ञान के बाद ही वे बुद्ध हुए। चालीस वर्ष तक चलते रहे, एक गाव से दूसरे गाव, दूसरे गाव से तीसरे गांव। अनथक यात्रा चलती रही। उनका एक शिष्य मोग्गलान एक दिन बुद्ध से पूछता है आप इतना चलते हैं, थकते नहीं हैं?

बुद्ध ने कहा, जो चलता हो, वह थकेगा ही; मैं चलता ही नहीं हूं। मोग्गलान ने कहा, मजाक करते हैं आप। आपको अपनी आंखों से चलते देखता हूं। बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हारी आंखों का भरोसा करूं या अपनी आंखों का? मैं भीतर देखता हूं, वहां कोई चलता ही नहीं है। तुम मुझे बाहर से देखते हो, वहां कोई चलता है। जो चलता है वह मेरी छाया है; जो नहीं चलता है, वह मेरी आत्मा है। और छाया के चलने से भी कोई थकता है?

लेकिन आप थकेंगे, क्योंकि आपकी छाया नहीं चलती, आप चलते हैं। आपने छाया से अपने को एक ही मान रखा है।

हमारे मन में सवाल उठते हैं कि जब बुद्ध को ज्ञान हो गया, तब अब बोलते क्यों हैं? जब ज्ञान हो गया, तब अब चलते क्यो हैं? जब ज्ञान हो गया, तब अब उन्हें क्या प्रयोजन है? हमें लगता है कि जब ज्ञान हो गया, तब अब सब गति बन्द हो जानी चाहिए।

गति बन्द नहीं होती है ज्ञान से। सिर्फ जो गति में ज्वर होता है, फीवर होता है, वह बन्द हो जाता है। गति तो जारी रहती है। बल्कि सच पूछें तो गति पहली दफा निखरकर स्वच्छ हो जाती है। नदी तो अब भी बहती है, लेकिन उसमें कूड़ा-करकट नहीं बहता, अब उसमें गदगी नही बहती। अब नदी शुद्ध धार हो जाती है। ऐसा समझ लें कि पानी भी न रह जाए और सिर्फ गति रह जाए नदी में, इतनी शुद्ध हो जाती है।

लाओत्से कहता है, इसलिए सन्त दिन भर यात्रा करता है, देयरफोर द सेज ट्रैवेल्स आल डे येट नेवर लीव्ज हिज प्रोवीजन कार्ट, और वह जो भीतर जीवन-ऊर्जा है, वह जो भीतर जीवन का मूल स्रोत है, प्रोवीजन कार्ट है, जहा जीवन की सारी शक्ति सरक्षित है, जहा उसके जीवन का भोजन छिपा है, उसे वह कभी नहीं छोड़ता है। यात्रा करता है दिन भर, चलता है दिन भर, और भीतर कोई भी नही चलता है। भीतर वह अपने मूल केन्द्र में थिर बना रहता है। परिधि चलती है, केन्द्र ठहरा रहता है। चाक चलता है, कील रुकी रहती है। बोलता भी है और नही भी बोलता है; क्योंकि मौन से बोलता है।

बुद्ध बोलते हैं। उस बोलने में और आपके बोलने में फर्क है। आप जब बोलते हैं, तब शब्दो से बोलते हैं। बुद्ध भी शब्दो का उपयोग करते हैं। लेकिन शब्दो से नही बोलते, मौन से बोलते हैं। आप जब बोलते हैं, तब आपके भीतर शब्दो का इतना उपद्रव मच जाता है कि उसे आपको किसी पर उलीचना पडता है। बुद्ध जब बोलते हैं, तब शब्दो के उपद्रव से नही बोलते है। भीतर मौन इतना घना है, उस मौन से ही जो दृष्टि दिखती है, उस मौन से ही जो रिसपॉन्स, जो प्रतिसंवेदन होता है, उससे ही वे बोलते हैं।

आप जब बोलते हैं, तब आप कभी खयाल करना, आप जब बोलते हैं, तब

जिससे आप बोलते हैं, उससे आपका प्रयोजन नहीं होता। आपका बोलना एक बुखार है; वह आपको भीतर परेशान कर रहा होता है। किसी न किसी से बोलना पड़ता है। निकल जाता है, थोड़ी राहत मिलती है। आपने अपना कचरा दूसरे को संभाल दिया, वह किसी को सभाले, वह जाने। अब आपका कोई प्रयोजन नहीं है। अब आप निश्चिन्त सो सकते हैं। आप खयाल करना कि जब आप बोलते है, तब आपका दूसरे से प्रयोजन है? आपका दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है।

इसलिए कोई न मिले तो आदमी अकेले में अपने से भी बात कर लेता है। तास बिछाकर दोनो तरफ से चाल चल लेता है। आदमी विक्षिप्तता से बोलता है।

बुद्ध शून्य से बोलते है। इसलिए बुद्ध के बोलने में आप प्रयोजन हैं। इसलिए अगर कोई उनसे कुछ पूछता है और लोग एक-से सवाल भी पूछते हैं, लेकिन बुद्ध अलग-अलग जवाब देते है। बुद्ध के भिक्षु अनेक बार मुश्किल में पड जाते हैं। वे बुद्ध से कहते हैं कि सवाल तो एक ही था और आपने जवाब अलग-अलग लोगो को अलग-अलग दिये। बुद्ध ने कहा, **सवाल महत्वपूर्ण नहीं हं, पूछनेवाला महत्वपूर्ण हं।** और जवाब मैं सवाल को नहीं देता, पूछनेवाले को देता हू। और पूछनेवाले अलग-अलग हैं।

उनके सवाल एक मे दिखाई पडते हैं। लेकिन अगर हम पूछनेवाले की पूरी-पूरी व्यवस्था को समझें तो हर सवाल का मतलब अलग हो जाता है। वह जब आपके भीतर से आता है, तब आपका रग, आपका खून, आपकी मज्जा उसमें सम्मिलित हो जाती है। एक आदमी आकर पूछता है, ईश्वर है? यह सवाल नहीं है सिर्फ यह आकाश से, शून्य से पैदा नहीं हुआ है। यह एक आदमी से पैदा हुआ है। एक दूसरा आदमी भी आकर पूछता है, ईश्वर है? यह दोनो सवाल शब्दों में एक से हैं, लेकिन ये दो आदमी अलग-अलग हैं।

एक आदमी नास्तिक हो सकता है, वह पूछता है, ईश्वर है? उसका मतलब है कि है तो नही, पर आपसे भी पूछना चाहता हू कि वह है? लेकिन वह जानता है, नहीं है। दूसरा आदमी आस्तिक हो! वह भी आपसे पूछना चाहता है, वह भी आपकी सलाह लेना चाहता है, लेकिन भीतर जानता है कि है। उन दोनो के सवाल एक से है, लेकिन उनके भीतर का आदमी अलग-अलग है। और भीतर की छाया उनके सवालो को बदल देगी।

इसलिए सिर्फ बुद्ध एक से जवाब देंगे। बुद्ध तो अलग-अलग जवाब देंगे। क्योंकि बुद्धुओं को सवाल सुनाई पडते हैं, बुद्धों को पूछनेवाला सुनाई पडता है। और, जब पूछनेवाला महत्वपूर्ण होता है, तब जो उत्तर आते हैं, वे देनेवाले के बोझ के कारण नही आते हैं, देनेवाले के शून्य से उनकी प्रतिध्वनि होती है।

बुद्ध मौन से बोलते हैं। यह हमें कठिन लगेगा। हम कहेंगे कि जब मौन ही हो गए, तब बोलना क्या? हमारे सब तरफ द्वन्द्व चलता है सोचने मे कि जब मौन हो गये, तब बोलना क्या? और जब बोलते हैं, तब मौन कैसे हो सकते हैं?

जो बोल सकता है, वह मौन भी हो सकता है। और जो मौन हो गया, वह बोल सकता है। क्वालिटी बदल जाती है, गुण बदल जाते हैं। जब बोलनेवाला मौन हो जाता है, तब उसके बोलने में मौन के स्वर समाविष्ट हो जाते हैं। जब बोलनेवाला मौन हो जाता है, तब उसका बोलना एक बीमारी नही रह जाती, वह एक संवाद हो जाता है। और जब बोलनेवाला मौन हो जाता है, तब उस मौन से सत्य का जन्म होता है। और जब बोलनेवाला मौन नहीं होता, तब शब्द शब्दो को पैदा करते रहते हैं, शब्द शब्दो को जनमाते रहते हैं। शब्दों की शृखला चलती रहती है। और जब मौन कोई हो जाता है, तब बोलता है।

महावीर बारह वर्षों तक मौन रहे। तब लाख लोगो ने कहा, लाख लोगों ने सवाल पूछे, लेकिन वे न बोले। आप क्या समझते हैं कि कारण क्या था? कारण केवल इतना था कि महावीर के भीतर अभी भी शब्द मौजूद थे। इसलिए महावीर भी जानते थे कि यह उत्तर जो मेरा आयेगा, वह मौन से नही आएगा, मेरे शब्दो से आएगा। अभी उत्तर देने का कोई अर्थ नही है। इन उत्तरो से मैं खुद परेशान हू, दूसरों को दे कर और क्या परेशानी मे डालना? जिन शब्दों से मुझे राहत न मिली, उन शब्दो से किसे राहत मिल जाएगी?

इसलिए महावीर चुप हैं। बारह वर्ष वे चुप रहे। शब्द जब खो गए, तब महावीर ने बोलना शुरू कर दिया। यह मजे की बात है, हम शब्दो से बोलते हैं, महावीर जैसे लोग मौन से बोलते है। बारह वर्ष वे जगल में रहे और जब बिलकुल मौन हो गये, तब शहर में वापस लौट आए। अब उनके भीतर एक मौन शून्य था। अब कोई भी उत्तर पूछे तो यह शून्य उत्तर दे सकता था। महावीर को बीच मे आने की कोई भी जरूरत न थी। अब महावीर खो गये। अब यह आत्मा ही जवाब देती है। महावीर का मतलब है शिक्षा, सस्कार; ये सब खो गए। अब ये उत्तर शिक्षा और सस्कार से नही आएगे। अब ये उत्तर गहन खाई से आएगे, उस अतल शून्य से आयेंगे, जिसको हम अस्तित्व कहते है।

महावीर भाग गए थे ससार से, फिर लौट क्यों आये? यह बडे मजे की बात है कि महावीर के अनुयायी भागने की तो चर्चा करते है, लेकिन लौटने की चर्चा नहीं करते। लेकिन इस जगत में जो भी भागा है, वह लौट आया है। महावीर हट गए थे, फिर लौट क्यो आये? लौटने का मतलब कि उन्होंने कोई शादी कर ली हो, ऐसा नही है। लौटने का मतलब है कि जिन सबको वे छोडकर चले गए थे, वापस आ गए उनके बीच। जो सम्बन्ध छोड़ दिये थे, वे पुनर्निर्मित किये गये। इससे क्या फर्क पड़ता है कि अब वे सम्बन्ध गुरु और शिष्य के थे, और जब

भागे थे, तब वे सम्बन्ध भाई और भाई के थे, और जब वे भाग थे, तब वे सम्बन्ध पति और पत्नी के थे। इससे क्या फर्क पड़ता है ?

संसार का अर्थ है सम्बन्धों का जगत। बारह वर्ष बाद जब महावीर लौट आये, फिर सम्बन्धों में लौट आये।

लेकिन अब महावीर तो हैं ही नहीं, इसीलिए वे लौट पाए। महावीर तो समाप्त हो गये बारह वर्षों में। अब तो एक मौन शून्य बचा, एक दर्पण बचा, जो लौट आया। अब इस दर्पण में कोई भी देखे तो दर्पण को अब दिखाने का कोई सवाल न रह गया। अब तो जो शक्ल दिखेगी, वही शक्ल दिखाई पड़ जाएगी। एक दर्पण वापस लौट आया। और दर्पण गांव-गांव घूमने लगा। इसमें जो प्रतिबिम्ब बने, वे आपके अपने थे। इसमें जो बीमारियां दिखाई पड़ी, वे आपकी अपनी थीं। इसमें जो उत्तर आया, वे प्रतिध्वनियां थी।

लाओत्से कहता है, सन्त दिन भर यात्रा करता है, लेकिन जीवन-ऊर्जा के स्रोत से जुड़ा रहता है। वह सम्मान और गौरव के बीच भी विश्रामपूर्ण और अविचल है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। कहना चाहिए था अपमान, असम्मान, अगौरव, दुख, अपयश के बीच भी विश्रामपूर्ण और अविचल! लेकिन लाओत्से उलटा कह रहा है। वह कह रहा है कि सम्मान और गौरव के बीच भी। यह जरा कठिन है। दुख में तो हम विचलित हो ही जाते हैं। लेकिन अगर थोड़ी चेष्टा करे तो दुख में अविचलित होना ज्यादा कठिन नहीं है।

लेकिन सुख में विचलित होना बिलकुल स्वाभाविक है। और सुख में अविचलित रह जाना बड़ा मुश्किल है। दुख में तो आदमी दुख के कारण ही अपने को थिर कर लेता है। दुख सहना हो तो थिर करना जरूरी है। जितना आप थिर होंगे, उतनी आसानी से दुख को झेल लेंगे। तो थिर होना तो झेलने की व्यवस्था हो सकती है। लेकिन सुख में तो आप खुद ही नाचना चाहते हैं। और अगर सुख में आप थिर होंगे तो जैसे दुख कम हो जाता है थिर होने से, वैसे ही सुख भी कम हो जाएगा थिर होने से। सुख का मतलब ही है कि आप कंपित हो जाएं, डोल जाएं, नाच उठें, रोआं-रोआं पुलकित हो जाए। अगर सुख में आप अविचलित रह जाए तो सुख व्यर्थ हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, सम्मान और गौरव के बीच भी, जब उनपर फूल बरसते हैं, तब भी। और जब चारों तरफ देवी-देवता उनके आसपास चँवर लेकर झूमने लगते हैं, तब भी। तब भी अविचलित और तब भी विश्रामपूर्ण! यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि हम कहेंगे कि सुख मे, गौरव में तो विश्राम होगा ही। गलत है आपका खयाल। **सुख जितना विश्राम तोड़ता है, उतना दुख नहीं तोड़ता।** सुखी होकर देखें। यह बात मुश्किल है कि सुखी होने का मौका कम लोगों को मिलता है, इसलिए पता नहीं चलता। सुखी आदमी भी रात में सो नहीं सकता।

सुख भी एक तरह की परेशानी है। माना कि उसे आप पसन्द करते हैं; यह दूसरी बात है। लेकिन सुख भी एक तरह की परेशानी है। लाटरी मिल गई है आपको। कितने दिन से सोचा था मिल जाए, मिल जाए, मिल जाए। फिर मिल गई। अब रात सोइएगा? कैसे सोइएगा? अब बहुत मुश्किल है। अब एक क्षण की चैन मुश्किल है। लाटरी न मिली थी तो जितनी बेचैनी थी, यह बेचैनी उससे ज्यादा है।

और जिस दिन कोई सुख मे भी शान्त हो जाता है, सन्त हो जाता है।

दुख में शान्त बना रहना तो व्यवस्था की बात है। आदमी को झेलने मे सुविधा होती है। सुरक्षा बना लेता है चारो तरफ। कडा कर लेता है मन को, समझा लेता है। सुख में जब समझाये, तब पता चले। सुख में हम कहेंगे कि पागल होगा जो अपने को समझाएगा। मुश्किल से तो सुख मिला है, अब समझाकर क्या सुख को नष्ट करना है?

दुख आ जाए तो हम कहते है कि चला जाएगा, कोई ज्यादा देर थोड़े ही रुकने-वाला है। ससार में सब चीजें अनित्य है। जब सुख आये तो कहिए अपने से कि चला जाएगा, कोई घबडाने की जरूरत नही है, संसार मे सब चीजें अनित्य हैं। जब घर मे कोई मर जाए, तब हम कहते हैं कि आत्मा तो अरम है मृत्यु तो सब भासमान है। जब घर मे बच्चा पैदा हो जाए, तब कहिए कि आत्मा तो अमर है, जन्म वगैरह सब भासमान हैं, कुछ भी नही हुआ।

इसलिए लाओत्से जानकर करता है कि सम्मान और गौरव के बीच भी वह विश्रामपूर्ण, अविचल जीना है। एक महान देश का सम्राट कैसे अपने राज्य मे अपने शरीर को उछालता फिर सकता है? सन्त को अनेक जगह लाओत्से उस आन्तरिक साम्राज्य का मालिक मानता है।

हम अपने को उछालते फिरते है चारो तरफ अनेक तरह से। हमारे उछालने की व्यवस्थाए आदतन हो गई हैं, इसलिए पता नही चलता है। लोग कपडे पहनते है। हम सोचते है कि ढाकने को पहनते होगे। गलत है। बहुत कम ही लोग है जो शरीर ढाकने को कपडे पहनते हो; वे शरीर दिखाने को कपडे पहनते है, शरीर उछल कर दिखाई पडे, इसलिए कपडे पहनते है। शरीर ढाकने को जब कोई कपडे पहनने लगता है, तब वह साधु हो गया। शरीर दिखाने को कपड़े पहने जाते है। यह बडा उलटा मालूम पडता है। लेकिन जितने ढग से शरीर को कपड़ो से दिखाया जा सकता है, नग्न शरीर को उतने ढग से नही दिखाया जा सकता।

और बडे मजे की बात है कि कपडो से ढके शरीर को देखने की जितनी इच्छा पैदा होती है, उतने नग्न शरीर को देखने की इच्छा पैदा नही होती। एक आदमी नग्न खडा हो, सुन्दरतम स्त्री भी नग्न खड़ी हो, कितनी देर देखिएगा? थोडी देर मे मन यहा-वहां भागने लगेगा। नग्न स्त्री, सुन्दरतम स्त्री पर भी एकाग्र होना मन

के बस की बात नही है। मन यहां-वहां भागने लगेगा। लेकिन ढकी स्त्री को, ढकी ऐसी, ढकी ढंग से, ढकी व्यवस्था से, ढकी इस ढंग से कि आपकी कल्पना को गति दे, सामने न उघड़ी हो, आपका मन उघाड़ने लगे, तो फिर आप बड़े एकाग्रचित्त हो सकते हैं। तो फिर आप घटो लीन हो सकते हैं। कपड़े नग्नता से ज्यादा अश्लील हो सकते हैं।

लेकिन यह समझना कठिन है थोडा। क्योंकि कपडे बड़ी तरकीब हैं, लम्बी तरकीब है सभ्यता की। और हम भूल ही गए हैं कि कपड़ो का हम क्या-क्या उपयोग करते है। जो शरीर में नही है, जैसा शरीर नहीं है, कपड़े वैसा वहम भी दे सकते हैं। देते हैं। मगर हम आदी है, हमें खयाल भी नही है।

हमें खयाल भी नही है कि एक आदमी अपनी कोट के दोनो कंधो में रुई भरे हुए है। उसे खयाल भी नही है। सभी के कोट में रुई भरी हुई है। लेकिन क्यो वह रुई भरे हुए है, उसे कुछ खयाल नही है। असल में पुरुष के कन्धे अगर उठे हुए न हो और छाती अगर फैली हुई न हो तो स्त्रियो के लिए उनमें आकर्षण नही है। इसलिए रुई भरकर भी धोखा चलता है। लेकिन हम आदी हैं। जब कोट बनाकर दर्जी दे जाता है, तब हम यह नही सोचते कि यह कोई हमें अश्लील बनाने की कोशिश कर रहा है, कि हमारे शरीर को उछालने की कोशिश कर रहा है। कधे ढले-ढले हो तो भीतर से प्राण निकल जाते हैं। चाहे रुई से ही उठे हो तो भी पैरो में तेजी आ जाती है।

हम अपने को उछालते फिर रहे हैं—शरीर की दृष्टि से और मन की दृष्टि से भी। कोई आदमी कुछ कहता है तो फिर आपसे रुका नही जाता। आप अपने ज्ञान को फिर रोक नही पाते हैं। ज्ञान को रोकना बड़ा दूभर है। निकल ही पड़ता है, ज्ञान उछल ही पडता है। आप तरकीब में रहते हैं कि कोई फंस भर जाए, एक सवाल भर पूछ ले, इतना ही पूछ ले कि कैसे है। काफी है। फिर आप छोड़ नही सकते हैं। फिर आप उछाल देंगे, जो भीतर उबल रहा है। शरीर को उछाल रहे है दूसरो पर, मन को उछाल रहे है दूसरो पर।

लाओत्से कहता है, लेकिन सन्त ऐसा है जैसे कोई सम्राट अपने ही राज्य में घूमता हो। उछालने का कोई कारण भी नही है। उछाल कर भी वह अब सम्राट से ज्यादा और क्या हो सकता है? उछाल कर भी अब सम्राट से ज्यादा क्या हो सकता है? इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटती है। सम्राट सादगी से जी सकते हैं। आसान है। दरिद्र सादगी से नही जी सकते हैं। बहुत कठिन है। सम्राट सादगी से जी सकते हैं।

मैंने सुना है, रॉकफेलर इगलैण्ड आया और उसने एअरपोर्ट पर पूछताछ की कि सब से सस्ती होटल लदन मे कौन सी है। उसके चेहरे को कौन नही पहचानता था? वह आदमी जो सूचना देनेवाला था, उसे पहचान गया। उसने कहा कि आप,

आपका चेहरा तो रॉकफेअर जैसा मालूम पड़ता है। वह भी डरा, क्योंकि छोटी, सस्ती होटेल खोजता था वह। तो उसने कहा कि आपका चेहरा तो रॉकफेलर जैसा मालूम होता है। रॉकफेलर ने कहा कि जैसा का क्या सवाल, मैं राकफेलर हूं। उसने कहा, आप और सस्ती होटल पूछते हैं? आपके लड़के आते हैं तो वे पूछते हैं कि सबसे बढ़िया होटल कौन सा है। और फिर भी उनको तृप्ति नहीं मिलती। और आप यह कोट कैसा पहने हुए हैं? फटा कोट पहने हुए हैं।

रॉकफेलर ने कहा, क्या फर्क पड़ता है? मैं कोट कोई भी पहनू, रॉकफेलर मैं हूँ ही। अभी लड़के जरा नये-नये हैं, उछालते फिरते हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मैं एक छोटी, सस्ती होटल में ठहरू? इससे कोई फर्क नही पड़ता है। रॉक फेलर ने कहा कि अगर मैं सस्ती होटल में ठहरता हूं तो होटल सम्मानित होता है; और कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं अपमानित नहीं होता, मैं रॉकफेलर ही हूं।

गरीब आदमी जब सस्ती होटल में ठहरता है, तब अपमानित होता है। खुद पर भरोसा नही होता उसे। रॉकफेलर ने कहा कि कोट कोई भी हो, इससे रॉकफेलर को क्या फर्क पड़ता है। वह तो गरीब आदमी को पडता है। इसलिए जब कोई नया-नया अमीर होता है, तब देखें, कैसे उछालता फिरता है। कभी-कभी ताकत के बाहर कूद जाता है, हाथ-पैर तोड लेता है। नये अमीर अक्सर हाथ-पैर तोड लेते हैं। जब किसी के घर मे घुसे और देखें कि धन उछल रहा है, तब समझना कि अभी यह आदमी गरीब ही है। अभी अमीर हुआ नही है, अभी आश्वस्त नही हुआ है। वह जो उछालने की वृत्ति है, दीनता का हिस्सा है।

जो सच मे सुन्दर होता है, वह अपने सौन्दर्य के प्रति विनम्र होता है। वह इतना विनम्र होता है कि उसे बोध भी नही होता है कि मैं सुन्दर हू। जो कुरूप होता है, वह इतना विनम्र नही हो सकता। कुरूप अपने को सुन्दर बनाए रखता है। और पूरे वक्त सचेष्ट रहता है कि कहीं कोई ऐसा तो नही है जो उसके सौन्दर्य को न मान रहा हो।

जो सच में बुद्धिमान है, वह दूसरे को विवाद करके हराने मे उत्सुक नही होता। जो बुद्धिहीन है, वह किसी को भी हराने मे उत्सुक होता है। शास्त्रार्थ बुद्धिहीनों की तृप्ति है। क्योकि दूसरे को हराकर उसको भरोसा मिल सकता है कि मैं भी जानता हू। मै जानता हू इसके प्रति जो आश्वस्त है, वह दूसरे को हराने के लिए क्या उत्सुक होगा? दूसरे को हराकर भी क्या अर्थ हो सकता है? कोई अन्तर नही पड सकता है।

लाओत्से कहता है, संतजन, जैसे एक महान देश का सम्राट अपने ही राज्य में घूमता हो, ऐसे इस पूरे अस्तित्व में जीते है। इस सारे अस्तित्व में जो गहनतम है, जो केन्द्रीय है, उसका उन्हें अनुभव है। अब उछालने का कोई सवाल नही है। अब किसी को दिखाने का भी कोई सवाल नही है। अब कोई देखे, कोई माने, यह

बात भी व्यर्थ हो गई। किसी को कन्वर्ट किया जाए, किसी को राजी किया जाए, किसी को बदला जाए, यह बात भी अर्थहीन हो गई। **यह जो परम आश्वासन है स्वयं के प्रति, यह इस जगत में सबसे बड़ा सौन्दर्य है।**

स्वयं के प्रति जो परम आश्वासन है, यह सबसे बड़ा सौन्दर्य है। इतना आश्वस्त है व्यक्ति अपने प्रति कि अब किसी और आश्वासन का सहारा खोजने की जरूरत नहीं है। यही कारण है कि बुद्ध और महावीर सड़क पर निःसंकोच भिक्षा मांग सके। आपको मागने मे कठिनाई पडेगी। आप भिक्षा मांगने जाएंगे तो अडचन मालूम पडेगी। लेकिन बुद्ध और महावीर भिक्षा माग सके सडक पर। इससे वे केवल इतना ही जाहिर करते हैं कि वे अपने सम्राट होने के प्रति पूरे आश्वस्त हैं। भिक्षा का पात्र कोई फर्क नही ला सकता। बुद्ध के हाथ म भिक्षापात्र गौरवान्वित हो जाता है। बुद्ध भिक्षु नही बनते। उनके हाथ में भिक्षापात्र गौरवान्वित हो जाता है।

बडे मजे की बात है कि बुद्ध के भिक्षा मागने के कारण भिक्षु शब्द आदरित हो गया। भिक्षु शब्द आदरित हो गया। भिक्षु भिखारी नही है। भिक्षु का मतलब भिखारी नही है। बुद्ध तो अपने सन्यासियो के आगे भिक्षु, भिक्खु तो लगाते ही थे। बडे मजे की बात है, स्वामी शब्द हटा दिया बुद्ध ने। अपने सन्यासियो के सामने स्वामी लगाना बन्द कर दिया, भिक्षु लगा दिया। यह जरा सोचने जैसा मामला है कि क्यो ऐसा हुआ।

ब्राह्मण अपने सन्यासी के सामने सदा स्वामी लगाते थे। ब्राह्मण भिखारी थे। स्वामी होने मे थोडा रस था। सदा के भिखारी थे, और तो कोई उपाय नही था स्वामी होने का। सन्यासी होकर जो पहला खयाल ब्राह्मण को आयेगा, वह यह कि अब मैं मालिक हुआ। यह बिलकुल ठीक है।

यह बुद्ध सदा के सम्राट थे। सम्राट होने की हवा में ही बड़ा हुए थे। ये अपने आगे अगर स्वामी लगाते तो फीका ही लगता। उसमें कोई मतलब न था बुद्ध के लिए। अगर स्वामी ही लगाना था तो सम्राट बने रहने मे क्या बुराई थी? बुद्ध को जो पहला शब्द सूझा, वह सूझा भिक्षु।

ये शब्द भी अकारण पैदा नही हो जाते हैं। इनके पीछे लम्बी यात्राए होती हैं। अनेक अर्थ होते हैं। ब्राह्मणो ने स्वामी रखा तो सिर्फ स्वामी होने की वजह से नहीं। खयाल था कि भीतर की मालकियत मिली। लेकिन मालकियत महत्त्वपूर्ण मालूम पडी। बुद्ध को तो सारी मालकियत व्यर्थ हो गई। अब उस मालकियत वाले शब्द का उपयोग करना भी ठीक न मालूम पडा। बुद्ध अपने संन्यासियो को भिक्षु कह सके। और उनके कहने के कारण भिक्षु शब्द ऐसा समादरित हुआ कि सम्राट होना फीका पड गया। भिक्षु होना महत्त्वपूर्ण हो गया। और बुद्ध जब भिक्षा का पात्र लेकर सडको पर निकले होगे, तब वही दृश्य थोड़ा अपने खयाल में

ले और तब लाओत्से की बात समझ में आ जाएगी।

एक महान देश का सम्राट कैसे अपने राज्य में अपने शरीर को उछालता फिर सकता है? दिखाने की कोई जरूरत ही न रही। राज्य ही मेरा है, अस्तित्व ही पूरा मेरा है।

हलके छिछोरेपन में केन्द्र खो जाता है। जल्दबाजी के काम में स्वामित्व, स्वयं की मालकियत नष्ट हो जाती है। इस आखिरी सूत्र को थोडा समझना पड़ेगा।

मैंने आपसे कहा, गति में केन्द्र को खोने की कोई भी जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि गति में ही स्थिर को जाना जा सकता है। लेकिन गति दो तरह की है। एक छिछोरेपन की गति है। छिछोरापन ज्वरग्रस्त गति का नाम है—फीवरिश बुखार से भरी गति। एक आदमी सन्निपात में है, और दौड रहा है। यह दौड़ और आप सुबह जाकर बीच पर दौड़ रहे हैं, लेकिन इन दौड़ों में बड़ा फर्क है। आप दौड रहे हैं, आप मालिक हैं अपने दौड के। और सन्निपात से ग्रस्त जो दौड़ रहा है, वह दौड़ाया जा रहा है। वह मालिक नहीं है। यह दौड उसके ऊपर सवार है; वह पजेस्ड है। आप मालिक है। आप चाहे तो इसी वक्त दौड रुक सकती है। भीतर आप नही दौड रहे हैं, इसलिए कट्रोल है, नियंत्रण है। आप दौड ही नहीं हो गए है। आप चाहे तो इसी वक्त दौड रुक जाएगी और चाहे तो तेज भी हो जाएगी। सन्निपात मे जो भाग रहा है, उसके चाहने का कोई सवाल ही नही है। यह दौड ही हो गया है। उसका केन्द्र खो गया है, धूमिल हो गया है।

हलके छिछोरेपन का अर्थ है ऐसी गति जिसमें आप बीमार की तरह दौडते हैं। अक्सर मुझे लम्बी यात्राओ मे ऐसे लोग मिल जाते थे, खास कर फर्स्ट क्लास में।

थर्ड क्लास का डब्बा इस लिहाज से बहुत बेहतर है, वहां ससार मौजूद रहता है। ज्यादा दिक्कत नही आती है। हर स्टेशन पर इतने उपद्रव होते हैं कि रुचि कायम रहती है। और अपनी जगह इतनी असुरक्षित रहती है कि जीवन का सघर्ष चलता रहता है। थर्ड क्लास में यात्रा करना एक लिहाज से बहुत अच्छा है। क्योकि ससार की जो हमारी आदत है, बाजार की, उसमे कोई गतिरोध खड़ा नही होता, कोई बाधा नही पडती।

लेकिन अगर आप फर्स्ट क्लास मे सफर कर रहे हैं, तो आप के बडी मुश्किल खडी हो जाती है कि क्या करे? कई बार अगर मैं बीस या तीस घंटे एक ही डिब्बे में एक ही आदमी के साथ हूं, तो उसे देखने का बडा आनन्द है। जिस अखबार को वह सुबह से कई दफे पढ चुका, उसको फिर पढ़ रहा है। सिटकनी खोलेगा, खिड़की खोलेगा, फिर दो मिनट बाद बन्द कर देगा। फिर थोडी देर बैठेगा, फिर पंखा चलायेगा। और अगर एक आदमी चुपचाप बैठा देख रहा है तो उसकी गति और फीवरिश होने लगती है। वह और बेचैन है अब क्या करे और क्या न करे? सूटकेस खोलेगा, कोई सामान निकालेगा और फिर वापस रख देगा। उसकी सारी

गतिविधि फीवरिश है। इस गतिविधि से वह कुछ करना नही चाह रहा है।

क्योंकि जिस अखबार को छह दफे पढ़ चुका है, अब उसको सातवीं दफे पढ़ने का कोई प्रयोजन नहीं है। और अगर सातवीं दफे पढ़ने का कोई प्रयोजन है तो सत्तर दफे पढ़ने से भी कोई हल नही होगा। अगर छह दफे में भी समझ में नहीं आया कि अखबार में क्या लिखा है, तो सातवी दफे भी कैसे समझ में आनेवाला है? नहीं, लेकिन पढ़ने से प्रयोजन नही है। वह आदमी बिना कुछ किये नहीं रह सकता है। उसकी तकलीफ यही है। अकूपेशन चाहिए, व्यस्तता चाहिए। खाली नही रह सकता। खाली में बेचैनी होती है कि क्या कर रहे हो? कुछ तो करो। अखबार ही पढो, खिडकिया खोलो, सूटकेश बन्द करो, कुछ तो करो। क्यो? क्या यह कुछ करने के आप मालिक हैं? अगर आप मालिक हैं तो अखबार सात बार नहीं पढ सकते। मगर यह आदमी चाहे भी कि मै अखबार पढना रोक दूं तो नही रोक सकता है। यह सन्निपात है।

और हम सब सन्निपात मे हैं। मात्रा थोडी कम है, इसलिए हॉस्पिटलाइज करने की कोई जरूरत नही है। और फिर आसपास सभी लोग इसी अवस्था में हैं, इसलिए नॉरमल सन्निपात है। इसमे कोई ऐसी बात नही है कि कोई परेशान हो। इसमे कोई परेशानी की बात नही है।

पत्नी जानती है कि पति तीसरी दफे अखबार पढ रहा है। पति जानता है कि यह पत्नी बर्तन क्यो बार-बार पटक रही है। सबको पता है, सबको पता है। हम अपनी गति के मालिक नही हैं। मालिक वही हो सकता है, जिसको अपनी अगति के केन्द्र का पता हो।

लाओत्से कहता है, हलके छिछोरेपन मे केन्द्र खो जाता है। यह हलका छिछोरापन है। जल्दबाजी मे स्वामित्व खो जाता है। आपको पता होगा, सबको अनुभव में आता है, जल्दबाजी में क्या होता है। जल्दबाजी मे, जो आप बिना जल्दबाजी के कर लेते है, वह नही हो पाता है। आप जल्दी में हैं ट्रेन पकड़ने की और बटन लगा रहे है। जो बटन रोज लग जाती थी, वह आज नही लग रही है। या उलटे काज मे लग जाती है। आप रोज लगाते थे इस बटन को, इस बटन ने कभी बगावत नही की। यह बटन भली थी, सज्जन थी, सदा ठीक लग जाती थी। और आज इसको न मालूम क्या हो रहा है कि अगुलियो की पकड़ में नही आ रही है, छूट-छूट जा रही है। और लगती भी है तो गलत काज मे प्रवेश कर जाती है। और एक बटन गलत काज में चली जाए तो फिर आगे की बटनें कभी ठीक काज मे नही जा सकती। एक लम्बा सिलसिला है। फिर कर्म का फल भोगना ही पड़ता है, जब तक कि पहली बटन न बदली जाए। और जितनी जल्दी करियें, उतना सब गडबड हो जाता है। होता क्यो है ऐसा? क्या मामला है?

जल्दबाजी मे स्वामित्व खो जाता है। आप मालिक नही रह जाते; छिछोरापन

रह जाता है। आश्वस्त है तो आप मालिक हैं। ऊँगली आपकी मालकियत से चलती है। यह बटन गडबड नही कर रही है, बटन को कोई मतलब ही नही है। आपकी अंगुली गड़बड़ा रही है। ऊगली भी क्यों गडबडाएगी, यह आपका मन गड़बड़ा रहा है। मन भी क्यों गड़बड़ायेगा, आपकी आत्मा कपित हो गई है। सब भीतर तक कंपित है। यह छोटी सी बटन जो हिल रही है, यह भीतर की आत्मा के हिल जाने का परिणाम है।

बडे से बडा सर्जन भी अपनी पत्नी का ऑपरेशन नही कर पाता है, नही कर सकता है। यह दूसरी बात है कि डाइवोर्स की, तलाक की हालत आ गई हो और ऑपरेशन कर दे। वह दूसरी बात है। लेकिन अगर पत्नी से थोडा भी प्रेम हो जारी, जो कि बडी कठिन बात है, अगर थोडा भी प्रेम चल रहा हो, घिसट रहा हो, तो भी ऑपरेशन करना मुश्किल है। हाथ कप जाएगे। यही सर्जन पत्थर की मूर्ति की तरह किसी का भी ऑपरेशन कर देगा। परमात्मा को भी लाकर लिटा दो इसके आपरेशन टेबल पर तो यह फिक्र न करेगा। एपेन्डिक्स न निकालनी हो तो भी निकाल देगा। मगर अपनी पत्नी के साथ इसको क्या अड़चन आ रही है? क्या मुश्किल आ रही है? हाथ क्यो कापता है?

हाथ नही कपता है, आत्मा भीतर कप जाती है। और प्रेम से ज्यादा आत्मा को कपाने वाली कोई चीज नही है। मोह जोर से कपा देता है। और भीतर जब आत्मा कपती है, तब मालकियत खो जाती है।

और जब भी हम जल्दी में होते है, तब यह कठिनाई हो जाती है।

लेकिन अब तो ऐसा है कि हम चौबीस घटे ही जल्दी में होते है। और कोई ऐसा नहीं है कि कभी-कभी हम जल्दी मे होते है। वह पुराने जमाने की बात होगी, जब लोग कभी-कभी जल्दी मे होते थे। फिर भी ऐसी कोई जल्दी नही होती थी। बैलगाडी पकडने की कोई जल्दी तो होती नही। बैलगाड़ी ही पकड़नी है तो कभी भी पकड़ सकते है। दिक्कत तो रेलगाडी के साथ शुरू होती है। हवाई जहाज के साथ तो और मुश्किल हो जाता है। लेकिन अभी भारत में इतनी मुश्किल नही है। क्योकि कोई गाडी, कोई हवाई जहाज टाइम पर नही चलता। लेकिन बिलकुल टाइम पर चलने लगे तो मुसीबत बढती चली जाएगी। स्विटजर-लैण्ड में, वे कहते हैं, वे सूचना ही नही करते कि अब गाड़ी छूटनेवाली है। जब छूटती है, तब छूटनी ही है। वह टाइम-टेबल में लिखा हुआ है। उसके अतिरिक्त और कोई सूचना करने की जरूरत नही है। सूचना ही तब करते हैं, जब कभी वर्ष या छह महीने मे कोई गाड़ी लेट होती है। तो ही सूचना करते हैं। हमारे मुल्क में तो हालत ऐसी है कि यही समझ में नही आता कि टाइम-टेबल क्यों छापते हैं। सिर्फ एक ही कारण मालूम पडता है कि टाइम-टेबल से पता चल जाता है कि गाड़ी कितनी लेट है। और तो कोई कारण समझ में नही आता है।

लेकिन जैसे जीवन की त्वराब ढती है, गति बढती है, वैसे जल्दबाजी बढती है। लेकिन इसका अर्थ आप यह मत समझना कि जल्दबाजी जीवन की त्वरा के कारण बढ़ती है। नही, यह जीवन की त्वरा के कारण प्रकट होती है। आपमें मौजूद है, चाहे आप बैलगाड़ी पर चलते हो, चाहे हवाई जहाज में। बैलगाड़ी में प्रकट नही हो पाती थी, हवाई जहाज प्रकट कर देता है।

इसलिए सभ्यता आदमी को बीमार नही करती, बीमार आदमियो को जाहिर कर देती है। पुरानी सभ्यताओ में सब आदमी ऐसे ही बीमार थे, लेकिन जाहिर होने का मौका नही था। मैं तो मानता हू कि यह अच्छा हुआ। बीमारी जाहिर हो तो इलाज भी हो सकता है। बीमारी जाहिर न हो तो इलाज का भी कोई उपाय नही है।

हलके छिछोरेपन में केन्द्र खो जाता है। जल्दबाजी मे स्वामित्व, स्वय की मालकियत नष्ट हो जाती है।

आज इतना ही। रुके, कीर्तन करके जाए। रुके पाच मिनट।

■■

प्रकाश का चुराना ज्ञानोपलब्धि है

पचपनवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २० अगस्त १९७२

अध्याय २७ : खंड १
प्रकाशोपलब्धि

एक कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता है।
एक बढ़िया वक्तव्य प्रतिवाद के लिए दोष-रहित होता है।
एक कुशल गणक को गणित्र की जरूरत नहीं होती।
ठीक से बन्द हुए द्वार में और किसी प्रकार का बोल्ट लगाना अनावश्यक है,
फिर भी उसे खोला नहीं जा सकता।
ठीक से बंधी गांठ के लिए रस्सी की कोई जरूरत नहीं है,
फिर भी उसे अनबंधा नहीं किया जा सकता।
सन्त लोगों का कल्याण करने में सक्षम है,
इसी कारण उनके लिए कोई परित्यक्त नहीं है।
सन्त सभी चीजों की परख रखते हैं,
इसी कारण उनके लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है।
– इसे ही प्रकाश का चुराना या ज्ञानोपलब्धि कहते हैं।

Chapter 27 : Part 1
ON STEALING THE LIGHT

A good runner leaves no track.
A good speech leaves no flaws for attack
A good reckoner makes use of no counters.
A well-shut door makes use of no bolts,
And yet cannot be opened.
A well-tied knot makes use of no rope,
And yet cannot be untied.
Therefore the Sage is good at helping men;
For that reason there is no rejected (useless) person.
He is good at saving things;
For that reason there is nothing rejected.
-- This is called stealing the Light.

लाओत्से ने ज्ञानोपलब्धि को प्रकाश का चुराना कहा है। दो शब्द चोरी के सम्बन्ध में समझ लें।

चोरी एक कला है। और अगर हम नैतिक चिन्तना में न जाएं तो बड़ी कठिन कला है। चोरी का अर्थ है इस भांति कुछ करना कि संसार में कहीं भी किसी को पता न चले। पता चल जाए तो चोर कुशल नहीं है।

आपके घर में भी चोर प्रवेश करता है। दिन के उजाले में भी जिन चीजों को खोजना आपको मुश्किल पड़ता है, रात के अंधेरे में भी अपरिचित घर में जरा सी आवाज किये बिना चोर वही सब खोज लेता है। और आपको पता भी नहीं चल पाता। अगर चोर अपने चिह्न पीछे छोड़ जाए तो उसका अर्थ हुआ कि चोर अभी कुशल नहीं है; अभी सीखता ही होगा। अभी चोर नहीं हो पाया है।

लाओत्से शक्ति की, प्रकाश की उपलब्धि को भी कहता है एक चोरी— इसी कारण। अगर किसी को पता चल जाए कि आप सत्य खोज रहे हैं तो वह पता चलना भी बाधा बन जाएगा। जीसस ने कहा है कि तुम्हारा दायां हाथ क्या करता है यह तुम्हारे बायें हाथ को पता न चले। और **तुम्हारी प्रार्थना इतनी मौन हो कि सिवाय परमात्मा के और किसी को सुनाई न पड़े।**

लेकिन हमारी प्रार्थनाएं परमात्मा को सुनाई पड़ती हों या न हों, पास-पड़ोस और मुहल्ले में सभी को सुनाई पड़ जाती हैं। शायद परमात्मा से हमें इतना प्रयो-जन भी नहीं है; पड़ोसी सुन ले यह ज्यादा जरूरी है, तात्कालिक रूप से उपयोगी है। तो आदमी धर्म ऐसे करता है, मानो ढोल पीटकर। बड़े मजे की बात है, अधर्म हम चोरी-चोरी, छिपे-छिपे करते हैं और धर्म हम बड़े प्रकट होकर करते हैं।

लाओत्से, जीसस या बुद्ध ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं, जैसे पाप को चोरी-चोरी, छिपे-छिपे करते हो, **वैसे ही पुण्य को करना।** बड़े उलटे लोग हैं। वे कहते हैं कि पाप ही करना हो तो प्रकट होकर करना और पुण्य करना हो तो चोरी-छिपे करना। क्योंकि पाप अगर कोई प्रकट होकर करे तो नहीं कर पाता है। इसे थोड़ा समझ लें, पाप अगर कोई प्रकट होकर करे तो नहीं कर पाता है। पाप को छिपाना जरूरी है; क्योंकि पाप अहंकार के विपरीत है। और पुण्य अगर कोई प्रकट होकर करे तो भी नहीं कर पाता है। क्योंकि पुण्य प्रकट होकर अहंकार का भोजन बन जाता है। **पुण्य तो चोरी-छिपे ही किया जा सकता है**, जैसे पाप भी चोरी-छिपे ही किया जा सकता है।

जो न करना हो, उसे प्रकट होकर करना चाहिए। और जो करना हो, उसे चोरी-छिपे कर लेना चाहिए। अगर पाप न करना हो तो प्रकट होकर करना; फिर पाप नही हो पाएगा। और अगर पुण्य न करना हो, सिर्फ धोखा देना हो करने का, तो प्रकट होकर करना। पर वह पुण्य न हो पाएगा। लेकिन लोग जानते हैं कि उन्हें पाप करना ही है, इसलिए चोरी-छिपे कर लेते है। और लोग जानते हैं कि पुण्य का प्रचार भर हो जाए कि किया तो काफी है। करना किसी को नही है। इसलिए लोग पुण्य को प्रकट होकर करते है।

लाओत्से कहता है, जिन्हे परमात्मा के मंदिर में प्रवेश करना है, उन्हे चोर के कदमों की चाल सीखनी चाहिए। आवाज न हो, निशान न छूटे, कही कोई पता भी न हो। बैण्ड बाजे बजाकर स्वागत समारोह से, जलसों में शोभा-यात्रा निकालकर, उस मंदिर में कोई प्रवेश नही है। कोई कितनी ही प्रदक्षिणाए करता रहे उस मंदिर की, शोभा-यात्राओं से उस मंदिर मे प्रवेश नही है। इसमें तो कोई कभी चोरी-छिपे ही प्रवेश पाता है। **जब जगत के एक पत्ते को भी खबर नहीं होती, तब कोई उस मौन क्षण में, निविड़ क्षण में, प्रविष्ट हो जाता है।**

यह जरा कठिन है। दूसरे को खबर न हो इतना ही नही, उस परमात्मा के मंदिर में जब प्रवेश होता है, तब खुद को भी खबर नही होती, इतनी भी आवाज नही होती। हो जाता है प्रवेश, तभी पता चलता है कि प्रवेश हो गया। अगर खुद को भी पता चले कि प्रवेश हो रहा है तो समझना कि कल्पना चल रही है। मन धोखा दे रहा होगा। परमात्मा मे डूबकर ही पता चलता है कि डूब गए। डूबते क्षण मे भी पता नही चलता, क्योंकि इतना भी पता चल जाए तो रुकावट हो जाएगी। पता पडना बाधा है। क्योंकि आपका चेतन मन और आपका अहंकार खडा हो गया है, जैसे ही पता चला। इसे थोडा ऐसे देखें।

कोई क्षण है और आपको लग रहा है कि बड़े आनंदित है। जैसे ही चेतन हो जाते है आप कि आनंदित हैं कि आनंद खो जाता है। ध्यान कर रहे हैं और अचानक आपको पता चला कि ध्यान हुआ कि आप पाएगे कि ध्यान खो गया। किसी के गहरे प्रेम मे है और आपको पता चला कि मै प्रेम में हू तो आप पाएगे कि वह बात खो गई, वह सुगन्ध विलीन हो गई। **जीवन का जो गहनतम है, वह चुपचाप मौन में घटित होता है।** शब्द बनते ही वह तिरोहित हो जाता है। फिर हमारे हाथ मे शब्द रह जाते है, परमात्मा, प्रेम, प्रार्थना, ध्यान, आनन्द, ये शब्द रह जाते है। वह जो अनुभव था, वह खो जाता है।

लाओत्से तो कहता है कि जब भी कोई चीज पूर्णता के निकट पहुचती है, तब चुप हो जाती है। इसे हम एक दो ताओवादी कहानियो से समझें। एक कहानी मुझे बहुत प्रीतिकर लग रही है।

एक सम्राट ने अपने दरबार के सब से बड़े धनुर्विद को कहा कि अब तुमसे

बड़ा धनुर्विद कोई भी नही है। तो तू घोषणा कर दे राज्य में और अगर कोई प्रतिवादी न उठे तो मैं तुझे राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर घोषित कर दू। द्वार पर जो द्वारपाल खड़ा था, वह हसा। क्योकि धनुर्विद ने कहा कि घोषणा का क्या सवाल है, घोषणा कल की जा सकती है। कोई धनुर्विद नही है, जो मेरी प्रतियोगिता में उतर सके। द्वारपाल हसा तो धनुर्विद को हैरानी हुई। लौटते मे उस बूढे द्वारपाल से उसने पूछा, तुम हसे क्यो? उसने कहा कि मै इसलिए हसा कि तुम्हे अभी धनुर्विद्या का आता ही क्या है? एक आदमी को मै जानता हू। तुम पहले उससे मिल लो, फिर पीछे घोषणा करना। पर उस धनुर्विद ने कहा, ऐसा आदमी हो कैसे सकता है जिसका मुझे पता न हो? मैं इतना बडा धनुर्विद!

उस द्वारपाल ने कहा, जो तुमसे भी बड़ा धनुर्विद है, उसका किसी को भी पता नही होगा। यह पता करना और कराने की जो चेष्टा है, यह छोटे मन का खेल है। तुम रुको। जल्दी मत करना, मुसीबत मे पड जाओगे। मै उस आदमी का पता तुम्हें दे देता हूं। तुम वहा चले जाओ।

वह धनुर्विद उस आदमी का पता लगाते एक जंगल की तलहटी में गया, जहा वह आदमी रहता था। तीन दिन उसके पास रहा, तब उसे पता चला कि अभी तो यात्रा धनुर्विद्या की शुरू भी नही हुई है। तीन साल उस आदमी के चरणों में बैठकर उसने धनुर्विद्या सीखी। लेकिन तब मन ही मन में उसे डर भी लगने लगा। अब पुराना आश्वासन न रहा कि मुझसे बड़ा धनुर्विद कोई भी नही है। यह साधारण सा आदमी लकडिया बेचता था गाव मे, और इतना बड़ा धनुर्विद था। और उसकी बाबत किसी को खबर भी नही थी। पता नहीं कितने और छिपे हुए लोग हो। लेकिन तीन वर्ष उसके पास रहकर उसका आश्वासन लौट आया।

वह आदमी अद्भुत था। उसके हाथ मे कोई चीज जाकर तीर बन जाती थी। वह लकडी का टुकडा भी फेंक दे तो तीर बन जाता था। वह इतना कुशल था कि लकड़ी के एक छोटे से टुकडे को फेंक कर किसी के प्राण ले सकता था। वह चोट ऐसी बारीक और सूक्ष्म जगह पर पड़ती थी कि उतनी चोट काफी थी। खून की एक बूद न गिरे और आदमी मर जाए। तीन वर्ष में उसने सब सीख लिया। तब उसे लगा कि अब मैं घोषणा कर सकता हू। लेकिन अब उसे एक कठिनाई थी कि यह जो गुरु है, उसके रहते चाहे मैं घोषणा भी कर दूं— और यह गुरु ऐसा नही है कि प्रतिवाद करने आयेगा — लेकिन इसकी मौजूदगी मेरे मन मे बनी रहेगी कि मैं नम्बर दो हूं। तो उसने सोचा कि इसको खत्म करके ही चलू।

सुबह लकड़ी काटकर गुरु लौट रहा था। एक वृक्ष की आड में छिपकर उसने तीर मारा, उसके शिष्य ने। गुरु तो चुपचाप लकड़ियों को काटकर लौट रहा था, उसके हाथ मे तो कुछ था भी नही। तीर उसने आते देखा तो लकडी के बडल से एक छोटी सी लकड़ी निकाल कर फेंकी। वह लकड़ी का टुकडा तीर से टकराया

और तीर वापस लौट पड़ा और जाकर शिष्य की छाती में छिद गया। भागा हुआ गुरु आया, उसने तीर निकाला और कहा कि यह एक बात भर तुझे सिखाने से मैंने रोक रखी थी, क्योंकि शिष्य से गुरु को सावधान होना ही चाहिए। **क्योंकि अंतिम खतरा उसी से हो सकता है।** लेकिन अब मैंने वह भी तुझे बता दिया। और अब तुझे मुझे मारने की जरूरत नही है। तू समझ कि मैं मर गया। तू अब जा सकता है। मैं एक लकड़हारा हू अब, अब धनुर्विद्या मैंने छोड़ दी। लेकिन जाने के पहले ध्यान रखना, मेरा गुरु अभी जीवित है। और मेरे पास तो तीन साल में सीख लेना काफी है, लेकिन उसके साथ तीस जन्म भी कम होंगे। घोषणा करो, उसके पहले दर्शन कम मे कम उसके कर लेना।

उसके प्राणों पर तो निराशा छा गई। ऐसा लगा कि इस जगत में प्रथम धनुर्विद होना असभव मालूम होता है। कहा है तुम्हारा गुरु और उसकी खूबी क्या है? क्योकि तुम्हें देखने के बाद अब कल्पना में भी नही आता कि और ज्यादा खूबी क्या हो सकती है। उसके गुरु ने कहा कि अभी भी मुझे लकडी का एक टुकडा तो फेंकना ही पडा। इतनी भी आवाज, इतनी भी चेष्टा, इतनी भी वस्तुओ का उपयोग मेरी धनुर्विद्या की कमी है। **मेरे उस गुरु की आंख भी तीर को लौटा दे सकती थी, उसका भाव भी तीर को लौटा दे सकता था।** तू पर्वत पर जा। मैं ठिकाना बताए देता हू। वहा तू खोजना।

उस आदमी ने पर्वत की यात्राएं की। उसकी सारी महत्वाकांक्षाएं धूल-धूसरित हो गई। उस पर्वत पर सिवाय एक बूढे आदमी के और कोई नही था। उसकी कमर झुक गई थी। उसने उस बूढे आदमी से पूछा कि मैंने सुना है कि यहा कोई एक बहुत प्रख्यात धनुर्विद रहता है। मैं उसके दर्शन करने आया हू। उस बूढे आदमी ने युवक की तरफ देखा और कहा कि जिसकी तुम खोज करने आये हो, वह मैं ही हू। लेकिन अगर तुम धनुर्विद्या सीखना चाहते हो तो गले में धनुष क्यो टाग रखा है? उस आदमी ने कहा, धनुष क्यो टाग रखा है, धनुर्विद्या धनुष के बिना सीखी कैसी जा सकेगी?

तो उस बूढे ने कहा कि **जब धनुर्विद्या आ जाती है, तब धनुष की कोई भी जरूरत नहीं रहती।** यह जरूरत तो तभी तक है, जब तक विद्या नहीं आती। और जब संगीत पूरा हो जाता है, तब सगीतज्ञ वीणा को तोड देता है। क्योंकि वीणा तब बाधा बन जाती है। अगर अभी भी वीणा की जरूरत है, उसका मतलब है कि सगीतज्ञ का भरोसा अपने पर नही आया है। **अभी संगीत आत्मा से नहीं उठता है।** अभी किसी इंस्ट्रूमेन्ट, किसी साधन की जरूरत है। जब साध्य पूरा हो जाता है, साधन तोड़ दिए जाते हैं। फिर भी तू आ गया है तो ठीक। क्या तू सोचता है, तेरे निशान अचूक हैं? उस युवक ने कहा कि बिलकुल अचूक हैं। सौ से सौ निशाने मेरे लगते हैं। अब इससे ज्यादा और क्या हो सकता है? सीमा आ गई

अगर सौ प्रतिशत निशाना लगते हो और एक न चूकता हो।

वह बूढ़ा हसा। और उसने कहा कि यह सब तो बच्चो का खेल है। प्रतिशत का हिसाब बच्चों का खेल है। तू मेरे साथ आ।

और वह बूढा उसे पर्वत के किनारे पर ले गया, जहा नीचे मीलों भयकर गहरा गड्ढ है और एक शिलाखण्ड गड्ढ के ऊपर जहा फैलता चला गया है। वह बूढा जिसकी आधी कमर झुकी हुई है सरक कर, चलकर उस पत्थर के किनारे खडा हो गया। उसके आधे पैर का पजा खड्ढ में झुक गया और सिर्फ आधे पैर के बल वह उस खड्ड पर खड़ा है, जहाँ एक सास चूक जाए तो वह सदा के लिए खो जाए। उसने उस युवक को कहा, अब तू भी आ करीब और ठीक ऐसे ही मेरे पास खड़ा हो जा! उस युवक ने कहा कि मेरी हिम्मत नही पडती है, हाथ-पैर कपते हैं।

उस बूढे ने कहा, जब हाथ-पैर कपते है, तब निशाना सधा हुआ हो कैसे सकता है? अगर हाथ कंपता है तो तीर तो हाथ से ही छूटेगा. वह भी कप जाएगा। तेरे निशाने लग जाते होगे; क्योंकि जो आब्जेक्ट तू चुनता है, वे काफी बड़े होते हैं। एक तोते को तुमने चुन लिया। तोता काफी बड़ी चीज है। अगर हाथ तेरा थोड़ा भी कंप रहा हो तो भी तोता मर जाएगा। लेकिन तू अगर घबड़ाता है और कपता है और तेरा हाथ कपता है तो ध्यान रख, तेरे भीतर आत्मा भी कंपती होगी। वह कपन कितना ही सूक्ष्म हो, **वह कंपन जब खो जाता है, तब कोई अर्जुविद** होता है। और जब वह कपन खो जाता है, तब धनुषबाण की कोई भी जरूरत नही रह जाती।

उस बूढे ने आखें ऊपर उठाईं। एक पक्षियो की, तीस पक्षियों की कतार उडी जाती थी। उसकी आख के ऊपर और नीचे गिरते ही तीसो पक्षी नीचे आकर गिर पडे। उस बूढ़े ने कहा, जब आत्मा कपती न हो, तब मात्र यह खयाल कि नीचे गिर जाओ, काफी है। **यह भाव तीर बन जाता है।**

यह एक पुरानी लाओत्सियन कथा है। उससे इस सूत्र को समझने में आसानी होगी।

कहता है लाओत्से, कुशल धावक पदचिह्न नही छोड़ता है। जो दौडने में कुशल है, अगर उसके पदचिह्न बन जाते हो तो कुशलता की कमी है। जमीन पर हम चलते हैं तो पदचिह्न बनते ही हैं। लेकिन पक्षी आकाश में उडते हैं तो कोई पद-चिह्न नही बनता। कुशलता जितनी गहरी होती जाती है, उतनी आकाश जैसी होती जाती है। कुशलता जितनी गहरी होती जाती है, उतनी सूक्ष्म हो जाती है, स्थूल नही रह जाती। स्थूल से पदचिह्न बनते हैं, सूक्ष्म में कोई पदचिह्न नही बनते। और जितना सूक्ष्म हो जाता है अस्तित्व, उतना ही पीछे कोई निशान नही छूट जाता।

अगर आप जमीन पर दौड़ेंगे तो पदचिह्न बनेगा ही। लेकिन दौड़ने का एक ऐसा

ढंग भी है कि दौड भी हो जाए और कहीं कोई पदचिह्न न छूटे। च्वांगत्से ने, लाओत्से के शिष्य ने, कहा है कि **जब तुम पानी से गुजरो और तुम्हारे पैर को पानी न छुए, तभी तुम समझना की तुम संत हुए, उसके पहले नहीं। और** ऐसा मत करना कि किनारे बैठे रहो और पैर सूखे रहें तो तुम सोचो कि संत हो गए हो, क्योंकि पैर पर पानी नही है। पानी से गुजरना और पैर को पानी न छुए तो ही जानना कि मन हो गये हो।

जटिल है बात थोडी। एक आदमी ससार छोडकर भाग जाता है, पानी छोडकर भाग जाता है और किनारे पर बैठ जाता है। फिर उसके पैर सूखे रहते हैं। इसमें कुछ गुण नही है, पैर सूखे रहेंगे ही। लेकिन यही आदमी बीच बाजार में खडा है, घर में खडा है, पत्नी-बच्चो के साथ खडा है, धन-दौलत के बीच खडा है; जहा सब उपद्रव चल रहा है, वहा खडा है, और इसके पैर नही भींगते हैं; तभी जानना कि संतत्व फलित हुआ।

सत की परीक्षा ससार है। ससार के बाहर सतत्व तो बिलकुल आसान चीज है। लेकिन वह सतत्व नपुसक है, इम्पोटेन्ट है। जहा कोई गाली नहीं देने आता, वहा क्रोध के न उठने का क्या अर्थ है? या जहा जो भी आता है, वह प्रशंसा करने आता है, वहा क्रोध के न उठने का क्या अर्थ है? जहा उत्तेजनाए नहीं हैं, टेम्पटेशन नही है, जहा वासनाओं को भीतर से बाहर खीच लेने की कोई सुविधा नहीं है, वहां अगर वासनाए थिर मालूम पडती हो तो आश्चर्य क्या है? लेकिन, जहा सारी सुविधाए हो, सारी उत्तेजनाए हो, जहा प्रतिपल आघात पडता हो प्राणो पर, जहा सोई हुई वासना को खीच लाने के सब उपाय बाहर काम कर रहे हों और भीतर से कोई वासना न आती हो, तभी तुम पानी मे गुजरे और पैर न छुए पानी को, पानी न छुए पैर को, **तभी और तभी जानना कि संतत्व है।**

तो पानी और पैर के बीच मे जो अतराल है, वही सतत्व है।

कमल का पत्ता है। वह खिला रहता है पानी मे। पानी की बूद भी उसपर पड जाए तो भी छूती नही है। एक अतराल है, पत्ते और बूद के बीच में एक फासला है। बूद लाख उपाय करे तो भी उस अतराल को पार नही कर पाती। **वह अंतराल ही संतत्व है।**

बूद गिर जाती है, पत्ते को पता ही नही चलता है। बूद आती है और चली जाती है, पत्ते को पता ही नही चलता है। बूद खुद वजनी हो जाती है और पत्ता झुक जाता है और बूद नीचे गिर जाती है। बूद हलकी होती है, बनी रहती है और बूद भारी होती है, गिर जाती है। बूद का अपना ही काम है। पत्ते का इससे कुछ लेना-देना नही है। लेकिन कमल का पत्ता अगर कहे कि मैं सरोवर को छोडूगा, क्योंकि पानी यहा मुझे बहुत छूता है, गीला कर जाता है, तो फिर जानना कि वह पत्ता कमल का नही है। कमल के पत्ते को अतर ही नही पड़ता है इससे कि वह

बाहर है या भीतर, वह पानी में है कि पानी के बाहर । क्योंकि पानी के भीतर होकर भी पानी के बाहर होने का उपाय उसे पता है । इसलिए बाहर भागने का कोई अर्थ नहीं है, कोई संगति नहीं है ।

लाओत्से कहता है, एक कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोडता है । इसे थोड़ा समझें । जितनी तेजी से आप दौड़ेंगे, उतना ही कम स्पर्श होगा जमीन का । इसको अंतिम, चरम की अवस्था पर ले जाए । अगर तेजी आपकी बढ़ती ही चली जाए तो जमीन का स्पर्श कम होता चला जाएगा । जब आप धीमे चलते हैं, पैर जमीन पर पूरा बैठता है —— छूता है, उठता है, फिर जमीन को छूता है । जब आप तेजी से दौड़ते हैं, तब जमीन को कम छूता है । अगर तेजी और बढ़ती चली जाए तो जमीन से उठना भी संभव है । अभी वैज्ञानिको ने ऐसी गाड़िए, ऐसी कारें ईजाद की हैं जो एक विशेष गति पकड़ने पर जमीन से ऊपर उठ जाएगी । क्योंकि उतनी गति पर जमीन को छूना असम्भव हो जाएगा । तो जल्दी ही, जल्दी ही, जैसे कि हवाई जहाज एक विशेष गति पर टेक-ऑफ लेता है, एक विशेष गति को पकड़ने के बाद जमीन छोड देता है, ठीक वैसे ही कारें भी एक खास गति लेने के बाद जमीन से एक फीट ऊपर उठ जाएगी । फिर रास्तों की खराबी निष्प्रयोजन हो जाएगी, उससे कोई फर्क नहीं पडेगा । रास्ते कैसे भी हो, गाड़ी को कोई अतर नहीं पडेगा । रास्ता न भी हो तो भी गाडी को कोई अतर नहीं पड़ेगा । एक फीट का फासला उस गति पर बना ही रहेगा । सिर्फ फासला पकड़ने के लिए रन-ओवर की जरूरत होगी; उतरने के लिए भी । लेकिन बीच की यात्रा बिना कठिनाई के, बिना रास्ते के की जा सकती है । लेकिन तब कार आपके घर के सामने से निकल गई हो, तब भी चिह्न नहीं छोडेगी ।

यह उदाहरण के लिए कहता हूं । ठीक ऐसे ही अतश्चेतना में भी गतिया है ।

कुशल धावक जब चेतना के इतनी गति ले आता है, तब फिर कोई चिह्न नहीं छूटते । कोई चिह्न नहीं छूटते । आप पर पदचिह्न छूटते हैं, उसका कारण संसार नहीं है । आपकी गति बहुत कम है । एक आदमी शराब पीता है । शराब के चिह्न छूटेंगे । स्वभावत हम सोचते है कि शराब में खराबी है । इतना आसान मामला नहीं है । शराब के चिह्न छूटते हैं, शराब की बेहोशी छूटती है; क्योंकि शराब की गति और इस आदमी की चेतना की गति में अतर है । वही कारण है । इस आदमी की चेतना की गति शराब से ज्यादा नहीं है; शराब से नीचे है । शराब ओवरपावर कर लेती है, आच्छादित कर लेती है ।

तंत्र ने बहुत प्रयोग किए हैं नशो के ऊपर । और तंत्र ने चेतना की गति को बढ़ाने के अनूठे-अनूठे उपाय खोजे हैं । इसलिए किसी तांत्रिक को कितनी ही शराब पिला दो, कोई भी बेहोशी नहीं आएगी । क्योंकि उसकी चेतना की गति शराब की गति से सदा ऊपर है । शराब ऊपर जाकर स्पर्श नहीं कर सकती, केवल नीचे

उतर कर स्पर्श कर सकती है। जब आपकी चेतना की गति धीमी होती है और शराब की तीव्र होती है, तब आपको स्पर्श करती है।.

तन्त्र ने संभोग के लिए अनेक-अनेक विधियां निकाली हैं। और तांत्रिक संभोग करते हुए भी काम से दूर बना रह सकता है। यह जटिल बात है। क्योंकि जब कामवासना आपको पकड़ती है, तब आपकी आत्मा की गति बिलकुल खो जाती है। तब कामवासना की ही गति रह जाती है। इसलिए आप उससे आंदोलित होते हैं। अगर आपकी चेतना की गति ज्यादा हो तो कामवासना नीचे पड़ जाएगी।

हमारी हालत ऐसी है कि हमेशा हमने आकाश में बादल देखे हैं अपने से ऊपर। जब कभी आप हवाई जहाज में उड रहे हैं, तब आपको पहली दफा पता चलता है कि बादल नीचे भी हो सकते हैं। जब बादल आपके ऊपर होते हैं, उनकी वर्षा आपके ऊपर गिरेगी। और जब बादल आपके नीचे होते है, आप अछूते रह सकते हैं। उनकी वर्षा से कोई अतर नही पडता आप पर। यह थोडा जटिल बात है कि चेतना की गति क्या है.?

उसकी गति है। इसे हम थोडा सा खयाल में ले तो हमारी समझ मे आ जाए। आप भी चेतना की बहुत गतियो से परिचित हैं, लेकिन आपने कभी निरीक्षण नही किया। आपने यह बात सुनी होगी कि अगर कोई आदमी पानी मे डूबता है, तो एक क्षण में पूरे जीवन की कहानी उसके सामने गुजर जाती है। यह सब खयाल नही है, वैज्ञानिक है। लेकिन एक आदमी सत्तर साल जीया और जिस जिन्दगी को जीने में सत्तर साल लगे, एक क्षण में, एक डुबकी के क्षण मे, जब कि मौत करीब होती है, सत्तर साल एकदम से कैसे घूम जाते होगे?

सत्तर साल लगे, इसलिए कि जीवन की चेतना की गति बहुत धीमी थी। बैलगाडी की रफ्तार से आप चल रहे थे। लेकिन मौत के क्षण मे वह जो शिथिलता है, वह जो तमस है, वह जो बोझ है आलस्य का, वह सब टूट गया। मौत ने सब तोड़ दिया। साधारणतया भी मौत आती है, लेकिन ऐसा नही होता, क्योकि मौत का आपको पता नही होता है। अपनी खाट पर मरता है आदमी आमतौर से। तो खाट पर मरनेवाले को कोई पता नही होता है कि वह मर रहा है। इसलिए चेतना में त्वरा नही आती है। नदी में डूबकर जो आदमी मर रहा है, वह जानता है कि मर रहा हू, क्षण भर की देर है और मै गया। यह बोध उसकी चेतना को त्वरा दे देता है, गति दे देता है। वह जो बैलगाडी की रफ्तार से चलनेवाली चेतना थी, पहली दफा उसको पख लग जाता है और हवाई जहाज की गति से चलने लगती है। इसलिए जो सत्तर साल जीने में लगा, वह एक क्षण में देखने में आ जाता है। एक क्षण में सब देख लिया जाता है।

छोड़ें; क्योंकि पानी में मरने का आपको कोई अनुभव नही है। लेकिन कभी

आपने खयाल किया है कि टेबुल पर बैठे-बैठे झुक गये और झपकी आ गई और झपकी में आपने एक स्वप्न देखा। स्वप्न लम्बा हो सकता है कि आप किसी के प्रेम में पड़ गए, विवाह हो गया, बच्चे हो गये। और बच्चों का विवाह कर रहे थे, तब जोर की शहनाई जब गई और नींद खुल गई। घड़ी में देखते है तो लगता है कि एक मिनट बीता है। तो एक मिनट में इतनी घटना का घट जाना कैसे संभव है ?

अगर जो-जो आप ने सपनो में देखा, उसका आप विवरण भी बताएं, तो भी एक मिनट से ज्यादा वक्त लगेगा। और सपने मे आपको ऐसा नहीं लगा कि चीजें बड़ी जल्दी घट रही हैं; बल्कि व्यवस्था से, समय से घट रही है। इस एक मिनट में आपने प्रेम, विवाह, बच्चे और उनके विवाह में कोई तीस साल का फासला पूरा किया। और आपको एक क्षण को भी सपने में ऐसा नहीं लगा कि चीजें कुछ जल्दी घट रही हैं, कि कलेन्डर को कोई जल्दी-जल्दी फाड़े जा रहा है, जैसे कि फिल्म में दिखाना पड़ता है उनको कि कलेन्डर उडा जा रहा है। तारीख एकदम बदली जा रही है, ऐसा भी कोई भाव स्वप्न में नहीं होता है। चीजें अपनी गति से घट रही हैं। लेकिन एक मिनट में यह कैसे घट जाता है ?

वैज्ञानिक बहुत चिन्तित रहे है। क्योंकि टाइम, समय का इस भांति घट जाना बड़ी मुश्किलें खडा करता है। इसके मतलब दो ही हो सकते हैं। इसका मतलब एक तो यह हो सकता है कि जब हम जागते हैं, तब हम दूसरे समय में होते है जिसकी रफ्तार अलग है, और जब हम सोते हैं, तब हम दूसरे समय में होते हैं, जिसकी रफ्तार अलग है। लेकिन दो समय को मानने में बड़ी अड़चनें हैं, वैज्ञानिक चिन्तन की अड़चनें है। और अभी तक वैज्ञानिक साफ नही कर पाए कि यह मामला क्या होगा।

इसे हम दूसरी तरफ से देखें, योग की तरफ से देखें, तो यह मामला इतना जटिल नहीं है। समय तो एक ही है, लेकिन समय में घूमनेवाली चेतना की रफ्तार बदलने से फर्क पड़ता है। जागते में भी वही समय है, सोते में भी वही समय है। लेकिन जागते में आपकी चेतना बैलगाडी की रफ्तार से चलती है। क्यो ? क्योंकि जागते मे सारा ससार अवरोध है। अगर जागते में मुझे आपके घर आना है तो तीन मील का फासला मुझे पार करना ही पड़ेगा। लेकिन स्वप्न में कोई अवरोध नहीं है। इधर मैंने चाहा और उधर मै आपके घर पहुंच गया। वह तीन मील का जो फासला था स्थूल, वह बाधा नहीं डालता है। जागृति में सारा जगत बाधा है। हर तरफ बाधाएं हैं; दीवार बाधा है, रास्ता बाधा है, लोग बाधा हैं। सब तरह की बाधाएं हैं। स्वप्न मे निर्बाध है आप। आप अकेले है, सब खो गया है। जगत है कोरा और आप अकेले हैं। कही कोई रेजिस्टेन्स नही है। इसलिए आपकी चेतना तीर की रफ्तार से चल पाती है।

यह जो चेतना की रफ्तार है, इसकी वजह से जो तीस साल में घटता है, वह एक मिनट में घट जाता है। चेतना की रफ्तार के कारण बहुत चीजें संभव हो जाती हैं। आदमी सत्तर साल जीता है। कुछ पशु हैं जो दस साल जीते हैं। कुछ पशु हैं जो पांच साल जीते हैं। कुछ कीड़े-पतंगे है जो घड़ी भर जीते हैं। कुछ और छोटे जीवाणु हैं जो क्षण भर जीते हैं। कुछ और छोटे जीवाणु हैं कि आप अपनी सांस लेते हैं और छोड़ते हैं उतने में उनका जन्म, प्रेम, संतान, मृत्यु, सब हो जाता है। लेकिन यह कैसे होता होगा? इतने छोटे, अल्प काल में यह सब कैसे होता होगा?

चेतना की रफ्तार का सवाल है। जितनी चेतना की रफ्तार होगी, उतने कम समय की जरूरत होगी। जितनी कम चेतना की रफ्तार होगी, उतने ज्यादा समय की जरूरत होगी। और चेतना की रफ्तार पर अब तक वैज्ञानिक अर्थों में कुछ काम नहीं हो सका है। लेकिन योगियों ने बहुत कुछ किया है। लाओत्से का यह कहना कि कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता, सिर्फ इसी बात को कहने का दूसरा ढंग है कि चेतना जब त्वरा में दौड़ती है, तीव्रता में दौड़ती है, तब उसकी गति तेज हो जाती है, तब उसके कोई चिह्न आसपास नहीं छूटते। जितनी धीमे सरकने-वाली चेतना हो, उतने चिह्न छोड़ती है।

इसका मतलब यह होगा कि जिनको हम इतिहास में पढ़ते हैं, वे आमतौर से धीरे सरकनेवाली चेतनाएं हैं। चंगेज, तैमूर, हिटलर, नेपोलियन, स्तालिन, ये बहुत धीमे सरकनेवाली चेतनाएं हैं। यह भी हो सकता है, हुआ ही है कि जो हमारे बीच बहुत प्रकाश की गति से चलनेवाली चेतनाएं थीं, उनका हमें कोई पता ही नहीं है। क्योंकि उनका पता हमें नहीं हो सकता।

यहां हम बैठे हैं। मैं आपसे बोल रहा हूं तो मेरी आवाज आपको सुनाई पड़ती है। लेकिन आप यह मत समझना कि यही एक आवाज यहां है। यहां बड़ी तेज आवाजें भी आपके पास से गुजर रही है। लेकिन वे इतनी तेज हैं कि आपके कान उन्हें पकड़ नहीं पाते। और जीवन के लिए जरूरी भी है कि अगर आप उनको पकड़ पाएं तो आप पागल हो जाएं। क्योंकि फिर उनको ऑनऑफ करने का कोई उपाय आपके शरीर में नहीं है। यहां अनंत आवाजें आपके पास से गुजर रही हैं। लेकिन आपको उनका कोई पता नहीं है। जब रात में आप कहते हैं कि बिलकुल सन्नाटा है, तब आपके लिए सन्नाटा है; अस्तित्व में अनन्त आवाजें, भयंकर, प्रचंड आवाजें आपके पास से गुजर रही हैं। आपके कान समर्थ नहीं है। आपके कान की एक खास सीमा है, एक खास वेवलेंथ है, जहां आपके कान आवाज को पकड़ते हैं। उसके पार आपको कुछ पता नहीं है।

हम देखते हैं तो प्रकाश की भी एक विशेष सीमा ही हम देखते हैं। उसके पार बड़े-बड़े प्रकाश के प्रचण्ड झंझावात हमारे पास से गुजर रहे हैं, वे हमें दिखाई

नही पडते। अभी अभी विज्ञान को खयाल में आना शुरू हुआ है कि जो हम देखते हैं, वह सब नही है, बहुत थोडा है। जो अनदेखा रह जाता है, वह बहुत ज्यादा है। जो हम सुनते है, जो हम सुनते हैं, वह सब नही है। जो हम सुनते हैं, वह अत्यल्प है। जो अनसुना रह जा जाता है, वह महान है। लेकिन क्यो हमारी सुनाई में नही आता? क्योकि उसकी गति तीव्र है। उसकी गति इतनी तीव्र है कि हम पर उसका कोई चिह्न नहीं छूटता। हम अछूते ही खडे रह जाते हैं।

ऐसा समझें कि एक बिजली का पंखा घूम रहा है। जब वह धीमा घूमता है, तब आपको तीन पखुडियाँ दिखाई पडती है। जब वह और तेजी से घूमने लगता है तब आपको पखुडिया नही दिखाई पडती है। यह भी हो सकता है, एक ही पखुड़ी घूम रही हो; यह भी हो सकता है कि दो घूम रही हो; यह भी हो सकता कि तीन घूम रही हो। अब आप पखुडी का अदाज नहीं कर सकते हैं। अगर पंखा और तेजी से घूमे तो धीरे-धीरे धुधला होता जाएगा। जितना तेज घूमेगा, उतना धुधला होता जाएगा। अगर वह इतनी तेजी से घूमें जितनी प्रकाश की किरण चलती है तो आपको दिखाई नही पडेगा।

लेकिन यह तो हम समझ सकते हैं कि शायद दिखाई न पड़े। लेकिन अगर वह इतनी तेजी से घूमे और हमें दिखाई न पडे और आप अपने हाथ उसमें डाल दें तो क्या होगा? हाथ तो कट जाएगा, लेकिन हमें कारण बिलकुल दिखाई न पडेगा कि कारण क्या था कट जाने का।

हमारे जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएं घट रही है कि **जब अदृश्य कारण हमें काटते हैं और हमें दिखाई नहीं पड़ता है।** तब हम समझ नहीं पाते कि क्या हो रहा है। या जो हम समझते हैं, वह गलत होता है। हम कुछ और कारण सोच लेते है कि इससे हो रहा है, या उससे हो रहा है। त्वरा से शक्तिया हमारे चारों तरफ घूमती हैं। उनका चिह्न तभी हम पर छूटता है, जब हम इनके आड़े पड़ जाते हैं। अन्यथा उनका हमें कोई स्पर्श भी नही होता।

लाओत्से कहता है, कुशल धावक पदचिह्न नही छोड़ता। अगर छोडता है तो समझना कि अभी दौड़ बहुत धीमी है।

एक बढिया वक्तव्य प्रतिवाद के लिए दोष-रहित होता है। जब किसी वक्तव्य में दोष खोजा जा सके, तब समझना चाहिए कि वक्तव्य अधूरा है, पूरा नही है। लेकिन बडी कठिनाई है। **अगर वक्तव्य पूरा हो तो आपकी समझ में न आएगा।** और अगर वक्तव्य आपकी समझ में आए तो अधूरा होगा। और अधूरे में दोष खोजे जा सकते है। क्योकि वक्तव्य अगर पूरा होगा तो आपकी समझ पर भी चिह्न नही छूटेगा। इसलिए अक्सर अगर कोई ऊंची बात कही जाए तो वे कहते हैं कि सिर के ऊपर से गुजर गई। वह सिर के ऊपर से इसलिए गुजर जाती है कि आप पर उसका कोई चिह्न छूटता मालूम नही पडता। आपकी बुद्धि उसे कहीं

से भी नहीं पकड पाती, कहीं से भी सम्बन्ध नहीं जुड़ता। सुनते हैं और जैसे नहीं सुना। आया और गया और जैसे कोई आया ही न हो। या जैसे किसी स्वप्न में सुना हो जिसकी प्रतिध्वनि रह गई हो, जो बिलकुल समझ के बाहर है।

इसलिए वक्तव्य अगर पूरा हो तो उसमें दोष नहीं खोजा जा सकता। लेकिन वक्तव्य अगर पूरा हो तो समझना ही मुश्किल हो जाता है। जैसे महावीर के वक्तव्य बहुत कम समझे जा सके; क्योंकि वक्तव्य पूरे होने के करीब-करीब हैं। करीब-करीब इतने है कि महावीर के सम्बध में जो कथा है, वह बड़ी मधुर है। वह यह है कि महावीर बोलते नहीं थे, चुप बैठे रहते थे और लोग सुनते थे। यह कथा बहुत मीठी है। और कथा ही नहीं है।

अगर वक्तव्य को पूर्ण करना हो तो वाणी का उपयोग नहीं किया जा सकता। क्योकि वाणी तो आदमी की ईजाद है, और अधूरी है। शब्दो का उपयोग नही किया जा सकता है। क्योकि सब शब्द कितने ही उचित हों, फिर भी दोषपूर्ण है। असल में जो चीज आघात से उत्पन्न होती है, उसमे दोष होगा। और शब्द एक आघात है होंठ का, कठ का। संघर्ष है। और जो भी चीज संघर्ष से पैदा हो, वह दोषपूर्ण होगी। वह पूर्ण नही हो सकती।

एक ऐसा नाद भी है मौन का, जिसे हम कहते हैं अनाहत। अनाहत का अर्थ है कि जो आघात से उत्पन्न न हुआ हो, आहत न हुआ हो, जो किसी चीज के टकराने से पैदा न हुआ हो। जो किसी की टक्कर से पैदा होगा, उसमे दोष होगा। लेकिन शब्द तो टक्कर से ही पैदा होते है। तो एक ऐसा स्वर भी है मौन का जो अनाहत है, जो आहत नही है, जो किसी चीज की चोट से पैदा नही होता है।

तो महावीर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे चुप रहे और चुप्पी मे बोले, मौन रहे और मौन से बोले। लेकिन तब बड़ी कठिनाई हो जाती हैं। समझेगा कौन उन्हे? इसलिए कहते हैं कि महावीर के ग्यारह गणधर थे, उनके ग्यारह निकटतम शिष्य थे, जो उन्हे समझे।। फिर उन्होने लोगो को वाणी से कहा।

अब इसमें बडे उपद्रव है। क्योकि जो समझने वाले ग्यारह गणधर थे, उनमे से कोई भी महावीर की हैसियत का व्यक्ति न था। इसलिए महावीर ने जितना मौन से कहा, उसका एक अश उन्होने समझा। फिर जो अश उन्होने समझा, उसका एक अश ही लोगो से शब्दों में कह पाए। और जो एक अश लोगो ने सुना, उसका भी एक अश ही उनकी बुद्धि पकड पाई।

लेकिन ऐसा महावीर के साथ ही हुआ हो, ऐसा नही है। ऐसा प्रत्येक मनीषी जब बोलता है, तब यही होता है। इस घटना मे हमें विभाजन करना आसान होता है।

लेकिन जब किसी को भी, लाओत्से को या बुद्ध को, या महावीर को, या किसी को भी सत्य का अनुभव होता है, तब वह पूर्ण होता है। वह वक्तव्य पूरा है। वहां

कोई दोष नही होता। लेकिन इस वक्तव्य को, इस घटना को, इस तथ्य को, जो अनुभव में आता है, जैसे ही महावीर खुद ही अपने भीतर शब्द देना शुरू कर देते हैं कि गणधर के हाथ में बात पहुंच गई। मन अब उसको शब्द देगा। तो जो आत्मा ने जाना, उसका एक अंश ही मन को समझ में आया। अब यह मन उसे प्रकट करेगा वाणी से बाहर। तो मन जितना समझ पाता है, उतना भी शब्द नहीं बोल पाते। फिर ये, शब्द आपके पास पहुंचते हैं। फिर इन शब्दो में से जितना आप समझ पाते हैं, उतना आप पकड़ लेते हैं। सत्य जो जाना गया था, और सत्य जो संवादित हुआ, इसमें जमीन-आसमान का फर्क हो जाता है।

इसलिए सत्य बोलने वालों को सदा ही अड़चन होती है। और वह यह कि जो बोला जा सकता है, वह सत्य होता नहीं है। और जो बोलना चाहते हैं, वह बोला नहीं जा सकता। इन दोनो के बीच कही समझौता करना पड़ता है। सभी शास्त्र इसी समझौते के परिणाम है। इसलिए शास्त्र सहयोगी भी है और खतरनाक भी। अगर कोई इसको समझ के चले कि शास्त्रो में बहुत अल्पध्वनि आ पाई है वक्तयों की, तो सहयोगी हैं। और अगर कोई समझे कि शास्त्र सत्य हैं तो खतरनाक हैं।

लाओत्से कहता है कि वक्तव्य जब पूर्ण होता है, तब उसमें प्रतिवाद के लिए कोई उपाय नहीं है। लेकिन आपने कोई ऐसा वक्तव्य सुना है, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके? किसी ने कहा कि ईश्वर है। क्या अड़चन है, आप कह सकते हैं कि ईश्वर नही है। किसी ने कहा कि आत्मा है; आप कह सकते हैं कि नहीं है। किसी ने कहा कि हम आनन्द में है; आप कह सकते है कि हमें शक है। आपने ऐसा कोई वक्तव्य सुना है कभी, जिसका प्रतिवाद न किया सके। नहीं सुना है। क्या ऐसा कोई वक्तव्य दिया ही नही गया है, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके?

नही, ऐसे बहुत वक्तव्य दिए गए हैं। अड़चन हैं थोडी सी। बहुत ऐसे वक्तव्य दिए है, जिनका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। लेकिन आपने अब तक ऐसा कोई वक्तव्य नही सुना है, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके। इसका क्या मतलब हुआ? यह तो बडी विरोधाभासी बात हो गई। इसका मतलब यह है कि अगर आप प्रतिवाद कर पाते है तो इसका कुल कारण इतना है कि जो वक्तव्य दिया गया, उसको आप समझ नहीं पाते और जो आप समझते हैं, उसका आप प्रतिवाद करते हैं। जो वक्तव्य दिया गया है, उसे आप समझ नही पाते। समझ पाएं तो ऐसे वक्तव्य दिए गए हैं कि जिनका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है। लेकिन जो आप समझ पाते हैं, उसका प्रतिवाद किया जा सकता है। आप अपनी ही समझ का प्रतिवाद करते रह सकते है।

लाओत्से कहता है कि ऐसे वक्तव्य हैं, जो पूर्ण है। लेकिन वक्तव्य पूर्ण कब होता है? क्या शब्दो की कुशलता से, व्याकरण की व्यवस्था से वक्तव्य पूर्ण होता

है ? क्या जिसमें कोई व्याकरण की भूल चूक न हो, शब्द-शास्त्र पूर्ण हो, वह वक्तव्य पूर्ण होता है ? लाओत्से के हिसाब से ऐसा नहीं है। लाओत्सें के हिसाब से वह वक्तव्य पूर्ण है, चाहे उसमें व्याकरण की भूलें हो, शब्द गलत हों, वह वक्तव्य पूर्ण हैं जो अनुभव से निसित होता है।

दो तरह के वक्तव्य हैं। एक, जो वक्तव्यों से निस्रित होते हैं और दूसरे, जो अनुभवों से। आप कहते है कि ईश्वर है, यह आपके अनुभव से नहीं आता है। यह किसी ने आप को कहा है, उसके वक्तव्य से आपके भीतर निर्मित होता है। यह वक्तव्यो की प्रतिध्वनि है, आपके अनुभव का निर्झर नहीं। आपके अनुभव से इसका जन्म नहीं है। सुने हुए शब्दों का संकलन है यह। सुना है आपने, उसे अब दोहरा देते है। यह स्मृति है, ज्ञान नहीं।

आपके अनुभव से जब कोई वक्तव्य आता है सीधा और प्रत्यक्ष, आपके भीतर जनमता है, तब पूर्ण होता है। और तब हो सकता है कि व्याकरण सहायता न दे, तब हो सकता है कि भाषा टूटी-फूटी हो। अक्सर होगा। क्योंकि वक्तव्य इतना बड़ा होता है कि भाषा का जो भवन है वह छोटा पड जाता है। उस वक्तव्य को भीतर डालते हैं तो भवन खंडहर हो जाता है। वक्तव्य इतना बडा होता है कि सब शब्दों को तोड-मडोड डालता है।

गुरजिएफ ऐसी भाषा बोलता था, जिसमें कोई व्याकरण ही न था। उसकी अंग्रेजी तो समझनी बडी मुश्किल बात थी। वे ही लोग समझ सकते थे, जो वर्षों से उसे सुन रहे थे और हिसाब रखते थे कि उसका क्या मतलब होगा। लेकिन फिर भी पश्चिम के श्रेष्ठतम ज्ञानी उसके चरणों में बैठे। पावेल ने लिखा है कि उसके शब्द सुनकर ऐसी कठिनाई होती थी कि कोई हथौड़े मार रहा है। लेकिन फिर भी उसके पास जाने का मोह नहीं छूटता था। वह जो कह रहा था, वह तो बिलकुल ही अजीब था, लेकिन वह जो कहने वाला भीतर था, वह खींचता था, वह पकड़ता था।

उसकी पहली किताब जो उसने वर्षों मे लिखी और लिखवाई, इस सदी की श्रेष्ठतम किताबो मे है ."ऑल एण्ड एवरीथिग"। मगर इसमे ज्यादा बेबूझ किताब कभी नहीं लिखी गई। एक मित्र को उसने अमरीका मे कहा था कि कुछ मित्रों को बुलाना और किताब पढ़ी जाएगी। क्योंकि वर्षो तक उसने छापी नहीं, वह छापने योग्य थी भी नहीं थी। भाषा गोल-गोल है। और कभी-कभी तो एक पृष्ठ पर एक वाक्य फैलता चला जाता है। और पीछे लौटकर दुबारा वाक्य पढ़ना पड़ता है कि इस वाक्य के शुरू मे क्या कहा था और वाक्य के बाद मे क्या कहना है। फिर कोई ताल-मेल नहीं मालूम पड़ता, और ऐसा लगता है कि अगर उसको एक मतलब की बात कहनी हो तो हजार बेमतलब की बात पहले कहता है। फिर वह एक मतलब की. बात कहता। वर्षो तक उसके मित्र इकठ्ठे होते, किताब का एक पन्ना पढा जाता,

और फिर वह पूछता कि कैसा लगा? कुछ समझ में न आता था।

अमरीका मे किसी मित्र को उसने कहा था कि दस-पांच लोगों को बुला लेना; किताब पढ़ी जाएगी। क्योंकि किताब छपी नही थी और बहुत लोग उत्सुक थे। तो अमरीका का एक बहुत बड़ा बिहेवियरिस्ट मनोवैज्ञानिक वाटसन भी उस बैठक में मौजूद था। वह बहुत विचारशील आदमी था। और इस सदी के मनोविज्ञान में एक अलग परम्परा को, फ्रायड से बिलकुल अलग परपरा के जन्मदाताओ में से एक था। उसका मानना है कि एक आदमी सिर्फ एक यत्र है, कोई आदमी वगैरह नही है। और उसने बहुत गहरे काम किये इस दिशा में। वह वाटसन भी था। उसको तो बडी मुश्किल हो गई। और भी पाच-सात लोग थे। लेकिन और किसी की तो हिम्मत न पडी, लेकिन जो आदमी कहता है कि आत्मा ही नही है, उसकी हिम्मत तो पड़ ही सकती है। उसने खडे होकर कहा कि महाशय गुरजिएग, या तो आप हमारे साथ मजाक कर रहे है; यह जो पढा जा रहा है, यह क्या है? या तो आप जानबूझकर मजाक कर रहे हैं, या फिर हम किसी पागलखाने मे बैठे हैं। कृपा करके यह किताब बन्द की जाए और कुछ बातचीत हो, जिसमें कुछ अर्थ हो।

गुरजिएफ बहुत हसा और उसने कहा कि बातचीत भी मेरी ही होगी और यह किताब भी मेरी ही है। और जिस ढग से तुम अर्थ खोजने के आदी हो, उस ढग से मेरी बातचीत मे कोई भी अर्थ नही है। मैं किसी ऐसी जगह से बोल रहा हू, जहा मुझे पता है कि मैं क्या बोल रहा हू, लेकिन शब्द छोटे पड जाते है। और जब मैं उनको शब्दो में रखता हू तो मुझे लगता है कि सब फीका हो गया।

और यह इतनी लम्बी किताब है, एक हजार पृष्ठ की किताब है। और जब पहली दफा गुरजिएफ ने छापी, उसके नौ सौ पन्ने जुडे हुए थे, कटवाये नही गये थे। सिर्फ सौ पन्नो की भूमिका कटा हुई थी और खुली थी। और एक वक्तव्य था भूमिका के साथ कि अगर आप सौ पन्ने पढकर भी सोचें कि आगे पढेंगे, आगे पढनेवाले है, तो पन्ने काटे, अन्यथा किताब दूकानदार को वापस कर दे।

लेकिन सौ पन्नो के आगे जाना बहुत मुश्किल है। मैं समझता हू कि जमीन पर दस-बारह आदमी खोजने मुश्किल है, जिन्होने गुरजिएफ की पूरी किताब ईमानदारी से पढी हो। बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि पाच सौ पन्ने पढ जाए, तब कही एकाध वाक्य ऐसा लगता है कि इसमे कुछ मतलब है। मतलब तो सब में है, लेकिन मतलब इतना ज्यादा है कि शब्द छोटे पड जाते है। वह ऐसे है जैसे कि किसी बडे आदमी को एक छोटे से बच्चे के कपडे पहना दे और यह एक मजाक मालूम पडे। शरीर उसका कही से निकल निकल पडता हो कपड़ों से। और कपडे कपडे न मालूम पड़ें, बल्कि जजीरे मालूम पडे।

भाषा और व्याकरण वक्तव्य को पूर्ण नही बनाते, मात्र सुडौल बनाते है, सुरुचि-

पूर्ण बनाते हैं, स्वादिष्ट भी बनाते हैं; लेकिन पूर्ण नहीं बनाते। वक्तव्य तो पूर्ण होता है उस भीतर के प्रकाश से, जो शब्दों के कन्दील से बाहर निकलता है। अगर कनदील थोडी भी गन्दी हो, थोडी भी अस्पष्ट हो, तो वह प्रकाश भी अस्पष्ट हो जाता है। लेकिन कनदील कितनी ही स्वच्छ हो तो भी वह प्रकाश पूरा प्रकट नहीं हो पाता। क्योकि काच कितना ही स्वच्छ और ट्रान्सपेरेन्ट क्यो न हो, फिर भी एक बाधा है।

एक बढिया वक्तव्य प्रतिवाद के लिए दोष-रहित होता है।

एक कुशल गणक को गणित्र की जरूरत नहीं होती। आप जोडते हैं दो और दो तो आपको जोडना नही पडता उगलियो पर कि एक, दो, तीन, चार; एक छोटे बच्चे को जोडना पडता है। छोटे बच्चे की उंगलियां जोर से पकड़ लो, वे जोडे न पाएंगे। क्योकि जब तक उंगलियो को गति न मिले, उनको कठिनाई हो जाएगी।

आदिम कौमे हैं, जिनके पास दस से ज्यादा की सख्या नही है। दस के बाद उनको फिर एक, दो से शुरू करना पडता है। और अगर सौ दो सौ की सख्या मे कोई चीज पडी हो तो फिर वे वह सख्या गिनते ही नही। फिर वे कहते हैं ढेर, असख्य। फिर उसमें कोई संख्या नही रह जाती। क्योकि गिनने का जो गणित्र है उनकी वे उंगलिया हैं।

वैसे तो हमारा सारा गणित ही उगलियो पर खडा है। इसलिए हमारे १०, दस के आकडे बुनियाद में हैं। क्योकि दस उगलिया है आदमी को, और कोई कारण नही है। दस डिजिट हैं, एक से लेकर दस तक। और इसके बाद ११, ग्यारह पुनरुक्ति है। फिर इसके बाद २१, इक्कीस पुनरुक्ति है। असल में आदमी पहले उगलियो पर ही गिनता रहा है। तो दस तक तो गिन लेता था, तब फिर से शुरू करना पडता था। ११, ग्यारह भी फिर शुरू करना है। २१, इक्कीस फिर से शुरू करना है। दस में हमारी भी सख्या पूरी हो जाती है। उगलियो की वजह से हमारा गणित दस के डिजिट और आकडो पर खडा है।

लेकिन जब आप गणित मे कुशल हो जाते है, तब आपको ऐसा गिनना नही पडता है कि दो और दो चार। दो और दो किसी ने कहे कि आपके भीतर चार हो जाता है। लेकिन दो-दो मे तो आसान है, पर अगर कोई लम्बी सख्या बोल दे, दस-बारह आंकडो की संख्या बोल दे और कह दे कि गुणा करो इसमें दस-बारह आकडो की सख्या से, तब आपको गणित्र का उपयोग करना पडेगा। किसी न किसी विधि का उपयोग करना पड़ेगा।

लेकिन रामनुजम था, वह इसमे भी उपयोग नही करता। जब रामानुजम पहली दफा ऑक्सफोर्ड ले जाया गया और ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर हार्डी ने, जो बड़ा के गणित के बडे से बड़े ज्ञानी व्यक्ति थे, ऐसा सवाल रामानुजम को दिया जिसको

बड़े से बड़ा गणितज्ञ भी पांच घंटे से कम में हल नहीं कर सकता— उनको हल करने की विधि ही इतना वक्त लेगी, इतने बड़े आकड़े थे— और हार्डी लिख भी नहीं पाया तख्ते पर और रामानुजम ने उत्तर बोल दिया। तो हार्डी ने कहा कि पहली दफा मुझे गणितज्ञ दिखाई पडा। अब तक जो थे, वे सब बच्चे थे, उंगलियों पर ही गिन रहे थे— उंगलियां कितनी ही बड़ी हो जाएं। हार्डी ने कहा कि मैं भी बच्चा मालूम पडा जो कि आंकडे गिनता है उगलियों पर—अंगुलियां कितनी बड़ी हो जाएं। हार्डी इधर सवाल बोले, उधर रामानुजम का उत्तर आ जाए। यह क्या हो रहा था? यह ज्यादा पढ़ा-लिखा लड़का न था। मैट्रिक फेल था। यह पश्चिम के गणित के लिए एक बडा भारी प्रश्नचिह्न बन गया कि यह हो क्या रहा है? इसका मस्तिष्क क्या कर रहा है? इसके मस्तिष्क की गति कैसी है?

रामानुजम बीमार था। वह टी. बी से मरा। हार्डी उसे देखने आये थे हॉस्पिटल में। गाडी बाहर खडी करके भीतर आये। रामानुजम ने ऐसे बाहर देखा, उसकी गाडी पर जो नम्बर था, उसे देख कर रामानुजम ने कहा कि हार्डी, यह नम्बर सबसे कठिन नम्बर है गणित के लिए। और उस नम्बर के सम्बन्ध मे उसने कुछ बातें कहीं। हार्डी रामानुजम के मरने के बाद सात साल मेहनत करता रहा, इस बात पर कि उसने जो मरते वक्त नम्बर देखकर कहा था, वह कहा तक सही है। सात साल में नतीजे निकाल पाया कि उसने जो कहा था, वह सही है। सात साल की लम्बी मेहनत? और हार्डी कोई छोटा-मोटा गणितज्ञ नही है। इस सदी के श्रेष्ठतम गणितज्ञों मे एक है।

लाओत्से कहता है, लेकिन अगर कुशल हो गणक, अगर गणक की प्रतिभा हो, तो फिर सहारो की जरूरत नही पडती। ये सब सहारें हैं। तब क्या बिना सहारों के हल हो जाता है सवाल?

हमारे लिए कठिन है, क्योंकि यह बात इन्ट्यूटिव है, प्रज्ञामूलक है। हम तो जो भी करते हैं, बुद्धि से करते हैं। बुद्धि को सहारा चाहिए। लेकिन बुद्धि के पीछे एक प्रज्ञा भी है, जो बिना सहारे के करती है। **बुद्धि तो चलती है चींटी की चाल और प्रज्ञा छलांग लेती है।** प्रज्ञा में विधि नहीं होती, मेथड नही होता। बुद्धि में मेथड होता है, विधि होती है। बुद्धि को कुछ भी करना हो तो एक-एक कदम चलेगी, पूरी विधि करेगी, तो ही नतीजे पर पहुच पाएगी। बुद्धि के लिए नतीजा एक लम्बा प्रोसेस, एक लम्बी प्रक्रिया है। उसके पीछे एक प्रज्ञा है, जिसको बर्गसन ने इन्ट्यूशन कहा है। वह प्रज्ञा किसी विधि से नहीं चलती, सिर्फ छलाग लेती है। प्रथम से अंतिम पर सीधी पहुच जाती है; बीच की विधि होती ही नही है।

अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि जो श्रेष्ठतम खोजें हैं, वे बुद्धि के द्वारा नहीं होती हैं। वे प्रज्ञा के द्वारा होती हैं। क्योंकि जिसका हमें पता ही नहीं है, उसकी विधि हम कर कैसे सकते है? विधि बाद में हो सकती है। जिसका हमें पता ही

नहीं है, उसकी विधि हम कर कैसे सकते हैं ? इसलिए इस जगत में जो भी बडी से बडी विज्ञान की खोजें हुई हैं, वे सब छलागें हैं।

मैडम क्यूरी को नोबुल प्राइज मिली एक छलाग पर। वह एक गणित हल कर रही थी, जो हल नहीं होता था। वह परेशान हो गई थी, वह हताश हो गई थी। और वह उस जगह आ गई थी, जहा उसने एक साझ को कई राते और कई दिन खराब करने के बाद सब कागज-पत्र बन्द कर के टेबुल के भीतर डाल दिया और कहा कि इस झझट को ही छोड देना है। रात वह सो गई। सुबह उठकर वह बहुत हैरान हुई, टेबल पर जो लेटरपैड पडा हुआ था, उस पर वह उत्तर लिखा हुआ है, जिसकी वह तलाश में थी। कठिनाई और बढ गई, क्योंकि अक्षर उसी के थे। और तब उसने विचारा तो उसे खयाल आया एक स्वप्न का। रात उसे स्वप्न आया था कि वह उठी है और कुछ टेबुल पर लिख रही है।

वह स्वप्न नहीं था, वह वस्तुत उठी थी और टेबुल पर लिख गई थी। विधि तो बुद्धि ने पूरी कर ली थी महीनों तक, पर हल नहीं आता था। यह हल कहा से आया ? और यही हल उसके नोबुल प्राइज का कारण बना। फिर बुद्धि ने प्रोसेस कर ली पीछे। जब हल हाथ मे लगा वह, सवाल हाथ में था ही उत्तर भी हाथ लग गया, तो फिर बुद्धि ने बीच की कडी पूरी कर ली। और वह कडी सही साबित हुई।

इसको बर्गसन कहता है इन्टयूशन। और वह कहता है, इन्ट्यूशन एक छलाग है —चीटी की तरह नहीं, मेढक की तरह। चीटी सरकती है और चलती है, और मेढक छलाग लेता है। बुद्धि चलती है और सरकती है, प्रज्ञा छलाग लेती है।

जब लाओत्से कहता है कि कुशलता पूरी तो उसका अर्थ प्रज्ञा से होता है। आपने एक सवाल लाओत्से से पूछा। अगर आप बर्ट्रेंड रसेल से पूछेंगे तो वह सोचेगा। लाओत्से सोचेगा नहीं, सिर्फ उत्तर देगा। वह एक छलाग है। उसमें कोई प्रोसेस नहीं है। अगर प्रोसेस भी करनी है तो पीछे की जा सकती है। बुद्धि के लिए प्रोसेस, प्रक्रिया पहले है, प्रज्ञा के लिए प्रक्रिया बाद में है।

लेकिन यह बात बर्गसन की, लाओत्से की और अनन्त-अनन्त अन्त प्रज्ञावादियों की अब तक वैज्ञानिक नहीं हो सकी। क्योंकि वैज्ञानिक कहते है कि छलाग भी एक प्रोसेस है। मेढक छलाग लेता है तो भी बीच का रास्ता छोड़ थोड़े ही देता है। तेजी से निकलता है, बस इतनी ही बात है। हवा में से निकलता है, मगर निकलता है ही। बीच की विधि से निकलना तो है ही। चीटी भी निकलती है, वह जमीन से निकलती है। यह मेढक कितनी ही तेजी से छलाग ले ले, लेकिन बीच के हिस्से में होता तो है। और इसके भी स्टेप्स तो हैं ही।

यह विज्ञान की अड़चन थी कि प्रज्ञा भी अगर छलाग लेती है तो उसका तो

मतलब इतना ही है कि कुछ तेजी से कोई घटना घट जाती है। लेकिन घटती तो है ही। प्रक्रिया होती है।

लेकिन अभी नवीनतम फिजिक्स की खोजों ने विज्ञान के इस सवाल को, इस संदेह को मिटा दिया है। इस सदी की जो सबसे बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना घटी है फिजिक्स में, वह यह है कि जैसे ही हम परमाणु का विस्फोट करते है और इलेक्ट्रोन पर पहुचते है, वैसे ही एक बहुत ही अनूठी घटना घटती है, जो कि सभवतः आनेवाली सदी में नये विज्ञान का आधार बनेगी। वह घटना यह है कि प्रत्येक परमाणु के बीच मे एक तो न्यूक्लियस है, एक बीच का केन्द्र है, और उसके आसपास घूमते हुए इलेक्ट्रोन हैं। वह जो परिधि है, वह सबसे बड़ा चमत्कार है। इलेक्ट्रोन अ नाम के स्थान पर है, फिर ब नाम के स्थान पर है, फिर स नाम के स्थान पर है। लेकिन बीच में नही पाया जाता। अ और ब के बीच मे होता ही नही है। अ पर मिलता है, फिर थोड़ी दूर चलकर ब पर मिलता है, फिर थोड़ी दूर चलकर स पर मिलता है; लेकिन अ, ब और स के बीच मे जो खाली जगह है, वहा वह होता ही नहीं है। तो विज्ञान कहता है कि वह अ से ब पर पहुंचता कैसे है? क्योंकि बीच मे होता ही नहीं है। मेढक तो बीच में भी होता है, वह अ से ब में कूदता है, बीच में होता है। लेकिन यह इलेक्ट्रोन जब अ मे ब पर जाता है, तब बीच में होता ही नहीं है। अ पर होता है, देन इट डिसअपीयर्स, तब वह खो जाता है, अगेन इट अपीयर्स, वह ब पर फिर प्रकट होता है।

इससे एक बहुत अनूठी कल्पना, अभी तो कल्पना ही है, लेकिन सभी कल्पनाएं पीछे सत्य हो जाती है, एक अनूठी कल्पना हाथ में आई है। और वह यह कि अगर हमें आदमी को दूर तक की यात्रा पर भेजना है तो उस दिशा में बिलकुल नई संभावना का द्वार खुल सकता है।

चाद तक पहुचना बहुत अडचन की बात नहीं थी। बहुत अड़चन की बात थी, फिर भी बहुत अड़चन की न थी, क्योंकि चाद बहुत फासले पर नहीं है। अगर हम अपने निकटतम तारे पर भी पहुचना चाहे तो एक आदमी की जिन्दगी कम है। वह बीच मे ही मर जाएगा। तो इसका मतलब तो यह हुआ कि हम कुछ भी उपाय कर ले, यह यात्रा असम्भव है। और अभी हमारे जो साधन हैं पहुचने के, वे इतने तीव्र भी नहीं हैं। लेकिन कितने भी तीव्र हो जाए तो भी क्या फर्क होगा। अधिकतम तीव्रता जो गति की है वह प्रकाश की है, उससे बड़ी गति कोई अभी तक नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर प्रकाश की गति के यान बन जाएं, एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकन्ड की रफ्तार से चले, तो भी जो निकटतम तारा है वह हमसे चालीस प्रकाश वर्ष दूर है। मतलब यह कि अगर इतनी रफ्तार से आदमी जाए तो चालिस साल में पहुचेगा और चालीस साल में वापस आएगा। अस्सी साल में आशा नहीं है उसकी कि वह बचेगा। और अगर वह बच भी जाए तो जिन्होंने

भेजा था उनसे उसकी मुलाकात न होगी। और जिनसे उनकी मुलाकात होगी, हिप्पी और इन सबसे, वे समझेंगे नही कि काहे के लिए आये हैं, क्या प्रयोजन है, कहां गए थे?

इस घटना से एक कल्पना पैदा हुई। और वह कल्पना यह है कि अगर हमें कभी भी इतनी दूर की यात्रा करनी हो तो उसका उपाय यान नही है, कोई माध्यम नहीं है, प्रोसेस नही है, छलांग है। बडा मुश्किल मामला है। वैज्ञानिक कहते हैं कि आज नही कल—अभी कल्पना है—हम एक यन्त्र खोज लेंगे कि एक आदमी को उस यन्त्र में रख दे एण्ड ही डिसअपियर्स फ्रॉम हीयर और वह यहा से विलीन हो जाएगा। एण्ड देन ही अपीयर्स ऑन ए प्लैनेट, ऑन ए स्टार, और बीच की प्रोसेस गोल है, बीच में कोई उपाय नही है। **यहां से अप्रकट हो जाता है, शून्य हो जाता है, और वहां प्रकट हो जाता है।** जब तक हम ऐसा कोई उपाय न खोज ले, तब तक तारो तक नहीं पहुचा जा सकता है। **लेकिन आदमी पहुंच कर रहेगा।** कोई उपाय खोजा जा सकता है। और अगर इलेक्ट्रोन एक जगह से विलीन हो जाता है और दूसरी जगह प्रकट हो जाता है तो आदमी भी इलेक्ट्रोन का जोड है, इसलिए अडचन नही है। गणित मे अडचन नही है। यह हो सकता है। क्योकि अगर इलेक्ट्रोन कर ही रहे है सदा से यह तो आज नही कल आदमी क्यों न कर सकेगा? तब हमें पहली दफा छलाग का पता चलेगा कि छलांग क्या है।

लेकिन प्रज्ञावादी सदा से कहते रहे हैं कि जो पूर्णता है, वह प्रज्ञा की है। बुद्धि तो हिसाब लगाती है। हिसाब मे भूलचूक हो सकती है। जहा हिसाब ही नही है और निष्कर्ष सीधा है, वही पूर्णता सम्भव है।

ठीक से बन्द हुए द्वार मे और किसी प्रकार का बोल्ट लगाना अनावश्यक है, फिर भी उसे खोला नही जा सकता।

लेकिन हम जीवन में हमेशा एक के ऊपर एक ताले लगाये चले जाते है। उसका कारण है कि भीतर हम असुरक्षित है। लेकिन कितने ही ताले लगाए, कोई अतर नही पडता है। तालो पर ताले लगाये चले जाते है, कोई अतर नही पड़ता है। **असुरक्षा भीतर है।**

लाओत्से कहता है, जो ठीक से सुरक्षित है, कुछ भी हो जाए जगत में, वह असुरक्षित नही होता है। और ठीक से सुरक्षा क्या है? **ठीक से सुरक्षित वह नही है** जिसने सब सुरक्षा के इतजाम कर लिये। वह नहीं। आपने दरवाजे पर ताले लगा लिये, खिडकियो पर ताले लगा लिये, सब कर लिया, फिर भी आप सुरक्षित नहीं है। सब ताले तोडे जा सकते है। क्योंकि जिस बुद्धि से ताले लगाते हैं, वही बुद्धि बाहर भी है। और ध्यान रहे, लगानेवालो से खोलनेवालो के पास सदा के ज्यादा बुद्धि होती है। कम बुद्धिवाले लगाने का काम करते है, क्योकि डरे रहते है। ज्यादा बुद्धि वाले खोलने का काम करते है। इसलिए कितने ही ताले लगाएं, कोई खोल लेगा।

हुडनी ने पश्चिम में सब तरह के ताले खोलकर बताया। ऐसा कोई ताला नही था, जो हुडनी नही खोल लेता था। और बिना चाबी के। और हुडनी कोई साईबाबा नहीं था। और हुडनी कहता था कि मेरे हाथ में कोई मंत्र नहीं है, कोई सिद्धि नही है। मैं सिर्फ कुशल हूं। हुडनी बडा ईमानदार आदमी था। इतना ईमानदार आदमी भारत के चमत्कारी साधुओं में भी खोजना मुस्किल है। हुडनी ने कहा कि मैं सिर्फ कुशल हू; बस। ट्रिक्स हैं।

हुडनी पर सब तरह के तालों का प्रयोग किया गया। सिर्फ एक बार वह असफल हुआ और वह इसलिए कि दरवाजा खुला था और ताला डाला नही गया था। और इसलिए वह नही निकल पाया। एक बार झंझट में पड़ गया।

ऐसे तो हजार जेलखानों में, पश्चिम के सारे बडे-बडे जेलखानो मे उसके प्रयोग किए गए। पुलिस के पास जितने उपाय थे, सब उपाय किए गए। और इतने कम समय उसको दिया गया उसे खोलने की कि चाबी भी हो तो भी नही खोल सकते। चाबी भी तो समय लेगी न ताले को खोलने मे। आखिर ताले मे चाबी को जाना है और फिर ताला अगर उलझा हुआ हो, होशियारी से बनाया गया हो और गणित का उसमें हिसाब हो, तो बहुत मुश्किल है। समय तो लगेगा ही। उसको बांध कर डाल दिया है पानी के भीतर, अब जितनी देर वह पानी के भीतर सास ले सकता है, उतना ही समय है। जितनी देर सांस रोक सकता है, कुछ सेकण्ड्स्। और हर ताले को वह पानी के भीतर से खोलकर बाहर आ गया। हर हथकड़ी को उसने खोलकर बता दिया। हर जेलखाने के बाहर आकर खडा हो गया। और उसने कहा कि मैं कोई चमत्कारी नही हूं, मेरे पास कोई सिद्धि नही है। मै सिर्फ कुशल हू।

सिर्फ एक बार दिक्कत मे पड गया; मजाक हो गया। जब सब ताले वह खोल चुका, तब स्काटलैण्ड यार्ड ने एक मजाक किया। दरवाजे के भीतर उसको जेल में बन्द किया और दरवाजा भर झटकाया, ताला लगाया नही। वह मुश्किल में पड गया। वह बेचारा अपना मन लगाकर ताला खोलने की सोचता रहा होगा और ताला था नही। खोलने का कोई उपाय न था। अटक गया, पहली दफा, एक ही दफा।

आप कितना ही इतजाम कर ले बाहर, सब इतजाम तोड़ा जा सकता है। और आप भी जानते है कि जो इतजाम किया जा सकता है, वह तोडा जा सकता है। इसलिए भय बना ही रहता है, असुरक्षा बनी ही रहती है। फिर जितना आप इतजाम कर लेते है, उतनी असुरक्षा बढ जाती है। होता यह है कि किस पर करिये भरोसा? एक पहरेदार दरवाजे पर खडा कर दिया। अब पहरेदार पर एक पहरेदार खडा करना पड़े, उस पर एक पहरेदार खडा करना पडे। कहा किस पर करिये भरोसा? और आखिरी आदमी तो खतरनाक रहेगा ही। एक कडी तो आपको असुरक्षित रखनी ही पडेगी।

इसलिए लाओत्से कहता है कि ये जो सारे इन्तजाम पर इंतजाम हैं, सुरक्षा पर सुरक्षा है, यह बेमानी है। एक ही सुरक्षा है। **और वह सुरक्षा है पूरी तरह असुरक्षा को स्वीकार कर लेना।** पूरी तरह असुरक्षा को स्वीकार कर लेना। जिसने मान लिया कि असुरक्षित हूं, उसे अब कोई भय न रहा। वह उस हालत में आ गया, जिसमें हुडनी आ गया। दरवाजा खुला ही था और खोल न पाया। जो आदमी असुरक्षित है, उसकी इस जगत में कोई असुरक्षा नही है। असुरक्षा का भय ही समाप्त हो गया।

ऐसा नहीं है कि उसकी मौत नहीं होगी। और ऐसा भी नही है कि कोई उसको छुरा मार देगा तो वह नही मरेगा। मौत भी होगी, वह मरेगा भी; लेकिन असुरक्षा का कोई भय नही रहा। **मौत भी उसे प्रीतम का मिलन होगी और छुरा भी उसी की भेंट।** इससे कोई अंतर नहीं पडेगा। जो असुरक्षित होने को राजी है, **उसकी सुरक्षा पूर्ण है।** जो सुरक्षा की चेष्टा में लगा रहेगा, उसकी असुरक्षा बढ़ती ही चली जाएगी।

ठीक से बंधी गाठ के लिए रस्सी की कोई जरूरत नही है; फिर भी उसे अनबंधा नही किया जा सकता।

संत लोगों का कल्याण करने में सक्षम हैं; इसी कारण उनके लिए कोई परित्यक्त नही है। यह थोडी सी सूक्ष्म बात है।

लाओत्से कहता है कि संतों के लिए कोई आदमी इतना बुरा नही है कि संत न हो सके। देयरफोर द सेज इज गुड एट हेल्पिंग मैन, फॉर दैट रीजन देयर इज नो वन रिजेक्टेड एज यूजलेस। अगर कोई सन्त आपसे कहे कि तुम पापी हो और तुम्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता तो समझना कि वह सन्त नहीं है। यह तो ऐसा ही हुआ कि डाक्टर किसी मरीज से कहे कि तुम मरीज न हो, तुम्हें मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं? मरीज के लिए उसका होना है। **सन्त का होना ही उसके लिए है, जो कि जीवन में भटक गया है, खो गया है।** लेकिन अगर सन्त कहे कि तुम अपात्र हो तो जानना कि सन्त स्वयं ही अपात्र है। अपात्रता की भाषा संत की भाषा नही है। अपात्रता की भाषा उन कमजोर साधुओं की भाषा है, लोगों को बदलने की कीमिया जिनके पास नही है। तो वे उनको ही चुनते है, जो पात्र हैं। पात्र का मतलब हैं कि जिनको बदलने के लिए उनको कुछ भी न करना पडेगा।

एक गांव में बुद्ध आये। और रास्ते में जब वे आ रहे थे, तब गांव की वेश्या दूसरे गांव जा रही थी। और उसने बुद्ध से कहा कि आप गांव जा रहे हैं; वर्षों से मैं प्रतीक्षा करती थी और आज मजबूरी है कि मुझे दूसरे गांव जाना पड रहा है। लेकिन सांझ होते-होते हर हालत में लौट आऊंगी। तो जब तक मैं न लौट आऊं, बोलना मत।

सारा गांव इकट्ठा हो गया। पंडित, पुजारी, ज्ञानी, सब आकर बैठ गए। और

बुद्ध बार-बार देखने लगे कि वह वेश्या अब तक न आई। आखिर एक आदमी ने कहा कि आप शुरू क्यों नही करते, सब तो आ गए हैं। गांव में जो भी आने योग्य थे, सब आ चुके। अब किसकी प्रतीक्षा है? बुद्ध ने कहा कि किसी की प्रतीक्षा है। जिसके लिए मैं बोलने आया हूं, वह अभी मौजूद नही है। लोगो ने चारो तरफ देखा, कोई ऐसा आदमी गांव में नही था कि जो धार्मिक था और मौजूद न था। कोई प्रतिष्ठित आदमी ऐसा न था जो गाव में था और मौजूद न था। किसकी प्रतीक्षा है?

और तब अचानक वेश्या आई और बुद्ध ने बोलना शुरू कर दिया। गाव बडा चिन्तित हुआ। बोलने के बाद गाव के लोगो ने बुद्ध से पूछा, क्या आप इस वेश्या की प्रतीक्षा कर रहे थे, इस अपात्र की? बुद्ध ने कहा कि जो पात्र हैं, वे मेरे बिना भी तर जाएंगे। जो अपात्र हैं, उनके लिए ही मैं रुका हूं। लेकिन ध्यान रहे, जो अपने को पात्र मानता है, पात्र समझता है, उससे बडा अपात्र नहीं होता है। और जो मानता है कि मैं अपात्र हू, **यह मानना ही उसकी पात्रता बन जाता है।** यह विनम्रता उसके लिए द्वार बन जाती है।

सन्त किसी को परित्यक्त नही करते। उनके लिए कोई भी निरुपयोगी नही है।

इससे भी गहरी बात दूसरे सूत्र मे है सन्त सभी चीजों की परख रखते हैं, इसी कारण उनके लिए कुछ त्याज्य नहीं है। यह और भी कठिन है। ही इज गुड एट हैंथिग थिंग्स, एट सेविंग थिंग्ज, फॉर दैट रीजन देयर इज नथिंग रिजेक्टेड।

जीवन में ऐसा कुछ भी नही है, जिसका सन्त उपयोग करना नही जानते। उन्हें जहर दे दे, वे उसकी औषधि बना लेंगे। उन्हे जहर भी दे दे, वे उसकी औषधि बना लेंगे। उनके पास क्रोध हो, वे उसमें से दया के फूल खिला लेंगे। उनके पास कामवासना हो, उसी में से ब्रह्मचर्य की गन्ध उठेगी। उनके पास ऐसा कुछ भी नही है, जिसे वे त्यागते हैं। **वे रूपांतरित करते हैं, ट्रांसफॉर्म करते हैं।**

दो तरह के लोग हैं जगत मे। एक तो वे जो अपने को काट-काटकर सोचते हैं कि वे आत्मा को पा लेंगे। तो जो-जो उन्हे गलत लगता है, उसे काटते चले जाते हैं। लेकिन उन्हे पता नही है, जो उन्हे गलत लगता है, उसे वे काटकर अपनी ऊर्जा को काट रहे हैं। और सब काटने के बाद, अपना क्रोध काट दे, अपना सेक्स काट दे, अपना लोभ काट दें, सब काट दे, और तब आपको पता चलेगा कि आप बचे ही नही।

काटने का ढग आत्मघाती है, सुइसाइडल है। **रूपांतरण वास्तविक धर्म है।** सत रूपातरित करते है, जो भी उनके पास है। इस विराट अस्तित्व ने उन्हें जो भी दिया है, उसे वे सौभाग्य मानकर स्वीकार करते है। और उसमें जो छिपा है, उसे प्रकट करने की कोशिश करते हैं।

ऐसा किया जा सकता है अब। आदमी को हम सेक्स से बिलकुल मुक्त कर

सकते हैं वैज्ञानिक विधि से। अब कोई कठिनाई नहीं है। हम आदमी को बिलकुल क्रोधहीन कर सकते हैं वैज्ञानिक विधि से। क्योंकि क्रोध को पैदा होने के लिए कुछ रासायनिक तत्व जरूरी हैं। वे रासायनिक तत्व बहुत थोड़े से हैं। खून में से उनको बाहर निकाला जा सकता है। आप क्रोध नहीं कर पाएंगे फिर।

पावलव कुत्तो पर काम कर रहा था। उसने कुत्तों के भीतर जिन-जिन केमीकल से क्रोध जन्मता है, उनको अलग निकाल लिए। फिर कुत्ते को आप कितना ही मारें, तब कल जो शेर की तरह हमलावर था, वह आज बैठा रहेगा, पूछ हिलाता रहेगा। लेकिन उस कुत्ते के चेहरे से सब रौनक भी खो जाती है। उसकी आखें धूमिल हो जाती हैं। वह एक मशीन की भांति हो जाता है। जो क्रोध भी नहीं कर सकता, उसमें सब निस्तेज हो जाता है।

संत क्रोध को तेज बना लेते हैं। वह ऊर्जा है। इस जगत में सभी ऊर्जाएं हैं। उनका हम क्या उपयोग करते है, उनका महत्व इसपर निर्भर करता है। इस जगत की कोई ऊर्जा बुरी नहीं है, कोई ऊर्जा भली नहीं है, कोई शुभ नहीं हैं, कोई अशुभ नहीं है। इसलिए यह मत कहना कि काम-वासना पाप है, यह मत कहना कि क्रोध पाप है, यह मत कहना कि लोभ पाप है। इतना ही कहना कि लोभ ऊर्जा है, काम-वासना ऊर्जा है, क्रोध ऊर्जा है, शक्ति है। और इस शक्ति का उपयोग पाप हो सकता है, इस शक्ति का उपयोग पुण्य हो सकता है। शक्ति निष्पक्ष है। उपयोग करना आपकी चेतना पर निर्भर है। जो नासमझ हैं, वे शक्तियों से लड़ते हैं। और जो समझदार हैं, वे चेतना को रूपान्तरित करते हैं। और चेतना के रूपांतरण के साथ शक्तियां ऊपर उठती चली जाती हैं। और जिनको हमने कल नरक की लपटें समझ था, वे ही एक दिन स्वर्ग के फूल बन जाती है।

लाओत्से कहता है इसे ही प्रकाश का चुराना—इस ट्रांसफार्मेशन को। यह जो अंतर-रूपातरण है, इसको ही प्रकाश का चुराना कहते हैं। दिस इज कॉल्ड स्टीलिंग दि लाइट।

आज इतना ही। कीर्तन करें, और तब जाएं।

शिष्य होना बड़ी बात है

छप्पनवाँ प्रवचन
अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २१ अगस्त १९७२

अध्याय २७ : खंड २

प्रकाशोपलब्धि

इसलिए सज्जन दुर्जन का गुरु है;
और दुर्जन सज्जन के लिए सबक है।
जो न अपने गुरु को मूल्य देता है,
और न जिसे अपना सबक पसन्द है,
वह वही है जो दूर भटक गया है,
यद्यपि वह विद्वान हो सकता है।
यही सूक्ष्म व गुह्य रहस्य है।

Chepter 27 : part 2

ON STEALING THE LIGHT

Therefore the good man is the Teacher of the bad.
And the bad man is the lesson of the good.
He who neither values his teacher
Nor loves the lesson
Is one gone far astray,
Though he be learned.
Such is the subtle secret.

जीवन में ऐसा कुछ भी नही है जो उपयोगी न हो — वह चाहे अच्छा हो या बुरा। अच्छा और बुरा हमारी परिभाषाओ के कारण हैं। लेकिन अस्तित्व में उनकी अपनी अपरिहार्य जगह है। इसलिए जो जानते हैं, वे बुरे का भी उपयोग कर लेते हैं। और जो नही जानते, उनके लिए भला भी बाधा बन जाता है।

उपयोग समझ पर निर्भर है, वस्तुओ पर नही। नासमझ को मोक्ष में भी रख दिया जाए तो नरक का रास्ता खोज लेगा। समझदार को नरक भी मोक्ष का ही रास्ता बननेवाला है।

किसी ने पश्चिम के एक बहुत विचारशील आदमी ऐडमंड बर्क को एक बार पूछा कि तुम स्वर्ग जाना पसन्द करोगे या नरक? तो बर्क ने कहा, मैं जानना चाहूगा, सुकरात कहा हैं, बुद्ध कहा हैं, जीसस कहां हैं? **अगर वे नरक में है, तो मै नरक ही जाना पसन्द करूंगा।** अगर वे स्वर्ग में नही है तो स्वर्ग मेरे लिए नहीं हैं। जिस ने पूछा था, हैरान हुआ। उसने कहा, हम तो सोचते थे कि तुम बेशर्त स्वर्ग जाना चाहोगे। सभी बेशर्त स्वर्ग जाना चाहते हैं। लेकिन सुकरात, जीसस या बुद्ध नरक मे हो तो तुम नरक भी जाना चाहते हो, इसका कारण क्या है?

बर्क ने कहा, जीसस और बुद्ध और सुकरात जहां भी होंगे, **वहां स्वर्ग अब तक बन चुका होगा।** और जीसस और बुद्ध और सुकरात जहा नही होंगे, **वह स्वर्ग कभी** का उजड चुका होगा। वहा जाने का अब कोई अर्थ नही है।

व्यक्ति पर निर्भर करता है, स्थितियो पर नही। लोग अक्सर रोते है कि जीवन दुख है। और इसका हमे पता ही नही है कि वे ही उस दुखपूर्ण जीवन के कारण हैं। परिस्थितियो में नही हैं स्वर्ग और नरक, वे व्यक्तियों के भीतर छिपे हैं। परिस्थितिया केवल परदे बन जाती हैं, उन परदों पर जो भीतर छिपा है उसकी तस्वीरें चलने लगती हैं। लेकिन जो भी हम देखते हैं परिस्थिति मे, वह हमारा ही प्रक्षेपण है। हम ही परिस्थितियो में फैल कर दिखाई पडते हैं। परिस्थितिया दर्पण से ज्यादा नही हैं। फिर हम परिस्थितियो को दोष दिए जाते हैं। और परिस्थितियों को दोष देने से कभी कोई आदमी बदलता नहीं है। बल्कि परिस्थितियो को दोष देने के कारण बदलने की कोई जरूरत ही नही रह जाती।

लाओत्से कहता है, संतजन कुछ भी अस्वीकार नही करते हैं। जीवन उन्हें जो भी देता है, वह उसे बदलने की कीमिया जानते हैं। अस्वीकार तो वे करते हैं, जो उसे बदलने की कीमिया नही जानते। जिनको हमने बुरा कहा है, अशुभ कहा है,

पाप कहा है, सन्त उन्हे भी अस्वीकार नही करते हैं। क्योंकि उनके पास वह पारस है, जो उन्हें पुण्य बना देगा। उसके स्पर्श मात्र से वह जो जहर है, वह अमृत हो जाएगा।

हमे इसका खयाल ही नहीं है, फिर भी हम अमृत की तलाश करते है। हमें इसका खयाल ही नही है कि हमारे हाथ मे अमृत भी हो तो जहर के अतिरिक्त और कुछ हमें मिलने वाला नही है। **हमारे हाथ में वह कला है कि जहर अमृत हो जाए। या हमारे हाथ में वह कला है कि अमृत जहर हो जाए। हमें अपने हाथों का कुछ भी पता नहीं है। इन हाथों का पता चल जाना ही धर्म की सारभूत रहस्य-मय प्रक्रिया है।**

इस आधे सूत्र को हम समझें।

लाओत्से कहता है, इसलिए सज्जन दुर्जन का गुरु है। इसमें बहुत अड़चन न होगी। इसमें हमे बहुत कठिनाई न होगी कि जो शुभ है वह उसका गुरु हो जो अशुभ है; जो ज्ञानी है, वह उसका गुरु हो जो अज्ञानी है। और जो भटक गया है रास्ते से, वह उसे गुरु माने जो रास्ते पर है। जो प्रकाश है, वह अन्धेरे में भटके लोगो के लिए गुरु हो, यह हमारी समझ मे आ सकता है।

दूसरा हिस्सा है और दुर्जन सज्जन के लिए सबक है। देयरफॉर दि गुड मैन इज दि टीचर ऑफ दि बैड, एंड दि बैड मैन इस दि लेसन ऑफ दि गुड। लेकिन यह अधूरी है बात कि अच्छा आदमी बुरे का गुरु है। पूरी बात तो तभी होगी जब अच्छा आदमी यह भी समझ ले कि बुरा उसके लिए सबक है। इसका मतलब यह हुआ कि बुरा भी किसी गहरे अर्थ में अच्छे का गुरु हो गया।

लाओत्से जीवन के समस्त द्वंद्वों के बीच अद्वैत को खोजता है। तो यह कहना उचित न होगा, केवल यह कहना उचित न होगा कि बुरे लोगों ने बुद्ध को अपना गुरु माना। यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि बुरे लोग अगर न होते तो बुद्ध अच्छे नही हो सकते थे। उन बुरे लोगो की मौजदगी बुद्ध के लिए सबक बनी। उस बुरे लोगो का दुख, उन बुरे लोगो का नरक बुद्ध के लिए आनन्द की तलाश बना। अब यह बडे मजे की बात है कि बुद्ध तो भले होकर बुरे लोगो के गुरु बने; लेकिन बुद्ध जब बुद्ध नही थे, तब भी बुरे लोग उनके गुरु थे। बुरे लोगो से सीखा जाता है। और ध्यान रखें, **जो बुरे आदमियों से नहीं सीख सकेगा, वह खुद आदमी/ बुरा हो जाएगा।**

लेकिन बुरे आदमियो से सीखने के दो ढग है। एक तो है बुरे आदमी का अनुकरण करना। तब हमने अमृत को जहर बना लिया। **और दूसरा है बुरे आदमी को अनुभव करना, बुरे की पीड़ा, उसका दुख, उसका संताप अनुभव करना। और** तब यह सबक बन जाएगा और बुरे होने की संभावना क्षीण हो जाएगी। **तब हमने जहर को अमृत बना लिया।**

लेकिन हम भी बुरे आदमियों से सीखते हैं। सच तो यह है कि हम बुरे आदमियों से ही सीखते हैं। अच्छे आदमियो से हम कभी नही सीखते हैं। हम बुरे का ही अनुकरण करते हैं, अच्छे का अनुकरण कभी नही करते। लेकिन बुरे से जो हम सीखते है, वह उसकी बुराई है; वह उसका नरक नही, यह उसका पाप है। उस पाप की गर्त में पडी हुई जो पीडा है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती।

मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते है, फलां आदमी बेईमान है और इतना बड़ा मकान उसने खडा कर लिया! वह मकान उन्हें दिखाई पडता है। उस आदमी की बेईमानी का कोई नरक भी होगा, वह उन्हें दिखाई नही पडता। वह आदमी ज्यादा दिन तक बेईमानी से नही बच सकता है, जो आदमी कह रहा है कि फला आदमी बेईमान है, और देखते हैं, उसने कितना बडा मकान बना लिया! यह आदमी ज्यादा दिन तक बेईमानी से नहीं बच सकता है। उसने बेईमान आदमी से सीखना शुरू कर दिया। लोग कहते हैं, फलां आदमी पापी है और फिर भी प्रतिष्ठित है। जो यह कहता है, उस आदमी ने पाप कर लिया, यह कह के ही पाप कर लिया। क्योकि पाप में जो प्रतिष्ठा देखता है, वह ज्यादा दिन तक पाप से नहीं बच सकता है।

लेकिन पाप में कोई नरक भी आपने देखा है कभी? कभी आपने देखा है कि पापी आदमी भला प्रतिष्ठित हो, लेकिन उसके हृदय मे एक नासूर भी होता है?

यह आपको दिखाई नहीं पडता। बेईमान कितना ही सफल हो जाए, उसके भीतर सिवाय असफलता के कुछ भी नहीं होता है। और बेईमान कितने ही बड़े महल बना ले, उसके भीतर शांति से रहने की कोई संभावना उसे नहीं मिलती। लेकिन वह आपको नही दिखाई पड़ता है। आपको सदा दिखाई पड़ता है कि बुरा आदमी फायदा उठा रहा है। यह किस बात की खबर है?

आप भी सीखेंगे। आप सीखेंगे यह कि बुराई सफल होती है। आप सीखेंगे यह कि भलाई असफल होती है। आप सीखेंगे यह कि पाप की प्रतिष्ठा है, और पुण्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। आप यह सीखेंगे कि बुरे को स्वर्ग मिलता है और भला नरक में पडा रहता है। निश्चित ही इस शिक्षा का परिणाम होगा। आपका जीवन एक अनुकरण बनेगा।

लाओत्से भी कहता है, लेकिन वह कहता है कि बुरा आदमी अच्छे आदमी के लिए सबक है, पाठ है। लेकिन वह पाठ तभी हो सकता है, जब हम बुरे आदमी के अतस को समझना शुरू करें। एक बात तय है। जो आदमी बुराई करता है, बुरा करता है, वह भी मूल्य चुका रहा है। दुख का मूल्य चुका रहा है, ग्लानि का मूल्य चुका रहा है, आत्म-दंश की पीडा का मूल्य चुका रहा है। उसे भी कुछ मिलना चाहिए। अगर वह एक बडा मकान बना ले तो यह कोई सस्ता सौदा नहीं है। यह सौदा महंगा है। उसने जो खोया है, अगर हमें दिखाई पड़ जाए, तो जो

उसने पाया है, वह बहुत महगा सौदा मालूम पडेगा। लेकिन जो उसने खोया है, वह हमें दिखाई नही पडता। जो उसने पाया है, वही हमें दिखाई पडता है।

ठीक उससे ही जुडी हुई भूल हम दूसरी भी करते है। महावीर ने त्याग किया। बुद्ध ने घर छोडा। वहा भी हम देखते हैं कि उन्होने क्या छोड़ा। वहा भी हम को नही दिखाई पडता कि उन्होने क्या पाया। तो जैन अपने शास्त्रों में लिखते हैं कि महावीर के घर इतने रथ थे, इतने हाथी थे, इतने घोडे थे। एक-एक हिसाब उन्होने रखा हुआ है। इतने हीरे, इतने माणिक, इतने मोती, इतनी अरबो-अरबो की राशि थी, वह सब उन्होनें छोड दिया। इसको गिनने में भी उनको मजा आता होगा। इतना सब!

कही मन के कोने में जरूर कोई उनसे कहता होगा कि महावीर भी नासमझ रहे होगे। थोडी देर सोचे कि आप महावीर की जगह हो जाते तो यह भूल आप करनेवाले नही थे, जो महावीर ने की है। लेकिन महावीर ने क्या पाया, वह हमें दिखाई नही पड़ता है। इसलिए तो हम कहते है, महावीर महात्यागी है। अन्यथा हम कहते कि महावीर से परम भोगी जगत में दूसरे नही हुए। हमें वही दिखाई पडता है, जो उन्होने छोडा। इसलिए उसे हम त्याग कहते है। जो उन्होने पाया, वह हमें दिखाई नही पड़ता। नही तो हम उसे कहते परम भोग।

और तब हम कहते कि यह सौदा सस्ता हुआ। और महावीर हुशियार हैं, चालाक हैं और हम नासमझ है। क्योकि महावीर ने जो खोया, वह कुछ भी नही है। और जो पाया, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। इतने सस्ते में पाया। ससार खोकर अगर मोक्ष मिलता हो तो यह मुफ्त का सौदा है। और अगर वस्तुए खो कर आत्मा मिलती हो तो यह भी कोई त्याग है!

लेकिन हम कहते हैं, महात्यागी है। उसका कारण यह नही है कि महावीर महात्यागी हैं। उसका कारण है कि हमें दिखाई पडता है वही जो उन्होने छोडा। और वह दिखाई नही पडता जो उन्होने पाया। यह बडे मजे की बात है।

लेकिन जब कोई बेईमान आदमी मकान बना लेता है, तब हमे दिखाई पडता है वह जो उसने पाया। और हमें दिखाई नही पडता वह जो उसने खोया। ये एक ही तर्क के दो हिस्से है। यह होगा ही। जिस दिन हमें बेईमान का नरक दिखाई पड़ेगा, उसी दिन हमे महावीर का स्वर्ग दिखाई पड़ सकता है। उसके पहले नही दिखाई पड सकता।

हम भी सीखते हैं।

हम भी सीखते है। बेईमान से हम सीखते है कि वह सफल हो रहा है। और महावीर से हम सीखते हैं कितना कष्ट उठा रहे है, कितनी पीडा झेल रहे हैं। हम उनके चरणो में सिर झुकाते है, वह इसलिए नही कि उन्होने कुछ पाया; बल्कि इसलिए कि वे कितना कष्ट उठा रहे है, कितना दुख उठा रहे हैं। हम बेईमान को

भी नमस्कार करते हैं, महावीर से ज्यादा करते हैं। महावीर को तो कभी-कभी करते हैं। वह औपचारिक है। बेईमान को रोज करते हैं। वह भी हम बेईमान को नमस्कार इसलिए कर रहे हैं कि हमें दिखाई पड़ रहा है कि उसने क्या पाया। वह सब राशि हमें दिखाई पड़ रही है।

यह हमारा सीखने का ढंग है।

लाओत्से इस सीखने के लिए नहीं कह रहा है। वह कह रहा है कि जो गलत है, जो बुरा है, वह सज्जन के लिए सबक है। लेकिन यह सबक कठिन है। यह तो तभी हो सकता है, जब हम जीवन के अंतस-नियम के पर्तों में उतर जाए। और उस नियम को हम समझें तो शायद यह उतरना भी आसान हो जाएगा।

एक बात इस जगत में इस भाति तय है कि अब तक उसमें कोई परिवर्तन नही हो सका और कभी कोई परिवर्तन नही हो सकेगा। अगर हम पूरब की पूरी मनीषा की जो आत्यंतिक खोज है, उसको एक शब्द में रखना चाहे, तो वह खोज यह है कि **जो बुरा करता है, वह सुख पा नहीं सकता।** इसलिए नही नही पा सकता कि कोई भगवान उसको दण्ड देता है। इसलिए भी नही कि जब उसने बुरा किया है तो एक न्याय की व्यवस्था है जगत में, जो उसे फल देगी। इसलिए भी नही। और इसलिए भी नही कि जो आज बुरा कर है, वह कल कभी न कभी फल पाएगा। इसलिए भी नही। ये सब तो हमारे मन के समझावे हैं।

देखते तो हम यह हैं कि बुरा आदमी सफल होता है, धनी होता है, पद पर होता है, यश पा जाता है। तब हमारे मन को बड़ी बेचैनी होती है। दिखाई तो यह पडता है कि करता बुरा है और पाता अच्छा है। तो फिर हम सोचते हैं हमारे मन के कसोलेशन के लिए, सान्तवना के लिए कि कभी आज नही तो कभी, किसी जन्म में उसे फल भुगतना पड़ेगा।

लेकिन अगर आपको आज नहीं दिखाई पड रहा है कि उसके बुरे का फल उसे मिल गया है तो आप जो बातें कर रहे है, वे झूठी हैं। और सात्वना की हैं। उनका कोई जीवन के सत्य से सम्बन्ध नहीं है। अगर आपको ऐसा लगता है कि बुरा आज किया जाएगा और फल जन्मो-जन्मो में भुगता जाएगा तो आप सिर्फ अपने को समझा रहे हैं।

असल में आप ईर्ष्या से भरे हैं। आप जानते है, इस आदमी को बडा मकान मिल गया। मिलना नही चाहिए था। और इस आदमी ने इतना धन इकट्ठा कर लिया। और धन इतना इकट्ठा नही होना चाहिए था। यह धन तो आपको मिलना चाहिए था। यह मकान तो आपको मिलना चाहिए था। इस आदमी को मिल गया तो अब इस गणित को कैसे व्यवस्थित करे?

या तो आपको सारे धर्म को तिलाजलि देनी पडे और कहना पडे कि बुरा सफल होता है और जिसे सफल होना है, उसे बुरा होना चाहिए। लेकिन तब आपकी

पूरी चिन्तना की आधारशिला डगमगा जाएगी। चिन्तना तो यह कहती रही है, सुना हमने यही है कि बुरा जो करेगा, वह बुरा पाएगा। तब हम क्या करें ?

तब एक ही उपाय है। आज नहीं तो कल का भरोसा! इसे हम कहते हैं कि प्रभु के राज्य में देर हो सकती है, अंधेर नहीं। लेकिन देर भी क्यों होगी? देर से बड़ा अंधेर क्या हो सकता है ? वह हमारे मन को हम समझा रहे हैं कि कोई फिक्र नही, आज नही कल नरक में सड़ोगे। उससे हम को राहत मिलती है। पलड़ा बराबर हो जाता है। आज तुमने मकान बना लिया, कोई फिक्र नहीं; स्वर्ग में हम को मकान मिलेगा। नरक में तुम सड़ोगे। इसलिए जब भी कोई साधु पापियों के लिए नरक में सड़ने की व्यवस्थाएं देता है, तब समझना कि अभी भी ईर्ष्या छूटी नहीं है, जेलसी अभी काम कर रही है।

लेकिन यह नियम तो आत्यंतिक है कि **बुरा बुरा फल पाता है**। पाएगा नही, पाता है। **करने में ही पा जाता है**। इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें तो **हम सबक सीख सकेंगे**।

जब आप आग में हाथ डालते हैं, तब हाथ जल जाता है। कोई अगले जन्म का रास्ता नहीं देखना पड़ता है। आग तत्काल हाथ जला देती है। जहर अभी खाते है तो इसी जन्म में मरते हैं। अगले जन्म में नहीं मरेंगे। नियम तो ताकाल परिणाम ले आते हैं। जब आप क्रोध करते हैं, तब किसी नरक मे जलने की जरूरत नहीं है ? क्रोध में ही आप जलते हैं। **वही नरक है**।

जब एक आदमी बेईमानी करता है, तब मकान जिस भांति ऊंचा होता जाता है, उसी भांति उसकी आंतरिक आत्मा नीची होती चली जाती है, दीनता उसको पकड़ती चली जाती है। चोरी की सजा कोई अदालत नहीं दे सकती। और चोरी का दण्ड भी किसी परमात्मा के द्वारा दिये जाने की जरूरत नही है। वह जो चोर होने की चेतना है, उसमें ही मिल जाता है। हम एक कदम भी नही उठा सकते बिना परिणाम भुगते। और यह परिणाम कोई भविष्य की बात नही है। **वह कदम के साथ ही जुड़ा हुआ है**। यह उसी क्षण घटित हो रहा है।

इस जगत में कोई हिसाब रखनेवाला नहीं है। और इसलिए ध्यान रखना, क्योंकि कोई हिसाब रखनेवाला नही है, इसलिए रिश्वत काम नहीं पड़ सकती है, प्रार्थनाएं काम नही पड सकती हैं। इसलिए भगवान को कितना फुसलाओ, समझाओ, बुझाओ, कुछ काम नहीं पड सकता है। इस जगत में चूंकि कोई भी नियम विलम्बित नही है, प्रतिपल काम कर रहा है, इसलिए जो हम कर रहे हैं हम उसी क्षण भोग भी रहे हैं। करने और भोगने में अंतराल नही है। **कर्म और भोग साथ-साथ हैं**।

जब आप किसी पर दया करते हैं, तब उस दया के क्षण में जो प्राणों में एक सुगंध भीतर मालूम पड़ती है, **वह उसका फल है**। रास्ता मत देखिए किसी स्वर्ग

का। जब आप एक भूखे को रोटी दे देते हैं, या पानी पिला देते है, या बीमार के सिर पर हाथ फेर देते हैं, तब बीमार को ही राहत नही मिलती है। यह बड़े मजे की बात है कि बीमार को राहत अभी मिले और आपको राहत स्वर्ग मे मिले। बीमार को भी राहत मिलती है और आपको भी राहत मिलती है। वह राहत आपका पुण्य है। वह इसी वक्त पूरा हो गया।

इसके गहरे अर्थ हैं। इसकी निष्पत्ति है। पहली तो बात यह है कि अगर हम कर्म में ही फल को देख सकें तो हम बुरे आदमी से सबक ले सकते है। तब चाहे कितना ही बडा मकान हो, हम मकान के धोखे में नही आएंगे। तब चाहे कितनी ही धन की राशि चारो तरफ इकट्ठी हो, उसे झुठलाना पड़ेगी। हम बुरे आदमी के अंतस में झाक लेगे। क्योकि फल भविष्य मे होनेवाला नही है। फल अभी हो गया है। इसी क्षण हो गया है।

हिटलर ने इतने लोगो की हत्या की। लेकिन हिटलर कितने कष्ट से गुजरा, इसकी कोई बात नही होती है। हिटलर सो नही सकता है। क्योकि सोते ही उसे दु:स्वप्न घेर लेते हैं। इतने लोगों की हत्या! वे सब प्रेत-आत्माए, वे सब नर-ककाल, उसे घेर लेते हैं। उसके स्वप्न नरक हैं। वह सोने से डरने लगा है। सो नही सकता है। इतना भयभीत है। क्योंकि जिसने हिंसा की हो, वह भयभीत हो ही जाएगा। एक भी मित्र नही है हिटलर का। जो उसके निकटतम हैं, उनको भी वह शत्रु के ही भाव से देखता है। क्योंकि जिसने हिंसा की है, लोगो को धोखा दिया है, परेशान किया है, मारा है, उसे पूरे क्षण डर है। कही से भी बदला आ सकता है। वह पूरे समय भयभीत है। हिटलर की आत्मा भय से कँप रही है प्रतिपल।

कोई एक मित्र नही है जिसका, वह आदमी नरक में होगा ही। नरक मे और जाने की जरूरत नही है। शादी नही की उसने इसी भय से कि पत्नी इतने निकट होगी। और इतने निकट वह किसी को भी बर्दाश्त नही कर सकता। एक ही कमरे में सोएगी, क्या भरोसा रात उसका गला न दबा दें! जिसने हजारों लोगों के गले दबाए हो, वह यह नही मान सकता कि हजारो लोग उसके गले दबाने के लिए तैयारी मे नहीं हैं। कैसे मान सकता है? आप एक आदमी की हत्या करें तो फिर जिन्दगी भर उस आदमी को छाया आपका पीछा करती है। **हिटलर घिरा है अपनी हत्याओं से।**

और आखिरी क्षण बिलकुल पागल हो कर मरा है। उसके सामने, जहा वह छिपा है, उसके सामने बमबारी हो रही है। जर्मनी परास्त हो गया है। दुश्मन बर्लिन में खड़े हैं। हिटलर की खिडकियों में आ-आ कर गोलियां लग रही हैं। और जब उसका सेनापति आकर उसे खबर देता है, तब वह आज्ञा देता है अपने पहरे-दार को कि सेनापति को गिरफ्तार कर लिया जाए। मालूम होता है, यह दुश्मनो

से मिल गया है। हमारी सेनाएं तो जीतती चली जा रही हैं मास्को में। हिटलर आखिरी क्षण तक यह ही सोच रहा है कि हम जीत रहे हैं, लंदन और मास्को पर कब्जा हुआ जा रहा है। और जो उसे ठीक खबर देता है, उसको दुश्मन मानकर वह गोली मरवा देता है। आखिरी क्षण में भी जब उसके दरवाजे पर गोलियां लग रही हैं, तब भी वह मानने को तैयार नहीं हैं। वह बिलकुल विक्षिप्त हो गया है। तब भी वह रेडिओ से बोल रहा है कि हमारी फौजें जीत रही हैं और शीघ्र ही सारी दुनिया में जर्मन साम्राज्य स्थापित हो जाएगा। वह बिलकुल पागल हो गया है।

हिटलर के निजी डॉक्टर के वक्तव्य अब प्रकाशित हुए हैं, जिनमे उसने कहा है कि हिटलर पूरे समय पागल था। और पच्चीस तरह की बीमारियों से ग्रस्त था। बीमारिया कभी-कभी इतनी ज्यादा हो जाती थी कि वह बोलने में असमर्थ हो जाता था, बाहर निकलने में असमर्थ हो जाता था। और फिर उसकी एक प्रतिमा थी। तो कमजोर हालत में बाहर नही वह निकल सकता था। तो उसके डॉक्टर ने सस्मरणो में लिखा है कि हिटलर ने एक आदमी डबल, हिटलर की शकल का अपना डबल रख छोडा था। अक्सर तो वही सलामी लेता था फौजो की। हिटलर तो नहीं जा पाता था; क्योंकि उसकी हालत तो बहुत खराब थी। रात सो नही सकता था, दिन बैठ नही सकता था। एक क्षण कुर्सी पर एक करवट नही बैठ सकता था, इतना सब बेचैन हो गया था भीतर। दिन-रात दवाइया डालकर उसे किसी तरह जिन्दा रखा जा रहा था। और उसका डबल सलामिया ले रहा था।

यह बडे मजे की बात है। इन्ही सलामियो के लिए सब कुछ किया गया था। इन्ही सलामियो के लिए। मगर अखबार मे जिसके फोटो छप रहे थे, वे उसके डबल के फोटो थे। रेडियो पर जो बोल रहा था, टेलीविजन पर जो दिखाई दे रहा था, वह उसका डबल था। स्तालिन भी ठीक अपना डबल रखे हुए था। एक आदमी जो नाटक करनेवाला है, वह हिटलर का नाटक कर रहा है। यह बडी हैरानी की बात है। यह सारा आयोजन किस लिए था ? यह सारा आयोजन इसी सलामी के लिए था। लेकिन यह सारा आयोजन व्यर्थ हो गया है।

और यह आदमी नरक में सड़ रहा है। इसका रोआ-रोआ जल रहा है।

नहीं, कोई आगे भविष्य में नर्क नहीं है। हम जो करते हैं, वहीं, उसी क्षण हमें उसका सब कुछ मिल जाता है। भविष्य में नरक रख के हमने अपने को सांत्वना भी दी हैं। और हमने अपने लिए सुविधा भी बनाई है। उससे हमको ऐसा लगता है कि अभी अगर हम बुरा कर रहे हैं तो अभी तो फल मिलनेवाला नही है। देखेंगे। फिर हमने यह भी तरकीब निकाली है कि अगर बुरा किया है तो उसके वजन का ही कुछ भला कर दो तो वह कट जाएगा। लेकिन जिंदगी में कुछ भी कटता नही हैं। इस दूसरी बात को ठीक से समझ लें।

आप सोचते हों कि दो पैसे का बुरा किया तो अगर दो पैसे का भला कर देंगे तो पुराना बुरा किया हुआ कट जाएगा तो आप गलती में हैं। दो पैसे का बुरा करेंगे तो उतना बुरा आपको भोगना पड़ेगा। दो का भला करेंगे, उतना भला आपको भोगना पड़ेगा। जिंदगी में कटता कुछ भी नहीं है। **क्योंकि जिंदगी में दो क्षणों का मिलन कभी नहीं होता।** यह थोडा कठिन है, इसे समझ लें।

अभी मैं बुरा करता हू तो बुरा मुझे अभी भोग लेना पड़ता है। कल मैं भला करूगा तो कल मैं भला भोग लूगा। लेकिन आज और कल का कही मिलन नही होता है। जो बुरे का क्षण था, वह बीत गया। उसको अब काटा नहीं जा सकता है। **जो किया है उसे अनकिया नहीं किया जा सकता है।**

लेकिन इसने हमको तरकीब दे दी। भविष्य में मिलेगा फल, कर्म अभी फल दूर, तो बीच में समय का मौका मिलता है। उस समय में हम एडजस्टमेंट कर सकते हैं। उसमें हम कुछ इन्तजाम कर सकते है। यह ऐसा है, जैसे मैंने आग में हाथ डाला और अगर छह घटे बाद हाथ जलनेवाला हो तो इस बीच में बर्फ पर हाथ रखके हम उसे ठडा कर ले सकते हैं। बीच में अगर समय मिल जाए तो जो किया है उसको हम अनकिया कर सकते है। इसलिए भी हम कर्म को भविष्य के साथ जोडते हैं।

लेकिन कर्म हैं प्रतिपल फलदायी। तब बडी मुश्किल होगी। तब कोई छुटकारा नही है। और तब कोई बचा नही सकता। और बचने की कोई विधि भी नही बनाई जा सकती है। यही और अभी हम जो कुछ भी करते हैं, वह हम भोग लेते है। इसलिए हम सब जमीन पर भले रहते है, पर हम में से कुछ लोग नरक में रहते है, कुछ लोग स्वर्ग में रहते हैं, और कुछ लोग यही मुक्त भी होते हैं, मोक्ष में रहते हैं।

यह भी गणना ठीक नही है। एक ही आदमी सुबह स्वर्ग में होता है और दोपहर नरक में हो जाता है। और साझ मोक्ष में हो सकता है। और ऐसा जरूरी नही है कि दोपहर स्वर्ग में था, इसलिए साझ फिर नरक में नही हो जाएगा। एक एक क्षण हम थर्मामीटर के पारे की तरह स्वर्ग, नरक और मोक्ष में डोलते रहते हैं। जिंदगी गतिमान है, डायनमिक है।

अगर यह हमें खयाल में आ जाए तो फिर हम बुरे आदमी से बहुत कुछ सीख सकते हैं। वह सबक बन सकता है। हिटलर का जीवन पढ़ें, वह सबक बन सकता है।

लेकिन बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम जिनको सफल कहते है, उनके सच्चे जीवन हमें उपलब्ध नही होते। दुनिया में जिनको हमने सफल कहा है, बडे राजनीतिज्ञ हैं, बडे धनपति हैं, यशस्वी लोग हैं, उनका अगर हमें सच्चा जीवन मिल सके एक्सरेड--उसमें जरा जी बेईमानी न हो, सीधी एक्सरे की तरह पूरी तस्वीर

हो— तो इस दुनिया में बेईमान होना मुश्किल हो जाए, बुरा होना मुश्किल हो जाए। लेकिन जब एक आदमी सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते प्रधान मंत्री हो जाता है, तब उसकी जिंदगी के भीतरी दुख, पीड़ाए, चिन्ताएं, सब तिरोहित हो जाती हैं, और वह जो स्कूल के बच्चो के सामने मुस्कराकर तस्वीर उतरवाता है, वही तस्वीर हमारे सामने होती है। उसका भीतरी नरक हमें बिलकुल दिखाई पड़ना बन्द हो जाता है। उसकी सफलता की जो महिमा है, कागजी ही सही लेकिन काफी रंगीन, वह हमें घेर लेती है, अच्छादित कर लेती है। और हमारे प्राणो के कोनो में भी कही एक वासना उठती है कि हम व्यर्थ ही हो गए, हम भी ये सीढ़िया चढ़ सकते थे। और यदि चढ सकते हैं अभी भी तो कुछ तो कोशिश करें।

एच. जी वेल्स कहा करता था और ठीक कहा करता था कि अखबारों में एडवरटाइजमेंट को छोड़कर, विज्ञापन को बाद देकर और कोई चीज सच्ची नही होती है। और हम जानते हैं कि एडवरटाइजमेन्ट कितना सच्चा होता है। लेकिन वह ठीक कहता है। बाकी सब झूठ होता है। **हमारा इतिहास, हमारी किताबें, हमारी गाथाएं, सब झूठ है।** और वे सब हमारे भीतर एक भ्रम पैदा करती हैं। हम बुरे आदमी के पीछे चलने लगते हैं; उससे सबक नही ले पाते।

मनुष्य जाति का बडा कल्याण होगा उस दिन, जिस दिन हम बुरे आदमी की जिंदगी को पूरा खोलकर सामने रख सकेंगे। एक बुरे आदमी की जिंदगी बडा सबक हो सकती है।

एक भले आदमी को जिंदगी भी बडा सबक हो सकती है। लेकिन जब हम बुरे की जिंदगी ही नही खोल पाते, तब भले की जिंदगी खोलनी तो बहुत कठिन है। क्योकि बुरा तो जीता है छिछला, ऊपर-ऊपर। और उसकी जिदगी तक छिपी रह जाती है। फिर जो भला है, वह तो जीता है बहुत गहराइयो में, अतल गहराइयो में, सागर के बहुत नीचे। उसका तो हमसे कोई सम्बन्ध ही नही हो पाता।

ध्यान रखें, अगर बुरे को सबक बनाना है तो बुरे की जिदगी को उघाडे। कैसे उघाड पाएंगे?

दूसरे की जिंदगी को उघाड़ना बहुत बुरा है। **लेकिन आप में क्या बुराई कुछ कम है? वहीं से शुरू करें।** अपनी ही बुराई उघाडें। और अपनी ही बुराई के साथ जो छाया की तरह दुख और नरक चलते हैं, उन्हे खोजें। हम सभी कुछ न कुछ बुरा कर रहे हैं। उस बुरे में थोडा झाके और खोजें कि क्या मिला? **दुख के अतिरिक्त बुरे से कभी कुछ नहीं मिलता है।**

लेकिन हम क्षण में रुकते नही, हम आगे बढ़ जाते हैं। हम कभी खोज नहीं करते कि हमें क्या मिला। हमने जो किया, उस करने में क्या हुआ, उसका हम पूरा निरीक्षण नही करते हैं। आपने क्रोध किया। कभी आपने निरीक्षण किया? द्वार बन्द करके, क्रोध पर ध्यान किया है कि क्या हुआ? किसी को गाली दी, किसी

का अपमान किया। कभी द्वार बन्द करके निरीक्षण किया है कि क्या किया ?

नहीं, हम बहुत होशियार हैं। जब भी हम क्रोध करते हैं, तब हम दूसरे पर ध्यान करते हैं कि उसने क्या कहा था, जिसकी वजह से मैंने क्रोध किया। उसने क्या कहा था ? लेकिन हमने क्या किया, उसका हम निरीक्षण नही करते। दूसरे ने क्या किया, उसका हम निरीक्षण करते हैं। मजा यह है कि वह दूसरा भी आपने क्या किया, इसका निरीक्षण अपने घर पर कर रहा होगा। **और आप दोनों अपने से चूक आएंगे।**

आत्म-निरीक्षण का अर्थ है यह देखना कि मैंने क्या किया। आपने गाली दी, यह आपका काम था। इसका निरीक्षण करना मेरा जिम्मा नहीं है। इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका मैं निरीक्षण करना भी चाहूं तो कैसे करूंगा ? यह एक छोटी-सी गाली जो आपसे आई है, यह आपके पूरे जीवन का हिस्सा है। यह गाली आपकी पूरी जिन्दगी की कथा है। उस पूरी जिन्दगी के वृक्ष में यह गाली लगी है, एक कांटे की तरह। यह आज अचानक नही लग गई है। यह पूरा वृक्ष इसमें अन्तरनिहित है। मै इसका निरीक्षण कैसे कर पाऊंगा ? मैं निरीक्षण इतना ही कर सकता हूं कि इस गाली ने मेरे भीतर क्या किया। इस गाली के प्रतिकार में मेरे भीतर क्या हुआ ? इस गाली ने मुझे क्यो बदल डाला ? इस एक गाली ने मेरी मुस्कराहट को राख क्यो कर दिया ? इस एक गाली ने मेरे भीतर खिले हुए सब फूल क्यो जला डाले ? इस एक गाली ने मेरा सारा रुख क्यों बदल दिया ? इस एक गाली के कारण मैं जो भला आदमी था, अचानक शैतान क्यो बन गया ? और इस गाली से मेरे भीतर क्या हो रहा है, जो क्रोध उठ रहा है, जो आग उठ रही है, जो जलन मेरे रोए-रोए मे फैलती जा रही है, जो हिंसा मेरे भीतर भभक रही है, वह क्या है ?

अगर आप द्वार बन्द कर लें तब, जब आपको कोई गाली दे और उस आदमी को भूल जाए और जो आपके भीतर हो रहा है, उसका निरीक्षण कर लें तो आप बुरे आदमी के भीतर प्रवेश करने की कला समझ जाएगे। **बुरा आदमी दूसरा नहीं है, बुरा आदमी आप ही हैं।** और जिस दिन आप अपने क्रोध को और उसकी पीडा को जान लेंगे, अपने पाप को और उसके दंश को जान लेंगे, उस दिन फिर इस भूल मे कभी न पडेंगे कि **कोई दूसरा आदमी क्रोध करके जीवन में आनन्द पा सकता है।** इस भूल मे फिर आप न पड़ेंगे। फिर आप यह न सोच सकेंगे कि कोई आदमी दूसरो को दुख पहुंचा के, पीड़ा पहुचा के सुख पा सकता है। इस भ्रांति के लिए फिर कोई उपाय नही है।

इस आत्म-निरीक्षण से हम बुरे आदमी के भीतर भी देखने में समर्थ हो जाते हैं।

बुद्ध का चचेरा भाई है एक। बुद्ध और वह, दोनो साथ खेले और बड़े हुए। तो जिनके साथ हम खेले और बड़े हुए हैं, वे कभी हम से बड़े हो सकते हैं, यह

मानने के लिए अहंकार कभी राजी नहीं होता है। देवदत्त बुद्ध के साथ बड़ा हुआ है। उसने कभी खेल में बुद्ध को गिराया भी, उनकी छाती पर भी सवार हुआ। और कभी वह बुद्ध से हारा भी।

फिर अचानक बुद्ध का शिखर ऊपर उठता चला गया। लाखों लोग बुद्ध के चरणों में सिर रखने लगे। देवदत्त की पीडा हम समझ सकते हैं। देवदत्त ने बुद्ध की हत्या के बड़े उपाय किए। बुद्ध एक शिला पर बैठ कर ध्यान करते हैं। देवदत्त एक बड़ी चट्टान पहाड से सरकवा देता है। वह चट्टान सरकती हुई जब बुद्ध के पास से गुजरती है, तब बुद्ध बाल-बाल बच जाते हैं। बुद्ध का एक शिष्य बुद्ध से कहता है : यह दुष्ट देवदत्त!

बुद्ध कहते हैं : रुको, रुको! तुम भी अपने भीतर उसके खिलाफ चट्टान सरकाने लगे। दुष्ट क्यो ? जो उससे हो सकता है, वह कर रहा है। **यह धार्मिक आदमी की स्वीकृति है** . जो उससे हो सकता है, वह कर रहा है। और जो उससे नही हो सकता, उसकी अपेक्षा करने का कारण भी क्या है ? बुद्ध उस भिक्षु से कहते हैं कि भिक्षु, तू भी अगर मेरे साथ खेला और बड़ा हुआ होता, तो शायद ऐसा ही कुछ करता। देवदत्त की पीड़ा का तुम्हे पता नही है। क्योकि बहुत पीडा मे होगा, तभी कोई आदमी ऐसी चट्टान सरकाने का श्रम लेता है।

इस आदमी को ध्यानी कह सकते है हम। क्योकि यह आदमी, देवदत्त क्या कर रहा है, इस पर फिक्र नही करता, इसके भीतर क्या हो रहा है, वह इसकी ही फिक्र करता है।

बुद्ध आख बन्द कर लेते हैं। वह चट्टान सरकती नीचे के खड्डो मे चली जाती है शोर करती हुई। और बुद्ध आख बन्द किये रहते हैं। घडी भर बाद भिक्षु फिर पूछता है, आप क्या सोच रहे है ? बुद्ध कहते है मैं अपने भीतर देख रहा हू कि देवदत्त ने जो किया, उससे मेरे भीतर क्या होता है। अगर कुछ भी होता है मेरे भीतर तो चट्टान से मै बच नही पाया। चोट लग गई। अगर जरा सी भी खरोच मेरे भीतर आती है तो देवदत्त सफल हो गया। यही वह चाहता है। अगर मै भी चट्टान लेकर उस पर दौड़ू और उसके ऊपर चट्टान फेंक दू तो उसकी सारी पीडा मिट जाएगी। यही वह चाहता है। समझ जाएगा कि ठीक है, कोई गडबड नही है। उसकी फिर कोई ईर्ष्या नही रह जाएगी। उसकी ईर्ष्या यही है, उसकी तकलीफ यही है।

बुद्ध के रास्ते पर, बुद्ध जहा से गुजर रहे है, देवदत्त एक पागल हाथी छोड़ देता है। अब तो यह बात कथा जैसी लगती है। लेकिन कथा नही है और आज नही कल, विज्ञान इसकी गहराइयो मे उतर जाएगा। और यह कथा नही रह जाएगी। पागल हाथी बुद्ध के पास आता है और चरणों में सिर झुकाकर खडा हो जाता है। वह पागल था। लगता है, कहानी है। क्योकि पागल हाथी क्या फिक्र करेगा बुद्ध

की ? और पागल हाथी को क्या अंतर पड़ता है कि कौन-कौन है ? पागल हाथी तो पागल ही होगा । मगर इसमें थोड़ा सा फर्क है ।

पागल आदमी अगर होता तो शायद बुद्ध की फिक्र न भी करता । क्योंकि आदमी से ज्यादा पागल होनेवाला जानवर जमीन पर दूसरा नही है । पागल हाथी कितना ही पागल हो, फिर भी पागल आदमी जैसा पागल नही होता । और जानवरों के पास एक अन्तःप्रज्ञा होती है । बुद्धि तो उनकी नहीं काम करती, लेकिन उनका हृदय सस्पर्शित होता है ।

अब वैज्ञानिक भी, विशेषकर जो साइकिक रिसर्च पर काम कर रहे हैं पश्चिम में, कहते है कि जब कोई आदमी बिलकुल शांत होता है, तब उससे एक खास तरह की तरंगें उसके चारो तरफ फैलनी शुरू हो जाती हैं । आप से भी तरंगे फैल रही हैं । सभी से तरगे फैल रही है । हर आदमी तरंगों में जी रहा है । और हर आदमी प्रतिपल एक झील है गहरी, जिसमें तरँगें उठ रही हैं । जब आपके भीतर क्रोध उठता है, तब आपके बाहर क्रोध की तरँगें फैलनी शुरू हो जाती हैं । और जरूरी नही है कि आप नाराज हो और चिल्लाए और चीखें, तब ही तरगें फैलें । जब आप नहीं भी चीखते, नही भी चिल्लाते, बाहर कुछ प्रकट नही होता, तब भी आपके भीतर से तरगे बाहर फैलनी शुरू हो जाती हैं । जिस आदमी ने क्रोध प्रकट नही किया हो, उसके आसपास भी क्रोध की हवा पैदा हो जाती है । जो आदमी कामातुर हो गया हो, और कही प्रकट न कर रहा हो कि कामवासना भीतर भर गई है, तो भी तरगें चारो तरफ कामातुर हो जाती हैं ।

और अब तो वैज्ञानिको के पास उपाय है जाचने के । क्योंकि यत्र है. जिन पर ये तरगे अंकित हो जाती हैं कि आदमी इस वक्त कैसी हालत में है । और न केवल इतना, बल्कि अभी एक बहुत अनूठा प्रयोग हुआ है जो कि भविष्य की धार्मिक साधना के लिए बडे काम का होगा । वह है एक छोटे से यंत्र की ईजाद, जिसमें बटन दबाते ही आप, अपने मस्तिष्क में कैसी तरगे चल रही है, उनका ग्राफ देख सकते है । वह ग्राफ आपको सामने पर्दे पर दिखाई पड़ने लगता है ।

आपके मस्तिष्क से एक इलैक्ट्रोड, एक बिजली का तार जुडा होता है यंत्र में । आपने ऑन किया यत्र और वह आपके मस्तिष्क में कैसे तरंगे चल रही हैं, यह बताना शुरू कर देता है । यंत्र पर निशान लगे हुए हैं कि अगर इतनी तरगे चल रही हैं तो आपका मन अशात है, इतनी चल रही है तो कम अशांत हैं, इतनी चल रही है तो शात है, इतनी चल रही है तो बिलकुल शात है, इतनी चल रही हैं तो आप बिलकुल शून्य हो गए है ।

और जब आप देखते है कि बहुत अशांत किरणें चल रही है, तब बड़े मजे की बात यह है कि देखते से ही किरणें नीचे गिरनी शुरू हो जाती है । क्योंकि जैसे ही आदमी सजग होता है कि अशात है, वह शांत होना चाहता है । वह खयाल ही कि

हमें शात होना चाहिए, तत्काल किरणों को नीचे गिरा देता है। उस ग्राफ को वे कहते है फीड-बैक। क्योंकि उसे देखने से आपको तत्काल खयाल आता हैं कि यह तो ठीक नही हो रहा है। और उसका परिणाम आना शुरू हो जाता है। ध्यान के लिए इस यंत्र का बडा परिणाम होगा। क्योंकि तब आप सामने ही देख सकते हैं कि क्या हो रहा है। और न केवल देख सकते हैं, बल्कि जो आप देखेंगे, तत्काल उस पर आपकी प्रतिक्रिया होगी और उसका परिणाम होगा।

और जैसे ही कोई आदमी बिलकुल शाति के करीब पहुचता है और ग्राफ खबर देता है कि मन बिलकुल शांत हो गया, वह एकदम से कहता है कि मन बिलकुल शांत हो गया है, वैसे ही अशाति शुरू हो जाती है। क्योकि यह भी अशांत खयाल है। यह भी एक तरग हो गई। तत्काल मन की शाति खो जाती हैं। तरगें उठनी शुरू हो जाती हैं।

ये तरगें पशु हमसे ज्यादा सक्षम हैं पकडने में। आदमी बहुत सवेदनहीन हो गया है। पशु ज्यादा सवेदनशील हैं। पशु हम से ज्यादा सवेदनशील है। वैज्ञानिक बहुत चिन्तित रहे हैं सदा से एक बात पर। कुत्ते हैं, बिल्लिया हैं। ऐसी बिल्लिया है जिनको कि हवाई जहाज से ले जाकर दूर जगलो में छोड दिया गया है। रास्ते का उन्हें कोई पता नही कि उनका घर कहा है। और वे सीधी घर की तरफ चल पडती हैं। सीधी। ऐसा नही कि उनको रास्ता खोजना पडता हो। उनको छोडा है बन्द बोरिए से निकाल कर, उनकी आख को पट्टी खोली है और वह चल पडी स्ट्रेट। इस जगह उन्हे कभी नही लाया गया था। और इस जगह हवाई जहाज से लाया गया है। आख पर पट्टी बधी हुई है। कोई रास्ते का उसे पता नही है। लेकिन फिर यह घर की तरफ चलना कैसे हो जाता है? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि बिल्लियो को जरूर ही कुछ सवेदनाए हैं, कुछ तरगो का अनुभव है, जो हमे नही है। उनके आधार पर उनका चलना शुरू हो जाता है।

एक वैज्ञानिक के घर में सरकार उसके खिलाफ कुछ जासूसी कर रही थी। शक था उस मुल्क की सरकार को कि वह वैज्ञानिक किन्ही दूसरे मुल्को से जुडा हुआ है। उसके घर मे चोरी से एक टेप रिकॉर्डर छिपा दिया गया था। एक जरा-सा यत्र एक कोने में, दीवार में छिपा हुआ था। वैज्ञानिक घर आया, तब उसके कुत्ते ने आते से ही उस कोने की तरफ मुह करके भोकना शुरू कर दिया। वैज्ञानिक बहुत परेशान हुआ, कुत्ते को डॉटा-डपटा; लेकिन वह मानने को राजी नही हुआ। वह छलाग लगाए, कोने में जाए और शोरगुल करे। खोज की गई तो पाया गया कि वहा कोई यत्र छिपाया गया है।

वह वैज्ञानिक ध्वनि पर काम कर रहा था। वह बड़ा हैरान हुआ। खोज करने से क्या पता चला? जैसे यह माईक है, मैं इससे बोल रहा हूं, तो यह माईक मेरी आवाज को खीच रहा है। तब माईक के पास छोटा-सा वैक्यूअम निर्मित हो जाता

है, क्योंकि वह आवाज को खीचता है, सक करता है । उस कुत्ते को उस वैक्यूअम का अनुभव हुआ, इसलिए वह भोंका । फिर तो उस कुत्ते पर बहुत प्रयोग किये गए । सूक्ष्मतम भी तरगो का वैक्यूअम पैदा हो तो उसका कुत्ते को पता चल जाता था ।

अब तो जो साइकिक रिसर्च करते है, वे लोग वही कहते हैं जो कि हिन्दुस्तान के गांवों में ग्रामीण लोग कहते हैं । लेकिन वे ग्रामीण हैं, अन्धविश्वासी हैं ! उनकी कोई मानने को राजी नही है कि **कुत्ते जब रात अचानक भोंकने लगें, तब समझना चाहिए कि किसी की मृत्यु हो गई, या मृत्यु होने के करीब है ।** अब वैज्ञानिक आधारो पर भी ऐसा मालूम पडता है कि जब किसी शरीर से आत्मा छूटती है, तब जो तरगो का आघात चारो तरफ पैदा होता है, कुत्ते उसके लिए सवेदनशील हैं । और उनको लगता है कि कुछ हो रहा है, जो बेचैनी का है, बहुत बेचैनी का ।

तो कुछ हैरानी की बात नही है कि पागल हाथी बुद्ध के पास आके अचानक उनकी तरगो की छाया मे शात हो गया हो । देवदत्त बहुत परेशान हुआ; क्योकि पागल हाथी से यह आशा न थी । पत्थर चूक गया, यह सयोग था । पागल हाथी, और जाकर उसने चरणो मे सिर रख दिया ! तब तो उसकी बेचैनी और बढ गई ।

बुद्ध ने कहा कि हाथी को भी समझ आ गई जो पागल था, लेकिन देवदत्त को कब समझ आएगी ?

आदमी सीखता ही नही है । और सीखता है तो गलत सीखता है । देवदत्त इतना ही समझा है कि हमने गलत समझा कि हाथी पागल था । हाथी पागल नही था । हमारी भ्राति थी कि हमने समझा हाथी पागल था । हाथी पागल नही था । इतना ही सीखा । दूसरे पागल हाथी की तलाश उसने जारी रखी । हम ऐसे ही सीखते हैं ।

लाओत्से कहता है सज्जन दुर्जन का गुरु है और दुर्जन सज्जन के लिए सबक है । और जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसन्द है, वह वही है जो दूर भटक गया है -- यद्यपि वह विद्वान हो सकता है ।

जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसन्द है, ... ।

ध्यान रखें, जब एक बुरे आदमी से आप कुछ सीखते है, तब आपको अनुग्रहित होना चाहिए । जिससे आपने कुछ सीखा है, उसका अनुग्रहीत होना चाहिए । बुरे आदमी से भी । लेकिन बुरे आदमी मे अनुग्रहित होने की तो बात दूर है, हम जब भले आदमी से भी कुछ सीखते हैं, तो अनुग्रह नही मानते ।

असल में हमें यह खयाल ही दुख देता है कि हमने और सीखा ! हम और सीखे ! सीखना अहंकार के लिए बड़ी चोट है । **इस जगत में शिष्य होने से अधिक कठिन शायद ही और कोई चीज हो** । हम कहेंगे, क्या है इसमें, शिष्य होने में

क्या तकलीफ है ? लेकिन जरूर बहुत कठिन है। क्योंकि उसका अर्थ ही यह मानना है कि मै नही जानता हू । यह शुरुआत है। और ऐसा कोई आदमी मानने को तैयार नहीं है कि मैं नहीं जानता हूं । हम सभी जानते हैं ? अगर हम कभी किसी से अनुग्रह भी प्रकट करते हैं तो हमारे शब्द बड़े मजेदार होते हैं।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं। उनकी बातें बड़ी मजेदार होती हैं । एक सज्जन आके अक्सर कहते हैं कि आपने जो कहा, वह बिलकुल मेरा ही खयाल है। सिर्फ यह है कि मै उसे कहने में कुशल नही हू, और आपने कहा। एक दूसरे सज्जन आते है, वे अक्सर कहते हैं कि आपकी बातो से, जो मैं पहले से ही मानता हू, उसे इतनी पुष्टि मिलती है, जिसका कोई हिसाब नहीं । ऊपर से देखने पर लगेगा कि इसमें कुछ भी भूल-चूक नही है। लेकिन, वस्तुतः यह मित्र यह कह रहे हैं कि सीखने को कही कुछ भी नही है । जो भी सीखने को है, उनके पास है।

और यह जो वृत्ति है, यह व्यक्तियो तक ही सीमित नही है। यह समूह मे फैल जाती है, जातियो में फैल जाती है। हमारे मुल्क में यह वृत्ति बहुत गहन है। हमारे मुल्क में इतनी जडता की तरह फैल गई है यह कि अगर पश्चिम में कोई भी विज्ञान की नई ईजाद होती है तो हमारा मुल्क कभी यह नही कह पाता कि यह कोई नई खोज है। हम यह नही कह पाते । हम फौरन अपनी किताबें उलटने लगते हैं और खोजने लगते है कि कही से कोई भी तोड-मरोड के भी हम कह सके कि हमारी किताब में तो पहले से मौजूद है । और बडा मजा यह है कि इस किताब को उसके पहले हमने कभी नही खोला था। और इसके पहले हम कभी नही बता सके कि उसमे क्या मौजूद है । हम यह बताने में इतने कुशल हो गए है कि दुनिया में कही कुछ हो ही नही सकता जो हमारे वेद में मौजूद न हो। कुछ भी कर ले दुनिया, हम फौरन बता देंगे कि यह देखो ! हम मतलब बदल लेंगे। हम शब्दो को तोड लेंगे। हम शब्दो पर जबरदस्ती कलमे बिठा देंगे अर्थों को। और हम तोड-मरोड के सिद्ध कर देंगे कि यह तो हमारे देश मे पहले से लिखा हुआ है।

क्या कारण है ?

हम को वहम हो गया है कि हम जगत-गुरु हैं। और जो जगत-गुरु हैं, वे शिष्य तो हो ही नही सकते। हम जगत में कुछ सीख तो सकते ही नहीं हैं। और यह भाव एक कौम को ही हो गया हो, ऐसा नही है। हमारी कौम जगत-गुरुओ की कौम है, इसमे हर आदमी जगत-गुरु है।

सीखने की क्षमता हमने खो दी, वही हमारा पाप है। हम अगर पांच हजार साल में इंच भर आगे नही सरके तो उसका कारण है कि हमने सीखने की क्षमता खो दी। सीखने की क्षमता इस विनम्रता से शुरू होती है कि हमें पता नही है।

लेकिन हम इतने बेईमान हैं कि हमें पता नही है इसकी तो कोई फिक्र नहीं है,

लेकिन जब किसी को पता होगा तो हम कहेंगे कि यह तो हमें पहले से पता था। यह बड़े मजे की बात होती कि विज्ञान मे अभी सौ साल आगे क्या होगा, हम उसकी एक-आध खोज करके अपने शास्त्रो से कभी बता पाते। हम कभी नहीं बता पाते हैं। साइकल बनाना हमारे शास्त्र से मुश्किल है, लेकिन हवाई जहाज हमारे शास्त्र में है। हवाई जहाज था या नही, यह बहुत मूल्य की बात नहीं है। लेकिन वृत्ति विचारणीय है। और यह वृत्ति हिस्सा बन गई है हमारी सामूहिक चेतना का। कोई आदमी सीखने को राजी नही है।

सीखने का भाव पैदा ही तब होता है, जब कोई यह स्वीकार करता है कि मुझे पता नहीं है। और तब तो बुरे आदमी से भी जो सबक मिलता है, उसका भी अनुग्रह मन में रह जाता है। तब तो जिन्हे गड्ढे में गिरे देखकर हम गड्ढे मे गिरने से बच गए, वे भी हमारे गुरु हैं।

जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसन्द है, वह वही है जो दूर भटक गया है। क्यो दूर भटक गया है ?

क्योंकि जिसकी सीखने की क्षमता ही खो गई, उसके लिए उपाय नही है। जिसने सीखना ही छोड़ दिया है, अब उसके भटकने का क्या हिसाब लगाए ? भटकन कम हो सकती है, अगर सीखने की क्षमता मौजूद हो। लाख कोस दूर भटक गया हू, लेकिन सीखने की क्षमता अगर मौजूद है, तो वापस लौट सकता हूं। लेकिन इच भर दूर हू मजिल के, और सीखने की क्षमता नही है, तो भी वापस नही लौट सकता। लौटने की यात्रा तो सीखने पर निर्भर होगी।

मेरी समझ है कि पश्चिम हमसे ज्यादा धार्मिक हो सकता है। उसकी सीखने की क्षमता निश्छल है, ताजा है, निर्दोष है। हम बडी अडचन मे हैं। अगर पश्चिम का बडे से बडा विचारक सीखना चाहता है, तो गवार से गवार आदमी के पास भी बैठ जाएगा सीखने के लिए। इसकी फिक्र छोड देगा कि मैं किससे सीख रहा हू।

पश्चिम से लोग आते है। पश्चिम से पिछले पचास वर्षो मे वहा के कुछ विचारशील लोग भी पूरब की तरफ आए। और कई बार ऐसा हुआ है कि जाने-अनजाने वे ऐसे लोगो के चरणो मे भी बैठ गए हैं, जिनको खुद भी कुछ पता नही है। खोज है, इसलिए कई बार जरूरी नही है कि आप ठीक आदमी के पास पहुच जाए। उनका श्रेष्ठतम विचारक भी हमारे गंवार से गवार साधु के चरणो में बैठ जाएगा —सीखना है—और इस भाति सीखेगा कि अपनी सारी जानकारी, अपनी सारी समझ एक तरफ रख देगा। क्योकि उसे बाधा नही बनानी है।

लेकिन हम बहुत मजेदार हैं। हमारे नासमझ से नासमझ आदमी ने भी सीखने की क्षमता खो दी है। क्या हुआ है ? क्या कारण गहन हो गया है भीतर हमारे ?

दो बातें हुई हैं। एक तो जीवन के सम्बन्ध मे जो शब्द हैं, वे हमे कंठाग्र हो

गए हैं। शब्द ही बीच में आ जाता है और पता लगता है कि हमें मालूम था। फिर और भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और दूसरी बात, पाच हजार वर्षों में हम इतने दीन-हीन हो गए हैं कि अगर हम अब यह भी मानें कि हमें ज्ञान भी नहीं है अध्यात्म का तो फिर हमारे अहंकार के लिए कोई सहारा ही नही रह जाता है। एक ही सहारा बचा है। बाकी तो सब सहारे टूट गए हैं। हमारे पास और तो कोई बल नही है, जिसको हम अपना कह सके। मगर एक तो हम बात चलाए ही रख सकते हैं कि हम आध्यात्मिक हैं। सारी ग्लानि को भुलाने के लिए हमें एक ही सहारा बचा है कि हम अपने को आध्यात्मिक कहे चले जा रहे हैं।

लेकिन मजा यह है कि उसके कारण हम भीतरी रूप से भी दीन होते चले जा रहे हैं। क्योंकि अब खोज भी नही कर पाते हैं। जब मालूम है, तब खोज का कोई उपाय न रहा। जब हम पहुच ही गए हैं, तब चलने की कोई बात ही नही रही।

लाओत्से कहता है, जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसद है, वह वही है, जो दूर भटक गया है—यद्यपि वह विद्वान हो सकता है। विद्वान होना एक बात है। उतना कठिन नहीं है, जितना शिष्य होना कठिन है। सीखना जितना कठिन है, उतना विद्वान होना नही है। पर विद्वान का क्या मतलब? क्योकि हम तो सोचते हैं, जो आदमी सीखता है, वह विद्वान होता है। **नहीं, जो आदमी सीखने से बचने की तरकीबें करता है, वह विद्वान हो जाता है।** जो आदमी बिना सीखे सीखने की आयोजना कर लेता है, वह आदमी विद्वान हो जाता है। जो आदमी सत्य को बिना जाने शब्दो का सग्रह कर लेता है, वह आदमी विद्वान हो जाता है। जो आदमी गुरु से डरता है, लेकिन शास्त्र को पचा जाता है, वह आदमी विद्वान हो जाता है। शास्त्र बाजार में मिल जाते हैं। शास्त्र पर कोई अनुग्रह की जरूरत भी नही है।

यह एक मजेदार मामला है। लाओत्से की किताब पढना आसान है, **लेकिन लाओत्से के पास क्षण भर बैठना मुश्किल हो जाएगा।** बुद्ध की किताब बाचने मे क्या अड़चन है? पढी और एक कोने मे फेंक दी। इतना आसान बुद्ध के पास जाना नही होगा। और बुद्ध के पास जाके बुद्ध को फिर कोने में कभी नही फेंका जा सकता है। बुद्ध की किताब पढो तो कुछ करना नही पडता है। शब्द सीधे भीतर चले जाते हैं और खून मे मिल जाते हैं। **बुद्ध के पास जाओ तो पूरी जिंदगी बदलनी पड़ेगी।** बुद्ध तोड देंगे पूरा। पुराना सारा ढाचा तोडेगे। एक-एक, अग-अग, पसली-पसली अलग कर देंगे। फिर नया आदमी निर्मित करेंगे। वह जरा जटिल और कठिन मामला है।

लेकिन बुद्ध के जो शब्द हैं, वे उन्ही के काम के हैं, जो उतना टूटने, मरने और नया जीवन पाने के लिए तैयार हैं। ये शब्द उन्हीं के काम के हैं।

इसलिए कभी-कभी आश्चर्य लगता है। धम्मपद पढो, बुद्ध के वचन पढो, तो कभी-कभी हैरानी होती है कि क्या इन्ही वचनो के कारण यह आदमी इतना बड़ा था। ये वचन तो साधारण हैं। इन वचनों के कारण यह आदमी बड़ा नहीं था। ये वचन तो सिर्फ रास्ते पर छूट गया कचरा है। जिस रास्ते से आदमी गुजरा था, उस रास्ते पर छूट गई थोड़ी सी खबरें हैं। क्या ये इतने शब्द इतने क्रांतिकारी रहे होंगे। **वह क्रांति तो है व्यक्ति के बदलने में, शब्दों में नहीं।** और जब व्यक्ति बदलता है और शब्द अनुभव बनता है, **तब पता चलता है।**

इसलिए इस मुल्क में हमने बहुत जोर दिया था गुरु पर। अतिशय जोर दिया था गुरु पर। यह थोडा समझ लेने जैसा है। हमारा जोर इतना था गुरु पर कि सम्भवत: पृथ्वी पर किसी कौम का कभी भी नही रहा। लेकिन थोडी भूल हो गई।

गुरु पर जोर सिर्फ इसलिए था, ताकि आप शिष्य हो सकें। गुरु पर जोर इसलिए था। हमने गुरु को आसमान पर बिठाया था। **उसे हमने सारी भगवत्ता दे दी थी।** कबीर ने यहां तक कहा कि 'गुरु गोविन्द दोई खड़े, काको लागू पाय' दोनो खडे हैं सामने, गुरु भी और गोविन्द भी, किसके पैर लगूं ? 'बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय।' फिर गुरु के ही पैर लग गया; क्योंकि उसके ही कारण गोविन्द का पता चला। हैरानी की बात है ! खुद भगवान खडा हो और गुरु खड़ा हो तो कबीर कहते हैं, गुरु के ही पैर में गिरा। क्योंकि गुरु के बिना वह भगवान नही बताया जा सकता था। **इसीलिए भगवान नम्बर दो है।**

इतना हमने गुरु को ऊपर रखा था। उसका प्रयोजन था, ताकि आप शिष्य हो सके। लेकिन हम बडे होशियार लोग है। हमने सोचा, जब गुरु इतने ऊपर हैं, तब हम गुरु ही क्यो न हो जाए ? इसलिए मुल्क में गुरु ही गुरु हो गए।

मैंने सुना है, एक गांव में कुछ लोग दान मागने गए। एक मकान को सदा दान मागनेवाले छोड देते थे। वह गाव के सब से बड़े धनपति का मकान था। पर अति कृपण था वह। और कभी वहा से किसी को दान नही मिला था। लेकिन हालत बुरी थी, अकाल था। और लोगों ने सोचा, शायद ऐसे क्षण में उसको दया आ जाए। और अस्थि-पजर गाव में पड़े थे। और लोगो को भोजन नही था। शायद उसको दया आ जाए ! सोचा कि वर्षों से गए भी नहीं हैं, एक कोशिश करें। फिर आदमी बदल भी जाता है। और ज्यादा से ज्यादा इन्कार ही होगा। इससे ज्यादा क्या हो सकता है ? तो वे भीतर गए।

उन्होने बहुत समझायी सारी हालत। अकाल की हालत सुनाने पर उन्हे ऐसा लगने लगा कि कृपण पिघल रहा हे। और उन्हें ऐसा लगा कि कृपण की आखों में रौनक आ रही है। और उन्हें लगा कि आज तो कुछ न कुछ जरूर मिलेगा। आखिर कृपण इतना प्रसन्न हो गया है ! और उसने कहा भी कि मैं काफी प्रसन्न

हो गया हू तुम्हारी बातो से। उन्होंने पूछा, फिर? उसने कहा, फिर क्या? मै भी चलता हू तुम्हारे साथ दान मागने। फिर क्या? जब ऐसी हालत है, तब हम घर मे न बैठे रहेंगे।

ऐसा ही हुआ है इस मुल्क मे। गुरु की इतनी महिमा और सारा मुल्क गुरु हो गया। शिष्य के लिए थी वह सारी शिक्षा। वह इसलिए थी कि जब यह खयाल में आए कि अगर गुरु की इतनी महिमा है तो गुरु को पा लेना मार्ग है। लेकिन गुरु को पाने का उपाय एक ही है कि कोई पूरे हृदय से शिष्य हो जाए। और तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन शिष्य तो खोते चले गए।

नानक ने पाच सौ साल पहले फिर मे कोशिश की, और गुरु को बड़ी महिमा दी। इसलिए अपने अनुयायियों को शिष्य नाम दिया। उनको पता नही था कि वे सिक्ख हो जाएगे। शिष्य नाम दिया, उनको पता नही था कि वे सिक्ख हो जाएगे। पजाबी मे शिष्य का रूप है सिक्ख। सिक्ख एक नई जमात हो गये, एक नया सम्प्रदाय हो गये। शिष्यत्व की तो बात ही खो गई; एक नई जमात खडी हो गई।

हम चूकने में कुशल हैं। कुछ भी हमें दिया जाए, हम अपने बचाव निकाल लेते हैं। गुरुओ की इस महिमा से इतना नुकसान हुआ।

इधर कृष्णमूर्ति ने गुरु के खिलाफ एक आन्दोलन खडा किया सारे जगत मे कि कोई गुरु नही है। लेकिन जो भूल सदा होती है, वही भूल होने वाली है। इस सदी में यह खबर कि कोई गुरु नही है किसी का, प्रत्येक को स्वय पाना है, हमारे अहकार को बड़ी तृप्तिदायी मालूम पडी। कृष्णमूर्ति के पास अहकारियो की जमात इकट्ठी हो गई। उन अहकारियो ने कहा कि ठीक है, कोई गुरु नही है, यह तो बिलकुल ठीक बात है। कोई गुरु हो भी क्यो? प्रत्येक व्यक्ति पहुच सकता है। तो ऐसे लोग हैं, जो चालीस साल से कृष्णमूर्ति को सुनते हैं। जो भी उनकी बुद्धि में है, सब कृष्णमूर्ति से सुना हुआ है। उनके शब्द-शब्द उधार हैं। फिर भी उनमे इतना भी अनुग्रह का भाव नही आ पाया कि वे कह सके कि कृष्णमूर्ति से हमने सीखा है। बल्कि वे कृष्णमूर्ति के ही साथ मे उक्ति बताएंगे कि सीखने का सवाल ही कहा है? कृष्णमूर्ति खुद ही कहते हैं, कोई गुरु नही है।

हमने एक बार इस मुल्क में मेहनत की थी गुरु की महिमा बता के, ताकि लोग शिष्य हो जाएं, तब भी वे शिष्य न हुए, गुरु हो गए। अभी कृष्णमूर्ति ने दूसरा प्रयोग किया गुरु को खण्डित करके, कि उसकी कोई महिमा नहीं है, ताकि लोग शिष्य हो जाए, छोड़ें गुरू होना। मगर लोगो ने कहा, जब गुरु कोई है ही नही, तब शिष्य होने का कोई सवाल ही नहीं रहा। जब गुरु की महिमा हमने सुनी, हम गुरु हो गए। जब हमने सुना कि गुरु है ही नही, हमने कहा, अब शिष्य होने का कोई सवाल ही न रहा।

चाहे बुद्ध हो, चाहे कबीर हो, चाहे कृष्णमूर्ति हो, वे हमको रास्ते से हटा नही

सकते। हम बड़े मजबूत हैं। वे हमें कैसा ही धक्का दें, हम उसकी जो परिभाषा करेंगे, वह हमें और मजबूत कर जाएगी। इस दशा को ठीक से समझ लें तो यह सूत्र समझ में आ जायेगा।

और लाओत्से कहता है, यही सूक्ष्म व गुह्य रहस्य है। सच इज दि शटल सिक्रेट। आदमी अज्ञान में है। आदमी को पता नहीं है, कौन है। यह भी पता नहीं है, किस यात्रा पर है। यह भी पता नहीं है, इस जीवन की नियति क्या है। इस जीवन के बीच में कौन-सा फूल खिलेगा? इस जीवन के अन्धेरे में कौन-सी सुबह होगी? कौन-सा सूरज निकलेगा? कुछ भी पता नहीं है। यह जीवन की नाव किस किनारे लगेगी? कोई किनारा भी है या नहीं, कुछ भी पता नहीं है। **इस गहन अज्ञान में अगर सीखने की विनम्रता न हो तो भटकाव का कोई अन्त नहीं हो सकता।** सीखने की विनम्रता इतनी होनी चाहिए कि जहां से भी सीखने को मिल जाए, सीख लिया जाए। वह बुरा आदमी हो, चोर हो, बेईमान हो, डाकू हो, हत्यारा हो, जिससे भी सीखने को मिल जाए, सीख लिया जाए।

गुरु का यह अर्थ नहीं है कि किसी एक गुरु के पैर पकड़ के रुक रहा जाए। इस फर्क को थोडा ठीक से समझ लें। वह भी अड़चन खड़ी हुई, क्योंकि गुरु लोगों को ऐसे समझाते हैं। एक महिला मेरे पास आई। उसने मुझे कहा कि आपको सुनने आना चाहती हू, लेकिन मेरे गुरु कहते हैं एक पति, एक गुरु! गुरु बदलेगी? बडे मजेदार लोग हैं। मगर वक्त गया एक पतिवाला भी। एक गुरु का तो अब कोई सवाल भी नहीं है। और पति तो है मूढ; एक की बात चल सकती है, समझ में आती है। लेकिन गुरुओं में ऐसी मूढता हो, तब तो हद हो गई।

लेकिन गुरु भी पकड़ते हैं। वहा भी डर है कि उनके घेरे से कोई बाहर न हो जाए। शिष्य का मतलब गुरु को पकड़ना नहीं है। **शिष्य का मतलब सीखने की अनन्त क्षमता को जन्म देना है।** फिर जहा भी सीखने को मिल जाए और जिससे भी सीखने को मिल जाए। फिर मस्जिद हो, मंदिर हो, गुरुद्वारा हो, फिर हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, फिर जहां भी सीखने को मिल जाए, वहा सीखते चले जाना है। और सीखने की कोई सीमा नहीं है। और सीखने का कोई पडाव नहीं है, जहा रुक जाना पड़ता है। **सीखना एक धारा है, एक बहाव है।** और जो जितना बहता है, उतना सीखता है। सब से सीखे।

और ऐसा जरूरी नहीं है कि जो किसी अर्थ में आपसे अज्ञानी हो, वह किसी अन्य अर्थ में ज्ञानी न हो। ऐसा भी नहीं है। एक छोटा बच्चा भी किसी अर्थ में आपका गुरु हो सकता है। और किसी अर्थ में आपका गुरु भी आपसे सीख सकता है। सीखना एक बहुत जटिल और सूक्ष्म बात है। सीखने की वृत्ति चाहिए। यह वृत्ति हो **तो वह जो गुह्य रहस्य है जीवन का, वह सूक्ष्म रहस्य हमारे हाथ आ जाता है। जो सीखना सीख लेता है, सत्य उसके निकट है।** लेकिन इसे हम थोडा

और तरह से समझ ले।

यह कहना भी शायद ठीक नही है कि जो सीखना सीख लेता है, **सत्य उसके निकट है।** अगर वह सच में ही पूरे शिष्यत्व के भाव में आ जाता है, **सत्य उसके भीतर है।** क्योंकि जो इतनी विनम्रता से अपने द्वार खोल देता है सारे जगत के लिए, कि जहां से भी आती हो हवाएं सत्य की, मेरे द्वार खुले हैं, मेरा कोई पक्षपात बाधा नही बनेगा, मेरी कोई पूर्व-धारणा बाधा नही बनेगी, मै टूटने को, मिटने को तैयार हूं, मेरा अतीत मेरे भविष्य के लिए बाधा नहीं बनेगा, अगर सत्य की हवाएं आती हो और मेरा अतीत गलत सिद्ध होता हो तो मैं उसे राख करने को तैयार हूं; **इतनी जिसकी तैयारी है, वह पहुंच गया।** वह इसी क्षण पहुच गया। शायद उसे सीखने की जरूरत भी न पड़े। **यह सीखने का भाव ही काफी हो जाए। शायद यह खुलापन ही उसकी मंजिल हो जाए।**

लेकिन हम हैं बन्द। अगर हम सीखते हैं तो भी डरे-डरे और तौल-तौल के। हम सत्य को भी अपने अनुकूल चाहते हैं। अगर सत्य प्रतिकूल पड़ता हो तो हम द्वार बन्द कर लेते हैं कि यह सत्य अपने काम का नही है, यह अपने लिए नही है, यह अपना सत्य नही है। हम सत्य को भी अपने अनुकूल चाहते है। हम चाहते हैं, सत्य भी हमारा गवाह हो।

सत्य किसी का गवाह नही होता है। जो अपने को खोने को तैयार है, सत्य उनका हो जाता है, लेकिन किन्ही का गवाह नही होना है। अगर आप सोचते हैं कि सत्य आपके अनुकूल हो, हिन्दू हो, ईसाई हो, मुसलमान हो, ऐसा हो, वैसा हो, आपके कोई साचे हो, ढाचे हो, उसमे ढले, तब आप स्वीकार करेंगे तो आपके पास सत्य कभी नही पहुच पाएगा। क्योंकि आपके ढाचे, सब ढाचे सत्य को असत्य कर देते हैं, मार डालते हैं, उसकी हत्या कर देते हैं, उसके अंग-भंग कर देते हैं। सत्य कुरूप हो जाता है। **सत्य चाहिए तो सब ढांचे छोड कर खड़े हो जाने की तैयारी चाहिए।** यही शिष्यत्व का अर्थ है।

इजिप्त में एक सूत्र है ह्वेन दि डीसाइपल इज रेडी, दि टीचर अपीयर्स, जब शिष्य तैयार है, तब गुरु मौजूद हो जाता है। और यह सौ प्रतिशत सही है।

लेकिन बडे मजेदार हैं। हम में से अनेक लोग गुरु खोजते फिरते हैं। उन्हे पूछे, कहा जा रहे हो? वे कहते हैं, हम गुरु की खोज कर रहे है। आप कैसे गुरु की खोज करिएगा? आपके पास कोई मापदण्ड, कोई कसौटी, कोई तराजू है? आप तौलिएगा कैसे कि कौन है गुरु आपका? और अगर आप इतने कुशल हो गए है कि गुरु की भी जाच कर लेते हैं, तब अब बचा क्या है? जिसकी हम जाच करते हैं, कर सकते हैं, उससे हम ऊपर हो जाते है। तो आप तो गुरु पहले हो गए। परीक्षा तो होती है गुरु की। उतर जाए, पास हो जाए, उत्तीर्ण हो जाए, तो ठीक। और अनुत्तीर्ण हो जाए तब? तब शिष्य घूम-घूमकर गुरुओं को अनुत्तीर्ण

करते रहते हैं कि फलां गुरु बेकार साबित हुआ, अब वे दूसरे गुरु की तलाश में जा रहे हैं।

गुरु को शिष्य नही खोज सकता है। **यह असम्भव है।** इसका तो कोई उपाय ही नही है। यह तो बात ही व्यर्थ है। **हमेशा गुरु शिष्य को खोजता है।** वह बात समझ में आती है। तर्कबद्ध है। तो गुरु शिष्य को खोजता है। जब भी आप शिष्य होने के लिए तैयार हो जाते हैं, गुरु प्रकट हो जाता है। वह आपको खोज लेगा। फिर आप बच नही सकते हैं। वह आपको खोज लेगा। फिर आपके बचने का कोई उपाय नही है। फिर आप भाग नही सकते हैं। इसलिए बडी चीज गुरु को खोजना नही है। **बड़ी चीज शिष्य बनने की तैयारी है।**

बस आप गड्ढे बन जाए; पानी बरसेगा और झील भर जाएगी। आप सीखने के गड्ढे बन जाए। चारो तरफ से आपको खोजने को वे सूत्र निकल पड़ेंगे, जो आपके गुरु बन जाएगे। शिष्य का गड्ढा जहा भी होता हैं, वहा गुरु झील की तरह भर जाता है। लेकिन गड्ढे खोजने नही जा सकते। खोजने का कोई उपाय नही है।

दो-तीन आखिरी बाते।

यह जरूरी नही है कि आप गुरु को जाच सकें। यह जरूरी है कि आप अपने शिष्य होने को जाचते रहे। जो आवश्यक है, वह यह है कि मेरे शिष्य होने की पात्रता, मेरे सीखने की क्षमता निखालिस है, शुद्ध है।

बायजीद अपने गुरु के पास था। बायजीद के गुरु ने बायजीद से कहा, बायजीद, तू जो मुझसे सीखने आया है, उसके अलावा मैं क्या हू, क्या यह भी तू जानना चाहता है? बायजीद ने कहा, उससे मुझे क्या प्रयोजन है? जो मैं सीखने आया हू, वह आप हैं। इतना मेरे जानने के लिए काफी है।

फिर एक दिन बायजीद आया है और गुरु शराब की सुराही रखे बैठा है। प्याली में शराब ढालता है और चुस्किया लेता जाता है, और बायजीद को समझाता जाता है। एक और शिष्य भी बैठा है। उसके बरदाश्त के बाहर हो गया कि हद हो गई! बरदाश्त की भी एक सीमा होती है और भरोसे का भी एक अंत। आखिर कोई अन्ध-विश्वासी तो नही हू। उसने कहा, यह क्या हो रहा है? यह अध्यात्म किस प्रकार का है?

गुरु ने उस शिष्य को कहा कि अगर तुम्हें नही सीखना है, तुम जा सकते हो। मतलब यह कि हमारा गुरु-शिष्य का सम्बन्ध टूट गया। लेकिन किस शर्त पर और कब मैंने तुमसे कहा था कि मैं शराब नही पीऊगा। बायजीद की तरफ गुरु ने देखा और बायजीद से कहा, तुम्हें तो कुछ नही पूछना है।

बारह वर्ष बायजीद था। इस बारह वर्ष मे बारह हजार दफे ऐसे मौके गुरु लाया होगा जब कि कोई भी पूछ लेता कि यह क्या हो रहा है, यह नही होना

चाहिए। बारह साल बाद जिस दिन बायजीद विदा हो रहा था, उसके गुरु ने पूछा कि तुम्हें कुछ पूछना नहीं है मेरे और सम्बन्धों में? मेरी बाबत?

बायजीद ने कहा कि अगर मैं पूछता दूसरी चीजों के सम्बन्ध में तो मैं वंचित ही रह जाता तुमसे। मैंने उनके सम्बन्ध में नहीं पूछा। मैं उस सम्बन्ध में ही डूबता चला गया, जिसके लिए आया था। और आज मैं जानता हूं कि वह सब जो किया था, वह कैसा नाटक था। मैंने पूछा नहीं, लेकिन आज मैं जानता हूं वह सब नाटक था। अगर मैं उस नाटक की बाबत पूछता तो जो असली आदमी था यहां मौजूद, मैं उससे वंचित रह जाता।

तिब्बत में शिष्यों के लिए सूत्र हैं कि गुरु अगर पाप भी कर रहा हो सामने तो उसकी शिकायत नहीं की जा सकती। बड़ा अजीब है और उचित नहीं मालूम पड़ता है। अन्धविश्वास पैदा करने वाला है। लेकिन जो सीखने आया है, उसके लिए व्यर्थ की बातों में रस लेना खतरनाक है। और इससे उसके सीखने की क्षमता नष्ट होती है।

नारोपा एक भारतीय गुरु तिब्बत गया। मिलरेपा उसका पहला शिष्य था तिब्बत में। नारोपा बहुत ही अद्भुत व्यक्ति था। और वह मिलरेपा को ऐसे-ऐसे काम करने को कहता है कि किसी की भी हिम्मत टूट जाए। वह मिलरेपा से कहता है कि पहाड़ से पत्थर काटो। मिलरेपा का मन होता है कि मैं सत्य की साधना करने आया हूं कि पत्थर पहाड़ से काटने। लेकिन नारोपा ने कहा कि जिस दिन तुझे सन्देह उठे, उसी दिन चले जाना, बताने भी मत आना कि सन्देह उठा है। सन्देह करने वालों के साथ मैं कोई मेहनत नहीं लेता।

लेकिन मिलरेपा भी नारोपा से कम अद्भुत आदमी नहीं था। उसने पत्थर काटे। फिर नारोपा ने कहा कि अब इसका एक छोटा मकान बनाओ। उसने मकान बनाया। जिस दिन मकान बन के खड़ा हो गया, वह दौड़ा आया और उसने सोचा कि शायद आज मेरी शिक्षा शुरू होगी। यह परीक्षा हो गई। नारोपा के पास आके चरणों में सिर रख के कहा कि मकान बनके तैयार है।

नारोपा गया। और उसने कहा कि अब इसको गिराओ। कहानी कहती है, ऐसे सात दफे नारोपा ने मकान गिरवाया, गिरवा कर फिर कहा कि वह पत्थर वापस फेंको खाई में, फिर चढ़ाओ, फिर मकान बनाओ। ऐसा सात साल तक चला। सात बार वह मकान बना। एक साल में वह बन के खड़ा हो पाए कि नारोपा गिरवा दे। और सातवीं बार भी जब मकान गिर रहा था, तब भी मिलरेपा ने नहीं पूछा कि क्यों?

और कहते हैं कि नारोपा ने कहा कि तेरी शिक्षा पूरी हो गई। जो मुझे तुझे देना था, मैंने दे दिया। और जो तू पा सकता था, वह तूने पा लिया है। अब बोल! मिलरेपा चरणों में गिर पड़ा।

मिलरेपा से बाद में उसके शिष्य पूछते थे कि हम कुछ समझे नहीं कि क्या हुआ। क्योंकि कोई और शिक्षा तो हुई नहीं। यह लगाना, यह गिराना, बस यही हुआ। मिलरेपा ने कहा कि पहले तो मैं भी वही समझा कि यह क्या हो रहा है। लेकिन फिर मैंने कहा कि जब एक दफा तय ही कर लिया, ज्यादा से ज्यादा एक जिन्दगी ही जाएगी न, बहुत जिंदगिया बिना गुरु के चली गईं, एक जिंदगी गुरु के साथ सही, ज्यादा से ज्यादा एक जिन्दगी ही जाएगी न, तो ठीक है। बहुत जिंदगियां बिना गुरु के भी गवा दी, अपनी बुद्धि से गवा दी, इस बार बुद्धि को गवा के, दूसरे के हिसाब से चल के देखें।

और जिस दिन, मिलरेपा ने कहा, मैंने यह तय कर लिया, उस दिन से मैं बिलकुल शांत होने लगा। वह पत्थर जमाना नहीं था, जन्मों-जन्मों का मेरा जो सब था, उसने उसे ही जमवाया, उखडवाया, जमवाया, उखडवाया। वह सात बार जो मकान का बनाना और मिटाना था, तुम्हें मकान का दिख रहा होगा, वह मेरा ही बनना और मिटना था। और जिस दिन सातवी बार मैंने मकान गिराया, उस दिन मै नही था। इसलिए उसने मुझसे कहा कि जो मुझे तुझे देना था, दे दिया और जो तू पा सकता था, वह तूने पा लिया। तुझे कुछ और चाहिए?

लेकिन जो न अपने गुरु को मूल्य देता है, और न जिसे अपना सबका पसन्द है, वह वही है, जो दूर भटक गया है—यद्यपि वह विद्वान हो सकता है। यद्यपि नहीं, अक्सर वह विद्वान होता है। **यही सूक्ष्म व गुह्य रहस्य है।**

आज इतना ही। कीर्तन करे पाच मिनट। फिर जाए।

■■

श्रद्धा, संस्कार, पुनर्जन्म, कीर्तन व भगवत्ता

सत्तावनवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २२ अगस्त १९७२

- श्रद्धा अंधविश्वास कैसे न बने ?
- कोई गरीब क्यों, कोई अमीर क्यों ?
- पुनर्जन्म का हिसाब कहाँ रहता है ?
- प्रवचन के बाद कीर्तन क्यों ?
- आप शिष्य किसके है ?
- अपने को भगवान क्यों कहते हैं ?

बहुत से सवाल है।

एक मित्र ने पूछा है कि श्रद्धा अंधविश्वास न बने, इसके लिए क्या करें?

पहली बात, श्रद्धा के परिणाम से निर्णीत होता है कि श्रद्धा श्रद्धा है या अंध-विश्वास है।

आप किसी पर श्रद्धा करते हैं। वह आदमी गलत भी हो सकता है। वह श्रद्धा का पात्र न भी हो, यह भी हो सकता है। अगर ऐसे आदमी पर आप श्रद्धा करते है तो लोग कहेंगे कि यह अंधश्रद्धा है। और आप अंधे हैं, आपको दिखाई नही पडता कि वह आदमी गलत है। अगर आप ऐसे किसी सिद्धान्त पर श्रद्धा करते हैं जिसके लिए वैज्ञानिक कोई प्रमाण नही है तो लोग कहेंगे कि यह अंधश्रद्धा है।

मेरी परिभाषा अलग है। कोई सिद्धान्त वैज्ञानिक है या नही, यह बहुत महत्त्व-पूर्ण नही है। अगर उस सिद्धान्त पर श्रद्धा के कारण आपका जीवन वैज्ञानिक होता जाता हो, अगर उस श्रद्धा के कारण आप रूपान्तरित होते हों, अगर वह श्रद्धा आपको शुभ और सत्य की दिशा मे गतिमान करती हो, तो वह श्रद्धा है। और वह सिद्धान्त कितना ही वैज्ञानिक हो लेकिन उसपर भरोसा रखने मे आपका जीवन और सडता हो और नीचे गिरता हो, तो अंधश्रद्धा है।

जिस व्यक्ति पर आप श्रद्धा करते है, वह ठीक हो या गलत हो, यह असगत है, निष्प्रयोजन है, इरेलिवेन्ट है। वह गलत ही हो और उस पर श्रद्धा आपको ठीक बनाती हो, उस पर श्रद्धा आपके जीवन को आनन्द मे, सगीत से, सौन्दर्य मे भरती हो, तो मैं इसे श्रद्धा कहूँगा। और वह आदमी बिलकुल ठीक हो और उसपर आपकी श्रद्धा आपको नीचे गिराती हो दुख मे, पीडा मे, नरक मे, या आपकी गति को अवरुद्ध करती हो, उस श्रद्धा के कारण आप बढते न हों, रुक जाते हों, तो मै कहूगा कि अंधश्रद्धा है।

इसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धा कैसी है, यह श्रद्धा करनेवाले पर निर्भर है। श्रद्धा आबजेक्टिव, वस्तुगत नहीं है, विषयगत नही है, विषयीगत है, सबजेक्टिव है। एक पत्थर की मूर्ति मे आप श्रद्धा करते हैं। अगर यह श्रद्धा आपके भीतर नये फूलों के खिलने में सहयोगी होती हो तो मै कहूगा कि सम्यक श्रद्धा है। और खुद भगवान ही आपके सामने खडे हो और आप उनमें श्रद्धा रखते हो, लेकिन वह आपको अंधेरे की तरफ ले जाती हो, तो मै कहूंगा कि वह अंधविश्वास है। मेरा फर्क समझ लें। किस पर आपका विश्वास है, यह महत्वपूर्ण नहीं है, निर्णायक नहीं है। आपका

विश्वास आपके लिए क्या करता है, यही महत्वपूर्ण है और निर्णायक है। तब हर आदमी तौल सकता है कि उसकी श्रद्धा श्रद्धा है या अंधविश्वास। अगर आपके विश्वास आपको कही भी नही ले जाते और आप जहा थे वही सड़ते रहते हैं, तो वह अंध-विश्वास है।

क्योंकि श्रद्धा तो एक आग है। वह आपको जला देगी और बदल डालेगी। आग में हम डालते हैं सोने को तो जो कचरा है वह जल जाता है। सोना बच जाता है। *आग सच्ची है या झूठी, इसका और क्या सवाल सोना पूछ सकता है?* सोना यही देख ले कि उसके भीतर जो कचरा था वह जल गया, वह स्वयं निखर कर स्वर्ण होकर बाहर आ गया **तो आग सच्ची थी।** आग को जानने का सोने के लिए और उपाय भी क्या है? और अगर कचरा सब बचा हुआ साथ रह गया है **तो आग झूठी थी।** आप इसकी फिक्र मत करना कि किसके ऊपर आपकी श्रद्धा है, आप इसकी फिक्र करना कि आपकी जो श्रद्धा है वह आग है या नही, वह आपको बदलती है या नही बदलती।

यह बडे मजे की बात है। और इसलिए कई बार ऐसा होता है कि श्रद्धा जिसपर आपकी है, वह शायद पात्र न भी हो। **लेकिन आप पात्र हो जाते हैं श्रद्धा के कारण।** रोज ऐसा होता है कि जिसपर आपकी श्रद्धा है, वह पूरा पात्र है, लेकिन आपकी जिन्दगी मे कोई अन्तर नही पडता, कोई क्रान्ति घटित नही होती। आप अपात्र ही रह जाते हैं। मगर हम सब यही सोचते हैं कि जिसपर हमारी श्रद्धा है, वह ठीक है या नही। आप सोचें दूसरे छोर से कि **जिसकी श्रद्धा है, वह ठीक है कि नहीं।** आपकी श्रद्धा आपको भयभीत करती हो तो अंधविश्वास है, आपकी श्रद्धा आपको अभय करती हो तो श्रद्धा है। आपकी श्रद्धा आपको घृणा और क्रोध और वैमनस्य से भरती हो तो अंधविश्वास है। आपकी श्रद्धा करुणा बन जाती हो तो श्रद्धा है। अपने से तौलना। और कोई दूसरा उपाय नही है। जो दूसरे से तौलने चलेगा, उसे कभी भी कोई पात्र मिलनेवाला नही है, जिसपर वह श्रद्धा कर सके। कभी भी कोई पात्र मिलनेवाला नही है, जिस पर वह श्रद्धा कर सके। और जो अपने से सोचना शुरू करेगा, उसे चारो तरफ पात्र ही पात्र मिल जाएंगे जिनपर श्रद्धा की जा सकती है। श्रद्धा ही चुकाती है। किस पर की है, यह महत्वपूर्ण नही है। **की है, इसलिए क्रान्ति घटित होती है।**

सुना है मैने, सन्त फ्रासिस परम श्रद्धालु व्यक्ति थे और किसी पर भी भरोसा करते थे। उनका शिष्य था लियो। दोनो एक यात्रा पर थे। कोई भी साथ हो जाता फ्रांसिस के तो उसे साथ रख लेते। अक्सर तो कोई भी साथ होकर उनका सामान की चुराकर ले जाता। एक रात टिकता और उसी रात उनका बिस्तर, उनकी झोली, जो कुछ थोड़ा-बहुत होता, लेकर चला जाता। उनका शिष्य लियो बहुत परेशान था; वह कहता कि कम से कम जाच-परख तो कर लेना चाहिए। हर किसी

को साथ ले लेते हैं और फिर तकलीफ उठाते हैं। यह आदमी पर भरोसा छोड़ो। इतने आदमी धोखा दे गये हैं, फिर भी तुम्हारा आदमी पर भरोसा नहीं छूटता।

तो सन्त फ्रान्सिस कहते हैं कि वे सभी मेरी श्रद्धा की परीक्षा ले रहे हैं। दो उपाय हैं। एक आदमी रात रुका और चोरी करके चला गया। एक तो उपाय यह है कि सामान तो गया ही जिसकी कोई कीमत नही है, साथ श्रद्धा भी चली जाए जिसकी बडी कीमत है। तो सन्त फ्रान्सिस ने लियो से कहा कि लियो, तुझे वे लोग ज्यादा नुकसान पहुंचा रहे हैं। सामान की तो बड़ी कीमत नहीं है; लेकिन तेरी श्रद्धा नष्ट होती जा रही है।

और सन्त फ्रान्सिस ने कहा कि अगर ऐसे लोग मेरे साथ ठहरे जो भले हैं तो मेरी श्रद्धा के लिए कोई कसौटी भी न होगी। मै आदमी पर भरोसा किए ही जाऊगा। क्योंकि सवाल आदमी का नही, सवाल मेरे भरोसे का है। सवाल यह है कि आदमी पर मेरी श्रद्धा हो, सवाल यह है कि मेरी श्रद्धा हो। और अगर मैं आदमी पर भरोसा नही कर सकता तो फिर मैं किसी पर भी भरोसा नही कर सकूगा।

इसको अगर इस तरह से देखेगे तो सारी दृष्टि और हो जाएगी। श्रद्धा मूल्यवान है। पत्थर पर है या परमात्मा पर, यह गौण है। पत्थर पर भी हो सकती है। और तब पत्थर भी परमात्मा का काम देने लगता है।

अंधविश्वास नपुंसक श्रद्धा है। उससे कुछ भी नही होता है। उसे हम रखे रहते हैं मस्तिष्क के एक कोने मे। वह किसी काम की नही है, उसका कोई उपयोग नही है। इतने लोग ईश्वर मे भरोसा करते हैं, यह भरोसा झूठा होना चाहिए। क्योंकि अगर इतने लोग सच में ईश्वर मे भरोसा करते हो तो यह जगत इतना कुरूप नहीं हो सकता, जितना कुरूप है। अगर इतने लोग सच मे ही ईश्वर मे भरोसा करते हैं तो इनकी जिन्दगी में जो सुगन्ध, जो सुवास आनी चाहिए, उसका तो कहीं कोई पता नही चलता। सिर्फ दुर्गन्ध आती है। यह भरोसा झूठा है। यह भरोसा ऊपरी है। यह दिखाऊ है। और इसे मैं कहूंगा अंधविश्वास।

जो क्रान्ति ले आये आपके जीवन में, वह श्रद्धा है। और जो आपकी जिन्दगी में एक स्थिरता ला दे, एक स्टैगनैंसी पैदा कर दे, और आप एक ही जगह बन्द तालाब की तरह सडते रहे, तो वह अन्धविश्वास है। जो मुल्क अन्धविश्वासी हैं, वे बन्द डबरे में सडते रहते हैं। श्रद्धा तो एक बहाव है, एक तीव्र गति है। श्रद्धालु होना आसान नही है। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है अपने को बदलने की तैयारी।

बुद्ध के पास अनेक लोग आते हैं। तो कहते हैं बुद्ध शरण गच्छामि, हम बुद्ध कि शरण जाते हैं। एक युवक वैशाली मे बुद्ध के पास आया। उसने कहा कि मैं आपकी शरण होता हू। तो बुद्ध ने पूछा, तुम मेरी शरण आते हो, यह अपना उत्तरदायित्व टालने के लिए तो नही? ऐसा तो नही है कि अब से तुम समझो,

अब से तुम्हारी कृपा से कुछ हो तो ठीक है ? अगर यह शरण मे आना सिर्फ दायित्व टालना हो तो तुम मेरी शरण नही आते हो, तुम मेरे सिर पड़ते हो। **अगर यह शरण में आना एक आन्तरिक क्रान्ति की शुरुआत हो तो ही सार्थक है।**

मेरे पास भी लोग आते हैं। आकर कहते हैं कि हम तो कमजोर है, हमसे तो कुछ हो नही सकता, अब आप सभाले। एक सज्जन अभी-अभी आये। वे दस वर्ष से मुझे जानते हैं। दस वर्ष से मैं भी उन्हे जानता हूँ। बस इस जानने के अतिरिक्त और कुछ सम्बन्ध नही है। अभी आये और मुझसे बोले कि दस वर्ष हो गए और अभी तक कुछ हुआ नही है। मैंने कहा कि मै समझा नही। उन्होने कहा कि दस वर्ष से आपको जानता हू, अभी तक कुछ नही। कुछ करके दिखाइए। अपराधी मै ही हूँ। और उन्होने काफी काम किया कि उनकी मुझपर श्रद्धा है। वह श्रद्धा नही है, वह अंधविश्वास है।

और वह अधविश्वास आत्मघाती है। क्योकि उसमे मेरा कोई नुकसान नही हो रहा है। अगर वे इस भरोसे बैठे हैं कि मैं कुछ करूगा और होगा तो कभी भी नही होगा। उन्हें ही कुछ करना पडेगा।

हा, कोई करने को तैयार हो तो यह सारा जगत उसका साथ देने को तैयार होगा। कोई बैठने को तैयार हो तो यह सारा जगत उसको बैठने को भी तैयार मिलेगा। **अस्तित्व सहयोगी है।** आप नरक जा रहे हैं तो अस्तित्व आपको नरक की तरफ ले जाता है। आप स्वर्ग जा रहे हैं तो अस्तित्व आपको स्वर्ग की तरफ ले जाता है। लेकिन जाते सदा आप हैं। निर्णय आपका है, दायित्व आपका है।

आपकी श्रद्धा आपको रूपान्तरित करने की कीमिया बने तो समझना कि सम्यक श्रद्धा है।

●

एक मित्र ने पूछा है, और एक ने ही नही, बहुत मित्रो ने, कोई बीस ने वही सवाल पूछे हैं। पूछा है कि आपने कहा है कि प्रत्येक कर्म का फल तत्काल मिल जाता है, अगर प्रत्येक कर्म का फल तत्काल मिल जाता है तो एक आदमी अंधा और एक आदमी गरीब और एक आदमी अमीर क्यो पैदा होते है ? अगर तत्काल फल मिल जाता है तो फिर जन्म-जन्म यह भेद क्यो पडता है ?

इस भेद का कारण समझ लें। फल तो तत्काल मिलता है, फिर भी भेद पडता है। और भेद इसलिए पडता है कि **तत्काल मिले हुए फल का जो इकट्ठा जोड़ है, वह आप हैं।** उसका जोड कहीं किसी ईश्वर के हाथ में नही है, वह जोड आप हैं। आप जो भी इस जिन्दगी में करते है, आप उस सबका परिणाम है।

आपने जिन्दगी मे हजार बार क्रोध किया तो आप वही आदमी नही हो सकते हैं जिसने एक भी बार क्रोध नही किया। हजार बार क्रोध किया, हजार बार आपने फल पाया। जिस आदमी ने एक बार भी क्रोध नही किया, उस आदमी ने

एक बार भी फल नही पाया। आप पर हजार चोटे हैं क्रोध करने की और फल पाने की। आपका व्यक्तित्व हजार घावो से भर गया है। माना कि वे घाव सूख गये; लेकिन उनके निशान रह जाएगे। उन निशानों का नाम संस्कार है।

कर्म करते हैं, फल तत्काल मिल जाता है। लेकिन सस्कार रह जाता है। संस्कार को समझ लेना जरूरी है। यह थोडा सूक्ष्म है।

हम इस कमरे में एक पानी का गिलास लुढका दें, पानी बह जाएगा। सुबह धूप आएगी, पानी उड जाएगा। लेकिन एक सूखी रेखा कमरे में छूट जाएगी। वह सूखी रेखा पानी की है? पानी अब बिलकुल नही है, इसलिए उसको पानी का कहना ठीक नही मालूम पडता। क्योकि पानी की एक भी बूद नही रह गई है वहा, सब उड गई। वह सूखी रेखा पानी की है, यह कहना उचित नही है। लेकिन फिर पानी की ही है। क्योकि पानी के बहने से ही बन गई थी— इस कमरे की धूल पर। वह सस्कार है।

वह सूख गया सब, पानी बिलकुल नही बचा; फिर भी रेखा रह गई। अब आप दुबारा पानी डाले तो बहुत सभावना है कि सूखी रेखा को पकडकर वह पानी बहे। सस्कार का मतलब होता है टेन्डेन्सी, रुझान। उस सूखी रेखा की वृत्ति होगी कि पानी मिले तो वह उससे बह जाए। लीस्ट रेसिस्टेन्स के नियम के कारण ऐसा होता है। अगर और कही से पानी को बहना पडे तो फिर से रास्ता बनाना पडेगा। धूल काटनी पडेगी, इतनी झझट पानी भी नही लेना चाहता है। जहा धूल कटी है और रास्ता बना है, उसी मे वह बह जाता है।

जिस आदमी ने कल दिन भर क्रोध किया, आज सुबह वह उठेगा क्रोध की सूखी रेखा के साथ। वह सिर्फ टेन्डेन्सी है। फल तो उसे कल ही मिल गया; जब क्रोध किया, तभी मिल गया। लेकिन क्रोध उसने किया और फल मिला तो उसके व्यक्तित्व मे एक सूखी रेखा क्रोध की बन गई। आज सुबह जब वह उठेगा, तब वह जो सूखी रेखा है, वह तत्पर है। जरा सा भी मौका मिला, कोई भी वेग उठा, वह सूखी रेखा उसको अपने मे से बहा देगी। क्रोध पुन: प्रकट हो जाएगा।

जब हम एक जन्म के बाद फिर पैदा होते है, तब हम सस्कार लेकर पैदा होते है। वह जो हमने पिछले जन्म में किया है, और जन्मो-जन्मो मे किया है, वही हमारा व्यक्तित्व है। वह सब सूखी रेखाए लेकर हम पैदा होते है। इसलिए दो बच्चो मे भेद होता है। इसलिए नही कि उनके पिछले जन्मो के कर्मो के फल उन्हे अभी भोगना है। फल तो वे भोग चुके। लेकिन फल भोगने के बाद जो वृत्तिया शेष रह गई, जो वृत्तियो का प्रभाव शेष रहा, जो-जो उन्होने किया उसके ऊपर उसकी जो-जो पक्तिबद्ध रेखाए रह गई, वे जो आदतें रह गई, उनको लेकर बच्चे जनम रहे हैं। इसलिए दो बच्चे अलग-अलग हैं।

जिन मित्रो ने भी सवाल पूछा है, उनके सवाल में यही ध्वनि है कि अगर ऐसा

है, तब तो फिर कर्म-फल का सिद्धान्त समाप्त हो गया। क्योंकि तत्काल हमें फल मिल जाता है, और मरते वक्त सब लेखा-जोखा पूरा हो जाता है। तब तो सब व्यक्ति समान पैदा होने चाहिए, क्योंकि लेखा-जोखा पूरा हो गया।

लेखा-जोखा जरूर पूरा हो गया। लेकिन हर आदमी ने लेखा-जोखा अलग-अलग ढग से पूरा किया। और हर आदमी के लेखे-जोखे में अलग-अलग घटनाए घटीं। और हर आदमी ने अलग-अलग सस्कार अर्जित कर लिया। और उन सस्कारो को लेकर वह पैदा होता है।

एक मित्र ने पूछा है, कोई आदमी अधा पैदा हो जाता है, कोई आदमी गरीब पैदा हो जाता है। क्या कारण है कि और कोई सोने के चमचे लेकर पैदा होता है।

थोडा जटिल है। और जटिल हो गया इस सदी के कारण। इतना जटिल नही था, इतना जटिल नही था। क्योंकि गरीबी और अमीरी बहुत सीधी बातें थी। और साफ था कि गरीब गरीब है अपने कर्मो के कारण, और अमीर अमीर है अपने कर्मों के कारण। इसमें सचाई है।

इसमे सचाई है, क्योकि हम गरीब होने का सस्कार भी अर्जित करते हैं। लेकिन गरीब होने का सस्कार बडी बात है। सिर्फ धन से उसका सम्बन्ध नही है, और भी बहुत सी चीजो से वह सम्बन्धित है। जटिलता इसलिए है कि अब तक जब भी हम गरीब आदमी की बाबत सोचते थे, तब अतीत मे गरीब आदमी का मतलब था कि जिसके पास धन नही है। एक ही मतलब था। लेकिन अब जमीन पर विज्ञान ने बहुत धन पैदा कर लिया। सौ-पचास वर्षों मे निर्धन आदमी जमीन पर कोई भी नहीं होगा। तब गरीब के नये अर्थ शुरू हो जाएगे। गरीब नही मिटेगा, सिर्फ उससे धन का जो जोड था, वह मिट जाएगा। गरीब के नये अर्थ शुरू हो जाएगे। कोई आदमी बुद्धि मे गरीब होगा, कोई आदमी स्वास्थ्य में गरीब होगा, कोई आदमी सौन्दर्य में गरीब होगा।

ध्यान रखें, धन तो मनुष्य-जाति का इतने दिनो का जो श्रम है, उसके परिणाम में सबको उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन तब सूक्ष्मतम दरिद्रताए प्रकट होनी शुरू हो जाएगी। जब स्थूल दरिद्रताए मिटती है, तब सूक्ष्म दरिद्रताए शुरू हो जाती है। जब सबके पास धन बराबर होता है, तब धन की बात तो समाप्त हो गई। लेकिन तब बुद्धि, प्रतिभा, गुण, उनकी दीनता अखरने लगती है। दरिद्रता बडा शब्द है, उसकी अभिव्यक्तियां बहुत हो सकती हैं। अब तक जो बडी से बडी अभिव्यक्ति थी, वह धन की थी। **भविष्य में जो बड़ी अभिव्यक्ति होगी, वह गुण की होगी।** लेकिन यह जारी रहेगा। क्योंकि हम अलग-अलग कर्म से अलग-अलग सस्कार करते हैं।

कुछ लोग दरिद्र होने की आदत लेकर पैदा होते हैं। कुछ लोग समृद्ध होने की आदत लेकर पैदा होते है। जो लोग समृद्ध होने की आदत लेकर पैदा होते है, उनको

भिखारी बनाकर रास्ते पर खड़ा कर दें, फिर भी उनकी चाल में सम्राट की रौनक होगी। और जो लोग दरिद्र होने की आदत लेकर पैदा होते है, देखें आप, यद्यपि वे बड़े-बड़े महलों में भी बैठे है, तो भी उनसे ज्यादा दरिद्र आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा।

कंजूस आदमी वह है जो दरिद्र होने की आदत लेकर पैदा हुआ है। धन भी उसके पास हो जाए तो उसको खर्च नही कर पाता। धन तो मिल भी सकता है समाज की व्यवस्था से, लेकिन खर्च करने की जो आदत है, धन को भोग लेने की जो आदत है, वह बहुत गहरा सस्कार है। एक आदमी को आप धनी बना दें, और आप अचानक पाएगे कि इतना दरिद्र वह पहले नही था जितना अब हो गया है। अक्सर ऐसा होता है कि गरीब आदमी कजूस नही होते। क्योकि जब बचाने को हो नही होता तो क्या बचाना?

एक गरीब आदमी को थोड़े रुपये दे दें, और वह तत्काल उसमें पड़ जाएगा जिसको भारत में हम बहुत दिन से जानते रहे हैं और जिसे हम कहते हैं **निन्नानबे का चक्कर**। एक आदमी को निन्नानब्बे रुपये दे दें, अब उसकी एक ही इच्छा होगी कि कैसे वे सौ हो जाए। यह इच्छा बडी स्वाभाविक है। और उसको आज जो एक रुपया मिलेगा, वह आज भूखा सो जाना चाहेगा, सौ कर लेना चाहेगा। लेकिन जब एक दफा मन को निन्नानबे के सौ करने का रस मिल जाता है, तब फिर सौ से एक सौ एक करने का, फिर एक सौ एक से एक सौ दो करने का, फिर वह रस बढ़ता चला जाता है।

पुरानी कथा है पंचतत्र मे कि एक सम्राट सदा अपने नाई से पूछता है कि तू इतना प्रसन्न कैसे है? तेरे पास कुछ भी तो नही है। तो नाई कहता है कि जो आप मुझे दे देते है, उतना बहुत है। साझ गुजर जाती है, दिन गुजर जाता है। दूसरे दिन फिर सुबह आपकी सेवा कर जाता हू, मालिश कर जाता हू, बाल बना जाता हू, फिर जो मिल जाता है, वह दिन भर के लिए काफी है।

फिर अचानक एक दिन सम्राट ने देखा कि नाई बडा उदास है और बडा बेचैन है, और लगता है कि रात भर सोया नही है। सम्राट ने पूछा, आज तेरे हाथों में ताकत नही मालूम पडती है और ऐसा लगता है कि रात तू सोया नही है, तेरी आखों मे नीद है, कही तू भी निन्नानबे के चक्कर मे तो नही पड गया? उस नाई ने पूछा, आपको कैसे पता चला? सम्राट ने कहा कि पागल, तू इस झझट में मत पडना, यह मेरे वजीर की करतूत है। कल उससे मेरा बहुत विवाद हो गया। मैंने कहा था कि नाई बडा शात, बडा सयमी आदमी है। उसने कहा, नही, कुछ मामला नही है, सिर्फ निन्नानबे उसके पास नही है। तो उसने मुझसे कहा था कि आज जाकर मैं निन्नानबे की एक थैली उसके घर मे फेंक आऊगा और कल सुबह देख लेना। तू पड गया झझट में, तू रात भर क्या सोचता रहा? नाई बोला कि मैं

रातभर यही सोचता रहा कि सौ कैसे हो जाए। रात को मैं सो ही नही सका। पहली रात मै सो नहीं सका। और कभी मेरे पास कुछ नही होता था, तब मैं मजे से सोता था। इस निन्नानबे ने ठीक सौ का खयाल दे दिया। यह ऐसे ही है जैसे दांत टूट जाए और जीभ वही-वही जाने लगे। वह जो सौ है, वह खाली गड्ढा है, जीभ वही-वही जाने लगी। रात भर मैं सो नहीं सका।

सम्राट ने कहा, अगर तू मेरी मान तो वह निन्नानबे की थैली फेंक दे, नही तो तू मरेगा दुख में। हम मर ही रहे हैं पहले से। हमारी तरफ देख। सौ होने से कुछ भी न होगा। निन्नानबे होना खतरा है। सौ होने से कुछ भी न होगा। फिर एक दफा यात्रा शुरू हो गई तो तू मुश्किल मे पड जाएगा। लेकिन उस नाई ने कहा कि महाराज, एक दफा तो जीवन में मौका मिला है। सौ तो कर लेने दें।

लेकिन उस दिन के बाद नाई कभी सुखी नही हो सका। कोई भी नहीं हो सकता। होता क्या है?

लोग आदत लेकर पैदा होते है। परिस्थिति मौका बनती है उस आदत के प्रकट होने का, या रुक जाने का। धन अब तक परिस्थिति में कम था, इसलिए कुछ लोग गरीब थे और कुछ लोग अमीर थे धन के लिहाज से। और इस वजह से दूसरी गरीबियां दिखाई नही पड़ती थी। अब दुनिया मुसीबत मे पडेगी, क्योंकि धन की गरीबी परिस्थिति से मिटी जा रही है, मिट जाएगी। और तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि और भी गरीबियां हैं, जो धन से बहुत गहरी हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पाच प्रतिशत लोग ही प्रतिभाशाली होते हैं। केवल पाच प्रतिशत। और यह प्रयोग हजारो तरह से किया गया और यह प्रतिशत पाच से ज्यादा कभी नही होता। इसे थोडा आप समझें। यह केवल मनुष्यो तक ही नही सीमित है। जानवरो में भी केवल पाच प्रतिशत जानवर कुशल होते हैं, शेष पचानबे प्रतिशत अकुशल। जो कबूतर चिट्ठी-पत्री पहुचा देते है, वे पाच प्रतिशत कबूतर है,। पचानबे प्रतिशत नही पहुचा सकते। और अनेक-अनेक प्रयोगो से यह बडी हैरानी की बात प्रगट हुई कि सर्वत्र पाच प्रतिशत ही है। कोई वैज्ञानिक नियम है प्रकृति मे कि जैसे कि सौ डिग्री पर पानी गरम होता है, वैसे ही पाच प्रतिशत ही प्रतिभा होती है।

पिछले पाच वर्षो मे चीन में उन्होने माइंड-वाश के लिए, ब्रेन-वाश के लिए बहुत से प्रयोग किये। लोगो के मस्तिष्क बदल देने के लिए बहुत से प्रयोग किये। कोरियाई युद्ध के बाद चीन के हाथ में जो अमरीकी सैनिक पड गये थे, उन्होने लौट कर जो खबरे दी उनमें एक खबर यह थी। उन्होने यह खबर दी कि चीनियो ने तो सबसे पहले इसकी फिक्र की कि हममें प्रतिभाशाली कौन-कौन है। और तब उन्होने पाच प्रतिशत लोगो को अलग कर लिया। अगर सौ कैदी पकडे तो उन्होने पहले पाच प्रतिभाशाली लोगो को अलग कर लिया। और चीनियो का कहना है कि पाच

प्रतिभाशाली लोगो को अलग कर लो, पचानबे को बदलने में कोई दिक्कत नहीं होगी। पाच को अलग कर लो, फिर पचानबे कभी गड़बड़ नही करते, कोई उपद्रव, कोई बगावत, भागना आदि कुछ नही करते। पाच को अलग कर लो, पचानबे के ऊपर पहरेदार रखने की भी कोई जरूरत नही है।

वे पाच है असली उपद्रवी। अगर वे पाच वहा रहे तो झझटें जारी रहेगी। भागने की चेष्टा होगी, बगावत होगी, कुछ उपद्रव होगा। और अगर वे पाच मौजूद रहे तो पाच जो है लीडर्स हैं, नेतृत्व है उनके पास, उनकी मौजूदगी में आप बाकी को भी नही बदल सकते। बाकी सदा उनके पीछे चलेंगे। उनके पांच प्रतिशत को अलग कर लो तो पचानबे प्रतिशत बिलकुल खाली हो जाएगे। और उनकी जगह किसी को भी रख दो, वे उसका नेतृत्व स्वीकार कर लेगे।

यदि यह केवल आदमियो में होता तो हम सोचते, शायद आदमी की समाज-व्यवस्था का यह परिणाम है। वैज्ञानिको ने चूहो पर प्रयोग किये हैं, खरगोशो पर प्रयोग किये हैं, भेडो पर प्रयोग किये हैं, सर्वत्र पाच प्रतिशत हैं। आपने सुना है न कि भेडें कतार बाध कर चलती है, लेकिन किसी के ला पीछे चलती हैं। पाच प्रतिशत भेडे आगे भी चलती है। सभी भेडें पीछे नही चलती, पाच प्रतिशत भेडे आगे भी चलती है। उन पाच प्रतिशत भेडो को अलग कर लो, बाकी झुड एकदम केआटिक हो जाता है। उनको कुछ समझ मे नही आता कि अब क्या होगा।

जो लोग जू मे काम करते है, अजायबघरो मे काम करते है, लदन या मास्को में जहा बडे-बडे अजायबघर हैं, उन अजायबघरो मे काम करनेवाले लोगो को पता है कि जब भी नये बन्दर आते हैं, तब उनमे से पाच प्रतिशत को 'तत्काल अलग कर लेना होता है। वे लीडर्स हैं, पॉलीटिशियन्स है। उनका अलग कर लेना पडता है। वे उपद्रव मचा देंगे। उनको अलग कर लेने के बाद बाकी सब डोसाइल है, पिछलगे है, बिलकुल अनुशासन मान लेते है।

इससे भी बडी मजे की बात जो है, वह यह पता चली है कि जेलखानो मे जो अपराधी है, राजधानियो मे जो राजनीतिज्ञ है, मदिरो में, चर्चों मे, गिरजाघरो मे जो पुरोहित है, यूनिवर्सिटीज में, विश्वविद्यालयों मे, कालेजो मे जो पडित है, ये पाच प्रतिशत हैं सब मिलाकर। यह जरा जटिल बात है।

क्योंकि लदन के जू में प्रयोग किया जा रहा था कि अगर बदरो को ठीक से भोजन, ठीक से सुविधा दी जाए, उनको कोई अड़चन न दी जाए, जगह दी जाए, तो जो पाच प्रतिशत प्रतिभाशाली है वे बाकी बदरो को अनुशासित रखने मे सहयोगी होते है। उनको गडबड नही करने देते है। पाच प्रतिशत नेतृत्व ग्रहण कर लेते है। अगर तकलीफ दी जाए, भोजन कम हो, सुविधा कम हो, अड़चन हो, तो व पाच प्रतिशत क्रिमनल हो जाते है, अपराधी हो जाते है। और वे पांच प्रतिशत बाकी से उपद्रव करवा के हड़ताल या कुछ न कुछ करवाते है।

वैज्ञानिकों का यह कहना है कि अपराधी और राजनीतिज्ञ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए आप कभी देखें, जब तक राजनीतिज्ञ ताकत में नहीं होता है, तब तक वह हड़ताल करवाता है। और जब वह ताकत में हो जाता है, तब वह हड़ताल तुड़वाता है। यह बड़े मजे की बात है। यह वही बन्दर वाला नियम है, इसमें कुछ फर्क नहीं है। **जब तक राजनीतिक ताकत के बाहर है, तब तक वह सब तरह के उपद्रव को क्रान्ति कहता है। जब वही ताकत में आ जाता है, तब सब क्रान्ति को वह उपद्रव कहता है।** जब वह ताकत में होता है, तब कहता है कि वे लोग अपराधी हैं जो उपद्रव कर रहे हैं। जब वह ताकत के बाहर होता है, तब कहता है कि लोग बगावती हैं, विद्रोही है। **उसकी भाषा बदल जाती है।** ताकत में आते में ही वह अनुशासन की बात करता है और वह कहता है कि अगर अनुशासन रहेगा तो सुख-शान्ति सब आ जाएगी। ताकत के बाहर कर दो तो वह कहता है कि बगावत चाहिए, क्रान्ति चाहिए, बिना क्रान्ति के कुछ भी नहीं हो सकता। क्रान्ति से ही सुख आएगा।

लेकिन चाहे अपराधी हो, चाहे राजनीतिज्ञ हो, **यह पांच प्रतिशत ही है मनुष्य के पास।**

आदमियों को छोड़ दें, पशुओं को छोड़ दें, जिन लोगों ने वनस्पतियों पर जीवन भर बहुत प्रयोग किये है, वे कहते हैं कि अफ्रीका के जगल में भी जो वृक्ष सारी परेशानियों, सघर्षों को पार करके जगल के ऊपर उठकर सूरज तक पहुच जाते है, **उनकी संख्या पांच प्रतिशत है।** अगर एक पानी का सरोवर हो और उसमें मछलियां हो और उसमें आप जहर डाल दें तो पाच प्रतिशत मछलियां ही उसमें हैं जो उस जहर में बचने की चेष्टा करती है। बाकी तो राजी हो जाती है। आपके शरीर में जब कोई बीमारी प्रवेश करती है, तब आप के शरीर के सेल्स में, कोशो में भी सिर्फ पाच प्रतिशत ही है जो उसको रेसिस्ट करते है, लड़ते है। अगर वे पाच प्रतिशत अलग कर दिये जाए तो फिर आपके शरीर में कोई रेसिस्टेन्स, कोई अवरोधक शक्ति नहीं रह जाती। तब कोई भी बीमारी प्रवेश कर सकती है।

गरीबी मिटानी बड़ी मुश्किल बात है। पाच प्रतिशत किसी न किसी अर्थ में अमीर होंगे ही। अर्थ बदल सकते हैं। कभी उनकी अमीरी मकान की होगी, कभी उनकी अमीरी ताकत की होगी, कभी उनकी अमीरी ज्ञान की होगी, कभी उनकी अमीरी काव्य की, कला की होगी। लेकिन एक हिस्सा अमीर होगा और एक हिस्सा गरीब होगा।

गरीबी और अमीरी का यह सदर्भ अगर खयाल में रहे तो समाजवाद या साम्यवाद से सस्कार और कर्म के सिद्धान्त में कोई अंतर नहीं पड़ता है। हम बदल सकते हैं, परिस्थिति बदल सकती है; लेकिन व्यक्ति के भीतर की जो क्षमताएं है,

उन्हें बदलना आसान नहीं हैं। उन्हें उचित ही जब बदलना चाहे, तब बदल सकता है।

●

पूछा है, जब हम पुनर्जन्म लेते हैं, तब हिसाब-किताब कहां रहता है, क्या रहता है?

आप हैं हिसाब-किताब। आपके अलावा कहीं हिसाब-किताब नहीं रहता है। कोई जरूरत नहीं है। आप ही हैं करनेवाले, आप ही है भोगनेवाले और आप ही हैं हिसाब-किताव। आप खाता-बही है पूरा अपना। जो-जो आप कर रहे हैं, वह प्रतिपल आपको बदल रहा हैं। **हर कृत्य आपकी बदलाहट है। और हर कृत्य आपका जन्म है। और हर कृत्य के साथ आप नया आदमी अपने भीतर निर्मित कर रहे हैं।** वही है हिसाब-किताब। अलग रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। कोई प्रयोजन भी नहीं है।

आपको जानकर ही आपका पूरा हिसाब-किताब जाना जा सकता है। आपका एक-एक कृत्य बताता है कि आपकी आदतें क्या है, गहरे संस्कार क्या हैं। अब जैसे मैंने संत फ्रांसिस की बात कही; यह आदमी कहता है कि मुझे कोई धोखा दे जाए तो भी मैं भरोसा ही करूंगा। यह इसके एक गहरे संस्कार की खबर है। इसने भरोसे का संस्कार बनाया है जिसे कोई आदमी धोखा देकर इतनी आसानी से तोड़ नहीं सकता। बहुत मुश्किल है इसके संस्कार को तोड़ना। और जब इसका संस्कार टूटता नहीं है धोखा देने से, तब और मजबूत हो जाता है। **प्रत्येक चीज मजबूत होती है पुनरुक्ति से।**

आपको कोई धोखा न भी दे, कोई आदमी आपके कमरे में ऐसे ही चला आए, तो भी जो पहला खयाल उठता है, वह भरोसे का नहीं होता। अभी इसने कुछ किया नहीं है। न उसने आपकी गर्दन दबाई, न कोई आप का सामान ले कर भागा, लेकिन जो पहला खयाल आपके भीतर उठता है वह वह उठता है कि पुलिस को आवाज दें, या क्या करें। अभी इसने कुछ भी तो नहीं किया। अभी इसके सम्बन्ध में कोई भी निर्णय लेना उचित नहीं है। लेकिन आपने निर्णय गहरे में ले ही लिया।

ऐसा है यह कुछ। कोई आदमी बुरा है, इसके लिए हमें किसी प्रमाण की जरूरत नहीं होती है। वह तो हमारे संस्कार से मिल जाती है खबर हमें। कोई आदमी भला है तो हमें प्रमाण की जरूरत होती है। गैर-भरोसा हमारी आदत है। भरोसा हमारी मजबूरी है। कभी कोई मानता ही नहीं है और ऐसा व्यवहार किये जाता है कि हमें भरोसा करना पड़ता है। लेकिन गैर-भरोसा हमारी आदत है।

आपको लगता है कि आप कभी कभी क्रोध करते है। गलती है आपकी। क्रोध आपकी आदत है। कभी-कभी ऐसा होता है जब आप क्रोध में नहीं होते; लेकिन इतना कम होता है कि आपको पता ही नहीं चलता। इसलिए आप सोचते हैं कि

कभी-कभी आप क्रोध में होते हैं। बस आपका क्रोध ऐसा है कि कभी-कभी सौ डिग्री पर उबलता हुआ होता है, और कभी ल्यूकवार्म, कुनकुना होता है। कुनकुना क्रोध आपको पता ही नही चलता; क्योंकि वह आपकी आदत है। आप जिन्दगी से ही वैसे हैं।

और कभी-कभी जब यह कुनकुना क्रोध भी नहीं होता है आप में, तब क्षण भर को आपको झलक मिलती है प्रेम की। अन्यथा नही मिलती है।

फिर कठिनाई यह है कि जितना आपके क्रोध का सस्कार है, उतना ज्यादा आप क्रोध करते हैं, और जितना ज्यादा क्रोध करते हैं, उतना ज्यादा सस्कार मजबूत होता चला जाता है। **हम अपने ही कारागृहों में बन्द होते चले जाते है।**

इसे कही से तोड़ना पड़ेगा।

दो बातें खयाल रखें। एक, अगर मैं कहता कि आपका कर्म का फल आप भोग रहे हैं, तब तो तोड़ने का कोई उपाय नही था। समझ ले फर्क। अगर मैने कोई कर्म किया है और उसके कारण मै आज क्रोधित हो रहा हू तो मुझे होना ही पड़ेगा। कोई उपाय नही है। लेकिन मै कहता हू कि कर्म का तो फल तत्काल मिल जाता है, सिर्फ संस्कार रह जाते हैं। सस्कार का अर्थ है केवल एक खास ढंग का काम करने की वृत्ति। यह मजबूरी नही है। **इसलिए आप चाहें तो तत्काल अपने को बदल सकते है।** चाहे तो तत्काल बदल सकते हैं, क्योकि यह सिर्फ एक आदत है।

कभी आपने खयाल किया है कि कुछ बातें आप केवल आदत के कारण ही किये चले जाते हैं? केवल आदत के कारण, कुछ और वजह नही होती है। आदत को तोडना कठिन है, लेकिन असभव नही है। और कभी-कभी जरा सी बात आदत को तुडवा देती है। जरा सी बात।

अभी अमरीका के कुछ मनोवैज्ञानिक, जो रीयल थेरैपी के प्रतिपादक हैं, कहते हैं कि यह यथार्थ मनोचिकित्सा है। वे बडे अनूठे प्रयोग कर रहे हैं, और बड़े काम के प्रयोग। वे कहते हैं कि एक आदमी को जिन्दगी भर समझाया कि सिगरेट मत पीयो, मत पीयो। वह पच्चीस दफे छोड़ता है, फिर-फिर शुरू कर देता है। शराब पीता है, छोड़ता है, फिर शुरू कर देता है। कोई उपाय नही है। वे कहते हैं कि आपकी थिरैपी रीयल नही है, आप की चिकित्सा वास्तविक नही है, यथार्थ नही है। क्योंकि शराब है वास्तविक चीज और आपका समझाना है केवल शब्द। शराब है एक यथार्थ और शब्द हैं सिर्फ सिद्धान्त। ये नही तोड़ पाएगे। तो वे कहते है कि कुछ और किया जाना जरूरी है। वे क्या करते हैं?

उन्होंने एक इजेक्शन ईजाद किया है। शराबी को वह इन्जेक्शन रात मे दे दिया जाता है। उसे पता भी नही चलता है। या उन्होने गोलिया भी ईजाद की है। वे उसको खिला दी जाती हैं। उन गोलियों के बाद जब भी वह शराब पीता है, तब नौसिया पैदा होता है; बडी बेचैनी पैदा होती है, वोमिट होती है और सारा

शरीर थर-थर कंपने लगता है। और रोआं-रोआं इतनी पीड़ा से भर जाता है कि नरक उपस्थित हो गया। यह जो इंजेक्शन है, उसके और शराब के मिलने से ही यह परिणाम होता है। वह आदमी अब दुबारा हाथ में शराब नहीं ले सकता। जैसे ही वह आदमी हाथ में शराब लेता है, वह अब उसे याद हो जाता है जो हुआ। और हजारों साल समझाने से जो नहीं होता वह एक इंजेक्शन से क्यों हो जाता है? क्या हो गया?

वह आदत थी सिर्फ एक। लेकिन अब आदत के विपरीत एक बड़ा दुख खड़ा हो गया। वह आदत इतनी बड़ी नहीं थी कि इस दुख के बावजूद खड़ी रहे।

आमतौर से हम सोचते हैं कि लोग शराब दुख के बावजूद पीते हैं। हम गलत सोचते हैं। लोग कहते हैं कि एक आदमी शराब पी रहा है, उसकी पत्नी दुख में पड़ी है, उसके बच्चे दुख में पड़े हैं, फिर भी शराब पीये चला जा रहा है। इतना दुख हो रहा है, फिर भी पीये जाता है। आप गलती में हैं। हो सकता है, यह दुख देना भी शराब पीने का एक हिस्सा हो। शायद वह और किसी तरह से दुख देने में समर्थ न हो, या उतना आक्रमक न हो, इसलिए इस बारीक तरकीब से वह दुख भी दे लेता है। अपना दुख भी भुला लेता है, और दूसरों को दुख भी दे लेता है। दोनों काम कर लेता है।

नहीं, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। बल्कि यह भी हो सकता है कि पत्नी दुखी दिखाई न पड़े और बच्चे बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ें और सब कहें कि पिताजी, आप मजे से पीये चले जाएं, चौबीस घंटे पीएं, तो शायद वह चौंक कर खड़ा भी हो जाए कि मामला क्या है! कोई दुखी नहीं हो रहा है और मैं शराब पीये चला जा रहा हूं! शायद तब शराब का रस ही चला जाए।

जिन्दगी बड़ी जटिल है।

लेकिन ये रीयल थिरैपी के लोग कहते हैं कि अगर किसी भी आदत को तोड़ना है तो उस आदत को इतने बड़े दुख के साथ जोड़ देना जरूरी है कि वह जो सिर्फ पुरानी वृत्ति की वजह से आदमी बह जाता था, वह दुख के बीच में खड़ा हो जाए और उसको चुन कर जाना पड़े कि अगर मैं जाना हूं आदत में तो यह दुख जोड़ना पड़ेगा। बड़ी हैरानी की बात है, आदतें आसानी से बदल जाती हैं।

पावलव, साल्टर, पश्चिम के, खास कर रूस के वैज्ञानिक कहते हैं कि सिर्फ रिकन्डीशनिंग की जरूरत है, वे कहते हैं कि सिर्फ पुनर्संस्करण की जरूरत है। सिर्फ जो संस्कार बंधे हुए हैं, उनको नये संस्कार से जोड़ देने की जरूरत है। यात्रा बदल जाती है। और मैं मानता हूं कि उनकी बात में भी थोड़ी सचाई है।

कोई आदमी कर्मों का फल नहीं भोग रहा है, कर्मों के फलों के संस्कार से बंधा जी रहा है। संस्कार मजबूत है, अगर आप उसके साथ बहते हैं। संस्कार कमजोर है, अगर आप निर्णय करते हैं और रुक जाते हैं। इसलिए ऐसा कोई भी कृत्य नहीं

है, जिसे आप न रोक सकते हो । और अगर आप कर रहे है तो आप ही जिम्मेवार हैं । और अपने मन को ऐसा मत समझाना कि क्या करें, जन्मो-जन्मो का कर्मफल है, भोगना ही पड़ेगा । यह भी होशियारी है । यह भी जो आप करना चाहते है, उसको करते रहने की दलील है । और कुछ भी नही । यह भी एक जस्टिफिकेशन है, यह कि आप अपने को न्यायोचित ठहरा रहे हैं ।

बड़े मजे की बात है कि कर्म का सिद्धान्त तो धर्म का अग था और हमने कर्म के सिद्धान्त से अपने सब अधर्म के लिए सहारा खोज लिया । कहते है, क्या कर सकते है ? हाथ के बाहर है बात । जो हो चुका, वह हो चुका, वह भोगना ही पड़ेगा । लेकिन, जो हो चुका, वह आप भोग चुके । अगर आप पुन उसे दोहरा रहे हैं तो यह केवल एक बार-बार दोहराई गई आदत है । किसी कर्म का फल नही है । हर बार दोहरा कर फल पाएंगे और हर बार आदत मजबूत होती चली जाएगी । **धीरे धीरे आदमी आदतों का पुंज ही रह जाता है । हम सब आदतों के पुंज है ।**

इन आदतो को बदलना हो तो संकल्प की जरूरत है । और सकल्प की शुरुआत इससे होती है कि आपको यह खयाल में आ जाए कि **यह बदली जा सकती है ।** अगर आपको यह खयाल है कि यह बदली ही नही जा सकती तो आपका संकल्प बिलकुल मर जाएगा ।

एक जर्मन-यहूदी फ्रैंकल पिछले महायुद्ध के वक्त जर्मनी के एक बड़े कारागृह में बन्द था । बड़ी हैरानी की बातें उसने अपने सस्मरणो मे लिखी हैं । क्योंकि वह एक बडा मनसविद है, वह निरीक्षण करता रहा है कि क्या हो रहा है ।

दिसम्बर करीब आ रहा था । त्योहार के दिन करीब आ रहे थे । और सभी कैदियो को यह आशा थी कि कम से कम क्रिसमस के करीब छुटकारा हो जाएगा । क्रिसमस के करीब हिटलर दया करेगा और लोग छोड दिये जाएंगे । फ्रैंकल ने लिखा है कि क्रिसमस तक कितनी ही तकलीफें दी गईं कैदियो को, उनमें से कोई नही मरा । लोग बीमार रहे, लेकिन एक आशा थी । क्रिसमस करीब आ रहा है, उस आशा के साथ प्राण में बल था । उसने लिखा कि जिस दिन क्रिसमस निकल गया, उसके पन्द्रह दिनो मे अनेक लोग मर गए । क्रिसमस के बाद । और उसका कहना है कि कुल कारण इतना था उन पन्द्रह दिनो मे मरने का कि **सब आशा टूट गई** । क्रिसमस पर भी छुटकारा नही मिला तो अब कोई आशा नही रही । और जब आशा नही रह जाती, तब जीवन-ऊर्जा क्षीण हो जाती है ।

जिस कारागृह मे फ्रैंकल बद था, उसमें एक एटॉमिक भट्ठी थी । उसमें हजारो कैदियो को इकट्ठा रखकर क्षण भर मे राख कर दिया जा सकता था । और रोज हजारो कैदी राख होते थे । रोज उस भट्टी की चिमनी से धुवा निकलता था । फिर उनका कारागृह बदला गया । कोई पाच सौ कैदी फ्रैंकल के साथ दूसरे कारागृह मे भेजे गए । दो दिन पैदल उन्हें चलाया गया । ठडी रातें, नगे पैर, बिना

कपड़ों के, भूखे-प्यासे, उन्हें चलाया गया । बिलकुल थके हुए, मुर्दा, मरे हुए, वे किसी तरह पहुंचे। आधी रात में जब वे पहुंचे दूसरे कारागृह में, तब उनकी जांच-पड़ताल होने में पूरी रात लग गई। एक-एक आदमी को पूरी जांच-पड़ताल करके उन्हें अन्दर किया गया ।

फ्रैंकल ने लिखा है कि इतनी यातना, इतनी यात्रा, इतनी थकान, भूख, परेशानी, और उस पर भी रात जब हम खड़े थे बारह बजे मैदान में क्यू लगा के, तो ओले पड़ने लगे, बर्फ पड़ने लगी। लेकिन फिर भी सब कैदी गीत गा रहे थे, गुनगुना रहे थे। मजाक चल रही थी, लोग हंसी कर रहे थे। उसका कुल कारण इतना था कि उस जेलखाने में चिमनी नहीं दिखाई पड़ रही थी। वह जो चिमनी थी पिछले जेलखाने में, वह नहीं थी। सब दुख भूल गया। यह दो दिन की यात्रा, यह वर्षों की तकलीफ, सब भूल गया। यहां बर्फ पड़ रही है, यह भी भूल गया। लोग गीत गुनगुनाने लगे।

फ्रैंकल ने लिखा है कि मैंने जब अपने साथी-कैदियों को गीत गुनगुनाते, पुराने मजाक दोहराते, एक दूसरे से कहानियां कहते पहली दफा सुना, तब मैं बहुत हैरान हुआ कि बात क्या है। फिर थोड़ी देर में पता चला कि यह चिमनी नहीं दिखाई पड़ रही है वहां। वे आश्वस्त है, कितनी भी तकलीफ हो मौत अभी करीब नहीं है।

अगर ऐसा हो कि रात के अंधेरे में चिमनी न दिखाई पड़ती हो और सुबह रोशनी हो और चिमनी दिखाई पड़ जाए तो अनेक तो वहीं गिर पड़ेंगे। दो दिन की भी थकान और पैर एकदम जवाब दे देंगे।

आदमी अपने भरोसे से जीता है, अपनी आशाओं से जीता है, अपने अभिप्रायों से जीता है। अगर आपको खयाल है कि आप अपने को बदल सकते हैं तो यह खयाल ही बदलाहट की पहली बुनियाद बन जाता है। और अगर आपको खयाल है कि बदलाहट हो नहीं सकती, फिर हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं, आप जमीन पर गिर जाते हैं। **जिन्दगी की ऊर्जा आपके खयालों से उठती और गिरती है।**

मैं आपसे कहता हूं कि संस्कार हैं आपके पास, लेकिन संस्कार पानी की सूखी रेखाओं की तरह हैं। अगर पानी को कुछ न किया गया तो वह उनसे बह जाएगा। लेकिन जरा सी भी चेष्टा की गई तो पानी नई रेखा बना लेगा। पुरानी रेखा कोई नियति नहीं है कि पानी उसी से बहे। कुछ न किया, पैसिवली पानी छोड़ दिया गया, तो पुरानी रेखा से बहेगा। लेकिन अगर जरा सी भी चेष्टा की गई तो पुरानी रेखा मजबूर नहीं कर सकती पानी को बहने के लिए। बस इतना ही संस्कार है आदमी पर। **अतीत से हम बंधे हैं, लेकिन भविष्य के प्रति हम मुक्त हैं।** इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

अतीत से हम बंधे हैं, लेकिन बंधे हैं अपने ही भाव के कारण। भविष्य के प्रति हम मुक्त हैं। और हम चाहें तो एक झटके में अतीत की सारी रस्सियों को तोड़

दे सकते हैं। वे रस्सियां वास्तविक नहीं हैं, जली हुई रस्सियां हैं, राख की रस्सियां हैं। रस्सियो जैसी दिखाई भर पडती हैं।

एक रस्सी को जलाएं, जल जाए, राख हो जाए; फिर भी बिलकुल रस्सी मालूम पड़ती है, रेशा-रेशा रस्सी मालूम पडती है। और छूकर न देखें तो यह भी हो सकता है कि अगर वह हाथ में बधी हो तो सोचें कि कैसे भाग सकते हैं। छूकर जरा देखें, जली हुई है। टूट सकती है अभी, गिर सकती है। **संस्कार का अर्थ है जली हुई रस्सियां।**

लेकिन अगर आप उनको रस्सिया मानकर चलते हैं तो आप उनको प्राण देते है। मनुष्य अपने कर्म का फल भोगता है और प्रतिपल नये कर्म करने को मुक्त हो जाता है। सिर्फ आदत के कारण पुराने को दोहराये, यह बात दूसरी है। लेकिन पुराने को दोहराना अनिवार्य नही है। इसलिए कोई आदमी अगर ठीक सकल्प का आदमी हो तो एक क्षण मे पूरी जिन्दगी बदल ले सकता है। एक क्षण में। इस तरफ एक जिन्दगी और दूसरी तरफ दूसरी जिन्दगी शुरू हो सकती है। **और इस बदलाहट को मै संन्यास कहता हूं।** इस सकल्प को मैं सन्यास कहता हू, जब कोई आदमी तय करता है कि अब मै पुराना नही रहूगा, मैंने नया होने का तय कर लिया। एक क्षण मे भी यह हो सकता है। और जन्मों-जन्मो मे भी न हो, यह हम पर निर्भर है।

एक मित्र ने पूछा है, हर प्रवचन के अत मे आप कीर्तन पर क्यो जोर देते है? कीर्तन के सम्बन्ध मे थोडा सा समझाइए।

कीर्तन के सम्बन्ध मे समझाना जरा मुश्किल है। क्योकि समझ के जो परे है, उसी को कीर्तन कहते है। और जोर इसलिए देता हू कि आपकी समझ बहुत थक गई होगी, अब थोडा नासमझी का काम आप कर लें। जो मै बोल रहा हू, वह तो आपकी बुद्धि पर आघात करता है। अगर आप इस तरह सुन रहे हो कि बुद्धि को हटा दे तो आपके हृदय तक जाता है। लेकिन ऐसा सुनना कठिन है। बुद्धि बीच मे खडी रहती है, द्वार पर खडी रहती है। और भीतर जाने देने के पहले वह जाच-परीक्षा करती है कि अपने मत की बात है, कि अपने शास्त्र की बात है, कि अपने वेद में कही है, कि नही कही है, तो भीतर जाने देती है।

वैज्ञानिक कहते है, आपकी इद्रिया और आपकी बुद्धि, जैसा हम आमतौर से सोचते है, बाहर की समवेदनाओ को भीतर ले जाने के उपाय हैं। यह बात थोडी ही दूर तक सच है। केवल दो प्रतिशत चीजो को भीतर जाने दिया जाता है और अट्ठानबे प्रतिशत चीजों को बाहर रोक दिया जाता है। **यह जरूरी भी है।** अगर आप रास्ते से गुजर रहे है और सौ प्रतिशत जो घट रहा है रास्ते पर, वह आपके भीतर चला जाए, तो आप घर न पहुच सकेंगे। आप घर पहुच जाते हैं इसलिए

कि आपका मस्तिष्क पूरे समय चुनाव कर रहा है कि किसको बाहर जाने देना है और किसको रोक देना है। अगर सभी चीजें, जो घट रही हैं, आपके मस्तिष्क में घुस जाएं तो आप घर न पहुंच पाएंगे, या किसी दूसरे के घर पहुंच जाएंगे, या यदि अपने भी घर पहुंच गए तो आप पहचान न पाएंगे कि यह आपका घर है। आप पागल हो जाएंगे। इस वजह से बुद्धि पूरे वक्त सुरक्षा करती है कि बिलकुल जांच-पड़ताल करके भीतर किसी चीज को प्रवेश करने दें।

आप सभी चीजें नहीं सुनते हैं, सभी आवाजें नहीं सुनते हैं। और आप के भीतर क्षमता है इस बात की कि आप जो सुनना चाहें सुनें और जो न सुनना चाहें न सुनें। कान पर आवाज पड़ जाए तो भी आपकी बुद्धि चूक सकती है। आपको लगे नहीं सुनना है तो कान सुन लेगा और बुद्धि अपने सम्बन्ध भीतर तोड़ लेगी।

अभी एक वैज्ञानिक, मास्टर, प्रयोग कर रहा था, एक छोटी सी बिल्ली पर प्रयोग कर रहा था। तो बिल्ली के कान के पास जोर से आवाज की जाती है। आवाज होने से बिल्ली चौंक जाती है — आवाज इतनी तेज है। उसके चौंकने का, उसके कान में आवाज गई, उसका ग्राफ यंत्र पर बन जाता है कि बहुत जोर का आघात हुआ और बिल्ली का पूरा मस्तिष्क-तंत्र झनझना गया। तब अचानक दूसरे कोने में एक चूहे का प्रवेश कराया जाता है। बिल्ली चूहे को देखती है और उसकी सारी आत्मा उसकी आंखों की राह से उस चूहे की तरफ लग जाती है। फिर आवाज की जाती है, मगर बिल्ली को सुनाई नहीं पड़ती। वह ग्राफ भी नहीं बनता है, जो पहले बना था। आवाज अब भी हो रही है, कान पर चोट पड़ रही है, लेकिन वह जो ग्राफ बनता था कि उसके मस्तिष्क का तंत्र झनझना गया, वह बिलकुल नहीं बनता है। क्या हो गया है?

बिल्ली ने अपनी बुद्धि और कान का सम्बन्ध तोड़ दिया। अब बुद्धि चूहे की तरफ दौड़ गई।

हम पूरे वक्त सक्षम हैं भीतर अपने सम्बन्ध तोड़ने और जोड़ने में। चूंकि यह एक बचाव की अनिवार्य शर्त है आदमी की, इसलिए बुद्धि की आदत हो गई है बहुत चुनचुन कर भीतर जाने देने की। तो जब मुझे आप सुन रहे हैं, तब भी बुद्धि उस आदत का उपयोग करती है।

जो उस आदत को छोड़कर सुनता है, उसको ही कल हमने शिष्य कहा था। वह सीखने के लिए इतना तैयार है कि बुद्धि के सब डिफेन्स-मेजर, सुरक्षा के सब उपाय अलग कर देता है, द्वार खुला छोड़ देता है। यही श्रद्धा का अर्थ है।

श्रद्धा का अर्थ है जिस तरफ श्रद्धा है उस तरफ हम अपनी सुरक्षा के सब उपाय छोड़ देते हैं। तब तो आपके हृदय तक बात पहुंच जाएगी, तब तो आपके हृदय के तन्तु भी झनझना जाएंगे। तब आपको कठिनाई नहीं होगी समझने में कि कीर्तन क्या है। आप खुद भी करना चाहेंगे। और तब मैं जो बोल रहा हूं, वह आपकी

बुद्धि का भोजन नही बनेगा, **आपके हृदय का रस हो जाएगा।** और वह रस प्रकट होना चाहेगा। और वह रस मग्न होना चाहेगा। और वह रस डूबना चाहेगा। तो जो हृदय से सुन रहे हैं उनके तो पैर थिरकने लगेंगे, उनका तो सिर तक डोलने लगेगा। उनके तो हाथों मे कोई नाचने लगेगा। चाहे वे संभलकर अपनी कुर्सी पर बैठे रहे भला, पास पडोस के भय से, लेकिन कोई उनके पीछे नाचने की तैयारी करने लगेगा। जो कहा है, अगर वह हृदय को छू जाए तो आप जरूर ही नाचना चाहेंगे। **क्योंकि हृदय नाचना ही जानता है।**

हृदय पर जब कोई आघात गहरा हो जाता है और हृदय मे जब कोई बीज गहरे में उतर जाता है, तब हृदय एक ही तरह से अपने को प्रकट करना जानता है कि सारा रोआ-रोआ नाच उठे। तो जिनको हृदय तक बात पहुच जाती है, वे नाचना चाहते हैं। और उन्हे बिना नाचे सडक पर छोड देना खतरे से खाली नही है। एक दस मिनट नाचकर वे हलके हो सकेंगे। वह जो भीतर घना हुआ, वह प्रकट हो जाएगा, जो बादल आकाश में आया, वह बरस लेगा। वे हलके होकर जाएंगे। और एक सम्बन्ध भी जोडकर जाएगे कि बुद्धि और हृदय मे विरोध नही है। विरोध हमारा खडा किया हुआ है।

लेकिन जिनकी समझ मे नही आया, जिनकी समझ द्वार पर पहरा बनकर खडी हो गई और जिन्होने हृदय तक नही पहुचने दिया, उनको जरूर सवाल उठेगा कि कीर्तन की क्या जरूरत है ? न केवल सवाल उठेगा, वल्कि उनको ऐसा भी लगेगा कि यह तो बडा विपरीत है, कि जो मैं कहता हू उससे यह कीर्तन विपरीत मालूम पडता है, कि यह तो बडी नासमझी जैसी बात है, ग्राम्य है कि लोग नाचे-कूदें।

ध्यान रखे, मेरे लिए सभी विपरीत, जैसे लाओत्से ने कहा है, **परिपूरक है।** जब मैं एक घटे, डेढ घटे तक आपसे बुद्धि की बात करता हू, तब आपका बैलेन्स झुक जाता है एक तरफ। जरूरी है कि इससे विपरीत कुछ करके हम विदा हो। तब आप ज्यादा बैलेन्स्ड, ज्यादा सन्तुलित होकर जाएगे। **कुछ हृदय का हम कर लें।** और भी कारण है।

जो मैंने कहा है, वह आप मे गहरे उतर जाएगा अगर आप सुनने के बाद नाच कर लौटे। जो मैंने कहा है, अगर आप उसे सोचते ही लौटे तो आप उसको खराब कर लेंगे। मैंने कुछ कहा है, आपके ऊपर वह हावी है, आपके सिर पर पर हावी है, आप उसको सोचते लौटेंगे। तो आप करेंगे क्या ? आप उसको सोचकर विकृत कर देंगे। उचित है, दस-पन्द्रह मिनट के लिए एक खाली गैप मिल जाए, आपको मौका न मिले कुछ करने का और वह जो आपके ऊपर है वह धीरे धीरे रिस-रिस कर भीतर चला जाए। एक पन्द्रह मिनट के लिए जरूरी है कि आपको मौका न मिले। आपको मौका मिला तो आप उसको अस्त-व्यस्त कर देंगे। इसलिए अगर आप एक-पन्द्रह मिनट नाचकर, भूल कर बुद्धि को, हृदयपूर्वक जी कर लौट जाते

हैं, तो जो मैंने आपसे कहा है आप उसको विकृत न कर पाएंगे, आपके विकृत करने के पहले आपके हृदय तक उसकी थोडी सी धाराए पहुच गई होंगी । वे ही धाराएं वस्तुतः काम की हैं ।

फिर जो मैं कह रहा हूं, वह कितना ही बौद्धिक मालूम पड़े, बौद्धिक नहीं है। कहना, अभिव्यक्ति, बौद्धिक है । और मैं उसे इस भांति समझाने की आपको कोशिश करता हू कि आपके तर्क को भी समझ में आ जाए । लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह तार्किक नही है । तर्क केवल माध्यम है । शब्द केवल उपाय हैं । जो मैं कह रहा हू, वह बिलकुल अतर्क्य है । और जो मैं कह रहा हू, वह विचार के अतीत है । इसलिए अगर मैं कहने पर ही आपको छोड दू तो आप बहुत जल्दी तोतो की तरह पडित बन जाएंगे, या पडितो की तरह तोते बन जाएगे । आपको सब बाते कंठस्थ हो जाएगी और आप भी दूसरो को कह सकेंगे । बस इतना ही होगा । इसका कोई बहुत अर्थ नही होनेवाला है । मेरा आपको कोई तोते बनाने का जरा भी प्रयोजन नही है । आपको पता न होगा, अगर आप एक-दस मिनट नाच लिए, गीत गा लिए, आनन्दित हो लिए, तो आप तोते नही बन पाएगे । आप हलके हो गए । आप पर जो भार पडा था, बुद्धि पर जो तनाव पडा था, वह हलका हो गया । और जो सारभूत है, वह आपके भीतर रह जाएगा। और जो शब्द हैं, वे तिरोहित हो जाएगे ।

यह कीर्तन इसलिए है कि जो मैंने आपसे कहा है, उसके शब्द भूल जाए और उसका सत्य आपके साथ रह जाए । यह कीर्तन इसलिए है कि जो मैंने आपसे कहा है, उसका माध्यम न पकड जाए, कन्टेनर न पकड जाए, उसकी कन्टेन्ट्स, उसकी सार-वस्तु आपमें रह जाए । मैं नही कहता आपसे कि जो मैं कहता हू उसे आप याद रखें । मैं कहता हू, आप कृपा करके भूल जाए, आप उसे याद मत रखें । जो सार्थक है, वह भीतर रह जाएगा । और वह आपकी जिन्दगी मे जगह-जगह से कभी-कभी प्रकट होगा ।

जो गैर-सार्थक है, उसे ही याद रखना पडता है । इमर्सन ने कही शिक्षा की परिभाषा करते वक्त कहा है कि शिक्षा वह है जो स्कूल छोडने पर भूल जाती है, सब भूल जाती है; लेकिन फिर भी शिक्षित और अशिक्षित आदमी मे एक फर्क रह जाता है । वह फर्क क्या है ? वह जो सार्थक था, अगर डूब गया, तो वही फर्क है, वही सुसंस्कार है, वही संस्कृति है । शिक्षा तो भूल जाती है । आज आपको ज्यामिति के थ्योरम कितने याद हैं ?

अंग्रेज लेखक समरसेट माम ने लिखा है कि मैं लाख उपाय करूं—और उसकी बात मेरी समझ में पड़ी, क्योकि मैं भी परेशानी में रहा हू—लिखा कि मैं लाख उपाय करूं, ए से लेकर जेड तक पूरी वर्णमाला याद नही आती । मुझे भी नही आती याद, उसको फिर-फिर गिनना पडता है । डिक्शनरी देखी तो फिर से देखना

पड़ता है कि एच किसके आगे है और किसके पीछे। समरसेट माम ने लिखा है कि कितने उपाय करू, वर्णमाला याद नहीं रहती है। वर्णमाला याद आने के लिए है भी नहीं। भूल ही जाना चाहिए। क्योकि जिनको वर्णमाला ही याद आती है, उनको फिर कुछ और याद नहीं आएगा। वर्णमाला याद रखने की चीज नहीं है, भूल जाने की चीज है। उसका काम रह जाता है, उसका उपयोग रह जाता है। **वही उपयोग है।**

शास्त्रो के साथ कठिनाई है, सिद्धान्तो के साथ कठिनाई है कि शब्द याद रह जाते हैं, उपयोग बिलकुल याद नही रहता।

तो मैं जो कहता हूं, वह आपके मस्तिष्क पर बोझ न बन जाए, आप उस बोझ से हलके होकर लौटें। वह भूल ही जाए, उतर ही जाए। तब जो सार है, जो बीज है, वह आपके भीतर पड जाएगा। और किसी दिन अचानक आप पाएगे कि उसमें अकुर आ गया, उसमें फूल आ गये। और वे फूल ही, जो मैंने कहा है, उसके सत्य की खबर देगे। और जो मैंने कहा है, अगर वही आपको याद है, तो केवल शब्द आप में दोहरते रहेगे, और **सत्य से आप वंचित रह जाएंगे।**

इसलिए और इसलिए भी कि मेरा मानना है कि बुद्धि से कभी कोई परमात्मा तक नही पहुंचता है। सोच-सोच कर भी कभी कोई सत्य तक नही पहुचता है। नाचकर तो कभी-कभी कुछ लोग पहुच गये है। हिसाब करके कभी कोई पहुचा है? कुछ पागल तो कभी-कभी पहुच गए हैं, लेकिन होशियार लोग नही पहुच पाते। **उनकी होशियारी ही बाधा बन जाती है।**

लेकिन एक अडचन है। जो लोग पागलपन की बात करते है, वे होशियारी की बात नही करते। इसलिए होशियार आदमी उनके पास फटकते ही नही हैं। और जो लोग होशियारी की बात करते हैं, वे पागलपन से बिलकुल दूर रहते हैं, साफ-सुथरे रहते हैं। वे पागलपन को बिलकुल अछूत मानते है। उनके पास पागल नही फटकते। लेकिन ध्यान रहे, **समझ और पागलपन का एक गहरा तालमेल जब निर्मित होता है, तब जीवन में श्रेष्ठतम क्रान्ति घटित होती है।**

बुद्धिमानी अगर हस न सके तो थोडी कम बुद्धिमानी है। बुद्धिमान अगर नाच न सके तो थोडा कम बुद्धिमान है। अगर बुद्धि हलकी होकर उड न सके तो पत्थर है। मेरी दृष्टि मे **जीवन इन विरोधों का एक संगम है।**

सोचें खूब, लेकिन सोचने पर रुक न जाए। कही एक क्षण सोचने को एक तरफ रख दें वस्त्रों की तरह, नग्न हो जाए सोचने से, नाचें, कूदें, छोटे बच्चो की तरह हो जाए। अगर आप छोटे बच्चे में और बुद्धिमान में, दोनो के बीच कोई सेतु बना लेते हैं तो आपने वह गोल्डन ब्रिज, वह स्वर्ण-सेतु बना लिया जिस पर होकर ही सभी को जाना पडता है। अगर आप वह नही बना पाते है, आप अधूरे रह जाते हैं। अगर आप सिर्फ नाच-कूद ही सकते हैं तो आप पागल है। अगर आप सिर्फ

सोच ही सकते है तो आप दूसरे ढग के पागल है। अगर ये दोनो एक साथ आपमें सभव है तो इन दोनों का मिलन एक नये तत्व को जन्म दे जाता है, **जिसको प्रज्ञा कहते है, जिसको विजडम कहते हैं** । इसलिए भी ।

●

एक और मित्र ने पूछा है कि हमने बहुत कीर्तन देखे, लेकिन कीर्तन में एक व्यवस्था होनी है, ढग होता है, यह यहा जो होता है बिलकुल बेढगा है। इसमें कोई व्यवस्था नही है। कोई कैसे ही नाचता-कूदता है, कोई कैसे ही चिल्लाता है।

उनका खयाल ठीक ही है। जानकर ही यह अव्यवस्था है। ऐसा कहिए कि **व्यवस्था से ही यह अव्यवस्था है**। यह कोई अकारण नही हो रहा है। क्योकि मेरा मानना है कि जब कोई व्यवस्था से नाचता है, तब नर्तक हो सकता है, तब कीर्तन नही होता। व्यवस्था एक बात है। जब कोई व्यवस्था से गाता है, तब गायक हो सकता है। वह दूसरी बात है। लेकिन जब कोई भाव से, हृदय की उमग से, सहजता से, नाचता है और गाता है, **तब कीर्तन का जन्म होता है।** कीर्तन की कोई व्यवस्था नही हो सकती। नृत्य एक बात है, और कीर्तन में नाचना बिलकुल और बात है। स्पॉन्टेनिअस, सहज-स्फूर्त होना चाहिए। जो अतस् में उदित हो रहा हो, वही होना चाहिए। फिर हाथ-पैर जैसी भी मुद्राओं में होना चाहें, उन्हे होने की स्वतत्रता होनी चाहिए।

आपका शायद पता नही कि जब हम शरीर का पूरी मुक्ति दे देते है, और भाव के साथ शरीर को भी पूरा छोड़ देते है, तब अगर यह छोड़ना पूरा हो जाए **तो आपको समाधि की पहली झलक इससे ही मिलेगी**। क्योंकि तब शरीर पर कोई बन्धन नही होता, क्योंकि नियम तो बन्धन है, व्यवस्था एक बन्धन है। और जब आप व्यवस्था रखते है, तब सचेतन रहना पड़ता है, पूरे वक्त होश रखना पड़ता है कि कुछ गलती तो नही हो रही है, कोई ताल में, पद में, कही भूल तो नही हो रही है। तो फिर बुद्धि काम जारी रखती है। व्यवस्था का अर्थ है कि बुद्धि मौजूद है। हृदय को तब मौका नही मिला। **यह कीर्तन हृदयपूर्वक है।**

आप अगर यहा कौन कैसी भूल-चूक कर रहा है, यह देख रहे है, तो आप गलत जगह आ गये है। आपको किसी नर्तकी को, किसी नर्तक को देखना चाहिए। वहा भूल-चूक नही होगी।

यहा आपको देखना चाहिए कि कौन कितना स्वाभाविक हो गया। और स्वाभाविक कोई हो गया है या नही हो गया है, इसे बाहर से देखना बडा मुश्किल है। यह तो खुद ही कोई हो तो ही समझ में आता है। तो बेहतर यह है कि खुद होकर देखिए। एक स्वाभाविकता यह भी है, जब हम कुछ भी नही रोकते; पैर जैसे नाचना चाहते हैं उन्हे नाचने देते है। कोई नियम, कोई अनुशासन नही होता। मन जैसे उछलना चाहता है, उसे उछलने देते है।

एक-दस मिनट अपने शरीर, अपने मन को सहज छोड़कर देखिए। उस सहज में डूबते ही आपको पहली दफा स्वतन्त्रता अनुभव होगी, जो जब आप छोटे से बच्चे रहे होंगे, तब कभी शायद आपने उसकी झलक जानी होगी। लेकिन अब तो बहुत समय हो गया उसे भूले हुए। जब कोई छोटे बच्चे की तरह आप किसी फूल के पास किसी तितली को पकड़ने के लिए दौड़े होंगे, तब जैसी सहजता भीतर रही होगी, **वैसी सहजता एक बार फिर से पकड़िए।** उसके पकड़ते ही बीच की सारी की सारी बाधाएं गिर जाती हैं। और जब कोई फिर से अपनी बुद्धिमानी में बच्चों जैसा हो जाता है, **तब स्वर्ग की चाभी उसके हाथ में है।**

●

छोटे-छोटे दो-चार सवाल।

एक मित्र ने पूछा है डू यू क्लेम टु बी डिसाइपल ऑफ एनी गुरु? क्या आपका कोई दावा है कि आप किसी के शिष्य हैं? शिष्य होने का भी दावा होता है? और शिष्य होना बताया जा सकता है, अगर कोई एकाध का शिष्य हो। **पूरी जिन्दगी ही गुरु है।** और जिसकी आंखें खुली हैं, वह एक क्षण भी बिना सीखे नहीं रह सकता। वह रास्ते के पत्थरों से भी सीख लेगा, फूलों से भी सीख लेगा, आकाश के तारों से भी सीख लेगा। जो गाली देंगे, उनसे भी सीख लेगा, जो फूल चढ़ाएंगे, उनसे भी सीख लेगा। अगर सीखने की कला आ गई हो तो आप शिष्य होते हैं, और यह सारा जगत गुरु होता है। सीखने की कला नहीं आती, इसलिए हम एकाध को गुरु बना लेते हैं।

ऐसा समझें कि आप अपने घर में छिपे हैं और एक छोटा-सा छेद कर लेते हैं और उसमें से आकाश को देखते हैं। और कोई आदमी है, जो आकाश के नीचे खड़ा है, घर ही छोड़ दिया है। जब छोटे से छेद से वह आकाश देखता था, तब उसने सोचा कि अब सब दीवारों को गिरा ही दो, बाहर ही खड़े हो जाओ। स्वभावत आप अपने घर के भीतर से पूछेंगे कि मैं तो इस नम्बर एक के छेद से देख रहा हूं, आपने किस छेद से आकाश को देखा है? और वह जो आदमी आकाश के नीचे खड़ा है, वह आपको क्या कहेगा? क्या दावा करे कि किस छेद से उसने आकाश को देखा? उसकी बड़ी मुसीबत होगी। वह कहेगा कि छेद तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता, **आकाश ही आकाश है।**

जब सीखने की क्षमता पूरी होती है, तब गुरु कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता, **क्योंकि गुरु ही गुरु है, आकाश ही आकाश है।** तो मेरा कोई दावा नहीं है। और ध्यान रहे, शिष्य होने का कोई दावा नहीं होता। और गुरु होने का तो दावा हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो आदमी दावा करता हो कि मैं गुरु हूं, अभी वह इतना भी नहीं सीख पाया है, इतना भी नहीं सीख पाया कि गुरु होकर सत्य में कोई भी प्रवेश नहीं है। इसलिए जो गुरु के दावेदार हैं कि हम गुरु हैं, जानना कि वे गुरु

नहीं हो सकते। गुरु दावेदार नही होता। शिष्य दावा कर सकता है कि फलां व्यक्ति मेरा गुरु है। गुरु दावा नही कर सकता। और शिष्य भी तभी तक दावा करता है, जब तक अभी पूरी तरह शिष्यत्व उसमें खिला नहीं है। नहीं तो फिर सारा जगत गुरु हो जाता है, सारी दिशाएं गुरु हो जाती हैं। शिष्यत्व का अर्थ है सीखने की क्षमता। गुरु को पकडने की आदत नही, सीखने की क्षमता।

एक नदी बहती है—कितने किनारों को छूती हुई, कितने पहाडों को पार करती हुई। उससे कोई पूछे कि किस घाट का तुम्हारा दावा है तो नदी कहेगी, बहुत घाट थे, घाट ही घाट थे। अब उनका नाम लेना भी मुश्किल है। अगर आप जीये हैं ठीक से, जाग कर जीये है, तो आपने सब से सीखा है। असम्भव है यह कि आप किसी बात से सीखे बिना बच जाए।

लेकिन हम अंधे लोग है। इसलिए हम गुरु भी बनाते है। गुरु बनाने का मतलब यह है कि आपको शिष्य होने की कला अभी नही आई है। नही तो गुरु क्या बनाना? शिष्य हो जाना है। गुरु नही बनाना है, शिष्य हो जाना है। लेकिन हम गुरु बनाते हैं। हम गुरु इसलिए बनाते हैं कि दूसरों से सीखने से बचें। हमारा डर यह है कि सबसे सीखेंगे तो डूबेंगे, एक को पकड लें, सहारा पक्का हो, सब तरफ द्वार-दरवाजे बन्द कर ले। हम ऐसे लोग है कि सोचते हैं कि हम तो एक खिडकी पर खडे होकर सास ले लेगे और बाकी खिडकियो पर सास बन्द रखेंगे। मर जाएंगे।

जगत चारों तरफ से दे रहा है। उसे लेने मे इतनी कजूसी क्या है? सब तरफ से सास ले, शिष्य हो जाए, गुरु की फिक्र छोडे। और जब आप शिष्य हो जाएगे, तब कदम-कदम पर गुरु उपलब्ध होने लगेगा। जब यह मै कहता हू कि कदम-कदम पर गुरु उपलब्ध होने लगेगा, इसका मतलब यह नही है कि कोई एक बुद्ध, या कोई एक महावीर आपको पकड जाएगा और आपके साथ बना रहेगा। जिन्दगी अनन्त है।

बुद्ध का अंतिम दिन था। आनन्द छाती पीट कर रोने लगा और उसने कहा कि आपके रहते मुझे ज्ञान नही हुआ और अब आप जा रहे है तो मेरा क्या होगा? तो बुद्ध ने कहा कि आनंद, पागल मत बन, मुझसे पहले हजारों बुद्ध हुए हैं और मुझसे बाद हजारों बुद्ध होते रहेंगे। और अगर तू सीखने मे कुशल है तो तुझे हर कदम पर बुद्ध मिल जाएंगे। और अगर तू सीखने में कुशल नहीं है तो चालीस साल से तू मेरे साथ ही था, इससे भी तूने क्या सीख लिया? बडे मजे की बात है कि चालीस साल तू मेरे साथ था और तू कहता है कि मुझे ज्ञान नही हुआ। और अब जब मैं मर रहा हू, तब तू रो रहा है कि आप छूट जाएंगे, तब ज्ञान कैसे होगा? मेरे साथ चालीस साल में नही हुआ, तब मेरे मरने से रोने की क्या जरूरत है? चालीस साल मे नही हुआ, चालीस जन्मो में भी नही होगा।

बुद्ध ने जो आखिरी बात आनन्द से कही, वह बडी महत्वपूर्ण है। बुद्ध ने कहा,

शायद यह भी हो सकता है कि मेरे कारण तू संकीर्ण हो गया; मुझे तूने पकड़ लिया, तेरी सीखने की क्षमता क्षीण हो गई। तूने समझा कि गुरु तो मिल गए, अब क्या सीखने की जरूरत है? एक दफा हो गए शिष्य, बस बात खत्म हो गई। शिष्य हो जाना कोई खतम हो जानेवाली बात नहीं है। यह सिर्फ प्रारम्भ होती है, खत्म कभी नहीं होती। तो बुद्ध ने कहा, जब मैं मर जाऊंगा, तब शायद तेरे सीखने की क्षमता फिर उन्मुक्त हो जाए, फिर से तू खुल जाए।

और ऐसा ही हुआ। आनन्द बुद्ध के मरने के बाद ही ज्ञान को उपलब्ध हो सका।

●

एक मित्र ने पूछा है : व्हाई डू यू कॉल योरसेल्फ भगवान? और ये बड़े हिम्मतवर आदमी हैं, क्योंकि उन्होंने यह भी लिखा है कि इफ यू आर रीयली बोल्ड, यू मस्ट रिप्लाई माई क्वेश्चन। पूछा है कि आप आपने को भगवान क्यों कहते हैं?

मैंने तो कभी कहा भी नहीं। लेकिन आप कहते हैं तो मैं कहता हूं कि मैं भगवान हूं। और यह इसलिए कहता हूं कि **भगवान के सिवाय और कुछ होने का उपाय ही नहीं है। आप भी भगवान** हैं। भगवान के सिवाय इस जगत में और कुछ भी नहीं है। अगर कोई दावा करता हो कि मैं भगवान हूं और आप भगवान नहीं हैं, तब यह दावा अपराधपूर्ण है। मैंने तो कभी कोई दावा नहीं किया। मैंने तो कभी कहा भी नहीं। पर इससे उलटी बात भी नहीं कह सकता हूं कि मैं भगवान नहीं हूं। क्योंकि वह तो सरासर असत्य होगा। इतना ही कह सकता हूं कि भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है। और अब मैं क्या कर सकता हूं, क्योंकि भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है।

आप भी भगवान हैं। इसका पता न हो, यह हो सकता है। इसका पता हो, यह हो सकता है। जिसको पता नहीं है, उसे पता करने की कोशिश करनी चाहिए।

भगवान का अर्थ है अस्तित्व, **शुद्धतम अस्तित्व**। वह जो हम हैं अपने मौलिक स्वभाव में, **उसका नाम ही भगवत्ता है**। लेकिन हमारे मन में भगवान के लिए न मालूम क्या-क्या धारणाएं हैं। उनसे तकलीफ होती है। कोई सोचता है कि भगवान वह है जिसने दुनिया को बनाया। तो स्वभावतः मैंने दुनिया को तो नहीं बनाया। इसलिए यह झंझट तो मुझपर नहीं है।

कोई सोचता है, मेरे पास पत्र आते हैं, वे कहते हैं कि अगर आप भगवान हैं तो मैं गरीब हूं, आप मेरी गरीबी मिटाकर दिखाइए। अगर भगवान हैं तो मेरी आंखें खराब हैं, उन्हें ठीक करके बताइए। नहीं, भगवान से मेरा वैसा कोई प्रयोजन नहीं है। आपकी आंखें खराब हैं, उसके लिए आपके भीतर का ही भगवान जिम्मेवार है। उसमें थोड़ा फर्क करिये। आप गरीब हैं, उसके लिए आपके भीतर का ही भगवान जिम्मेवार है। इसमें कुछ फर्क करिए और किसी बाहर के भगवान की तरफ मत देखिए। क्योंकि जिसे भीतर का भगवान ही नहीं दिखाई पड़ रहा है, उसे

बाहर का भगवान दिखाई नही पड सकता ।

नही, मै कोई ताबीज प्रकट करनेवाला भगवान भी नही हू कि मुझसे कहिए आप कोई चमत्कार दिखाइए, अगर भगवान हैं । ऐसे तो मदारियो में भी भगवान होते हैं; लेकिन भगवान मदारी होने में बहुत रस लेते दिखाई नही पडते । भगवान से मेरा अर्थ है वह जो आपकी शुद्धतम सत्ता है । यदि सब कचरा, यदि सब व्यर्थ, सब असार अलग करके आपने अपने को देख लिया है, तो आप भगवान हैं ।

कोई दुनिया बनाने की जरूरत नही है आपके भगवान होने के लिये; नही तो आप फिर कभी भी भगवान नही हो पाएगे । पक्का समझ लेना । किसी की आखें ठीक करना जरूरी नही है आपके भगवान होने के लिए; नही तो फिर आप भगवान कभी न हो पाएगे । और या फिर कोई डाक्टर भगवान हो जाएगा । भगवान होने का अर्थ ही यह है कि वह जो हमारे भीतर छिपा स्वभाव है, वह जो ताओ है, वह वह जो हमारे भीतर का अस्तित्व है, **उस अस्तित्व की प्रतीति, उस अस्तित्व में प्रवेश** । तो यह झझट भी आपकी अलग कर दू । नाहक आपको लगता है कि मैंने क्यो अपने को भगवान कहा । अभी तो कहा नही था, आज मै आपको कह देता हू **कि मै भगवान हूं** । उससे अडचन मिटेगी, उससे सुविधा हो जाएगी ।

लेकिन इसका यह मतलब आप मत समझ लेना कि आप कुछ और है । **आप भी वही हैं** । देर-अबेर होगी आपको पहचानने मे, लेकिन चेष्टा करें तो पहचान ले सकते हैं । भगवान होना कोई दावा नही है, **भगवान होना हमारा सहज स्वभाव है** ।

●

शेष प्रश्न तो पुनरुक्तिया हैं । दो बाते अत मे ।

प्रश्न पूछ लेना कठिन नही है, जवाब देना भी कठिन नही है । जो प्रश्न भी पूछा जा सकता है, उसका जवाब भी दिया जा सकता है । लेकिन सच मे ऐसे प्रश्न पूछना जो आपके काम पडे, बहुत कठिन हैं । और वैसे प्रश्नो का जवाब देना भी आसान नही है । लेकिन आप वैसे प्रश्न पूछते ही नही है ।

ऐसा लगता है कि ऐसा कोई प्रश्न ही नही है आपके पास जो आपकी जिंदगी मे काम आनेवाला हो । आपके प्रश्न व्यर्थ के प्रश्न मालूम पडते है । ऐसा लगता है कि बुद्धि मे थोड़ी खुजली होती है और उससे आपके प्रश्न निकलते हैं । कोई आत्मा में कोई प्यास, कि कोई पुकार, कि कोई खोज हो, ऐसा नही है । बस खुजली है, थोडा खुजा लिया । फिर खुजाने से थोडा खून निकल आये तो जिम्मा मेरा नही है । फिर पीछे तकलीफ हो तो जिम्मा मेरा नही है । **अपनी तरफ हमारा शायद ध्यान नहीं है** । शायद हमें खयाल ही नही है कि हम कुछ और हो सकते हैं उससे, जो हम हैं; जहा हम खड़े है वहा से और कही भी पहुचना हो सकता है । हमारा जीवन भी यात्रा बन सकता है; उसका हमें कोई खयाल नही है । हम पूछे चले जाते है । कुतूहलवश बिना इसकी फिक्र किये कि अगर इसका उत्तर मिल जाएगा तो फिर क्या करना है ।

जैसे कि एक मित्र ने पूछ लिया कि आप अपने को भगवान क्यों कहलवाते हैं या कहते हैं। कोई भी उत्तर हो, इससे उस मित्र को क्या होगा ? कोई उत्तर हो। मैं कह दूं कि मैं भगवान हू, मैं कह दू कि मैं भगवान नही हू, इससे उस मित्र को क्या होगा ? मेरे सम्बन्ध में दिया गया कोई भी वक्तव्य उस मित्र को क्या लानेवाला है ? खुजली है। थोड़ी खरोच लग जाएगी, तकलीफ होगी। जिस मित्र ने पूछा है, वह परेशान होकर घर लौटेगा। अगर जवाब न दू तो वह समझेगा कि मैं हिम्मतवर नही हू। और अगर जवाब दू तो उसकी खुजली से खून निकलेगा, वह भी मुझे पता है। अब वह परेशान लौटेगा। प्रश्न से उसे कोई हल नही होनेवाला है, कोई राहत नही मिलनेवाली है। फिर किसलिए पूछा है ? हमें खयाल ही नही है कि क्यों पूछ रहे है। इसलिए हम बहुत से प्रश्न पूछते है, बहुत से उत्तर इकट्ठे कर लेते है और हम वैसे ही रह जाते हैं जैसे थे।

आगे के लिए आपसे कहता हूं, थोड़ा सोचकर पूछें। और सोचने के लिए एक कसौटी रख लें कि इसका जो उत्तर मिलेगा, इससे मैं क्या कर सकता हूं ?

एक गाव में मै था। दो बूढे मेरे पास आए। एक जैन था, एक हिन्दू था, दोनो पडोसी थे। उन्होने, दोनो ने मुझसे कहा कि मेरा पचास साल का विवाद है। दोनो साथ पढे, दोनो साथ बडे हुए, धन्धा साथ किए। यह हिन्दू है, मै जैन हू। मै जैन हू, मै मानता हू कि किसी ईश्वर ने जगत नही बनाया। यह हिन्दू है, यह मानता है कि जगत किसी ईश्वर ने बनाया। इसमे कुछ निर्णय नही हो पाता है, विवाद होता रहता है। अब तक कोई हल नही हो पाया। आप आये है, आप हल कर दें।

मैंने उनसे पूछा कि अगर मै हल भी कर दू तो फिर तुम क्या करोगे ? अगर यह पक्का हो जाए कि जगत ईश्वर ने बनाया तो तुम्हारे क्या इरादे हैं ? अगर यह पक्का हो जाए कि जगत ईश्वर ने नही बनाया तो तुम्हारे क्या इरादे हैं ? उन्होने कहा, इरादे का क्या सवाल है ? नही, कुछ करना नही है, उन्होने कहा, मगर तय तो हो जाए।

जिससे कुछ करना है नही, उसको तय किसलिए करना है ? ध्यान रहे, जिस चीज से हमें कुछ करना नही है, उसे हम कभी तय न कर पाएंगे। क्योकि तय ही हम तब करते हैं, जब हमें कुछ करना होना है। **तय करने का मतलब ही यह होता है कि जिन्दगी दांव पर है, इसलिए तय करके कुछ करना है।** जिस चीज के तय होने से कुछ करना ही न हो, वह कभी तय नही हो पाती।

इसलिए लोग जिन्दगी भर विवाद करते है, और जहा जीवन ने उन्हे पाया था, वहां इंच भर दूर नही पाती। वही पाती है। मत पूछें, ऐसे सवालों का कोई प्रयोजन नही है। ऐसा सवाल पूछे जो आपकी जिन्दगी को बदलता हो, जिसका उत्तर आपको कुछ करने में ले जाए, जो सवाल आपके लिए क्रान्ति बने, जो सवाल रूपान्तरण का इशारा बने।

आज इतना ही। पाँच मिनट रुकें, कीर्तन करें, फिर जाएं। और आज वे लोग भी कीर्तन करें, जो हिम्मत नही कर पाते।

सनातन शक्ति जो कभी भूल नहीं करती

अट्ठावनवाँ प्रवचन
अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २५ नवम्बर १९७२

अध्याय २८ : खंड १

स्त्रैण में वास

जो पुरुष को तो जानता है,
लेकिन, स्त्रैण में वास करता है,
वह संसार के लिए घाटी बन जाता है।
और संसार की घाटी होकर,
वह उस मूल स्वरूप में स्थित रहता है, जो अखण्ड है।
और वह पुन: शिशुवत निर्दोषता को उपलब्ध हो जाता है।
जो शुक्ल (प्रकाश) के प्रति होशपूर्ण है,
लेकिन, कृष्ण (अंधेरे) के साथ जीता है,
वह संसार के लिए आदर्श बन जाता है।
और संसार का आदर्श होकर,
उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो कभी भूल नहीं करती।
और वह पुनः अनादि अनस्तित्व में वापस लौट जाता है।

Chapter 28 : Part 1

KEEPING TO THE FEMALE

He who is aware of the Male
But keeps to the Female
Becomes the ravine of the world.
Being the ravine of the world,
He has the original character which is not cut up,
And returns again to the (innocence of the) babe.
He who is conscious of the white (bright)
But keeps to the black (dark)
Becomes the model for the world.
Being the model for the world,
He has the eternal power which never errs,
And returns again to the Primordial Nothingness.

इस सूत्र में प्रवेश के पूर्व कुछ बुनियादी बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात। लाओत्से स्त्री को, स्त्रैण चित्त को, ज्यादा मौलिक, आधारभूत मानता है। पुरुष गौण है।

सारे जगत मे पुरुष प्रमुख समझा जाता है, स्त्री गौण। पहले तो हमें इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए; क्योकि पूरी मनुष्य-जाति का इतिहास लाओत्से के विपरीत निर्मित हुआ है। सभी सभ्यताएं पुरुष को प्रमुख और स्त्री को गौण मानकर चलती रही हैं। लाओत्से मानता है, **स्त्री प्रमुख है और पुरुष गौण।**

और आज विज्ञान भी लाओत्से के समर्थन में है। क्योकि विज्ञान भी मानता है कि सभी बच्चे मां के पेट में प्राथमिक रूप से स्त्रैण होते हैं। जा गर्भ का प्रारम्भ है, मा के पेट मे, वहा सभी बच्चे स्त्री को तरह यात्रा शुरू करते हैं। फिर उनमे से कुछ बच्चे पुरुष की तरह विभिन्न यात्रा पर निकलते है। लेकिन प्रारम्भ सभी बच्चो का स्त्रैण है।

दूसरी बात जो समझ लेने जैसी है, वह यह कि पुरुष भी स्त्री से ही जनमता है। इसलिए पुरुष गौण ही होगा, प्रमुख नही हो सकता। वह भी स्त्री का ही फैलाव है। वह भी स्त्री की ही यात्रा है।

तीसरी बात। जीव-शास्त्री कहते हैं कि पुरुष मे एक तरह की तनाव-स्थिति है, स्त्री मे वैसी तनाव-स्थिति नही है। जीव-वैज्ञानिकों के अनुसार दो अणुओं के मिलन से, जीवाणुओं के मिलन से व्यक्ति का जन्म होता है। प्रत्येक जीवाणु मे चौबीस कोष्ट होते है। यदि चौबीस-चौबीस कोष्ट के दो जीवाणु मिलते है तो स्त्री का जन्म होता है। कुछ कोष्ट तेईस जीवाणुओ वाले होते हैं। अगर तेईस और चौबीस, ऐसे दो जीवाणुओ वाले कोष्ट का मिलन होता है तो पुरुष का जन्म होता है। **पुरुष में सन्तुलन थोड़ा कम है।** एक तरफ चौबीस कोष्ट हैं, एक तरफ तेईस कोष्ट हैं। **स्त्री सन्तुलित है।** दोनो कोष्ठ चौबीस-चौबीस है।

जीव-वैज्ञानिक कहते हैं कि स्त्री के सौन्दर्य का कारण यही सतुलन है। वह ज्यादा सतुलित है, ज्यादा बैलेंस्ड है। यही कारण है कि स्त्री का धीरज, सहनशीलता पुरुष से ज्यादा है। और यही कारण भी है कि पुरुष स्त्री को दबाने मे सफल हो पाया; क्योकि बेचैनी उसका गुण है। वह जो तेईस और चौबीस का असतुलन है, जो तनाव है, वही उसका आक्रमण बन जाता है। और पुरुष पूरे जीवन सतुलन की खोज कर रहा है।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि स्त्रियो ने बुद्ध, महावीर, कृष्ण, जीसस पैदा नही किए। पुरुषो ने पैदा किए है। उसका बहुत मौलिक कारण यही है कि पुरुष की ही खोज है शाति के लिए। स्त्री की कोई खोज नही है। स्त्री स्वभाव से शांत है; अशांति उसका विभाव है। उसे चेष्टा करके अशात किया जा सकता है। पुरुष स्वभाव से अशात है। चेष्टा करके उसे शात किया जा सकता है। इसलिए बुद्ध पुरुषो मे पैदा होगे, स्त्रियो मे पैदा नही होगे।

पुरुष चेष्टा कर रहा है निरन्तर कि कैसे शात हो जाए। और आक्रमक होना उसका स्वभाव होगा, एग्रेसन उसका लक्षण होगा। इसलिए पुरुष खोज करेगा; क्योकि खोज आक्रमण है। पुरुष विज्ञान निर्मित करेगा, क्योकि विज्ञान आक्रमण है। पुरुष एवरेस्ट पर चढेगा, चाद पर जाएगा, मगल को जीतेगा; क्योकि यह सारा अभियान आक्रमण का है। स्त्री आक्रमक नही है। पुरुष युद्ध करेगा। बिना युद्ध के वह जी नही सकेगा। कितनी ही शाति की बाते करे, वैज्ञानिक कहते है कि पुरुष का जीवाणु-सगठन ऐसा है कि वह बिना युद्ध के जी नही सकता। युद्ध उसकी प्रवृत्ति का हिस्सा है। जब तक कि उसकी प्रवृत्ति न बदल जाए, या जब तक कि हम उसके जीवाणुओ का सगठन न बदल दे, तब तक युद्ध वह करेगा।

यह हो सकता है कि वह शाति के लिए युद्ध करे। इसलिए बडे मजे की बात है, जो शातिवादी है, अगर उनका भी जुलूस देखें और उनके भी नारे सुनें तो वे युद्धवादियो से कम युद्धवादी नही मालूम होते है। वे शाति के लिए सघर्ष करते है, लेकिन करते सघर्ष ही है। वे शाति के लिए जान देने को और लेने को तैयार है। बहाना कोई भी हो, पुरुष की उत्सुकता लडने मे है।

इसलिए जब युद्ध चलता है कही भी, तब पुरुषो की आखो मे चमक आ जाती है। जीवन मे कुछ रस मालूम होता है—कुछ हो रहा है। वह जो उदासी है, टूट जाती है और एक रौनक छा जाती है। स्त्री और पुरुष के बीच जो मौलिक असतुलन का भेद है, वही इसके पीछे कारण है।

हिंसा एक आन्तरिक असतुलन का परिणाम है और प्रेम एक आन्तरिक संतुलन का। इसलिए स्त्री ने प्रेम किया है। लेकिन प्रेम से न तो चाद पर जाया जा सकता है, न एवरेस्ट चढे जा सकते है। सच तो यह है स्त्रियो की कभी समझ मे नही आता कि एवरेस्ट चढने की जरूरत क्या है। चाद पर जाने की जरूरत क्या है? स्त्री की उत्सुकता निकट मे होती है, दूर मे बिलकुल भी नही। विजय मे बिलकुल नही होती, आक्रमण मे बिलकुल नही होती। एक संतुलित, शान्त और प्रेमपूर्ण जीवन में उसकी उत्सुकता होती है—अभी और यही।

इसलिए स्त्रिया दूरदृष्टि की नही होती। उनको बहुत पास का दिखाई पडता है, दूर का व्यर्थ हो जाता है। पुरुष को पास का बिलकुल दिखाई नही पड़ता। क्योकि जो पास है, उसको जीतने मे कोई मजा नहीं है। वह जीता ही हुआ है।

बड़े मजे की घटना घटती है, पुरुष की उत्सुकता किसी भी स्त्री में तभी तक होती है, जब तक वह उसे जीत नही लेता। जीतते ही उसकी उत्सुकता समाप्त हो जाती है। जीतते ही फिर कोई रस नही रह जाता। नीत्से ने कहा है कि पुरुष का गहरे से गहरा रस विजय है। कामवासना भी उतनी गहरी नहीं है। कामवासना भी विजय का एक क्षेत्र है। इसलिए पत्नी में उत्सुकता समाप्त हो जाती है, क्योंकि वह जीती ही जा चुकी है। उसमें अब कुछ जीतने को बाकी नही रहा।

इसलिए जो बुद्धिमान पत्नियां हैं, वे सदा इस भांति जीयेंगी पति के साथ कि जीतने को कुछ बाकी बना रहे। नही तो पुरुष का कोई रस सीधे स्त्री में नही है। अगर कुछ अभी जीतने को बाकी है तो उसका रस होगा। अगर सब जीता जा चुका है तो उसका रस खो जाएगा। तब कभी-कभी ऐसा भी घटित होता है कि अपनी सुन्दर पत्नी को छोडकर वह एक साधारण स्त्री में भी उत्सुक हो सकता है। और तब लोगों को बडी हैरानी होती है कि यह उत्सुकता पागलपन की है। इतनी सुन्दर उसकी पत्नी है और वह नौकरानो के पीछे दीवाना है! पर आप समझ नही पा रहे है। नौकरानी अभी जीती जा सकती है, पत्नी जीती जा चुकी है। सुन्दर और असुन्दर बहुत मौलिक नही है। जितनी कठिनाई होगी जीत में उतना पुरुष का रस गहन होगा।

और स्त्री की स्थिति बिलकुल और है। जितना पुरुष मिला हुआ हो, जितना उसे अपना मालूम पडे, जितनी दूरी कम हो गई हो, उतनी ही वह ज्यादा लीन हो सकेगी। स्त्री इसलिए पत्नी होने में उत्सुक होती है; प्रेयसी होने मे उत्सुक नही होती। पुरुष प्रेमी होने में उत्सुक होता है; पति होना उसकी मजबूरी है।

स्त्री का यह जो सतुलित भाव है—विजय की आकाक्षा नहीं है—यह यह ज्यादा मौलिक स्थिति है। क्योकि असतुलन हमेशा सतुलन के बाद की स्थिति है। **संतुलन प्रकृति का स्वभाव है।** इसलिए हमने पुरुष को पुरुष कहा है और स्त्री को प्रकृति कहा है। प्रकृति का मतलब है जैसी स्थिति होनी चाहिए स्वभावतः।

इसलिए बहुत मजे की घटना घटती है कि जब कोई पुरुष शात हो जाता है, तब उसमें स्त्रैण लक्षण प्रगट हो जाता है। बुद्ध के चेहरे को देखकर पुरुष का कम और स्त्री का खयाल ज्यादा आता है। हमने तो इसलिए बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम को दाढी-मूछ भी नही दी। नही थी, ऐसा नही है। दाढी-मूछ निश्चित ही थी। लेकिन जिस अवस्था को वे उपलब्ध हुए, वह स्त्रैणवत हो गयी। वे इतने शात और सतुलित हो गये कि वह जो पुरुष की आक्रमकता थी, वह खो गयी। इसलिए सिर्फ प्रतीक है यह। इसलिए हमने उनको दाढी-मूछ नही दी। जैनो के चौबीस तीर्थंकर हैं, उनमें से एक को भी दाढी-मूछ नहीं है। बड़ा मुश्किल है चौबीस ऐसे आदमी खोजना, जिनमें एक को भी दाढ़ी-मूंछ न हो। एकाध तो कभी आदमी मिल सकता है, लेकिन चौबीस खोजना बड़ा मुश्किल है। बुद्ध को

दाढ़ी-मूंछ नही है। कृष्ण को, राम को दाढ़ी-मूंछ नही है। आपने कोई चित्र नहीं देखा होगा राम का दाढ़ी-मूंछ के साथ। क्या कारण है?

दाढी-मूंछ निश्चित रही होगी, क्योंकि दाढी-मूंछ न होने का मतलब है कि वे ठीक से पुरुष ही नहीं थे। बीमार थे, रुग्ण थे, कुछ हारमोन की कमी थी। नहीं, यह सब प्रतीक है। हमने यह बात उनमें अनुभव की कि वे स्त्री-जैसे हो गये थे। इसलिए दाढ़ी-मूछ को प्रतीक की तरह छोड दिया।

नीत्से ने तो स्पष्ट रूप से बुद्ध और जीसस को स्त्रैण कहा है, फेमिनिन कहा है। निन्दा के लिए कहा है, पर बात उसकी सच है। उसने तो निन्दा में कहा है, उसने तो कहा है कि इन स्त्रैण पुरुषो की बातें मानकर अगर दुनिया चलेगी तो सारी दुनिया स्त्रैण हो जाएगी। उसने तो निन्दा में कहा है, क्योंकि वह पुरुष का पक्षपाती है। वह तो कहता है, जगत मे पौरुष बढ़ना चाहिए। और वह बुद्ध और क्राइस्ट और महावीर के खिलाफ है; क्योंकि ये स्त्रियों के पक्षधर हैं। ये जो भी अहिंसा, करुणा की बातें कर रहे हैं, वे सब स्त्रैण गुण हैं। नीत्से कहता है, युद्ध, हिन्सा, आक्रमण, रक्तपात, ये पुरुष के लक्षण हैं। तो वह कहता है, ये दगाबाज पुरुष धोखा दे गये पुरुषो को और स्त्रैण का प्रचार कर रहे हैं।

लेकिन उसकी बात में थोडी सचाई है। बुद्ध और महावीर स्त्रैण हो गए। बहुत गहरे तल पर संतुलन हो गया है। इसलिए वह जो पुरुष का आक्रमण है, हिंसा है, वह खो गई है।

लाओत्से के लिए स्त्री मूल है, आधार है। और पुरुष उसकी एक शाखा है। इसे हम एक और दिशा से भी समझ ले।

पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व की बनावट भी, उनके शरीर का निर्माण भी, सूचक है। पुरुष के पास जो जनन-यंत्र है, वह भी आक्रमक है। स्त्री के पास जो जनन-यंत्र है, वह भी आक्रमक नहीं है, सिर्फ ग्राहक है। इसलिए स्त्री किसी पर व्यभिचार नही कर सकती। यह असभव है। स्त्री किसी पर आक्रमण करके व्यभिचार नहीं कर सकती। यह असभव है। और पुरुष के लिए व्यभिचार जितना सभव है, उतना प्रेम सभव नहीं है। इसलिए जिन स्थितियो में पुरुष सोचता है कि वह प्रेम कर रहा है, उन स्थितियो में भी सौ में से नब्बे मौको पर वह व्यभिचार ही कर रहा है। यह थोडा कठिन है। लेकिन आज मनसविद भी कहते हैं कि यह सही है कि पुरुष अक्सर प्रेम में भी आक्रमण ही करता है। वहा भी एक तरह की जबरदस्ती है। और स्त्री केवल इस जबरदस्ती को स्वीकार करती है। और यह पता लगाना मुश्किल है कि उसकी स्वीकृति मे उसका प्रेम था, या नही था। क्योंकि स्त्री के प्रेम की प्रक्रिया भी पैसिव है, निष्क्रिय है। इसे भी हम समझ लें तो सूत्र में प्रवेश बहुत आसान हो जाएगा।

पुरुष के प्रेम की प्रक्रिया सक्रिय है। वह प्रेम को प्रकट करता है। उसका प्रेम

भी आक्रमण बनता है। स्त्री का प्रेम केवल समर्पण है। स्त्री यदि प्रेम में बहुत ज्यादा सक्रियता बरते तो पुरुष को बेचैनी होगी। स्त्री उसे स्वीकार करे, समर्पण करे, लीन हो जाए, प्रतिरोध न करे, अप्रतिरोधी हो, सहयोगी हो, बस। और उसका सहयोग भी पैसिव हो, सिर्फ एक आमंत्रण हो, स्वीकृति हो, सहयोग हो, प्रफुल्लता हो। लेकिन उसका प्रेम सक्रिय न बने। वह स्त्री पुरुष को उतनी ही ज्यादा प्रीतिकर होती। **उसका प्रेम स्वीकार है, बहुत गहन स्वीकार है।** और इसलिए पता लगाना भी बहुत आसान नहीं है। पुरुष का प्रेम तत्काल पता चल सकता है, क्योंकि सक्रियता में प्रकट होता है।

निष्क्रियता का यह तत्व भी सोचने जैसा है। **क्योंकि जो तत्व जितना निष्क्रिय होगा, उतना शांत होगा, उतना मौन होगा, उतना गहन, उतना गहरा होगा।** और जो तत्व जितना सक्रिय होगा, उतना सतह पर होगा, उथला होगा। लहरें तो सतह पर होती हैं, वहां बड़ा शोरगुल होता है। सागर की गहराई में तो मौन होता है। वहां कोई लहरें भी नहीं होतीं, कोई शोरगुल भी नहीं होता। पुरुष एक तरह की सतह है, जहां बड़ी सक्रियता है। बड़े तूफान हैं, बड़ी आंधियां हैं। स्त्री एक तरह की गहन गहराई है, जहां सब मौन और शांत है।

लेकिन ध्यान रहे, वह जो पुरुष की सक्रियता है, वह उसी गहराई के ऊपर टिकी है। वह उसी गहराई का ऊपरी हिस्सा है। **स्त्री केन्द्र पर है, पुरुष परिधि पर है।** इसलिए जब भी कोई पुरुष केन्द्र में प्रवेश करता है, वह स्त्रियों जैसा हो जाता है। और जब भी कोई स्त्री सक्रिय होने की कोशिश करती है, वह सतह पर आ जाती है, और पुरुष जैसी हो जाती है।

पश्चिम में आज स्त्री की बड़ी दौड़ है--पुरुष जैसी हो जाने की। इधर लाओत्से पुरुषों को समझा रहा है कि वे स्त्रियों जैसे हो जाएं। वहां पश्चिम में एक दौड़ है कि स्त्रियां पुरुष जैसी हो जाएं। कारण है उसका। क्योंकि पश्चिम की पूरी संस्कृति पुरुष के द्वारा निर्मित हुई है – आक्रमक, हिंसक। उसने स्त्री को पोंछ डाला है, दबा डाला है, मिटा डाला है। यह सीमा के बाहर चला गया आक्रमण है। और इस पुरुष ने सब तरह की जो शिक्षा स्त्री को दी, वह स्त्री भी उस शिक्षा में पुरुष की आकांक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं से भर गयी। आज दुनिया में जो भी शिक्षा है, वह स्त्रियों के लिए कोई भी नहीं है। वह सब पुरुषों के लिए निर्मित हुई शिक्षा है। स्त्रियां उसमें प्रवेश कर गयी हैं। मौलिक ढांचा पुरुष के लिए है उस शिक्षा का, स्त्री के लिए नहीं है।

जिनको हम स्त्रियों की संस्थाएं कहते हैं, उनकी भी शिक्षा का ढांचा पुरुष का है। क्या पढ़ाते हैं, इसका सवाल नहीं उठता है। कैसे पढ़ाते हैं और किसलिए पढ़ाते हैं? और क्या है लक्ष्य? सारा ढांचा पुरुष का है--महत्वाकांक्षा, एम्बिशन, विजय, दौड़, प्रतिस्पर्धा, ये उसके सूत्र हैं, इस शिक्षा के। उसमें ही स्त्री को ढाला गया है

पश्चिम में। अब स्त्री पुरुष जैसी होना चाहती है।

यह बड़ी ही गहरी कठिनाई पैदा करने वाली बात है। क्योंकि स्त्री अगर पुरुष जैसी होने की कोशिश करे तो इस जगत में जो भी मूल्यवान है, जो भी कीमती है, जो भी सारभूत है, वह सब खो जाएगा। इधर पूरब में लाओत्से जैसे मनुष्यों ने दूसरी कोशिश की है कि पुरुष स्त्री जैसा होने की कोशिश करे, ताकि जो गहन है, मूल्यवान है, वह और भी थिर हो जाए, और भी प्रगट हो जाए, और भी मनुष्य की अंतरात्मा में प्रविष्ट हो जाए।

स्त्रियां जब पुरुष जैसी होती हैं, तब सब उथला हो जाता है। स्त्री तो उथली हो ही जाती है। स्त्री सबसे ज्यादा चीज अगर कुछ खो सकती है, तो वह पुरुष जैसी होने की दौड़ में खो सकती है--अपनी आत्मा खो सकती है। हो तो नहीं पाएगी पुरुष जैसी, लेकिन आवरण ले सकती है। और जो स्त्री पुरुष जैसा आवरण ले लेगी, उससे ज्यादा असंतुष्ट पुरुष भी खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि पुरुष के लिए अशांति स्वाभाविक है, स्त्री के लिए अशांति आरोपित होगी। पुरुष के लिए दौड़ नैसर्गिक है, स्त्री के लिए दौड़ उसकी प्रकृति के प्रतिकूल होगी।

इसलिए आज अगर पश्चिम में स्त्री एकदम रुग्ण होती जाती है, और उसे कोई शांति नहीं है, तो उसका मौलिक कारण यही है। वह कभी शांत हो नहीं सकती। पुरुष भी जब पुरुष रहकर शांत नहीं हो पाता, तब स्त्री पुरुष होकर शांत कैसे हो सकती है? पुरुष भी तभी शांत हुआ है, जब वह स्त्री जैसा गहन निष्क्रिय हो गया है, शून्य हो गया है, समर्पित हो गया है, अनाक्रमक हो गया है। तब शांत हुआ है। पुरुष भी स्त्री जैसा होकर शांत होता रहा हो तो स्त्री तो पुरुष जैसी होकर कभी शांत नहीं हो सकती। हां, पुरुष से ज्यादा अशांत हो जाएगी, विक्षिप्त हो जाएगी, पागल हो जाएगी।

उसके कारण हैं। क्योंकि पुरुष जब स्त्री जैसा होता है, तब वस्तुतः वह अपने ही केन्द्र पर लौट रहा है। ऐसा हम समझें कि वह जिस मां से निकलकर जगत में भागा और दौड़ा था, उसमें वापस लौट रहा है। लेकिन स्त्री अगर पुरुष जैसी होने की कोशिश करे तो विक्षिप्तता के अतिरिक्त, पागलपन के अतिरिक्त, कोई और परिणाम नहीं हो सकता है। और पुरुष जैसी किसी भी क्रिया में कोई हल, कोई सांत्वना नहीं मिल सकती है। सिर्फ एक तीव्र, एक रुग्ण बुखार पैदा हो सकता है।

लाओत्से मानता है कि निष्क्रियता प्राकृतिक है। सक्रियता तूफान है, आंधी है। और वह वापिस गिर जाएगी, गिरना ही होगा। इसे हम समझें।

कोई भी चीज सक्रिय नहीं रह सकती सदा; क्योंकि सक्रियता में शक्ति व्यय होती है। एक पत्थर पड़ा है। आप उसे उठाते हैं हाथ में और फेंकते हैं आकाश में। अभी तक निष्क्रिय पड़ा था। आपने अपने हाथ की ताकत उसे दी और सक्रिय कर दिया। आपने भी थोड़ी ताकत खोयी। इसलिए आप भी अगर पत्थर उठाकर फेंकते

रहेंगे तो दस-बीस पत्थर के बाद आप कहेंगे, अब मैं नहीं फेंक सकता। आपकी ताकत जा रही है पत्थर के साथ। आप अपनी शक्ति पत्थर को दे रहे हैं। तभी तो पत्थर हवा से टकराएगा, लड़ेगा और यात्रा करेगा। और वह तभी तक सक्रिय रहेगा, जब तक शक्ति को व्यय न कर देगा। व्यय होते ही पत्थर वापस जमीन पर गिर जाएगा। फिर निष्क्रिय हो जाएगा।

एक पत्थर जमीन पर पड़ा रह सकता है हजारों-लाखों साल तक निष्क्रिय। लेकिन फेंका गया पत्थर हजारों-लाखों साल तक यात्रा नहीं कर सकता। हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि पत्थर पड़ा रहे अनंत काल तक तो भी पड़ा रह सकता है। क्योंकि पड़े रहने में शक्ति का कोई अपव्यय नहीं है। लेकिन चल नहीं सकता अनंतकाल तक, क्योंकि चलने में शक्ति का व्यय है। शक्ति चुकेगी और पत्थर गिर जाएगा। सब सक्रियता शक्ति का व्यय है। निष्क्रियता शक्ति का संचय है; शक्ति व्यय नहीं होती है।

इसलिए लाओत्से कहता है कि निष्क्रियता स्वभाव है। और सक्रियता स्वभाव के बीच में घटी शक्ति को व्यय करने की इच्छा का परिणाम है।

स्त्री ज्यादा निष्क्रिय है। पुरुष ज्यादा सक्रिय है। इसलिए लाओत्से स्त्री को मूल मानता है। लेकिन इससे स्त्रियां यह न सोच लें कि काम पूरा हो गया। इसलिए स्त्रियां यह न सोच लें कि अब कुछ करने को उनको नहीं बचा।

तब दूसरी बात खयाल में ले लें। जो परम संतुलन है, वह दो विरोधों के बीच संतुलन है। अगर स्त्री निष्क्रिय रहकर ही निष्क्रिय रह पाती हो तो परम संतुलित नहीं है। अगर सक्रिय होकर भी भीतर निष्क्रिय रह पाती हो तो परम संतुलन है। उलटा, अगर पुरुष सब कुछ काम छोड़कर जंगल में भाग के मौन बैठ जाए और तभी शांत हो पाए, तभी स्त्रैण हो पाए, तो वह भी शांति परम शांति नहीं है। क्योंकि सक्रियता के विरोध में चुनी गयी शांति भी एक तरह की सक्रियता ही है। जहां विरोध है, वहां क्रिया है। अगर किसी ने अपने को सक्रियता के विरोध में निष्क्रियता में डुबाने की कोशिश की तो वह कोशिश भी सक्रियता है।

इसलिए ताओ को माननेवाले, झेन को मानने वाले जो परम ज्ञानी हैं, वे कहते हैं कि प्रयास से जो शांति मिल जाए, वह परम शांति नहीं है। क्योंकि प्रयास से जो शान्ति मिली है, प्रयासजन्य जो है, उसमें तो सक्रियता जुड़ी ही है। अप्रयास से जो मिल जाए, इफर्टलेसली जो मिल जाए, वही परम शांति है। इसका मतलब क्या हुआ?

इसका मतलब हुआ कि विरोध की भाषा में जब तक हम सोचते हैं, तब तक हम शांत नहीं हो पाएंगे। जब विरोध की भाषा ही गिर जाए, तब हम शांत हो पाएंगे। स्त्री सक्रिय होकर भी अपनी निष्क्रियता में बनी रहे, पुरुष सक्रिय होकर भी निष्क्रियता में डूब जाए, करे भी और भीतर न किया हुआ भी बना रहे, बोले

भी और भीतर शांति बनी रहे— मौन होकर न बोलने में कोई कठिनाई नही है, बोल के मौन को खो देने में कोई कठिनाई नही है—शब्द हो बाहर, मौन हो भीतर, तब जो सन्तुलन स्थापित होता है, दो विरोधों के बीच जो सेतु बन जाता है, वह परम है, वह आत्यंतिक है। फिर उसको विनष्ट नही किया जा सकता।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें। जो पुरुष को तो जानता है लेकिन स्त्रैण में करता है वास, वह संसार के लिए घाटी बन जाता है। और ससार की घाटी होकर वह उस मूल स्वरूप में स्थित रहता है, जो अखड है, । ही हू इज अवेयर ऑफ दि मेल, बट कीप्स टू दी फीमेल बिकम्स दि रैविन ऑफ दि वर्ल्ड। बीइंग दि रैविन ऑफ दि वर्ल्ड ही हैज दि ऑरिजिनल कैरेक्टर व्हिच इज नॉट कट अप एड रिटर्न्स अगेन ट दि इनोसेन्स ऑफ दि वैली।

जो पुरुष को जानता है, लेकिन स्त्रैण में वास करता है; जो क्रिया में जीता है, लेकिन निष्क्रियता जिसके भीतर बनी रहती है। यह क्या है ? ऐसा करें, दौड रहे हैं रास्ते पर, तब देखें कि बाहर तो दौड है, लेकिन भीतर कोई है, जो दौड नही रहा है। जरा भीतर झाकें। उसे पकड लेना कठिन नही होगा जो भीतर बैठा हुआ है, जो दौड नही रहा है। शरीर दौडता है, चेतना तो दौडती नही। चेतना तो वही बैठी रहती है। चेतना तो कभी चली ही नहीं। आप कितने ही चले हो, चेतना नही चली है।

चेतना करीब-करीब वैसी है, जैसे आप हवाई जहाज में बैठे हो। हवाई जहाज दौड रहा है हजारो मील की रफ्तार से और आप बैठे हैं। शरीर भी आपका वाहन है। शरीर दौड रहा है, आप बैठे हैं हवाई जहाज में। तो यह सम्भव है कि अगर आपका दिमाग खराब हो तो हवाई जहाज भी भाग रहा हो और आप भी उसमे भाग रहे हो अन्दर— जल्दी पहुच जाने के खयाल से। ठीक वैसा पागलपन आप भीतर भी कर सकते हैं। शरीर भाग रहा हो और आप भी भीनर भागने की कोशिश कर रहे हो। जल्दी नही पहुच जाएगे आप; क्योंकि भीतर कोई गति हो नही सकती। भीतर अगति है। भीतर कोई मूवमेंट, कोई हलन-चलन सम्भव नहीं है। शरीर हलन-चलन कर सकता है।

तो जो व्यक्ति दौडते हुए भीतर ध्यान रख सके उस पर जो दौडता नही है, वह पुरुष होकर स्त्रैण में वास कर रहा है। जो विचार करते समय भी गहरे तल पर निर्विचार में रह सके तो वह पुरुष होते हुए भी स्त्रैण मे वास कर रहा है। जो संसार मे चलते हुए, जीते हुए भी, संन्यासी रह सके तो वह पुरुष के साथ स्त्रैण में ठहरा हुआ है। संन्यास स्त्रैण है।

सैनिक होना पुरुष है, सन्यासी होना स्त्रैण है। लेकिन जो सैनिक रहकर सन्यासी रह सके, उसकी स्थिति परम है। या जो सन्यासी रहकर सैनिक रह सके, उसकी स्थिति भी परम है। क्योकि दो विरोध जब मिल जाते है, तब एक दूसरे को काट

देते हैं। ऋण और धन जब मिलते है, तब एक दूसरे को विलीन कर देते हैं। और उनके नीचे शून्य रह जाता है

जो पुरुष को जानता है, लेकिन स्त्रैण में वास करता है,... । स्त्रैण से समझें निष्क्रियता, स्त्रैण से समझे त्याग, स्त्रैण से समझे समर्पण, स्त्रैण से समझें स्वीकार-- स्त्रैण से इस तरह की बातें समझें। पुरुष से समझें आक्रमण, परिग्रह, संग्रह, दौड़, महत्त्वाकाक्षा, प्रतिस्पर्धा। ये शब्द प्रतीक है। अगर आपका मन दौड़ में जी रहा है सिर्फ और आपने उसको बिलकुल नही जाना जहा दौड़ नही है, तो आप आधे जी रहे है। इस सम्बन्ध में नवीन खोज की एक और बात ध्यान में लेनी चाहिए।

कार्ल गुस्ताव जुग ने इस सदी की महानतम खोजो में एक अनुदान किया है। और वह यह है कि कोई पुरुष न तो पूरा पुरुष है और न कोई स्त्री पूरी स्त्री है। प्रत्येक व्यक्ति द्विलिंगी है, बाई-सेक्सुअल है। मात्रा का फर्क है। आप साठ प्रतिशत पुरुष होंगे और चालिस प्रतिशत स्त्री होंगे। आपकी पत्नी साठ प्रतिशत स्त्री होगी, चालिस प्रतिशत पुरुष होगी। बस ऐसा फर्क है। सौ प्रतिशत पुरुष आप नही हैं। और न सौ प्रतिशत कोई स्त्री है। हो नही सकता ऐसा।

इसलिए नहीं हो सकता कि आपका जन्म स्त्री और पुरुष दोनो के मिलन से होता है। स्त्री मूल होती है, स्त्री से आप बाहर आते है। लेकिन पुरुष इसमें सहयोगी हो जाता है। वह पुरुष आपके भीतर प्रवेश करता है। क्योंकि जन्म सेक्सुअल है, पुरुष और स्त्री के मिलन से है, इसलिए दोनो ही मात्रा मे मौजूद रहेंगे। यह हो सकता है कि कोई नब्बे प्रतिशत पुरुष हो और दस दस प्रतिशत स्त्री हो, लेकिन उसका स्त्रैण हिस्सा होगा ही। कभी-कभी ऐसा होना है कि यह अनुपात इतना क्षीण होता है कि कोई स्त्री बाद में पुरुष हो जाती है, कोई पुरुष बाद में स्त्री हो जाता है। लिंग-परिवर्तन हो जाता है। अगर इक्यावन प्रतिशत आप पुरुष हैं तो खतरा है। एक या दो परसेंट का मामला है। जरा सा भी केमिकल्स का फर्क, जरा सा हारमोन्स का फर्क पड जाए-- किसी बीमारी के कारण, किसी दवा के कारण-- और आप तत्काल स्त्री हो सकते है। अगर आप सिर्फ एक-दो परसेंट के फासले पर है, मारजिन बहुत कम है, तो परिवर्तन हो सकता है।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि परिवर्तन-- मारजिन कितना ही बडा हो-- किया जा सकता है। क्योंकि हारमोन का फर्क है। अगर थोडे स्त्रैण हारमोन आपमे डाल दिए जाए तो आपकी मात्रा, भीतर का अनुपात बदल जाएगा, आप स्त्री होना शुरू हो जाएगे।

इसका अर्थ यह हुआ कि पुरुष के भीतर स्त्री छिपी है और स्त्री के भीतर पुरुष भी छिपा है। इन दोनो के बीच भी अगर संतुलन न बन पाए तो आप असतुलित रहेंगे। इन दोनो के बीच भी भीतर तालमेल हो जाना चाहिए। खयाल करें तो आपको अनुभव में आना शुरू होगा। सुबह आप बड़े शात थे। जरा सा किसी ने

कुछ कहा, आप क्रोधित हो गये, आग जलने लगी। आपको पता नही है कि भीतर जब आप शात थे, तब स्त्रैण तत्त्व प्रमुख था। स्त्रैण ऊपर था, पुरुष नीचे दबा था। अब किसी ने आप मे अगार फेंक दिया, एक गाली दे दी, किसी ने धक्का मार दिया, किसी ने कुछ कह दिया, जो चोट कर गया। स्त्री तत्काल पीछे हट गई। क्योंकि स्त्री चोट का जवाब दे नही सकती, स्त्री आक्रमक नही हो सकती। स्त्री तत्काल पीछे हट गई, परदे के ओट हो गई। पुरुष बाहर आ गया। आपकी आखें खून से भर गईं। हाथ-पैर मे जहर दौड गया। आप गरदन किसी की दबाने को, मार डालने को, उत्सुक हो गये।

आप दिन में चौबीस घटों में कई बार स्त्री हो जाते हैं, कई बार पुरुष हो जाते हैं। जो स्त्री आपको प्रेम करती है, कभी आप सोच भी नही सकते कि वह आपकी गरदन भी दबा सकती है। वह भी कभी आपकी गरदन दबा सकती है। उसके भीतर भी वह गरदन दबाने वाला छिपा है। अगर वह देख ले कि आप किसी और के प्रेम में पडे जा रहे हैं तो वह गरदन भी दबा सकती है। न भी दबाये तो विचार तो करेगी ही गरदन दबाने को। यह भी तो हो सकता है कि आपकी न दबाए तो अपनी ही दबा ले। मगर दबा सकती है।

अक्सर यह होगा कि पुरुष जब क्रोधित होता है, तब दूसरे को नष्ट करना चाहता है; स्त्री जब क्रोधित होती है, तब खुद को नष्ट करना चाहती है। उतना उन दोनो मे भेद है। क्योंकि दूसरे को नष्ट करने मे ज्यादा आक्रमक होना पडता है, खुद को नष्ट करने मे कम आक्रमक होना पडता है। इसलिए स्त्रिया ज्यादा आत्मघात करती हैं। करने का कारण कुल इतना है, वह भी हत्या करना चाहती है आपकी, लेकिन स्त्रैण होने की वजह से अपनी हत्या कर लेती है। पुरुष कम आत्मघात करते है। क्योंकि जब भी वे आत्मघात करना चाहते है, तब उनका मन किसी दूसरे की हत्या करने के लिए दौड पडता है। दूसरे की हत्या करना पुरुष को आसान है; क्योंकि दूसरा दूर है। और स्त्री को अपनी हत्या करना आसान है, क्योंकि स्त्री अपने पास है। उसकी नजर पास पडती है, दूर नही पडती।

लेकिन दोनो एक दूसरे के भीतर छिपे है। और इनमे से अगर एक को बिलकुल काट दिया जाए तो आप अपग हो जाएगे, जैसे बाया पैर किसी ने काट दिया। आप चल पाते है, क्योंकि बाये और दायें के बीच एक संतुलन बना रहता है; यद्यपि दोनो का काम विरोधी है। जब बाया पैर ऊपर उठता है, तब दाया पैर जमीन को पकड़े रहता है। और जब बाया जमीन को पकड लेता है, तब दाया उठता है। दोनो एक दूसरे के विरोध मे होते है। एक जमीन पर होता है, दूसरा जमीन को छोड देता है। लेकिन इन दोनो के बीच ही गति सभव हो पाती है। और इन दोनो के बीच जितना सतुलन हो, जितनी बराबर शक्ति हो दोनो में, उतनी ही गति व्यवस्थित हो पाती है।

आपके भीतर की स्त्री और आपके भीतर का पुरुष भी एक संतुलन मांगते हैं। और जिस दिन यह सतुलन पूरा हो जाता है, उस दिन, लाओत्से कहता है, आप ताओ को उपलब्ध हो गये। क्योंकि लाओत्से कहता है, इस संतुलन का नाम ही निर्दोषता है, इनोसेन्स है।

जो पुरुष को जानता है और स्त्रैण में वास करता है -- स्त्रैण हो नहीं जाता, स्त्रैण में वास करने लगता है ... । ठीक इसके विपरीत स्त्री के लिये है : जो स्त्रैण को जानती है और पुरुष में वास करती है -- पुरुष हो नहीं जाती -- वह ससार के लिए घाटी बन जाती है।

घाटी का, वैली का, रैविन का लाओत्से के लिए प्रतीक-अर्थ है। पहाड जायें आप देखने तो उठे हुए शिखर ही पहाड हैं। और उन शिखरो के पास ही, निकट पड़ोस में घाटिया हैं, वैली हैं। आपने खयाल भी न किया होगा कि शिखर उठ ही इसलिए पाता है कि पास में घाटी बन जाती है। अगर घाटी न हो तो शिखर उठ नही पाएगा। शिखर घाटी से ही अपने साज-सामान को खीचता है और उठता है। शिखर गौण है। शिखर बन नही सकता।

शिखर आक्रमक है -- जैसे अहकार उठ गया हो आकाश में। घाटी निरहकार, विनम्र है। शिखर को अपने को सभालना पडता है, क्योकि गिरने का सदा डर है। जो ऊपर उठता है उसे गिरने का डर होगा ही। घाटी अपने को सभालती नहीं; क्योंकि गिरने का कोई डर ही नही है। जो नीचे उतरता है, उसे गिरने का कोई डर नही है। घाटी निश्चित सोई रहती है, शिखर चिता मे भरा रहता है। शिखर आज नही कल मिटेगा, क्योकि शिखर होने में शक्ति व्यय होती है। जब शिखर अपने को सभाले हुए है, तब शक्ति व्यय हो रही है। घाटी मे शक्ति व्यय होती ही नहीं; क्योकि घाटी मात्र निष्क्रियता है, शून्यता है।

इसलिए लाओत्से घाटी का बड़ा उपयोग करता है। और लाओत्से कहता है, पुरुष शिखर की तरह है और स्त्री घाटी की तरह। यह प्रतीक भी ठीक है। और स्त्री के व्यक्तित्व, उसकी शरीर-रचना मे भी यह बात सत्र है। पुरुष की शरीर-रचना शिखर की तरह है, स्त्री की शरीर-रचना घाटी की तरह। घाटी शात है, शिखर सदा अशात होगा।

लेकिन जो व्यक्ति अपने भीतर दोनो का सतुलन कर लेता है, वह भी घाटी की तरह शात हो जाता है। वह उस मलरूप मे स्थित रहता है, जो अखण्ड है। मूलरूप सदा अखंड है। गौण रूप सदा खडित होते हैं। इसे हम ऐसा समझे। स्त्री और पुरुष दो खड है एक ही मूल रूप के। इसलिए स्त्री और पुरुष में एक दूसरे के लिए इतना आकर्षण है। आकर्षण होता ही सदा उससे है जो हमारा ही खड हो और दूर हो गया हो, जो अपना ही हो और बिछुड गया हो। इसे हम थोडा विज्ञान की यात्रा से भी समझे।

वैज्ञानिक कहते हैं कि जो जीवाणु मौलिक है जगत मे, वह है अमीबा। अमीबा दोनो है, स्त्री और पुरुष साथ-साथ। अमीबा में जो जनन की प्रक्रिया है, वह बड़ी अद्भुत है। अमीबा में स्त्री और पुरुष अलग-अलग नही हैं। इसलिए स्त्री और पुरुष के मिलन से बच्चे का जन्म नहीं हो सकता। अमीबा दोनो है एक साथ। वह स्त्री भी है और पुरुष भी है। तो अमीबा फिर जनन कैसे करता है?

उसका जनन बहुत अद्भुत है। वह सिर्फ भोजन करता जाता है और बड़ा होता जाता है। जब एक सीमा के बाहर उसका शरीर हो जाता है, तब उसका शरीर दो टुकडो में टूट जाता है। ये दो टुकड़े भी स्त्री और पुरुष नही होते, स्त्री-पुरुष साथ-साथ होते हैं। इन दो टुकड़ो में प्रत्येक स्त्री-पुरुष एक साथ होता है। फिर ये भोजन करते जाते हैं। फिर शरीर बडा होकर एक सीमा के बाहर जाता है और दो टुकडो में टूट जाता है। अमीबा, वैज्ञानिक कहते हैं, पृथ्वी पर पैदा हुआ पहला जीवन है, पहला जीवाणु है।

अमीबा में कोई कामवासना नही होती; वह परम ब्रह्मचारी है। कामवासना का कोई उपाय नही है; क्योंकि दूसरा कोई है नहीं, जिसके प्रति वासना हो सकती हो। और दूसरे मे मिलने की कोई इच्छा अमीबा में नहीं है। बड़े मजे की बात है, अमीबा में मिलने की इच्छा बिलकुल नही है; टूटने की इच्छा है। तो अमीबा जब भोजन करता है, तब टूटना चाहता है। भारी हो जाता है, टूटना चाहता है। आपको ठीक भोजन मिले तो काम-वासना पैदा होती है; आप मिलना चाहते हैं। इसे थोडा समझ लें।

अगर आपको ठीक भोजन न मिले तो आप की कामवासना खो जाती है। इसलिए तथाकथित साधु उपवास कर के कामवासना को तोडने का उपाय करते हैं। तथाकथित कहता हू; क्योकि कामवासना वस्तुत मिटती नहीं है, केवल शक्ति के न होने से पता नही चलती। जैसे अमीबा को भोजन न दें तो फिर वह दो मे नही टूटेगा, क्योकि भोजन के बिना शरीर बडा नही होगा, टूटने का सवाल ही नही होगा। टूटना ही उसके जनन की प्रक्रिया है।

जब आपको भोजन ठीक से मिलेगा, तब आप तत्काल दूसरे से मिलना चाहेंगे—पुरुष है तो स्त्री से, स्त्री है तो पुरुष से। क्यों? जैसे अमीबा टूट के जन्म देता है, वैसे आप मिल के जन्म देते हैं। और अमीबा टूट के इसलिए जन्म दे सकता है, कि उसमें स्त्री-पुरुष दोनो उसके भीतर ही मौजूद है। आप टूट के जन्म नहीं दे सकते, आप मिलकर ही जन्म दे सकते हैं। क्योकि जन्म का आधा हिस्सा आपके पास है और आधा हिस्सा स्त्री के पास है। बच्चा पैदा होगा दोनो के मिलने से। आधा आपके पास है बच्चा, आधा स्त्री के पास है। और जब तक वे दोनो न मिल जाए, तब तक बच्चा पैदा नही होगा।

अमीबा टूटता है शक्ति बढ़ने से; आप शक्ति बढ़ने से मिलना चाहते हैं। इस-

लिए अगर आप भोजन न करे, बस कम भोजन करें, ऐसा भोजन करें जिससे आपकी शक्ति न बढ़े तो कामवासना क्षीण हो जायगी। मिट नही जायगी। जिस दिन भोजन करेंगे, उस दिन फिर जाग जाएगी।

पुरुष-स्त्री के बीच जो मिलन का आकर्षण है, उसका कारण बॉयलाजी, जीव-विज्ञान के हिसाब से यह है कि दोनो एक अखड चीज के टुकडे हैं और वे फिर से पूरा होना चाहते है। इसलिए सभोग मे इतना सुख मालूम पडता है—एक क्षण के पूरा हो जाने का सुख। वे जो टूटे हुए टुकडे थे किसी एक अखड के, वे एक क्षण के लिए इकट्ठे हो जाते है। उस इकट्ठे हो जाने में, एक क्षण को, उन्हे जो सुख प्रतीत होता है, वह पूरा हो जाने का सुख है।

इसलिए सभोग में अपने को जो पूरा खो नही सकता, उसे सभोग में कोई भी सुख नही मिलेगा। और बहुत कम लोग हैं, जो सभोग में अपने को खो सकते हैं। क्योंकि नैनिक शिक्षाओ ने, धर्मगुरुओ ने इतना विषाक्त कर दिया है मन को। उनके विषाक्त कर देने से आप सभोग मे बचते नही है, बच नही सकते हैं आप। जब तक आदमी भोजन कर रहा है, तब तक धर्मगुरु जीत नही सकता। कोई उपाय नही है उसके जीतने का। जब तक आदमी स्वस्थ है, शक्तिशाली है, तब तक वह जीत नही सकता। वह तो आदमी को बिलकुल सिकोड के, उसकी सारी शक्ति–ऊर्जा खीच के अगर उसके अस्थि-कगाल ही खडे कर दिये जाएं सारे जगत मे, तो ही साधु–सन्यासी जीत सकते है। नही तो वे जीत नही सकते। क्योकि जो जैविक प्रक्रिया है, वह जिन क्रियाओ से घटित हो रही है, उनका इन्हे कोई बोध नही है। लेकिन वे एक काम कर सकते है। वे आपके सभोग से तो आपको नही बचा सकते, लेकिन सभोग मे आप पूरे न खो सके, इसका उपाय कर सकते है।

उनकी बाते, उनके विचार, आपकी खोपडी मे समा जाते है। फिर सभोग के क्षण मे भी वह खोपडी आप अलग नही रख सकते उतार कर। वह आपके साथ होती है। सभोग भी करते है और पूरे लीन भी नही हो पाते। तब आपको अपने साधु-सन्यासी की बाते ठीक मालूम पडती है कि वे लोग ठीक ही कहते है कि सभोग मे कोई सुख नही है। यह एक विसियस सर्कल है, एक बडा दुश्चक्र है। क्योकि वे कहते है, इसलिए आपको सुख नही मालूम पडता, जब आप डूब ही नही पाते तो सुख मालूम नही पडता। डूब जाए तो सुख मालूम पडेगा। यद्यपि सुख क्षणिक होगा, लेकिन मालूम पडेगा। क्षण भर ही सही, लेकिन वह सुख है। सुख क्या है?

सुख है दो आधे टुकडो का मिल कर एक हो जाना। एक क्षण को ही यह होगा, लेकिन एक क्षण मे आप भी मिट जाएगे और स्त्री भी मिट जाएगी। सभोग का मतलब है जहा स्त्री-पुरुष मिट जाते है, जहा स्त्री स्त्री नही रह जाती, पुरुष पुरुष नही रह जाता; जहा दोनो खो जाते है, एकाकार हो जाते है। एक चैतन्य रह जाता

है। क्षण भर को दो अहकार मिल जाते है, दो शरीर मिल जाते है, दो मन मिल जाते हैं, दो आत्माए मिल जाती हैं। एक क्षण को द्वैत खो जाता हैं, अद्वैत हो जाता है। एक क्षण को ही होता है, एक क्षण के बाद वापस आप पुरुष है, स्त्री स्त्री है।

इसलिए सभोग सुख भी देता है, और दुख भी। सुख देता है क्षण भर को और चौबीस घटे को दुख देता है। क्योंकि मिलने में सब क्षण भर को सुख होता है, फिर बिछुडन है। वह अलग होना सिर्फ दुख है। और आदमी उस सुख-दुख के बीच घूमता है। क्षण भर का सुख, फिर दिनो का दुख, फिर क्षण भर का सुख, फिर दिनो का दुख।

अद्वैत एक क्षण को भी मिल जाए तो सुख मिल जाता है।

इसलिए बुद्ध, महावीर, लाओत्से कहते हैं, यह अद्वैत अगर सदा को मिल जाए तो आनद उपलब्ध होता है। और अद्वैत जब सदा के लिए मिलता है, तब फिर दुख का कोई उपाय नही रह जाता। जब सुख क्षण भर को मिलता है, तभी दुख का उपाय रहता है।

यह जो अद्वैत की तलाश है, इस तलाश का जो पहला अनुभव आदमी को हुआ है, वह संभोग से ही हुआ है। कोई और उपाय भी नही है। **आदमी को समाधि की जो पहली झलक मिली है, वह संभोग से ही मिली है। कोई और उपाय नही है।** पहले मनुष्य को जब खयाल आया होगा, जब पहले विचारशील मनुष्य ने सोचा होगा कि क्यो मिलता है सुख सभोग में, तब उसे लगा होगा कि मिट जाता हू मै, इसीलिए। तो अगर मैं पूरा ही मिट जाऊ सदा के लिए उस परम चैतन्य में, परम अस्तित्व में, तो फिर दुख नही रह जाएगा।

सभोग के अनुभव से ही समाधि की धारणा, समाधि का दूरगामी लक्ष्य पैदा हुआ है।

बडा फासला है दोनों में, लेकिन दोनो मे, एक जोड, एक सेतु भी है। जब स्त्री-पुरुष सभोग मे डूब जाते हैं, तब दोहरी घटना घटती है। यह दोहरी घटना भी समझ लेनी चाहिए। क्योकि आप दोहरे है स्त्री भी, पुरुष भी। स्त्री भी दोहरी है पुरुष भी, स्त्री भी। जब एक स्त्री और पुरुष एक जोडे में लीन हो जाते है, तब आपके भीतर का पुरुष आपके बाहर की स्त्री से मिलता है और आपके भीतर की स्त्री भी आपके बाहर के पुरुष से मिलती है। यह एक रूप हे। और इस गहरे मिलन मे आपके भीतर का पुरुष भी आपके भीतर की स्त्री से मिलता है और आपकी प्रेयसी के भीतर की स्त्री भी भीतर के पुरुष से मिलती है। तब एक वर्तुल निर्मित हो जाता है। एक क्षण को यह घटना घटती है कि आप टूटे नही होते, **अखंड हो जाते हैं।** इस अखडता को कामवासना के द्वारा स्थिर रूप से नही पाया जा सकता। **इस अखंडता को केवल समाधि के द्वारा स्थिर रूप से पाया जा सकता है।** लेकिन यह अखडता की एक झलक, समाधि की एक झलक, सभोग मे घटित होती है।

और अगर आपको घटित नहीं होती तो इसका मतलब ही यह है कि आपका मस्तिष्क संभोग होने ही नहीं देता। आप अपराध से भरे हुए ही संभोग में जाते हैं। आप जानते हैं कि पाप कर रहे हैं। आप जानते हैं कि गर्हित कृत्य कर रहे हैं। जानते हैं कि कुछ बुरा हो रहा है; मजबूरी है, इसलिए कर रहे हैं। आप यह सब जानते हुए जब संभोग में जाते हैं, तब घटना नही घटती। और जब घटना नहीं घटती, तब आपके समझाने वाले गुरुओं के वचन आप को बिलकुल ही ठीक मालूम पड़ते है कि ठीक कहा है उन्होंने कि यह सब व्यर्थता है। और जब आप बाहर आते हैं, तब और दुख से भरे हुए लौटते है, और पश्चाताप से भरे हुए लौटते हैं। सुख मिलता नही है, सुख का क्षण आपका मस्तिष्क गंवा देता है। और पीछे दुख मिलता है। तब स्वभावत: आपकी धारणा और मजबूत होती चली जाती है। यह मजबूत होती धारणा आपको संभोग से वंचित ही कर देती है।

और जिस व्यक्ति को संभोग का कोई अनुभव नही होता, वह अक्सर समाधि की तलाश मे निकल जाता है। वह अक्सर सोचता है कि संभोग से कुछ नही मिलता तो समाधि कैसे पाऊ? लेकिन उसके पास वह झलक भी नही है, जिससे वह समाधि की यात्रा पर निकल सके। स्त्री-पुरुष का मिलन एक गहरा मिलन है। और जो व्यक्ति उस छोटे से मिलन को भी उपलब्ध नही होता, **वह स्वयं के और अस्तित्व के मिलन को उपलब्ध नहीं हो सकेगा।** स्वयं के और अस्तित्व का मिलन तो और बडा मिलन है, विराट मिलन है। यह तो बहुत छोटा सा मिलन है। लेकिन इस छोटे से मिलन में भी अखंडता घटित होती है—छोटी मात्रा मे। एक और विराट मिलन है, जहा अखंडता घटित होती है — स्वयं के और सर्व के मिलन में। **वह एक बड़ा संभोग है, और शाश्वत संभोग है।**

यह मिलन जब घटित होता है, तब उस क्षण मे व्यक्ति निर्दोष हो जाता है। मस्तिष्क खो जाता है, सोच-विचार विलीन हो जाता है, सिर्फ होना, मात्र होना रह जाता है, जस्ट बीइङ्ग। सास चलती है, हृदय धड़कता है, होश होता है; लेकिन कोई विचार नही होता। संभोग में एक क्षण को व्यक्ति निर्दोष हो जाता है।

लेकिन लाओत्से कहता है कि अगर इस गहन आन्तरिक मिलन को व्यक्ति उपलब्ध हो जाए और पुरुष को जाने तथा स्त्री में वास करे, तो वह संसार के लिए घाटी बन जाता है। और घाटी होकर वह स्वरूप मे स्थित रहता है, अखंड हो जाता है। तब शिशुवत निर्दोषता उपलब्ध होती है।

अगर आपके भीतर की स्त्री और पुरुष के मिलने की कला आपको आ जाए तो फिर बाहर की स्त्री से मिलने की जरूरत नही है। लेकिन बाहर की स्त्री से मिलना बहुत आसान है, सस्ता है। भीतर की स्त्री से मिलना बहुत कठिन और दुरूह है। बाहर की स्त्री से मिलने का नाम भोग है; भीतर की स्त्री से मिलने का नाम योग है। वह भी मिलन है। योग का मतलब ही मिलन है।

यह बड़े मजे की बात है। लोग भोग का मतलब समझते है मिलन और योग का मतलब समझते हैं त्याग। **भोग भी मिलन है, योग भी मिलन है।** भोग बाहर जाकर मिलता होता है, योग भीतर मिलता होता है। दोनो मिलन है। **और दोनों का सार संभोग है।** जो स्त्री और पुरुष मेरे भीतर है, अगर वे मिल जाए मेरे भीतर, तो फिर मुझे बाहर की स्त्री और बाहर के पुरुष का कोई प्रयोजन न रहा।

और जिस व्यक्ति के भीतर की स्त्री और पुरुष का मिलन हो जाता है, **वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है।** भोजन कम करने से कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं हो जाता; न स्त्री से या पुरुष से भागकर कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। न आखें बन्द कर लेने से, न सूरदास हो जाने से; आखे फोड लेने से भी कोई ब्रह्मचर्य को नही उपलब्ध होता है। ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाने का एक मात्र उपाय है भीतर की स्त्री और पुरुष का मिल जाना।

अब यह बड़े मजे की बात है कि बाहर की स्त्री से आप कितनी देर मिले रह सकते हैं, शरीर के तल पर क्षण भर मिल सकते हैं। क्योंकि वह मिलन बहुत महंगा है। आपको बहुत ऊर्जा खोनी पडती है, शक्ति खोनी पडती है। अब तो ऊर्जा नापी जा सकती है कि कितनी शक्ति आप एक सभोग में खोते है, कितनी शरीर की विद्युत विनष्ट होती है। इसलिए जब तक उतनी विद्युत आप फिर पैदा न कर ले, फिर मिलन नही हो सकता। इसलिए अब रुकना पडेगा—चौबीस घटे, अडतालीस घटे, सप्ताह भर। जितनी उम्र बढ़ती जाएगी, उतना ज्यादा आपको रुकना पडेगा——महीना भर भी। क्योंकि जब तक उतनी विद्युत फिर पैदा न हो जाए, तब तक यह मिलन अब नहीं हो सकता। इसलिए यह मिलन स्थिर तो हो नही सकता—एक क्षण मे इतनी विद्युत खो जाती है।

इसीलिए संभोग के बाद लोगों को शान्ति मालूम पडती है, विश्राम मालूम पड़ता है। नीद आ जाती है। फ्रायड ने सभोग को ही एकमात्र प्राकृतिक ट्रेंकुलाइजर कहा है। है भी। अमीर आदमी और तरह के भी ट्रेंकुलाइजर खोज लेता है; गरीब के लिए तो एक यही ट्रैंकुलाइजर है। इसलिए गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते है। और कही कोई विश्राम नही है, और कही कोई उपाय नही है खो जाने का।

अमेरिका की घटना मै पढ़ रहा था। अमेरिका के एक नगर में एक वर्ष तक टेलीविजन यांत्रिक कारणो से बन्द करना पडा। कुछ खराबी थी और एक वर्ष तक टेलीविजन नही चला। बड़ी हैरानी की घटना घटी, जो किसी ने सोची भी नही थी। दूसरे साल दुगने बच्चे पैदा हुए उस गाव में। क्योंकि लोग टेलीविजन देख लेते थे और सो जाते थे चुपचाप देख-दाख के। साल भर टेलीविजन बद रहा, अमीर और गरीब बराबर हो गये। एक ही मनोरजन बच गया। और दुगने बच्चे हुए। एक मनोवैज्ञानिक ने सुझाव दिया है कि टेलीविजन बर्थ-कन्ट्रोल की सबसे अच्छी तरकीब है, व्यवस्था है। घर-घर में टेलीविजन पहुचे तो बर्थकंट्रोल की कम

जरूरत पड़ेगी--अगर उस गांव का अनुभव सभी जगह काम आए तो। आना चाहिए, क्योंकि आदमी एक जैसा है।

इसलिए गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। उनके स्वयं को खोने का कुछ और उपाय नहीं है। उनके पास कुछ और स्वय को खोने का उपाय नहीं है। इसलिए अमीर आदमियों को अक्सर बच्चा गोद लेना पड़ता है।

अगर बाहर का मिलन है शरीर के तल पर तो क्षण भर को होगा। और मन के तल पर तो क्षण भर को भी नही हो पाता है। इसे थोडा समझ लें। शरीर के तल पर तो क्षण भर को भी हो पाता है; मन के तल पर तो क्षण भर को भी नहीं हो पाता। इसलिए काम, यौन तो आसान है; **प्रेम बहुत कठिन है**। प्रेम का मतलब है मन के तल पर मिलन---किसी स्त्री-पुरुष का मन के तल पर ऐसा मिल जाना जैसा सभोग में शरीर के तल पर घटित होता है। कोई विरोध नहीं रह गया; कोई भेद नही रह गया; कोई अस्मिता, अहकार नही रह गया। जब मन के तल पर ऐसा मिलन होता है, **तब प्रेम घटित होता है**। जब शरीर के तल पर ऐसा मिलन होता है, तब यौन घटित होता है। प्रेम बड़ा कठिन है। क्योकि दो मनो का ऐसे क्षण में आ जाना जहां कोई विरोध न हो, कोई अहंकार न हो, अति कठिन है।

मिलन शरीर के तल पर क्षण को हो और मन के तल पर क्षण भर को भी नहीं, इसलिए दुख मिलेगा।

अपने भीतर एक मिलन घटित हो सकता है स्वय की स्त्री और स्वय के पुरुष का---वह आत्मा के तल पर। और वह जो मिलन है, उसमे कोई शक्ति व्यय नही होती। क्योंकि आप अपने बाहर जाते ही नही है। विज्ञान की भाषा में कहे तो अमीबा जैसे शरीर के तल पर स्त्री-पुरुष एक है, ऐसे ही जो व्यक्ति अपने भीतर स्त्री और पुरुष को मिला लेता है, आत्मा के तल पर अमीबा की तरह एक हो जाता है। **इस मिलन का नाम आनन्द है**। और इसकी प्रक्रिया योग है। **और ऐसी स्थिति में आया हुआ व्यक्ति बिलकुल बच्चे की तरह निर्दोष होता है।**

बच्चे की तरह कहने का कारण है। बच्चे का मतलब है जब यौन की धारणा विकसित नही हुई। छोटा बच्चा न स्त्री है, न पुरुष। शरीर की दृष्टि से तो स्त्री या पुरुष है, पर अभी उसे अपने शरीर का पता ही नही है। आपको पता है। तो आपके लिए एक बच्चा स्त्री है, एब बच्चा पुरुष। बच्चा पैदा हुआ। मां-बाप पता लगाना चाहते हैं कि लडका है या लड़की। यह लड़का या लडकी मां-बाप के लिए है, अपने लिए नही। अपने लिए वह अभी कुछ नहीं है। अपने लिए तो अभी उसे शरीर का बोध नही है। अपने लिए वह अभी सिर्फ है। वक्त लगेगा। जब आप उसको सिखायेंगे, वह बड़ा होगा, तब वह समझेगा कि लड़का है या लड़की। फिर भी समझ कर भी इसकी समझ में नहीं आएगा कि ऐसा बड़ा फर्क है लड़का और

लड़की में। जब चौदह साल का होगा, तब उसकी ग्रन्थियां शक्ति पैदा करनी शुरू करेंगी और तब हारमोन विभाजित होंगे। तब इसे पहली दफा भीतर से अनुभव आएगा कि लडका होने का क्या अर्थ है और लड़की होने का क्या अर्थ है। तब लड़के शिखर बनने लगेंगे और लडकियां घाटियां बनने लगेंगी। तब उनकी मिलन की आकाक्षा पैदा होगी। तब वे एक दूसरे से मिल के पूरा होना चाहेंगे।

लाओत्से कहता है, जो व्यक्ति पुरुष होकर स्त्री में वास कर लेता है, वह भीतर एक निर्दोष बच्चे की भांति हो जाता है। फिर वह न स्त्री है और न पुरुष।

मैंने कहा, बुद्ध स्त्रैण मालूम होते हैं। अगर हम चगेजखां को, हिटलर को, नैपोलियन को, सिकन्दर को, पुरुष मानते हैं तो निश्चित ही बुद्ध स्त्रैण मालूम होते हैं। लेकिन बुद्ध के भीतर का अनुभव क्या है? भीतर का अनुभव यह है कि बुद्ध अब न स्त्री हैं, न पुरुष। बुद्ध अब केवल हैं। अब वे उस बच्चे की भांति हो गए जिसको पता ही नही है कि शरीर में कोई भेद है, जिसे यह भी पता नही है कि शरीर है। कभी आपको खयाल हो या न हो, शरीर का आपको पता ही तब चलता है, जब आप बीमार होते हैं। नही तो पता नहीं चलता। अगर बच्चा स्वस्थ है तो उसे बिलकुल पता नही चलता कि शरीर है। स्वस्थ बच्चे को शरीर का कोई पता नही होता। जब बीमारी आती है, भूख लगती है, ठंड लगती है, तब बच्चे को पता चलता है कि शरीर है। आप भी अगर पूरे स्वस्थ हों—जो कि बहुत कठिन है—तो आपको भी शरीर का पता नही चलेगा।

बीमारी का पता चलता है। पैर में कांटा चुमता है तो पैर का पता चलता है। सिर में दर्द होता है तो सिर का पता चलता है। अगर आपको सिर का पता चलता रहे तो समझना कि दर्द है। विचार बहुत चलते रहे, वे भी दर्द पैदा करते हैं। उनकी वजह से भी खोपडी का पता चलता है। बच्चे को कोई पता नही है शरीर का।

बच्चे को किसी भेद का पता नही है। बच्चे को किसी से मिलने की कोई आकाक्षा नही है। बच्चा अपने मे लीन है। फ्रायड ने जो शब्द उपयोग किया है, वह बहुत बढिया है। फ्रायड कहता है कि बच्चा ऑटो-एरोटिक है, आत्म-कामी है। खुद काफी है, उसे कोई और जरूरत नही है। देखें, बच्चा अपने ही हाथ चूसता रहता है। आपको अगर हाथ चूसने में मजा लेना हो तो किसी और का चूसना पड़ेगा। अपना हाथ बिलकुल मजा नही देगा। या कि आपको दे सकता है? अगर दे तो आपके घरवाले आपका इलाज करवाने चिकित्सक के पास ले जाएगे। बच्चा ऑटो-एरोटिक है।

तीन तरह की सभावनाए हैं, ऐसा मनसविद् कहते हैं। हेटरो-सेक्सुअल या विपरीत लिंगी काम है पुरुष और स्त्री के बीच; होमो-सेक्सुअल या समलिंगी काम है पुरुष और पुरुष के बीच, स्त्री और स्त्री के बीच, और ऑटो-सेक्सुअल या आत्म-

लिंगी काम है खुद से ही, किसी के प्रति नहीं। बच्चा ऑटो-सेक्सुअल है। उसे अभी दुनिया में किसी की जरूरत नहीं है। अभी वह अपने को ही प्रेम करता है। नारसिसस की कथा आपने पढ़ी होगी। यूनानी कथा है कि नारसिसस इतना सुन्दर था कि जब उसने पहली दफा पानी मे अपनी छाया देखी, तब उसके प्रेम में पड़ गया। फिर वह अपने को ही प्रेम करता रहा। फिर वह किसी को प्रेम नहीं कर सका। बच्चे नारसिसस हैं; वे खुद को ही प्रेम करते हैं। अभी दूसरा है ही नहीं।

लेकिन दूसरा आएगा। जल्दी ही शरीर तैयारी कर रहा है। प्रतीक्षा है, जल्दी ही दूसरा आ जाएगा। जल्दी ही बच्चे दूसरे में रस लेना शुरू कर देंगे। छिपे में अभी भी रस होता है — छिपे में, अभी बच्चे को साफ भी नहीं होता, अनकासस, अचेतन मे। इसलिए लडकियां पिता को ज्यादा प्रेम करती हैं, और लड़के मा को ज्यादा प्रेम करते हैं। मा लड़को को ज्यादा प्रेम करती है; बाप लडकियों को ज्यादा प्रेम करता है। विपरीत अभी भी आकर्षक है। इसलिए बाप और बेटे में थोड़ा सा कलह रहता है। लड़की और मा मे भी थोड़ा सा कलह रहता है। और अगर बाप लड़की को ज्यादा प्रेम करता है तो कलह और बढ़ जाता है। या अगर मा लड़के को ज्यादा प्रेम करती है तो कलह और बढ़ जाता है। वह विपरीत का आकर्षण अभी भी छिपा है। लेकिन अभी प्रकट नहीं है। प्रगट हो जाएगा।

लेकिन जब भीतर मिलन घटित हो जाता है, तब व्यक्ति बच्चे की तरह निर्दोष हो जाता है। बस बच्चे की तरह। यह बात ठीक बच्चे की तरह नहीं होती। और भी आयाम खुल जाते हैं। अब दूसरा कभी भी महत्वपूर्ण नहीं होता। अब दूसरे का आकर्षण सदा के लिए खो गया। अब यह सारी बात ही समाप्त हो गयी। अब यह भीतर आत्म-कामी है। अब यह अपने ही भीतर पूरे रस मे लीन है। अब यह उस अद्वैत को उपलब्ध हो गया, जहा कहीं बाहर जाने की, प्रेमी को खोजने की अब कोई जरूरत नहीं रही।

अब प्रेमी भीतर मिल गया है। और तब स्वभावत. सब तनाव खो जाए, सब अशाति खो जाए, दुख खो जाए, तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि ऐसा व्यक्ति सदा ही भीतर अमृत के झरने को अनुभव करता है।

जो झलक कभी सभोग मे आपको दिखी हो, उसे आप बढाना चाहेंगे। यह सम्भव है, अगर साधु-सन्यासियों ने आपका मस्तिष्क खराब न किया हो जो कि बहुत मुश्किल है। ऐसा आदमी खोजना बहुत मुश्किल है, जो साधु-सन्यासी से बच जाए। क्योंकि उनका जाल बहुत पुराना है; उनका धन्धा बहुत प्राचीन है। और उनके हाथ सब जगह फैले हुए हैं। और हर बच्चे की गरदन पर उनके हाथ पहुंच जाते हैं। और इसके पहले कि बच्चा होश से भरे, उसके मस्तिष्क में कामवासना के सबन्ध में अत्यत मूढ़तापूर्ण विचार डाल दिए जाते हैं, जो उसको कभी भी संभोग के क्षण मे सुखी न होने देंगे। अगर मनुष्य-जाति के साथ कोई सबसे बड़ा अनाचार

हुआ है, तो वह यह है । क्योंकि जो सहज सुख था, वह असम्भव कर दिया गया।

और उसके असभव हो जाने से धर्म कोई फैल गया हो, ऐसा नहीं है। सिर्फ अधर्म फैला है। क्योंकि वह सहज सुख की सम्भावना अगर बनी रहे तो आदमी समाधि की खोज में निश्चित ही निकल जाएगा। जिसे जरा सी भी झलक मिली हो, वह और को पाना चाहेगा। जिसे बिलकुल भी झलक न मिली हो, वह केवल हताश हो जाएगा। उसे फिर कुछ और पाने का सवाल ही नहीं रहा। अगर मैं आपके हाथ में एक झूठा हीरा भी दे दू तो भी असली हीरे की खोज शुरू हो जाएगी। लेकिन आपके हाथ में असली हीरा भी रखा हो और चारों तरफ समझाने वाले लोग हों कि यह पत्थर है तो उसको भी आप फेंक देंगे। और तब असली की खोज असम्भव ही हो जाएगी। झलक विराटतर शक्ति की तरफ ले जाती है।

इसलिए कहता हूं, अगर आपको संभोग का कभी जरा सा भी, क्षण भर का भी, अनुभव हुआ हो तो आप कल्पना कर सकते हैं उस योगी की, जिसको भीतर यह संभोग घटित होता है। तो फिर यह रस चौबीस घंटे झरता रहता है। कबीर कहते हैं, जागू कि सोऊ, उठू कि बैठू, वह अमृत झरता ही रहता है। वह कौन सा अमृत है ? वह भीतर के मिलन का अमृत है। अब भीतर कबीर एक हो गए। इस एक हो जाने का नाम ही आत्मा है। भीतर बंटे होने का नाम मन है और भीतर एक हो जाने का नाम आत्मा है। और जब तक आपके भीतर आत्मा नही है, तब तक आप व्यक्ति नही है, इनडिविजुअल नही हैं। आप सिर्फ एक भीड हैं, एक समूह हैं, वहां बहुत से लोगो का वास है। जब यह भीड़ खो जाती है, तब एक ही बचता है। जब यह द्वैत खो जाता है, तब एक ही बचता है।

लाओत्से कहता है, जो शुल्क के प्रति होशपूर्ण है, लेकिन कृष्ण के साथ जीता है, जो प्रकाश के प्रति होशपूर्ण है, लेकिन अंधेरे के साथ जीता है, वह ससार के लिए आदर्श बन जाता है। और ससार का आदर्श होकर उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त होती है, जो कभी भूल नही करती। और वह पुनः अनादि अस्तित्व में वापस लौट जाता है।

प्रकाश के प्रति होशपूर्ण, लेकिन अंधेरे में जीता है, यह और भी कठिन बात है। क्योंकि हम प्रकाश को चाहते हैं अन्धेरे के खिलाफ। हमारी सारी वासना किसी की चाह और किसी के खिलाफ से बनी है। ऋषि ने गाया है, हे प्रभु मुझे प्रकाश की तरफ ले चल! अन्धेरे से हटा, प्रकाश की तरफ ले चल; मृत्यु से हटा, अमृत की तरफ ले चल! लाओत्से की बात उस ऋषि से ज्यादा गहरी है। क्योंकि वह ऋषि सामान्य मनुष्य की वासना को ही प्रगट कर रहा है। उस ऋषि ने जो भी कहा है, वह कोई असामान्य बात नही है। यह सामान्य आदमी की वासना है कि मुझे अन्धेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ, सुख की तरफ दुख से,

वेदना से आनन्द की तरफ ले चल ! यह वासना ठीक सामान्य आदमी की है। इसमें ऋषि का कुछ बहुत है नही। कहें कि ऋषि ने सभी सामान्य मनुष्यों की वासना को अपने इस सूत्र में प्रकट कर दिया है।

लेकिन लाओत्से की बात सचमुच उसकी बात है जिसने जाना है। वह कह रहा है कि शुक्ल के प्रति होशपूर्ण, जागे रहना प्रकाश की तरफ, लेकिन अन्धेरे के खिलाफ प्रकाश को मत चुन लेना। डरना मत अन्धेरे से, अन्धेरे में जीना। घबड़ाना मत। क्योंकि जो आदमी अन्धेरे में जीने को राजी हैं बिना भय के, वही आदमी वस्तुतः प्रकाश को उपलब्ध हुआ है। जो अन्धेरे से डरता है, वह प्रकाश को कभी वस्तुतः उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि अन्धेरा प्रकाश का ही एक रूप है। अन्धेरा प्रकाश का ही रूप है। भेद हमे दिखाई पडता है। **अस्तित्व में भेद नहीं है।**

और अगर हम गहरे उतरें तो इसका मतलब है कि जो नीति के प्रति होशपूर्ण है, लेकिन अनीति से भयभीत नही, जो सन्यास की तरफ जागा हुआ है, लेकिन ससार से भागा हुआ नही। **इस सूत्र को पूरे जीवन के समस्त विरोधों में फैला देना जरूरी है।** जहा-जहा विरोध हो, वहा-वहा जानना कि दोनो को एक साथ जोड़ लेना है। तब जो स्थिति घटित होगी, **वही परम शांति की है।**

अगर हम द्वन्द्व में से चुनते हैं तो शांति कभी घटित नही हो सकती। जो भय से भाग गया ससार से और सन्यास चुन लिया, वह संसार से पीडित रहेगा। जो भयभीत है जिससे, उसका भय उसका पीछा करता है। वह कही भी चला जाए, उसे शांति नही मिलेगी। और डर लगा ही रहेगा ससार से। और ससार छाया की तरह पीछे जाएगा। और वह कितना भी बचे, जहा जाएगा वही ससार निर्मित हो जाएगा। लेकिन जो ससार के बीच सन्यस्त होता है, अब उसे कोई भय नही है। अब उसे कहीं जाने की जरूरत न रही। अब वह जहा ही है वहीं मोक्ष है।

कबीर मरने के करीब थे। कबीर जिन्दगी भर काशी मे रहे और मरते वक्त उन्होंने कहा, मुझे काशी से बाहर ले चलो। लोगो ने कहा, आप पागल हो गये है, लोग तो मरने के लिए काशी आते है। क्योंकि यहा जो मरता है, वह मोक्ष को उपलब्ध होता है। कबीर ने कहा, इसलिए मुझे काशी के बाहर ले चलो। इसलिए मुझे काशी के बाहर ले चलो, क्योंकि मर के मैं वही उपलब्ध होना चाहता हू, जहां उपलब्ध हो सकता हूं। काशी का सहारा लेना नही चाहता हूँ। तब लोगो ने पूछा कि ऐसी जिद्द भी क्या है? अगर काशी के सहारे भी मोक्ष मिलता हो तो ऐसी भी जिद्द क्या है? तो कबीर ने कहा कि जो मैने भीतर पा लिया है, अब मुझे नरक में भी फेंक दिया जाए तो वहा भी मोक्ष है। अब कोई भेद नही पडता। क्या मुझे मिलता है, उसका सवाल नही है। क्योंकि मैंने जो भीतर पा लिया है, **वही मोक्ष है।**

काशी मरने वे ही आते हैं मोक्ष के लिए, जिन्हें भीतर का मोक्ष नही मिला है। और जिन्हें भीतर का मोक्ष नहीं मिला, वे पागल हैं कि सोच रहे हैं कि बाहर का मिल

जाएगा। काशी में कितनी ही बार मरो, मोक्ष नहीं मिल सकता। **अपने में एक बार भी मर जाओ, मोक्ष अभी और यहीं है।**

और अपने में मरने का सूत्र है द्वन्द्व में चुनाव मत करना, द्वन्द्वों को पूरे का पूरा आत्मसात कर लेना। बुरे और भले को, शुभ और अशुभ को, शुक्ल और कृष्ण को, सब को एक साथ आत्मसात कर लेना, ताकि दोनो एक दूसरे को काट दें। उनके कटते ही व्यक्ति अनादि अस्तित्व में वापस लौट जाता है। **और उसे वह सनातन शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो कभी भूल नहीं करती।**

फिर उसे सोचना नही पडता कि मैं करू या न करूं। फिर उसे सोचना नहीं पड़ता कि क्या ठीक है और क्या गलत है। फिर तो उससे जो होता है— ठीक होता है। और उससे जो नही होता, वह गलत है। फिर तो उसका होना ही उसका नियम है।

आज इतना ही। पाच मिनट रुकें, कीर्तन करें और जाएं।

■■

संस्कृति से गुजर कर निसर्ग में वापसी

उनसठवां प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई :: दिनांक २६ नवम्बर १९७२.

अध्याय २८ : खंड २

स्त्रैण में वास

जो सम्मान और गौरव से परिचित है,
लेकिन, अज्ञात की तरह रहता है,
वह संसार के लिए घाटी बन जाता है,
और संसार की घाटी होकर,
उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त हो जाती है,
    जो स्वयं में पर्याप्त है।
और वह पुनः अनगढ़ लकड़ी की
    नैसर्गिक समग्रता में वापस लौट जाता है।
इस अनगढ़ को खण्डित करें या तराशें,
तो वही पात्र बन जाती है।
ज्ञानी के हाथों में पड़कर,
वे उस आभिजात्य को उपलब्ध होते हैं,
    जो शासन करता है।
इसलिए महान शासक खण्डन नहीं करता है।

Chapter 28 : Part 2

KEEPING TO THE FEMALE

He who is familiar with honour and glory
But keeps to obscurity
    Becomes the valley of the world.
Being the valley of the world,
    He has an eternal power which always suffices,
And returns again to the natural integrity of uncarved
    wood.
Break up this uncarved wood
And it is shaped into vessel.
In the hands of the Sage,
    They become the officials and magistrates.
Therefore the great ruler does not cut up.

स्त्रैण मनुष्य का एक और आयाम है।

स्त्री और पुरुष के चित्त को समझ लेना साधना की अनिवार्य भूमिका है।

जैसा मैंने कल कहा, स्त्री है अनाक्रमक, उसमें आमंत्रण है, आक्रमण नही है। पुरुष है आक्रमक, हमलावर। इसलिए पुरुष का चित्त सदा यात्रा पर है। उसे दूसरे की सक्रिय खोज है। और आक्रमक है चित्त, इसलिए पुरुष चाहता है कि वह जाना जाए, पहचाना जाए, उसे लोग जानें, प्रतिष्ठा हो, यश हो, सम्मान हो। **यश की आकांक्षा आक्रमण का हिस्सा है।**

और जिस दिन यश की आकाक्षा नही होती किसी में, उस दिन ही वह आक्रमण-शून्य हो जाता है।

आक्रमण के रूप अनेक हो सकते हैं। कोई तलवार लेकर आक्रमण पर निकलता है—दूसरे को जीतने। कोई यही काम त्याग से भी कर सकता है। कोई यही काम ज्ञान से भी कर सकता है। कोई चित्र बना सकता है, कोई संगीत सीख सकता है, कोई तलवार चला सकता है। लेकिन आकाक्षा एक है कि दूसरे मुझे जानें, मैं जाना जाऊं, पहचाना जाऊ, सम्मानित होऊ।

इसका अर्थ हुआ कि पुरुष का केन्द्र है अहंकार। अहकार अगर जाना न जाए तो निर्मित ही नही होता। जितने ज्यादा लोग मुझे जाने, उतना अहकार निर्मित होता है। जितने ज्यादा लोगो तक मेरा प्रभाव हो, जितनी बडी सीमा हो उस प्रभाव की, उतना मेरा अहकार सघन होता है।

स्त्री है अनाक्रमण, अर्थात् समर्पण। इसे थोड़ा ठीक से समझ ले।

अगर आक्रमण चाहता है कि जाना जाऊ तो समर्पण चाहेगा कि जाना न जाऊ, पहचाना न जाऊ। करू भी तो भी यह पता न चले कि मैंने किया है। **समर्पण छिपना चाहता है; समर्पण अज्ञात रहना चाहता है।** समर्पण अनाम की खोज करता है। समर्पण की गहरी से गहरी आकाक्षा आक्रमण के विपरीत है। अगर समर्पण भी जाना जाना चाहे, यश चाहे, खबर चाहे कि लोग जाने कि मैंने समर्पण किया, तो जानना कि समर्पण केवल शब्द ही है, भीतर आक्रमण है। दूसरे के चित्त पर मेरा प्रभाव हो, यह चाह हिंसा है, आक्रमण है। किसी को मेरा पता भी न हो, ऐसे जीने का जो ढग है, **वही समर्पण है।**

स्त्री का प्रेम, अगर वस्तुत स्त्री का प्रेम है, तो अज्ञात होगा। इसलिए कोई स्त्री पहल नही कर पाती। अगर उसका किसी से प्रेम भी हो तो वह यह नही कह सकती

कि मैं तुम्हें प्रेम करती हू । प्रतीक्षा करेगी कि पुरुष ही उसे किसी दिन कहेगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं । पहल, इनीसीएटिव आक्रमण का ही हिस्सा है । स्त्री घोषणा नहीं करेगी । उसके सारे अस्तित्व से घोषणा के स्वर सुनाई पड़ेंगे । उसकी आंखो से, उसके होठो से, उसके होने से, उसकी श्वास-श्वास से घोषणा होगी; लेकिन वह घोषणा अप्रगट होगी । उसे वही समझ पाएगा जो उतने सूक्ष्म में, उतने प्रेम में लीन हुआ है । अन्यथा वह दिखाई भी नही पडेगी ।

स्त्री-चित्त का यह आयाम खयाल में रख लें तो फिर इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाएगा ।

जो सम्मान और गौरव से परिचित है, लेकिन अज्ञात की तरह रहता है, वह संसार के लिए घाटी बन जाता है । और ससार की घाटी होकर उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त होती है, जो स्वयं मे पर्याप्त है ।

लाओत्से की दृष्टि बडी उलटी है । आमतौर से हम समझते है कि शक्ति होती है आक्रमण में । लाओत्से कहता है, **शक्ति होती है समर्पण में ।** और आक्रमण की शक्ति को तो तोडा भी जा सकता है, काटा भी जा सकता है, क्योंकि आक्रमण से बडा भी आक्रमण हो सकता है । **लेकिन समर्पण से बडा कोई समर्पण नहीं हो सकता ।** समर्पण का अर्थ ही आखिरी होता है । उससे बडा कुछ होता नही । तो आप ऐसा नही कह सकते कि यह समर्पण थोडा छोटा है और यह थोडा बडा है । समर्पण का अर्थ ही पूरा है ।

जैसे कि आप यह नही कह सकते कि यह वर्तुल अधूरा है, यह सर्कल अधूरा है, और यह सर्कल पूरा है । सर्कल का अर्थ ही यह होता है, वह होगा तो पूरा होगा, नही तो नही होगा । कोई अधूरा वर्तुल नही होता, नही तो वह वर्तुल ही नही है । वर्तुल पूरा ही होगा ।

वैसे ही कोई प्रेम अधूरा नही होता । या तो होता है, या नही होता । कम-ज्यादा भी नही होता । या तो होता है, या नही होता । कोई मात्राए नही होती । **समर्पण पूरा है ।** आप यह नही कह सकते किसी से कि मैं आधा समर्पण करता हू । आधा समर्पण का क्या अर्थ होगा ? आधे समर्पण का कोई अर्थ ही नही होता । असल में आप समझ नही पा रहे है, आप समर्पण कर ही नही रहे है । इसलिए आप कहते है, आधा समर्पण करता हू । आप अपने को पीछे बचा ले रहे है । वह जो बचा हुआ है, वही तो समर्पण में बाधा है । समर्पण का अर्थ है पूरा । **समर्पण होता ही पूरा है ।**

इसलिए आक्रमण से बड़ा आक्रमण हो सकता है । और आक्रमण पराजित किया जा सकता है । लेकिन समर्पण से बडा कोई समर्पण नही होता । **इसलिए समर्पण की कोई पराजय नहीं है ।** लेकिन हम सोचते हैं, आक्रमण में है शक्ति । पुरुष का चित्त ऐसा ही सोचता है ।

लाओत्से कहता है, समर्पण मे है शक्ति । और लाओत्से के कहने के बहुत कारण है ।

पहला तो यह कि समर्पण से बड़ा कोई समर्पण नहीं हो सकता। दूसरा, शक्ति अगर वस्तुत: हो तो आक्रमक नही हो सकती। कमजोर ही आक्रमण करता है। असल में कमजोरी ही शक्ति पर भरोसा रखती है। शक्तिशाली आक्रमण नही करता। महावीर ने कहा है कि शक्तिशाली अहिंसक हो जाता है। कमजोर कभी अहिंसक नही हो सकता; कमजोर को तो सदा ही आक्रमण पर भरोसा रखना पड़ेगा।

मैकियावेली, जो कि आक्रमण के विज्ञान में गहरा गया है, कहता है कि आक्रमण वस्तुत: सुरक्षा का उपाय है। वह ठीक कहता है। वह कहता है कि अगर अपनी सुरक्षा चाहते हो तो इसके पहले कि कोई आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना। इसकी प्रतीक्षा मत करना कि जब कोई आक्रमण करेगा, तब हम सुरक्षा कर लेगे। क्योकि तब तुम पीछे पड गये, तुम एक कदम पीछे पड गए। और आक्रमण करनेवाले की सभावना बढ जाएगी जीतने की। तो वह कहता है, सुरक्षा का एक मात्र उपाय है आक्रमण।

लेकिन सुरक्षा कौन चाहता है?

कमजोर सुरक्षा चाहता है। और इसलिए कमजोर आक्रमक होता है। अगर हम अपनी जिंदगी मे भी देखें, अगर आप अपने भीतर भी देखें, तो जिन क्षणो में आप कमजोर होते हैं, उन क्षणो में आप क्रोधी होते हैं। जिन क्षणो में आप कमजोर नही होते, आप क्रोधी नही होते। जिन क्षणो में आप भयभीत होते है, उन क्षणो में भय प्रगट न हो जाए, इसलिए आप बडी अकड दिखलाने की कोशिश करते है। वह अकड़ आपकी व्यवस्था है कि आपका भय प्रगट न हो जाए। जो भयभीत नही होता वह अकडा हुआ भी नही होता है। जो कमजोर नही होता, वह क्रोधी भी नही होता है। शक्तिशाली मनुष्य कभी भी क्रोधी नही देखे गए। जितना कमजोर आदमी होता है, उतना क्रोधी होता है।

लोग आमतौर से कहते है, फला आदमी कमजोर है, क्योकि क्रोध करता है। वे उल्टी बात कह रहे है। क्रोध से कोई कमजोर नही होता, कमजोरी की वजह से ही लोग क्रोधी होते है। लेकिन स्वभावत परिणाम होगा। जब वह क्रोध करेगा, तब और कमजोर होता चला जाएगा। क्योकि शक्ति व्यय हो रही है। और जितना ज्यादा कमजोर होता जाएगा, उतना ज्यादा क्रोध करता चला जाएगा। क्रोध जो है, वह प्याली मे आ गया तूफान है। ताकत बिलकुल नही है। जितनी थोडी-बहुत है, उसको दिखाए बिना कोई उपाय नही है। उसे दिखा के रास्ता बन जाए, कोई भयभीत हो जाए, और हमारी शक्ति की वास्तविक कसौटी का मौका न आए; क्रोध उसका आयोजन है।

लाओत्से कहता है, समर्पण है शक्ति। वह कहता है, शक्ति जब होती है, तब दूसरे पर आक्रमण करके उसके सामने सिद्ध नही करना पड़ता। शक्ति स्वयंसिद्ध है। दूसरे पर सिद्ध करने की आकाक्षा भी अपने में अविश्वास है। आमतौर से यह होता है।

आप किसी बात में, विचार में, किसी धारणा मे श्रद्धा रखते हैं। आपकी कोई मान्यता है। अगर कोई उस मान्यता का खडन करे तो आप तत्क्षण क्रोधित हो जाते हैं। वह क्रोध बताता है कि आपको डर है कि कही मान्यता का खडन, वस्तुतः आपके मन की जो धारणा है, उसे तोड़ न दे। उस डर से क्रोध आता है। अगर यह धारणा आपका अनुभव है तो क्रोध नही आएगा। क्योंकि आपको भरोसा ही है कि इसे तोडने का कोई उपाय नही है। यह आपका अनुभव है। जब भी आप अपने किसी विचार के लिए दूसरे को ताकत लगा कर समझाने लगते हैं, तब आप ध्यान रखना, आप दूसरे को नही समझा रहे हैं, आप दूसरे के बहाने अपने को ही समझा रहे हैं। आप को भय है, डर है। आपको खुद ही भरोसा नही है कि जो आप मानते हैं, वह ठीक है।

इसलिए तथाकथित विश्वासी लोग दूसरे की बात सुनने को राजी ही नही होते। उनके गुरुओ ने उनको समझाया है कि कान बन्द कर लेना, अगर कोई विपरीत बात कहता हो। क्योंकि खुद भी भरोसा नही है। विपरीत बात भरोसे को उखाड़ दे सकती है। आप दूसरे को कनविंस करने की, दूसरे को राजी करने की जितनी तीव्रता से चेष्टा करते है, उतनी ही इस तीव्रता से खबर देते है कि आपको अपने पर भरोसा नही है।

जिसे अपने पर भरोसा है, वह दूसरे को प्रभावित करने के लिए उत्सुक नही होता। और जिसको अपने पर भरोसा है, उससे दूसरे प्रभावित होते हैं। प्रभावित करना नही पडता, वे प्रभावित होते है। और जिसको अपने पर भरोसा नही है उसे प्रभावित करने की चेष्टा करनी पडती है। फिर भी कोई उससे प्रभावित नही होता। आत्म-श्रद्धा चुम्बक है। अपना अनुभव अगर गहरा और पूर्ण है तो परम शक्तिशाली है। दूसरे उसकी तरफ खिंचे चले आते है।

दूसरे को आकर्षित करने का, प्रभावित करने का प्रयास भीतर की कमजोरी का लक्षण है।

लाओत्से कहता है, समर्पण शक्ति है और आक्रमण कमजोरी है। एक और कारण से भी कहता है। समर्पण वही कर सकता है, जिसे अपने पर भरोसा है। आक्रमण तो कोई भी कर सकता है। सच तो यह है कि आक्रमण वही करता है जिसे अपने पर भरोसा नही है। और समर्पण वही कर सकता है, जिसे अपने पर भरोसा है। पूरा अपने को दे देने का सवाल है। कौन अपने को पूरा दे सकता है? वही अपने को पूरा दे सकता है, जिसका अपने पर पूरा भरोसा है।

मेरे पास लोग आते है। वे कहते है, हम समर्पण करना चाहते है, लेकिन हमे अपने पर कोई भरोसा ही नही है। तब समर्पण कैसे होगा? जिसे अपने पर भरोसा नही है, उसे यह भी तो भरोसा नही है कि जो समर्पण उसने इस क्षण में किया है, वह दूसरे क्षण में भी टिकेगा। उसे कल का भी भरोसा नही है। अभी भी उसे पक्का

नहीं है कि वह सच में समर्पण करना चाहता है, कि नही करना चाहता है।

समर्पण की घटना ही इस बात की खबर है कि व्यक्ति को अपने पर पूरी आस्था है; वह अपने को पूरा दे सकता है। वह पूरे का मालिक है।

आक्रमण तो अधूरे से भी हो जाता है। आपको पूरा होने की जरूरत नही है आक्रमण में। और अक्सर आक्रमण में आप पूरे नही होते। जब आप क्रोध कर रहे होते है, तब भी आपके भीतर कोई हिस्सा कह रहा होता है कि क्या कर रहे हो, न किए होते तो अच्छा था। क्रोध करते ही आप पछताते है। वह हिस्सा जो क्रोध में साथ नही था, वही पछताता है कि क्या किया, नही करना था। आक्रमण में कभी भी आप पूरे नही हो सकते।

बडे मजे की बात है कि बड़े से बड़ा योद्धा भी भयभीत होता है। बड़े से बडा योद्धा भी। इंग्लैण्ड में कहा जाता है कि लार्ड नेलसन ने कभी जीवन में भय नही जाना। बडा सेनापति था नेलसन। नैपोलियन को हराया था उसने। कभी भय नही जाना। लेकिन एक मनसविद ने नेलसन की मनोदशा का विश्लेषण करते हुए बड़ी कीमती बात लिखी है। उसने लिखा है कि यह असभव है कि नेलसन ने भय न जाना हो, क्योकि बिना भय के तो आदमी आक्रमक हो ही नही सकता। जिसको भयभीत नही किया जा सकता है, उसको क्रोधित भी नही किया जा सकता। जिसको भयभीत नही किया जा सकता है, उसको लडने के लिए राजी भी नही किया जा सकता। जो भयभीत नही होता, वह दूसरे को भी भयभीत करने नही जाएगा। असल में अपने भय से बचने के लिए हम दूसरे को भयभीत करते है। जब दूसरा भयभीत हो जाता है, तब हमें लगता है कि हमारा भय समाप्त हुआ। अगर दूसरा भयभीत न हो तो हमारा भय बढता है।

उस मनसविद् ने यह भी लिखा है कि अगर यह बात सच है कि नेलसन ने कभी भय नही जाना तो नेलसन के प्रति हमारी जो धारणा है उसके एक महान योद्धा होने की, वह भी समाप्त हो जाती है। क्योकि जिसने भय जाना ही नही, उसके महान योद्धा होने का क्या अर्थ है? महान योद्धा होने का तो यही अर्थ है कि हमारे जैसा ही भयभीत आदमी नेलसन भी था और युद्ध के मैदान पर ऐसे खड़ा रहा जैसे कि बिलकुल भय न हो। तभी तो कोई अर्थ है। अगर एक आदमी सडक पर खडा है और बस आ जाए और वह डरे ही नही और खड़ा रहे, उसे भय ही न हो और बस के नीचे कुचल कर मर जाए तो हम उसको कोई बहादुर आदमी नही कहेंगे, सिर्फ मूढ कहेंगे। बहादुरी तो भय के अनुपात में होती ही है। अगर भय ही नही है तो बहादुरी समाप्त हो गई। तब तो आदमी मूढ़ हो जाएगा। और या परमज्ञानी हो जाएगा, **जहां अभय है।** लेकिन जो अभय को उपलब्ध हुआ है—कभी कोई महावीर, कभी कोई बुद्ध—युद्ध में उसकी उत्सुकता नही रह गई। युद्ध का मतलब ही है दूसरे को भयभीत करने की चेष्टा। और जो खुद भय नही जानता है, उसे दूसरे को

भयभीत करने में कोई रस नहीं रहता। दूसरे को भयभीत करना अपने भय से ही बचने की व्यवस्था है। जितना ज्यादा भय होता है, अक्सर आदमी उतना बाहर बहादुरी दिखाता है। वह बहादुरी भीतर के भय को सतुलित करती है। वह संतुलित करती है, वह आवरण है। वह उसका जिरह-बख्तर है। वह उसकी सुरक्षा है। भीतर भय है, इसलिए बाहर सुरक्षा है। भीतर भय नही है तो बहादुरी दिखाने का कोई कारण भी नही है।

लाओत्से कहता है, समर्पण है शक्ति; क्योकि दिखाने का वहां कोई इरादा नही है। आक्रमण है कमजोरी; क्योकि आक्रमण दिखावे पर निर्भर है।

जो सम्मान और गौरव से परिचित है, ...। ध्यान रहे, यह बात जाननी जरूरी है। एक छोटा बच्चा है, उसे सम्मान और गौरव का कोई अनुभव नही है। अगर अभी वह अज्ञात में रहता आया है तो इसमें कुछ गौरव नही है, इसमें कुछ गुण नही है। सम्मान और गौरव से जो परिचित है, वह अज्ञात में रहे तो गुण है, तो गौरव है, तो गरिमा है।

अनुभव के बिना जो भी घटे, वह अज्ञान में घटता है। अनुभव के साथ जो घटे, वह ज्ञान में घटता है।

सम्मान और गौरव से जो परिचित है और अज्ञात की तरह रहता है। जिसे पता है कि गौरव का रस क्या है, जिसे पता है कि गौरव का अनुभव क्या है, जिसे पता है कि अगर लोग जानें, यश हो, प्रतिष्ठा हो, सम्मान हो तो प्रतीति क्या है, उसका एहसास क्या है, इसका जिसे पता है, वह अज्ञात में रहे। इसे हम समझ ले दो कारणो से।

एक तो, जो बिना अनुभव के अज्ञात में रहे, उसका अज्ञात अज्ञात नही है। उसे अभी ज्ञात होने का पता ही नही है। इसलिए अज्ञात होने का कोई पता नही होगा। हमारे अनुभव द्वन्द्व के है। जिसने सुख नही जाना हो, उसे दुख का कोई अनुभव नही हो सकता। इसलिए बडे मजे की घटना घटती है। अक्सर जिसने सुख जाना है, वह सोचता है कि दूसरे लोग जिनको वैसा सुख नही मिल रहा है, बहुत दुखी हैं। वह भ्राति है। वह बिलकुल भ्रान्ति है।

आप अगर एक महल में रह रहे है तो झोपडो मे रहने वाला आदमी बहुत दुख पा रहा है उसमें रह कर, ऐसा आपको लगेगा। आपका लगना ठीक है। अगर आपको झोपडे में रहना पडे तो आपको दुख होगा, यह भी सच है। लेकिन झोपड़े मे जो रह रहा है, जो महल में नही रहा है, वह दुख पा रहा है महल में न रहने का, इस भ्रान्ति में आप मत पड़ना। वह नही पा सकता। दुख सुख के अनुभव के बाद ही पाया जा सकता है। **जिस चीज का सुख अनुभव हो जाता है, फिर उसका अभाव दुख देता है।**

इसलिए दुनिया में दुख बढता जा रहा है, क्योकि चीजें और उनके अनुभव बढते जा रहे है। आज से दस हजार साल पहले दुनिया में दुख कम था। यह मत सोचना कि तब लोग सुखी थे। अगर लोग सुखी होते तो दुख होता। दुख

कम था, क्योंकि सुख कम था। सुख के अनुभव से ही दुख बढ़ता है। कोई दस हजार साल पहले किसी आदमी को कार के न होने का दुख नहीं हो सकता था। या कि हो सकता था? आज होगा। कार के न होने का दुख आज एक वास्तविकता है। क्योंकि कार के होने का सुख एक वास्तविकता है। दस हजार साल पहले कार के न होने के दुख का कोई उपाय ही नहीं था। क्योंकि कार के होने के सुख का कोई उपाय नहीं था। सुख पहले आता है, दुख पीछे। **दुख छाया है।**

सम्मान, प्रतिष्ठा, यश, आदर, गौरव का अनुभव हो तो ही अज्ञात के अनुभव में उतरा जा सकता है। अनेक लोग अनाम जीते हैं। उससे आप यह मत सोचना कि वे उस परम स्थिति को उपलब्ध हो गये हैं, जिसकी लाओत्से बात करता है। अनेक लोग अनाम जीते हैं। लेकिन ध्यान रहे, उनका अनाम होना तब तक सार्थक नहीं है, जब तक उन्हे नाम का अनुभव न हो। नाम के अनुभव के बाद जो बिना नाम के जीने को तैयार है, उसने द्वन्द्व को जाना और उसने द्वन्द्व को काटा। द्वन्द्व जब कट जाता है, तब निर्द्वन्द्व चित्त परम आनद को उपलब्ध हो जाता है। **लेकिन द्वन्द्व को काटने के लिए द्वन्द्व से गुजरना जरूरी है।**

इसलिए लाओत्से ससार के विरोध मे नहीं है। और लाओत्से नाम के भी विरोध में नहीं है, सम्मान के भी विरोध में नहीं है। वह इतना ही कह रहा है कि सम्मान के अनुभव के साथ अनाम का अनुभव और अज्ञात का अनुभव भी जुड़ जाए तो तुम ससार के पार, जिसे मोक्ष कहे, मुक्ति कहे, उसमें प्रवेश कर जाते हो।

दूसरी बात भी ध्यान रखने जैसी है। और वह यह कि जिसने ठीक से सम्मान का अनुभव जाना है, वह निश्चित ही अज्ञात के अनुभव के लिए उत्सुक हो जाएगा। और जिसने सम्मान का अनुभव नहीं जाना, वह कितना ही अज्ञात के अनुभव की चेष्टा करे, उसकी चेष्टा व्यर्थ जाएगी। उसका कारण है।

उसका कारण है। बहुत से लोग उन महलो का त्याग कर देते हैं जिनमे वे कभी रहे ही नहीं। बहुत से लोग उन पदो को लात मार देते हैं, जिन पर वे कभी पहुचे ही नहीं। आप लात कैसे मारिएगा उस सिहासन पर, जिस पर आप कभी बैठे नहीं? आप कुछ और नहीं कर रहे हैं—बस आप के अगूर खट्टे हैं! सिंहासन आपकी पहुच के बाहर है। आप अपने को समझा रहे हैं, सान्त्वना दे रहे हैं। और तब ऐसा आदमी इस सात्वना को भी नाम बनाने का आधार बनाएगा। यह बडे मजे की और जटिल बात है। ऐसा आदमी जो कहेगा कि मुझे सम्मान की कोई जरूरत नहीं है, नाम की कोई जरूरत नहीं है, पद की कोई जरूरत नहीं है, वह इस घोषणा को भी कि पद की, सम्मान की, प्रतिष्ठा की जरूरत नहीं है, इसको भी प्रतिष्ठा का कारण बनाएगा। इसको भी। जिनको हम त्यागी कहते हैं, वे क्या कर रहे हैं? वे त्याग को भी धन की तरह उपयोग कर रहे हैं। त्याग भी उनके लिए प्रतिष्ठा का कारण है।

अब यह बडे मजे की बात है कि त्याग का मतलब ही एक होता है कि प्रतिष्ठा

छोड़ दी। लेकिन अगर त्याग की भी प्रतिष्ठा बनाई हो तो सब व्यर्थ हो गया। लेकिन हालत ऐसी है। मै एक साधु के आश्रम में गया था। वे सब कुछ छोड़ के चले गए है। सब कुछ का मतलब है कि जो उनके पास था—बहुत ज्यादा नही था—मगर जो भी था, सब कुछ छोड़ के चले गए हैं। उनके आश्रम में दीवारो पर मैंने जो वचन लिखे देखे, वे बड़े मजेदार थे। जिस कमरे में वे बैठे थे, उसकी दीवार पर लिखा हुआ था "कि त्याग श्रेष्ठतम है, क्योंकि सम्राट भी त्यागी के चरणों में सिर झुकाता है।" मैंने उनको पूछा कि इस सूत्र का क्या मतलब हुआ? क्या त्याग की श्रेष्ठता इसलिए हुई कि सम्राट भी सिर झुकाता है? इसका अर्थ हुआ कि त्याग करने योग्य है, क्योंकि सम्राट को भी जो प्रतिष्ठा नही मिलती, वह त्यागी को मिलती है। लेकिन, अगर त्याग भी प्रतिष्ठा बन जाए तो त्याग नहीं रहा। त्याग का मतलब ही एक होता है कि प्रतिष्ठा का अब कोई अर्थ नही है।

लेकिन आप त्यागी को देखें। वह प्रतिष्ठा में इतना रस लेता है जितना कि भोगी नही लेता। त्यागी का सारा काम चौबीस घंटे एक है कि प्रतिष्ठा मिले। भोगी कभी-कभी प्रतिष्ठा में रस लेता है। और भी काम है उसे। त्यागी को दूसरा काम ही नही है। उसे सुबह से शाम तक एक ही काम है—प्रतिष्ठा पाना। और अगर वह त्याग भी करता है इस प्रतिष्ठा के लिए तो वह त्याग व्यर्थ हो गया।

असल बात यह है कि अगर सम्मान का अनुभव न हो तो असम्मान की पीड़ा का भी अनुभव नही हो सकता। अगर सम्मान का अनुभव न हो तो सम्मान की व्यर्थता का भी अनुभव नही हो सकता। अगर सम्मान का अनुभव न हो तो सम्मान की मूढता का भी अनुभव नही होता। पूरे अनुभव के बाद जो व्यक्ति अज्ञात में डूब जाता है, वह फिर अज्ञात में डूबने को सम्मान का कारण नही बनाता। **वह अज्ञात अब सम्मान से विपरीत आयाम हो जाता है।**

हम अपने को धोखा दे सकते है। ऐसा समझें कि अगर आपको धन का अनुभव न हो और आप त्यागी हो जाए तो छिपे अचेतन में धन की आकांक्षा काम करती रहेगी। बिलकुल काम करती रहेगी। उसमें कोई भेद नही पड़ेगा। और वह नए रास्ते निकालेगी और नए सिक्के गढ़ेगी। वे सिक्के बड़े धोखे के होगे। ससार के सिक्के उतने धोखे के नही है, सीधे-साफ है। ससारी होना सीधा-साफ है। लेकिन संसार के बिना परिपक्व अनुभव के सन्यासी हो जाना बडे उपद्रव की बात है। क्योकि तब आदमी विकृत मार्गों से ससारी ही होता है। सिर्फ मार्ग बदल गए होते हैं, ज्यादा धोखे के और ज्यादा चालाकी के हो गए होते हैं। लेकिन ससार से कोई छुटकारा नही होता।

अगर आपको धन का अनुभव नही है तो आप निर्धन होने का मजा नही ले सकते। सिर्फ दुख पा सकते है निर्धन होने का। या निर्धन के नाम पर प्रतिष्ठा बना के सुख पा सकते है। लेकिन तब आप निर्धनता का उपयोग धन की तरह कर रहे है। तो कुछ

लोग धन का उपयोग कर रहे हैं प्रतिष्ठा के लिए, आप निर्धनता का उपयोग कर रहे हैं प्रतिष्ठा के लिए। आपके मार्ग अलग हो गए हों, लेकिन आपका लक्ष्य एक है।

धन के अनुभव के बाद जब कोई निर्धन होता है, तब वह इस निर्धनता का कोई भी उपयोग नही करता। यह निर्धनता सिर्फ उसका आन्तरिक अनुभव होती है। बाहर के जगत से इसके कारण वह कोई प्रतिष्ठा इकट्ठी नही करता। यह उसके लिए फिर कभी धन नही बनती, क्योंकि धन उसके लिए व्यर्थ हो गया।

इसलिए लाओत्से कहता है कि सम्मान और गौरव से जो परिचित है, लेकिन अज्ञात की तरह रहता है। सम्मान और गौरव से परिचित होना बुरा नही है। सम्मान और गौरव मे यात्रा करना भी बुरा नही है। लेकिन वह मंजिल नहीं है, यह ध्यान रखना जरूरी है। और उस दिन की, उस क्षण की प्रतीक्षा करनी जरूरी है, जिस दिन वह व्यर्थ हो जाए। इसलिए मै आपसे कहता हूं कि धन की यात्रा बुरी नही है; लेकिन उस दिन की प्रतीक्षा करनी, प्रार्थना करनी और साधना भी साथ करनी है, जिस दिन धन व्यर्थ हो जाए। छोडकर भाग जाएं, ऐसा आवश्यक नही है। व्यर्थ हो जाए, वह आपका आन्तरिक अनुभव बन जाए, यह आवश्यक है।

हम उलटा कर रहे हैं।

मै एक घर में ठहरा हुआ था। उनका लडका थोडा उद्दण्ड था, जैसे कि लड़के होते हैं। अविनयी था। तो बाप को अच्छा मौका मिला कि मेरे सामने वह उसको लथाडे, सताए। अक्सर बाप दूसरो के सामने लड़को को सताने में रस लेते है। तो मेरे सामने उनके पुत्र को हाजिर किया गया। पिता बोले कि यह सुपुत्र है! मतलब था कि कुपुत्र है, विनय बिलकुल नही है। फिर उन्होने उपदेश दिया पुत्र को कि वियनवान को ही सम्मान मिलता है।

मैने उनसे पूछा, आप क्या कह रहे है? आप इस लड़के को पाखण्डी बनाने की कोशिश कर रहे हैं। क्या कह रहे है? आप कह रहे है, विनयवान को सम्मान मिलता है। आप इसे जगा रहे है सम्मान में और विनय को उपकरण बना रहे हैं सम्मान का। आप इसको हिपोक्रिट, पाखण्डी बना रहे हैं। यह विनीत होगा और प्रतीक्षा करेगा कि सम्मान मिले। यह दिखाएगा कि मै विनम्र हू और आशा करेगा कि लोग मेरे पैर छुए। यह कहेगा, नही-नही, मेरे पैर मत छुओ, और इसकी पूरी आत्मा से लार टपकेगी कि जल्दी छुओ। आप इसको क्या सिखा रहे हैं?

उन्होने कहा कि आप क्या कह रहे हैं? इसके सामने? यह वैसे ही उदण्ड है।

मैंने कहा, इसकी उद्दडता फिर भी सीधी-साफ है। और आप जिस विनय की बात कर रहे हैं, वह ज्यादा चालाकी और कनिंगनेस की बात है। उद्दड है तो उद्दण्ड रहने दें। उद्दण्ड का दुख मिलेगा। सहायता करें कि और उद्दण्ड हो जाए, ताकि अनुभव से गुजर जाए। और दुख उठाने दें उद्दण्ड होने का। क्योंकि दुनिया में कोई किसी को अनुभव नही दे सकता। शब्द दे सकता है, अनुभव नही दे सकता। इसको

उद्दण्ड होने का दुख उठाने दें। यह सोचता है कि उद्दण्ड होने में सुख है। इसको वह सुख उठाने दें। और आप सोचते है कि उद्दण्ड होने में दुख पाएगा, वह दुख उठाने दें। इसके अनुभव से जिस दिन इसको दिखाई पड़ जाएगा कि उद्दण्डता मूढ़ता है, उस दिन जो विनम्रता आएगी, वह आपकी विनम्रता नही होगी, जो सम्मान के लिए है। और मै समझता हू कि आपने उद्दण्ड होने का दुख नही उठाया है। इसलिए सम्मान की इच्छा पीछा कर रही है। और तब विनम्र में भी सम्मान की आकांक्षा है। और तब त्याग में भी सम्मान की आकाक्षा है। सम्मान की आकाक्षा भोग है तो त्याग मे सम्मान की आकांक्षा क्या होगी? तब तो निर्धन होने में भी धन ही कमाया जा रहा है।

आदमी ऐसा उपद्रव अपने साथ कर सकता है। उसी का नाम पाखंड है। और हमारे सारे जीवन पाखण्ड से भर गए हैं। भर गए है इसलिए कि लक्ष्य कुछ और है और साधन विपरीत है। इच्छा यही है कि मेरा अहकार भरे। और आवरण ऐसा है कि मै तो निरहकारी हू। अगर कोई कह दे कि आपसे भी बडा निरहंकारी कोई है तो दुख पहुचता है। निरहकारी को इस बात से कैसे दुख पहुचेगा कि उससे बडा भी कोई निरहकारी है? अहकारी को पहुचेगा।

अगर मेरे पास कोई आये और मैं कहू कि मैं बिलकुल निरहकारी हू और वह कहे कि आप क्या निरहकारी हैं, हमारे पडोस में एक आदमी रहता है जो आपसे भी ज्यादा निरहकारी है तो मुझे चोट पहुचेगी। क्यो? हा, मैं अहकारी हू और मुझसे ज्यादा कोई अहकारी है तो चोट पहुंचनी चाहिए। लेकिन निरहकारी को भी इससे चोट पहुचती है कि उससे बड़ा कोई निरहकारी है। त्यागी से कहिए कि आपका त्याग क्या है, आप से भी बडा त्यागी है, तो उसके चेहरे पर कालिमा छा जाती है। त्यागी को भी इसमे दुख होता है तो फिर कही धोखा हो रहा है।

निरहकारी तो आनदित होगा कि बडी अच्छी बात है, मुझसे बड़ा कोई निरहकारी है। यह तो बहुत ही आनन्द की बात है। त्यागी को खुशी होगी कि मुझसे बडा कोई त्यागी है। बडी खुशी की बात है कि दुनिया में और बडा त्याग भी है। लेकिन त्यागी भी दुखी होगा। ज्ञानी भी दुखी होता है, अगर उससे कहो कि आपसे भी बडा ज्ञानी कोई है। ज्ञानी भी दुखी होता है। अज्ञानी दुखी होता है, क्षम्य है। ज्ञानी दुखी होता है तो फिर अज्ञानी और ज्ञानी मे फर्क कहा है?

बड़े से जब तक आप दुखी होते है, तब तक जानना कि नाम कुछ भी हो, अहंकार भीतर है। आप बहाने कुछ भी खोज रहे हों अहकार को भरने के लिए, भोजन कुछ भी दे रहे हैं, दूध पर ही रखा हो, शुद्ध दूध पर अहकार को, तो भी कोई फर्क नही पड़ता। मासाहार करवाया हो, कि दूध पिलाया हो, कि साग-सब्जी खिलाई हो, खिला तो अहंकार को ही रहे है। त्याग खिलाया हो, कि प्रतिष्ठा खिलाई हो, अहकारी या निरहकारी कौन-सी यात्रा करवाई हो, लेकिन अहंकार ही यात्रा कर रहा है।

लाओत्से जीवन के प्रति बहुत सम्यक् है। कहता है, जिसे अनुभव है और अनुभव के साथ अज्ञात की तरह रहता है, वह ससार के लिए घाटी बन जाता है। और उस सनातन शक्ति को प्राप्त होता है, जो स्वय मे पर्याप्त है। इसे थोड़ा समझ ले। कौन-सी शक्ति स्वयं में पर्याप्त है?

ऐसा समझें कि अर्जुन बहुत बड़ा योद्धा है। लेकिन दुनिया में अगर कोई भी न हो तो अर्जुन का सब योद्धापन खत्म हो जाएगा। क्योकि अर्जुन के योद्धा होने के लिए किसी का हारना जरूरी है, किसी का मरना जरूरी है, किसी की पराजय आवश्यक है। अर्जुन की विजय के लिए किसी की पराजय आवश्यक है। उसकी विजय भी किसी की पराजय पर निर्भर है।

यह बहुत मजे की बात है कि आपकी विजय भी किसी की पराजय पर निर्भर है। उसके बिना आप जीत भी नही सकते है। उसके बिना आप जीत भी नहीं सकते। क्या विजय हुई यह जो दूसरे पर निर्भर है? वह विजय हुई? आपकी अमीरी गरीबी पर निर्भर है। अगर आसपास गरीब न हो तो अमीरी का मजा चला जाता है। आपको अगर कोई सारी दुनिया का सम्राट बना दे, लेकिन दुनिया मे कोई और न हो, आप अकेले हो, तो आप कहेगे कि भाड़ में जाए यह साम्राज्य, मजा ही चला गया। क्योकि मजा दूसरे पर निर्भर था। आप कितने ही बड़े महल में रहे, जब तक पड़ोस में झोपडा न हो, तब तक महल का मजा नही आता। वह महल का मजा झोपड़े पर निर्भर है; किसी पर निर्भर है, उसका मजा किसी और पर निर्भर है।

यह बड़ी उलटी बात है। आपका सारा सुख दूसरे पर निर्भर है। आप का सारा व्यक्तित्व दूसरे पर निर्भर है। आप बडे पंडित है। कुछ मूढ आपको चाहिए, नही तो आप पडित नही है। मतलब कि पाडित्य मूढता पर निर्भर है। दुनिया में मूढ़ न हो तो पडित व्यर्थ हो गए। अज्ञानी न हों, ज्ञानी दो कौडी के हो गए। कुरूप लोग न हों, सुन्दर लोगो की कोई पूछ न रही।

लेकिन जो सौन्दर्य कुरूपता पर टिका हो, वह कितना सुन्दर होगा? और जो धन निर्धन की छाती पर खड़ा हो, वह कितना धन होगा? और जो पुण्य पापों के बीच निर्मित होता हो, उसमें कितनी पुण्यवत्ता हो सकती है? इसका मतलब यह हुआ कि सुन्दर जाने-अनजाने चाहता है कि दूसरे लोग कुरूप रहे। जाने या न जाने, यह दूसरी बात है। लेकिन जो चीज निर्भर दूसरो की कुरूपता पर है, वह चाहेगी ही कि दूसरे लोग कुरूप हो। **सौन्दर्य अगर कुरूप को चाहता है तो कितना सौन्दर्य है उसमें?**

लाओत्से कहता है कि जो व्यक्ति द्वन्द्वो के बीच समता को उपलब्ध हो जाता है, चुनाव नहीं करता, डोलता नही, द्वन्द्वो को जोड़ के काट देता है और दोनो के बाहर हो जाता है, वह उस शक्ति को उपलब्ध होता है जो स्वय में पर्याप्त है। बुद्ध शांत हैं। उनकी शांति अशांत लोगों पर निर्भर नही है। समझ ले। अगर दुनिया में

एक भी आदमी अशात न हो तो भी बुद्ध की शांति में फर्क नही पड़ेगा। या पड़ेगा? बुद्ध अपने बोधि-वृक्ष के नीचे शांत बैठे हैं। यह शाति क्या अशांत लोगो की अशांति के कारण शाति है? बुद्ध तो आख बन्द किये बैठे हैं। अगर यह सारी दुनिया विलीन हो जाए और बुद्ध आख खोलकर देखें कि कोई अशात यहा दिखाई नहीं पड़ रहा है तो क्या उनकी भीतर की शाति समाप्त हो जाएगी? नही, कोई कारण नही है। यह शाति किसी की अशांति पर निर्भर ही नही है।

अगर यह किसी की अशाति पर निर्भर थी तो बुद्धो को लोगो को अशात होने के लिए समझाना चाहिए था, शांत होने के लिए नही। क्योकि लोग अगर शात हो जायेंगे तो बुद्ध का क्या होगा? आत्महत्या में लगे हैं, लोगो को समझा रहे है कि शात हो जाओ! **बुद्ध की शांति आत्मनिर्भर है।** यह किसी को अशात करके शात होने का उपाय नहीं है। यह स्वयं को ही शात करके शात होने का उपाय है।

बुद्ध का ज्ञान क्या अज्ञानी पर निर्भर है? इसे कसौटी समझ ले। अगर आपका ज्ञान अज्ञानी पर निर्भर हो तो वह जानकारी है, ज्ञान नही। अगर आपका ज्ञान आप पर ही निर्भर हो, दुनिया में एक भी अज्ञानी न रहे, तो भी आपके ज्ञान में कोई फर्क न हो, तो ही समझना कि **वह अनुभव है। अनुभव सदा ही स्वयं में पर्याप्त है।** बुद्ध ने जो जाना है, उसका आपके न जानने से कोई सबध नही है। कोई भी न हो इस पृथ्वी पर तो भी वह जानना ऐसे ही घटित हो जाएगा।

लेकिन एक फिल्म अभिनेत्री है, वह सुन्दर है। यदि कोई भी न हो इस पृथ्वी पर तो वह सुन्दर नही रह जाएगी। उसका सुन्दर होना दूसरो की आखों पर निर्भर था। एक राजनेता है। इस पृथ्वी पर कोई न हो तो वह राजनेता नही रह जाएगा। उसका नेता होना अनुयायियो पर निर्भर है। एक बुद्ध बुद्ध ही होगे। इससे कोई फर्क नही पडता कि पृथ्वी बचती है कि खो जाती है। यह सारा संसार खो जाए, कुछ भी न हो, तो भी रत्ती भर फर्क नही पडेगा। वही स्थिति जो दूसरे पर निर्भर नही है, आत्म-स्थिति है। जो स्थिति दूसरे पर निर्भर है, वह पर-स्थिति है। वह आत्म-स्थिति नही है। ध्यान रखना, अपने भीतर खोज करते रहना कि यदि आप के पास ऐसा भी कुछ है, जो किसी पर निर्भर नही है, तो समझना कि आपके पास आत्मा है। अगर नही है तो समझना कि आत्मा का आपको अभी कोई भी पता नही है। **आत्मा का अर्थ ही यह है कि जो स्वयं में पर्याप्त है।**

यह सूत्र कीमती है। लाओत्से कहता है, उस व्यक्ति को वह सनातन शक्ति प्राप्त होती है, **जो स्वयं में पर्याप्त है।**

और वह पुन. अनगढ लकडी की भाति नैसर्गिक समग्रता में वापस लौट जाता है। अनगढ लकड़ी की भाति नैसर्गिक समग्रता में वापिस लौट जाता है।

हम सब गढी हुई लकडिया है—कल्टीवेटेड, सुसस्कृत। ऐसा समझें, एक बच्चा पैदा हुआ आपके घर में। वह अनगढ़ लकड़ी है अभी। वह बच्चा हिन्दू नहीं है,

ईसाई नही है, जैन नही है, बौद्ध नही है । अभी अनगढ लकडी है । पर आपने उसको गढना शुरू कर दिया । अगर आप जैन है तो आपने उस लडके को तराशना शुरू कर दिया । जैन बनाने की कोशिश शुरू हो गयी । बुला लाये किसी मुनि महाराज को आशीर्वाद देने के लिए, कि ले गये चर्च में बपतिस्मा के लिए । आपने उस लडके को काटना-छांटना शुरू कर दिया । यात्रा शुरू हो गयी । लकड़ी अनगढ नही रही । अब फरनीचर बनेगा । आप उसकी कुर्सी, टेबल, कुछ बनाएगे । लकड़ी स्वीकृत नही है । अनगढ, नैसर्गिक लकडी स्वीकृत नही है । आप कुछ बनाएगे । तभी काम का है, नही तो बेकाम का साबित हो जाएगा लड़का यह । आप काम का बना कर रहेगे ।

फिर यह लडका पचास साल का हो गया है । अब यह सोचता है, मै हिंदू हू, ईसाई हू, जैन हू । यह झूठ है । यह थोपा हुआ आरोपण है । 'यह बनावट है । यह ऊपर से दिया गया खयाल है । यह सस्कार है । यह जानता है, मै इजीनियर हू, डाक्टर हू, दूकानदार हू, कि क्लर्क हू, कि मास्टर हू । ये भी सस्कार है । यह जानता है कि मेरा नाम राम है, कृष्ण है, कि मुहम्मद है । यह भी सस्कार है । यह जानता है कि मै सफल हूँ, कि असफल हू । यह भी सस्कार है । ये सब दूसरो ने दिये है । ध्यान रहे, सस्कार मिलते है दूसरो से और स्वभाव आता है स्वय से । **इसलिए संस्कार से मुक्त हो जाना ही मुक्ति है, स्वभाव में गिर जाना ही मुक्ति है ।** स्वभाव तो अनगढ है, अनबना है । सस्कार गढा हुआ है ।

संस्कार ही बन्धन है । हिन्दू होना बधन हे । जैन होना बधन है । मुसलमान होना बन्धन है । राम होना, कृष्ण होना, बुद्ध होना बधन है । नाम बन्धन है । धन्धा, व्यवसाय, पद, उपाधि, बन्धन है । लेकिन वे सब जरूरी है । क्योकि उनके बिना तो जीवन चल नही सकता । आवश्यक है । बुराई है तो भी आवश्यक है । बच्चे को मा-बाप कुछ तो देंगे ही । अगर न देने की कोशिश करे तो उस कोशिश मे भी कुछ देगे । कोई उपाय नही है ।

ऐसा हुआ है । इजिप्त के एक सम्राट को, एक फैरोह को खयाल आया कि हम बच्चो को जो भी भाषा सिखाते है, वह दी हुई है । तो उसने एक बच्चे को जन्म के बाद महल मे रखवा दिया और उपाय किया कि उसको कोई भाषा सुनने का मौका न मिले, ताकि पता चल जाए कि मनुष्य की निसर्ग भाषा क्या है । वह बच्चा सिर्फ गूगा साबित हुआ । वह बोला ही नही, क्योकि कोई निसर्ग-भाषा नही है । सब भाषा सस्कार है । निसर्ग तो मौन है । ध्यान रहे, भाषा सस्कार है । उसको कोई भाषा नही दी गई तो वह गूगा ही रह गया ।

लेकिन ध्यान रहे, उसका गूगापन महावीर का मौन नही है, क्योकि उसने वाणी नही जानी । जिसने वाणी नही जानी, वह मौन से कैसे परिचित होगा ? वह सिर्फ गूगा है, सिर्फ गूगा । गूगा होना मौन नही है । वाणी जिसने जानी और वाणी को जानकर जिसने व्यर्थ पाया और चुप हो गया, तब वह मौन है । वह लड़का

सिर्फ गूंगा रह गया। उसकी कोई भाषा नही रही। भाषा तो सीखनी पड़ेगी। हमें सभी कुछ सिखाना पडेगा।

लेकिन साथ-साथ यह बात भी खयाल में बनी रहे कि जो भी सिखाया जा रहा है, वह बाहर से आ रहा है; वह जरूरी है, आत्यंतिक नही है। वह आवश्यक है, उपयोगी है, सत्य नही है। सत्य तो वह अनगढ स्वभाव है, अनछुआ, कुंवारा, अस्पर्शित। दूसरा जहा तक पहुंचा ही नही कभी, वही मेरी आत्मा है।

लाओत्से कहता है, ऐसा व्यक्ति जो द्वन्द्व से बाहर हो गया, वह पुनः अनगढ लकडी की भाति नैसर्गिक समग्रता में वापिस लौट जाता है। वह फिर अनगढ लकडी हो जाता है—टेबल-कुर्सी नही रह जाता, हिन्दू मुसलमान नही रह जाता। वह डूब जाता है उस तल पर, जहा कोई सस्कार नही है। **वह पुनः असंस्कृत, नैसर्गिक, स्वाभाविक हो जाता है। उस स्वभाव का नाम ताओ है।**

उस स्वभाव का नाम ताओ है। उस स्वभाव को वेद ने ऋत कहा है। उस स्वभाव को महावीर आत्मा कहते है। बुद्ध उस स्वभाव को निर्वाण कहते है। यह शब्दो का फासला है। लेकिन यह बात ठीक से समझ ले कि एक आपका रूप है, नाम है, ढाचा है, जो दिया गया है। और एक आप है, जो किसी ने आपको दिया नही है, **जो आप है, जो अनदिया है आप के भीतर।**

इसलिए महावीर और बुद्ध ने, जिन्होन ज्ञान की परम स्थिति में प्रवेश किया, ईश्वर को इन्कार कर दिया। और करने का कारण क्या था? करने का कारण यह था कि अगर ईश्वर बनानेवाला है, तब तो हमारे भीतर स्वभाव बचा ही नही। क्योकि उसका तो मतलब ही यह हुआ कि कुछ ईश्वर बनाता है, कुछ माँ-बाप बनाते है, कुछ स्कूल का शिक्षक बनाता है, कुछ समाज बनाता है। सभी बना हुआ है तो भीतर स्वभाव कहाँ? इसलिए महावीर ने कहा कि जगत का कोई स्रष्टा नही है। यह बडे महत्व की बात है। यह साधारण नास्तिकता नही है, **यह परम आस्तिकता है।**

क्योकि महावीर की दृष्टि यह है कि अगर मेरा स्वभाव भी किसी ने बनाया तो वह भी मेरा स्वभाव नही रहा। इससे क्या फर्क पडता है कि बाप ने बनाया, कि बडे बाप ने, जो कि आकाश मे है, उसने बनाया। इससे क्या फर्क पडता है? किसी ने बनाया तो फिर मै हू ही नही। फिर झूठ ही झूठ है, कोई सत्य नही है। सभी बाहर से आया तो फिर भीतर क्या है? इसलिए महावीर ने कहा, धर्म को स्रष्टा को अस्वीकार करना ही होगा। कोई स्रष्टा नही है।

लेकिन फिर भी महावीर कहते है कि व्यक्ति भगवान हो सकता है। और भगवान कोई नहीं है। तब बडी जटिलता हो जाती है। महावीर कहते है, भगवान कोई भी नही है स्रष्टा के अर्थ में, जिसने दुनिया बनाई हो, जिसने आदमी बनाया हो, जिसने आत्मा बनाई हो। क्योंकि अगर आत्मा भी बनाई जाती है तो चाहे कितने

ही स्वर्गीय कारखाने में बनाई जाती हो, वह वस्तु हो गई, वह आत्मा नही रही। महावीर कहते है, जो बनायी ही नही जा सकती, **अनबनी है, और है, वही आत्मा है।**

इसलिए लाओत्से भी ईश्वर की बात बिलकुल नही करता है सृष्टा की तरह।

लेकिन महावीर कहते है, जिस दिन कोई इस अनबने को जान लेता है, वह भगवान हो जाता है। इसलिए महावीर के भगवान में और और लोगों के भगवान में बुनियादी अतर है, बड़ा कीमती अन्तर है। और लोगो का भगवान सिर्फ एक बड़ा सचालक है एक बड़े कारखाने का। और आप वस्तुओ की तरह बनाये और मिटाये जा रहे है। महावीर कहते है कि अगर कोई बनाने वाला भगवान है तो फिर जगत में धर्म का कोई उपाय ही न रहा। क्योकि फिर आत्मा की कोई सभावना न रही। इसलिए महावीर की दृष्टि में स्रष्टा के रूप में भगवान का होना धर्म के लिए नष्ट कर देने का कारण है। फिर धर्म का कोई उपाय नही है। फिर सब व्यर्थ है। अगर मेरा कोई स्वभाव है अनबना, बिना किसी का बनाया हुआ, **तो ही इस जगत में स्वतंत्रता या मुक्ति सार्थक शब्द है।** अन्यथा व्यर्थ है।

लाओत्से भी ईश्वर की बात बिलकुल नही करता, हालाकि वह जो बात कर रहा है, उससे आप ईश्वर हो जाएगे। इसलिए एक और मजे की बात ध्यान में रख ले। इसीलिए महावीर कहते है, जितनी आत्माए है, उतने भगवान हो सकते है। क्योकि हर आत्मा जिस दिन अपने स्वभाव को जान ले, उस दिन वह भगवान को उपलब्ध हो जाती है।

भगवान होना आपके भीतर स्वभाव के अनुभव का नाम है। अनगढ लकडी की भाति आप तत्काल नीचे सरक जाते है, निसर्ग मे।

वह निसर्ग आपके भीतर है मौजूद, अभी, इसी वक्त भी। पर आप जोर से पकडे हुए है अपने ढाचे को। जैसे कोई आदमी नदी मे हो और किनारे से लटकती एक वृक्ष की जड को पकडे हो जोर से, ऐसे आप अपने नाम को, रूप को, पद को, प्रतिष्ठा को, धर्म को, जाति को, जोर से पकडे हुए है। और वही पकड आपको स्वभाव में नही गिरने देती है।

और आश्चर्य तो यह है कि साधारण आदमी पकडे हुए हो तो भी ठीक। जिनको आप महात्मा कहते है, वे भी हिन्दू हैं, वे भी जैन हैं, वे भी मुसलमान हैं, वे भी ईसाई है। जिनको आप महात्मा कहते है, उनकी भी जाति है, उनका भी ढाचा है, उनका भी सस्कार है। वे भी अभी सम्कार को पकड़े हुए है। तब इसका अर्थ यह हुआ कि हम भूल ही गये है स्वभाव मे गिरने की प्रक्रिया। क्या है स्वभाव में गिरने की प्रक्रिया ?

लाओत्से कहता है, द्वन्द्व के बीच कोई चुनाव नही हो, दोनो का साथ-साथ स्वीकार हो। सम्मान मिले तो, न तो उसे पकड़ने की आकाक्षा हो और न उसे छोड़ देने की आकाक्षा हो। सम्मान मिले तो पकडना या छोडना, दोनो आकांक्षाए नही हो।

सम्मान मिलता रहे और भीतर व्यक्ति अज्ञात में खड़ा रहे, जैसे है ही नहीं, तो लाओत्से कहता है, तत्क्षण व्यक्ति निसर्ग में गिर जाएगा। **क्योंकि ढांचे को पकड़ने की व्यवस्था द्वन्द्व की है।**

हम एक आदमी को कहते हैं कि सफल होओ, असफल रहे तो जीवन बेकार है। तो वह सफलता को पकड़ता है। फिर वह असफलता को छोड़ता है, सफलता को पकडता है। फिर ऐसे लोग भी हैं जगत में, जो असफलता को पकडते हैं। उसका भी कारण है। क्योंकि सफलता से उन्हे भय लगता है। और सफलता मे झंझट है, सघर्ष है, उपद्रव है। और भी एक मजा है। सफलता की कोशिश करने में असफल होने का भी डर है। इसलिए वे असफलता को ही पकड लेते हैं।

वे कहते है, तबीयत ही ठीक नही रहती, सफल क्या हो? वे कहते है, ऐसे घर में जनमे जहा कौडी ही नही है, फिर सफल कैसे हो? वे कहते है, शिक्षा ही नही मिली ठीक से, सफल कैसे हो? वे कोई बहाने खोज लेते है और असफलता को पकड लेते है। फिर उनको आप सफल करने की भी कोशिश करे तो वे टस से मस नही होगे। वे हटेंगे नही, क्योंकि यह उनका प्राण है। और डर क्या है? वे बाते इतनी असफलता की कर रहे है, लेकिन डर केवल एक है कि सफल होने की चेष्टा की और असफल हो गये तो! इसलिए बहाने खोज कर यही खडे रहना उचित है। यह अपने से हो नही सकता।

एक सज्जन मेरे पास आये। वे कहते है कि मै सब जानता हू, सब समझता हू ठीक, सुशिक्षित हू, लेकिन इन्टरव्यू देने में, या कभी किसी नौकरी के लिए जाने मे मुझको बेचैनी मालूम पडती है। तो कोई नौकरी नही लगती, क्योंकि बिना इटरव्यू नौकरी कैसे लगे? और वे कहते है कि सब मुझे मालूम है, जो भी पूछा जाता है। कोई ऐसी बात नही है जो मुझे मालूम नही। छह साल से वे भटक रहे है, लेकिन इटरव्यू नही दे सकते। मैंने उनसे कहा कि तुमने असफलता को जोर से पकड लिया है, अब तुम्हें डर है। पर इटरव्यू का डर क्या है? नौकरी नही मिलेगी। छह साल से नौकरी है नही। और क्या इससे बुरा होनेवाला है?

लेकिन एक लाभ है इसमे कि अभी तक वे किसी इटरव्यू में असफल नही हुए। दिया ही नही तो असफल होने का कोई कारण ही नही है। तो अभी एक अकड है। अब यह अकड उनको दिक्कत दे रही है कि दे और कही असफल हो जाएं। वैसे वे जिन्दगी भर असफलता को पकडे रहेगे।

बहुत लोग है जो असफलता को पकड लेते हैं। बहुत लोग है जो सफलता को पकड लेते है। कुछ लोग नाम को पकड लेते है। कुछ लोग बदनामी को पकड लेते हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि बदनाम हुए तो भी क्या कुछ नाम तो होगा ही, इससे कोई फर्क नही पडता। अगर आप जेलखाने मे जाए और लोगो की बाते सुने तो वे एक दूसरे को बताते मिलेंगे कि किसकी बदनामी ज्यादा है। वे आपस में कहते है,

तेरी क्या है? कुछ भी नही। वहा भी पुराने घाघ और नये घाघ और पुराने अपराधी और नये अपराधी हैं और नये अपराधी की कोई इज्जत नही होती जेलखाने में। कहते हैं पहली दफा आये हो, कोई खास बात नहीं। कितनी बार आ चुके हो?

आदमी द्वन्द्व में से कुछ भी पकड लेता है। लेकिन बिना पकड़े कोई उपाय नही; नही तो नीचे डूब जाएगा।

लाओत्से कहता है, द्वन्द्व में से कुछ भी मत पकड़ना। द्वन्द्व को ही मत पकडना; न नाम को पकडना, न अनाम को पकडना, न ससार को पकडना, न संन्यास को पकडना। **पकड़ना मत; इसी का नाम संन्यास है।** पकड़ना ही मत। और धीरे-धीरे द्वन्द्व के बीच चुनाव छोड देना, च्वायसलेस हो जाना। विकल्प मत बनाना। यह मत कहना कि मै बुरे को पकड़ूगा, कि भले को पकड़ूगा, कि पुण्य पकड़ूंगा, कि पाप पकड़ूगा, कि भोग पकड़ूगा, कि त्याग पकड़ूगा। सब द्वन्द्व को समझ लेना, पकडना मत। तो तत्क्षण व्यक्ति स्वय में गिर जाता है। **और जो स्वयं में गिर जाता है, वही परम अनुभव है।**

अनगढ लकडी को खडित करें या तराशें तो वही पात्र बन जाती है। यह बडे मजे की बात है। लाओत्से कहता है, जो परम अध्यात्म में प्रवेश करता है, **वह बिलकुल अपात्र हो जाता है संसार के लिए।** अपात्र शब्द जरा अच्छा नही है। अपात्र सुनते ही भीतर मन में भय लगता है कि अपात्र! कुछ न कुछ तो पात्रता कही न कही होनी चाहिए। लाओत्से कहता है कि वह अनगढ लकडी की भाति अपात्र होता है—वह जो परम में विलीन होता है। उसका कोई भी तो उपयोग नही है।

लाओत्से का क्या उपयोग करियेगा, बताइए? किसी काम का नही है, कोई उपयोग नही है। कोई उपयोग है महावीर का? क्या उपयोग करियेगा? किसी काम में न पडे—बिलकुल बेकाम।

मगर यही उनका उपयोग है। क्योकि यह जो बिलकुल ही उपयोग के बाहर खडा व्यक्ति है, यह परम शक्ति को उपलब्ध हो गया। यह फिर जाता नही आक्रमण करने उपयोग के लिए। इसके पास जो आ जाते है, इसके पास जो खिंच जाते है चुम्बक की भाति, उनको हजारो-हजारो उपयोग मिल जाते है। लेकिन यह अपनी तरफ से कुछ नही करता। यह कुछ करता नही है। यह तो बिलकुल निष्क्रिय हो जाता है।

लेकिन इसकी निष्क्रियता में बडी क्रातिया घटित होती हैं। **इसके पास आके न मालूम कितने चिराग जल जाते हैं।** और यह उन्हे जलाता नही है। इसकी आग काफी है। चिराग पास भी आ जाए तो लपट पकड जाती है। इसके पास आके न मालूम कितने लोग अनन्त सौन्दर्य को उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन वह उन्हे तराशता नही है। यह उन्हें सुन्दर नही बनाता है। इसकी सन्निधि, इसका

सम्पर्क, इसकी हवा, बस इसका होना, इसका होना ही उन्हे बहुत-कुछ दे जाता है।

लाओत्से गुजर रहा है एक पहाड से। सारा जगल काटा जा रहा है। बडी प्रीतिकर कथा है और बहुत बार मैने कही है। सिर्फ एक वृक्ष नही काटा जा रहा है। लाओत्से अपने शिष्यो को कहता है,जाओ और जरा पूछो इन काटनेवालो से, इस वृक्ष को क्यो नही काटते हो? वे गये, उन्होंने पूछा। काटनेवालो ने कहा, यह बिलकुल बेकार है। इसकी सब शाखायें टेढीमेढी है। इससे कुछ बन नही सकता। दरवाजे नही बन सकते, मेज नही बन सकती, कुर्सी नही बन सकती। और यह वृक्ष ऐसा है कि अगर इसे जलाओ तो धुआ ही धुआ होता है। आग जलती नही। इसके पत्ते भी किसी काम के नही है। कोई जानवर खाने को राजी नहीं है। इसलिए इसे कैसे काटे? सारा जगल कट रहा है, यह भर बच रहा है।

लाओत्से के पास जब शिष्य वापस आए तो लाओत्से ने कहा कि इस वृक्ष की भाति हो जाता है ताओ को उपलब्ध व्यक्ति। देखो, यह वृक्ष कट नही सकता, क्योकि वस्तुतः यह सम्मान पाने को उत्सुक नही है। एक लकडी सीधी नही है। सम्मान की आकाक्षा होती तो कुछ तो सीधा रखता। सब का सब तिरछा है। इस वृक्ष को दूसरो को प्रभावित करने की उत्सुकता नही है; नही तो धुआ क्यो छोडता? इस वृक्ष को जानवरो तक को अनुयायी बनाने का रस नही है; नही तो कम से कम पत्तो में तो स्वाद भरता। लेकिन देखो, यही भर नही कट रहा है, बाकी सारे कट रहे है।

सीधा होने की कोशिश करोगे तो काटे जाओगे, लाओत्से ने कहा। तुम्हारा फर्निचर बनेगा। सिंहासन में लगते हो कि साधारण क्लर्क की कुर्सी मे लगते हो, यह और बात है, लेकिन फर्निचर तुम्हारा बनेगा। और जो तुम्हे फर्निचर बनाने को उत्सुक है, वे तुमको समझायेगे कि सीधे रहो, नही तो बेकार साबित हो जाओगे। अगर तुमने उनकी मानी तो तुम कही इधन बन के जलोगे। **सब इंधन बन के जल रहे हैं।**

लोगो से पूछो, क्या कर रहे हो? वे कहेगे, हम बच्चो के लिए जी रहे है। उनके बाप उनके लिए जी रहे थे। उनके बच्चे उनके बच्चो के लिए जीएगे। तुम इधन हो? तुम किसी और के लिए जल रहे हो? लाओत्से ने कहा, छोडो फिकर। इधन मत बनना।

और लाओत्से ने कहा कि देखो इस वृक्ष के नीचे एक हजार बैलगाडिया ठहरी हैं। यह वृक्ष किसी को बुलाता नही है, लेकिन इसकी घनी छाया मे हजारो थके लोग इसके नीचे रुकते है। बिलकुल बेकार है, लेकिन हजारों थके लोग इसके नीचे विश्राम पा लेते हैं। यह वृक्ष कोई उन्हे छाया देना चाहता है, ऐसा भी नही है। इस वृक्ष ने तो एक ही नियम बना रक्खा मालूम होता है कि जो नैसर्गिक है, उसमें ही रहूगा, कुछ गडबड नही करूंगा।

ताओ को उपलब्ध व्यक्ति ऐसा ही हो जाता है। हजारो लोग उसके नीचे छाया

पाते है। वह छाया देता नही, छाया उसके नीचे होती है।

लकडी को काटें-छाटें तो उससे पात्र बन जाता है। ज्ञानी के हाथो में पड़कर लोग भी पात्र बन जाते है, आभिजात्य को उपलब्ध होते हैं, शासन करनेवाले बन जाते है। इन दि हैन्डस ऑफ दि सेज दे बिकम दि ऑफिसियल एण्ड दि मैजिस्ट्रेट। अगर आप ज्ञानियों के हाथ में पड जाए, शिक्षकों के हाथ में पड जाए तो आपको डाक्टर, इजीनियर, मिनिस्टर, प्रधानमत्री, राष्ट्रपति बन जाने का मौका मिलेगा। वे आपको पात्र बनाते हैं। योग्य पात्र बना देंगे, जो किसी काम आ सके।

लेकिन लाओत्से कहता है, किन्तु महान शासक खडन नही करता है। बट दि ग्रेट रूलर डज नॉट कट अप। वह जो महान शास्ता है, महावीर, बुद्ध या कृष्ण जैसा महान शास्ता है, वस्तुतः जो शासक है—राजा से नही, शास्ता से मतलब है—वस्तुत· जिसकी छाया मे शासन फलित होता है, वह कुछ करता नही है। उसकी मौजूदगी शासन बन जाती है। जो आदेश नही देता, लेकिन जिसका होना, जिसकी मुद्रा, जिसका हिलना-डुलना आदेश बन जाता है, जिसका ढग आदेश बन जाता है। ऐसा महान शास्ता किसी को काटता-पीटता नही, खडित नही करता, तराशता नही है। वस्तुत· ऐसा महान शास्ता आपके तराशेपन को छीन लेता है। वह आपके खडन को अलग कर देता है और अखड में गिरने की सुविधा जुटा देता है।

अखड का मतलब है गैर-तराशा हुआ, अनरिफाइन्ड। बडी उल्टी बात है। लेकिन लाओत्से रिफाइड के खिलाफ और अनरिफाइड के पक्ष में है। तराशने के खिलाफ है, और अनगढ के पक्ष में है। सस्कार के खिलाफ है, और सस्कार-शून्यता के पक्ष में है।

लेकिन सस्कार-शून्यता तभी आती है, जब सस्कार घटित हो जाता है।

इसलिए दुनिया मे दो तरह के शिक्षक है। हमने उनके लिए अलग-अलग नाम दिये है। एक को हम शिक्षक कहते है, दूसरे को हम गुरु कहते है। शिक्षक तराशता है, गुरु फिर अनतराशे पन में भेज देता है। पश्चिम के पास दो शब्द नही है। क्योकि पश्चिम के पास टीचर या शिक्षक, एक ही शब्द है। तराशना, सुसस्कार करना, पात्र बनाना बस यही शिक्षा है।

हमने पूरब मे एक और शिक्षा भी जानी है, **जो परम शिक्षा है**। जब सब शिक्षको का काम पूरा हो जाता है, तब परम शिक्षक का काम, गुरु का काम शुरू होता है। वह फिर अनतराशता है। वह फिर जोडता है टूटे को, फिर इकट्ठा करता है। वह बनाए को फिर मिटाता है। वह पात्र को फिर अनगढ लकडी में डाल देता है। और सारे सस्कार सारे समाज से छीनकर फिर वापिस निसर्ग में डुबो देता है।

उस निसर्ग में डूब जाना ही निर्वाण है।

आज इतना ही। पाँच मिनट रुके और कीर्तन करे। ■■

प्रकृति व स्वभाव के साथ अहस्तक्षेप

साठवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई :: दिनांक २७ नवम्बर १९७२.

अध्याय २९

हस्तक्षेप से सावधान

ऐसे लोग भी हैं, जो संसार को जीत लेंगे;
और उसे अपने मन के अनुरूप बनाना चाहेंगे।
लेकिन, मैं देखता हूँ कि वे सफल नहीं होंगे।
संसार परमात्मा का गढ़ा हुआ पात्र है,
इसे फिर से मानवीय हस्तक्षेप के द्वारा नहीं गढ़ा जा सकता।
जो ऐसा करता है, वह उसे बिगाड़ देता है।
और जो उसे पकड़ना चाहता है,
वह उसे खो देता है।
क्योंकि : कुछ चीजें आगे जाती हैं,
कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं।
एक ही क्रिया से विपरीत परिणाम आते हैं,
जैसे फूंकने से गरम हो जाती हैं चीजें,
और फूंकने से ही ठण्डी।
कोई बलवान है,
और कोई दुर्बल;
कोई टूट सकता है,
तो कोई गिर सकता है।
इसलिए, सन्त अति से दूर रहता है,
अपव्यय से बचता है,
और अहंकार से भी।

Chapter 29

WARNING AGAINST INTERFERENCE

There are those who will conquer the world
And make of it (what they conceive or desire)
I see that they will not succeed.
(For) the world is God's own Vessel
It cannot be made (by human interference).
He who makes it spoils it.
He who holds it loses it.
For : Some things go forward,
Some things follow behind;
Some blow hot,
And some blow cold;
Some are strong,
And some are weak;
Some may break,
And some may fall.
Hence the Sage eschews excess,
Eschews extravagance,
Eschews pride.

यह सूत्र इस सदी के लिए बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है ।

लाओत्से ने कहा है, कुछ लोग हैं, जो जगत को जीत लेना चाहेंगे और उसे अपने मन के अनुरूप गढना भी चाहेंगे। जिस दिन लाओत्से ने यह कहा था, उस दिन तो उन लोगो ने यात्रा शुरू ही की थी, जो जगत को अपने अनुरूप गढ़ना चाहते हैं। आज वे लोग जगत को जीतने में बहुत दूर तक सफल भी हो गये है । और जगत को गढ़ने की चेष्टा भी उन्होने की है। बड़े मजे की बात है कि लाओत्से की भविष्यवाणी रोज-रोज सही होती चली जाती है।

लाओत्से कहता है कि मैं देखता हू कि वे सफल नही हो सकेगे । **और वे सफल नहीं हो रहे है ।** और वह यह भी कहता है कि मैं यह भी देखता हू कि बनाने के बजाय वे जगत को बिगाड देंगे । और यह भी वह सही कहता है । क्योकि वे लोग जो जगत को गढ रहे है, **बिगाड़ने में सफल हो रहे हैं।**

इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज उपलब्ध है । लाओत्से ने जब कही यह बात, तब तो यह एक भविष्यवाणी थी । आज यह भविष्यवाणी नही है । आज तो यह होकर, घटकर हमारे सामने खडी हुई स्थिति है । इसे थोडा-सा हम समझ ले तो फिर सूत्र में प्रवेश करें ।

यूरोप और अमरीका में एक आदोलन चलता है जिसे इकोलॉजी कहते है । यह आदोलन रोज गति पकड रहा है । इस आदोलन का कहना है कि **प्रकृति का एक संगीत है, उसे नष्ट मत करें** । एक तरफ से हम नष्ट करते है उस सगीत को तो हम पूरी व्यवस्था को बिगाड़ देते है । और हमें पता नही है कि हम क्या कर रहे है और उसके क्या परिणाम होगे । क्योकि जगत एक व्यवस्था है । वह केयास नही है, अराजकता नही है । **जगत एक व्यवस्था है । और उस जगत की व्यवस्था में छोटी से छोटी चीज भी बड़ी से बड़ी चीज से जुड़ी हुई है** । यहा कुछ भी विच्छिन्न नही है, अलग-अलग नही है । जब आप कुछ छोटा सा भी फर्क करते है तो आप पूरे जगत की व्यवस्था में फर्क ला रहे हैं । एक पत्थर का हटाया जाना भी पूरे जगत की व्यवस्था में परिवर्तन की शुरुवात है । और उसके क्या परिणाम होगे और वे परिणाम कितने व्यापक होगे, यह कहना मुश्किल है ।

ऐसा हुआ । बर्मा के एक बहुत छोटे, दूर देहात में प्लेग की बीमारी से बचने के लिए चूहो को मार डाला गया । चूहो के मर जाने पर गाव की बिल्लिया मरनी शुरू हो गई; क्योकि चूहे उनका भोजन थे । और गाव की बिल्लियो के मर जाने

पर एक नई बीमारी गाव में फैल गई, जो उस गांव में कभी भी नही फैली थी। क्योकि उन बिल्लियों की मौजूदगी की वजह से जो कीटाणु गांव में विकसित नही हो सकते थे, बिल्लियों के मर जाने की वजह से वे विकसित हो गये।

और जिस मिशन ने गाव के चूहे नष्ट किये थे प्लेग को अलग करने के लिए वह बड़ी मुश्किल में पड गया। गाव के मुखिया को बहुत समझा-बुझाकर राजी किया जा सका था चूहों को मारने के लिए। गांव के मुखिया ने कहा कि अब हम क्या करें? बिल्लिया भी मर गईं, और यह नई बीमारी फैल गई। और इस नई बीमारी का अभी कोई इलाज नही था। यह बात कोई चालीस साल पहले की है। तो जिस मिशन ने यह सेवा की थी गाव की, उसने कहा कि हम पता करते है। लेकिन उस गाव की पंचायत के लोगो ने कहा कि तुम जब तक पता कर पाओगे, यह बीमारी हमारे प्राण ले लेगी। फिर प्लेग के हम आदी हो चुके थे। और प्लेग के लिए हमने एक प्रतिरोधक शक्ति भी विकसित कर ली थी। हजारो वर्ष से प्लेग थी; हम उससे लडना भी सीख गए थे। इस नई बीमारी से लडना भी सम्भव नही है। हमारा शरीर भी प्लेग के लिए सक्षम हो गया था। यह नई बीमारी हमारे प्राण लिये ले रही है, तोडे डाल रही है। इतनी जल्दी तो नई बीमारी दूर नही की जा सकती थी।

और गाव के बूढो ने यह भी कहा कि अगर तुम यह नई बीमारी भी दूर कर दो तो क्या भरोसा है कि तुम और दूसरी बीमारिया पैदा करने के कारण न बन जाओगे? इसलिए उचित यही होगा कि पडोस के गाव से हम चूहे माग ले। कोई उपाय नही था। पड़ोस के गाव से चूहे माग लिए गए। चूहो के पीछे बिल्लिया चली आई। और बिल्लियो के आते ही वह जो बीमारी फैली गई थी, वह विदा हो गई।

इकॉलॉजी का अर्थ है कि जिन्दगी एक व्यवस्था है, उसमे जरा-सा भी कही कोई फर्क तत्काल पूरे पर फर्क पैदा करता है। और पूरे का हमे कोई बोध नही है। पूरे का हमें कोई पता नही है।

यह बडे मजे की बात है कि आज जमीन पर सर्वाधिक दवाइया हैं, और सर्वाधिक बीमारिया है। और आज जमीन पर आदमी को सुख पहुचाने के सर्वाधिक उपाय हैं, और आज से ज्यादा दुखी आदमी जमीन पर कभी भी नही था। क्या कारण होगा?

कारण एक ही मालूम पडता है कि हम एक का इतजाम करते है और दस इतजाम बिगाड लेते है। और जब तक हम दस का इतजाम करते है, तब तक हम हजार इतजाम बिगाड लेते हैं।

वह तो बर्मा के गाव में घटी थी घटना, अभी लास एंजिल्स मे, अमरीका में दूसरी घटना घटी। क्योकि लास एंजिल्स मे कारो की अत्यधिकता के कारण, कारों के इक्झास्ट धुए के कारण हवा इतनी विषाक्त हो गई है कि वहां एक चमत्कार घटित मालूम पड़ता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि जितना विष हवा में सहा जा सकता है,

आदमी सह सकता है, उससे तीन गुना ज्यादा विष हवा में हो गया है; फिर भी आदमी जिन्दा है। लेकिन जिन्दा तो परेशानी में ही होगा। जब तीन गुनी मृत्यु को झेलना पड़ता हो जीवन को तो जीवन मुर्दा जैसा हो जाएगा, कुम्हला, जाएगा। तो चेष्टा की गई कि कारें इस ढग से बनाई जाएं कि उनमें कम इक्झास्ट निकले और पेट्रोल में भी ऐसे फर्क किए जाए कि इतना ज्यादा विष हवा में न फैले।

वे फर्क भी किये गये। लेकिन तब हवा में दूसरी चीजें फैली, जो पहले भी ज्यादा सघातक है। अब क्या किया जा सकता है? और आदमी इतने विष को झेलकर जिन्दा रहे तो तनावग्रस्त होगा, बीमार होगा, परेशान होगा। जीएगा जरूर, लेकिन जीने की कोई रौनक और जीने का कोई लय उसके भीतर नही रह जाएगा।

हमने चाद पर आदमी भेजा तो हमने पहली दफा, पृथ्वी को जो वायुमडल घेरे हुए है, उसमे छेद किया। पहली दफा। पर किसी को खयाल नही था कि वायुमंडल में भी छिद्र का कोई अर्थ होता है। करने के बाद ही खयाल हुआ। स्वभावत' कुछ चीजें करने के बाद ही पता चलती है। इसे ऐसे समझें।

जैसे कि सागर है तो सागर मछलियो के लिए वायुमडल है। पानी उनके लिए वातावरण है। मछलिया पानी में जीती है, पानी के बाहर नही जी सकती। हम भी हवा मे जीते है, हवा के बाहर नही जी सकते। जमीन को दो सौ मील तक हवा घेरे हुए है। ऐसा समझे कि हम दो सौ मील तक हवा के सागर में है। इसके पार होते ही हम जी नही सकते, जैसे मछली किनारे पर फेंक दी जाए और जी न सके।

आमतौर से हम सोचते हैं कि हम जमीन के ऊपर है। बेहतर होगा सोचना कि हम हवा के सागर की तलहटी में हैं। वह ज्यादा उचित होगा, ज्यादा वैज्ञानिक होगा। जैसे कि कोई जानवर सागर की तलहटी में रहता हो और उसके ऊपर दो सौ मील तक पानी हो, ठीक वैसे आदमी भी हवा के सागर की तलहटी में रहता है, दो सौ मील तक उसमें हवा का सागर है।

यह दो सौ मील तक हवा का जो सागर है वह सारे ब्रह्माड से आती हुई किरणों को छाटता है। और तब केवल वे ही किरणें हम तक अभी पहुच पाती हैं, जो जीवन के लिए घातक नही है। इसलिए हमारे चारो तरफ दो सौ मील तक एक सुरक्षा का वातावरण है। सभी किरणें, जो भी पृथ्वी की तरफ आती हैं उसमें प्रवेश नही कर पाती हैं। यह वातावरण इनमें से नब्बे प्रतिशत किरणो को वापस लौटा देता है, और आठ प्रतिशत किरणों को इस लायक बना देता है दो सौ मील में छान के कि वे हमारे प्राण न ले पायें। और दो प्रतिशत किरणे, जो हमारे प्राण के लिए जरूरी हैं, जीवन के लिए जरूरी है, वे वैसी की वैसी हम तक पहुच जाती है। ऐसा समझें कि दो सौ मील तक हमारे चारो तरफ छनावट का इतजाम है।

पहली दफा, जब हमने चाद की यात्रा की और हमने अतरिक्ष मे यात्री भेजे, हमने इस वातावरण को कई जगह से तोडा। और जहा से यह वातावरण टूटा,

वहां से पहली दफा उन किरणों का प्रवेश हुआ पृथ्वी पर, जो अरबों वर्षों से कभी प्रविष्ट नहीं हुई थी। वैज्ञानिकों ने एक नया शब्द उपयोग किया कि वातावरण में छेद हो गया। और उन छेदों को भरना मुश्किल है। उन छेदों से रेडिएशन की किरणें भीतर आ रही हैं। उनके क्या परिणाम होंगे, कहना मुश्किल है। वे जीवन के लिए कितनी घातक होंगी, कहना मुश्किल है। किस तरह की बीमारियां फैलेंगी, कहना मुश्किल है।

पश्चिम में जहां कि वातावरण को बदलने की, जिन्दगी को बदलने की, सर्वाधिक चेष्टा विज्ञान ने की है, वहां के जो चोटी के विचारक हैं, वे लाओत्से से राजी होने लगे हैं। वे कहते हैं, **करके हमने यह देखा कि आदमी सुखी नहीं हुआ, आदमी दुखी ही हुआ**। जीवन अनेक तरह के कष्टों में पड़ गया है, जिनका हमें खयाल नहीं था।

जैसे कि समझें, हम कोशिश करते हैं कि आदमी ज्यादा जीये। हम कोशिश करते हैं कि जो बच्चा पैदा हो जाए, वह मरे नहीं। आज से हजार साल पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो नौ बच्चे मर जाते थे; एक बच्चा बचता था। वह प्रकृति की व्यवस्था थी। व्यवस्था बड़ी क्रूर मालूम पड़ती है कि नौ बच्चे मर जाएं और एक बच्चा बचे। तो हमने चेष्टा की हजार साल में और आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ बचते हैं। एक मरता है। हमने बिलकुल उलटा किया। लेकिन परिणाम क्या हुआ? परिणाम बहुत हैरानी का है। जो नौ बच्चे हजार साल पहले मर जाते थे, वे अब बच जाते हैं। वे नौ बच्चे जो हजार साल पहले मर जाते थे, वे मरते ही इसलिए थे कि उनमें जीवन की क्षमता कम थी। आज वे बच जाते हैं पर उनमें जीवन की क्षमता कम है। वे जीते हैं, लेकिन बीमार जीते हैं। और वे अकेले ही नहीं जीते, वे बच्चे पैदा कर जाएंगे। और उनके बच्चों के बच्चे होंगे, और लाखों साल तक वे बीमारी के गढ़ बन जाएंगे।

अभी एक बहुत बड़े चिकित्साशास्त्री ने, केनेथ वाकर ने कहा कि हमने जो इनजाम किया है चिकित्सा का, और जो खोज की है, उसका परिणाम यह होगा कि हजार साल बाद स्वस्थ आदमी खोजना ही असंभव हो जाएगा। हो ही जाएगा। क्योंकि वे जो नौ बच्चे बच रहे हैं, वे बच्चे पैदा कर रहे हैं। और धीरे-धीरे सारी मनुष्यता रुग्ण होती जा रही है। उन नौ बच्चों में वे बच्चे भी बच जाएंगे, जो बुद्धिहीन हैं, विक्षिप्त हैं, जिनमें कोई कमी है, जो अंधे हैं, लूले हैं, लंगड़े हैं। वे भी बच जाएंगे।

और जिन्होंने बचाया है, वे मानवतावादी हैं। उनकी अभीप्सा पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। उनके विचार में दया है। लेकिन उतनी गहरी समझ उनकी नहीं है, जितनी की लाओत्से बात कर रहा है। वे सब बच्चे जो बुद्धिहीन हैं, रुग्ण हैं, विक्षिप्त हैं, पागल हैं, वे सब बच जाएंगे। और वे बच्चे पैदा करते रहेंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि पांच हजार साल के भीतर सारी मनुष्यता रोग, विक्षिप्तता और पागलपन से भर जाए। आज अगर अमरीका में वे कहते हैं हर चार आदमी

में एक आदमी मानसिक रूप से रुग्ण है, तो यह ज्यादा देर तक रुकेगा नहीं एक पर मामला। धीरे-धीरे फैलेगा और सारो रुग्ण हो जाएगे।

हमने उम्र बढ़ा ली। आज अमरीका में सौ वर्ष के ऊपर हजारो लोग हैं। रूस में और भी उनकी बडी सख्या है। लेकिन बडी कठिनाई खडी हो गई है।

वह जो सौ के ऊपर जिन्दा रह जाता है, उसके जीवन की सारी शक्ति तो क्षीण हो गई होती है, वह जीवन के किसी उपयोग का भी नही रह जाता। जीवन से उसके कोई सम्बन्ध भी नही रह जाते हैं। उसकी तीसरी-चौथी पीढ़ी काम में लग गई होती है, उससे उसका फासला इतना बडा हो जाता है कि उससे उसका कोई नाता भी नही रह जाता। वह मुर्दे की भाति अस्पताल में टंगा रहता है, या विश्राम गृह या वृद्धो के लिए बनाए गए विशेष स्थान में टंगा रहता है। उसका जीवन बस यही है कि वह रोज दवाए लेता रहे और बचा रहे। न कोई प्रेम है उसके आसपास, न कोई परिवार है; न हो सकता है परिवार। वह मर भी नही सकता। आत्महत्या करना गैर-कानूनी है। डाक्टर अगर यह भी समझें कि इस आदमी के जिंदा रहने का कोई कारण नही है तो भी उसे मरने में सहयोगी नही हो सकते। क्योंकि डाक्टर का काम बचाना है, मारना नही। पुराने दिनो के डाक्टरो की जो परिभाषा थी बचाना, वह अब भी है।

लेकिन आदमी उम्र में इतना आगे चला गया है, जहा कि डाक्टर का काम उसे मरने मे भी सहयोग देना होना चाहिए। क्योंकि एक आदमी अगर एक सौ बीस वर्ष का होकर सिर्फ खाट पर पडा रहे, फॉसिल हो जाए, किसी मतलब का न रहे किसी और के और न खुद के—और फिर भी जिन्दा रखा जा सके--क्योंकि जिन्दा हम रख सकते है अब और वह आदमी चिल्लाये कि मुझे मर जाने दो, तो भी हमारे कानून में कोई व्यवस्था नही है। अगर डाक्टर यह भी सोचे कि इसे दवा न दें, मारने के लिए दवा न दें और जिन्दा रहने की दवा न दें, तो भी उसके अंत करण में अपराध का भाव होगा कि जो आदमी अभी बच सकता था, उसे मैं मरने दे रहा हूं।

सारी दुनिया मे चिकित्सा के सम्मेलन रोज विचार करते है यूथनेशिया के लिए कि आदमी को मरने मे सहयोग देना या नही देना, यह क्या नैतिक या अनैतिक होगा ?

अभी तो सौ की बात है, आज नही कल, हम दो सौ और तीन सौ साल तक आदमी को बचा लेगे। पर इस आदमी को बचाकर क्या होगा ?

यह सब तरह से बोझ हो जाता है। क्योंकि इसकी आर्थिक उपादेयता न रही। पचपन साल में आप रिटायर कर देते है एक आदमी को। अगर वह एक सौ दस साल जी जाता है, तो बाकी पचपन साल समाज उसको खिलाता है, पिलाता है। और उसे परेशान रहने, बीमार रहने और दुख उठाने के लिए जिन्दा रखता है। उसके मित्र, उसके प्रियजन चाहते हैं कि वह विदा हो जाए, क्योंकि अब वह बोझ मालूम होता है। अगर उसको कोई सार्थकता देनी हो तो उसे काम में रखना चाहिए।

अगर उसे काम में रखना है तो नये आनेवाले बच्चो के लिए कोई काम नही रहता। वैसे ही नये बच्चों के लिए काम कम है। बच्चे ज्यादा हैं। तो बूढो को हटाना पड़ेगा। उनको तो कचरा-घर पर बिठा देना पड़ेगा।

और जब वह कचरा-घर पर पड़ रहते हैं, तब उन्हें मरने का भी कोई हक नहीं है। जीने की कोई व्यवस्था नही है, और मरने का कोई हक नही है। ये बूढे सब के चित्त पर भारी होते चले जाएगे।

और धीरे-धीरे बूढो की सख्या बढ जाएगी। जैसे-जैसे विज्ञान का विकास होगा, औषधि की सुविधा होगी, बूढो की सख्या बढ जाएगी। और अभी आप बच्चों की बगावत मे परेशान है, आज नही कल, बूढो के उपद्रव से परेशान होगे। आपको खयाल मे नहीं है कि उपद्रव कैसे आते है? आज सारी दुनिया में युवको से परेशानी है, विद्यार्थियो से परेशानी है। तोड़फोड है, उपद्रव है, क्रान्ति है। क्या कारण है? ये बच्चे सदा थे दुनिया में, ये कोई आज पैदा नही हो गए। यह सदा थे दुनिया में। फिर क्या कारण हो गया आज इनके उपद्रव का?

आज इनके उपद्रव का कारण है। ये पहले भी थे, लेकिन कभी भी एक जगह संग्रहीत नहीं थे। आज बड़े विश्वविद्यालय हैं, कालेज हैं, स्कूल है, जहाँ ये सब इकट्ठे है। एक-एक नगर में लाख-लाख विद्यार्थी इकट्ठे हैं। युवक कभी भी इतने इकट्ठे एक जगह न थे। और जब एक लाख युवक इकट्ठे होगे तो उपद्रव की शुरुआत होगी।

आज नही कल, बूढो भी लाखो की सख्या मे एक जगह इकट्ठे होने लगेगे। एक नये तरह के उपद्रव की शुरुआत होगी, जो कि लडको के उपद्रव से ज्यादा महगा होगा। क्योकि ज्यादा समझदार लोग उसे करेंगे। उसे सम्हालना भी मुश्किल होगा। उससे अड़चनें भी नई तरह की होगी। क्योकि बूढे अगर जीते हैं तो जीवन की सार्थकता की माग करेंगे। और किसी भी आदमी का जीवन सार्थक तभी होता है, जब वह कोई सार्थक काम कर रहा हो। अगर उसके पास कोई काम नही है सार्थक करने का तो उसकी आत्म-श्रद्धा खो जाती है। उसे लगता है कि मै बेकाम हू। ऐसा लगना कि मै बेकाम हू, बड़े से बड़ा कष्ट हैं। मैं किसी के भी काम का नहीं हूं, किसी काम का नही हू, यह मन में भारी पत्थर की तरह प्रवेश कर जाता है। और तब एक आत्मग्लानि, स्वय को नष्ट करने का भाव, गहरा होने लगता है।

लेकिन हमने बचा लिया है। और अभी भी कोई यह नही कहेगा कि आदमी को लम्बी उम्र मिले, इसमें कुछ बुराई है। हम भी चाहेंगे कि लंबी उम्र मिले। तब बडी मजे की घटनाएं घटती हैं।

मैं पढ रहा था कि १९१८ में न्यूयार्क मे घोड़ागाडी चलती थी। तब घोड़ागाड़ी की रफ्तार ग्यारह मील प्रति घटा थी। आज न्यूयार्क में कार की रफ्तार प्रति घटा साढे सात मील है। बहुत हैरानी की बात है। क्या हुआ? रफ्तार बढ़ाने के लिए

कार थी। आज रफ्तार को कार ने बिलकुल कम कर दिया। क्योंकि वह सब जगह ट्रैफिक जाम कर रही है। अगर कार इसी तरह बढ़ती जाती है तो पैदल आदमी तेज चलेगा—बहुत जल्दी। कोई कारण नहीं है कि नही चले। सात मील अब भी आदमी चल सकता है तेज चाल में। चार मील तो कोई भी चल सकता है घंटे में।

हम जो करते हैं, उसके परिणाम क्या होंगे ? परिणाम अनन्त-आयामी हैं, उनका कोई भी पता नहीं है। जब हम एक तार छूते है, तब हम पूरे जीवन को छू रहे हैं। और उसके क्या-क्या दूरगामी अर्थ होंगे, उनका हमें कुछ भी पता नही है।

ऐसा भी नही है कि हम पहली दफा इन चीजो को कर रहे है। आदमी ने इन चीजों को बहुत बार कर लिया है। और यह जो लाओत्से कह रहा है, यह सिर्फ भविष्यवाणी नही है, अतीत का अनुभव भी है। इस सदी के आदमी को ऐसा खयाल है कि जो हम कर रहे है, यह हम पहली दफा कर रहे है। पर यह बात सही नही मालूम पडती है। अगर हम इतिहास की गहन खोज में जाए तो हमें पता चलेगा कि जो-जो हम आज कर रहे है, आदमी बहुत बार कर चुका और छोड़ चुका। बहुत बार कर चुका और छोड़ चुका। छोड चुका इसलिए कि पाया व्यर्थ है।

महाभारत पढें। महाभारत में जो युद्ध के विवरण है, वे क्या बताते हैं ? पहली दफा हिरोशिमा और नागासाकी पर जब एटम बम गिरा तो जो दृश्य बने, उस दृश्य का विवरण पूरा का पूरा महाभारत में है। उसके पहले तो कल्पना थी वह महाभारत मे जो बात थी। तब तो यही सोचा था कि कवि का खयाल है। लेकिन जब हिरोशिमा में एटम बम गिरा, तब धुएँ का बादल उठा और वृक्ष की तरह आकाश में फैला, नीचे जैसे वृक्ष को पीड होती है, वैसे धुए की धारा बनी और ऊपर जैसे आकाश में उठता गया धुआ वैसे फैलता गया और अत मे वृक्ष का आकार बन गया। महाभारत में उसका ठीक ऐसा ही वर्णन है।

इसलिए अब वैज्ञानिक कहते हैं कि यह वर्णन कवि की कल्पना से तो आ ही नही सकता। इसका कोई उपाय नही है। क्योंकि एटम के विस्फोट में ही ऐसा होगा। एटम के विस्फोट के सिवा और कोई विस्फोट नही है जिसमे इस तरह की घटना घटे।

जो महाभारत में वर्णन है, वह यह है कि वृक्ष के आकार में धुआ आकाश में फैल गया और सारा आकाश धुए से भर गया और उस धुए के आकाश से रक्तवर्ण की किरणे जमीन पर गिरने लगी और उन किरणो का जहा-जहा गिरना हुआ, वहा-वहा सब चीजें विषाक्त हो गईं। भोजन रखा था, वह तत्क्षण जहर हो गया। वर्णन है महाभारत में कि जब वे रक्तवर्ण की किरणे नीचे गिरने लगी तब जो बच्चे मा के पेट में गर्भ मे थे, वे वही मृत हो गये। जो बच्चे पैदा हुए, वे अपग पैदा हुए। और जमीन पर जहा भी वे किरणें गिरी, और जिन चीजो को उन किरणो ने छुआ, वे विषाक्त हो गईं। उनको खाते ही आदमी मरने लगे।

कोई उपाय नहीं है कि कवि इसकी कल्पना कर सके। लेकिन १९४५ के पहले इसके सिवा हमारे पास भी कोई उपाय नहीं था कि हम इसको कविता कहें। अब हम कह सकते हैं कि यह किसी अणु-विस्फोट का आंखों-देखा हाल है।

महाभारत में कहा है कि इस तरह के अस्त्र-शस्त्रों का जो ज्ञान है वह सभी को न बताया जाए।

अभी अमरीका में एक मुकदमा चला अमरीका के एक बड़े से बड़े अणुविद डॉक्टर ओपेन हाइमर पर। और मुकदमा यह था कि ओपेन हाइमर को कुछ चीजें पता थी जो वह अमरीका की सरकार को बताने को राजी नहीं था। और ओपेन हाइमर अमरीकी सरकार का आदमी भी था। तो ओपेन हाइमर पर एक विशेष कोर्ट में मुकदमा चला। उस कोर्ट ने यह कहा कि तुम जिस सरकार के नौकर हो और तुम जिस देश के नागरिक हो, उसकी सरकार को तुमसे सब चीजें जानने का हक है। लेकिन ओपेन हाइमर ने कहा कि उससे भी बड़ी निर्णायक मेरी अन्तर-आत्मा है। कुछ बातें मैं जानता हू जो किसी राजनीतिक सरकार को बताने को राजी नहीं हूं। क्योंकि हम देख चुके है कि हिरोशिमा में क्या हुआ। हमारी ही जानकारी लाखो लोगों की हत्या का कारण बनी।

निश्चय ही महाभारत में जो कहा गया है कि कुछ बाते है जो सबको न बताई जाएं और ज्ञान के कुछ शिखर है जो खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं, वह किसी अनुभव के कारण कहा गया होगा। ओपेन हाइमर भी किसी अनुभव के कारण कह रहा है कि कुछ बातें जो मैं जानता हू नहीं बताऊंगा।

जो इतिहास हम स्कूल-कॉलेज में या युनिवर्सिटी में पढते है, वह बहुत अधूरा है। आदमी इस इतिहास से बहुत पुराना है। और सभ्यताए हमसे ऊंचे शिखर पर पहुंच कर समाप्त होती रही हैं। हमसे भी पहले बहुत सी बाते जान ली गई हैं और छोड दी गई हैं; क्योंकि अहितकर सिद्ध हुईं।

अभी इस सम्बन्ध में जितनी खोज चलती है, उतनी ही अड़चन होती है समझने में। उतनी ही कठिनाई होती है। ऐसा कोई भी सत्य विज्ञान आज नहीं कह रहा है कि जो किसी न किसी अर्थ में इसके पहले न जान लिया गया हो। परमाणु की बात भारत में वैशेषिक बहुत पुराने समय से कर रहे हैं। यूनान में हेराक्लतु और पारमेनेडीज बहुत पुराने समय से परमाणु की बात कर रहे है। और परमाणु के सम्बन्ध में वे जो कहते है वह हमारी नई से नई खोज है। हमने बहुत बार उन चीजों को जान लिया, जिनसे जिन्दगी बदली जा सकती है। और फिर उन्हें छोड दिया; क्योंकि पाया कि जिन्दगी बदलती नहीं, सिर्फ विकृत हो जाती है।

लाओत्से का यह कहना कि हस्तक्षेप से सावधान, बहुत विचारणीय है। लाओत्से मानता है कि निसर्ग ही नियम है। आदमी को वैसे जीने दो, जैसा वह निसर्ग से है। वह जो भी है, अच्छा और बुरा, और वह जैसे भी है, सुख में और दुख

में, उसे निसर्ग से जीने दो। क्योंकि निसर्ग से ही जीकर वह ब्रह्मांड के साथ एकसूत्रता में है। निसर्ग से हटकर ही ब्रह्मांड से उसकी एकसूत्रता टूटनी शुरू हो जाती है। और फिर उस टूटने का कोई अंत नहीं है। और टूटते-टूटते वह बिलकुल रिक्त, खाली और व्यर्थ हो जाता है।

अब इस सूत्र में प्रवेश करें।

वैसे लोग भी हैं, जो ससार को जीत लेंगे और उसे अपने मन के अनुरूप बनाना चाहेंगे। लेकिन मैं देखता हू कि वे सफल नही होंगे।

उमर खैयाम ने कहा है कि कितनी बार होता है मन कि मेरे हाथ में हो ताकत तो मैं दुनिया को फिर से बना डालू, ताकि मैं अपने मन की बना लू। हर आदमी के मन में वह भाव है। और जो हम में बहुत ज्यादा महत्वकाक्षी हैं, वे उस भाव को जीवन में लाने की, यथार्थ करने की चेष्टा भी करते हैं। वैज्ञानिक हैं, राजनीतिज्ञ हैं, समाज-नेता हैं, इन सारे लोगो की चेष्टा यह है कि आदमी को हम अपने मन के अनुकूल बना लें। और जब भी मन के अनुकूल बनाने की घटना में कही हम सफल होते हैं, तब पाते हैं कि हम बुरी तरह असफल हो गए। हमारी सब सफलताए असफलताए सिद्ध होती है।

अब जैसे उदाहरण के लिए, हम चाहेंगे कि ऐसा आदमी हो, जिसे क्रोध पैदा न होता हो, जिसमे घृणा न हो। दुनिया के आदर्शवादी निरन्तर यही सोचते रहे। सब यूटोपियन्स चाहते रहे कि आदमी में क्रोध न हो, घृणा न हो, वैमनस्य न हो, ईर्ष्या न हो। अब हमारे हाथ में ताकत आ गई है कि हम ऐसा आदमी बना सकते हैं। और अब आदमी से पूछने की जरूरत नही है, उसे समझाने की, शिक्षा देने की, और योग और साधना में उतारने की जरूरत नही है। अब तो हम प्रयोगशाला में उसको क्रोधहीन बना सकते हैं।

अमरीका का बहुत बडा विचारक है स्कीनर। वह कहता है जिस बात को दुनिया के सारे महत्वाकाक्षी लोग सोचते रहे और सफल न हो पाए, अब हमारे हाथ में ताकत है और अब हम चाहे तो अभी कर सकते हैं। लेकिन अब कोई राजी नही है, कोई विचारशील आदमी, कि यह किया जाए। क्योंकि अब हम समझते हैं कि वे हारमोन अलग किये जा सकते हैं, ग्रन्थियां आदमी की अलग की जा सकती हैं जिनसे क्रोध का जहर पैदा होता है। उनको काट कर अलग किया जा सकता है बच्चे को जन्म के साथ, कभी पता नही चलेगा। जैसे उसकी टॉन्सिल निकाल देते हैं, वैसे ही उसकी ग्रन्थि निकल दे सकते हैं। वह कभी क्रोधी नही होगा।

लेकिन उसमें उसकी सारी गरिमा भी खो जाएगी। वह बिलकुल नपुसक होगा। उसमें कोई तेज, कोई बल, कुछ भी नहीं होगा। वह रीढहीन होगा, जैसे कोई रीढ ही न हो। उसको आप धक्का दे देंगे तो गिर जाएगा, उठ जाएगा और

चलने लगेगा। उसको आप गाली दे देंगे तो उसको कुछ भी न होगा। क्योंकि गाली जिस ग्रन्थि पर चोट करती है, वह वहां मौजूद नहीं है। क्या आप ऐसा आदमी पसन्द करेंगे?

कुछ लोग पसन्द करेंगे। स्टालिन पसन्द करेगा, हिटलर पसन्द करेगा। सभी राजनेता पसन्द करेंगे कि काश, हमको छोड़कर सारे आदमी ऐसे हो जाएं! तो फिर कोई बगावत नही है, कोई विरोध नहीं है, कोई क्रोध नही है। तब आदमी घास-पात जैसा होगा। उसे अगर काट भी दें तो वह विनम्रता से कट जाएगा। पर आदमी कहां होगा? आदमी कहीं नही होगा।

हम सफल हो जाते हैं और तब हमें पता लगता है कि यह तो बड़ी असफलता हो गई। आज हम कर सकते हैं यह, मगर शायद हम न करना चाहेंगे। शायद हमारी आत्मा राजी न होगी अभी यह करने के लिए।

हम कितना नही चाहते हैं कि सभी बच्चों के पास समान प्रतिभा, समान स्वास्थ्य हो। समानता की हम कितनी आकांक्षा करते हैं! और जल्दी ही हम उपाय कर लेंगे कि बच्चे समान हो सकें। क्योकि पैदा हो जाने के बाद तो समानता लानी बडी मुश्किल है, असम्भव है। क्योकि पैदा होने का मतलब है कि असमानता की यात्रा शुरू हो गई। लेकिन अब जीव-विज्ञानी कहते हैं कि अब दिक्कत नही है। हम पैदा होने के साथ ही, पैदा होने में ही समानता का आयोजन कर सकते है।

लेकिन वह भी बडा दुखद मालूम होता है। जैसे कि सरकारी बस्तियां हैं नई, एक से मकानो वाली बेरौनक, उबानेवाली, वैसे ही आदमी हो एक से, तो बहुत बेरौनक, बहुत घबराने वाली बात होगी। शायद हम राजी न हो। शायद हम चाहेंगे कि ऐसी समानता नही चाहिए। क्योकि अगर आदमी इतना समान हो सकता है तो यन्त्रवत हो जाएगा। यन्त्र ही हो जाएगा। यंत्र ही केवल समान हो सकते है। आदमी के होने में ही असमानता का तत्त्व छिपा हुआ है।

लेकिन समाजवादी हैं, साम्यवादी हैं, वे कहते हैं कि सब मनुष्यो को समान करना है और एक ऐसी स्थिति लानी है कि जहां बिलकुल कोई वर्ग न हो।

आपको खयाल नही है, गरीब और अमीर ही मात्र बड़े वर्ग नही हैं, और भी हजार वर्ग हैं। बुद्धिमान और बुद्धिहीन के वर्ग है, सुन्दर और कुरूप के वर्ग है, स्वस्थ और अस्वस्थ के वर्ग है। वे वर्ग और गहरे हैं। और आखिरी कलह, और आखिरी संघर्ष बुद्धिमान और बुद्धिहीन का है। क्योकि कुछ भी उपाय करो, बुद्धिमान बुद्धिहीन के ऊपर हावी हो जाता है। समानता टिक नही सकती— कुछ भी करो, कैसे ही इंतजाम करो। कौन करेगा इंतजाम? इंतजाम करनेवाले और इंतजाम किये जानेवाले, दो वर्ग फिर निर्मित हो जाते है। वे अमीर और गरीब के न होंगे तो सरकार और जनता के होंगे। इससे कोई फर्क नही पडता। लेकिन इंतजाम करने-वाले और जिनका इंतजाम करना है। ये दो वर्ग हमेशा निर्मित हो जाते हैं।

गहरे में देखें तो वह जो बुद्धिमान है, वह हर हालत में हावी हो जाता है। कभी वह ब्राह्मण होकर हावी हो जाता है, कभी वह कमीसार होकर हावी हो जाता है। कभी कम्युनिस्ट सत्ता में कमिनटर्न का मेम्बर होकर हावी हो जाता है, कभी वह ब्राह्मणों की पचायत मे हावी हो जाता है। **लेकिन वह आदमी वही है।** आदमी में कोई फर्क नहीं है।

कभी धन पर हावी होता है, तब वह सत्ता करता है। अगर धन पर हावी न हो, और उस बुद्धिमान आदमी को निर्धन भी बना दिया जाए, तो वह फकीर होकर सत्ता शुरू कर देता है। लेकिन उससे सत्ता नही जा सकती। उससे सत्ता नहीं छीनी जा सकती है। । वह धन को लात मार सकता है, नंगा खड़ा हो सकता है। वह धन के द्वारा सिर झुकवाता था, यह नगा खडा होकर सिर झुकवा लेता है। लेकिन कोई है जो सिर झुकवाता है, और कोई है जो सिर झुकाता है। और उन दोनो का फासला बना ही रहता है। उसमें कोई अन्तर नही पड़ता, कोई भेद नही पड़ता।

अन्तिम कलह और अन्तिम वर्गसघर्ष तो बुद्धिमान और बुद्धिहीन का है। उसको मिटाना है तो ही समानता हो सकती है। और जिस दिन हम उसे मिटा लेंगे, **उसी दिन हम आदमी को भी मिटा लेंगे।**

तब शायद असमानता निसर्ग है, और समानता केवल एक एक आकाक्षा है; जिसमें हम सफल न हो तो अच्छा और हम सफल हो जाए तो बुरा।

यह सूत्र कहता है, वैसे लोग हैं जो ससार को जीत लेगे और उसे अपने मन के अनुरूप बनाना चाहेगे। आदमी जीतना ही इसलिए चाहता है कि उसे अपने मन के अनुरूप बना सके। नही तो जीत का कोई मजा ही नही है। जीत का रस क्या है? इसे थोड़ा समझ ले कि जीत का मजा क्या है।

जीत का मजा यह है कि फिर मैं मालिक हो गया—तोड़ू, बनाऊ, मिटाऊ, अपने मन के अनुरूप ढालूं। इसलिए दुनिया में दो तरह के जीतनेवाले लोग हैं।

एक, जिनको हम राजनीतिज्ञ कहे। वे आदमी को पहले जीतते हैं, और फिर उसको तोडकर अपने अनुरूप बनाने की कोशिश करते है। स्टालिन ने एक करोड लोगो की हत्या की। बीस करोड के मुल्क मे एक करोड़ की हत्या कोई छोटा मामला नही है। हर बीस आदमी मे एक आदमी मार दिया गया। और एक करोड लोगो की एक आदमी के द्वारा हत्या का कोई उल्लेख नही है सारे इतिहास में। लेकिन स्तालिन कर क्या रहा था?

कोई हत्यारा नही था, **आदर्शवादी था। और सभी आदर्शवादी हत्यारे हो जाते हैं।** तो वह आदर्शवादी था, लोगो को अपने अनुरूप बनाने की कोशिश कर रहा था। और जो बाधा डाल रहे थे, उनको साफ कर रहा था। आकांक्षा भली थी। **जब भली आकांक्षावाले लोग ताकत में होते हैं, तब वे बड़े खतरनाक होते हैं।**

क्योंकि बुरी आकांक्षा के लोग ताकत से ही तृप्त हो जाते हैं और भली आकांक्षा के लोग ताकत का उपयोग करके आदर्श को लाना चाहते हैं, तब तृप्त होते हैं। तो स्तालिन ने जब तक मुल्क को बिलकुल सपाट न कर दिया, जरा सा भी विरोध का स्वर समाप्त नहीं कर दिया, और जब तक मुल्क को ढांचे में ढाल नहीं डाला, तब तक वह काटता ही चला गया।

एक करोड़ लोगों की हत्या से क्या स्तालिन के मन को पीड़ा नहीं हुई होगी?

नहीं होती है आदर्शवादी को। क्योंकि वह किसी को मार नहीं रहा है। किसी महान लक्ष्य के लिए जो लोग बाधा बन रहे थे वे लोग अलग किये जा रहे हैं। इसलिए महान लक्ष्य अगर न हो तो बड़ी हत्याएं नहीं की जा सकतीं। छोटे-मोटे हत्यारे बिना लक्ष्य के होते हैं, बड़े-बड़े हत्यारे लक्ष्यवाले होते हैं। स्तालिन ने महान सेवा का काम किया—अपनी तरफ से। लेकिन मुल्क को रौंद डाला। चाहता था कि मन के अनुरूप एक समान समाज निर्मित कर लिया जाए।

ऐसा नहीं है कि स्तालिन को यह खयाल पहली दफा आया था। सिकन्दर को यह खयाल था कि दुनिया मैं इसलिए जीतना चाहता हूं कि दुनिया को एक बना सकूं। ये फासले देशों के टूट जाए और सारी दुनिया एक हो; सारी दुनिया को एक बनाने के लिए सिकन्दर जीत रहा था।

हिटलर अगर सारी दुनिया को रौंद डालना चाहता था, तो कारण था, लक्ष्य था। हिटलर कहता था कि मनुष्य में सभी जातियाँ बचने के योग्य नहीं हैं, सिर्फ एक नॉर्डिक, एक आर्य, शुद्ध आर्य जाति बचने के योग्य है। शुद्ध आर्य की वजह से तो सुभाष को भी हिटलर की बात में जान मालूम पड़ने लगी। सुभाष का मन भी नाजी की तरफ झुका हुआ मन था। इसलिए हिंदुस्तान से भागकर वे जर्मनी पहुंच गए। और हिटलर ने जब सुभाष को पहली सलामी दिलवाई थी जर्मनी में तो उसनें कहा था कि मैं तो केवल चार करोड़ लोगों का फ्यूरर हूं, यह आदमी सुभाषचन्द्र चालीस करोड़ लोगों का फ्यूरर है। हिटलर मानता था कि शुद्ध आर्य ही केवल मनुष्य हैं, बाकी नीची जाति के लोग हैं। उनको ठीक-ठीक मनुष्य नहीं, सब-ह्यूमन, उपमनुष्य कहा जा सकता है। उनको हटाना है। उनके ताकत में होने की वजह से ही सारी दुनिया में उपद्रव है।

इसलिए उसने लाखों यहूदियों को काट डाला; क्योंकि वे नॉर्डिक नहीं थे। बड़े मजे से काट डाला, क्योंकि एक महान लक्ष्य, शुद्ध रक्त, शुद्ध मनुष्य, सुपर मैन, एक महा मानव को बनाना और बचाना था। सारी दुनिया को उपद्रव में डाल दिया। इतना बड़ा रक्तपात, इतना बड़ा युद्ध, इस महान आदर्श के आसपास हुआ।

और अगर जर्मन जाति उसके साथ लड़ रही थी तो पागल नहीं थी। जर्मन जाति जमीन पर सबसे बुद्धिमान जाति कही जा सकती है। तो इतने बुद्धिमानों को इस पागल आदमी ने कैसे प्रभावित कर लिया? महान लक्ष्य के कारण। यह

बुद्धिमान जाति भी आंदोलित हो उठी। उसे लगा कि बात तो ठीक है, शुद्ध मनुष्य बनना चाहिए तो दुनिया स्वर्ग हो जाएगी। उस शुद्ध मनुष्य के लिए कुछ भी किया जा सकता है। **एक बार आदर्श आंख को अंधा कर दे तो आदमी कुछ भी कर सकता है।**

राजनीतिज्ञ पहले आदमी को अपनी ताकत में लाना चाहता है, फिर आदमी को बदलता है।

धार्मिक गुरुओं ने भी यह काम किया है। वे दूसरी तरफ से यात्रा शुरू करते हैं। वे आदमी को बदलना शुरू करते हैं। और जैसे-जैसे आदमी बदलने लगता है, उनकी ताकत बढ़ने लगती है। राजनीतिज्ञ पहले ताकत स्थापित करता है। वह कहता है, पहले पावर, फिर क्रान्ति। धर्मगुरु कहता है, पहले क्रान्ति, ताकत तो उसके पीछे चली आएगी। इसलिए धर्मगुरु के पास अगर आप जाएं तो वह आप को बिना बदले नहीं मानता। कहता है, छोड़ो सिगरेट पीना, छोड़ो शराब पीना, यह मत खाओ, वह मत खाओ। अगर आप उसकी मानते हैं तो उसने आप पर कब्जा करना शुरू कर दिया। और जैसे-जैसे आप मानते जाएंगे, वैसे-वैसे वह आपको बदलने लगेगा। जिस दिन आप बदलने के लिए पूरी तरह राजी हो जाएंगे, उस दिन उसकी ताकत आपके ऊपर पूरी हो गई।

धर्मगुरु राजनीतिज्ञ की तरह ही उलटी यात्रा कर रहा है।

इसलिए वास्तविक धार्मिक व्यक्ति आपको बदलना नहीं चाहता है। इस फर्क को थोड़ा खयाल में रख लें। क्योंकि जब मैं कह रहा हूं कि धर्मगुरु आपको बदलना चाहता है, तब मेरा मतलब यह नहीं है कि बुद्ध आपको बदलना चाहते हैं, या महावीर आपको बदलना चाहते हैं, या लाओत्से आपको बदलना चाहते हैं। नहीं, लाओत्से, महावीर या बुद्ध या जीसस जैसे लोग आपको बदलना नहीं चाहते। क्योंकि आपके ऊपर कोई ताकत जमाने की उनकी आकांक्षा नहीं है। **उन्होंने अपने जीवन में कुछ जाना है, वह आपको भी दे देना चाहते हैं, दिखा देना चाहते हैं, उसमें आपको साझीदार बना लेना चाहते हैं।** अगर उस साझेदारी में कोई बदलाहट आप में होने लगती है तो उसके जिम्मेवार आप हैं। अगर उस साझेदारी में आप बदलने लगते है तो उसके मालिक आप हैं। आप बुद्ध को जिम्मेवार नहीं ठहरा सकते।

बुद्ध से आपकी तरफ जो सम्बन्ध है, वह आपको बदलने का कम, आपको कुछ देने का ज्यादा है। बदलनेवाला तो आपसे कुछ लेता है, ताकत लेता है। बुद्ध को आपसे कोई शक्ति नहीं लेनी है, बुद्ध को आपसे कुछ लेना ही नहीं है। आपके पास कुछ है भी नहीं जो आप बुद्ध को दे सकें। बुद्ध को आपकी तरफ से कुछ भी नहीं आता है। बुद्ध को कुछ मिला है, वे आपको बस देते हैं। जैसे कि आप भटक रहे हो अंधेरे में और एक आदमी के पास दीया हो और दीया जलाने की तरकीब हो

और वह आप से कहे कि क्यों भटकते हो, लो दीया जलाने की यह तरकीब रही। बस इतना ही सम्बन्ध है। जैसे आप रास्ते पर भटक रहे हो और किसी से पूछें कि नदी का रास्ता क्या है, और उसे मालूम हो और वह कह दे कि बायें मुड़ जाओ, यह नदी का रास्ता है। बस इतना ही बुद्ध से आपका सम्बन्ध है।

धर्मगुरु अलग बात है। धर्मगुरु के लिए धर्म राजनीति ही है। पोप है, उसके लिए धर्म राजनीति है। धर्म भी एक तरह का साम्राज्य है। उसके भीतर फंसा हुआ आदमी भी पोप की ताकत बना रहा है।

लाओत्से कहता है, ऐसे लोग बदलना चाहेंगे, लेकिन मैं देखता हू कि वे सफल नही होंगे। इसलिए नहीं नही सफल होगे कि उनके पास ताकत कम है। ताकत तो उनके पास बहुत है। इसलिए भी नहीं कि बदलने के नियम उनको पता नही हैं। बदलने के नियम भी पता चल गए हैं। फिर भी वे सफल नही होंगे। सफल वे इसलिए नहीं होंगे कि संसार परमात्मा का गढ़ा हुआ पात्र है; इसे फिर से मानवीय हस्तक्षेप के द्वारा नहीं गढ़ा जा सकता। असफल वे इसलिए होंगे कि विराट है यह जगत, अतहीन, आदिहीन इसका फैलाव है। और आदमी की समझ बहुत सकीर्ण है। जैसे किसी आदमी ने आकाश को अपने घर की खिडकी से देखा हो, खिडकी भी बडी बात है, शायद एक छोटा छेद हो, उस छेद से देखा हो। विराट है जगत, आदमी की समझ सकीर्ण है। इस सकीर्ण समझ के कारण तो विराट को नही बदला जा सकता।

और जब तक हम पूरे को न जान लें, तब तक हमारी सब बदलाहट आत्मघात होगी। क्योकि पूरे को जाने बिना हम जो भी करेंगे, उसके परिणाम का हमें कोई पता नही है कि परिणाम क्या होगा। इसे हम जरा देखें, अपने चारो तरफ हमने जो किया है, उसे किसी भी कोने से देखें।

एक मित्र हैं मेरे, तीस साल से आदिवासी बच्चों को शिक्षा देने का काम करते हैं। बडे सेवक है। देश के बडे नेता भी उनके चरणो में सिर रखते हैं। सभी कहते है कि आपने महान सेवा का कार्य किया है। वे मुझे मिलने आए थे। मैंने उनसे पूछा कि अगर तुम बिलकुल ही सफल हो गए, और तुमने सब आदिवासियो को शिक्षित कर दिया, तो होगा क्या? यहा बम्बई में जो शिक्षित हो गए है, ये भी कभी आदिवासी थे। ये शिक्षित हो गए हैं और ये जो कर रहे हैं, तुम्हारे आदिवासी शिक्षित होकर यही करेंगे या कुछ और करेंगे? वे जो बनारस विश्वविद्यालय में लडके पढ़ रहे हैं, वे क्या कर रहे हैं? तुम्हारे आदवासी भी पढ़कर अगर विश्वविद्यालय के स्नातक होकर निकलेंगे तो वे क्या करेंगे?

वे थोड़े बेचैन हुए, क्योकि कभी किसी ने उनसे यह सवाल उठाया ही न होगा। जो भी कहता था, वह कहता था कि आप महान कार्य कर रहे हैं; बोलें मैं क्या सेवा करूं? लोग उनको धन देते हैं, गाडियां देते है, व्यवस्था देते हैं कि आएं और

सेवा करें, बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हैं। क्योंकि अशिक्षित को शिक्षित करना बड़ा अच्छा कार्य है। इसमे सदेह का कोई सवाल ही नही है। और कोई देखता ही नहीं कि जो शिक्षित हो गए हैं, उनकी क्या दशा है। अगर कोई शिक्षितों को ठीक से देखे तो शायद संदेह उठना शुरू ही कि अशिक्षितों को शिक्षित करना सेवा है या नही। लेकिन संदेह उठता ही नही, क्योंकि हम सोचते ही नही हैं।

आदिवासियों को हम शिक्षित करके क्या करेंगे ? ज्यादा से ज्यादा जो शिक्षित कर रहे हैं, उन जैसे ही उनको हम बना लेंगे। और क्या होनेवाला है ? लेकिन जो शिक्षित कर रहे है, वे कहां हैं ? वे यह मानकर ही बैठे है कि जैसे वे मोक्ष में पहुच गए है। वे कहा हैं ?

और बड़ी हैरानी की बात है कि हम बिल्कुल नही देखते कि आदिवासी को हम अपनी शिक्षा देकर उससे क्या छीने ले रहे हैं। वह हमे दिखाई नही पडता।

वह हमें दिखाई नहीं पडता। और आदिवासी बेचारा इस स्थिति में नही है कि हमसे सघर्ष ले सके अशिक्षित रहने के लिए। वह शिकार है; वह कुछ कर नही सकता। हम जो करेंगे उसके साथ, उसे झेलना ही पड़ेगा। और जब तक हम सफल न हो जाएगे, तब तक हम उसका पीछा न छोड़ेंगे। और जिस दिन हम सफल हो जाएगे, उस दिन हम चौंकेंगे कि ये क्या आदमी पैदा हुए! यह हमारी सफलता का परिणाम होगा।

आज अमरीका दुनिया में सबसे ज्यादा शिक्षित देश है। और अमरीका के विश्वविद्यालयो में जो होता है, उससे ज्यादा अशिक्षित स्थिति खोजनी मुश्किल है। और जिन्होंने शिक्षित किया है उसको, दो-तीन सौ वर्षों के सतत श्रम के बाद, वे भी अपने सिर ठोक लेंगे कि इसीलिए हम इतनी मेहनत कर रहे थे! आज अमरीका में जब शिक्षा पूरी हो गई है, तब परिणाम क्या है ?

परिणाम यह है कि वह पूरी तरह शिक्षित व्यक्ति आपकी शिक्षा के प्रति क्रोध से भरा है, आपके शिक्षकों के प्रति घृणा से भरा है, आपके पूरे आयोजन, व्यवस्था और समाज, सबके प्रति घृणा से भरा है। आपकी शिक्षा का यह फल है। मा-बाप के प्रति, परपरा के प्रति, जिन्होंने उसको शिक्षित किया, जो उसे यहा तक खीच-खीच कर यहा लाये और बडा त्याग किया---वह बड़े मजे लेते रहे मा-बाप उनके कि हम बडे त्याग करके बच्चो को शिक्षित कर रहे है---बच्चे उन सबकी निन्दा कर रहे हैं। बात क्या है ?

आपकी सेवा मे कहीं कोई बुनियादी भूल है। क्योंकि हमें खयाल नही है, जीवन बड़ी जटिल रचना है। आप शिक्षा देते है, उससे महत्वाकाक्षा बढती है। असल में महत्वाकांक्षा के लिए ही आप शिक्षा देते है। आदिवासी को आप समझाते हैं कि अगर पढ़ोगे-लिखोगे तो होगे नवाब। फिर वह पढ-लिख कर नवाब होना चाहता है, तो मुसीबत खड़ी होती है। फिर कितने लोग नवाब हुए ? फिर

यह कहता है कि नवाब हुए बिना हम न मानेंगे। हर बच्चे को हम महत्वाकांक्षा दे रहे हैं। महत्वाकांक्षा के बल ही हम उसको खींच रहे हैं, धक्का दे रहे हैं कि पढ़ो, लिखो, लड़ो, प्रतिस्पर्धा करो; क्योंकि कल बड़ा सुख पाओगे।

कोई नहीं पूछ रहा है कि कल यह सुख अगर उसे नहीं मिला और तुमने जो आशा बंधाई थी, अगर वह असफल हुई, तो इस बच्चे का जीवन सदा के लिए व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि आधा जीवन इसने शिक्षा में गंवाया, इस आशा में कि शिक्षा से सुख मिलेगा और फिर आधा जीवन रोकर गंवाएगा कि वह सुख नहीं मिला। लेकिन इसकी कोई फिक्र नहीं कर रहा है।

आज अमरीका में बच्चा वही प्रश्न अपने मा-बाप से पूछ रहा है।

एक मित्र मुझे मिलने आये थे। वे प्रोफेसर हैं। वे कहने लगे कि मेरा लड़का मुझसे यही पूछता है। वह भाग जाना चाहता है। हाईस्कूल में है अभी और हाईस्कूल छोड़ कर हिप्पी हो जाना चाहता है। और मै उसको समझाता हूं तो वह यह पूछता है कि ज्यादा से ज्यादा अगर मैं पढालिखा तो आप जैसा प्रोफेसर हो जाऊंगा। आपको क्या मिल गया?

वह पिता ईमानदार है। अगर कोई भारतीय पिता होता तो कहता कि मुझे सब मिल गया है। मगर वह पिता ईमानदार है। वह कहता है कि मैं अपनी आत्मालोचना करता हूं तो मुझे लडके का सवाल सही मालूम पडता है। और मैं झूठा जवाब नहीं दे सकता। मुझे कुछ भी नही मिला। हालांकि मेरे बाप ने भी यही कहा था कि बहुत-कुछ मिलेगा। उसी आशा पर तो मैंने यह सब किया। अब मै किस तरह कहू इस बेटे को? और तब डरता भी हू कि अगर यह छोडकर भाग गया हाईस्कूल तो इसकी जिन्दगी खराब हो जाएगी। मगर मै यह भी नही कह सकता कि मेरी जिन्दगी खराब नही हो गई। यह कठिनाई है। मेरी जिन्दगी भी खराब हो गई।

तो जिन्दगी खराब करने के दो ढग हैं। एक व्यवस्थित लोगो का ढग है और एक अव्यवस्थित लोगो का ढंग है। पर वह लडका यह पूछता है कि अव्यवस्था से ही जिन्दगी खराब करने में क्या एतराज है? जब खराब ही करनी है तो अच्छी नौकरी में रहकर खराब की, या सड़क पर भीख माग कर खराब की, अतर क्या है? और जब खराब ही होनी है जिन्दगी तो कम से कम स्वतन्त्रता से खराब करनी चाहिए। इतना तो कम से कम भरोसा रहेगा कि अपनी ही मर्जी से खराब की। आपकी मर्जी से क्यो खराब करूं?

यह अशिक्षित बच्चे ने कभी बाप से नही पूछा था, यह खयाल में रख लें। अशिक्षित बच्चे ने कभी बाप से यह नहीं पूछा था। बाप के मूल्यों पर कभी शक नहीं उठाया था। अब यह बाप खुद परेशान है, लेकिन इसको पता नहीं है कि इसकी परेशानी का कारण यह लड़का नहीं है, इसकी परेशानी का कारण पिछले

दो सौ वर्षों के बाप हैं, जो सबको शिक्षित करने में लगे हैं।

अब वे शिक्षित हो गए हैं और शिक्षा का जो जो फल हो सकता था, वह सामने आ रहा है। अब वे पूछने लगे है, अब वे तर्क करने लगे हैं, अब वे विचार करने लगे हैं। अब जिन्दगी उनको बिना विचार के व्यर्थ मालूम होती है। अब वे कुछ भी करेंगे तो सोचकर करेंगे। अब वे हर कुछ मान नहीं सकते।

तब मां-बाप और शिक्षक चिल्ला रहे हैं कि यह अनुशासनहीनता है । शिक्षित आदमी का अनुशासनबद्ध होना मुश्किल है। सिर्फ अशिक्षित आदमी अनुशासनबद्ध हो सकता है। या फिर बिलकुल एक और ढंग की शिक्षा चाहिए, जिसका हमें कोई भी पता नहीं है। अभी तो हम जब भी शिक्षित करेंगे किसी को, वह अनुशासनहीन हो जाएगा। हा, एक मजे की बात होगी कि वह खुद अनुशासनहीन हो जाएगा और दूसरो पर अनुशासन करना चाहेगा। इसको आप देखें। विद्यार्थी को शिक्षक कहता है कि अनुशासनहीन है। और वाइस चासलर को पूछें, वह कहता है कि शिक्षक अनुशासनहीन है। और राष्ट्रपति को पूछे, वे कहते है कि वाइस चांसलर कोई हमारी सुनते ही नही, सब अनुशासनहीन हैं। ऊपरवाला सदा नीचेवाले को कहता है कि वह अनुशासनहीन है। और उसके ऊपरवाला उसको वही कहता है। सब अनुशासनहीन हैं। असल में शिक्षित आदमी अपने ऊपर किसी को पसन्द नही करता है; सबको अपने नीचे चाहता है। जो भी नीचे है, उसको अनुशासित करना चाहता है। लेकिन वह जो नीचे है, वह नीचे नहीं रहना चाहता है। वह भी शिक्षित है।

शिक्षा महत्वाकाक्षा को जगा देती है। हमने सार्वभौम शिक्षा फैला कर सार्वभौम महत्वाकाक्षा जगा दी। हमने हर आदमी का अहकार जगा दिया। अब उस अहकार की तृप्ति का कोई उपाय नहीं है। इसलिए आग की लपटे जल रही है। बहाने हैं सब।

अभी एक मित्र, एक विधान सभा के व्हिप (सचेतक) है वे, मुझे मिलने आये थे। वे कहने लगे कि पहले एक सत्ता थी, एक पार्टी की हुकूमत थी हमारे राज्य में, उसको हम लोगो ने मेहनत करके बदल डाला। अब दूसरी पार्टी की हुकूमत आ गई। बडी आशाए थीं, वे सब खत्म हो गई। अब हम लोग क्या करे? क्या अब हम इसको भी बदल कर तीसरी पार्टी को ले आये? मैंने उनको कहा कि आप ला सकते हैं, लेकिन फिर भी आशाए इसी तरह व्यर्थ होगी। क्योंकि जो आप कर रहे है, उससे आशाओ के पूरी होने का कोई लेना-देना नही है। एक की जगह दूसरे को रखें, दूसरे की जगह तीसरे को रखें, इससे थोडी देर के लिए राहत मिलती है। थोड़ी देर के लिए राहत मिलती है, क्योंकि थोड़ी देर के लिए लगता है कि किसी दूसरे को मौका मिला, थोडा काम करने का समय दो। लेकिन जैसे-जैसे समय निकलता है, पता चलता है कि कुछ भी नही हो रहा है, कुछ भी नहीं

हो रहा है। पुरानी कांग्रेस सत्ता से गई, नई कांग्रेस सत्ता में आई; आशा बंधी। अब ढीली होती जा रही है आशा कि कुछ नहीं हो रहा है।

आदमी जो करता है, वह नहीं जानता है कि उसके परिणाम क्या होंगे। और यह भी नहीं जानता कि क्यों कर रहा है? उसके भीतर अचेतन कारण क्या हैं, उनका भी उसे पता नहीं है। भविष्य में परिणाम क्या होंगे, उनका उसे पता नहीं है। लेकिन किये चला जाता है। और तब जाल में उलझता चला जाता है।

लाओत्से कहता है, ये लोग सफल नहीं होंगे। **क्योंकि संसार विराट की कृति है,** इसे मानवीय हस्तक्षेप से नहीं गढ़ा जा सकता। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है; क्योंकि आदमी हस्तक्षेप करना चाहता है। छोटी-छोटी बात में भी हस्तक्षेप करना चाहता है। जहां न किये भी चल जाता, वहां भी किये चला जाता है।

आपका बच्चा आपसे पूछ रहा है, जरा बाहर जाकर खेलूं? आप तुरन्त कहते हैं, नहीं। खेल सकता था, कोई दुनिया बिगड़ी नहीं जा रही थी। लेकिन हस्तक्षेप करने का मजा है; नहीं तो बाप होने का कोई मजा ही नहीं है। अगर हां और हां करते चले जाए तो बाप किस लिए हुए? इतनी तकलीफें झेल रहे है, इसको पैदा किया, इसको बड़ा कर रहे है, तो थोड़ा नहीं कहने का मजा ले लें। मैं घरों में ठहरता हूं कभी-कभी और सुनता हूं तो हैरान होता हूं। अकारण नहीं कहा जा रहा है। क्या रस होगा? क्या कारण होगा भीतर? हस्तक्षेप मे एक मजा है। न कहने में इतना आनन्द है किसी को कि जिसका हिसाब नहीं।

आप खड़े हैं किसी दफ्तर की खिड़की पर और क्लर्क से कहते हैं कि यह काम कर दीजिए। वह कहता है कि आज नहीं होगा। खाली भी बैठा हो तो भी कहता है कि आज नहीं हो सकता है। क्योंकि नहीं कहने से ताकत पता चलती है, हां कहने से ताकत पता नहीं चलती। नहीं किसी से भी कह दे, उसका मतलब है कि तुम नीचे हो गए और हम बड़े हो गए।

तो हस्तक्षेप अहंकार का लक्षण है। जितना नहीं कहनेवाला आदमी होगा, समझना कि उतना अहंकारी है।

विचारशील व्यक्ति पहले हर कोशिश करेगा हां कहने की, असंभव ही हो हां कहना, तो ही नहीं कहेगा। और तब भी नहीं को इस ढंग से कहेगा कि वह भीतर जाकर छुरी की तरह काटता न हो। उसका रूप हां का ही होगा।

हमारे हां की भी जो शकल होती है, वह नहीं की होती है। और हम हां तभी कहते हैं, जब कोई और उपाय नहीं रह जाता। यह लड़का जो कह रहा है कि बाहर जाकर खेलूं, इसको भी थोड़ी देर में बाप हां कहेगा; लेकिन तब कहेगा, जब हां का पूरा मजा ही चला जाएगा। और हां विषाक्त हो जाएगा और नहीं के बराबर हो जाएगा। इसने नहीं कह दिया। लड़का भी उपाय जानता है; क्योंकि हस्तक्षेप कोई पसन्द नहीं करता। वह बाहर नहीं जाने का बदला लेना शुरू करेगा कमरे

के भीतर ही। शोर करेगा, चीजों को पटकेगा, दौड़ेगा, भागेगा और तब तक करेगा, जब तक यह हालत न पैदा कर दे कि बाप को कहना पड़े कि बाहर चले जाओ। लेकिन तब बाहर चले जाओ हां जैसा लगता है, लेकिन उसका रूप तो न का हो गया। वह विषाक्त हो गया। और सम्बन्ध विकृत हो गये। और दोनों के अहंकार को अकारण बढ़ने का मौका मिला।

अकारण बढ़ने का मौका मिला। क्योंकि जब भी मैं कहूं नहीं तो उसमें मेरा अहंकार बोलता है। और जिससे कहूंगा नहीं, उसका अहकार सघर्ष करेगा। और जब तक वह मेरी नही को न तोड़ दे, तब तक संघर्ष करेगा। अगर बाप कह दे हां तो खुद के भी अहकार को मौका नहीं मिलता और बेटे के अहकार को भी मौका नही मिलता कि वह हां कहलवाये।

हमारी हस्तक्षेप की बड़ी सहज वृत्ति है। चारों तरफ हम हस्तक्षेप करते रहते हैं। जितनी दूर तक हम रुकावटें डाल सकते हैं, उतनी दूर तक लगता है कि हमारा साम्राज्य है। लेकिन यह जो रुकावट डालनेवाला मन है, यह रुकावट डालनेवाला मन जीवन को दुख और नरक में उतार देता है—चाहे व्यक्तिगत रूप से, चाहे सामाजिक रूप से। नरक निर्मित करना हो तो नही को जीवन की दृष्टि बनाएं। और स्वर्ग निर्मित करना हो तो हा को जीवन की दृष्टि बनाए—स्वीकार को, तथाता को। निसर्ग को जहा तक बन सके मत छेड़े। और बड़े आश्चर्य की बात है, अगर कोई व्यक्ति तैयार हो तो अनन्त तक बन सकता है। मैं कहता हू, जहा तक बन सके मत छेड़ें। और अगर आप तैयार हो तो अनन्त तक बन सकता है। छेड़ने का कोई सवाल ही नही है। और जो व्यक्ति निसर्ग को नहीं छेड़ता, उसके भीतर मे उस घनीभूत शान्ति का जन्म होता है, उस अतुल शान्ति का जन्म होता है, जिसकी हमें कोई खबर भी नही है। क्योंकि उसे अशान्त ही नहीं किया जा सकता, जो आदमी हस्तक्षेप नही करता है। उसे अशान्त ही नही किया जा सकता, जो चीजो को स्वीकार कर लेता है। उसे अशान्त ही नही किया जा सकता है। सच यह है कि उसे किसी सघर्ष मे घसीटा नही जा सकता, उसे किसी कलह में नही खीचा जा सकता।

मनुष्य है क्या, एक छोटा जीवाणु। और जब वह विराट में हस्तक्षेप करता है, तब वह तिनके की भाति है जो नदी में बह रहा है और सोच रहा है कि नदी के विपरीत बहू, उल्टा बहू, लड़ू। बह नही पायेगा; लेकिन बहने की कोशिश में दुखी बहुत हो जाएगा, असफल बहुत हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, उस तिनके की भांति हो रहो जो नदी से कोई कलह भी नही करता, जो नदी के साथ बहता है। जो लड़ता है, वह भी साथ ही बहेगा। ध्यान रखना, उलटा तो बहने का तिनके के पास कोई उपाय नही है। क्या तिनका नदी में उलटा बहेगा? वह भी नदी में ही बहेगा; लेकिन मजबूरी में, दुख में,

पीड़ा में, लड़ता हुआ, हारता हुआ, पराजित होता हुआ, प्रतिपल उखड़ता हुआ बहेगा। वह विषादग्रस्त होगा। जो दूसरा तिनका नदी में बह रहा है, उसके पड़ोस में ही, और बिना लड़े, वह भी बहेगा। दोनो बहेंगे नदी की धारा में ही, क्योंकि नदी है विराट और तिनके हैं क्षुद्र। कोई उपाय नहीं है विपरीत जाने का। लेकिन जो जाने की कोशिश करेगा, वह दुख में गिर जाएगा और उसकी शक्ति व्यर्थ ही अपव्यय होगी। क्योकि लड़ने में शक्ति लगेगी। वह भी पहुंचेगा सागर तक, लेकिन मुर्दा पहुचेगा। और रास्ते का जो आनन्द हो सकता था, रास्ते के किनारे जो वृक्ष मिलते और जो पक्षियों के गीत होते और आकाश में सूरज निकलता और रात तारों से भरा आकाश होता, वह सब उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। उसका सारा काम तो लड़ने में लगा रहता है। और वह तिनका जो नदी के साथ बह रहा है, उसे नदी से कोई दुश्मनी नहीं है; उसने नदी को वाहन बना लिया।

ध्यान रहे, क्षुद्र अगर विराट के साथ हो तो विराट भी क्षुद्र का वाहन हो सकता है। और क्षुद्र अगर विराट से लड़े तो अपना ही दुश्मन हो जाता है। विराट तो वाहन नही होता, सिर्फ अपना ही दुश्मन होता है। ये दोनो तिनके सागर मे पहुचेगे। लेकिन एक पहुँचेगा रोता हुआ और रुदन से भरा, हारा, थका, पराजित, क्रुद्ध, जलता हुआ, सारा जीवन व्यर्थ गया ऐसे संताप से भरा और रास्ते के अद्भुत अनुभवो से वंचित। दूसरा भी पहुचेगा सागर मे—आह्लाद से भरा हुआ, रास्ते के सारे नृत्य को अपने में समाए हुए। और सारा यात्रा-पथ उसके लिए तीर्थयात्रा हो जाएगा। सागर में गिरना उसके लिए महामिलन होगा।

आदमी के बस दो ही तरीके है। लाओत्से कहता है, जो हस्तक्षेप करता है, वह उसे और बिगाड देता है। जो ऐसा करता है, वह उसे बिगाड देता है। और जो उसे पकडना चाहता है, वह उसे खो देता है। इस निसर्ग को जो बदलना चाहता है, वह उसे बिगाड देता है। बस बिगाड़ ही सकता है, बदलने की कोशिश में बिगाड ही सकता है।

ध्यान रहे, यह केवल समाज के लिए ही सही नही है, यह व्यक्ति के स्वयं के लिए भी सही है। कुछ लोग दूसरे को बदलने की फिक्र में नहीं होते हैं तो खुद को ही बदलने की फिक्र में होते हैं। वे कहते हैं, यह गलत है, यह नही होना चाहिए मुझमे, और यह ठीक है, यह ज्यादा होना चाहिए मुझमें। वे सोचते हैं, क्रोध को काट डालूं, या काम को जला दू, बस मेरे भीतर प्रेम ही प्रेम रह जाए, सत्य ही सत्य रह जाए, शुद्ध, पवित्र पुण्य ही रह जाए, सब पाप काट डालू। तो लोग अपने को भी बदलने की कोशिश में लगते हैं और लडते हैं। हम इन्हे साधु कहते रहे हैं। इस तरह के लोगो को हम साधु कहते हैं, जो अपने को काटते हैं और साधुता आरोपित करते हैं। लाओत्से उनके भी पक्ष में नही है।

लाओत्से तो उसे साधु कहता है, जो अपने को स्वीकार कर लेता है—जैसा हू,

वैसा हूं। और बड़े आश्चर्य की घटना तो यह है कि ऐसा व्यक्ति साधु हो जाता है। पुष्प उसपर बरस जाते हैं; पाप उसपर से खो जाते हैं। क्रोध उसका विलीन हो जाता है; प्रेम उसका प्रगाढ़ हो जाता है। लेकिन वह यह करता नही है। यह स्वीकार का परिणाम है। यह सर्व-स्वीकार है।

ध्यान रखें, यह कैसे होता होगा? क्योंकि जो सब स्वीकार कर लेता है, वह क्रोध कैसे करेगा? इसे थोडा समझें, यह आंतरिक कीमिया की बात है। अगर मै अपने क्रोध को भी स्वीकार करता हूं तो मैं क्रोध कर ही नही सकूगा। इस स्वीकृति में ही क्रोध क्षीण हो जाता है। क्योंकि क्रोध का मतलब ही अस्वीकार है। कोई चीज मैं नहीं चाहता हूँ, उससे ही क्रोध आता है। पत्नी नही चाहती कि पति कही भी कपड़े उतार कर कमरे में डाल दे। और जब डालता है पति, तब पत्नी को क्रोध आ जाता है। लेकिन जो अपने भीतर क्रोध तक को स्वीकार करती हो, वह कहीं कमरे में पड़े हुए कपडो को क्या स्वीकार न कर पाएगी? वह कर पाएगी। पति सिगरेट पीता है, पत्नी स्वीकार नही कर पाती। लेकिन जिस पत्नी ने अपने क्रोध तक को स्वीकार कर लिया हो, वह पति की इस निर्दोष नासमझी को स्वीकार जरूर कर पाएगी कि धुआ भीतर करता है, बाहर करता है, तो करने दो।

जैसे ही हम अपनी बुराइयों को स्वीकार कर लेते हैं, ध्यान रखना, हम दूसरो की बुराइयों के विरोध में भी नही रह जाते हैं।

इसलिए जो लोग अपनी बुराई स्वीकार नही करते, वे दूसरे की बुराई के प्रति बडे दुष्ट होते हैं, बड़े कठोर होते हैं। हम उन्हें महात्मा कहते है। महात्माओ का लक्षण यह है कि वे कठोर होते है अपने प्रति भी, दूसरो के प्रति भी। जो भी गलत है, वे उसके प्रति सख्त, कठोर होते हैं। वे उसको काट के फेंक देंगे।

लेकिन लाओत्से यह कहता है कि गलत और सही, इतनी बटी हुई चीजें नही हैं। गलत और सही भीतर एक ही चीज के दो पहलू है। और तुम एक को काटो तो दूसरा भी कट जाता है। तुम एक को बचाओ तो दूसरा बच जाता है। जो आदमी क्रोध को काट डालेगा बिलकुल, उसके भीतर प्रेम भी कट जाएगा। बचेगा नही। जो आदमी यह कहता हो कि मेरा दुनिया मे कोई शत्रु नही है, ध्यान रखना, उसका कोई मित्र भी नही हो सकता। अगर आप चाहते हैं कि दुनिया में कोई शत्रु न हो तो मित्र बनाना ही मत। क्योंकि शत्रु बिना मित्र बनाए नही बनता कोई। पहले मित्र बनाना पडता है, तब कोई शत्रु बनता है। पहले कदम पर रुक जाना। तो जो शत्रु से डरता है, वह मित्र भी नही बनाएगा।

हम विरोध में से कुछ काट नही सकते। विरोध एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक ही चीज के दो छोर का नाम है विरोध।

लाओत्से कहता है, अपने भीतर भी बदलने की चेष्टा, काटने की चेष्टा, बनाने की चेष्टा, व्यर्थ है। और अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी कितनी ही चेष्टा

करे, जैसे होता है वैसा ही रहता है, कुछ बदलता नहीं। यह बड़ी कठिन बात है। और कम से कम धर्मगुरु इसे कभी मानने को राजी नहीं होंगे। क्योंकि धर्मगुरु का तो सारा व्यवसाय ही इस बात पर निर्भर है कि लोग बदले जा सकते हैं।

अगर मैं आपसे कहूं कि आप जैसे हैं वैसे ही रहेंगे, आपमें कभी कोई बदलाहट नहीं हो सकती; आप दुबारा मेरे पास नहीं आएंगे। धन्धा खत्म ही हो गया। क्योंकि मेरे पास आप इस आशा में आते हैं कि यह आदमी कुछ करेगा, बदलेगा, अच्छा बना देगा; हम भी महात्मा हो जाएंगे। और मैं आपसे कह दूं कि तुम जैसे हो इसमें रत्ती भर कुछ होनेवाला नहीं है, तुम तुम ही रहोगे, तब स्वभावतः मैं गुरु होने के योग्य न रहा। गुरु तो वही है, जो बदल दे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम तो अपने को नहीं बदल पाते, आप अपनी कृपा से बदल दीजिए। और आप कृपा करेंगे तो बदलाहट हो जाएगी। अगर मैं उनको कहूं कि बदलाहट तो हो ही नहीं सकती; परमात्मा ने तुमको बनाया, इससे बडी कृपा और अब कौन करेगा? और मैं इसमें हेरफार करनेवाला कौन हूं? परमात्मा ने तुमको ऐसा बनाया, बहुत सोच-समझ कर बनाया, अब तुम कुछ न करो, तुम काफी हो, परमात्मा की कृति हो, काफी सुन्दर, अच्छे हो ठीक हो, तो दुबारा वह आदमी आनेवाला नहीं है। इसलिए धर्मगुरु सत्य कह ही नहीं पाते हैं। क्योंकि असत्य पर तो सारा व्यवसाय है।

आप जरा सोचें, पचास साल की उम्र है आपकी, रत्ती भर बदले है आप? लौटें पचास साल में, क्या बदले हैं आप?

आइजनहॉवर ६० वर्ष के थे जब वे अमरीका के प्रेसीडेन्ट हुए। उन्होंने अमरीका की अर्थनीति में कुछ फर्क किये। उनके बडे भाई थे, एडगर, या कुछ नाम था, जो उनसे दो या तीन साल बडे होंगे। पत्रकारों ने उनसे जाकर पूछा कि आइजनहॉवर की अर्थनीति के सम्बन्ध मे आपका क्या खयाल है? उनके बड़े भाई ने कहा कि बिलकुल बेकार है, कुछ सार नहीं है उसकी अर्थनीति में। वह बरबाद कर देगा मुल्क को। पत्रकार वापस आइजनहॉवर के पास गये और उन्होंने कहा कि आपके बडे भाई ने ऐसा कहा है। आइजनहॉवर ने कहा कि जब मैं पांच साल का था, तब से ऐसा ही वे मुझसे कह रहे हैं। कोई नई बात नहीं है। पांच साल का था, तब से वे मेरी आलोचना कर रहे हैं इसी तरह। यह कोई अर्थनीति का सवाल नहीं है। जो भी मैं करता हूं, उसको वे गलत कहते हैं।

एक पत्रकार, जिसने यह सब सुना, वापस गया। उसने बड़े भाई से कहा कि आइजनहॉवर ऐसा कह रहे हैं। बडे भाई ने कहा कि अभी मैं उसको धूल चटा सकता हूं। बडे भाई ने कहा कि अभी एक धक्का दूं तो धूल चटा सकता हूं। वह आदमी फिर वापस लौटा और उसने आइजनहॉवर से कहा कि हद हो गई, आपके बड़े भाई यह कहते हैं कि एक धक्के में आपको चारो खाने चित्त कर देंगे। आइ-

जनहॉवर ने कहा, हद हो गई, यह बात भी वे मुझसे जब मैं पाच साल का था, तब से कह रहे हैं। और मैं आपसे कहता हू कि वे मुझे धूल नहीं चटा सकते हैं। **और यह मैं भी तब से कह रहा हूं।**

अगर आप लौटें अपने पीछे तो आप पाएंगे, आप बदले नही है। आप आज भी वही हैं। आपके कपड़े बड़े हो गए, शरीर बड़ा हो गया; थोडा भीतर खोजबीन करे, आपका अणु वही का वही है। ढग बदल गए होंगे, रास्ते बदल गए होंगे; लेकिन भीतर की गहरी सच्चाइया नही बदली होंगी। और कभी नही बदलती। मगर इससे निराश मत हो जाना। तो इसका मतलब क्या यह हुआ कि कुछ हो ही नही सकता ?

नही, आप करना चाहे तो कुछ भी नही होगा। आप स्वीकार कर लें, **तो बहुत कुछ होता है।** लेकिन वह किये से नहीं होता। जिस दिन आप अपने को स्वीकार कर लेते हैं और कहते है कि मैं ऐसा हू, बुरा या भला, क्रोधी, ईर्ष्यालु जैसा भी हू, वैसा हूँ—यह सत्य का पहला स्वीकार है कि मै ऐसा हूँ—इसमे कोई एतराज नही है मुझे, परमात्मा ने मुझे ऐसा बनाया है, इस स्वीकृति के साथ ही पहली दफा आपकी क्षुद्रता समाप्त हो जाती है और आप विराट के अश हो जाते है। **और इस स्वीकृति के साथ ही, जिसने आपको बनाया है वह आप के भीतर आपको फिर से बनाने में संलग्न हो जाता है।**

सच बात यह है कि जब तक आप अपने को बनाने की कोशिश करते हैं, परमात्मा के हाथ रुके रहते हैं, विराट के हाथ रुके रहते हैं। जिस दिन आप अपने को छोड़ देते हैं, उसी दिन उसके हाथ फिर आपको बनाने लगते है। **लेकिन वह बनावट बड़ी और है।**

लाओत्से कहता है, जो ऐसा करेगा, वह और बिगाड देगा। जो उसे पकडना चाहता है, वह उसे खो देता है। निसर्ग पकड़ मे नही आता है। लेकिन जो अपने को निसर्ग में छोड़ देता है, और निसर्ग के साथ बहने लगता है, निसर्ग उसकी पकड़ में तो नही आता, लेकिन निसर्ग उसके लिए साथी, सहयोगी और उसकी आत्मा बन जाता है।

क्योंकि कुछ चीजें आगे जाती है और कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं। हमें खयाल नही है कि कुछ चीजे आगे जाती है और कुछ पीछे-पीछे चलती है। जैसा मैंने कहा; स्वीकार आगे-आगे जाता है और क्रान्ति पीछे-पीछे चलती है, तथाता आगे जाती है--मान लेना कि मैं ऐसा हू और जरा भी इसमे मुझे ऐतराज नहीं है। क्योंकि ऐतराज परमात्मा के प्रति ही ऐतराज है।

लोग मजेदार हैं, लोग कहे जाते है कि परमात्मा ने आदमी को बनाया है और आदमी को कोई स्वीकार नहीं करता। आप कहते है कि भीतर आत्मा है, लेकिन उसको स्वीकार आप भी नहीं करते। आप कहते हैं कि मैं प्रभु की कृति हूं, लेकिन

इसमें भी आप सुधार करना चाहते हैं, तरमीम करना चाहते हैं। आप इसमें भी कुछ हेरफेर करना चाहते है। अगर परमात्मा आपसे सलाह लेता तो आप कभी बननेवाले नही थे; क्योंकि आप इतनी योजनाए बदलते कि हिसाब नहीं।

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना कि एक बेटा अपने बाप से कह रहा है कि परमात्मा ने आदमी को बनाया, फिर अदम की हड्डी निकाल कर ईव को, स्त्री को बनाया। फिर उस बेटे ने पूछा कि परमात्मा ने पहले आदमी को क्यों बनाया, पहले स्त्री को क्यों नही बनाया? उसके बाप ने कहा कि जब तू बड़ा होगा तो समझ जाएगा। अगर परमात्मा पहले स्त्री को बनाता तो आदमी बन ही नहीं पाता। स्त्री इतने सुझाव, इतनी सलाह देती कि फिर आदमी नही बन सकता था। वह कहती कि ऐसा बनाओ, वैसा बनाओ, यह न करो, वह न करो, वह कभी बना ही नही पाता। इसलिये उसने पहले आदमी बनाया, ताकि झंझट बिलकुल न हो। फिर स्त्री बनाई।

अभी भी स्त्री सलाह दिए चली जाती है आदमी को। अगर आप अपनी पत्नी के साथ कार चला रहे है तो आप सिर्फ आदेश का पालन कर रहे हैं। कार तो पत्नी चलाती है। एक्सीडेन्ट वगैरह हो तो आप जिम्मेवार होंगे और सकुशल घर पहुच जाए तो पत्नी ने गाडी चलायी।

आदमी जब अपने को बदलने की बात करता है, तभी वह परमात्मा को अस्वीकार कर देता है।

लाओत्से कहता है कि कुछ चीजें आगे-आगे चलती है और कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती है। जो पीछे चलती है, उनको आगे लाने की कोशिश मत करना; नही तो भूल हो जाएगी। गेहू बो दें, घास-भूसा पीछे अपने-आप हो जाएगे। गेहूं के साथ भूसा पैदा हो जाता है। भूसे को बो दे, फिर कोई गेहू पैदा नही होता; फिर भूसा भी पैदा नही होता। पास भी जो भूसा था, वह भी खराब हो जाता है। **जो परिणाम है, उसको बीज नहीं बनाया जा सकता है।**

और हम सब उसको बीज बनाने की कोशिश करते है। लोग चाहते हैं कि शात हो जाए, लोग चाहते ह कि आनदित हो जाएं; लेकिन यह परिणाम है, यह बीज नही है। आप आनन्द को सीधे पकड नही सकते; **आनन्द परिणाम है।** आप कुछ और करें, जो बीज है, तो आनन्द आ जाएगा।

जैसे मे कहता हू कि स्वीकार करें। लाओत्से का जो कीमती से कीमती सूत्र है, वह है **स्वीकार**। लाओत्से कहता है, दुख को भी स्वीकार कर लो और तुम आनन्दित हो जाओगे। और सुख को भी स्वीकार मत करो तो तुम दुखी रह जाओगे। दुख को भी कोई स्वीकार कर ले तो आनंदित हो जाता है। **क्यों कि स्वीकार दुख जानता ही नहीं है। स्वीकार को दुख का कोई ही पता नहीं है।** इसलिए पुराने ऋषियो ने स्वीकृति को, संतोष को बहुत गहन प्रतिष्ठा दी थी।

क्योंकि स्वीकार और संतोष के साथ ही परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

हम भी कोशिश करते हैं, लेकिन हम परिणाम को पहले लाना चाहते हैं। जैसे मैं अगर आपको कहूं कि मुझे कबड्डी खेलने में, या ताश खेलने में बहुत आनन्द आता है, तो आप कहेंगे कि आनन्द तो मुझे भी चाहिए, तो मैं भी कबड्डी खेलने आता हूं। आपको आनन्द नहीं आएगा, क्योंकि आनन्द को आप बीज बना रहे हैं। और कबड्डी खेलते वक्त, पूरे वक्त आप तू-तू करते रहेंगे, लेकिन भीतर यही खयाल रहेगा कि अभी तक आनन्द नहीं आया, नाहक तू-तू कर रहे हैं, अभी तक कुछ आनन्द नही आया। वह आदमी झूठ कह रहा था कि आनन्द आता है। अभी तक तो नही आया। आप पूरे वक्त तू-तू करके घर लौट आएंगे; बिलकुल आनन्द नही आएगा। थक जाएंगे। फिर हुआ क्या?

कबड्डी में जो डूब जाता है और जिसे इतना भी खयाल नही रहता कि आनन्द आ रहा है कि नहीं आ रहा, जो इतना लीन हो जाता है खेलने में कि खेलनेवाला बचता ही नही, उसे आनन्द आ जाता है। वह परिणाम है। आप परिणाम को बीज की तरह पकडे हुए बैठे है कि अब आया आनन्द, अब आया आनन्द!

इसलिए दुनिया में आनन्द की जितनी विधियां बताई है, आप सबको असफल कर देते है। आपकी कुशलता अनन्त है। जितनी विधियां बताई है ऋषियो ने, सब को आप असफल कर देते हैं। अगर आप उसमें पूरी तरह डूब जाए तो आनन्द आता है। आनन्द लेने के लिए ही जो वहा जाता है, वह डूबता नही है; वह डूब सकता नही। वह पूरे वक्त सचेतन है कि आनन्द कहां है? वह सचेतना बाधा बन जाती है। आनन्द कही भी मिल सकता है, लेकिन आता है किसी के पीछे छाया की तरह। उसे कोई सीधा पकडता नही, जो पकडता है, वह, खो देता है।

एक ही क्रिया से विपरीत परिणाम आते हैं। अगर मुझे खेलने से आनन्द मिल रहा है तो जरूरी नही है कि आपको भी खेलने से आनन्द मिले। दुख भी मिल सकता है। क्रियाओ पर कुछ निर्भर नहीं है। क्रियाओं के पीछे करनेवाले पर सब कुछ निर्भर रहता है।

इसलिए अगर आप हनुमान से पूछे तो वह कहेगा कि बस काफी है राम-राम, राम-राम कर लिया, काफी है, और परम आनन्द आता है। वह हनुमान को आता है; आपको नही आयेगा। आप कितना ही राम-राम कहें, कुछ भी नही होता। थोडी देर बाद आप कहेंगे, छोड़ो भी, अखबार ही पढ़ो, उसमें ही आनन्द आता है। यह कहां हनुमान की बातों में पड़ गए और हनुमान कहा से मिल गए! छोड़ो, यह सब झंझट है। यह आदमी धोखे में मालूम पडता है, इसको भी आनन्द वगैरह कोई आया नही होगा। आखिर बंदर ही ठहरे, कुछ आनन्द इनको न होगा। हम क्यों इस नासमझी में पड़ें?

पर हनुमान को आया था।

अब कई स्त्रियां सीता बनने की कोशिश करते हैं। वे मुश्किल में पड़ेंगी। सीता को बहुत आनन्द आया, लेकिन सीता को आया। आपको आयेगा, यह मुश्किल है। क्योंकि सीता कोई बन नही सकती; या तो सीता होती है या नही होती।

सीता को जंगल में भी फेंक दिया राम ने तो भी वह आनन्दित है, अनुग्रहीत है। और सीता के हृदय को समझना मुश्किल है, उसके अनुग्रह को समझना मुश्किल है। और बहुत सी किताबें लिखी जाती हैं, जिनमें स्त्री-जाति के जो पक्षपाती हैं, जो सोचते हैं कि हम स्त्री-जाति के पक्षपाती हैं, वे लिखते हैं कि यह अन्याय हो गया। राम ने सीता को निकाल कर फेंक दिया घर के बाहर, यह अन्याय हो गया। लेकिन सीता गहन में यह जानती है, यद्यपि दूर जाने की पीड़ा है, अलग रहने का राम से दुख है, लेकिन गहन में सीता यह जानती है कि राम का भरोसा उस पर इतना है कि जरूरत पड़े तो जंगल में उसे फेंका जा सकता है—बिना पूछे। और यह भरोसा इतना गहरा है और यह प्रेम इतना गहरा है कि डरने का कोई कारण नही है कि सीता सोचेगी कि मुझे छोड़ दिया। इसमें कोई कारण नही है। इसलिए राम सरलता से सीता को भेज पाये। प्रेम में जरा भी कमी होती तो हजार बार सोचते कि सीता क्या सोचेगी।

इसलिए आप देखते हैं कि पत्नियां धीरे-धीरे समझ जाती हैं। जिस दिन पति घर कोई सामान लेकर आता है, घड़ी ले आता है, कुछ गहना ले आता है, स्त्री समझ जाती है कि कुछ प्रेम में गड़बड़ है। यह काहे के लिए ला रहे हैं? यह सब्स्टीट्यूट है। और पति भी लाता ही उस दिन है, जिस दिन कुछ डरा होता है, कुछ भयभीत होता है। जिस दिन पति भयभीत होता है, उस दिन आइसक्रीम लिये चला आ रहा है, कुछ लेकर चला आ रहा है।

राम सहजता से सीता को फेंक सके, क्योंकि इतना भारी भरोसा था। पर वह भरोसा सीता पर ही हो सकता था। फिर सीता बनने की बहुत सी स्त्रियां कोशिश कर रही हैं। कोई बन नहीं सकती वैसी।

बनना हो सकता है, पर वह बनने की प्रक्रिया से नहीं होगा। जो जैसा है, उसे वैसा पूरा स्वीकार कर ले, अस्वीकार को छोड ही दे, खयाल से ही उतार दे और जीवन जो लाये उसमे आल्हादित हो, दुख लाये तो, सुख लाये तो, यश तो, अपयश तो, जीवन जो भी दे जाए, उसमे प्रफुल्लित हो; तब कोई भी सीता हो सकती है।

क्योंकि कुछ चीजे आगे जाती है और कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं। एक ही क्रिया से विपरीत परिणाम आते हैं। जैसे चीजे फूंकने से गरम हो जाती हैं और फूंकने से ही ठंडी हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन के सम्बन्ध मे एक कथा है। वह गुरु की तलाश में था। और किसी ने उससे कहा कि फलां गाव में एक बडा फकीर है, उसके पास जाओ, शायद

उससे तुम्हे ज्ञान मिल जाए। मुल्ला गया। सुबह-सुबह पहुचा। जांच-पड़ताल करनी जरूरी थी। जिसके प्रति समर्पण करना हो, उसकी पूरी जांच होनी चाहिए। मकान के चारों तरफ उसने घूमघाम के देखा, फिर अन्दर गया। सर्द थी बहुत सुबह, और गुरु अपने कबल में दुबका हुआ हाथ रगड रहा था। मुल्ला ने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं ? उसने कहा कि हाथ ठंडे हैं, उन्हे गरम कर रहा हू। रगडता रहा और मुह से भी फूकने लगा तो मुल्ला ने पूछा कि अब यह क्या कर रहे हैं ? तो भी उसने कहा कि गरम ही कर रहा हूं। फूक रहा हूं सास कि हाथ गरम हो जाए। मुल्ला ने कहा, ठीक है।

थोडी देर बाद उसकी पत्नी चाय लेकर आई। गुरु चाय पीने लगा तो उसको भी फूकने लगा। मुल्ला ने कहा, अब आप यह क्या कर रहे हैं ? गुरु ने कहा कि चाय ठंडी कर रहा हू। मुल्ला ने कहा, नमस्कार, ऐसे असंगत आदमी के साथ मैं एक क्षण भी नही रुक सकता। अभी कहते थे, फूक के गरम कर रहे हैं हाथ और अब कहते हैं कि फूक के चाय ठंडी कर रहे हैं ! धोखे की भी कोई सीमा होती है ! और आदमी बदले तो भी वक्त लगना चाहिए। अभी मैं मौजूद हूं यहीं के यहीं; इतनी जल्दी और इतनी असगति !

लाओत्से कहता है, फूकने से चीजें गरम भी हो जाती हैं और ठडी भी। इसलिए फूंकने से क्या हो रहा है, यह जल्दी मत करना समझने की। विपरीत घटनाएं एक ही क्रिया से घट सकती हैं।

कोई बलवान है और कोई दुर्बल। और कोई टूट सकता है और कोई गिर सकता है। इसलिए सन्त अति से दूर रहता है, अपव्यय से बचता है और अहकार से भी।

कोई बलवान है और कोई दुर्बल ! लेकिन कोई अपनी दुर्बलता को स्वीकार नहीं करता। दुर्बल आदमी भी बलवान बनने की कोशिश में लगा है। वह और दुर्बल हो जाएगा। जो थोड़ी-बहुत ताकत थी, वह बलवान बनने में खत्म हो रही है। वह और दुर्बल हो जाएगा। और बलवान भी, आप यह मत सोचना कि आश्वस्त है। उससे भी बडे बलवान हैं, जिनसे वह दुर्बल है। और आज बलवान है और कल दुर्बल हो जाए, बुढापा आ जाए। शक्ति आज है, कल नही होगी। वह भी चिंतित और भयातुर है। दुर्बल भी डरे हुए है, बलवान भी डरे हुए है। और बलवान और बलवान बनना चाहता है, दुर्बल भी बलवान बनना चाहता है। लेकिन कोई अपने को स्वीकार नही करता है।

लाओत्से यह कहता है कि अगर तुम दुर्बल हो तो इस सत्य को पहचान लो, और दुर्बल रहो। रहने का मतलब सिर्फ इतना है कि अब इससे लड़ो मत। इसमें बड़ी हैरानी की बात है।

जिन लोगों ने पशुओं का अध्ययन किया है गहरा, जैसे कोन्ड्रेड लारेन्ज ने पशु-

ओं का बड़ा गहरा अध्ययन किया है, वे कहते हैं कि आदमी को छोड़कर कोई पशु, जब भी कोई पशु दुर्बलता को स्वीकार कर लेता है, तब उस पर हमला नहीं करता। एक कुत्ता दूसरे कुत्ते से लड रहा है। जैसा कुत्ता अपनी पूंछ नीची कर लेता है, दूसरा कुत्ता लड़ना फौरन बन्द कर देता है। बात खत्म हो गई। एक तथ्य की स्वीकृति हो गई। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरा कुत्ता खड़ा होकर अब उसपर हंसता है, या जाकर खबर करता है कि वह दुर्बल है। नहीं, बात ही खत्म हो गई। इससे कोई दूसरा, जो पूंछ नीचे झुका कर खड़ा हो गया, अपमानित नहीं होता है। और न ही जो जीत गया है, वह कोई सम्मानित होता है। सिर्फ एक तथ्य की स्वीकृति है कि एक सबल है, एक दुर्बल है। बात खत्म हो गई।

न तो सबल होना कोई गुण है और न निर्बल होना कोई दुर्गुण है। दुर्बल दुर्बल है, सबल सबल है। एक पत्थर छोटा है, एक पत्थर बड़ा है। इसमें बड़े पत्थर के लिए कोई सम्मान का कारण नही है। और एक झाड़ छोटा है और एक झाड़ बड़ा है। इसमें बडे झाड़ के लिए सम्मान का कोई कारण नही है। छोटे झाड के लिए भी अपमान का कोई कारण नहीं है।

पर आदमी के साथ बडी कठिनाई है। दुर्बल पहले तो स्वीकार नही करना चाहता है कि दुर्बल है। और अगर स्वीकार कर ले तो सबल उसको सताना शुरू करता है, अपमानित करता है, निन्दित करता है। पशुओं में कभी भी कलह के कारण हत्या नहीं होती है। हत्या के पहले ही बात रुक जाती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सिर्फ आदमी और चूहे, दो अपनी ही जाति में हत्या करते है। और कोई नहीं करता। सिर्फ आदमी और चूहे करते हैं। चूहे चूहे पर हमला करके मार डालते हैं। और आदमी भी। इन दो को छोडकर पूरी पृथ्वी पर अनत-अनन्त जीवन और प्राणी हैं, कोई किसी को मारता नही है। लड़ाई होती है उस सीमा तक, जब तक कि तथ्य स्वीकृत नही हो जाता कि कौन बलवान और कौन कमजोर है। स्वीकृत होते ही बात खत्म हो जाती है।

इसलिए चूहे और आदमी मे जरूर कोई गहरा आत्मिक सम्बन्ध है। जरूर कोई सम्बन्ध है। या तो आदमियो के साथ रह-रह कर चूहे बिगड गए हैं, या चूहों के साथ रह-रह कर आदमी बिगड गया है। क्योंकि एक और मजे की बात है, सिर्फ आदमी और चूहे ही ऐसे है जो कि दुनिया की हर तरह की आबहवा मे रहते हैं। और ऐसी कोई जगह नहीं है दुनिया में जहा आदमी हो और वहा चूहे न हों। है ही नही। आदमी और चूहे बड़े सगी-साथी हैं। कोई जानवर हिन्दुस्तान में होता है तो तिब्बत में नहीं होता है। लेकिन चूहे के मामले में यह बात नहीं है। जहां आदमी होता है, चूहा उसके साथ होता है। बहुत साथ है। शायद किसी ने एक दूसरे को सक्रामक बीमारी पकडा दी है।

लेकिन जानवर एक दूसरे की हत्या नहीं करते; अपनी ही जाति में कभी हत्या

नहीं करेगा। जैसे ही निर्बल को पता चलता है--- नापतौल हो जाती है, दोनो गुर्राएंगे, पास आयेंगे, रोष दिखाएंगे और दोनो एक दूसरे को माप लेंगे--- दुर्बल स्वीकार कर लेगा कि मै दुर्बल हूं, फिर सबल स्वीकृत हो गया कि सबल है। बात खत्म हो गई। इस बात को आगे नही बढ़ाया जाता है। क्यों ?

क्योंकि इसमें क्या गुण है कि आप सबल हैं ? इसमें क्या दुर्गुण है कि कोई निर्बल है ? उसका क्या कसूर है कि वह दुर्बल है ? एक आदमी कमजोर है और आपके पास मजबूत हड्डिया हैं, इसमें कौन सा गुण है और कौन सा दुर्गुण है ? माना कि आप उसे पटक सकते हैं, उसकी छाती पर बैठ सकते हैं, लेकिन इसमें क्या खूबी की बात है ? इसमें कोई खूबी की बात नही है। बात वैसी है, जैसे तराजू पर हम एक बडा पत्थर रखें और एक छोटा, तो बड़ा पत्थर नीचे पहुंच जाएगा, और छोटा ऊपर अटका रहेगा; लेकिन इसमें छोटा अपमानित कहां हो रहा है ?

लाओत्से कहता है, इस कारण कि दुर्बल सबल होना चाहता है, कमजोर ताकतवर होना चाहता है, कुरूप सुन्दर होना चाहता है, उपद्रव पैदा हो गया। लाओत्से कहता है कि तुम जो हो, उससे राजी होओ। तथ्य से बाहर जाने का कोई उपाय नही है। तथ्य ही सत्य है। उससे विपरीत जाने का कोई उपाय नहीं है। इसका क्या मतलब हुआ ?

इसमें बड़ी हैरानी लगेगी कि इसका तो मतलब यह हुआ कि फिर आदमी कोई उन्नति ही न करे। मेरे पास लोग आते हैं, और कहते हैं कि आप यह क्या कहते हैं ? इसका मतलब यह हुआ कि उन्नति मत करो। सफल कैसे होंगे ? फिर तो अगर ऐसा मानकर बैठ जाएंगे तो बस जड़ हो जाएंगे।

नही, कभी कोई जड नही हुआ है। ऐसा माननेवाला अपनी व्यर्थ ताकत नहीं खोता है। और वह जो व्यर्थ ताकत खोती है रोज, वही और कमजोर करती चली जाती है। ऐसा जान लेनेवाला कि मैं क्या हूं, अपनी सीमा, अपनी समझ, अपनी सामर्थ्य, अपनी शक्ति, जान लेनेवाला व्यक्ति अपनी मर्यादा के भीतर शक्ति को नही खोता है। शक्ति सग्रहीत होती है। और वही संग्रहीत शक्ति उसके जीवन में गति बन जाती है। लेकिन यह गति आती है भीतर से, बाहर की प्रतिस्पर्धा से नही।

अभी हम सब बाहर की प्रतिस्पर्धा में लगे रहते हैं। कोई आदमी बुद्धिमान है, आप भी कोशिश में लगे हैं बुद्धिमान होने की। कोई आदमी ताकतवर है, आप भी दंड-बैठक लगा रहे हैं। दूसरों को देख-देखकर प्रतिस्पर्धा में लगे हुए हैं। मुसीबत में पड़ जाएंगे। चारो तरफ हजार तरह के लोग हैं। सब में से कुछ न कुछ सीखना है, किसी में से बुद्धि लेनी है आपको, बुद्धिमान होना है आपको आइंस्टीन जैसा, और ताकतवर होना है गामा जैसा। अब पड़े मुश्किल में आप; आप मुसीबत में

पड़ जाएंगे। अब झंझट खड़ी होगी। आप अपने को इतना बांट देंगे इन आकांक्षाओं में कि टूट जाएंगे, और कुछ भी न हो पाएंगे। आप सिर्फ एक ही व्यक्ति हो सकते हैं दुनिया में, और वह व्यक्ति अभी तक पैदा नहीं हुआ जिसकी आप नकल करें। वह आप ही हैं। अद्वितीय है प्रत्येक व्यक्ति। वह दूसरे जैसा नहीं हो सकता, वह सिर्फ अपने ही जैसा हो सकता है। फिर वह जो है, उससे राजी होकर उसे वही होने की तथाता मे प्रवेश कर जाना चाहिए।

कोई टूट सकता है, कोई गिर सकता है। ध्यान रखें, कमजोर गिर जाता है, ताकतवर टूट जाता है। बडे वृक्ष जब तूफान आता है तो टूट जाते हैं। छोटे-छोटे पौधे गिर जाते हैं, तूफान चला जाता है तो फिर उठ जाते हैं। अगर तूफान से पूछें तो तूफान कहेगा कि छोटे मुझसे जीत गए और बडे मुझसे हार गए। ताकतवर टूटता है, कमजोर झुकता है।

लेकिन यह देखने पर निर्भर करता है। इस झुकने को हम ताकत भी कह सकते हैं, फ्लेक्जिबिलिटी भी कह सकते हैं। इस झुकने को हम ताकत भी कह सकते हैं। यह तो हमारे देखने पर निर्भर है कि हमारे क्या सोचने के मापदण्ड है। अगर दुनिया ज्यादा समझदार होगी तो इसमे क्या कठिनाई है? झुकना भी एक ताकत है। जो नही झुक सकता, वह टूट जाएगा।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने लडके को सिखा रहा था, दड-बैठक करवा रहा था। पडोस के किसी आदमी ने पूछा कि क्या कर रहे हो नसरुद्दीन दस साल के बच्चे के लिए? उसने कहा कि मै इसे ताकतवर बना रहा हू कि कोई लड़का इसको दबा न सके, कोई इसको परेशान न कर सके। तो इसको मैंने नौ तरकीबें सिखा दी है कि यह किसी को भी ठिकाने पर लगा दे। पर उस पडोसी ने कहा कि नसरुद्दीन, क्या तुम सोचते हो इससे ताकतवर लड़का नही है? नसरुद्दीन ने कहा कि वह होगा, उसके लिए मैंने इसे दसवी तरकीब भी सिखा दी है। वह क्या है? नसरुद्दीन ने कहा कि समय के पहले भाग खड़ा होना। वह दसवीं तरकीब है कि जैसे ही पता चले कि मामला गड़बड है, अपनी नौ तरकीबें काम नहीं आएगी, तो दसवी भी सिखा दी है। नौ को तभी तक उपयोग करना, जब तक देखना कि हा, अपने हाथ के भीतर बात है। और जब दिखाई पडे कि अपने हाथ से बाहर की बात है, तो दसवी काम मे लाना।

दो ही उपाय हैं संघर्ष मे, लडना या भाग जाना—फाइट ऑर फ्लाइट। आदमी सोचता है कि भाग जाना बुरी बात है। नही, कम से कम हम अपने मुल्क में नहीं सोचते हैं। हमने कृष्ण का एक नाम दिया रणछोडदास। जो युद्ध से भाग खडा हुए, रणछोड़दासजी, उनको भी हम जी कहते हैं। समझदार लोग थे, जिन्होने यह नाम दिया। नही तो रणछोड़दासजी कोई किसी को कहेगा नही। और किसी से कहिये तो झगड़ा हो जाएगा कि आप रणछोड़दासजी हैं, आप युद्ध का मैदान छोड़कर

भाग गये थे। लेकिन बुद्धिमान आदमी अति पर नही जाता; जो उचित हो, जो संतुलित हो, वही करता है। इसलिए कृष्ण भाग भी सके और हमने उनका अपमान भी नहीं किया। बड़ी हैरानी की बात है। कोई कारण भी नहीं है। क्योंकि कभी भागना सार्थक हो सकता है, और कभी लड़ना सार्थक हो सकता है।

कोई टूटता है, कोई गिर सकता है। संत अति से दूर रहता है। वह सिद्धान्त बनाकर नही जीता कि मैं ऐसा ही जीऊंगा। वह जीवन को बहने देता है और जीवन के साथ बहता है। कभी इस किनारे भी, कभी उस किनारे भी। कभी हार में भी, कभी जीत में भी। कभी गिरता भी है, कभी नही भी गिरता। कभी कमजोर भी होता है, कभी ताकतवर भी। किसी के सामने बुद्धिमान होता है, किसी के सामने बुद्धिहीन भी होता है। किसी के सामने सुन्दर और किसी के सामने कुरूप होता है। लेकिन लक्ष्य नहीं चुनता है। दोनो के बीच डोलता रहता है।

सन्त अति से दूर रहता है, और अपव्यय से बचता है। अपव्यय से बचता है। हम बहुत अपव्यय करते हैं। दूसरे की नकल अपव्यय है; वह आप कभी न हो सकेंगे। जो शक्ति खो गई, वह व्यर्थ खो जाएगी।

और अहकार से भी। क्योंकि अहकार के कारण ही हम दूसरे जैसा होना चाहते हैं। अगर हमको लगता है कि सम्मान है कृष्ण का तो हम कृष्ण जैसा होना चाहते हैं। और अगर हमें लगता है कि सम्मान है आइंस्टीन का तो हम आइस्टीन जैसा होना चाहते है। और हमें लगता है सम्मान है किसी अभिनेता का तो हम अभिनेता होना चाहते है। लेकिन कारण क्या है ? जिसका सम्मान है, वैसे हम हों, यह हमारे अहकार की माग हो जाती है।

लेकिन सत अहकार से बचता है। अपव्यय से और अति से भी। और जो इन तीन से बच जाता है—तीन क्या, एक अर्थ में एक ही बात है—जो इससे बच जाता है, वह परम शांति को, निसर्ग को, ताओ को, उपलब्ध हो जाता है। वह स्वभाव में गिर जाता है।

हस्तक्षेप से बचें, दूसरो के प्रति भी और स्वय के प्रति भी।

आज इतना ही। पाँच मिनट रुके और कीर्तन करें।

■■

खेदपूर्ण आवश्यकता से अधिक हिंसा का निषेध

इकसठवां प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २८ नवम्बर १९७२

अध्याय ३०

बल-प्रयोग से बचें !

जो ताओ के अनुसार राजा को मंत्रणा देता है,
वह शस्त्र-बल से विजय का विरोध करेगा।
क्योंकि ऐसी विजय विजयी के लिए भी बहुत दुष्परिणाम लाती है ।
जहां सेनाएं होती हैं, वहां कांटों की झाड़ियां लग जाती हैं ।
और जब सेनाएं खड़ी की जाती हैं,
उसके अगले वर्ष में ही अकाल की कालिमा छा जाती है ।
इसलिए एक अच्छा सेनापति अपना प्रयोजन पूरा कर रुक जाता है ।
वह शस्त्र-बल का भरोसा कदापि नहीं करता है ।
वह अपना कर्तव्य भर निभाता है,
पर, उस पर गर्व नहीं करता है ।
वह अपना कर्तव्य भर निभाता है,
  पर, शेखी नहीं बघारता ।
वह अपना कर्तव्य भर निभाता है,
  पर, उसके लिए घमण्ड नहीं करता है ।
वह एक खेदपूर्ण आवश्यकता के रूप में युद्ध करता है ।
वह युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता ।
क्योंकि, चीजें अपना शिखर छूकर फिर गिरावट को उपलब्ध हो जाती हैं।
हिंसा ताओ के विपरीत है ।
और जो ताओ के विपरीत है,
वह शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

Chapter 30

WARNING AGAINST THE USE OF FORCE

He who by Tao purposes to help the ruler of men
Will oppose all con,uest by force of arms.
For such things are wont to rebound.
Where armies are, thorns and brambles grow.
The raising of a great host
Is followed by a year of dearth.
Therefore a good general effects his purpose and stops.
  He dares not rely upon the strength of arms;
Effects his purpose and does not glory in it;
Effects his purpose and does not boast of it;
Effects his purpose and does not take pride in it;
  Effects his purpose as a regrettable necessity:
  Effects his purpose but does not love violence.
(For) things age after reaching their prime.
That (violence) would be against the Tao.
And he who is against the Tao perishes young.

लाओत्से समस्त बल-प्रयोग के विरोध में है। जो भी निसर्ग के पक्ष में होगा, वह बल का विरोधी ही होगा। जबरदस्ती किसी भी भांति की निसर्ग के विपरीत है। इस बात को ठीक से समझ लें तो फिर सूत्र को समझना आसान हो जाएगा।

निसर्ग को देखें, आदमी को छोड़कर। वृक्ष बड़े हो रहे हैं, नदियां बह रही हैं, चांद-तारे घूम रहे हैं, इतना विराट आयोजन चल रहा है। पर कहीं भी कोई जबरदस्ती नही मालूम पडती, जैसे सब सहज हो रहा है, जैसे इस सब होने में कोई बल का प्रयोग नही है, कोई धक्का नही दे रहा है। नदी अपने से ही बही जा रही है, वृक्ष अपने से बड़े हो रहे हैं, तारे अपने से घूम रहे हैं।

आदमी न हो तो जगत बहुत मौन है। आदमी न हो तो जगत में कोई द्वन्द्व नही है, कोई संघर्ष नहीं है। सर्वत्र एक सहजता, एक स्पॉनटैनिटी है।

लाओत्से मानता है, जब तक आदमी भी अपने भीतर और बाहर इतना ही सहज न हो जाये, तब तक धर्म को उपलब्ध नही हो सकता। **क्योंकि धर्म का एक ही अर्थ हो सकता है : सहजता।** और जब कोई सहज होगा, तभी आनन्द को भी उपलब्ध होगा। जहा संघर्ष है, जहा द्वन्द्व है। जहा जबरदस्ती है, जोर है, बल है, वहाँ दुख होगा। इसके कई आयाम हैं।

पहला। जैसे ही हम जबरदस्ती शुरू करते हैं, वैसे ही हमने अपनी मान्यता को जगत पर आरोपित करना शुरू कर दिया। जैसे ही मैं जबरदस्ती करना शुरू करता हू, वैसे ही मैंने यह कहना शुरू कर दिया कि इस जगत के विपरीत हू मैं। और जिस पर मैं जबरदस्ती करता हूं, मैंने उसकी आत्मा की हत्या भी शुरू कर दी। मै उसकी स्वतन्त्रता छीन रहा हूं, मैं उसका निसर्ग छीन रहा हूं। उसे मैं अपने अनुसार नही चलने दे रहा, मेरे अनुसार [illegible] कोशिश कर रहा हूं। चाहे फिर वह मा हो, पिता हो, चाहे गुरु, चाहे [illegible] कोई भी हो, जो किसी दूसरे को अपनी मर्जी के अनुसार चलाने के लिए बल का प्रयोग कर रहा है, वह हिंसा कर रहा है।

क्योंकि हिंसा का एक ही अर्थ होगा कि हम किसी मनुष्य का साधन की तरह उपयोग कर रहे है, साध्य की तरह नहीं। जर्मन चिन्तक इमैन्यूअल कांट ने नीति की परिभाषा में इस सूत्र को जोड़ा है। काट ने कहा है कि एक ही नीति मैं जानता हू कि किसी मनुष्य के साथ उसे साधन मान कर व्यवहार मत करना। **प्रत्येक मनुष्य साध्य है।** कोई मनुष्य किसी का साधन नहीं है।

क्योंकि जब हम किसी मनुष्य का साधन की तरह उपयोग करते हैं, तभी हमने उस मनुष्य को वस्तु बना दिया। वह मनुष्य नहीं रहा। हमने उसकी आत्मा को इनकार कर दिया। पुरुष न मालूम कितनी सदियों से स्त्री को अपनी सम्पत्ति मानते रहे हैं। **वह अनीति है।** क्योंकि कोई आत्मा किसी की सम्पत्ति नहीं हो सकती है। पर सम्पत्ति मानते रहे हैं, इसीलिए युधिष्ठिर द्रौपदी को दाव पर लगा सके। सम्पत्ति ही दाव पर लगाई जा सकती है, कोई मनुष्य दाव पर नहीं लगाया जा सकता। **किसी मनुष्य को वस्तु मानना ही पाप है।**

और जब हम जबरदस्ती करते हैं, तब हमने वस्तु मानना शुरू कर दिया।

दूसरी बात। जैसे ही मैं जबरदस्ती करता हूं, बल का प्रयोग करता हूं, वैसे ही मैं अपनी शक्ति खो रहा हू, मैं दीन हो रहा हूं, मैं कमजोर हो रहा हूं। और मेरी दीनता के कारण कोई दूसरा समृद्ध नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरी जबरदस्ती दूसरे को भी पीड़ा में डालती है, उसे भी जबरदस्ती करने को मजबूर करती है। तब वह भी अपनी शक्ति को व्यर्थ व्यय करेगा।

जितनी ज्यादा हिंसा होगी, उतना जीवन का अवसर खोता है व्यर्थ। जितनी कम हिंसा होगी, उतनी जीवन की शक्ति बचती है। **और बची हुई शक्ति ही अन्तर्यात्रा के काम आ सकती है।**

ध्यान रहे, हिंसक व्यक्ति सदा बाहर की तरफ यात्रा करता है। क्योंकि हिंसक को तो सदा दूसरे का ही ध्यान रखना पड़ता है। और जो हिंसा करता है, वह हिंसा मे भयभीत भी होगा। और जो हिंसा करने को तत्पर है, वह दूसरे की हिंसा से डरेगा भी। वह सदा ही दूसरे में उलझा रहेगा। वह हारे या जीते, लेकिन नजर उसकी दूसरे पर रहेगी। और जिन सीढ़ियो से हम यात्रा करते हैं, उन्ही सीढ़ियो से दूसरे भी यात्रा कर सकते है। और जब मैं हिंसा करके किसी की छाती पर बैठ जाता हूं, तब फिर मुझे भयभीत रहना पड़ेगा।

यह तो हो भी सकता है कि जिसकी छाती पर मैं बैठा हूं, वह विश्राम को उपलब्ध हो जाए; लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं विश्राम को उपलब्ध हो जाऊँ। मुझे तो भयभीत रहना ही पड़ेगा। जिन उपायों से मैंने उसे नीचे दबा रखा है, वे ही उपाय किसी भी क्षण मेरे खिलाफ काम लाये जा सकते हैं। और शिथिलता का कोई भी क्षण, और मैं नीचे हो सकता हू और दुश्मन ऊपर हो सकता है। जो हिंसक है, दूसरे पर ही उसका ध्यान अटका रहता है। और जो हिंसक है, वह कभी अभय को उपलब्ध नहीं हो सकता। भीतर की कोई यात्रा सम्भव नहीं है उसके लिए, जिसका मन दूसरे में उलझा हो। शक्ति का अपव्यय है दूसरे में यह उलझाव। अपने जीवन के अवसर का अपव्यय है। व्यर्थ ही है, उससे कुछ सृजन नहीं होगा। सिर्फ मैं खोऊँगा, रिक्त और समाप्त हो जाऊँगा। जो दूसरे को समाप्त करने की कोशिश करता है, वह स्वयं भी समाप्त हो रहा है

उस कोशिश में। दूसरा समाप्त हो पाएगा या नहीं, नहीं कहा जा सकता। लेकिन दूसरे को समाप्त करने में मैं समाप्त हो रहा हूं, यह सुनिश्चित है।

तीसरी बात और खयाल में ले लें कि हिंसक दृष्टि विध्वंस की होती है, मिटाने की होती है। हिंसा का मतलब ही है मिटाने की आतुरता। और जो मिटाने में बहुत उत्सुक हो जाता है, वह बनाने की कला भूल जाता है। उसका सृजनात्मक व्यक्तित्व पंगु हो जाता है। उसका विध्वंसात्मक व्यक्तित्व ही रह जाता है।

यह बडी हैरानी की बात है कि इस दुनिया में जो लोग बहुत हिंसात्मक हैं, वे क्योंकि बहुत सृजनात्मक हो सकते थे, इसीलिए हिंसात्मक हैं। इस दुनिया में जो बहुत बड़े अहिंसक लोग पैदा हुए हैं, वे भी क्योंकि बहुत बड़े हिंसक हो सकते थे, इसीलिए अहिंसक हुए।

मनसविदों ने भीतर के जीवन का गहन अध्ययन किया है। जरूरी भी है अध्ययन; क्योंकि हिटलर जैसे लोग जमीन पर होते रहे तो आदमी का होना ज्यादा देर तक सम्भव नहीं रहेगा। हिटलर एक चित्रकार बनना चाहता था; नहीं बन पाया। मूर्तियां गढ़ना चाहता था, सुन्दर चित्र बनाना चाहता था; नहीं बना पाया। और मनसविद कहते हैं कि उसको यह सृजन को आकांक्षा विध्वस बन गई। फिर आदमी को तोड़ने, मिटाने और नष्ट करने में उनकी सारी शक्ति लग गई।

शक्ति एक ही है, चाहे उससे मिटाए, चाहे उससे बनाये। जो नहीं बना पाएगा, वह मिटाने में लग जाएगा। और जो मिटाने में लग जाएगा, उसे बनाने का खयाल ही न आएगा। साथ ही यह भी खयाल रखें कि जब कोई दूसरे को मिटाने में लगता है, तब वह अपने को भी मिटा रहा है। समय खो रहा है, शक्ति खो रही है, जीवन चुक रहा है। और जो दूसरे को मिटाने में संलग्न है, वह मिटाना ही सीख जाता है। फिर वह अपने लिए भी आत्मघाती हो जाता है।

हिटलर ने इतने लोगों की हत्या की और अन्त में अपनी आत्महत्या की। वह बिलकुल तार्किक है घटना; ठीक यही अन्त होगा। क्योंकि मिटाने वाले को एक ही तर्क आता है, मिटाने का तर्क। जब तक दूसरे के खिलाफ है, वह दूसरे को मिटा रहा है। जिस दिन वह पाएगा कि दूसरा मिटाने को नहीं बचा -- वह एक ही बात जानता है मिटाना -- वह अपने को मिटाएगा। **इसलिए हिंसक अन्ततः आत्मघाती हो जाता है।**

सृजन दूसरी ही यात्रा है।

लाओत्से परम अहिंसा में भरोसा करता है। लेकिन उसकी अहिंसा के कारण बड़े अलग हैं। वह यह नहीं कहता कि दूसरे को मत सताओ, क्योंकि दूसरे को दुख होगा। वह यह नहीं कहता है। वह कहता है कि दूसरे को मिटाने में तुम मिट रहे हो और दूसरे को समाप्त करने में तुम समाप्त हो रहे हो। और जिस जीवन में फूल खिल सकते हैं आनन्द के, वह तुम्हारा जीवन सिर्फ कांटों से भरा

रह जाएगा। इसमें थोड़ा सा विचारणीय है एक बात।

आमतौर से अहिंसावादी यही कहते हैं कि दूसरे को दुख मत दो, क्योंकि दूसरे को दुख देना बुरा है। लाओत्से यह नहीं कहता है। लाओत्से कहता है कि दूसरे को दुख मत दो, क्योंकि इस तरह तुम अपने सुख का, अपने आनन्द का अवसर खो रहे हो। लाओत्से बिलकुल स्वार्थी मालूम पड़ेगा।

लेकिन ध्यान रहे, लाओत्से कहता है कि अगर कोई व्यक्ति ठीक-ठीक स्वार्थी हो जाए तो उससे कोई बुरा काम हो ही नहीं सकता। यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ेगी। हम तो सिखाते हैं लोगों को परार्थी होने के लिए, परोपकार के लिए . छोड़ो स्वार्थ को और परार्थ को पकड़ो। लेकिन लाओत्से कहता है, जिसे स्वार्थ का ही पता नही, उसे परार्थ का तो कोई पता नही होगा। और जो अभी अपने स्वय का हित भी साधने में समर्थ नहीं हैं, वह दूसरे का हित साध सकेगा, इस पागलपन में मत पड़ना।

सच तो यह है कि जो अपना हित साध लेता है, उस साधने मे ही वह दूसरे का हित भी साध जाता है। क्योकि जो अपने आनन्द को पकड़ लेता है, वह किसी को दुख देने मे इसलिए असमर्थ हो जाता है कि उससे स्वय का आनन्द नष्ट होता है। धर्म परम स्वार्थ है; लेकिन उससे परम परार्थ घटित होता है। नीति परार्थ की बाते करती है, लेकिन कुछ घटित नही होता है। न परार्थ घटित होता है, न स्वार्थ घटित होता है।

लाओत्से कहता है कि अगर व्यक्ति अपने निज का पूरा खयाल रख ले तो उससे इस जगत मे बुरा होगा ही नहीं कुछ। उस खयाल में ही जीवन के प्रति उसका सद्भाव और उसकी करुणा गहन हो जायेगी। असल में दूसरे पर दया वही करता है, जिसे अपने पर दया करना आ गया है। और दूसरे पर दया करना जो नही जानता है, उसका मतलब यह है कि उसे अभी अपने पर दया करने का कोई भी पता नही है।

बुद्ध को किसी ने पत्थर फेंक कर मार दिया है। आनन्द, उनका शिष्य, क्रोधित हो गया है। और उसने कहा कि अगर आप आज्ञा दें तो मैं इस आदमी को रास्ते पर लगाऊ। बुद्ध ने कहा, भूल उसने की है, सजा तू अपने को दे रहा है? आनन्द से बुद्ध ने कहा, बहुत समय पहले यह सूत्र मेरी समझ मे आ गया कि हम दूसरे की नासमझियों के लिए अपने को दण्ड देते हैं। यह पत्थर उसने फेंका है, यह उसका काम हुआ। अगर इस पत्थर के सिलसिले में हम भी कुछ करने जाते हैं तो वह आदमी जीत गया, और उसने हमें एक वर्तुल में फसा लिया। वह हमारा मालिक हो गया। उसने पत्थर मारा और हमारे भीतर उसने क्रिया को जन्म दे दिया; वह हमारा मालिक हो गया। वह जीत गया और हम हार गए। और अब अगर मैं क्रोधित होता हूँ तो उसका पत्थर मारना सफल हो गया।

नहीं, बुद्ध ने कहा, मै परम स्वार्थी हूं, मैं अपने सुख को बचाता हू । वह पत्थर मारे तो भी मै अपने सुख को नही टूटने देता; मै अपने आनन्द को बचाता हूँ। और एक बार कोई आदमी अपने आनन्द को बचाना सीख जाए तो इस दुनिया में उस आदमी से कुछ भी बुरा दूसरे के लिए नही हो सकेगा। **क्योंकि दूसरे के लिए बुरा करना गहरे में अपने लिए ही गड्ढा खोदना सिद्ध होता है।** किसी नीति-शास्त्र के बचन के अनुसार नहीं, बल्कि निरन्तर मनुष्य के अपने अनुभव के अनुसार व्यक्ति के लिए भी और समाज के लिए भी लाओत्से की यही दृष्टि है।

यह सूत्र समाज की तरफ इशारा है।

लाओत्से कहता है, जो ताओ के अनुसार राजा को मंत्रणा देता है, वह शस्त्र-बल से विजय का विरोध करेगा। ताओ के अनुसार जो राजा को मत्रणा देता है, वह शस्त्र-बल का विरोध करेगा। वस्तुत. वह बल का ही विरोध करेगा। वह चाहेगा कि काम बिना बल के हो जाए। और जितना कुशल होगा व्यक्ति, उतने बिना बल के काम करा लेना है। **अकुशल अपनी अकुशलता की पूर्ति बल से करता है।**

कभी आप किसी कुशल व्यक्ति को देखें किसी भी काम मे, आप पाएगे कि वह बल प्रयोग न के बराबर कर रहा है। एक कुशल व्यक्ति को कार चलाते देखें, आप पाएगे कि वह बल का बिलकुल प्रयोग नही कर रहा है, ताकत लगा ही नही रहा है। दूसरी तरफ एक सिक्खड को कार चलाते देखें; उसकी सारी शक्ति व्यय हुई जा रही है, वह पसीना-पसीना हुआ जा रहा है। क्या फर्क है दोनो में ? कार कोई बल से नही चलती, कुशलता से चलती है। लेकिन कुशलता की कमी हो तो आदमी बल से उसे पूरा करना चाहता है। बल हम लगाते ही है वहा, जहाँ हमारी कुशलता क्षीण पडती है, कम पडती है।

आप खयाल करना, इसलिए नया काम करने में आप थक जाते है और पुराना काम करने मे आप नही थकते। पुराना काम कुशल हो गया है। नया काम है तो आप ताकत लगाते है। छोटे बच्चे को लिखते देखे, उनका पूरा शरीर अकडा हुआ है कलम पकडने में। अभी वे कुशल नही हैं, अभी वे सारी ताकत लगा कर कुशलता पूरी कर रहे हैं। बच्चे कागज को फाड देते है, इतनी ताकत लगा कर लिखते है। ताकत लगाने की कोई जरूरत नही है। कई तो बूढे भी ऐसे लिखते हैं, पूरी ताकत लगा देते है। ताकत का लिखने से कुछ लेना-देना नही है। लेकिन भीतर कुशलता की कमी है।

एक झेन फकीर हुआ लिचो। वह अपने शिष्यो को चित्रकला सिखाता था। वह कहता था कि अगर तुम्हे जरा भी श्रम मालूम पडे तो समझना कि अभी तुम कलाकार नही हुए हो। अगर तुम्हे जरा भी श्रम मालूम पड़े कुछ बनाते वक्त तो समझना कि अभी कमी है। और जब श्रम बिलकुल ही न पडे, जब तुम्हें लगे ही

नहीं कि तुमने कुछ भी किया है, ऐसे ही तुमने केनवेस पर पेंटिंग बना दी, तो ही जानना कि तुम कुशल हुए हो।

कुशलता बल नहीं माँगती, चाहे जीवन का कोई आयाम हो। अकुशलता बल माँगती है।

ताओ के अनुसार सलाह देनेवाला शस्त्र-बल का विरोध करेगा। क्योंकि वह बताता है कि कुशलता की कमी थी। क्योंकि ऐसी विजय विजयी के लिए भी दुष्परिणाम लाती है। और फिर जो विजय हारता है, उसके लिए तो दुष्परिणाम लाती ही है; जो जीतता है, उसके लिए भी दुष्परिणाम लाती है। नेपोलियन ने अनेक युद्धो के अनुभव के बाद एक पत्र में लिखा कि जो हारता है, वह तो रोता ही है, लेकिन जो जीतता है, वह भी रोता है। क्योंकि चारो तरफ विध्वंस फैल जाता है और हाथ कुछ भी नहीं लगता। सब टूट जाता है, विकृत हो जाता है, और हाथ कुछ भी नहीं लगता।

और जिसे हरा कर हम जीत जाते हैं, वह क्या कला है? ध्यान रहे, जिन्दगी बडी जटिलता है। आपने जब तक उसे हराया नहीं था, तब तक आप का दुश्मन भी आपको बल देता था। यह थोड़ा कठिन है, लेकिन समझने की कोशिश करें। जिस दिन आप दुश्मन को हरा देते हैं, उस दिन दुश्मन भी आपको बल नहीं देता है, आप भी टूट गये होते हैं।

खयाल करें, आपका एक दुश्मन आज मर जाये तो आपकी जिन्दगी में उतनी ही कमी हो जाएगी, जितनी किसी मित्र के मरने से होती है। इसलिए समझदारो ने तो कहा है कि अच्छा दुश्मन चुन लेना, अच्छा दुश्मन पा जाना बड़ा सौभाग्य है। क्योंकि अच्छे दुश्मन से आपका तनाव बना रहता है, सेतु बना रहता है। तनाव बना रहता है। वह सृजनात्मक हो सकता है।

इस तरह समझें कि आज अमरीका हार जाये तो आप क्या सोचते हैं, रूस की गति का क्या होगा? रूस के विकास का क्या होगा? सब छिन्न हो जाएगा। या आज रूस हार जाए तो अमरिका के सारे विकास का क्या होगा? शून्य हो जाएगा। वह सारा विकास एक सतत् द्वन्द्व के बीच तनाव में है। और आज भी मैं समझता हू कि रूस और अमरीका इस बात को भलीभाँति समझते हैं कि लड़ना उनके हित में नहीं हैं, लेकिन लड़ने का पोज बनाए रखना उनके हित में है। लडना जरा भी हित में नही है, लेकिन लड़ने की एक मुद्रा बनाए रखना हित में है। उनकी शिथिलता खतरनाक हो सकती है। दुश्मन को मिटा कर आप भी मिट जाते है; क्योकि उस दुश्मन के साथ स्पर्धा में जो भी निर्मित हुआ था, वह गिर जाता है और क्षीण हो जाता है।

हारा हुआ तो हारता है, दुख पाता है; जीते हुए को भी दुष्परिणाम हाथ लगते हैं।

जहां सेनाएं होती हैं, वहां कांटों की झाड़ियां उग जाती हैं। और जब सेनाएं खड़ी की जाती हैं, उससे अगले वर्ष ही अकाल की कालिमा छा जाती है। इसलिए एक अच्छा सेनापति अपना प्रयोजन पूरा कर रुक जाता है।

लाओत्से यह कह रहा है कि मजबूरी हो सकती है कभी राज्य के लिए, समाज के लिए, लेकिन व्यक्ति के लिए कभी भी नहीं। इसे भी थोड़ा खयाल में ले लें। व्यक्ति के लिए कभी भी मजबूरी नहीं है; लेकिन समाज और राष्ट्र के लिए मजबूरी हो सकती है। क्योंकि वहां एक व्यक्ति का सवाल नहीं है, करोड़ों लोगों का सवाल है। राष्ट्र को कभी लड़ने पर भी उतरना पड़ सकता है।

तो पहले तो ताओ को माननेवाला युद्ध की सलाह नहीं देगा, सैन्य-शक्ति की सलाह नहीं देगा। और अगर मजबूरी ही हो तो भी सेनापति अगर होशियार हो तो भ्रम को देकर रुक जाएगा। युद्ध में उतर जाना नासमझ सेनापतियों का काम है। समझदार उस सीमा पर रुक जाएगा, जहां सिर्फ बल का दिखावा होता है, लेकिन बल का संघर्ष नहीं होता। कल मैं आपसे कह रहा था कि पशुओं में सिर्फ बल का दिखावा होता है, संघर्ष नहीं होता। वे ज्यादा होशियार मालूम पड़ते हैं। निसर्ग शायद उन्हें ज्यादा अन्तर्दृष्टि दिए हुए है। बल का प्रयोग काफी होता है दिखावे के लिए, लेकिन कभी उसका प्रयोग ठीक से नहीं होता। इसके पहले कि खतरा हो, पशु रुक जाता है। जैसे साफ हो गई बात कि कौन कमजोर है और कौन ताकतवर है, रुकावट आ जाती है।

सेनापति अपना प्रयोजन पूरा कर रुक जाता है, वह शस्त्रबल का भरोसा कदापि नहीं करता। आमतौर से हम सोचते हैं कि सेनापति शस्त्रबल का ही भरोसा करता है, राज्य तो शस्त्रबल के भरोसे पर ही निर्भर होता है। लेकिन लाओत्से की सलाह, ताओ के अनुसार अगर कभी कोई समाज चलता हो तो, उसके लिए यह है कि भरोसा शस्त्रबल पर नहीं होना चाहिए। वह अन्तिम मजबूरी है, एक आवश्यक बुराई। न टाली जा सके, ऐसी बीमारी हो सकती है, लेकिन उसका भरोसा नहीं होना चाहिए। जिसको उसका भरोसा है, वह पहले ही मौके पर उसका उपयोग कर लेगा। और जो समझदार नहीं है, वह जब जरूरत भी पूरी हो जाएगी तब भी नहीं रुकेगा।

पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ। जापान पर एटमबम गिराने की कोई भी जरूरत नहीं थी। जर्मनी घुटने टेक रहा था, जापान के पैर टूटे जा रहे थे, दो-चार दिन, सात दिन ज्यादा, और जापान विलीन हो जाता। लेकिन अमरीका को शस्त्रबल का भरोसा था। एटमबम हाथ में आ गया था पहली दफा आदमी के, वह उसका उपयोग करना चाहता था। जरूरत बिलकुल भी नहीं थी। हिरोशिमा और नागाशाकी में कोई एक एक लाख लोगों के मारे जाने की जरा भी जरूरत न थी। लेकिन हाथ में अगर ताकत हो तो नासमझ उसका उपयोग करना चाहेगा। इसलिए

अमरीका का अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता।

युद्ध की कोई जरूरत न रह गई थी। जापान हार ही रहा था। और हारते हुए के ऊपर एटम का फेंकना मजबूरी नहीं, विलास था। अनावश्यक था। अमरीका के सेनापति भी कहते हैं कि सात दिन से आगे युद्ध जा नहीं सकता था; बात खतम हो गई थी। हाँ, इससे उलटी हालत हो सकती थी कि जापान जीत रहा होता और न्यूयॉर्क में अमरीकी फौजें घुटने टेक रही होती और उन्हें एटमबम फेंकना पड़ता। वह मजबूरी होती, शस्त्र का भरोसा न होता। लेकिन अमरीका जरा भी खतरे में न था। अमरीकी फौजें जापान की छाती में प्रवेश कर गई थीं। जापान टूट चुका था, उखड़ चुका था। लेकिन इतनी बड़ी ताकत उखड़ने में भी एक सप्ताह का वक्त लेती है। इतनी जल्दी की कोई भी आवश्यकता नही थी। एटम बिलकुल अनावश्यक था।

और इसीलिए जो बुद्धिमान आदमी हैं, वे इस पाप को गहन पाप मानते हैं। क्योंकि यह उस शत्रु की छाती में छुरा भोंकने जैसा था, जो जमीन पर गिर चुका था और जो हाथ जोड़े पड़ा था और माफी माँग रहा था। यह उसकी छाती में छुरा भोकने जैसा था। वह क्षम्य नहीं है। लेकिन यह हुआ क्यो ?

यह हो जाने का कारण है। कारण है कि अमरीका की सभ्यता, संस्कृति पुरानी नही है। केवल तीन सौ वर्षों का नये से नया समाज है वह। कोई समाज अगर बचकाना हो सकता है, तो वह अमरीका है। तीन सौ वर्ष कोई उम्र होती है जातियो के लिए? जिनका इतिहास तीन सौ वर्ष का हो, उनकी समझ बहुत गहरी नहीं हो सकती। जानकारी बहुत हो सकती है, समझ बहुत नही हो सकती। विजडम की कमी होगी। तो आज अमरीका के पास जानकारी तो बहुत है। इसलिए तो एटम भी बन सका। लेकिन समझ नही है। और समझ न होने के कारण ही उसका उपयोग हो गया।

लाओत्से कहता है, सेनापति, जो ताओ का भरोसा करता है, जो धार्मिक है, और या जो राज्य धार्मिक है, वह शस्त्रबल का भरोसा कदापि नही करता। वह अपना कर्तव्य भर निभाता है, उस पर गर्व नही करता। अपना कर्तव्य भर निभाता है, उसकी शेखी नही बघारता। अपना कर्तव्य भर निभाता है, उसके लिए घमण्ड नही करता। वह एक खेदपूर्ण आवश्यकता के रूप मे युद्ध करता है। इफेक्ट्स हिज परपस एज ए रिग्रेटेबल नेसेसिटी। एक खेदपूर्ण आवश्यकता की भाँति वह युद्ध है — एक मजबूरी, एक बुराई, जो करनी पडेगी, जिससे बचना मुश्किल है। लेकिन हिंसा से वह प्रेम नही करता है।

चीजें अपना शिखर छूकर सिर्फ गिरावट को उपलब्ध हो जाती हैं। हिंसा से प्रेम एक बात है, और हिंसा मजबूरी मे हो, वह बिलकुल दूसरी बात है। और इस भेद को जो नहीं जानते, वे बड़ी मुश्किलो में समाजों को उलझा देते हैं। इस पर हम थोड़ा ध्यान दे दें।

एक तरफ वे लोग हैं, जो हिंसा के लिए दीवाने हैं, मौके की तलाश में हैं। मौका मिल जाए, वे हिंसा करेंगे। फिर वे यह न देखेंगे कि कहां तक जाना जरूरी है। फिर वे वहां तक जाएंगे, जहां तक जा सकते थे। जरूरत का कोई सवाल नहीं है। हिंसा उन्हें खेल हो जाएगी. हिंसा उनके लिए शिकार हो जाएगी। दूसरे वे लोग हैं, जो दूसरी अति पर चले जाएंगे, जो अहिंसा के लिए पागल हो जाएंगे और जो हिंसा खेदपूर्ण आवश्यकता है, उसको भी करने में शिथिल हो जाएंगे।

ऐसा हमने इस मुल्क में किया। हमने दूसरी अति छुई। हमने कहा कि जो खेदपूर्ण हिंसा है, उसको भी हम नहीं करेंगे। ऐसे हम दूसरी अति पर चले गये। लेकिन जब आप खेदपूर्ण हिंसा नही करेंगे, तब दूसरा भी नही करेगा, इसको मानने का कोई भी कारण नही है। सच तो यह है कि आपका न करना दूसरे के लिए निमन्त्रण बन जाएगा करने का।

इसलिए जैनो और बौद्धो के प्रभाव के बाद भारत का पतन शुरू हो गया। क्योंकि अहिंसा की अति थी कि किसी भी स्थिति में हिंसा नही करेंगे। स्वभावतः हमारी यह अति चारो तरफ से निमन्त्रण बन गई हमलावरों के लिए। जो लोग भी हमला करना चाहते थे, उनके लिए भारत से ज्यादा सुविधापूर्ण कोई जगह न रही। इसलिए बहुत क्षुद्र शक्तियों ने भारत को पराजित किया।

भारत की कहानी बड़ी अनूठी है। असल में, अध्यात्म के अतिशयपूर्ण प्रयोग की वह कहानी है। भारत की कहानी अनूठी है। और अनूठी कई लिहाज से है।

पहला तो यह कि इतना बडा देश था —— पूर्ण गौरव-सभ्यता के शिखर पर पहुँचा हुआ। विज्ञान के सम्बन्ध मे उस समय पृथ्वी पर कोई भी इतना विकसित नही था, जितना भारत था। आज जो विज्ञान के सम्बन्ध मे बहुत विकसित हैं, वे उस समय बिलकुल जंगली थे, जिनके पास कुछ समझ नहीं थी। भारत ने गणित की, ज्योतिष की, धर्म की ऊचाइया स्पर्श की थी। सगीत की, साहित्य की, कला की, एक शिखर स्वर्ण का था और अचानक वह भूमिसात हो गया। और जिन्होंने हराया, वे बहुत क्षुद्र थे। उनका कोई नाम जाननेवाला भी न था। भारत को यदि नही जीता होता उन्होने तो इतिहास में उनका कभी कोई उल्लेख नही होता। क्या हुआ?

अतिशय से कभी-कभी बडे खतरे हो जाते हैं। भारत एकदम दूसरी अति पर उतर गया था।

एक अति है, जहा जरूरी न हो वहा हिंसा करना, हिंसा को खेल समझ लेना, रक्तपात को रस बना लेना। एक दूसरी अति है, इतने भयभीत हो जाना, इतने डर जाना कि जहा जरूरी हो जाए, वहा से भी हट जाना।

ध्यान रहे, भारत ने सर्जरी की सबसे पहले खोज की। सुश्रुत ने, जो आज की नवीनतम् सर्जरी है, उसके सूत्र स्पष्ट लिखे हैं। प्लास्टिक सर्जरी की बाबत भी

लिखे हैं। लेकिन फिर क्या हुआ ? बौद्धों और जैनों के प्रभाव में सर्जरी भी हिंसा मालूम पड़ी। वह भी नहीं करना चाहिए। किसी की हड्डी काटना, हाथ काटना, पेट काटना, यह नहीं किया जा सकता। और फिर आदमी को काटना हो तो उसकी शरीर की रचना, उसका अस्थिपंजर, वह सब जानना होगा। तो मुर्दे भी काटना पड़ेंगे। तो फिर कुछ पशुओं को काट कर भी जानकारी लेनी पड़ेगी। वह सब नही हो सकता। तो बीमारियाँ सही जा सकती हैं, भयंकर बीमारियाँ सही जा सकती हैं, लेकिन सर्जरी नही की जा सकती।

सुश्रुत ने जो खोजा था, अगर सुश्रुत के बाद तीन हजार साल हम उस सूत्र पर चलते, तो पश्चिम की सर्जरी आज बचकानी मालूम होती। लेकिन चलने का कोई उपाय न रहा; क्योंकि सर्जरी में, शल्यक्रिया में, हिंसा मालूम पड़ने लगी। वह नहीं किया जा सकता।

जैनों ने तो अति कर दी, उन्होने तो खेतीबारी भी बन्द कर दी। क्योंकि उसमें हिंसा है, इसलिए कोई जैन खेतीबारी नही करता है। क्योकि वृक्ष उखाड़ने पड़ेंगे, पौधे उखाडने पड़ेंगे, काटने पड़ेंगे। और पौधे में प्राण हैं। इसे थोड़ा समझ लें।

पौधे को काटना खेदपूर्ण हिंसा है। कोई चाहता नही, अगर हम जी सकें बिना पौधे को काटे, तो काटने की कोई जरूरत नही है। और फिर अगर मैं न भी काटूं, तो कोई दूसरा मेरे लिए काटेगा। फर्क कहा पड़ता है ? जैन भी तो खायेंगे ही। पर कोई और लगाएगा, कोई और काटेगा। तो इतना ही हुआ कि हिंसा हम दूसरे से करवा रहे है, अपने दलालो से करवा रहे हैं। बाकी जब मैं भोजन ले रहा हूँ, जब तक भोजन ले रहा हूँ, तब तक भोजन लेने में जो भी हिंसा होगी, उसका जिम्मा तो मेरा होगा।

तो जैनो ने खेती बन्द कर दी। जैन हट गये। जैन इसलिए सब दुकानदार हो गये, क्योकि कोई उपाय न रहा। क्षत्रिय थे मूलत. वे; क्योकि महावीर और जैनो के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। तलवार उनके हाथ में ही थी, ऐसे वे पैदा हुए थे। निश्चित ही जब उनके चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे, तब उनके माननेवाले अधिक लोग क्षत्रिय रहे होंगे। पर क्षत्रिय रहने का कोई उपाय न रहा क्योकि अब हिंसा तो की नही जा सकती। ब्राह्मण होने का कोई दरवाजा नही था; क्योकि जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। और शूद्र कोई होना नही चाहता था, इसलिए वणिक होने के सिवाय कोई उपाय नही रह गया। खेती-बारी की जा नही सकती, शूद्र कोई हो नही सकता; फिर दुकान चलाने के सिवाय कोई उपाय नही रह गया।

यह जो अति पैदा हो जाती है, यह अति खतरे में ले जाती है; एक से दूसरे खतरे में ले जाती है। कूएं से बचते हैं, खाई मे गिर जाते है।

एक शिखर छु कर भारत एकदम नीचे गिर गया। इसलिए भारत के मन मे अब भी हरा है वह घाव। और हमारे मन में ऐसा लगता है कि कोई एक स्वर्ण

शिखर था, जिसे हम छू कर हट गये। इसलिए हमारा मन बार-बार पीछे लौट जाता है। इसमें थोड़ी सचाई है। एक शिखर हमने छुआ था। लेकिन होता है खतरा तभी, जब कोई शिखर छू लेता है। उदाहरण दू तो खयाल में आ जाये।

जब हम सभ्यता के इतने शिखर पर थे और विलास की सुविधा थी, तब इस विलास की भी सुविधा थी कि चाहे तो अहिंसा की अति में चले जाएं। यह भी सिर्फ तभी सम्भव हो सकता है, जब लोग बहुत खुशहाल हों। तब वे इतना सोच सकेंगे, इतनी बारीक, सूक्ष्म अहिंसा की बात सोच सकेंगे। तो हम हट गये।

आज अमरीका भी ठीक वैसी हालत में है। आज अमरीका समृद्ध है, सम्पन्न है। आज उसके बच्चे युद्ध से हटना चाहते हैं। आज अमरीका में जितना वियतनाम मे युद्ध हो, इसका विरोध है, ऐसा कभी किसी मुल्क में नही हुआ। उसका मुल्क लड रहा हो और मुल्क के भीतर इतना भयकर विरोध हो। आप थोडा सोचे भारत के सदर्भ में कि भारत पाकिस्तान से लड रहा हो और भारत के सारे युनिवर्सिटी और कालेज में, और सारे युवा-समाज में, इसका विरोध हो कि नही, यह लड़ाई गलत है। ऐसा कभी दुनिया मे हुआ नही, क्योकि जब मुल्क लडता है, तब पूरा मुल्क दीवाना और पागल हो जाता है। और जो दीवाना और पागल नही होगा, वह गद्दार, वह देशद्रोही मालूम पडेगा।

अमरीका में यह पहली दफा हो रहा है। होने का कारण है कि अति सम्पन्नता में ही दूसरी अति पर जाने की सुविधा होती है। यही भारत मे हुआ था। बुद्ध और महावीर के वक्त में हम शिखर पर पहुँचे। एक ऊँचाई थी। और तब हमने कहा कि हम नही लडेंगे। मिट जायेंगे, पर लडेंगे नही। तब दूसरे को मौका मिल गया। अगर आज अमरीका अपने लडको की बात मान ले तो अमरीका वैसा ही गिरेगा, जैसा भारत कभी गिरा था। और हो सकता है कि लडके मनवा लें। क्योकि आज नही कल ताकत उनके हाथ में आएगी, आज नही कल वे सत्ता मे होंगे। और एक अति से दूसरी अति पर मन का जाना बहुत आसान है।

लाओत्से दूसरी अति पर जाने को नही कह रहा है। लाओत्से कहता है कि एक खेदपूर्ण आवश्यकता के रूप में युद्ध करता है एक सच्चा सेनापति। वह युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नही करता। बडा कठिन है युद्ध करना और हिंसा से प्रेम नही करना।

लेकिन ताओ के माननेवाले लोगो ने, चीन ने और जापान ने, इस तरह का सैनिक निर्मित करने का महान प्रयोग किया, जो युद्ध तो करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता। अगर आपने समुराई का नाम सुना हो, तो जापान में समुराइयो की एक बडी जमात पैदा हुई एक खास तरह के सैनिक का नाम समुराई है। उस सैनिक का नाम समुराई है, जो युद्ध तो करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता।

तब इस समुराई की सारी शिक्षा-पद्धति बहुत अनूठी है। इसे तलवार सिखाने के

पहले ध्यान सिखाया जाता है। और इसे युद्ध पर भेजने के पहले स्वयं के भीतर जाना होता है। और यह दूसरे को काटने जाये, इसके पहले उसे उस अनुभव से गुजरना होता है, जहाँ यह जानता है कि आत्मा काटी नहीं जा सकती। बड़ी कठिन बात है। क्योंकि संन्यासी होना एक बात है, आसान है। सैनिक होना भी आसान है। लेकिन संन्यासी और सैनिक एक साथ होना बहुत कठिन बात है। समुराई संन्यासी और सैनिक एक साथ है।

कृष्ण ने भी अर्जुन को समुराई बनाने की कोशिश गीता में की है। वह समुराई बनाने की कोशिश है — सैनिक और संन्यासी एक साथ।

वे कहते हैं, तू लड़; क्योंकि अगर न लड़े तो अति होगी। वे यह भी नहीं कहते कि लड़ने को तू जीवन का कोई अन्त समझ; वह भी अति होगी। अर्जुन को आसान था, यदि कृष्ण कह देते कि काट; कोई आत्मा नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है, आदमी सिर्फ शरीर है। गीता में फिर आये जाने की जरूरत न थी। अर्जुन को इतना पक्का हो जाता कि आदमी सिर्फ शरीर है, काटने-पीटने में कोई हर्ज नहीं है, तो वह लोगों को वृक्षों की पंक्ति की भाँति काट डालता। अगर उसे कोई बौद्धिक भरोसा दिला देता इस बात का तो कोई अड़चन न थी; वह सैनिक हो जाता। शुद्ध सैनिक वह था। या उसे कोई भरोसा दिला देता कि हर स्थिति में हिंसा पाप है, तू भाग जा, तो वह बिलकुल तैयार था भाग जाने को। वह संन्यासी हो जाता।

लेकिन उसे एक बहुत ही अजीब आदमी से मुलाकात हो गई। वह जो सारथी बना हुआ बैठा था, उससे ज्यादा अजीब आदमी खोजना मुश्किल है। उसने दोनों बातें कहीं। वह सारथी बातें तो महावीर जैसी करने लगा; आत्मा अमर है और जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा को पाना है और मुक्ति पाना, यह बात करने लगा।

मार्क्स जैसी बात करते कृष्ण तो अर्जुन की समझ में आ जाती; अर्जुन काट देता वैसे ही मजे से, जैसे स्तालिन ने एक करोड़ लोगों को काट डाले। कोई अड़चन ही न रहती। यह बात अगर पक्के तौर से खयाल में आ जाए कि दूसरी तरफ कोई आत्मा है ही नहीं, सिर्फ शरीर है, एक यंत्र है, तो यंत्र को तोड़ने में क्या अड़चन आती? कोई अन्तर-ग्लानि नहीं होती, कोई अन्तःकरण को पीड़ा भी नहीं होती। अगर मार्क्स मिल जाता तो भी अर्जुन को शान्ति मिल जाती, वह युद्ध में उतर जाता। या फिर महावीर मिल जाते तो वह तलवार छोड़कर जंगल चला जाता।

मगर यह जो आदमी मिल गया कृष्ण, इसने दिक्कत में डाल दिया। इसने कहा कि व्यवहार तो तू ऐसे कर, जैसे कि दुनिया में कोई आत्मा नहीं है, काट, और भलीभाँति जान कि जिसे तू काट रहा है, उसे काटा नहीं जा सकता। यह दो अतियों के बीच में जो बात थी, बीच में खड़ा हो जाना संतुलित, यह अर्जुन को मुश्किल पड़ी। और पता नहीं अर्जुन कैसे इस मुसीबत के बीच अपने संतुलन को उपलब्ध कर पाया?

भारत तो अभी तक नहीं कर पाया। कृष्ण की बात बहुत चलती है, गीता इतने लोग पढते हैं; लेकिन भारत से गीता का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। भारत में या तो एक अतिवाले लोग हैं, जो अहिंसा को मानते हैं, और या फिर दूसरी अति-वाले लोग हैं, जो हिंसा को मानते हैं। **लेकिन भारत में फिर अर्जुन जैसा व्यक्तित्व पैदा नहीं हो सका। गीता बिलकुल ही भारत के सिर पर से चली गई। उसने कभी हृदय से भारत को छुआ नहीं।** हालाकि यह बात उलटी मालूम पड़ेगी; क्योंकि घर-घर गीता पढी जाती है। गीता जितनी पढ़ी जाती है, और कुछ उतना नही पढ़ा जाता। गीता लोगो को कठस्थ है, लेकिन छू नहीं सकी। छू नही सकती, क्योंकि बहुत कठिन बात है।

सैनिक और संन्यासी होना एक साथ, इससे ज्यादा कोई कठिन बात दुनिया में सम्भव नहीं है। **यह सर्वाधिक नाजुक मार्ग है।**

लाओत्से भी ठीक कृष्ण से सहमत है। लाओत्से कहता है, वह युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नही करता।

और फिर एक बात कहता है, जो बड़े मतलब की है चीजें अपना शिखर छू कर फिर गिरावट को उपलब्ध हो जाती हैं।

लाओत्से कहता है, विजय अगर तूने पा ली, तो जल्दी ही तुम हारोगे। इसलिए विजय पाना मत, **विजय को शिखर तक मत ले जाना।** किसी चीज को इतना मत खीचना कि ऊपर वाले का फिर उपाय ही न रह जाए, फिर नीचे ही गिरना रह जाए। लाओत्से कहता है, सदा बीच में रुक जाना। अतिवादी कभी बीच में नही रुकता, खीचता जाता है। और एक जगह आती है, जहाँ से नीचे उतरने के सिवाय कोई रास्ता नही रह जाता। आखिर हर शिखर से उतराव होगा ही।

लेकिन लाओत्से की बात किसी ने भी नही सुनी कभी। सभी सभ्यताए अनि कर जाती हैं, एक शिखर पा लेनी है और गिर जाती हैं। कितनी सभ्यताए शिखर छू कर गिर चुकी हैं। फिर भी वह दौड नही रुकती। बेबीलोन, असीरिया मिस्र अब कहाँ है? एक बडा शिखर छुए, फिर नीचे गिर गए।

अभी भी वैज्ञानिक कहते हैं कि इजिप्त के जो पीरामिड्स हैं, उन पर उतने बडे पत्थर किस भाँति चढाए गए, यह अभी भी नही समझा जा सकता। कुछ पत्थर गिजेन के पिरामिड में इतने बडे हैं कि जो हमारे पास बड़ी से बड़ी क्रेन है, वह भी उन्हे उठाकर ऊपर नहीं चढा सकती। बडी हैरानी की बात मालूम पडती है। तो इजिप्त उनको आज के कोई छह हजार साल पहले, सात हजार साल पहले, कैसे चढा सका? अब तक यही समझा जाता था कि आदमियो के सहारे चढाए गए होंगे। लेकिन उस पत्थर को चढाने के लिए तेइस हजार आदमियों की एक साथ जरूरत पडेगी। तो उनके हाथ ही नहीं पहुंच सकते पत्थर तक। तेइस हजार आदमी एक पत्थर को उठाएँगे कैसे? क्या राज रहा होगा? वे पत्थर कैसे चढाए गए?

इजिप्त की पुरानी किताबें कहती हैं कि इजिप्त ने ध्वनि की कीमियां खोजी थी। **एक विशेष ध्वनि करते ही पत्थर ग्रेविटेशन खो देते थे; उनको जो वजन है, वह खो जाता था।** आज यह कहना मुश्किल है, यह कहां तक सही है। लेकिन और कोई उपाय नही है सिवाय यह मानने के कि उन्होने कुछ मन्त्र का, कुछ ध्वनि का उपाय खोज लिया था। चारो तरफ एक विशेष ध्वनि करने से जो एंटी-ग्रविटेशन, गुरुत्वाकर्षण-शक्ति है, उसके विपरीत स्थिति पैदा हो जाती थी, और तब पत्थर उठाया जा सकता था।

यहा पूना के पास, वहा से कोई पचास मील दूर सिरपुर में एक पत्थर एक मस्जिद के पास पडा हुआ है। जिस दरवेश की, जिस फकीर की वह मजार है, नौ या ग्यारह आदमी अपनी उगलियाँ उस पत्थर में लगा दें और उस फकीर का नाम लें जोर से, तो उगलियो के सहारे वह बड़ा पत्थर उठ आता है सिर के ऊपर तक, बिना नाम लिए वे ग्यारह आदमी कितनी भी कोशिश करे, वह पत्थर हिलता भी नही है। पर एक क्षण को वह पत्थर ग्रैवीटेशन खो देता है। वैज्ञानिक उसका अध्ययन करते रहे, लेकिन अब तब उसकी कोई बात साफ नही हो सकी कि मामला क्या है। उस फकीर के नाम में कोई ध्वनि, आसपास पत्थर के, निर्मित हो जाती है और पत्थर उठ जाता है।

पर जिन्होने ध्वनि के सहारे इतने बडे पत्थर को पिरामिड पर चढाए होगे, वे आज कहा है ? वे खो गये। उन्होने एक शिखर छुआ था। आज पिरामिड खडे रह गये, लेकिन उनके बनानेवालो का कुछ भी पता नही रहा। असीरिया, बेबीलोन, सब खो गये, जहां सभ्यता जनमी थी।

प्लेटो ने अपने संस्मरणो में लिखा है कि इजिप्त से यात्रा करके लौटते हुए एक व्यक्ति ने बताया कि इजिप्त के मन्दिर के एक बडे पुजारी सोलन ने उसे बताया कि कभी एक महाद्वीप परम सभ्यता को उपलब्ध हो गया था। अटलांटिस इस महाद्वीप का नाम था; फिर वह पूरी सभ्यता के साथ समुद्र में खो गया। क्यो खो गया, इसका कोई कारण आज तक नही खोजा जा सका। लेकिन जो भी मनुष्य जान सकता है, वह अटलांटिस की सभ्यता ने जान लिया था।

खो जाने का क्या कारण होगा, इस पर लोग चिन्तन करते है। हजारो किताबे लिखी गई हैं अटलांटिस पर। और अधिक लोगो का यही निष्कर्ष है कि अटलांटिस ने इतनी विज्ञान की क्षमता पा ली थी कि अपने ही विज्ञान के शिखर से गिरने के सिवाय कोई उपाय नही रह गया था। **वह अपनी ही जानकारी के भार से डूब गया।** या तो कोई विस्फोट उसने कर लिया अपनी ही जानकारी से, जैसा आज हम कर सकते है।

आज कोई पचास हजार उदजन बम अमेरिका और रूस के तहखानो मे इकट्ठे हैं। अगर जरा सी भी भूल हो जाये, और इनका विस्फोट हो जाये, तो अटलांटिस

ही नहीं, यह पूरी पृथ्वी बिखर जायेगी। इसलिए आज जहां-जहां एटम बम इकट्ठे हैं, उनकी तीन-तीन चाबियां हैं। क्योंकि एक आदमी का जरा दिमाग खराब हो जाए, गुस्सा आ जाए, किसी का पत्नी से झगड़ा हो जाए और वह सोचे कि खतम करो दुनिया, तो तीन-तीन चाबिया रखी हुई हैं कि जब तक तीन आदमी राजी न हो, तब तक कुछ भी नहीं किया जा सकता। लेकिन तीन आदमी भी राजी हो सकते हैं। तीन आदमी राजी हो सकते हैं और सारी पृथ्वी मिटाई जा सकती है।

अटलांटिस पूरा डूब गया शिखर को पाकर। खयाल यह है कि उसका ज्ञान ही उसकी मृत्यु का कारण बना।

अभी इस तरह के पत्थर मिलने शुरू हुए हैं सारी दुनिया में। अब तक उन पत्थरो पर खुदी हुई तस्वीरो का कुछ अन्दाज नही लगता था। लेकिन अब लगता है। अभी आपके चांद से जो यात्री लौटे हैं, वे जिस तरह के नकाब पहनते हैं और जिस तरह के वस्त्र पहनते हैं, उस तरह के वस्त्र और नकाब पहने हुए दुनिया के कोने-कोने में पत्थरो पर मूर्तियां हैं। और चित्र हैं। अब तक हम जानते ही नही थे कि ये क्या हैं। लेकिन अब बडी कठिनाई है। जिन लोगो ने ये चित्र खोदे पत्थरो पर, उन्होने अगर अन्तरिक्ष यात्री न देखे हों, तो ये चित्र खोदे नही जा सकते थे। और ये दस-दस हजार साल पुराने चित्र जो पत्थरो पर खुदे है, अगर इन्होने भी आन्तरिक्ष यात्री देखे, तो जाहिर है कि सभ्यताए हममे भी पहले काफी यात्राए कर चुकी हैं, शिखर छू चुकी हैं।

मैक्सिको में कोई बीस मील के बड़े पहाड पर चित्र खुदे हुए हैं। वे चित्र ऐसे हैं कि नीचे से तो देखे नही जा सकते, क्योंकि उनका विस्तार बहुत बडा है। बीस मील की सीमा में वे चित्र खुदे हुए हैं, और एक-एक चित्र मीलो तक फैला है। तो नीचे से उनको देखने का उपाय नही है; उनको देखने के लिए सिवाय हवाई जहाज के कोई उपाय नही है। और वे चित्र पुराने है कोई पन्द्रह हजार वर्ष। तो अब बडी कठिनाई है यह कि या तो जिन्होंने चित्र खोदे थे, उन्होंने हवाई जहाज के यात्रियो को देखने के लिए खोदे थे। और अगर हवाई जहाज नही था पन्द्रह हजार साल पहले तो इन चित्रो को खोदना भी मुश्किल था। इनको खोदने का कोई प्रयोजन ही नही है। क्योकि इनको कोई देख ही नही सकेगा जमीन पर। इतनी दूरी से ही वे चित्र दिखाई पड़ सकते हैं!

अब वैज्ञानिक कठिनाई मे हैं। अगर हम यह मानें कि पन्द्रह हजार साल पहले हवाई जहाज था तो हमें यह भ्रान्ति छोड़ देनी पड़ेगी कि हमने ही पहली दफा हवाई जहाज निर्मित कर लिया। अगर पन्द्रह हजार साल पहले हवाई जहाज था तो सभ्यताए हमसे भी पहले भी शिखर पा चुकी थीं।

वे सभ्यताएं कहां हैं आज? आज उनका कोई नामलेवा भी नही है। आज उनका कुछ निशान भी नही छूट गया है। वे मात्र अनुमान हैं हमारे। इनकी

बाबत कुछ निश्चित नही कहा जा सकता।

लाओत्से कहता है, सभी चीजें शिखर पर जाकर नीचे गिर जाती हैं। सभी चीजें। विजय भी शिखर पर जाकर नीचे गिर जाती है। सफलता भी शिखर पर जाकर नीचे गिर जाती है। यश भी शिखर पर जाकर गिर जाता है।

लाओत्से कहता है, इसलिए बुद्धिमान आदमी कभी किसी चीज को शिखर तक नही खींचता। वह गिरने का उपाय है। वह अपने हाथ नीचे उतर आने की व्यवस्था है।

हिंसा ताओ के विपरीत है। और जो ताओ के विपरीत है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। हिंसा अति है। विध्वंसात्मकता अति है। और जो अति पर जाएगा, वह नष्ट हो जाएगा।

लेकिन लाओत्से यह कहता है कि ताओ के विपरीत है हिंसा, प्रकृति के विपरीत है हिंसा। इसे हम समझने की कोशिश करें।

अगर कोई आपकी हिंसा करे तो अच्छा नही लगता। किसको अच्छा नहीं लगता? आपके निसर्ग को, आपकी प्रकृति को। जब आप किसी के साथ हिंसा करते हैं, तो उसे भी अच्छा नहीं लगता। किसको अच्छा नहीं लगता? उसकी प्रकृति को, उसके निसर्ग को। इस दुनिया में हिंसा किसी को भी प्रिय नहीं है। किसी की भी प्रकृति नही चाहती कि हिंसा हो। फिर भी हम हिंसा करते हैं। और जो हम दूसरे के साथ कर रहे हैं, वह हम नही चाहते कि कोई हमारे साथ करे। दूसरा भी नही चाहता है। और जब सभी के भीतर का निसर्ग नही चाहता कि हिंसा हो, तो एक बात तय है कि **हिंसा प्रकृति के प्रतिकूल है**। और जो प्रकृति के प्रतिकूल है, लाओत्से कहता है, वह नष्ट हो जाता है।

हो ही जायेगा। **क्योंकि प्रकृति के प्रतिकूल होने का कोई उपाय ही नहीं है।** हम चेष्टा कर सकते हैं, लेकिन प्रकृति के प्रतिकूल हम हो नही सकते। होने में हम टूटेंगे और नष्ट हो जाएँगे। क्यो?

क्योंकि हमारा होना प्रकृति का अग है। यह मेरा हाथ है, यह मेरे खिलाफ कैसे हो सकता है? अगर यह मेरा अग है, तो यह मेरे खिलाफ कैसे हो सकता है? तो एक ही रास्ता है इसके खिलाफ होने का कि इसको लकवा लग जाए, यह रुग्ण हो जाए। मैं कहूँ उठो, और इससे न उठा जाए। यह बीमार हो जाये इतना तो ही मेरे खिलाफ जा सकता है। यह स्वस्थ हो तो मेरे खिलाफ नही जा सकता है। लेकिन यह बीमार होकर मेरे खिलाफ नही जा रहा है, यह अपना भी विनाश कर रहा है।

इसलिए जब भी कोई आदमी स्वस्थ होता है तो प्रकृति के प्रतिकूल नही होता है। हो नही सकता। और जब कोई आदमी रुग्ण होता है तो वह प्रकृति के प्रतिकूल होगा। हम इससे उलटा भी कह सकते हैं कि प्रकृति के जो प्रतिकूल होता

है, वह रुग्ण हो जाता है। इसलिए जब कोई प्रकृति के प्रतिकूल चलता है तो अपने हाथ से क्षीण होता है, टूटता है, नष्ट होता है। किसी भी दिशा में प्रकृति के प्रतिकूल होने का कोई उपाय नही है। **अनुकूल होकर ही स्वास्थ्य और जीवन है, और अनुकूल होकर ही आनन्द और शान्ति है। और जो परम अनुकूल हो जाता है, वह मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।**

. परम अनुकूलता का अर्थ हम समझ लें तो प्रतिकूलता भी खयाल में आ जाए।

परम अनुकूलता का अर्थ है कि जिसको यह खयाल ही नही रहता कि मैं हूँ, प्रकृति ही है। जब तक यह खयाल है कि मै हू, तब तक थोड़ा-बहुत विरोध रहेगा। मै का भाव बिना विरोध के हो नहीं सकता; थोड़ा-बहुत विरोध रहेगा। तब तक मै कुछ न कुछ करता रहूँगा। लेकिन जब मै हू ही नहीं, प्रकृति ही है मेरे भीतर और बाहर, तब सब विरोध शान्त हो गया।

बुद्ध के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे ऐसे आते हैं जैसे हवा आए, वे ऐसे चले जाते हैं जैसे हवा चली जाए; न दिखाई पडता है उनका आना, न दिखाई पडता उनका जाना। इसलिए बुद्ध का एक नाम है **तथागत**। जो आया और गया, लेकिन जिसके आने-जाने की कोई चोट नहीं पड़ती। तथागत का मतलब होता है जो ऐसे आए कि पता भी न चले, जो ऐसे चला जाए कि पता भी न चले। बुद्ध के प्यारे से प्यारे नामो में तथागत है। हजारो नाम बुद्ध को दिये गए हैं, लेकिन तथागत की खूबी ही और है। आया और गया, और हमें पता भी न चले।

जब कोई इतना एक हो जाता है प्रकृति के साथ कि जैसे उसमें प्रकृति ही उठती है और प्रकृति ही बैठती है और प्रकृति ही सोती है और प्रकृति ही चलती है, **तब परम मुक्ति है**। इसलिए अहकार का इतना विरोध है; क्योकि अहकर ही आपकी मुक्ति में बाधा है। जितना आपको लगता है कि मै हू, उतना ही आप का आनन्द दूर है। और जितना आपको लगे कि मै नही हू, **उतना ही आनन्द निकट है**। जिस दिन लगे मै हू ही नही, तो बुद्ध कहते हैं, जो बुझ जाता है, जैसे दीया बुझ जाए, ऐसा जिसका अहकार बुझ जाता है, जो मिट जाता है, जैसे बूद सागर मे खो जाए, ऐसा जो खो जाता है, **वही मुक्त है**।

इसलिए बुद्ध से जब कभी लोग जा कर पूछते हैं कि मेरी मुक्ति कैसी होगी, तो बुद्ध कहते है कि तुम्हारी मुक्ति का कोई उपाय नही है। **तुमसे मुक्ति हो सकती है, तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती है**। कोमती बात है। बुद्ध कहते हैं, तुमसे मुक्ति हो सकती है, तुम्हारी मुक्ति नही हो सकती। तो यह मत पूछो कि मै कैसे मुक्त हो जाऊँ, पूछो यह कि मै मुझसे कैसे मुक्त हो जाऊँ।

सारा उपद्रव मेरे मैं का है; क्योकि मेरा मैं मुझे अलग करता है।

अगर मै अनुकूल हूँ तो मेरी कोई हिंसा नही रह जाती। फिर जो भी होता है, मै राजी हूँ।

महावीर के कान में कोई खूंटियां ठोक गया, लहूलुहान उनका कान हो गया। बड़ी मीठी कहानी है। इन्द्र ने आकर महावीर को प्रार्थना की कि मैं आपकी रक्षा का इन्तजाम करूं। यह तो बहुत अशोभन है, और हमे पीड़ा होती है कि कोई आपके कान में खूटियाँ ठोक जाए। तो महावीर ने कहा कि मैं राजी हूँ; जो हो जाए, उसके लिए राजी हूं। क्योंकि मै अगर राजी नही हूँ तो मै हिंसा करूं या न करूं, मन में तो हिंसा हो ही जाती है। अगर मै राजी नही हूं तो हिंसा हो गई। न राजी होना ही हिंसा है। तो मै राजी हूं। और जो मेरे कानों में कीलें ठोक गया है, उसकी बड़ी कृपा है। क्योंकि उसने मुझे एक मौका दिया, जिसका मुझे पहले कोई अनुभव नही था। उसने मुझे एक मौका दिया कि जब मेरे कानो में कोई कीलें ठोक रहा हो, तब भी मैं राजी होता हूं या नही होता हूं। तब भी मै राजी हूं।

और महावीर ने कहा, उसने मुझे मुक्ति का एक अद्‌भुद स्वाद दे दिया, कानो में कीलें ठोक कर। अब कोई मेरे कानों में कीलें ठोक कर भी मुझे दुखी नहीं कर सकता, इस सत्य को मैं जान गया हू। अब मुझे कोई दुखी ही नही कर सकता, इस सत्य को मै जान गया हूं। अब मेरी हत्या भी कर दे तो मुझे दुखी नही कर सकता। मै मुक्त हो गया हूं, मै दूसरों से मुक्त हो गया हूं।

लेकिन दूसरो से कोई तभी मुक्त होता है, जब अपने से मुक्त हो जाए। वह जो अपने से बंधा है, दूसरो से बधा रहेगा। असल में दूसरों से हम इसीलिए बंधे हैं कि अपने से बधे हैं।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते हैं कि कैसे मुक्ति होगी; पत्नी है, बच्चा है, घर है, दुकान है। वे यह कह रहे हैं कि जब तक इनको छोड़ कर न भाग जाए, पत्नी को, बच्चों को, दुकान को, तब तक मुक्ति नही हो सकती। वे ऐसा बता रहे हैं, जैसे ये सब उन्हें बांधे हुए हैं। कौन किसको बाधे हुए है?

मेरे पास कोई ऐसा आदमी आता है, तब मै उससे कहता हूं कि मानो कि तुम अभी मर गये तो क्या ये लोग तुम्हे रोक पाएंगे? नही, ये नही रोक पाएंगे। इस-लिए जब ये फिर नही रोक पाएगे, जब ये मृत्यु में नही रोक पाएगे, तो मुक्ति में कैसे रोक पा सकते हैं? इनका बल कितना है? इनका कोई बल नही है। तुम्ही बहाने कर रहे हो, तुम्ही कह रहे हो कि यह पत्नी की वजह से मैं अटका हुआ हूँ।

और पत्नी सोच रही है कि पति की वजह से वह अटकी हुई है। दोनो किसी की वजह से नही अटके हुए हैं, अपनी वजह से अटके हुए हैं। यह आदमी पत्नी के बिना नही रह सकता, इसलिए अटका हुआ है। लेकिन वह कह रहा है कि पत्नी मुझे अटकाये हुये है। और यह सच है कि अगर यह आदमी भाग कर कही और चला जाए तो कही और पत्नी खोज लेगा। बच नही सकता है। और तब वह फिर कहेगा कि फिर जाल खड़ा हो गया। वह जाल कोई खड़ा नही करता, वह जाल इसके भीतर है। वह जाल मैं के साथ ही होता है। तो यह अगर आज दुकान

छोड़ दे तो कोई फर्क नहीं पड़ता; कल किसी मन्दिर का पुजारी हो जाए, या एक आश्रम का मालिक हो जाए, तब फिर से वही जाल शुरू हो जायेगा।

एक मित्र को मैं जानता हूं; उनको दो हालतों में मैंने देखा है। एक बार उनके गांव गया था तो वे अपना मकान बना रहे थे। संयोग की बात थी, उनके घर के सामने से निकल गया तो मैं रुक गया। वे छाता लगाये हुये—धूप थी तेज—मकान बनवा रहे थे। कहने लगे, बड़ी मुसीबत है; लेकिन क्या करें, बच्चे हैं, उनके लिए करना पड़ रहा है। और बन जाये एक दफा मकान तो मैं इस झंझट से छूट जाऊं। बच्चे और पत्नी इसमे रहें। और मेरा मन तो त्याग की तरफ झुकता जा रहा है। सुन लिया मैंने; क्योंकि कुछ कहने की बात भी नहीं थी।

दस वर्ष बाद उन्होंने घर छोड़ दिया; वे संन्यासी हो गये। फिर मैं उस गांव से निकला, जहां वे आश्रम बना रहे थे। वही आदमी छाता लिये खडा था; अब आश्रम बन रहा था। वे कहने लगे, क्या करूं? उन्हें खयाल भी नही रहा कि दस साल पहले यही बात उन्होंने मुझसे तब भी कही थी। क्या करूं, अब ये शिष्य, और यह समूह इकठ्ठा हो गये हैं; इनके पीछे यह उपद्रव करना पड़ रहा है। यह आश्रम बन जाए तो छुटकारा हो जाए।

मैंने उनसे कहा कि दस साल पहले घर बना रहे थे, तब सोचते थे कि यह बन जाये तो छुटकारा हो जाये; अब आश्रम बना रहे हैं और सोचते हैं कि यह बन जाये तो छुटकारा हो जाये। आगे क्या बनाने का इरादा है? बनाओगे तुम जरूर, और यही छाता लिये खड़े रहोगे धूप में। और फर्क क्या पड़ गया? मकान बन रहा था बच्चो के लिए, अब आश्रम बन रहा है शिष्यो के लिए; फर्क क्या पड गया? और मुक्त होना था तो मकान बना कर भी हो सकते थे। और मुक्त नही होना है तो आश्रम बना कर भी नही हो सकते।

आदमी सोचता है कि दूसरे बाधे हुए है, कोई और पकडे हुए है। नही, कोई और पकडे हुए नही है। **हम ही अपने को पकड़े हुए हैं। और हम ही अपने को बचाने के लिए औरों को पकड़े हुए हैं।** क्योकि उनकी कतार हमारे चारो तरफ हो तो हम सुरक्षित मालूम होते हैं। तब लगता है कि कोई भय नही है; कोई साथी है, कोई सगी है, मित्र है, प्रियजन है। **लेकिन आदमी बचा अपने को ही रहा है।**

हिंसा ताओ के विपरीत है। लेकिन हिंसा पैदा ही क्यों होती है? मैं अपने को बचाने की कोशिश करता हूँ, उसी से हिंसा पैदा होती है। जिस दिन कोई आदमी अपने को बचाने का खयाल ही छोड देता है, वह भय-मुक्त हो जाता है। कौन छोड़ सकता है अपने को बचाने का खयाल? सिर्फ वही छोड़ सकता है, जिसे यह पता चल जाए कि मैं बचा ही हुआ हू; मुझे कोई काट भी डालेगा तो मुझे नही काट पाएगा; मुझे कोई मिटा भी देगा तो नहीं मिटा पाएगा; मुझे कोई जला भी

देगा तो अग्नि मुझे नहीं जला पाएगी; शस्त्र मुझे नहीं छेद सकेंगे। कृष्ण कहते हैं, आग मुझे नहीं जला पाएगी। ऐसी जिसकी प्रतीति सघन हो जाए, फिर वह भय-रहित हो जाता है।

और जो भयर-हित हो जाता है, वह हिंसा-रहित हो जाता है। **जो भयभीत है, वह हिंसा-रहित नहीं हो सकता।**

इसलिए मैंने कहा, व्यक्ति अहिंसक हो सकता है पूर्ण रूपेण, लेकिन समाज और राष्ट्र पूर्णरूपेण अहिंसक नहीं हो सकते। क्योंकि राष्ट्र का मतलब ही सम्पत्ति है, राष्ट्र का मतलब ही सुरक्षा का उपाय है, राष्ट्र का मतलब ही सीमा है, पहरा है। **व्यक्ति मुक्त हो सकता है, राष्ट्र नहीं हो सकते;** तब तक, जब तक कि इतने व्यक्ति मुक्त न हो जाएं कि राष्ट्रों की कोई जरूरत न रह जाए। राज्य तो हिंसक होगा ही। इसलिए जो लोग सोचते हैं कि हम राज्य को अहिंसक बना लेंगे, वे गलत सोचते हैं। व्यक्ति अहिंसक हो सकता है। राज्य हिंसा को मजबूरी मानने लगे, इतना काफी है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

राज्य हिंसा से प्रेम न करे, उसे मजबूरी मानने लगे, इतना काफी है। लेकिन बड़ा मुश्किल है। अभी हमने बगला देश को अपनी फौजे भेजीं; फिर लौट कर हम पद्म-श्री और पद्म-भूषण और महावीर-चक्र बांट रहे हैं। जिन्होने जितनी ज्यादा हिंसा की है, उनके ऊपर उतने बड़े तगमें लगा रहे है। यह सब मजबूरी नही मालूम होती; इसमें रस मालूम होता है।

यह मजबूरी होती तो हम कहते, चलो, जिन-जिन व्यक्तियो ने जितनी ज्यादा हिंसा की है, वे तीर्थ-यात्रा करके अपने पाप का प्रक्षालन कर लें। अगर मजबूरी होती तो हम कहते, अब तुम जाओ, काशी-वास करो कुछ दिन, ध्यान करो, और अपना जो पाप हो गया, उसके लिये परमात्मा से प्रार्थना करो कि मजबूरी में हुआ, हमारा कोई रस न था। तो माणेक शा को हमें छुट्टी दे देनी थी कुछ दिन के लिए, तीर्थ जाने के लिए : केदार, बदरी, कहीं जाकर बैठ जाओ, और जो हो गई बात, वह मजबूरी थी, करनी पड़ी, उसका प्रायश्चित्त कर लो। लेकिन हम चक्र और पदवियां बांट रहे हैं। इसमें रस मालूम पड़ता है। यह हिंसा मजबूरी नही मालूम पड़ती, यह आवश्यक बुराई नही मालूम पड़ती; इसमें कुछ गौरव मालूम पड़ता है।

राज्य इतना भी कर ले कि हिंसा को मजबूरी मान ले तो बड़ी बात है। व्यक्ति अहिंसक हो सकता है, लेकिन राज्य हिंसक रहेगा। लेकिन अगर मजबूरी में हिंसक हो जाए तो लाओत्से कहता है कि वह राज्य धार्मिक हो गया।

ध्यान रहे, बड़ी चर्चा चलती है कि राज्य के धार्मिक होने का क्या अर्थ है। कोई राज्य मुसलमान है तो वह सोचता है कि धार्मिक है; कोई राज्य ईसाई है, तो वह सोचता है कि धार्मिक है। जैसा हमारे मुल्क का राज्य है, सिक्यूलर, धर्म-निरपेक्ष है, तो वह सोचता है कि धर्म से हमारा लेना-देना नही है। न तो ईसाई, न

हिन्दू, न मुसलमान राज्य धार्मिक राज्य होते हैं। धार्मिक राज्य का एक ही अर्थ है कि हिंसा इस राज्य के लिए एक मजबूरी है। फिर वह चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान हो, चाहे ईसाई हो कोई फर्क नही पडता है।

लेकिन जिस राज्य के लिए हिंसा में मजा है और जो प्रतीक्षा कर रहा है हिंसा करने की, मौका मिले तो हिंसा करेगा, आक्रमण के नाम से या सुरक्षा के नाम से, वह राज्य अधार्मिक है। और इतिहास बड़ा अनूठा है। दुनिया में जब दो लोग लड़ते हैं, तब दोनों मानते हैं कि वे सुरक्षा कर रहे हैं। आक्रमण मानने को कोई कभी राजी नही होता। अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी ने यह नही कहा है कि हमने आक्रमण किया है। इसलिए सभी मुल्कों का जो युद्ध का मंत्रणालय है, वह सुरक्षा या डिफेन्स मंत्रणालय कहलाता है। बड़े मजे की बात है, किसी मुल्क में कोई सेना है ही नही। सभी डिफेन्स डिपार्टमेन्ट हैं, वे सब सुरक्षा ही करते हैं। तो फिर आक्रमण कौन करता है? कोई आक्रमण करते ही नही, सभी सुरक्षा ही करते है, तो फिर युद्ध कैसे होता है? हालत उलटी मालूम पड़ती है। मालूम पडता है कि दोनो आक्रमण करते हैं। और कही दुनिया में किसी राज्य के पास भी सुरक्षा का मंत्रणालय नही है, सभी के पास आक्रमण के मंत्रणालय हैं।

लेकिन यह बेईमानी है। और बेइमानी अपने को छिपाती है।

लाओत्से के हिसाब से अगर राज्य हिंसा को मजबूरी समझता हो, उसमे गौरव न लेता हो, निन्दा मानता हो, ग्लानि अनुभव करता हो, और पश्चाताप करता हो; और करना पडे, मजबूरी हो जाए, कोई रास्ता न निकले, तो जाता हो; लेकिन वही रुक जाता हो जहा प्रयोजन पूरा हो जाए; और प्रयोजन भी पूरा हो जाए तो भी अनुभव करता हो कि एक बुरा काम करना पडा, ऐसी प्रतीति होती हो, **तो वह राज्य धार्मिक है**। अन्यथा सभी राज्य अधार्मिक हैं।

और जो ताओ के विपरीत है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। विनाश का अर्थ ही असल में धर्म के विपरीत होना है। जो धर्म के विपरीत है, वह विनष्ट हो जाता है। लेकिन कैसे?

यह आपको खयाल मे भी नही आएगा। हालतें तो उल्टी दिखती हैं। जो धर्म के विपरीत है, वे काफी विकसित होते मालूम पडते हैं। जो धर्म के विपरीत है, वे काफी फलते-फूलते मालूम पड़ते है। और धार्मिक को देखें तो वह दीन-हीन, पिटा-कुटा मालूम पडता है। उधर लाओत्से और सारे शास्त्र कहते हैं दुनिया के कि जो धर्म के विपरीत हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, और जो धर्म के अनुकूल हैं, वे बढ़ते ही चले जाते हैं। पर दिखाई तो उलटा पडता है।

लोग रोज मुझे कभी न कभी आकर कह जाते हैं कि फला आदमी बेईमान है, झूठा है, सब तरह से भ्रष्ट है, और सफल हो रहा है। और वे यह भी कह जाते

हैं कि मैं ईमानदारी से चल रहा हूँ, सचाई से चल रहा हूँ, और असफल हो रहा हूँ। कहा है न्याय ?

समझाने वाले भी हैं उनको। वे कहते हैं कि परमात्मा के राज्य में देर है, अन्धेर नहीं है; जरा रुको। कब तक रुकें वे ? और पक्का अन्धेर दिखाई पड़ता है। और देर है अगर तो इतनी लम्बी है कि इस जन्म में तो कोई रास्ता नही दिखाई पड़ता। और अगले जन्म का कोई पक्का नही है। और अभी जो चल रहा है, वह पहले भी चलता था, और भी पहले चलता था। क्योंकि यह शिकायत पुरानी है। हजारो-हजारो साल से यह शिकायत है आदमी की कि जो बुरा आदमी है, वह सफल हो रहा है, नष्ट हो रहा है भला आदमी।

और यह सब लाओत्से और कृष्ण और महावीर और बुद्ध कहते है कि वह जो धार्मिक है, वह नष्ट नही होता, वह जो अधार्मिक है, वह नष्ट होता है। तब जरा सोचना पडेगा। या तो ये गलत कहते है, और या तो हमारे विश्लेषण में कहीं भूल है।

हम जिसको धार्मिक कहते है, वह भी धार्मिक नहीं है। एक बात। और वह जो कहता है कि मैं सच बोल रहा हू, ईमानदार हू, वह भी इमानदार नही है, और सच नही बोल रहा है। हो सकता है, सच बोल भी रहा हो। जहा तक तथ्य की बात है, हो सकता है कि आप सच बोल रहे हों। लेकिन सच बोलने के कारण और अभिप्राय पर सब निर्भर करता है। इसलिए आप सच बोल रहे हो कि आप इतने भयभीत हैं कि झूठ बोले तो फँसने का डर है। अगर डर न हो तो आप झूठ बोलें। अगर आपको पक्का आश्वासन दिला दिया जाए कि कोई अदालत आपको पकड़ेगी नही, कोई कानून आपको सजा नही देगा, परमात्मा की अदालत में भी आपका बड़ा स्वागत-सत्कार होगा, आप झूठ बोल सकते है। फिर आप सच बोलेंगे ?

फिर भी जो आदमी सच बोलेगा, वही सच बोल रहा है। और यह भी कहा जाए कि सच बोलने वाला नरक में सडेगा, और आग में जलाया जाएगा, और जहाँ भी सच बोलोगे, कष्ट पाओगे, फिर भी जो आदमी सच बोल रहा है, वही सच बोल रहा है।

जो प्रयोजन से बोल रहा है, वह सच नही बोल रहा है। ये जो आदमी आते है और कहते हैं कि मैं सच बोल रहा हू और अभी तक सफलता नही मिली, इनको रस सफलता में है, सत्य में बिलकुल नही है। इसलिए ये परेशान हैं, बेचैन हैं कि कोई आदमी झूठ बोल रहा है और सफल हो रहा है। सफलता में उनका भी रस है, लेकिन डरपोक हैं, भयभीत हैं, झूठ बोल ही नही सकते। और सफलता भी वैसी चाहते है, जैसी झूठ बोलने वाला पा रहा है।

लेकिन झूठ बोलने वाला क्यों सफलता पा रहा है ? समझ लें यह भी कि जो आदमी सच बोल रहा है, उसकी सचाई में ईमानदारी नही है। मान लें कि उसका

जो ह्रास हो रहा है, वह उसके कारण हो रहा है। लेकिन यह झूठ बोलनेवाला आदमी क्यों सफल हो रहा है ?

चीजें जटिल हैं। कोई चीज एक कारण से नहीं होती, अनेक कारणों से होती है। जो आदमी झूठ बोल कर सफल हो रहा है, उसमें कुछ और भी होगा। साहस होगा। साहस गुण है। झूठ दुर्गुण है, लेकिन साहस गुण है। और साहस इतना बडा गुण है कि झूठ भी हो तो साहस सफल हो जाता है। और साहसहीनता इतना बड़ा दुर्गुण है कि सच भी हो तो उसको भी डुबो लेती है। अगर हम गौर से आदमी का विश्लेषण करें तो जो आदमी भी सफल होता दिखाई पड़ रहा हो, कुछ न कुछ, पता चलेगा, गुण है कि जो उसे सहारा दे रहा है। और जो आदमी असफल दिखाई पड रहा हो, कितना ही ईमानदार दिखाई पड़े, कुछ न कुछ दुर्गुण मिलेगा, जो उसे डुबो रहा है।

धर्म समस्त सद्‌गुणों का जोड है। अधर्म समस्त दुर्गुणों का जोड़ है। और मात्रा पर निर्भर करता है। लेकिन एक बात तय है कि अधर्म हारता है, टूटता है, बिखरता है; क्योंकि वह प्रकृति के प्रतिकूल है।

कई बार बुरा आदमी हंसते हुए मिल जाता है और अच्छा आदमी रोते हुए मिलता है। ऐसी अच्छाई भी क्या अच्छाई है, जिसमें से रोना ही निकलता है? और ऐसी बुराई में भी कोई खूबी है, जिसमें से कुछ हंसना तो निकल आता है। जब अच्छा आदमी हंसता हुआ मिले---चाहे हार गया हो, तो हार में भी आनन्दित हो---तब जानना कि वह कोई धार्मिक आदमी है।

धार्मिक आदमी हारना जानता ही नही है, क्योकि हार में उसे जीत ही दिखाई पड़ती है। धार्मिक आदमी असफलता को पहचानता ही नही है, क्योंकि सभी असफलताएं उसके द्वार आते-आते सफलताएं दिखाई पडने लगती हैं। धार्मिक आदमी असन्तोष से परिचित ही नहीं है; क्योकि उसके पास वह कला है कि जो भी चीज उसे छूएगी, वह सन्तोष बन जाती है।

और इससे विपरीत अधार्मिक आदमी है। वह कितना ही सफल हो, जिस दिन सफलता उसके घर आती है, वह असफलता हो जाती है। जिस दिन वह पा लेता है झूठ से, बेइमानी से कुछ, उसी दिन वह व्यर्थ हो जाता है। वह कितना ही बड़ा महल बना ले, वह उस महल में सो नही पाता है। वह कितना ही बडा महल बना ले, वह महल उसका नही होता है। और जिस महल में सो न पाता हो आदमी, वह उसका अपना है ? वह कितना ही धन इकठ्ठा कर ले, उसके भीतर की निर्धनता में कोई कमी नही आती। वह मांगे ही चला जाता है, वह चोरी किये ही चला जाता है, वह दुख उठाये ही चला जाता है।

मेरे हिसाब में धार्मिक आदमी सफल होता है; क्योंकि असफलता उसके पास आते ही सफलता हो जाती है। उसके देखने के ढंग में, उसके जीने के ढंग में, वह

कीमिया, वह कला है कि वह जो भी छूता है वह स्वर्ण हो जाता है। अधार्मिक आदमी के जीने के ढंग में वह भूल है कि वह सोने को भी इकट्ठा कर लेता है तो वह मिट्टी हो जाता है। उसकी सब सफलताएं भी, आखिर में उसे मालूम पड़ता है, उसे कुछ भी नहीं दे गईं। वह रिक्त ही जीता है और रिक्त ही मरता है।

तो इसका मतलब यह हुआ कि आप जरा और ढंग से सोचें। अगर आप शान्त हों, आनन्दित हों, और आपको लगता हो कि जीवन एक प्रफुल्लता है, तो समझना कि आप **धार्मिक आदमी हैं।** और अगर उसके विपरीत हो तो समझना कि धर्म के नाम पर आप अपने को धोखा दे रहे हैं। अगर आप दुखी हो, परेशान हों, पीड़ित हों, उदास हो, जीवन एक सन्ताप हो, तो **समझना कि आप अधार्मिक आदमी हैं।** भला आप मन्दिर नियमित जाते हो, गीता रोज पढते हों, कुरान को सिर टेकते हों, तो भी आप अधार्मिक आदमी हैं।

हम उलटा लें तो आसानी हो जायेगी।

मैं एक गुरुकुल में गया। गुरुकुल के सारे अध्यापक इकट्ठे हुए और उन्होने मुझसे कहा कि आप हमे कुछ समझाएं; अनुशासन टूटता जा रहा है, गुरुओं को कोई सम्मान नहीं देता, क्या किया जाए? तो मैंने उनसे कहा कि मेरी परिभाषा पहले आप समझ लें। **मैं उसे गुरु कहता हूं, जिसे लोग सम्मान देते ही हैं।** अगर वे किसी गुरु को सम्मान नही देते है तो समझ लेना चाहिए कि वह गुरु नहीं है। और जो सम्मान पाने की चेष्टा करता है वह तो गुरु है ही नही। क्योंकि गुरुता उसे ही उपलब्ध होती है, जिसे सम्मान से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है। उन्होने कहा, लेकिन शास्त्रो में तो कहा है कि गुरु को सम्मान देना चाहिये। मैंने कहा कि आपने शास्त्र को ठीक से नही पढा। शास्त्र कहते हैं, सम्मान जिसको दिया जाता है, वही गुरु है।

तो धार्मिक आदमी नष्ट नही होता है। इसको आप थोडा उलटा करके समझें तो बहुत आसानी हो जाएगी। **जो नष्ट नहीं होता है, वह धार्मिक आदमी है।** और जो नष्ट हो रहा है, और होता रहता है, वह अधार्मिक आदमी है। अगर आप नष्ट हो रहे हैं तो आप समझना कि आप अधार्मिक हैं। अगर नही हो रहे हैं और आपको लगता हो कि कुछ भी नष्ट नहीं हो रहा है, वरन् सृजन हो रहा है, निर्मित हो रहा है, जन्म हो रहा है, विकसित हो रहा है मेरे भीतर में, तो समझना कि आप धार्मिक आदमी हैं।

इस तरह अगर सोचेंगे तो बडी आसानी हो जायेगी, और अपनी जिन्दगी की परख और कसौटी हाथ मे आ जायेगी। और एक बार निकस हाथ में आ जाए जिन्दगी को जांचने का तो बहुत शीघ्र आदमी को पता चल जाता है कि जहां मै निसर्ग के प्रतिकूल जाता हू, वही दुःख में पड़ता हूँ और जहां निसर्ग के अनुकूल जाता हूं, वही मेरा आनन्द फलित हो जाता है।

निसर्ग के साथ होना आनन्द है। और निसर्ग के विपरीत होना दु:ख है। निसर्ग में डूब जाना स्वर्ग है, और निसर्ग की तरफ पीठ करके भाग खड़े होना नरक है।

आज इतना ही। कीर्तन करें और फिर जाएं।

युद्ध अनिवार्य हो तो शान्त प्रतिरोध ही नीति है

बासठवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक २६ नवम्बर १९७२

अध्याय ३१ : खंड १

अनिष्ट के शस्त्रास्त्र

सैनिक, सबसे बढ़कर, अनिष्ट के औजार होते है,
और लोग उनसे घृणा करते हैं।
इसलिए, ताओ से युक्त धार्मिक पुरुष उनसे बचता हैं।
सज्जन असैनिक जीवन में वामपक्ष अर्थात
　　शुभ के लक्षण की ओर झुकता है;
लेकिन, युद्ध के मौकों पर वह दक्षिणपक्ष अर्थात्
　　अशुभ के लक्षण की ओर मुड़ जाता है।
सैनिक अनिष्ट के शस्त्र-अस्त्र होते है,
वे सज्जनों के लिए शस्त्र नहीं हो सकते।
जब सैनिकों का उपयोग अनिवार्य हो जाए,
तब शान्त प्रतिरोध ही सर्वश्रेष्ठ नीति है।

Chapter 31 : Part 1

WEAPONS OF EVIL :

Of all things, soldiers are instruments of evil,
　　Hated by men
Therefore the religious man (Possessed of Tao) avoids them.
The gentleman favours the left in civilian life,
But on military occasions favours the right.
Soldiers are weapons of evil.
　　They are not the weapons of the gentleman.
When the use of soldiers cannot be helped,
　　The best policy is calm restraint.

इस सूत्र को समझने के लिए कुछ प्रारम्भिक बातें समझनी जरूरी हैं।

पहली बात। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का सारा विकास अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा हुआ है; मनुष्य की सारी प्रगति हिंसा के कारण हुई है। और मनुष्य अगर सारे पशुओ से जीत पाया है तो बुद्धिमानी के कारण नहीं, ज्यादा हिंसा करने की क्षमता के कारण।

ऐसे वैज्ञानिक भी है जो कहते हैं कि मनुष्य की बुद्धि हिंसा करने के कारण ही विकसित हुई है।

इसे थोडा हम समझ लें, क्योकि लाओत्से की बात इसके बिलकुल विपरीत है। तभी इसके ठीक आमने-सामने लाओत्से की बात समझ में आएगी। वह आसान भी होगा, उचित भी होगा।

शायद आपको पता न हो, डार्विन से लेकर जे बी. एस हाल्डेन तक जिन लोगो ने विकास के सम्बन्ध में गहन अध्ययन किया है, वे बहुत अजीब नतीजे पर पहुचे हैं। और वह नतीजा यह है कि **आदमी का सारा विकास उसके अंगूठे के कारण हुआ**। सुनकर थोड़ी हैरानी होगी, लेकिन बात मे सचाई है।

अकेला आदमी ही ऐसा पशु है, जिसका अंगूठा उसकी उगलियो के विपरीत काम कर सकता है। जैसे आप के पैर का अंगूठा है, वह उगलियो के विपरीत काम नहीं कर सकता है, इसलिए पैर से आप कोई चीज नही पकड सकते। और जब पकड ही नही सकते, तब फेंक भी नही सकते हैं। आदमी के हाथ का अंगूठा उंगलियो के विपरीत काम करता है—उगलियां एक दिशा मे और अगूठा दूसरी दिशा से। इस विरोध के कारण आप हाथ में कोई चीज पकड सकते है। और इस विरोध के कारण ही आप किसी चीज को फेंक भी सकते हैं। **और फेंकने की ताकत ही अस्त्र-शस्त्र का निर्माण बनती है।**

कोई जानवर शस्त्रो का उपयोग नही कर सकता है, क्योंकि पकड ही नही सकता। और जब पकड ही नही सकता, तब फेंक भी नही सकता है। जो जानवर उपयोग कर सकते हैं अगूठे का, जैसे बन्दर, चिम्पंजी, बबून, वे बन्दरों की जातिया हैं। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी और बन्दर सजातीय हैं। क्योंकि उनके पास भी अंगूठा है, जो उगलियो के विपरीत थोड़ा-सा काम कर सकता है। ज्यादा नही। आदमी के मुकाबले वे गतिमान नहीं हैं, लेकिन थोड़ी-बहुत चीजें वे पकड़ सकते हैं। थोड़ी दूर तक चीजें फेंक भी सकते हैं।

आदमी का अंगूठा उसकी हिंसा का आधार है।

वैसे आदमी कमजोर है। यह भी हम ठीक से समझ लें कि आदमी को इतना हिंसक होने की क्या जरूरत पड़ गई होगी। क्योंकि आदमी से ज्यादा हिंसक कोई पशु नहीं है। कोई पशु खेल में हिंसा नही करता; सिर्फ आदमी खेल में हिंसा करता है, और शिकार करता है। कोई पशु अपनी ही जाति में हिंसा नही करता; लेकिन आदमी आदमी को मारने में बड़ा रस लेता है। कोई पशु अकारण हिंसा नहीं करता है। आदमी अकारण हिंसा करता है, और पीछे कारण खोज लेता है। पशुओं में कोई बडे युद्ध नहीं होते, कोई विश्व-युद्ध नही होते। होने की कोई संभावना नही है। क्या कारण है। आदमी के इतनं हिंसक हो जाने का ? और क्या कारण है आदमी के अस्त्र-शस्त्र की खोज का ?

कारण बड़ा अजीब है; वह भी खयाल में नही आता। क्योंकि आदमी कमजोर है। सारे पशुओं में आदमी कमजोर से कमजोर पशु है। अगर निहत्थे आप एक कुत्ते से भी लडे तो नही लड सकते। न तो आपके पास उतने मजबूत दात हैं और न उतने नुकीले नाखून हैं। जानवरो के पास दात और नाखून उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, उनके औजार हैं। आदमी बिलकुल कमजोर है। निहत्था आदमी किसी जानवर से जीत नही सकता। **उसकी यही कमजोरी हिंसा की खोज बन गई।**

क्योंकि आदमी के पास नाखून न थे, इसलिए उसे छुरी-तलवारें बनानी पड़ीं। वे नाखून के पूरक हैं। आदमी के पास उतने बडे दांत न थे जितने पशुओ के पास थे तो उसे औजार के दांत बनाने पडे, जो पशुओ की छाती में घुस जाएं, उनका कलेजा बाहर खीच लें।

आदमी कमजोर है, इसलिए हिंसक हो गया। यह बड़े मजे की बात है। इसका मतलब यह होगा कि जब तक आदमी की भीतरी कमजोरी न मिट जाए, तब तक वह अहिंसक नही हो सकता है। और तब इसका मतलब यह भी हुआ कि जितना बड़ा हिंसक आदमी हो, समझना कि उतना वह भीतर कमजोर है। और इसका यह भी मतलब हुआ कि जितना शक्तिशाली पुरुष होगा, उतना अहिंसक हो जाएगा।

भय के कारण हिंसा पैदा हुई। आदमी भयभीत है तो उसने हिसा खोजी। और उसके पास हाथ थे, अंगूठा था, कमजोर मनोदशा थी, इसलिए उसने चीजे फेंक कर मारना शुरू कर दिया। उसकी अस्त्र-शस्त्रो की खोज शुरू हो गई।

फिर आदमी ने पत्थर के औजार से लेकर ऐटम बम तक की यात्रा की।

यह भी थोडा समझने जैसा है कि जैसे-जैसे आदमी के पास ताकतवर शस्त्र-अस्त्र बनते चले गए, वैसे-वैसे आदमी और कमजोर होता चला गया।

आज से दस हजार पहले की कब्रों में अगर हम आदमी देखें तो वह शरीर की दृष्टि से हमसे बहुत मजबूत था। हमारे पास एटम बम है। अगर हम दस हजार

साल पहले के आदमी से युद्ध करें, तो वह हमसे जीत न सकेगा। बाकी वह शरीर में हमसे मजबूत था। अगर अस्त्र-शस्त्रों को अलग कर दें और निहत्थे लड़ें तो हम पीछे के आदमियों से जीत नहीं सकते। आज भी जो जंगल में आदिवासी रह रहा है, उससे हम जीत नही सकते हैं। शारीरिक रूप से वह ताकतवर है। क्यों ?

एक दुश्चक्र है। कमजोर आदमी कमजोरी के कारण हिंसा के शस्त्र खोजता है। फिर हिंसा के शस्त्र जितने मिल जाते हैं, उतनी ही ताकत की जरूरत कम होती चली जाती है। इसलिए वह कमजोर होता चला जाता है। जिस दिन हमारे पास सब तरह के स्वचालित यंत्र होंगे, उस दिन आदमी बिलकुल कमजोर होगा।

जो लोग पैदल चलते थे, उनके मुकाबले हमारे पैर कमजोर हैं। होंगे ही। क्योंकि हम पैदल चलने का कोई काम ही नही कर रहे हैं। पैर का कोई उपयोग ही नही है। जिन चीजों का उपयोग खोता चला जाता है, वे कमजोर होती चली जाती हैं। अब हमने कम्प्यूटर खोज लिया है। जल्दी ही आदमी के मस्तिष्क की ज्यादा जरूरत नही रह जाएगी, और आदमी का मस्तिष्क भी कमजोर होता चला जाएगा। जिस चीज का हम यंत्र बना लेते हैं, उसकी फिर हमारे शरीर में कोई जरूरत नही रह जाती।

कमजोरी के कारण आदमी हिंसक हुआ। और हिंसक होने के कारण और कमजोर होता चला गया। एक तरफ इतनी बडी ताकत है हमारे हाथ में कि हम लाखो लोगो को सेकण्ड में मिटा दे और दूसरी तरफ हम इतने निहत्थे हैं कि एक छोटा सा जानवर भी हम पर हमला कर दे तो हम सीधा उससे जीत नही सकते। हमारा बडा से बडा सेनापति भी निहत्था जीत नही सकता एक साधारण जंगली आदमी से। यह तथ्य खयाल मे लेना जरूरी है।

सब हिंसा परिपूरक है कमजोरी की।

पश्चिम के एक बहुत बडे विचारक एडलर ने इस सदी मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तावित किया है और वह यह है कि जिन्दगी निरन्तर परिपूरक की खोज करती है। इसलिए जिन लोगो मे कोई कमी होती है, वे उस कमी के पूर्ति के लिए कुछ ईजाद करते हैं। अक्सर यह होता है, अक्सर कि जो लोग किसी दृष्टि से हीन अनुभव करते हैं अपने को, वे किसी दूसरी दिशा में श्रेष्ठ होने की कोशिश करके पूर्ति कर लेते है। कुरूप आदमी हो तो वह किसी दूसरी दिशा मे अपनी कुरूपता की पूर्ति खोजता है। वह बडा कवि हो जाए, कि बडा चित्रकार हो जाए, कि बडा संगीतज्ञ हो जाए, कि बडा नेता हो जाए, वह कुछ हो जाए, ताकि उसको ऐसा न लगे कि मै हीन हूं।

दुनिया के राजनीतिज्ञों का जीवन अगर हम खोजे तो बडी आश्चर्य की बात मालूम पडेगी। वे किसी न किसी रूप मे बहुत हीनता से पीडित हैं। लेनिन के पैर, जब वह कुर्सी पर बैठता था, तो जमीन तक नहीं पहुचते थे। पैर उसके छोटे थे और

शरीर के ऊपर का हिस्सा बड़ा था। और बचपन से लोग उसे कहते रहते थे कि तुम क्या करोगे जिन्दगी में, तुम साधारण सी कुर्सी पर भी बैठ नहीं सकते हो। तो उसने सोवियत रूस के सिंहासन पर बैठकर दिखा दिया कि साधारण कुर्सी तो कुछ भी नहीं है, मैं बड़े से बड़े सिंहासन पर बैठ सकता हूं।

मनसविद कहते हैं कि वे जो पैर जमीन को नहीं छूते थे, वह जो हीनता थी, वही कारण बन गई। लेनिन सदा पैर छिपा कर बैठता था। जब वह सिंहासन पर बैठ गया, तब भी वह किसी के सामने कुर्सी पर एकदम से नही बैठ सकता था; क्योंकि पैर उसके ऊपर उठ जाते थे। और वह उसकी हीनता की बात थी। वह उसके लिए कठिनाई हो गई।

हिटलर के सम्बन्ध में अब वैज्ञानिकों ने जो खोजबीन की है, वह बहुत सी बातें बताती है। वह अनेक तरह की बीमारियों से परेशान था और उन सारी बीमारियो की परेशानी और हीनता उसे पागल बना देती थी। तो वह किसी दूसरी दिशा से सिद्ध करके बता देगा कि वह हीन नहीं है।

जो भी इनफीरियॉरिटी से, हीनता से पीड़ित होते है, वे किसी भी दिशा मे सुपीरियर श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। इस लिहाज से मनुष्य सबसे ज्यादा हीन पशु है--भौतिक शक्ति में। और उसने सब पशुओं से श्रेष्ठ होने की कोशिश करके अपने को सिद्ध भी कर दिया है कि वह श्रेष्ठ है। और जिन-जिन चीजो की कमी थी, उसने उनकी परिपूर्ति कर ली। हाथ कमजोर थे, उसने अस्त्र बना लिए। शरीर कमजोर थे, उसने मकान बना लिये, किले बना लिये। उसने सब तरह से अपनी सुरक्षा की। वैज्ञानिक कहते हैं कि इसी हिन्सा के बल पर आदमी जो है आज तक, वह बन पाया।

पर इसके अब खतरे भी हैं।

यह बात सच है कि आदमी जो भी बन पाया है, वह हिंसा के कारण ही बन पाया है। अगर लाओत्से या महावीर या बुद्ध ने आज से बीस हजार साल पहले अहिंसा समझा दी होती और आदमी ने मान लिया होता तो आदमी आज कही होता ही नही। अगर जगल के आदमी को अहिंसा समझाने वाले लोग मिल गए होते तो जगली जानवर उसे कभी का साफ कर चुके होते।

इसलिए आज से बीस हजार साल पहले कोई महावीर पैदा नही हुआ। हो भी नही सकता था। ध्यान रहे, **महावीर के पैदा होने के लिए वह स्थिति जरूरी है, जब हिंसा जरूरी न रह गई हो।** तभी अहिंसा की बात की जा सकती है। इसलिए महावीर के लिए इसके पहले पैदा होने का कोई उपाय नही था। न लाओत्से के लिए ही। खयाल करें, लाओत्से, महावीर, बुद्ध, सुकरात, अरस्तु, प्लेटो, सभी का समय एक है। सारी जमीन पर आज से पच्चीस सौ साल पहले ये लोग पैदा हुए थे। इस समय को और पीछे नही हटाया जा सकता था। क्योकि

पीछे तो अहिंसा की बात ही करने का कोई अर्थ नही रह जाता; पीछे तो हिंसा जीवन की अनिवार्यता थी ।

लेकिन जो अनिवार्यता थी कल, वही बाद में कठिनाई बन गई ।

आज वैज्ञानिक कहते है कि आदमी ने कोई दस लाख साल में हिंसा से अपने को विजेता घोषित किया, पशुओ को हरा डाला और वह एकदम मालिक हो गया। इस दस लाख साल में उसके जीवाणुओ की आदत हिंसा की हो गई । और अब हिंसा की कोई जरूरत नहीं है; लेकिन उसकी आदत हिंसा की है । **यही आज की तकलीफ है ।**

आज की सारी बड़ी से बडी पीड़ा यही है कि आपकी बनावट जिस रास्ते से हुई है, वह रास्ता ही समाप्त हो गया है । अब न तो आप जगली जानवरो से लड़ रहे है और न आप अंधेरी रात में किसी गुहा मे बैठे हुए है। फिर न आज आप के दात और नाखून की कोई जरूरत है । और उनके विस्तार का तो कोई काम नही है । लेकिन आदमी के सेल्स में, उसके शरीर के जीवाणुओ मे बिल्ट-इन, बना हुआ प्रोग्राम है । दस लाख साल में आपके शरीर के जीवाणुओ ने जो सीखा है, वे आपकी जिन्दगी मे उसे भूल नही सकते । उनको दस लाख साल लगेंगे ।

तो जो लोग विज्ञान की दृष्टि से सोचते है, जैसे स्किनर और दूसरे विचारक है, वे कहते है कि आदमी को अहिंसक बनाने का तब तक कोई उपाय नही है, जब तक हम उसके जेनेटिक को, उसके जीवाणुओ के मूल आधार को न बदल दें । तब तक आदमी को अहिंसक बनाने का कोई उपाय नही है । क्योकि जब आदमी पैदा ही होता है, तब हिंसा का प्रोग्राम उसमे छिपा हुआ है, ब्लू-प्रिन्ट उसके भीतर है । जगल नही रहा, सघर्ष नही रहा, हिंसा का उपयोग नही रहा; लेकिन आदमी की बनावट, उसके शरीर का ढाचा हिंसा के लिए है, उसकी ग्रन्थिया हिंसा के लिए है। उसकी सारा सरचना ही हिंसक की है । **और इसलिए जिन्दगी में बड़ी तकलीफ है ।**

वह तकलीफ यह है कि आप हिंसा करना चाहते है और कर नही पाते । तब आप भीतर उबलते है, परेशान होते हैं, जैसे एक ज्वालामुखी भीतर जल रहा हो। फिर यह ज्वालामुखी आपकी पूरी जिन्दगी को विषाक्त कर देगा । क्योकि जहा नही जरूरत थी, वहा भी आग गिर जाती है—आपके हाथ से। न भी गिराए तो भीतर जलती है ।

दो बातें घटित होती हैं । एक तो आप जलते हुए लावा बन जाते है । इसलिए आप ऐसा मत सोचें कि आप कभी-कभी क्रोध करते हैं । सचाई उलटी है; आप सदा ही क्रोध में होते हैं । कभी-कभी वह ज्यादा प्रकट हो जाता है; कभी-कभी उसे छिपाए रखते हैं । शान्त होना मुश्किल है आपके लिए, आप अशात ही होते हैं । लेकिन जब बहुत अशान्त हो जाते हैं, तब आपको उसका पता चलता है । असल

में बुखार में रहने की आपकी आदत है। अगर आप गौर करें तो आप पाएंगे कि आप चौबीस घंटे क्रोध में हैं, और तलाश में हैं कि कहीं से क्रोध बाहर निकल जाए।

चौबीस घंटे आपके भीतर हिंसा का रस है—छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक में। छोटा बच्चा भी, एक चींटा चल रहा है तो उसको तोड़-मडोर कर नष्ट कर देगा। स्कूल चला जा रहा है, कुत्ते को पत्थर मार देगा। उसे हो क्या रहा है उसके भीतर ?

यह बच्चा जंगल में पैदा होना चाहिए था। इसके भीतर के सेल को कोई खबर नहीं है कि अब यह जंगल में नहीं है। इसके भीतर का सेल बिलकुल आपकी शिक्षा, संस्कृति से अपरिचित है। वह अपना काम पूरा कर रहा है। उसे कोई प्रयोजन नहीं है कि दुनिया बदल गई है चारो तरफ।

उसी हिंसा के कारण बदल गई है; लेकिन वह हिंसा गहरी पैठ गई है। स्किनर कहता है, कोई आशा नहीं है, जब तक हम आदमी की जनन-प्रक्रिया को न बदल दें और उसके मूल सेल में प्रवेश करके हिंसा के तत्वों को अलग न कर दें।

लेकिन वह अभी शायद जल्दी आसान नहीं होगा। अभी हमने एटम में प्रवेश किया है; वह मृत परमाणु है। और जीवित परमाणु में प्रवेश करने में अभी बहुत समय लगेगा। क्योंकि जीवित परमाणु को तोड़ते ही वह मृत हो जाता है। जब तक ऐसी कला न खोज लें वैज्ञानिक कि जीवित परमाणु टूट कर भी मृत न हो, तब तक हम उसे बदल न सकेंगे।

लेकिन ज्यादा देर नहीं लगेगी। सौ साल ज्यादा से ज्यादा और बीस साल कम से कम देर लगेगी। इस सदी के पूरा होते-होते आसार हैं कि हम आदमी के जीवाणु को तोड़ लेंगे, जैसे हमने परमाणु को तोड़ लिया।

लेकिन इतने से बात हल नहीं होती है। तब बड़े खतरे हैं। अगर हम जीवाणु को बदल सकते हैं तो हम आदमी को ही नष्ट कर देंगे। क्योंकि जीवाणु के बदलने का मतलब यह हुआ कि हम जैसे आदमी चाहेंगे, वैसे आदमी पैदा करेंगे। लेकिन कौन चाहेगा ? कौन निर्णय करेगा कि कैसे आदमी हों ? निश्चय ही राजनीतिज्ञ निर्णय करेंगे; क्योंकि ताकत उनके हाथ में है। और राजनीतिज्ञ पसन्द नहीं करेंगे कि बुद्धिमान लोग पैदा हों। क्योंकि समाज जितना बुद्धिहीन हो, राजनीतिज्ञ उतना ही बड़ा मालूम पड़ता है। राजनीतिज्ञ नहीं चाहेगा कि बहुत स्वतंत्र विचार के लोग पैदा हों। **क्योंकि स्वतंत्र विचार विद्रोह का जन्मदाता है।** राजनीतिज्ञ चाहेगा कि आज्ञाकारी, अनुशासनबद्ध गुलाम पैदा हों। और अगर आदमी के जेनेटिक सेल को बदला जा सके तो राजनीतिज्ञ अपने अनुयायियों की एक जमात पैदा कर लेगा, जिसमें गुलाम आदमी होंगे जिनके पास कोई आत्मा न होगी। वे ज्यादा कुशल होंगे, लेकिन आदमी होने की बात विलीन हो गई होगी। यंत्रवत होंगे।

तो हम इसके लिए राजी भी न हों कि यह किया जाए। तब क्या उपाय हैं ?

लाओत्से, महावीर और बुद्ध जो कहते हैं अहिंसा की बात, उनकी बात में सार तो है। क्योंकि मनुष्य हिंसा के द्वारा पशु से ऊपर उठा और मनुष्य हुआ। लेकिन अब हिंसा के ही द्वारा और ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है। पशुओं का युद्ध ही समाप्त हो चुका है। आदमी और पशु के बीच अब कोई संघर्ष नहीं है। अब तो संघर्ष आदमी और आदमी के बीच है। इसीलिए आदमी आदमी के साथ हिंसा कर रहा है। क्योंकि हिंसा उसे करनी है। पशुओं से कोई संघर्ष नहीं रहा, और संघर्ष करने की वृत्ति उसके भीतर है, तो आदमी आदमी से लड़ता है। बहाने करता है कभी हिन्दूमुसलमान से लडने का, कभी ईसाई मुसलमान से, कभी कम्युनिस्ट गैरकम्युनिस्ट से, कभी हिन्दुस्तान पाकिस्तान से, कभी अमरीका वियतनाम से। लेकिन यह सब बहाने हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो आदमी लड़ना चाहता है। क्योंकि लड़े बिना उसे राहत नही मिलती है। वह बेचैन है भीतर। और किससे लड़ने जाए? या तो पशुओ से ही लड़ता रहे। इसलिए आप एक मजे की बात देखेंगे।

पशुओ के शिकारी आमतौर से भले आदमी होते हैं। अगर आपकी किसी शिकारी से दोस्ती है तो आप पाएगे कि वह बहुत मिलनसार और अच्छा आदमी है। क्योकि सारी हिंसा वह पशुओ के साथ निकाल लेता है; आदमियो के साथ हिंसा निकालने की कोई जरूरत नही रह जाती।

पर जिनको हम सज्जन कहते हैं, जो चीटी भी न दबायेंगे, वे भले आदमी नही मालूम होते। उनके साथ रहना दुखद मालूम होगा। उनके साथ घटे भर रहना बोर्डम है, वह ऊब पैदा करेगा। और अगर उनके साथ महीना भर रहना पड़े तो आप आत्महत्या का विचार करने लगेंगे। सज्जनो से दूर ही रहना अच्छा मालूम पड़ता है। वे भारी पडते हैं, वे बहुत भारी पडते हैं। क्यो? उबलती हिंसा उनके भीतर भरी है। वही उनका बोझ है। वे तरकीबो से उसे निकालते रहते हैं। वे आपको न मारेंगे लकड़ी उठाकर, लेकिन विचारो से आप पर हमला करते रहेगे। वे आपकी छाती मे छुरा नहीं भोकेंगे, लेकिन ऐसे शब्द भोक देंगे जो छुरे से भी गहरे चले जाते हैं। वे आपको गाली न देंगे, लेकिन तरकीब से बता देगे कि आप आदमी, अभी आदमी नही हैं।

सभी तथाकथित साधु यही समझा रहे हैं लोगो को कि तुम पतित हो, पापी हो, अपराधी हो। उनका सारा खेल ही एक है कि दूसरा अपराधी सिद्ध हो जाए। दूसरे को नीचा दिखाने में उनकी हिंसा निकल रही है। हिंसा बहुत रूपो में निकल सकती है। दूसरे को चोट पहुचाना अनेक तरह से हो सकता है। एक नजर निन्दा की और हिंसा हो जाती है। किसी साधु-महात्मा के पास आप सिगरेट पीते चले जाएं और तब उनकी नजर देखें। तब वह नजर बता देगी कि तलवार इतनी बुरी तरह नही काटती है।

मैंने सुना है कि पुरी के शंकराचार्य से एक आदमी मिलने गया। पुरी के शंकराचार्य की प्रशंसा में लिखे गये एक लेख में मैंने यह पढ़ा था। जिसने लिखा है, उसने जरा भी नहीं सोचा कि क्या लिख रहा है। बीस-पच्चीस उनके भक्त पास बैठे थे। उस आदमी ने शंकराचार्य से पूछा कि ब्रह्म को कैसे पाया जाए, कुछ रास्ता बताइए। शंकराचार्य ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा: वह आदमी फुल पैन्ट और शर्ट पहने हुए था। वह अपराध की बात थी। उसके उत्तर में शंकराचार्य ने कहा कि जनाब, यज्ञोपवीत पहने हुए हो? वह आदमी डर गया; नहीं पहने हुए था। तो शंकराचार्य ने कहा, तुम समझते हो कि ऋषि-मुनि हमारे नासमझ थे; बिना यज्ञोपवीत के हो और ब्रह्मज्ञान की खोज शुरू कर दी।

बीस-पच्चीस नासमझ जो वहां इकट्ठे होंगे, वे बड़े प्रसन्न हुए होंगे, क्योंकि वे यज्ञोपवीत पहने हुए थे। और वह आदमी अचानक निन्दित हो गया। उस आदमी को लगा होगा कि जमीन फट जाए तो मैं समा जाऊं। कहां फस गया? यह प्रश्न मैंने कहां से पूछा?

लेकिन अभी तो यह शुरुआत थी। शंकराचार्य ने कहा, मैं यह भी पूछना चाहता हू कि पेशाब खड़े होकर करते हो कि बैठ के? क्योंकि फुल पैन्ट पहने हुए हो, बैठ के करना बहुत मुश्किल पड़ेगा। खड़े होकर पेशाब करते हो और ब्रह्मज्ञान की कोशिश करते हो?

इसको क्या कहिएगा? इससे बड़ी हिंसा और कुछ हो सकती है?

इस आदमी के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है, वह सिर्फ सज्जन ही कर सकते हैं। ऐसे दुर्व्यवहार! लेकिन हमें पता नहीं चलता कि दूसरे को बुरा देखने की चेष्टा में जो रस है, वही हिंसा है। **दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा में जो रस है, वही हिंसा है।**

आदमी हिंसा से पशुओं से जीता। और हिंसा अगर बनी रही तो आदमी अपने से ही हार जाएगा। आज जो खतरा है, वह हिंसा के कारण ही है। क्योंकि हमारे पास इतने साधन हो गए हैं कि अगर हिंसा की हमारी वृत्ति जारी रही तो आदमी जमीन पर ज्यादा देर नहीं रहेगा। **हम अपना आखिरी अध्याय लिख रहे हैं। इतिहास आखिरी किनारे खड़ा है।** हिंसा से ही हम जीत कर आयें हैं, लेकिन अब हिंसा ही हमारी मौत बनेगी। क्योंकि वह जो आदत हमने सीखी है, उसके दो परिणाम हो रहे हैं।

एक तो हमें रोज हिंसा चाहिए। खयाल करें, हर पन्द्रह वर्ष में हमें एक बड़ा युद्ध चाहिए। दस-पन्द्रह साल में हम इतनी हिंसा इकट्ठी कर लेते हैं कि बड़ा युद्ध न हो तो निकास नहीं होगा। और एक-एक आदमी को दो, चार या आठ दिन में क्रोध और हिंसा का उपाय चाहिए। नहीं तो आग जलने लगती है और आदमी बुखार से ग्रस्त हो जाता है। निकास चाहिए तो हम निकालते रहते हैं।

यह जो इकट्ठी होती हिंसा है, यह कितने रूपों में आज निकल रही है, उसे देखें। नाम या बहाने जो भी हो; विद्यार्थी शिक्षकों पर निकाल रहे हैं; बेटे बाप पर निकाल रहे हैं। पुरुष सदा से स्त्रियों पर निकालते रहे हैं। और अब पश्चिम में स्त्रियां पुरुषो पर निकाल रही हैं। ऐसा समझ में पड़ता है कि कारण न भी हो तो भी हिंसा चाहिए।

अभी मैं हिप्पी-विचारक की एक किताब पढ़ रहा हूं। किताब का नाम है डू इट। किताब में लेखक ने सुझाव दिया है कि जो भी कानून है, उसे तोडो। यह भी फिक्र मत करो कि क्यों तोड़ रहे हो। **तोड़ना ही लक्ष्य है।** जिसको भी मना किया जाता हो, वह काम करो; इसकी फिक्र मत करो कि उसका क्या फल होगा। उसे तोड़ना ही लक्ष्य हो। लेखक ने सुझाव दिया है कि किताबें जला दो, बाइबिल जला दो, चर्चों में आग लगा दो, यूनिवर्सिटीज को फूक डालो! क्यो तो वह कहता है कि क्यो का सवाल नही है। आग है क्रान्ति। और हमें सब जला डालना है, ताकि हम सब फिर से शुरू कर सकें।

उसने बडी मजे की बात कही है। उसने यह कहा कि हमें कुछ चीज शुरू करने का मौका ही नही बचने दिया लोगो ने। पुराने लोग सभी कुछ कर गए हैं। हमें कुछ करने का मौका ही नहीं है। **सब जला दो, ताकि हम फिर से शुरुआत कर सकें।**

यह जो युवक कह रहा है, यह कोई एक युवक की बात नही है। आज यूरोप और अमरीका में लाखो युवक इस बात से राजी हैं। बडी अजीब बातें हैं।

अभी मै एक छोटी पुस्तिका देख रहा था, जिसमें सुझाव दिया गया है कि तुम्हें जो पहली साध्वी मिले, उसके साथ व्यभिचार करो, जो पहली नन, साध्वी मिल जाए, उसके साथ तत्काल व्याभिचार करो। क्यो ?

उस लेखक ने कहा है कि दुनिया ने गरीबो की क्रान्तिया देखी हैं अब तक। तो गरोब कुछ पाने के लिए क्रान्ति करता है स्वभावत.। अमरीका उस क्रान्ति को देखेगा, जो अमीरो के लडकों की क्रान्ति है। वे कुछ पाने को क्रान्ति नही करते, **वे कुछ मिटाने को, कुछ खोने को, नष्ट करने को क्रान्ति करते हैं।**

अभी कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के कैम्पस में एक नई रॉल्सरायस गाड़ी खरीद कर उसमें उन्होने आग लगाई, उसकी होली जलाई। **खरीद कर नई गाड़ी जला डाली।** और जब पत्रकारो ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो तो उन्होंने कहा कि हम सिर्फ तुम्हारे सिम्बल को, तुम्हारे प्रतीक को, रॉल्सरायस को आग लगा रहे हैं।

न्यूयार्क एक्सचेन्ज में जाकर लडकों ने डालर के नोटों में आग लगाई और डालर लुटाए। लोगो ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे प्रतीक को नष्ट कर रहे हैं। किस लिए नष्ट कर रहे हो? क्रुद्ध हैं, हम सब बस क्रुद्ध हैं।

हमारी समझ में नहीं आ सकती है यह बात; लेकिन जल्दी ही आ जाएगी समझ में। क्योंकि अगर क्रोध बौखला जाए और कारण न मिले तो क्या करेगा? बच्चे स्कूल तोड़ रहे हैं, फरनीचर मिटा रहे हैं, कांच तोड तोड रहे हैं। हम सोचते हैं कि शायद कोई वजह है। कोई वजह नही है। आदमी हिंसक है। और आदमी को हिंसा के अब उपाय नहीं हैं।

मनसविद कहते हैं कि जो लोग लकड़ी काटते हैं जंगल में, पत्थर तोडते हैं, उनकी हिंसा पत्थर तोडने और लकडी काटने से निकल जाती है। जब सांझ को आठ घंटे लकडी काट कर कोई लौटता है, तब पत्नी से प्रेम से मिलता है, बच्चों के साथ गपशप करता है। उसकी हिंसा वह जंगल में निकाल आया है। लेकिन एक आदमी आठ घंटे दफ्तर में बैठकर घर चला आ रहा है। उसकी हिंसा कही निकली नही, भरा हुआ आ रहा है। वह घर में उसे निकालेगा। वह रास्ते खोजेगा घर जाते से कि हिंसा निकल जानी चाहिए। जो आदमी पत्थर तोड़ रहा है, उसकी हिंसा निकल रही है। लेकिन अगर पत्थर तोडनेवाला आदमी अचानक पत्थर नही तोडे तो कुछ और तोडेगा। तोड़े बिना उसे मजा नहीं आएगा।

एक तो परिणाम यह हो रहा है कि हिंसा उबल कर व्यर्थ, अकारण टूटती है। और दूसरा परिणाम यह हो रहा है, यह जो अकारण टूटती हिंसा है, इसकी मौजूदगी के कारण भीतर के सब रस-स्रोत विषाक्त हो जाते हैं। आदमी प्रेम भी करता है तो उसमें भी हिंसा समाविष्ट हो जाती है। आदमी किसी को गले भी लगाता है तो उसमें भी दूसरे को मरोड डालने का, तोड डालने का भाव समाविष्ट हो जाता है। क्योंकि जो भीतर छिपा है, वह सब तरफ छा जाएगा।

इसलिए अगर दो प्रेमियों को प्रेम करते देखें और अगर वे थोडे ईमानदार हों और अपने को समझते हो, तो वे भी समझ पाएंगे कि उनके प्रेम में भी थोडी हिंसा है। दो प्रेमी चुबन लेते-लेते एक-दूसरे को काटने भी लगेंगे, दात भी गड़ा देंगे। वात्सायन ने तो दात गडाया नही जिसने, उसने प्रेम किया ही नहीं, ऐसा लिखा है। जब तक दात के निशान न छूट जाएं प्रेयसी पर या प्रेमी पर, तब तक भी कोई प्रेम है! वात्सायन ने तो लिखा है कि नाखून ऐसे बनाकर रखना चाहिए प्रेमी को कि जब वह मास में गड़ा दे तो निशान छूट जाएं और रक्त प्रकट हो जाए। नख-दश को प्रेम की प्रक्रियाओ में एक उसने बताया है।

अभी वात्सायन की किताब पश्चिम में काफी पढ़ी जा रही है। पूर्व मे तो अब कोई पढ़ता नही है। उसका कारण है। पूरब में यह किताब तब लिखी गई थी, जब हम भी समृद्ध थे। और हमारी भी हिंसा कही मौका नही पाती थी तो हमने प्रेम से निकाली थी वह हिंसा। आज वात्सायन और पंडित कोक की किताबें सारी दुनिया की भाषाओ में अनुवादित होकर प्रचारित हो रही हैं। और पश्चिम के लोग आहआदित होते हैं पढ कर वात्सायन को और कहते हैं कि गजब के लोग थे

हिन्दू, क्या-क्या प्रेम की तरकीबें उन्होंने हजारो साल पहले निकाल दी थी !

लेकिन नाखून का गडाना किस अर्थ में प्रेम हो सकता है ? इसी अर्थ में हो सकता है कि प्रेम के बहाने थोड़ी सी हिंसा बह गई। तो फिर आदमी होशियार है, होशियारी से हिंसा निकालता है।

फ्रांस में हुआ मार्क्विस दिसादे। उसने सोचा कि जब नाखून गडाने से इतना प्रेम होता है तो फिर उसने तैयार कर लिये लोहे के नाखून ! और वह अपने पास एक छोटी सी थैली रखता था जिसमें कोड़ा, लोहे के नाखून और और औजार रखता था, प्रेम के औजार। और बड़ा मजा तो यह है कि प्रेयसिया उसकी बहुत थी; वह मार्क्विस था। और उसकी प्रेयसियो का कहना था कि जिसनें मार्क्विस दिसादे का प्रेम पा लिया, उसे फिर दूसरे का प्रेम फीका मालूम पड़ेगा। पडेगा ही। क्योंकि वह नग्न करके कोडे मारता था और लोहे के नाखून शरीर में गड़ाता था। और स्त्रियों ने कहा कि पहले तो यह बात बहुत घबडानेवाली मालूम पडती थी, लेकिन पीछे इसमें रस आने लगता था। और इसकी इस हिंसा से, उसके इस कोडे के मारन से, उसके लोहे के नाखून गड़ाने से पैशन जागता है, वासना जाग कर उद्दाम हो जाती है।

यह मार्क्विस दिसादे विक्षिप्त है, पागल है। लेकिन सभी लोग थोडी-बहुत मात्रा में वैसे ही है। कोई लोहे का नाखून खोज लेता है, यह आविष्कारक बुद्धि है। कोई अपने ही नाखून से काम चलाता है, यह जरा गैर-आविष्कारक बुद्धि है।

और अगर हिंसा को लोग प्रेम में रोक लेते हैं तो यह दूसरे मार्गों से निकलती है। इसलिए पति-पत्नी दिनरात लड़ते रहते है। मा-बाप, बेटे-मा, बेटे-पिता दिन-रात लडते रहते है। यह संघर्ष भी इसी कारण है कि वह जो हिंसा भीतर भरी है, उसे निकास का कोई भी उपाय नही है तो वह कही भी बह रही है। अब झरना कही से भी फूट कर बह रहा है।

मनुष्य तब तक मनुष्य नही हो पाएगा, जब तक वह इस भीतर की हिंसा से मुक्त न हो जाए। और दो उपाय हैं। एक तो स्किनर और दूसरे वैज्ञानिक जो बताते हैं कि हम आदमी के सेल्स को बदल दें, वह है। वह तो कुछ हितकर मालूम नही पड़ता। हो भी सके तो भी करने योग्य नही है, तो भी उसके साथ ही आदमी मर जाएगा।

आदमी के भीतर जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना घटती है, **वह स्वेच्छा से घटती** है। और जब स्वेच्छा का कोई उपाय न हो, तब जो भी घटता है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है। अगर आप क्रोध को स्वेच्छा से छोड देते हैं **तो आप में करुणा पैदा होती है।** और अगर क्रोध के सेल्स और हरमोन्स अलग कर दिये जाएं और ग्रन्थियां काट दी जाए, तो आपमे करुणा पैदा नही होती, **सिर्फ आप क्रोध की दृष्टि से नपुंसक हो जाते हैं।** इस फर्क को ठीक से समझ लें।

अगर क्रोध के ऊपर कोई स्वेच्छा से उठता है तो क्रोध की शक्ति ही करुणा बनती है। अगर क्रोध को कोई काट ही डालता है सिर्फ शरीर के तल पर तो भीतर चित्त और आत्मा के तल पर तो क्रोध की ग्रन्थि मौजूद ही रहती है। शरीर के तल पर कट जाने से सिर्फ आप वैसी ही हालत में हो जाएंगे कि जैसे कोई आदमी हमला करना चाहे और उसके हमने दोनों हाथ काट दिये हैं तो वह हमला नहीं कर सके। आपकी हालत वैसी हो जाएगी, जैसे एक व्यक्ति को हम ब्रह्मचारी कहें, क्योंकि हमने उसके वीर्य के सारे संस्थान काट डाले हैं। यह ब्रह्मचारी नहीं है। उसके ब्रह्मचर्य का कोई अर्थ ही नहीं है। और अब यदि वह ब्रह्मचारी होना भी चाहे तो बहुत मुश्किल है ब्रह्मचारी होना। क्योंकि अब वह जगह ही न रही, जिसके ऊपर उठकर वह स्वेच्छा से इसकी घोषणा कर सके।

इसलिए बुद्ध, महावीर और लाओत्से कहते हैं कि इसकी सभावना है कि आदमी स्वेच्छा से ऊपर उठ सकता है। और जिस दिन आदमी स्वेच्छा से अपनी हिंसा के ऊपर उठता है, **उसी दिन वस्तुतः आदमी का जन्म होता है।** जब तक हम हिंसा से भरे हैं, हम एक तरह के पशु हैं, जो पशुओ से लड़ता रहता है। जिस दिन हम हिंसा से शून्य होते हैं, उस दिन हम पशुओ से बाहर निकल जाते हैं। उस दिन हम पशु नही रह जाते।

इसलिए अब हम लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।

लाओत्से कहता है, सैनिक सबसे बढकर अनिष्ट के औजार हैं। क्यो सैनिक को अनिष्ट का औजार कहा जाए? **इसीलिए कि हिंसा पशुता है।** अगर हिंसा पशुता है तो ही सैनिक अनिष्ट का औजार है। अगर हिंसा पशुता नही है तो फिर सैनिक अनिष्ट का औजार नहीं, बल्कि श्रेष्ठ का साधन है।

नीत्से ने यह कहा है; क्योंकि नीत्से बिलकुल उलटा सोचता है। नीत्से सोचता है, **सैनिक मनुष्य के जीवन का सर्वश्रेष्ठ फूल है।** नीत्से कहता है कि सैनिक को देखकर मेरी आत्मा विस्तीर्ण हो जाती है, फैल जाती है, और साधु को देखकर सिकुड़ जाती है। नीत्से कहता है कि मैंने इस जगत में जो सबसे श्रेष्ठ सगीत सुना है, वह वही है जब सैनिक अपनी नगी तलवारो को लेकर धूप में अपने पैरो की लयबद्ध आवाज करते हुए गुजरते हैं। उनके पैरों की जो लयबद्ध आवाज है, वही श्रेष्ठतम सगीत है। क्योंकि उसके साथ ही जगता है पौरुष, उसके साथ ही जगती है शक्ति की आकांक्षा। नीत्से कहता है **शक्ति को पाने की आकांक्षा ही मनुष्य की आत्मा है।**

अगर हम नीत्से के व्यक्तित्व में उतरें तो बडी हैरानी होगी। नीत्से कमजोर आदमी था, और दर्शन उसने लिखा है शक्ति का। नीत्से बिलकुल कमजोर आदमी था, लेकिन बात करता है वह विल टू पावर का। वह कहता है कि शक्ति पा लेना ही एकमात्र लक्ष्य है जीवन का। और आदमी वह कमजोर था; जिन्दगी के अधिक दिन वह बीमार था।

एडलर ठीक कहता है कि लोग अपनी हीनता की परिपूर्ति कर लेते हैं। नीत्से कमजोर है, और शक्ति की बात करता है। और हमने महावीर, बुद्ध और लाओत्से से ज्यादा शक्तिशाली आदमी नहीं देखे, और वे अहिंसा की बात कर रहे हैं। असल में शक्तिशाली शक्ति की बात ही क्यों करेगा; कमजोर ही शक्ति की बात करता है। जो हमारे पास नहीं है, वही हम चाहते हैं। जो हमारे पास नहीं है, उसे ही हम मागते हैं।

नीत्से की दृष्टि में सैनिक श्रेष्ठतम है। और नीत्से की फिलॉसॉफी का परिणाम हुआ कि हिटलर पैदा हो सका और सारी दुनिया दूसरे महायुद्ध से गुजरी। उस युद्ध का असली श्रेय या अपयश, नाम या बदनामी, हिटलर की नही है; उसकी असली जड़ नीत्से में है। हिटलर अपने तकिये के पास नीत्से की किताब सदा रखे रहता था। किताब का नाम है विल टू पावर। और हिटलर ने कहा है कि जब भी मन मेरा डरने लगता है, या डावाडोल होने लगता है, तत्काल मैं नीत्से की किताब उठा कर उसका कोई एक भी पन्ना पढ लेता हूँ, तो प्राण फिर भर जाते हैं भीतर, ओज फिर लौट आता है, बल फिर साथ खड़ा हो जाता है।

नीत्से कहता है कि सैनिक है श्रेष्ठतम फूल, और हिंसा है मनुष्य का कर्तव्य। जो हिन्सा से विमुख है, वह मनुष्य ही न रहा। इसलिए जीसस को, बुद्ध को नीत्से कहता है कि ये स्त्रैण हैं। ये भी कोई पुरुष हैं जो प्रेम की और करुणा की बात कर रहे है! ये कमजोर लोग हैं, नीत्से कहता है। और ये अपनी कमजोरी के लिए दर्शन-शास्त्र रच रहे हैं! ये अपनी कमजोरी स्वीकार नही करना चाहते है।

नीत्से कहता है, जीसस कहते हैं कि जो तुम्हारे गाल पर चांटा मारे, दूसरा भी उसके सामने कर दो। नीत्से कहता है कि यह सिर्फ तरकीब है कमजोरी को छिपाने की। दूसरा तो तुम्हे सामने करना ही पडेगा; क्योंकि तुम इतने कमजोर हो, न करोगे तो तुम्हारा दुश्मन तुम्हारा दूसरा सामने कर लेगा। नीत्से कहता है, कमजोर भी अपनी फिलॉसॉफी, अपना तत्त्वदर्शन निर्मित करता है। और वह यह अपने को समझाना चाहता है कि तुमने मुझे मारा नही, मैंने ही तुम्हे मारने का मौका दिया; मैं खुद ही अपना मुंह तुम्हारे सामने किए दे रहा हू। इस भांति वह सान्त्वना खोजता है।

नीत्से के लिए तो यह सूत्र बडी हैरानी का होता। अगर उसने ताओ-तेह-किंग पढ़ा होता तो फाड़कर फेंक देता किताब, आग लगा देता। क्योंकि लाओत्से कहता है कि सैनिक सबसे बढकर अनिष्ट के औजार होते हैं। क्योंकि सैनिक का मतलब यह है कि जिसे हमने हिंसा के लिए तैयार किया है — व्यवसायी हिंसक, प्रोफेशनल। हमने एक धंधे के लिए ही उसको तैयार किया है, एक खास काम के लिए उसको तैयार किया है कि वह हिंसा करेगा।

सैनिक को हम तैयार इस तरह करते हैं कि उसमें कोई मानवीय गुण न रहे

जाए। सैनिक का सारा प्रशिक्षण ही ऐसा है कि उसके भीतर मस्तिष्क न रह जाए, हृदय न रह जाए; वह यंत्र हो जाए। इसलिए हम सालों तक उससे कोई और काम नही लेते हैं। हम क्या करवाते हैं, हम लेफ्ट-राइट परेड करवाते हैं। घंटों बायें घूमो, दायें घूमो, बायें घूमो, बाया पैर ऊंचा करो, दाया पैर नीचा करो! हम क्या करवा रहे हैं उससे? और वर्षों तक उससे हम यह क्यो करवा रहे हैं?

इसके पीछे एक पूरा मनोविज्ञान है। क्योंकि जो आदमी वर्षों तक बाएं घूमो-दायें घूमो करता रहेगा, वह धीरे-धीरे कंडीशड हो जाएगा; आज्ञा, और उसके भीतर कोई विचार नहीं उठेगा; आज्ञा और कृत्य के बीच विचार नहीं होगा। बायें घूमो सुनकर सैनिक सोचता भी नहीं है कि मैं घूमूं या न घूमूं, या कि घूमने का कोई लाभ है, या क्यों व्यर्थ घुमा रहे हो? नही, इस सब की सुविधा उसे नही है। उसे सिर्फ घूमना है। तो जब उससे कहा जाता है कि गोली चलाओ तो वह चलाता है। तब वह सोच नही सकता कि मै क्यों चलाऊं, या सामने जिसे मैं मार रहा हू, उसे मारना जायज भी है? या मैं कौन हू जो उसे मारू? या और मैं क्या पा रहा हूं उसे मारकर?

कोई सौ, दो सौ रुपए महीने की नौकरी कर रहा है एक सैनिक। अपनी रोटी के लिए वह हत्या का धधा कर रहा है। और वह हजार लोगो को काट सकता है। जिस आदमी ने हीरोशिमा पर ऐटम गिराया, उससे बाद में जब पूछा गया, तो उसने कहा कि मैने तो सिर्फ आज्ञा का पालन किया, मेरा और कोई जिम्मा नही है। जब उस आदमी से पूछा गया कि रात तुम सो सके हिरोशिमा पर ऐटम गिरा कर, तब उसने कहा कि मै बिलकुल आनन्द से सोया, क्योंकि मै अपना काम पूरा कर आया था। ड्यूटी पूरी हो गई तो फिर मै सो गया।

वहां एक लाख बीस हजार आदमी जलकर राख हो गए — इस आदमी के गिराने से। अगर यह आदमी सोचे कि मै पा क्या रहा हू, तीन सौ रुपए महीना, कि पाच सौ रुपये महीना, कि मै रोटी ही तो कमा रहा हूं, रोटी तो भिखमगे भी सडक पर भीख माग कर कमा लेते हैं, तो मै क्यो रोटी कमाने के लिए एक लाख बीस हजार आदमियो की हत्या का कारण बनू, तो शायद यह आदमी कहे कि मैं यह आज्ञा मानने से इकार करता हू। लेकिन यह मौका नही आएगा। अगर हम किसी आदमी को सीधा ऐटम बम गिराने के लिए भेज दें तो वह मौका आएगा। इस-लिए वर्षों हम इसको लेफ्ट-राइट कराते हैं, इसके सोचने की क्षमता को मारते हैं, इसके भीतर बुद्धि को क्षीण करते है। फिर यह यंत्रवत हो जाता है।

विलियम जेम्स मजाक में कहा यह किस्सा कहता था। एक दिन ऐसा हुआ कि एक होटल मे बैठकर वह अपने कुछ मित्रो से बात कर रहा था। वह बडा मनो-वैज्ञानिक था अमरीका का और वह कह रहा था कि आदमी कैसे सस्कारित, कंडीशड हो जाता है। और तभी एक रिटायर्ड सैनिक सडक से गुजर रहा था

अण्डे अपने सर पर लिए। और विलियम जेम्स ने एक जिन्दा उदाहरण देने के लिए चिल्लाकार कहा, अटेन्शन, सावधान ! वह आदमी जो कि रिटायर्ड था कोई दस साल से, उसके अण्डे की टोकरी नीचे गिर गई और वह अटेन्शन में खड़ा हो गया। जब वह खड़ा हो गया, तब उसे समझ में आया कि अरे, यह क्या हुआ ? बहुत नाराज हुआ और उसने कहा, क्या मजाक करते हैं, सब अण्डे फूट गये। पर विलियम जेम्स ने कहा कि तुम्हें हक था कि तुम अटेन्शन न करते।

सैनिक ने कहा कि वह हक तो हम खो चुके हैं। दस साल हो गये हैं हमें छोड़े हुए नौकरी, लेकिन यन्त्रवत हैं। तुमने कहा तो सोचने का मौका नहीं रहा; नहीं कहने या करने का सवाल ही नही उठता। और हमने किया, यह कहना ठीक नहीं है, अटेन्शन हो गया — यन्त्रवत।

तो सैनिक की तैयारी है यंत्रवत होने की।

और मनुष्य का जो सर्वाधिक पतन हो सकता है, वह यन्त्रवत होना है। पशु मनुष्य का पतन नहीं है, बड़ा पतन नही है। आदमी दो सीढ़ियाँ नीचे गिर सकता है। आदमी चाहे तो पशु हो सकता है, लेकिन पशु की भी एक गरिमा है। क्योंकि पशु भी सोचता तो है थोड़ा, पशु भी अनुभव तो करता है थोड़ा। पशु भी निर्णय तो लेता है कभी। आपका कुत्ता है, उसे भूख भी लगी हो, लेकिन आप बेमन से दुतकार के रोटी डाल दें तो वह भी रोटी खाने को तैयार नही होगा। वह जो दुतकारा है, वह दीवार बन गया। वह तैयार नही होगा। वह भी कुछ अनुभव करता है, कुछ सोचता है, कुछ निर्णय लेता है। उससे भी बडा पतन है यन्त्रवत हो जाना। तब कोई निर्णय का सवाल नही रहता।

इसलिए लाओत्से कहता है कि सैनिक अनिष्ट का साधन है। क्योंकि वह मनुष्य की अधिक—तम पतन की अवस्था है। पर यह तो बडी बुरी बात लाओत्से कह रहा है। क्योंकि फिर क्या होगा हमारे सेनापतियो का ? हमारे नेपोलियन, हमारे सिकन्दर, हमारा सारा इतिहास तो सैनिको का इतिहास है। इतिहास मे जो चमकदार नाम हैं, वे सैनिको के नाम हैं।

लेकिन हमारा सारा इतिहास हिंसा का इतिहास है। और हमारा सारा इतिहास आदमियत का नही है; हमारा सारा इतिहास, आदमी अभी भी पशु है, इस बात का इतिहास है। स्वभावत उसमे सैनिक श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। उसमें सैनिक के तगमें चमकते हैं। उसकी बाहो पर लगी रंगीन पट्टिया इन्द्रधनुष बन जाती है — पूरे इतिहास पर।

लाओत्से कहता है, सैनिक अनिष्ट के औजार हैं; क्योंकि व्यवसायी हिंसक हैं। इससे तो गैर-व्यवसायी हिंसक भी ठीक हैं। अगर कोई आदमी आपका अपमान करे और आप क्रोध से भर जाए तो इस तरह क्रोध में भी एक गरिमा है। लेकिन व्यवसायी हिंसक क्रोध से भी नही भरता और हत्या करता है। सैनिक को क्रोध

का कोई कारण नहीं है। वह सिर्फ धंधे में है, वह अपना काम कर रहा है।

सैनिक और वेश्या में बड़ी निकटता है। वेश्या शरीर को दे देती है बिना किसी भाव के। वहां कोई प्रेम नहीं है, कोई घृणा नहीं है; बड़ी तटस्थता है। इसलिए तो पैसे पर शरीर को बेचा जा सकता है। वेश्या को हम सब पापी कहते हैं। लेकिन वेश्या का कसूर क्या है कि वह अपने शरीर को पैसे पर बेच रही है। यही कसूर है न। सैनिक क्या कर रहा है ? वह भी अपने शरीर को पैसे पर बेच रहा है। और अगर दोनों में चुनना हो तो वेश्या बेहतर है। क्योंकि वेश्या सिर्फ अपने शरीर को बेच रही है, किसी दूसरे के शरीर की हत्या नहीं कर रही है। सैनिक अपने शरीर को बेच रहा है दूसरे की हत्या करने के लिए।

लेकिन वेश्या अपमानित है और सैनिक सम्मानित है। वेश्या से किसी को क्या बड़ा नुकसान पहुंचा है ?

विचारशील लोग कहते हैं कि वेश्याओं के कारण बहुत से परिवार बचे हैं; नुकसान तो किसी को पहुंचा नहीं। असल में वेश्याएं न हों तो सतियों का होना बहुत मुश्किल हो जाए। वहां वेश्या है तो घर मे पत्नी सती बनी रहती है। और पत्नी भी बहुत डरती नहीं है पुरुष के वेश्या के पास जाने पर; पत्नी डरती है पड़ोसिन के पास जाने से। क्यो ? क्योंकि वेश्या से कोई खतरा नही है; क्योंकि कोई लगाव नही है, कोई इन्वॉल्वमेन्ट नहीं है। वह जाएगा और आ जाएगा। वेश्या के पास जाना एक बिलकुल तटस्थ प्रक्रिया है। वह पैसे का ही सम्बन्ध है। लेकिन पड़ोसिन के पास अगर पुरुष चला जाए तो फिर लौटना आसान नही है। क्योकि पैसे का सम्बन्ध नही है; भाव का सम्बन्ध हो जाएगा।

इसलिए वेश्याओ से किसी को कोई चिन्ता नही है। पुराने राजा–महाराजाओं की औरतें पास मे बैठती और वेश्याओं को राजा नचाता रहता और वे भी देखती रहती थी। इससे कोई अड़चन न थी। क्योकि उससे सती होने में कोई बाधा नही पड़ती थी।

बल्कि जो लोग समाज की गहराई में खोज करते हैं, वे कहते हैं कि उससे सुविधा बनती है। सुविधा यह बनती है कि समाज व्यवस्थित चलता जाता है। कुछ स्त्रियो के शरीर बिकते रहते हैं, समाज का घाव सब तरफ नही फूटता है। वे कुछ स्त्रियां उस घाव को अपने ऊपर ले लेती हैं। वह जो बीमारी सब तरफ फैल जाती, वह सब तरफ नही फैलती है; उसकी धाराएं बन जाती हैं।

जैसे हमारे घर का गदा पानी नालियो से बह जाता है। तो नालिया आपके घर की सफाई के लिए जरूरी हैं; नही तो पूरी सड़कों पर पानी फैल जाएगा। वे वेश्याएं नालियो का काम कर जाती हैं। और जो गदगी घर-घर में इकट्ठी होती है, वह वहां से बह जाती है।

जब तक घर में गंदगी होती है, तब तक वेश्या रहेगी। जिस दिन घर का

सम्बन्ध, पति और पत्नी का सम्बन्ध प्रेम का गहन सम्बन्ध हो जाएगा, कोई गंदगी पैदा न होगी, तभी वेश्या मिटेगी। नही तो वेश्या मिटाई नही जा सकती। क्योंकि वह जरूरत है।

लेकिन वेश्या को हम पापी कहते हैं। और अगर वेश्या मिल जाए तो हमारे मन में तत्क्षण निन्दा आ जाती है। लेकिन सैनिक क्या कर रहा है? सैनिक भी शरीर बेच रहा है रोटी के लिए, और साथ में दूसरे के शरीरों की हत्या भी कर रहा है।

लाओत्से कह रहा है, सैनिक अनिष्ट के औजार होते हैं, और लोग उनसे घृणा करते हैं। लेकिन इसे हम थोड़ा समझ लें। लोग साधारणत: सैनिक से घृणा करते हैं; साधारणतः पुलिसवाले को कोई अच्छी नजर से नहीं देखता। जब तक आप सुरक्षित हैं और शांत हैं और जिंदगी में कोई तकलीफ नही, तब तक पुलिस और सैनिक को कोई अच्छी नजर से नही देखता। लेकिन जैसे ही तकलीफ होती है, वैसे ही पुलिस ही आपकी रक्षक हो जाती है। जैसे ही बेचैनी फैलती है, युद्ध की आशंका होती है, सैनिक ही आपका सब कुछ हो जाता है।

इसलिए सैनिक सदा उत्सुक रहते हैं कि युद्ध चलता रहे। पुलिसवाला भी उत्सुक रहता है कि कुछ उपद्रव होता रहे। क्योकि जब उपद्रव होता है, तभी वह सम्मानित है। उपद्रव खोया तो वह खो जाता है। यह आपने देखा, हिंदुस्तान और पाकिस्तान का थोड़े दिन युद्ध हुआ, तो सेनापतियो के नाम अखबारों में सुर्खिया बन गये। धीरे-धीरे अब कम होते जा रहे हैं वे नाम, लेकिन अब भी वे चल रहे हैं। साल-छह महीने उपद्रव नही हुआ तो आप भूल जाएंगे कि कौन है सेनापति।

सैनिक की प्रतिष्ठा तभी है, जब उपद्रव चल रहा हो; अन्यथा लोग घृणा करते हैं। क्योकि लोग भी निरन्तर अनुभव तो करते है कि यह हिंसा का व्यवसाय है, यह हत्या का धधा है; सब तरह से गलत है। फिर भी कभी-कभी हम इसे ठीक मानते है। अगर एक आदमी किसी की हत्या कर दे तो वह अपराधी है और उसे फासी की सजा होगी। और एक आदमी युद्ध में हजार की हत्या करता है तो वह सम्मानित होता है। मरने की बात तो एक ही है; मारने की बात तो एक ही है। लेकिन कभी वही अपराध है, और कभी वही सम्मान बन जाती है। तो गहरे में तो हम जानते हैं कि सैनिक कोई शुभ लक्षण नही है।

इसलिए लाओत्से कहता है, और लोग उनसे घृणा करते हैं। और ताओ से युक्त धार्मिक पुरुष उनसे बचता है।

हमने सुना है कि धार्मिक पुरुष वेश्या से बचता है; लेकिन कभी आपने यह भी सुना है कि धार्मिक पुरुष सैनिक से बचता है? नही, आपके खयाल में यह नही होगा। लेकिन लाओत्से ठीक कह रहा है। वेश्या से भी ज्यादा सैनिक से बचना

जरूरी है धार्मिक पुरुष के लिए। क्योंकि सैनिक का प्रयोजन ही एक है कि आदमी अभी आदमी नहीं हुआ है, इसलिए उसकी जरूरत है। वह सबूत है हमारे पशु होने का।

आपके लिए जेल की जरूरत है, सिपाही की जरूरत है, अदालत की जरूरत है, मजिस्ट्रेट की जरूरत है। ये सब प्रतीक हैं हमारे चोर-बेईमान होने के। मजिस्ट्रेट अकड़कर अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ है; वह हमारी बेईमानी का प्रतीक है। उसकी कोई जरूरत नहीं है, जिस दिन हम बेईमान नही है। सिपाही खड़ा है चौरस्ते पर; वह आपके चोर होने का, धोखेबाज होने का, नियमहीन होने का सबूत है। अगर वह चौरस्ते पर नहीं है तो आप फिर फिक्र करनेवाले नहीं हैं कि आप कार कैसे चला रहे है, बायें जा रहे हैं, कि दायें जा रहे हैं, कि क्या कर रहे हैं?

वह वहा खड़ा हैं; वह आपके भीतर जो गलत है, उसका प्रतीक है।

जिस दिन आदमी बेहतर होगा, उस दिन पुलिसवाले की चौरस्ते पर कोई जरूरत नही होनी चाहिए। जिस दिन आदमी सच में ही आदमी होगा, उस दिन अदालतें खो जानी चाहिए।

मगर हम देखते हैं, हमारे राज्यों में अदालत का जो मकान होता है, वह सबसे शानदार होता है। हाईकोर्ट जाकर देखिए। पीछे आनेवाला आदमी इतिहास मे लिखेगा कि कैसे अपराधी लोग रहे होगे कि अदालतों के इतने इतने बड़े-बडे मकान खड़े हैं। अदालतो के इतने बड़े-बड़े मकान बनाने की जरूरत क्या है? अदालत कौन गौरव है, कि अदालत कौन कलात्मक कृति है, कि अदालत कोई संस्कृति की प्रतीक है? अदालत तो हमारे भीतर वह जो पशु छिपा है, उसकी जरूरत है।

लेकिन कोई आदमी अगर जस्टिस हो जाए, चीफ जस्टिस हो जाए, तो हम समझते हैं कि और क्या होने जैसा बचता है? फलां आदमी चीफ जस्टिस हो गया! और उसे पता नही है कि वह दूसरा छोर है हमारे चोरो और अपराधियो और हत्यारो का, और उनके ऊपर ही वह खड़ा है। जिस दिन वे खो जाएगे, उस दिन वह भी खो जाएगे।

कानून बताता है कि लोग अच्छे नही हैं। जितना ज्यादा कानून, उतना बुरा समाज! जितना ज्यादा कानून की जरूरत, उतना बेहूदा समाज! कानून बढते जाते हैं हमारे रोज तो उससे डर लगता है कि कहीं आदमी और बुरा तो नही होता जाता है। क्योंकि कल दस कानून थे तो आज बीस हैं। कल तीस हो जाते हैं। तो कानून रोज बढ़ते जाते हैं। बढ़ता हुआ कानून बताता है कि आदमी बिगडते चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, ताओ से युक्त धार्मिक पुरुष सैनिक से भी बचता है। क्योंकि सैनिक आदमी के पीछे की, अतीत की घटना है; पशुओ के संघर्ष की घटना है।

सैनिक आदमी का भविष्य नही, अतीत है। और भविष्य में सैनिक नही होना चाहिए।

सज्जन असैनिक जीवन में वामपक्ष अर्थात् शुभ के लक्षण की ओर झुकता है। चीन में वामपक्ष को शुभ का लक्षण, प्रतीक माना जाता है। सज्जन असैनिक जीवन में वामपक्ष अर्थात शुभ के लक्षण की ओर झुकता है; लेकिन युद्ध के मौकों पर वह दक्षिण पक्ष अर्थात् अशुभ के लक्षण की ओर झुक जाता है। आप साधारणतः हत्या पसन्द नहीं करते हैं, लेकिन युद्ध के समय में पसन्द करते हैं। पसन्द ही नहीं करते, जो जितनी ज्यादा हत्या कर आये उसे उतना सम्मानित करते हैं। हत्यारा आदरित हो जाता है। साधारण जीवन में आप हत्या के विरोधी हैं; युद्ध के समय आपका सारा रुख बदल जाता है। आप और ही तरह के आदमी हो जाते हैं।

लाओत्से कहता है कि शान्त जीवन में सज्जन आदमी शुभ की तरफ होता है, और अशांत और युद्ध के क्षणों में वह भी अशुभ की तरफ झुक जाता है। अशुभ तो अशुभ रहते ही हैं, युद्ध के समय में जो सज्जन थे वे भी अशुभ की ओर झुक जाते हैं।

इसलिए युद्ध का समय मनुष्य के जीवन में, समाज के जीवन में, **धर्म की दृष्टि से पतन का समय है।** युद्ध के समय में बहुत सी बुराइया सहज स्वीकृत हो जाती है, जिनको हम कभी वैसे खयाल भी नही करते।

पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ। जैसा भारत मे हुआ कि जब हजारो सैनिक युद्ध पर गए, तब स्टेशन-स्टेशन पर हम सैनिक का स्वागत करने लगे, फूल-मालाए पहनाने लगे, मिठाइया भेंट करने लगे, कि स्वैटर और कपडे और ऊनी कपडे भेंट करने लगे, कुछ हम भेंट करने लगे। लेकिन आपको पता न हो कि वैसे ही **पिछले महायुद्ध में स्त्रियों ने, लड़कियों ने स्टेशनों पर जाकर सैनिकों को अपने शरीर भी भेंट किये।** एक लिहाज से कहे कि अगर भेंट ही करना है, तो स्वेटर क्या भेट कर रहे हैं; स्त्रियो ने अपने शरीर ही भेंट कर दिये, क्योंकि जो मरने--मारने जा रहा है, उसे सब कुछ दिया जाए। जो स्त्रिया कभी सोच भी नही सकती थी, क्योंकि वे साधारण स्त्रिया थी, कोई वेश्याए नही थीं, वे सोच भी नही सकती थी किसी पुरुष का ससर्ग, उन्होने अनजान, अपरिचित लोगो को अपने शरीर दिये। क्या हुआ ?

युद्ध सारे मूल्यो को उलटा देता है। जो मूल्य कल तक प्रतिष्ठित थे, वे नीचे गिर जाते हैं, और जो अप्रतिष्ठित थे वे ऊपर आ जाते हैं। युद्ध एक उत्पात की स्थिति है। इसलिए जितने ज्यादा युद्ध होते हैं, **समाज की गति धर्म की ओर उतनी ही कम हो जाती है।**

पिछले पाच हजार साल में पन्द्रह हजार युद्ध हुए। हिसाब लगा कर देखा जाए तो ऐसा दिन खोजना मुश्किल है, जब जमीन पर कही न कही युद्ध न हो रहा हो। युद्ध हो ही रहा है, युद्ध चल ही रहा है। कही न कही हम आदमी को मार रहे हैं, और मर रहे हैं। आदमी मरने और मारने के लिए है ?

फिर हम बड़े-बड़े लक्ष्य खड़े करते है। और उन लक्ष्यों के कारण ही सज्जन पुरुष भी युद्ध में सैनिक की तरफ झुक जाता है। तब हिंसा छिप जाती है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि यह हमारे जीवन की व्यवस्था का बहुत नाजुक पहलू है कि जब भी हमें बुराई करनी होती है, तब हम बहुत अच्छे, रंगीन पदों की ओट में उसे छिपा देते हैं। क्योंकि बुराई को सीधा करना मुश्किल है। और अगर हम बड़े नारे लगाए और बड़े आदर्शों की बात करें तो फिर बुराई करना आसान हो जाता है। इसलिए कोई भी युद्ध बिना आदर्श के नहीं होता है। यह कहा जा सकता है कि **जब तक दुनिया में आदर्श हैं, युद्ध से बचना मुश्किल है।** आदर्श बदल जाते हैं, लेकिन युद्ध नहीं बदलता, युद्ध जारी रहता है। आदर्श की आड में बुरा करना कितना आसान है, इसे थोड़ा खयाल करें।

अगर आप एक मस्जिद जला रहे है, और यह धार्मिक कृत्य समझ मे आए, या एक मंदिर तोड रहे हैं, और यह जेहाद हो, तो फिर मंदिर को तोडने में, आग लगाने मे, निर्दोष पुजारी को काट डालने में आपके मन में जरा भी ग्लानि न होगी। क्यो ? क्योंकि जो आप कर रहे हैं, वह दिखाई ही नही पडता; आदर्श दिखाई पडता हे। मुसलमानो ने इतने मंदिर जला डाले, इतनी मूर्तिया तोड़ डाली, इतने निर्दोष लोगो की हत्या कर डाली ! यह जेहाद है। उनका धर्मगुरु उनसे कह रहा है कि धर्मयुद्ध है, अगर जीते तो यही सुख पाओगे और अगर मर गये· युद्ध मे, तो स्वर्ग में, बहिश्त में परमात्मा का आशीर्वाद मिलेगा। तो फिर आसान है मामला।

अगर कुरान हाथ मे हो, बाइबिल हाथ मे हो, या गीता हाथ में हो, तो छुरा भोंकना बहुत आसान है। क्यो ? क्योंकि फिर छुरा छोटी चीज हो जाती है; बड़ी चीज कुरान है, बडी चीज बाइबिल है। अब कोई डर नही है। अब किया जा सकता है।

अभी हमारे मुल्क मे आजादी के बाद लाखो लोग काटे गये। हिन्दुओं ने काटे, मुसलमानो ने काटे। जिन्होने काटे, वे हमी लोग थे। कभी सोच भी नही सकते थे कि यह आदमी जो दुकान करता है, स्कूल में मास्टरी करता हे, या पढ़ता है, या लकड़ी काटता है, या घास बेचता है, यह आदमी कभी हत्या करेगा ! इसको कभी कोई सोच भी नहीं सकता था। और इसी ने हत्या की। और यह कैसे कर सका? क्योंकि इसकी हमने कभी कल्पना भी न की थी कि यह आदमी कभी किसी को काट भी सकता है। लेकिन इसने काटा। क्या हुआ ?

बड़ा आदर्श हो तो फिर आदमी के पागल होने में कठिनाई नही होती। **युद्ध आदर्शों की आड़ में चलता है।**

दूसरा महायुद्ध चला। हिटलर लड़ा रहा था। अपने लोगो को क्योंकि सारी दुनिया में श्रेष्ठ मनुष्य पैदा करना था, सूपर मैन, महामानव, पैदा करना था। तो

जर्मन खून में उसने लहर भर दी। जर्मन खून इस आदर्श के पीछे दीवाना हो गया कि ठीक है, सारी पृथ्वी को स्वर्ग बना देंगे, नार्डिक जाति को बचा लेंगे, जो श्रेष्ठतम हैं, उन्हीं को बचने देंगे, निकृष्ट को विदा कर देंगे। उसने कहा, एक सर्जिकल आपरेशन है, गलत को हटा देना है, ठीक को, स्थापित करना है। बड़ा ऊंचा लक्ष्य था। इसलिए कोई मरे-मारे, सब उचित था। तो जर्मन लड रहे थे।

इंगलैण्ड, अमरीका और रूस इसलिए लड़ रहे थे कि दुनिया को फासिज्म से बचाना था, नाजिज्म से बचाना था। यह फाजिस्म हत्या है लोकतंत्र की, फासिज्म हत्या है समाजवाद की, फासिज्म हत्या है स्वतंत्रता की; इससे बचाना है। तो इगलैण्ड का जवान लड रहा था, अमरीका का जवान लड रहा था, रूस का जवान लड रहा था। दुनिया एक गर्त में जा रही थी पाप के, उससे उसे बचाना था।

बडे आदर्श हों तो आदमी फिर कुछ भी कर सकता है। आदर्श न हो, नग्न युद्ध सबके सामने हो, तो युद्ध आदमी कर नही सकता। इसलिए कोई युद्ध सीधा नही होता है। सिद्धान्त, शास्त्र, आइडियॉलॉजी जरुरी हैं बीच मे। इसलिए जब तक दुनिया मे आदमी सिद्धान्तों में बटें हैं, तब तक कोई न कोई युद्ध कभी भी करवाया जा सकता है।

और जब तक दुनिया में लोग कहते हैं कि मेरा विचार ठीक और तुम्हारा गलत, तब तक कभी भी तलवार निकाली जा सकती है। क्योंकि आखिरी निर्णय कैसे हो कि किसका विचार ठीक है? तर्क निर्णय नही कर पाता है। वर्षों लग जाते हैं, तर्क से कुछ सिद्ध नही होता। तलवार जल्दी सिद्ध कर देती है। जो हार जाता है उसका सिद्धान्त गलत है, और जो जीत जाता है उसका सिद्धान्त सही है।

यह हैरानी की बात है। आपने सूत्र सुना होगा, हम ने तो अपने राज्य का प्रतीक ही बना रखा है उस सूत्र को : सत्यमेव जयते, सत्य सदा जीतता है। लेकिन हालत उलटी दिखती है। जो जीत जाता है, वह सत्य मालूम पडता है, जो हार जाता है, वह असत्य मालूम पडता है। सत्य सदा जीतता है, इसका तो कुछ पक्का पता नही चलता है। लेकिन जो जीत जाता है, उसको आप असत्य नहीं कह सकते, इतना पक्का है। वह सत्य हो जाता है।

थोडा सोचें। अगर हिटलर जीत जाता दूसरे महायुद्ध मे तो चर्चिल, स्तालिन, और रुजवेल्ट कहां होते? उनकी गिनती पागलों में होती। स्तालिन, रुजवेल्ट और चर्चिल जीत गए और हिटलर हार गया, तो हिटलर की गिनती पागलो में है। हालांकि दोनो ही पागल हैं। पर जो जीत जाए, वह लगता है ठीक, और जो हार जाए, वह पागल है। असल में बिना पागल हुए राजनीतिज्ञ होना मुश्किल है। थोडे नट-बोल्ट भीतर ढीले होने ही चाहिए। तो ही आदमी को राजनीति का बुखार चढता है। फिर राजनीतिज्ञों में जो बडे पागल होते हैं, वे जीत जाते हैं; जो छोटे होते हैं, वे हार जाते हैं।

और जो हार जाते हैं, वे इतिहास नही बनाते; जो जीत जाते हैं, वे इतिहास बनाते हैं।

यह सब इतिहास झूठा है। क्योंकि हारा हुआ आदमी तो बना ही नहीं पाता है। थोड़ा सोचें कि रावण जीत गया होता और राम हार गए होते तो क्या रामायण होती आपके पास? कभी नही हो सकती थी। क्योंकि रावण ने कोई वाल्मीकि खोजा होता, कोई तुलसीदास रावण को मिले होते, और सारी कथा और होती। सारी कथा और होती। क्योंकि जो जीत जाता है, उसके इर्द-गिर्द चापलूस इकट्ठे होते हैं, कवि इकट्ठे होते हैं, खुशामदखोर इकट्ठे होते हैं। वे इतिहास रचते हैं। जो हार जाता है, उसकी तरफ तो कोई हाथ उठाने को भी राजी नही होता। तो **इसलिए इतिहास सब झूठा है।**

इतिहास सच हो नही सकता, क्योंकि कौन बनाता है, इस पर निर्भर करता है।

स्तालिन ने सारे रूस को निर्मित किया और स्तालिन के मरते ही ख्रुश्चेव ने स्तालिन के नाम को इतिहास से मिटा दिया। रूस के इतिहास की किताबों में स्तालिन का नाम नही है अब। फोटो नही हैं। जिन जिन जगहों पर स्तालिन के फोटो लेनिन के साथ थे, वहां-वहा लेनिन के बचे है फोटो, स्टालिन के काट दिये गए हैं। आपको पता हो, न हो, लेनिन की कब्र---कब्र नही कहना चाहिए--लेनिन की जहा समाधि है, जहा उसकी लाश रखी है अभी भी, क्रेमिलिन के चौराहे पर, उसके बगल में ही स्तालिन की लास भी रखी गई थी। जब ख्रुश्चेव ताकत में आया, तब वह लाश वहा से हटवा दी गई। इतिहास से नाम काट दिया गया। स्कूल में रूस के बच्चो को पता ही नहीं है कि स्तालिन भी हुआ है।

अब बडा कठिन है। यही काम स्तालिन ने भी किया था। जब स्तालिन ताकत मे आया, तब जहां-जहा ट्राटस्की के चित्र थे, वहा-वहा से वे हटा दिए गये। क्योंकि लेनिन के बाद नम्बर दो की ताकत का आदमी ट्राटस्की था। तो जगह-जगह उसके चित्र थे, किताबो में उल्लेख था, अखबारों में उल्लेख था, इतिहास में उल्लेख था। वह सब जगह से पोछ दिया गया। जो स्तालिन ने ट्राटस्की के साथ किया था, वही ख्रुश्चेव ने स्तालिन के साथ किया। और अब जो हैं, वे ख्रुश्चेव के लिए वही कर रहे हैं।

इतिहास का तय करना बहुत मुश्किल है। हजार साल बाद जिनके हाथ में वे किताबें लगेंगी, जिनमें स्तालिन का नाम भी न होगा, वे कैसे समझेंगे कि स्तालिन ने क्या किया था? या जो किताबें होंगी, उनमें लिखा होगा कि स्तालिन पागल था, विक्षिप्त था, हत्यारा था। तो वे यही समझेंगे।

अंग्रेजों ने शिवाजी के लिए लिखा है कि वह लुटेरा था। अगर अंग्रेज हिन्दुस्तान में बने रहते तो शिवाजी लुटेरे रहते। कोई और उपाय नही था। अंग्रेज चले गए तो शिवाजी अब लुटेरे नही हैं। अब शिवाजी की हम जगह-जगह मूर्तिया खड़ी कर

रहे हैं। अब शिवाजी महाराष्ट्र-नायक हैं।

पर बड़ी कठिनाई है कि कौन सच कह रहा है? कौन इतिहास बना रहा है? जो जीतता चला जाता है, वह इतिहास बनाता चला जाता है। हार सब पोंछ देती है।

लाओत्से कहता है, सज्जन आदमी भी युद्ध के क्षण में असत्य की तरफ झुक जाता है, गलत की तरफ झुक जाता है। क्योंकि प्रचार, हवा, आदर्श, सज्जन को भी उलझा देते हैं। जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं, वे भी प्रार्थनाएं करने लगते हैं। और कभी तो बडी मजेदार प्रार्थनाएं हो जाती हैं।

क्योंकि पिछले महायुद्ध में दोनो तरफ ईसाई थे, इसलिए पोप बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि प्रार्थना किसके लिए की जाए। और तब जर्मनी का चर्च टूट गया और जर्मनी के प्रधान पुरोहित ने जर्मनी के लिए प्रार्थना की कि परमात्मा हिटलर को जिताए। और इंगलैण्ड के चर्च ने इंगलैण्ड के लिए प्रार्थना की कि परमात्मा इंगलैण्ड को जिताए। और उसने कहा कि परमात्मा इंगलैण्ड को ही जिताएगा, क्योंकि इंगलैण्ड सत्य के पक्ष में है। और वही जर्मनी का पुरोहित भी कह रहा है कि हिटलर ही जीतेगा; क्योंकि हिटलर जो है, वह वस्तुतः ईश्वर का संदेश-वाहक है।

अब अगर दो ईश्वर हो, तब भी चल जाएगा। एक ही ईश्वर से प्रार्थना हो रही है। और वह भी हिन्दू या मुसलमान का ईश्वर हो तो भी समझे; ईसाइयों के एक ही ईश्वर से प्रार्थना चल रही है। लेकिन भला आदमी भी उलझ जाता है। अब यह पुरोहित भी कोई बुरा आदमी नहीं है; यह कोई किसी की हत्या करनेवाला आदमी भी नही है। इसने किसी को चोट भी नही पहुचायी थी, जरा किसी के पैर में काटा गड जाए तो उसे निकालने की, सेवा करने की तत्परता है इसमें। यह भी भला आदमी है, लेकिन यह भी उलझ जाता है। यह भी उलझ जाता है।

यहां हिन्दुस्तान में जब कोई युद्ध की हवा चलती है, तब जिनको हम अहिंसक कहे, वे भी जोश में आ जाते हैं। फिर उनकी अहिंसा वगैरह सब विलीन हो जाती है। फिर उनको भी पता नही रहता कि खून बुद्धि से ज्यादा जोर मार रहा है, कि बुद्धि एक तरफ रह गई और खून छलाग मार रहा है। और वे बाते करने लगते हैं युद्ध की।

लाओत्से कहता है कि युद्ध इसलिए बहुत बुरा है कि भला भी उसमें बुरा जैसा हो जाता है। सारे मूल्य उलटे हो जाते हैं। सैनिक अनिष्ट के शस्त्र-अस्त्र है, वे सज्जनों के शस्त्र नही हो सकते। जब सैनिको का उपयोग अनिवार्य हो जाए, तब शान्त प्रतिरोध ही सर्वश्रेष्ठ नीति है।

सैनिक अनिष्ट के शस्त्र-अस्त्र हैं, यह थोड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि हम ऐसा कभी नही सोचते हैं। हमारा सोचना कुछ और है।

एक गाव में मैं था। वहां कुछ दंगा-फसाद की हवा थी; हिन्दू और मुसलमानों में तनाव था। तो हिन्दू मेरे पास आये; उन्होंने कहा कि आप अपने वक्तव्य में कहें कि आततायियों को तो नष्ट करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने भी आज्ञा दी थी, तो आततायियों को तो नष्ट कर देना चाहिए। तो मैंने कहा कि मुझे पक्का पता नहीं है कि आततायी कौन है? आततायी को नष्ट कर देना चाहिए, यह कृष्ण ने कहा है। लेकिन तुम्हारे पास कोई कसौटी है कि तुम जानो कि आततायी कौन है? उन्होंने कहा कि यह भी कोई पूछने की बात है; मुसलमान आततायी हैं।

अगर यह सिद्ध ही है कि मुसलमान आततायी हैं, तब तो ठीक है। लेकिन यह सिद्ध कौन करता है? यह हिन्दू सिद्ध करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि मुसलमानो से पूछा है? उन्होने कहा कि उनसे क्या पूछना है? तो मैंने उनसे कहा कि अगर मुसलमान मेरे पास आएँ, क्योकि मै न हिन्दू हूं, न मुमलमान हूं, अगर वे मेरे पास आएँ और वे कहें कि काफिरों को तो नष्ट करने की आज्ञा कुरान में दी गई है, तो मैं उनसे पूछूगा कि काफिर कौन है? अगर सिद्ध है कि हिन्दू काफिर हैं, तब तो कोई मामला ही नही है; मगर हिन्दुओ से पूछो! वे भी राजी नहीं होंगे पूछने को, कहेंगे कि काफिरों से क्या पूछना है? हम मान कर ही बैठे हैं। तो फिर ठीक है मुसलमान समझते हैं कि तुम गलत हो, तुम समझते हो कि मुसलमान गलत है। कौन तय करे?

एक बात पक्की है। जो आदमी सदा देखता है कि दूसरा गलत है और मैं ठीक हू, वह गलत होगा। यह गलत आदमी का लक्षण है असल में। सही आदमी बहुत विचार करता है, इसके पहले कि दूसरे को गलत कहे, अपने गलत होने की सारी सभावनाओं को सोच लेता है कि कहीं मै गलत तो नही हूँ। बुरा आदमी इस झंझट में नही पड़ता है। वह मान कर चलता है कि दूसरा गलत है। मुसलमान गलत होते हैं, ऐसा नहीं है; मुसलमान गलत होते ही हैं; इसमें और कोई सोच-विचार की जरूरत नही है। क्योकि उनका मुसलमान होना ही उनके लिए गलत होने के लिए काफी है। ऐसी ही हिन्दू का हिन्दू होना काफिर होने के लिए काफी है।

फिर जब मुसलमान हिंसा करता है, तब वह नहीं मानेगा कि हिंसा हर हालत में अनिष्ट का साधन है। वह कहेगा कि हिन्दू जब हिंसा करते हैं, तब वह अनिष्ट का साधन है, और जब हम कर रहे हैं हिंसा, काफिर का नाश करने को, यह कही अनिष्ट है? यह इष्ट है।

इसलिए सभी युद्धखोर अपनी हिंसा को इष्ट मानते हैं, दूसरे की हिंसा को अनिष्ट मानते हैं।

लाओत्से कहता है, सैनिक हर हालत में, हिंसा हर हालत में अनिष्ट का साधन है। कौन उपयोग करता है, इसका सवाल नहीं है; वह हर हालत में अनिष्ट का साधन है। अच्छा आदमी भी उपयोग करे तो भी उससे अनिष्ट होता है; बुरा

आदमी करे तो भी अनिष्ट होता है। साधन ही अनिष्ट का है। तब फिर अच्छा आदमी क्या करे?

हिन्सा उसका शस्त्र नही हो सकती है। सैनिक सज्जन के लिए शस्त्र नही हो सकते। इसलिए जब तक कोई राष्ट्र वस्तुतः समस्त सैन्य शक्ति का विसर्जन नहीं करता, तब तक सुसंस्कृत कहलाने का अधिकारी नही है। कोई राष्ट्र जब तक सैनिक को रखता है, तब तक वह सुसंस्कृत कहलाने का अधिकारी नहीं है।

लेकिन कोई राष्ट्र यह हिम्मत नहीं जुटा सकता कि सैनिक को विदा कर दे। मजबूरी है। क्योंकि चारो तरफ लोग इकट्ठे हैं, वे तत्काल दल दौड़ पड़ेंगे, वे तत्काल मुल्क को पी जाएंगे। यह भय है। तो सज्जन भी क्या कर सकता है? सैनिक को अपना साधन न भी माने, लेकिन अगर असज्जन उस पर हमला करे, तो वह क्या कर सकता है? हमले का प्रतिरोध तो करना पड़ेगा। क्योंकि अगर प्रतिरोध न किया जाए तो यह भी असज्जन को सहयोग है। यह भी बुराई को साथ देना है।

समझें कि जीसस ने कहा है कि दूसरा गाल सामने कर दें। लेकिन सामने अगर आदमी बुरा है तो मैं उसके लिए सहयोगी हो सकता हू। और यह भी हो सकता है कि मैं उसकी आदत बिगाड़ रहा हूं। और कल वह किसी और को चांटा मारेगा इसी आशा मे कि दूसरा गाल भी आता ही होगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक काफी हाउस के सामने बैठकर रोज गप-शप किया करता था। एय छोटे बच्चे ने, शरारती बच्चे ने रोज की आदत बना ली कि वह आता और मुल्ला की पगड़ी मे हाथ मार कर भाग जाता। पगडी नीचे गिर जाती और मुल्ला फिर अपनी पगडी ऊपर रख लेता। अनेक बार लोगो ने कहा कि मुल्ला, एक दफा इस लड़के को डांट दो। यह भी क्या बेतुकी बात है? इस लडके की कोई ताकत है? एक दफा जोर से इसको चांटा लगा दो, दुबारा नही लौटेगा। मुल्ला ने कहा कि ठहरो, हमारे भी अपने रास्ते है।

यह वर्षों की आदत हो गई, यह रोज का नियम हो गया कि लड़का मुल्ला की पगड़ी गिरा जाता। एक दिन ऐसा हुआ कि एक पठान सैनिक उधर बैठा हुआ था, उसी जगह, शाम के वक्त, जहां मुल्ला शाम को रोज बैठता था। मुल्ला आकर दूसरी जगह बैठ कर देख रहा है। वह लड़का आया और उसकी पगड़ी पर हाथ मारा। पठान ने तलवार निकाल कर उसकी गर्दन काट दी। मुल्ला ने कहा कि देखा, हम रास्ता देख रहे थे। इसका अभ्यास पक्का हो गया था; अब यह होने-वाला ही था कभी।

इस हत्या मे पठान से ज्यादा मुल्ला का हाथ है। पठान दिखेगा अपराधी, मगर वह बेचारा एक लंबी श्रृंखला की आखिरी कडी है। उसका कोई इसमे ज्यादा हाथ नही है। ज्यादा हाथ तो उस आदमी का है, जो साल भर से पगड़ी गिरवा

रहा था, और अभ्यास करवा रहा था।

तो यह भी हो सकता है। जिन्दगी जटिल है। और वहां जड नियम काम नहीं करते हैं कि एक गाल पर आप चांटा मारें और दूसरा गाल मैं सामने कर दू। जरूरी नहीं है कि यह हितकर ही हो। मैं आपकी आदत भी बिगाड़ सकता हूं। और इसमें किसी दिन आपकी गर्दन भी कट सकती है। और जिम्मा मेरा भी होगा। तो सज्जन क्या करे ?

अगर वह सैनिक पर भरोसा करे, तलवार पर भरोसा करे, तो अनिष्ट का सहयोगी होता है। अगर वह न कुछ करे तो भी अनिष्ट का सहयोगी होता है।

तो लाओत्से कहता है कि उसके पास एक ही उपाय है। इस बुरी दुनिया में उसके पास एक ही उपाय है। दि बेस्ट पॉलिसी इज काम रेस्ट्रेन्ट, शान्त प्रतिरोध, शांत, संयमित प्रतिरोध ही उसके पास एकमात्र उपाय है। वह विरोध तो करे ही, अगर जरूरत पड़े तो वह तलवार भी लेकर विरोध करे और हिंसा का भी उपाय करे और जरूरत पडे तो सैनिक को लेकर भी विरोध करे; लेकिन शात रहे। यह फर्क है। तलवार तो बुरे आदमी के हाथ में भी होती है, अच्छे आदमी के हाथ में भी होती है। तलवार का कोई फर्क नही है। लेकिन बुरा आदमी भीतर शांत होता है। और अगर वह शात नही है तो सिद्धान्तों की बकवास न करे, समझे कि मैं भी बुरा आदमी हूँ।

एक कहानी, और मैं आज की बात पूरी करूं।

मुसलमान खलीफा हुआ उमर। बडी मीठी घटना है उसकी जिन्दगी में। दस साल तक एक दुश्मन से उसका युद्ध चलता रहा। दस साल मे न मालूम कितनी हत्या हुई, न मालूम कितने गाव जलाए गए! और न मालूम कितने लोग मरे और कितने जन-धन की हानि हुई !

फिर दस साल बाद एक मुकाबले मे आमने-सामने उमर अपने दुश्मन के पड गया। और एक ही दाव में उमर ने दुश्मन के घोडे को काट दिया। दुश्मन नीचे गिर पडा। उमर छलाग लगाकर उसकी छाती पर बैठ गया और उसने अपना भाला निकाला उसकी छाती में भोंक देने को। दुश्मन नीचे पडा था असहाय, एक क्षण, और मौत घट जाएगी ! दुश्मन आखिरी मौका नही चूका; इसके पहले कि भाला उसकी छाती में जाए उसने उमर के मुह पर थूक दिया। उमर ने भाला वापस लौटा लिया और उठकर खडा हो गया। इस पर दुश्मन ने कहा कि मैं समझा नही, क्या बात है ? ऐसा मौका मैं नही छोड़ सकता था।

उमर ने कहा, बात खत्म हो गई। मुझे क्रोध आ गया, तुम्हारे थूकने से मुझे क्रोध आ गया। और कसम है मेरी कि शांत ही लडू तो ही लडूगा। अशात हो गया आज। कल सुबह फिर लडूगा। यह तो खत्म हो गया।

फिर वह दुश्मन पैर पर गिर पड़ा। और उसने कहा कि मैं सोच भी नही

सकता, यह मौका छोड़ा नहीं जा सकता था। दस साल से जिस दुश्मन के पीछे तुम थे और जिसके पीछे मैं था; दस साल का लम्बा उपद्रव और आज फैसला हुआ जाता था। और यह भी तुम क्या बात कर रहे हो उमर, कि क्रोध हो गया ? क्या यह युद्ध बिना क्रोध के चल रहा था ?

उमर ने कहा कि मेरा कोई क्रोध न था, एक शांत प्रतिरोध था। तुम पागल थे लड़ने को, कोई और उपाय नहीं था, तो मैं लड़ रहा था। लेकिन लड़ने में कोई रस नहीं था। आज व्यक्तिगत रस हो गया लड़ने में। तुमने जो मुझपर थूका तो क्षण भर को मुझे लगा कि भोंक दूं; लेकिन तब मैं भोंक रहा था, मैं उमर। दस साल सब विलीन हो गये। तुम बुरे आदमी हो, इसलिए मारना है; तुम नुकसान कर रहे हो लोगों को, इसलिए मारना है; यह सब सवाल नहीं रहा। तुमने मेरे मुंह पर थूका, सारी बात इस पर अटक गई, इस छोटे से थूक की दाग पर अटक गई, तो फिर रुक जाना जरूरी हो गया। क्योंकि कसम है मेरी कि शांत लड़ सकूं, तो ही लड़ूंगा। क्योंकि अगर अशान्त होकर लड़ रहा हूं तो फायदा ही क्या है ? दो बुरे आदमियों के लड़ने से हल भी क्या ? कोई जीते, हर हालत में बुराई ही जीतेगी। फिर मेरी उत्सुकता नहीं है।

लाओत्से कहता है, शांत प्रतिरोध ही सर्वश्रेष्ठ नीति है। अगर ऐसी स्थिति आ जाए, युद्ध में उतरना पड़े, सैनिक बनना पड़े, तलवार उठानी पड़े, तो भी वह जो धर्मिष्ठ व्यक्ति है, वह निरंतर अव्यस्त, निरन्तर शान्त, निरंतर शून्य, निरंतर अपनी तरफ से अलिप्त, लड़ने में बिना रस लिए, युद्ध में उतरेगा।

यही कोशिश कृष्ण की अर्जुन के लिए है कि वह ऐसा हो जाए—सन्यासी और सैनिक एक साथ। तो ही सैनिक का जो विष है, जो जहर है, वह विलीन हो जाता है।

संन्यासी का अमृत अगर सैनिक पर गिर जाए तो उसका जहर विलीन हो जाता है।

आज इतना ही। कीर्तन करें; और फिर जाएं।

■■

विजयोत्सव ऐसे मना जैसे कि वह अन्त्येष्टि हो

तिरसठवां प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई :: दिनांक ३० नवम्बर १९७२

अध्याय ३१ : खंड २

अनिष्ट के शस्त्रास्त्र

विजय में भी कोई सौन्दर्य नहीं है।
जो इसमें सौन्दर्य देखता है,
वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है।
और जिसे हत्या में रस है,
वह संसार पर शासन करने की अपनी महत्वाकांक्षा में सफल नहीं होगा।
(शुभ लक्षण की चीजें वामपक्ष को चाहती हैं,
अशुभ लक्षण की चीजें दक्षिणपक्ष को।
उप-सेनापति वामपक्ष में खड़ा होता है,
और सेनापति दक्षिणपक्ष में।
अर्थात्, अन्त्येष्टि क्रिया की भाँति यह मनाया जाता है।)
हजारों की हत्या के लिए शोकानुभूति जरूरी है,
और विजय का उत्सव अन्त्येष्टि क्रिया की भाँति मनाया जाना चाहिए।

CHAPTER 31 : Part 2

WEAPONS OF EVIL

Even in victory, there is no beauty,
And who calls it beautiful
Is one who delights in slaughter.
He who delights in slaughter
Will not succeed in his ambition to rule the world.
(The things of good omen favour the left.
The things of ill omen favour the right.
The lieutenant-general stands on the left,
The general stands on the right.
That is to say, it is celebrated as a Funeral Rite.)
The slaying of multitudes should be mourned with sorrow.
A victory should be celebrated with the Funeral Rite.

हिंसा में कौन उत्सुक है? हत्या में किसका रस है? और विध्वंस किसकी अभीप्सा बन जाती है? इसे हम थोड़ा समझ लें; फिर इस सूत्र पर विचार आसान होगा।

सिगमंड फ्रायड ने इस सदी में मनुष्य के मन में गहरे से गहरा प्रवेश किया है। इस सदी का पतंजलि कहूं उसे। और सिगमंड फ्रायड की गहनतम खोज मनुष्य की दो आकांक्षाओं के सम्बन्ध में है। उन दो में से एक को सिगमंड फ्रायड ने कहा है जीवैषणा और दूसरे को मृत्यु-एषणा। आदमी जीना भी चाहता है, इसकी भी वासना है, और आदमी के भीतर मरने की भी वासना है।

यह दूसरा सूत्र समझना कठिन है। लेकिन अनेक कारणो से दूसरा सूत्र उतना ही अपरिहार्य है, जितना पहला। हर आदमी जीना चाहता है, इसमें तो कोई शक नही है। जीने की आकांक्षा सभी को जन्म के साथ मिलती है। लेकिन दूसरी अकांक्षा, जो जीने के विपरीत है, जो मरने की अकांक्षा है, वह भी हर आदमी के भीतर छिपी है। इसीलिए कोई आत्मघात कर पाता है; अन्यथा आत्मघात असम्भव हो जाए। इसीलिए कोई अपने को नष्ट कर पाता है। अगर भीतर मरने की कोई आकाक्षा ही न हो तो आदमी अपने को नष्ट ही न कर सके।

जैसे-जैसे उम्र व्यतीत होती है, वैसे-वैसे जीवन का ज्वार कम हो जाता है और मृत्यु की आकाक्षा प्रबल होने लगती है। बूढ़े व्यक्ति निरन्तर कहते हुए सुने जाते हैं: अब परमात्मा उठा ले। बूढा आदमी सच में ही चाहता है कि अब विदा हो जाए। क्योकि अब होने का कोई अर्थ भी नही है।

मरने का कही कोई गहरा खयाल जवान के भीतर भी है। ऐसा जवान आदमी भी खोजना मुश्किल है, जिसे कभी न कभी मरने का खयाल न आ जाता हो कि मैं मर जाऊ, अपने को समाप्त कर लू। या वह सोचे कि इस सब में क्या अर्थ है, इस जीवन में क्या प्रयोजन है? आज ही एक युवती मेरे पास थी। वह कह रही थी कि हर महीने यह बात बार-बार लौट आती है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है, मर जाना है। और अभी तो उसने जीवन देखा भी नही है।

छोटे बच्चों तक के मन में भी मरने का खयाल आ जाता है।

तो अगर मृत्यु की कोई आकांक्षा भीतर न हो तो ये मरने के खयाल कहाँ से अंकुरित होते हैं। मृत्यु की आकाक्षा भी भीतर है। और जब हम पाते हैं कि जीवन संभव न रहा तो मृत्यु की आकांक्षा हमें पकड़ लेती है।

यह बात इसलिए भी जरूरी है कि जगत में हर चीज द्वन्द्व में होती है। प्रकाश

है तो अंधेरा है; अकेला प्रकाश नही हो सकता। और जीवन है तो मृत्यु है; अकेला जीवन नहीं हो सकता। तो अगर भीतर जीवैषणा है तो मृत्यु-ऐषणा भी होनी ही चाहिए। **यह सारा जगत द्वन्द्व पर खड़ा है।** यहां हर चीज अपने विपरीत के साथ बंधी है। विपरीत न हो, यह संभव नहीं मालूम होता।

अब तो वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि जीवन के सब नियम विपरीत पर खड़े हैं, और ऐसा कोई नियम नहीं है जिसका विपरीत नियम न हो। विपरीत न हो तो वह हो ही नहीं सकता। करीब-करीब हालत ऐसी है, जैसे मकान को बनानेवाला राजगीर उल्टी ईंटें लगा देता है दरवाजे पर, और गोल दरवाजा बन जाता है। विपरीत ईंटें एक दूसरे को संभाल लेती हैं। **जिंदगी भी विपरीत ईंटों से बनी है।** यहां हर चीज का विरोध है, और विरोध के तनाव के तनाव में ही संतुलन है। जैसे एक लकड़ी के दो छोर होगें, एक ही छोर नहीं हो सकता, वैसे ही जीवन की सब चीजो का दूसरा छोर भी है--चाहे कितना ही अज्ञात हो।

तो फ्रायड चालीस वर्षों तक निरन्तर लोगो का मनोविश्लेषण करके इस नतीजे पर पहुंचा कि लोगो को पता नही है कि उनके भीतर मृत्यु की आकाक्षा भी है। पर हालत ऐसी है कि जैसे एक सिक्का है और उसके दो पहलू होते हैं। जब एक पहलू ऊपर होता है तो दूसरा नीचे दबा होता है, और जब दूसरा ऊपर आता है तो पहला नीचे चला जाता है। जवान आदमी मे जीने की आकाक्षा प्रबल होती है, मृत्यु की आकाक्षा नीचे दबी रहती है। कभी-कभी किसी बेचैनी में, किसी उपद्रव में, किसी अशान्ति में सिक्का उलट जाता है, जिन्दगी की आकाक्षा नीचे और मौत की ऊपर आ जाती है। बूढ़े आदमी में मृत्यु की आकाक्षा ऊपर आ जाती है, जीवन की आकांक्षा नीचे दब जाती है। लेकिन कभी किसी वासना के उद्दाम प्रवाह मे सिक्का उलट जाता है और बूढ़ा भी जीना चाहता है। लेकिन एक ही वासना का आपको पता चलेगा; दोनो एक साथ आपको दिखाई नही पड सकती; क्योंकि एक ही पहलू आप देख सकते हैं। इसीलिए यह भ्रान्ति पैदा होती है कि हमारे भीतर एक ही आकाक्षा है, जीवन की आकाक्षा। दूसरी भीतर छिपी है।

ये जो दो आकांक्षाएं हैं आदमी के भीतर, इन्हें थोड़ा हम ठीक से समझें, तो हिंसा और अहिंसा के विचार में बहुत गहन गति हो पाएगी।

जब आपकी जीवन की वासना ऊपर होती है, तब आपकी स्वय के मरने की वासना नीचे दबी होती है। और जो आदमी जीना चाहता है प्रबलता से, वह आदमी मरना नहीं चाहता है। लेकिन उसके जीवन की गति में कोई बाधा बने तो वह उसे मारना चाहता है। जिसकी जीवन की वासना प्रबल है, वह दूसरे के जीवन को नष्ट करके भी अपनी जीवन की वासना को पूरा करना चाहता है। **हिंसा इसी से पैदा होती है।**

अपने ही भीतर मृत्यु की जो वासना है, हिंसा उसका प्रोजेक्शन है दूसरे के ऊपर, उसका प्रक्षेपण है दूसरे के ऊपर। मेरे भीतर जो मृत्यु छिपी है, उसे मैं दूसरे पर थोपना चाहता हूं। हिंसा का मनोवैज्ञानिक अर्थ यही है : मैं नहीं मरना चाहता हूँ, अपने जीने के लिए चाहे सबको मारना पड़े तो उसके लिए भी मेरी तैयारी है; लेकिन मैं नहीं मरना चाहता। हर हालत मे, सारा जगत भी नष्ट करना पड़े, तो मैं तैयार हूं; लेकिन मै जीना जाहता हू।

आदमी के भीतर दोनो सम्भावनाएं हैं। जब आदमी जीवन को पकड़ लेता है, तब उसकी मरने की वासना का क्या हो? वह भी तो उसके भीतर है। तब उसे प्रोजेक्ट करना पडता है, उसे दूसरे पर थोपना पडता है। नहीं तो बेचैनी होगी, कठिनाई होगी। दोनो की मांग है पूरा होने की। आप एक को पकडे हैं तो दूसरे का क्या करिएगा? उसे आपको दूसरे पर आरोपित करना होगा।

इसलिए जितनी जीवैषणा से भरा हुआ व्यक्ति होगा, उतनी ही वह हिंसा से भरा हुआ व्यक्ति भी होगा।

और अगर बुद्ध या महावीर अहिंसक हो सके तो उसका पहला सूत्र यह है कि **उन्होंने जीने की वासना छोड़ दी**। नही तो वे अहिंसक नहीं हो सकते थे। उन्होंने जीने की कामना ही छोड़ दी। बुद्ध ने तो कहा है कि अगर जरा सी भी वासना जीने की है तो आदमी दूसरे को मिटाने को हमेशा तैयार होगा।

आप लड़ते ही कब हैं? जब आपको डर होता है कि कोई आपके जीवन को छीनने आ रहा है — चाहे झूठ ही हो यह डर। आप भयभीत कब होते हैं? जब आपको लगता है कि आपका जीवन छिन जाएगा तो भयभीत होते हैं। भय का एक ही अर्थ है कि मेरा जीवन न छिन जाए। तो हम सुरक्षा करते हैं। उस सुरक्षा में अगर हमें दूसरे का जीवन छीनना पडे तो हम छीनेंगे।

स्वाइत्जर ने, बहुत विचारशील व्यक्ति ने, **भारत को मृत्युवादी कहा है**। उसकी बात में थोडी सचाई है, थोड़ी ही। जिस अर्थ में वह कहना चाहता है, वह तो ठीक नहीं है; लेकिन थोड़ी सचाई है। क्योंकि भारत के जो भी बडे मनीषी हैं, वे जीवैषणा से भरे हुए नही हैं। वे कहते हैं, **जीवैषणा हिंसा पैदा करती है**।

जब मैं बहुत जोर से जीना चाहता हू, तब मैं दूसरे की मृत्यु का कारण बन जाता हूँ। और दूसरे भी उतने ही जोर से जीना चाहते हैं, और वे मेरी मृत्यु के कारण बन जाते हैं। **जी कोई भी नहीं पाता है; पर हम एक दूसरे की मृत्यु के कारण बन जाते हैं**। हम एक दूसरे के जीवन को काटते हैं; पर जी कोई नहीं पाता है। तो बुद्ध या महावीर कहते हैं कि ऐसी जीवैषणा का क्या मूल्य, जो दूसरे के जीवन की घात बनती हो। अगर यही जीवन है, जिसमें दूसरे की हिंसा अनिवार्य है, तो यह जीवन छोड देने जैसा है।

भारत की आकांक्षा रही है **ऐसे जीवन की तलाश, जो दूसरे के जीवन के विरोध**

में न हो ; उसको हमने परम जीवन कहा है। वह एक ऐसे सत्य की खोज है, एक ऐसी स्थिति की खोज है, जहां मेरा होना किसी के होने में बाधा न बन पाए। और अगर मेरा होना किसी के होने में बाधा बनता है तो भारत इस होने को दो कौड़ी का मानता रहा है। फिर इसका कोई मूल्य नहीं रहा। फिर ऐसे होने को लेकर भी क्या करेंगे ? ऐसे जीवन को क्या करेंगे, जो लाश पर ही खड़ा होता हो दूसरे की ? जो दूसरे को मिटाकर ही बनती हो, ऐसी बनावट के भारत पक्ष में नहीं है।

स्वाइत्जर ठीक कहता है, उसकी आलोचना में सचाई है कि भारत मृत्युवादी है। सचाई इतनी ही है कि भारत जीवैषणावादी नहीं है। लेकिन शब्द अनुचित है, मृत्युवादी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जो जीवन को ही नहीं मानता, वह मृत्यु को क्या मानेगा ? जिसका जीवन में रस ही नहीं है, उसका मृत्यु में रस कैसे हो सकता है ?

भारत वस्तुत: न तो जीवैषणावादी है और न मृत्यु-ऐषणावादी। भारत तो मानता है कि ये दोनों एषणाएं साथ-साथ हैं; इनमें से एक का त्याग नहीं हो सकता। एक सिक्के का मैं एक पहलू त्यागना चाहूं, यह कैसे हो सकता है ? पूरा सिक्का फेंक सकता हूं, या पूरा सिक्का बचा सकता हूं। लेकिन अगर सोचूं कि एक पहलू बच जाए, और एक फेंक दूं, तो मैं पागल हूं। तो भारत कहता है कि या तो दोनों बचते हैं, जीवन की आकांक्षा के साथ दूसरे की मृत्यु की आकांक्षा भी बच जाती है, अपनी मृत्यु की आकांक्षा भी बच जाती है। और अगर फेंकना है जीवैषणा तो मृत्यु-ऐषणा भी फिंक जाती है; वह उसी का दूसरा पहलू है। **इसलिए भारत मुक्तिवादी है, मृत्युवादी नहीं।**

मुक्ति का अर्थ है जीवन और मृत्यु दोनों के पार। जीवन का अर्थ है मृत्यु के विरोध में, मृत्यु का अर्थ है जीवन के विरोध में; **मुक्ति का अर्थ है दोनों के पार।** किसी के विरोध में नहीं, किसी के पक्ष में नहीं; दोनों से अलग। इसलिए भारत का सारा चिन्तन मोक्ष के इर्दगिर्द घूमता रहा। यह मोक्ष क्या है ?

यह मोक्ष ऐसा होने की अवस्था है, जहां मेरा होना किसी के होने का शोषण नहीं है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। मोक्ष की अवस्था में जहां मैं होता हूं, वहां इससे कोई मिटता नहीं है, कोई भी नहीं मिटता; मेरे होने से किसी की हिंसा नहीं होती; मेरा होना शुद्धतम, निर्दोष और पवित्र हो जाता है; उसमें कोई भी रेखा हिंसा की नहीं रह जाती। अगर ऐसा कोई जीवन है तो भारत कहता है कि **ऐसा जीवन ही पाने योग्य है।**

इस पृथिवी पर तो जो हम जीवन देखते हैं, वह जीवन किसी न किसी रूप में हिंसा पर खड़ा है। इसलिए भारत को इस पृथिवी की आकांक्षा ही न रही। हमने जो श्रेष्ठतम मनीषी पैदा किए हैं, वे पृथिवी के पार जाने की उद्दाम अभीप्सा से भरे

हुए लोग है। वे कहते हैं, अगर यही जीवन है तो जीवन जीने योग्य नहीं है। एक और जीवन हो सकता है क्या ?

शरीर के रहते तो उस जीवन की सम्भावना मुश्किल मालूम पड़ती है। क्योंकि शरीर का होना तो हिंसा पर निर्भर है; चाहे भोजन करें हम, चाहे श्वास लें, चाहे पानी पीएं, चाहे एक कदम रखें, लेटें, उठें, बैठें, हिंसा चलती है। शरीर हिंसा के ही आधार पर है। लेकिन चेतना, भीतर शरीर के जो होश है, जो जाग-सकता है, जो बोध है, उसके लिए किसी की हिंसा की कोई जरूरत नही है। इस-लिए हम इस बात की भी तलाश करते रहे हैं कि कैसे शरीर के पार के तत्त्व का पता चल जाए।

और शरीर को हमने एक आवश्यक बुराई की तरह स्वीकार किया है। उसका उतना ही उपयोग है कि उसके रहते हमे उसका पता चल जाए, जो शरीर नहीं है। और जैसे ही उसका पता चल जाए जो शरीर नही है, फिर शरीर में आने का, लौटने का कोई कारण नही रह आता।

जीवैषणा खुद की हो तो मृत्यु-ऐषणा दूसरे पर टिक जाती है। वह आज नहीं कल खुद पर वापस लौट सकती है। वह हमारी ही वासना है, कभी भी वापस लौट सकती है।

एक आदमी के मकान में आग लग गई। अभी क्षण भर पहले तक वह जीवै-षणा से भरा था। बडे सपने थे दुनिया में रहने के, होने के। अचानक वह कूद पडना चाहता है आग में कि मै मर जाऊंगा। क्या हो गया ? क्षण भर पहले यह आदमी जीना चाहता था। जीने की बड़ी योजना थी; लम्बे स्वप्न थे, जो पूरे करने थे। समय कम था। अब अचानक यह आदमी कहता है कि मै मर जाना चाहता हूं, मुझे छोड दो, कूद जाऊं, इस मकान के साथ जल जाऊं। क्या हुआ ? जीवैषणा मृत्यु-ऐषणा कैसे बन गई ? वह जो जीना चाहता था, अब मरना क्यों चाहता है ?

सब जीने की शर्त होती है। ध्यान रखना, आप भी जो जी रहे हैं, उसमें भी शर्त हैं---चाहे पता हो, न हो। इस आदमी के जीने की शर्त थी; इसको पता नही था आज तक कि यह महल रहेगा, तभी जिऊंगा। आज महल जल रहा है तो जीना व्यर्थ हो गया है। कोई आदमी किसी को प्रेम करता था; उसकी पत्नी मर जाए, बच्चा मर जाए, पति मर जाए, तो वह मरना चाहता है।

हमारे मुल्क में हजारों स्त्रियां सती होती थीं। सती होने का क्या मतलब है ? उसका मतलब है, जीवन की एक शर्त थी कि वह पति के ही साथ जीएगी। वह शर्त टूट गई तो जीवैषणा मृत्यु-ऐषणा बन गई। अब वह पति के साथ ही मर जाना चाहती है। उसका मतलब यह है कि एक शर्त थी सुनिश्चित, उसके बिना जीवन स्वीकार नहीं था, उसके बिना मृत्यु स्वीकार थी।

एक मित्र को मैं जानता हूं; वे एक राज्य के मुख्य मंत्री थे। बूढ़े हो गये थे, उनके घर में मैं मेहमान था। ऐसे ही बात चलती थी; बातचीत में वे भूल से कुछ कह गए, फिर पछताए भी और कहा कि किसी और से मत कहना। लेकिन अब वे नहीं हैं, इसलिए अब कोई अड़चन नहीं है। ऐसे ही बातचीत में, रात गपशप चलती थी, वह मुझसे कह गए कि मेरी एक इच्छा है कि मुख्य मंत्री रहते ही मर जाऊं; क्योंकि बिना मुख्य मंत्रित्व के फिर मैं एक मिनट भी न जी सकूंगा। जब से भारत आजाद हुआ था, तब से वे मुख्य मंत्री थे उस राज्य के। उन्होंने कहा, बस एक ही इच्छा है कि मुख्य मंत्री रहकर मर जाऊं। मुख्य मंत्री न रहा तो फिर न जी सकूंगा।

ऐसे वे एक स्कूल के मास्टर थे आजादी के पहले। लेकिन अब मुख्य मंत्री का महल छोड़कर उनकी हिम्मत न थी पुरानी स्थिति में वापस लौट जाने की। उनकी स्थिति दयनीय थी। और मैं मानता हूं कि अगर वे मुख्य मंत्री होते न मरते तो आत्महत्या कर लेते; वे इतने ही बेचैन और परेशान आदमी थे।

शर्तें हैं हमारी जीने की। जीवन सशर्त है। तो शर्त टूट जाए तो हम मरने को राजी हो जाते हैं। आप अपनी हत्या करें या दूसरे की, कारण सदा एक है। दूसरे की भी हत्या इसलिए करते हैं कि वह आपके जीवन में बाधा बन रहा था। और अपनी ही हत्या, आत्महत्या इसलिए कर लेते हैं कि अब आपका स्वयं का जीवन भी आपके सशर्त जीवन की आकांक्षा में बाधा बन रहा है। तब उसे मिटा डालना है।

यह जो हिंसा की वृत्ति है, जिसको फ्रायड ने थानाटोस कहा है, यह मृत्यु-ऐषणा का हिस्सा है। अगर जैसा फ्रायड कहता है, उतनी ही बात हो, तो फिर आदमी को इससे मुक्त कैसे किया जा सकता है? इसलिए फ्रायड कहता है कि ज्यादा आदमी को हम कम से कम हिंसा के लिए नियोजित कर सकते हैं; लेकिन पूर्ण अहिंसा के लिए नहीं। आदमी तो हिंसक रहेगा ही। इसलिए हम उसकी हिंसा को सब्लीमेट कर सकते हैं, उसकी हिंसा को हम थोड़ा सा ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं।

कई तरह के ऊर्ध्वगमन हैं हिंसा के, वह भी खयाल में ले लें, तो आपको पता चलेगा कि वहां भी आप हिंसा ही कर रहे हैं।

दो पहलवान कुश्ती लड़ रहे हैं; आप देखने चले जा रहे हैं। हजारों, लाखों लोग इकट्ठे होते हैं पहलवानों को कुश्ती लड़ते देखने के लिए। आप क्या देखने जा रहे हैं? आपको क्या रस मिल रहा होगा? एक आदमी पिटेगा, कुटेगा, गिरेगा; एक गिरायेगा, दूसरा उसकी छाती पर सवार होगा; आपको क्या पुलक होती है? स्टुपिड, बिलकुल मूढ़तापूर्ण है। आप किस लिए पहुंच गये हैं देखने?

मगर लोगों को देखें जब कुश्ती हो रही हो, वे अपनी कुर्सी पर बैठ नहीं सकते; इतनी शक्ति से भर जाते हैं कि वे उठ-उठ आते हैं। सांस उनकी तेज चलने

लगती है, रीढ़ सीधी हो जाती है; जैसे उनके प्राण अटके हैं इसी बड़ी घटना में। हो क्या रहा है?

आपके भीतर जो हिंसा की वृत्ति है, उसकी कथार्सिस हो रही है, वह बाहर निकल रही है। आप मजा ले रहे हैं। असल में अब आप इतने बलशाली भी नहीं हैं कि खुद ही हिंसा कर लें तो आप नौकरों से करवा रहे हैं। किराये के आदमी कर रहे हैं वह काम। अब आप किसी भी काम को करने में खुद समर्थ नहीं हैं। अगर आपको प्रेम करना है तो आप खुद नही कर सकते हैं। तो नाटक या फिल्म में दूसरों को प्रेम करते हुए देखते हैं। आपके नौकर प्रेम कर रहे हैं, आप देख रहे हैं। बडा हलकापन लगता है; तीन घंटे नासमझिया देखकर जब आप लौटते हैं, तब मन हलका हो जाता है। क्यो?

यह सब आप करना चाहते थे। आपके भीतर ये वेग हैं। जब फिल्म के परदे पर पुलीस डाकू का पीछा कर रही हो और सनसनीखेज हो जाए स्थिति और रोआं-रोआं कपने लगे, पहाडी रास्ते हों, भागती हुई कारें हों और ऐसा लगे कि अब दुर्घटना हुई, अब दुर्घटना हुई, तब आप इस हालत में हो जाते हैं कि जैसे आप कार के भीतर हों। वह तो अच्छा है कि फिल्म के हॉल में अंधेरा रहता है, कोई किसी को देख नही सकता। एकदम से उजाला हो जाए, तो आप शरमिन्दा हो जाएंगे कि क्या कर रहे हैं। इतने जोश में आप क्यो आ गए?

आपके भीतर भी कुछ हो रहा है। वह आप हलके हो रहे हैं। आप कुश्ती देख रहे हैं, दंगाफसाद देख रहे हैं, युद्ध देख रहे हैं; आपके भीतर कुछ हलका हो रहा है। नौकरो से काम लिया जा रहा हैं; आप जो नही कर सकते, अब धन्धेबाज लोग उस काम को कर रहे हैं। आप नाच नही सकते हैं, कोई नाच रहा है; आप गा नही सकते, कोई गा रहा है; आप दौड नही सकते, कोई दौड़ कर प्रतियोगिता कर रहा है, आप लड नही सकते, कोई लड़ रहा है। हमने अपनी हिंसा को निकास के रास्ते बना रखे हैं।

और सारी दुनिया में इस तरह के उपाय समाजों ने खोजे हैं। अब छुट्टी के दिन हैं, जैसे होली है; वह छुट्टी का दिन है। उस दिन जो-जो नालायकिया आपको करनी हो, आप मजे से कर सकते है। उस पर कोई एतराज नही लेगा। लेकिन आप कर रहे हैं वह, क्या यह आपने कभी सोचा कि क्यो कर रहे हैं?

आप साल भर ही करना चाहते थे, लेकिन छुट्टी नही थी। यह तो दिल आपका था साल भर करने का, गाली देने का, गंदगी फेंकने का, दूसरे को परेशान करने का; यह तो आपका मन सदा से था। समझदार समाज आपको साल में कभी-कभी छुट्टी देता है, ताकि आपका कचरा निकल जाए और थोडी राहत मिले, थोडी राहत मिले।

सारी दुनिया में सभी समाज, विशेषकर सभ्य समाज ऐसी व्यवस्था करते हैं।

असभ्य समाज नही करते; क्योंकि कोई जरूरत नही है। साल भर ही वे यह करते हैं। इसलिए उनको कोई होली की जरूरत नहीं है; साल भर होली है। लेकिन जितना सभ्य समाज होगा, उतना उसे रास्ता बनाना पड़ेगा निकास का। फिर आप उसको हलके मन से लेंगे; फिर आप उसपर ऐतराज नहीं उठाएंगे। क्यों? आपने कभी सोचा नहीं है कि आपकी यह जरूरत है; मानसिक जरूरत है।

सारी दुनिया मे खेल है, प्रतियोगिता है, ओलिम्पिक्स हैं। हमारी हिंसा के लिए सब उपाय हैं कि कही से वह बह जाए, निकल जाए। यह सबलिमेशन है, यह उर्ध्वगमन है। मनोविज्ञान की भाषा में कुछ बडा उर्ध्वगमन नहीं है, लेकिन सीधी हिंसा नही है। और किसी को कोई बहुत नुकसान नही होता है। पर आपके भीतर हिंसा है और वह मांग करती रहती है निकलने को, इसे आपको समझ रखना चाहिए।

इसलिए जब युद्ध होता है, तब लोगों के चेहरों पर रौनक आ जाती है। आनी नही चाहिए, उदासी छा जानी चाहिए। लेकिन होता उलटा है। युद्ध जब होता है, लोग रौनक से भर जाते हैं, पैरों में गति आ जाती है, जिन्दगी में पुलक मालूम होती है कि कुछ हो रहा है; ऐसे ही जिन्दगी बेकार नहीं जा रही है, चारो तरफ कुछ हो रहा है। हवा गर्म है; उसमें आप भी गर्म हो जाते हैं।

आप कितनी ही निन्दा करते हो युद्धो की, लेकिन अपने भीतर देखेंगे, तो देखेंगे कि आपको रस आता है। हा, आपके घर पर युद्ध न आ जाए, तब आपको चिन्ता होगी। वह कही दूर होता रहे, वियतनाम मे, बागलादेश में, इजराइल मे, तब आप बिलकुल प्रसन्न हैं। होता रहे। सुनकर भी, टेलीविजन में देखकर भी, रेडियो पर सुनकर भी, आपको हलकापन आ जाता है।

आदमी क्या हिंसा से कभी मुक्त नही हो सकेगा?

मनोवैज्ञानिक के पास तो कोई उपाय नही है, निराशा है। मनोविज्ञान कहता कि इतना ही हो सकता है कि हम आदमी की हिंसा को समुचित मार्गों पर गतिमान कर दें। ठीक है, ओलिम्पिक देखो, पहलवानो को लडाओ। फिल्म देखो, यह ठीक है। सीधी हिंसा मत करो। इस तरह अपने मन को निकाल दो, हलका कर लो। बस इतना ही हो सकता है।

या फिर हम आदमी को बदलें। मनोविज्ञान को आशा नही मालूम होती है। लेकिन लाओत्से, बुद्ध को आशा है; वे मानते हैं कि आदमी बदला जा सकता है।

आदमी के बदलने का एक ही उपाय है कि आदमी पहले अपनी वस्तुस्थिति से पूरी तरह परिचित हो जाए। पहले तो वह जान ले कि उसके भीतर हिंसा छिपी पडी है। इसे स्वीकार करना अहिंसा की दिशा में पहला कदम है। लेकिन हम इसे स्वीकार नहीं करते हैं। हम तो अपने को अहिंसक मानते हैं। क्योंकि कोई रात में पानी नहीं पीता है, वह अहिंसक होता है, कोई पानी छान कर पी लेता है, वह

अहिंसक है; कोई मास नहीं खाता है, वह अहिंसक है। हमने अहिंसा की बड़ी सस्ती तरकीबें खोज निकाली हैं।

लेकिन जो मांस नहीं खाता है उसके व्यवहार में और जो मांस खाता है उसके व्यवहार में, कभी आपने फर्क देखा है कि कोई हिंसा का फर्क है? कोई फर्क नहीं है। जो आदमी पानी छानकर पीता है और जो बिना छाने पानी पीता है, क्या उनका, दोनो का व्यवहार देखकर कोई भी बता सकता है कि इनमें कौन पानी छानकर पीता है? कोई भी नहीं बता सकता है। तो अहिंसा क्या हुई? उन दोनो का व्यवहार एक जैसा है। एक जैन दूकानदार है, जो सब तरफ से अहिंसा को ऊपर से साध रहा है और एक मुसलमान दूकानदार है, जो मासाहारी है और किसी तरह की ऊपरी हिंसा को छोड़ नही रहा है। क्या ग्राहक के सम्बन्ध में उन दोनो का जो व्यवहार है, उसमें रत्ती भर भी फर्क होता है? कोई फर्क नहीं होता।

डर तो यह है कि जो सब तरफ से हिंसा से रोक रहा हैं अपने को, वह ग्राहक की गर्दन ज्यादा दबायेगा। क्योंकि उसे दबाने का और कहीं मौका नही है, फैलाव नही है। तो उसकी गर्दन दबाने की वृत्ति ज्यादा तीव्र हो जाए, इसकी सभावना है। क्योकि हिंसा अगर बहुत सी चीजों में फैल जाए तो उसकी मात्रा कम हो जाती है, वह डाइल्यूट हो जाती है। और सब तरफ से सिकोड ली जाए तो फिर उसकी मात्रा घनी हो जाती है; फिर वह सीधी ही पकडती है। इसलिए अक्सर यह होता है और इसमे आश्चर्य होता है हमे।

भारत कई अर्थो मे अहिंसक है—ऊपरी अर्थों में। पश्चिम के मुल्क उसी अर्थ मे हिंसक हैं। लेकिन अगर आदमियत, ईमानदारी, सचाई, या वचन का भरोसा करना हो तो भारत के आदमी से नही किया जा सकता है। क्या मामला है? होना नही चाहिए। अगर यहाँ अहिंसा इतनी साधी जा रही है तो भारत का आदमी अलग ही तरह का आदमी होना चाहिए। लेकिन आज हम देखते हैं कि मनुष्यता की दृष्टि से पश्चिम का हिंसक आदमी भी हम से बेहतर साबित होता है। क्या कारण होगा?

कारण एक है, और वह यह है कि हम जो छोटी-मोटी अहिंसा साधते हैं, उससे हम अपनी हिंसा के निकास का उपाय भी नही छोडते। फिर एक ही तरफ, एक ही दिशा मे हमारी हिंसा यात्रा करने लगती है; बहुत सघन हो जाती है। इससे क्या नतीजा लिया जा सकता है?

नतीजा एक लिया जा सकता है कि ऊपर से जो जबरदस्ती, ठोक-पीट कर छोटी-मोटी हिंसा से बचेगा और छोटी-मोटी दिखाऊ अहिंसा साधेगा, वह एक तथ्य से वंचित हुआ जा रहा है, इस तथ्य को जानने से वंचित हुआ जा रहा है कि उसके भीतर गहरी हिंसा भरी है। उसे वह अपने आचरण में थोड़ा-बहुत उपाय करके भुला लेगा। और वह भुलाना बहुत खतरनाक है। आपके ऊपरी आचरण के अतर

से कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता है।

आपके भीतर जो हिंसा है, उसे देखने से बहुत फर्क पड़ेगा, उसे पहचानने से बहुत फर्क पड़ेगा। उसकी जितनी गहरी समझ आएगी, उतनी ही उससे मुक्त होना आसान हो जाएगा।

और जब तक आपके भीतर हिंसा का पहलू है, तब तक आपके जीवन में सौन्दर्य नहीं हो सकता। यह दूसरी बात हम खयाल में ले लें, फिर सूत्र में प्रवेश करें। एक ही प्रकार का सौन्दर्य है जगत में, और वह सौन्दर्य है भीतर से सब तरह की हिंसा की, विध्वंस की वृत्ति का विसर्जन हो जाना। जब भीतर किसी तरह की हिंसा की वृत्ति और विध्वंस का भय नहीं रह जाता, तब भीतर की चेतना कमल के फूल की तरह खिल जाती है।

हमने बुद्ध और महावीर में वही सौन्दर्य देखा है।

एक सौन्दर्य है शरीर का; वह केवल धारणा की बात है। वह कुछ है नही। बुद्ध कही भी जाए, कैसे भी आदमी के पास से गुजरें, कहानी तो कहती है कि पशु के पास से भी गुजरे, तो वह भी उनके सौन्दर्य से आंदोलित हो गया है। एक सौन्दर्य शरीर का है; वह मान्यता की बात है। कही लम्बी नाक सुन्दर है, कही नही है। कही सफेद चमड़ी सुन्दर है, कही नही है।

अभी मै एक अमरीकन विचारक की किताब पढ रहा था। उसने लिखा है कि सफेद चमड़ी जो है, वह एक तरह की बीमारी है। वह खुद ही सफेद चमडी का आदमी है; लेकिन बडी हिम्मत की बात कह रहा है। उसने लिखा है कि सफेद चमड़ी जो है, वह एक तरह की बीमारी है। क्योकि सफेद चमडी के आदमी मे कुछ पिगमेन्ट कम है, जो काली चमडी के आदमी में है। और वह जो पिगमेन्ट है, जो काली चमडी के आदमी में है, वह जीवन की सुरक्षा के लिए बडी जरूरी है। वह डाक्टर है आदमी और उसका कहना है कि सफेद चमडी जो है, वह एक तरह की बीमारी है। सफेद चमडी कोई सौन्दर्य नही है।

अगर आप अमेजान के किनारे बसे हुए जंगली आदमियो मे पूछें तो वे सफेद चेहरे को सफेद नही कहते, वे यल्लो फेस कहते है, पीला चेहरा कहते हैं। और वे कहते हैं कि वह रुग्ण आदमी है।

सफेदी कोई सौन्दर्य नही है; बस मान्यता की बात है। इसलिए हमने कृष्ण को, राम को गोरा नही बनाया; क्योकि उन दिनो हम गोरे को कोई सुन्दर नही मानते थे। पता नही, राम और कृष्ण सावले थे कि नहीं; यह दूसरी बात है। लेकिन एक बात पक्की है कि उस दिनो जिन चित्रकारों ने उनके चित्र बनाए और उनकी मूर्तिया गढ़ी, उनकी मान्यता यह थी कि सांवले का मुकाबला नही है, सांवला ही सुन्दर है। इसलिए कृष्ण को हमने नीलवर्ण, श्याम, सामल नाम ही दे दिया।

उन दिनो भारत की धारणा ऐसी थी कि सफेदी में एक तरह का उथलापन-है;

सांवले में एक तरह का गहरापन है। जब नदी गहरी हो जाती है, तब सांवली हो जाती है; जब आकाश से बादल हट जाते हैं, तब आकाश सावला हो जाता है; और जितना गहन और गहरा होता है, उतनी नीलिमा छा जाती है। तो उन दिनों भारत की कल्पना थी सौन्दर्य की सांवले की। सफेद को हम कभी सुन्दर नहीं मानते थे।

लेकिन यह मान्यता की बात है। और मान्यता बदलती चली जाती है। और शरीर का सौन्दर्य बिलकुल ही धारणा पर निर्भर है। जो आज सुन्दर है, कल असुन्दर हो जाएगा। जो कल असुन्दर था, वह आज सुन्दर हो सकता है।

एक और सौन्दर्य है, जो धारणा की बात नही है; जो आतरिक अवस्था की, अस्तित्वगत बात है। बुद्ध किसी भी युग से गुजरें और कैसी ही धारणा के लोग हो, बुद्ध का सौन्दर्य छुएगा। वह सौन्दर्य शरीर का नही है, वह चुबक भीतर का है। वह चुंबक उस आदमी में ही गहन हो जाता है, जिस आदमी में भीतर की हिंसा क्षीण हो जाती है। क्यो? वह हमें क्यों आकर्षित करता है?

सुन्दर का मतलब है जो खींचे, आकर्षित करे। इसलिए हमने कृष्ण को नाम ही कृष्ण दे दिया। कृष्ण का मतलब है जो खीचे, आकर्षित करे। वह कृष्ण है, जो खीच ले, कशिश हो जिसके भीतर।

इसे हम ऐसा समझें कि जब भी कोई आदमी आपके प्रति क्रोध से भरता है, तब उस आदमी का सारा आकर्षण आपके लिए समाप्त हो जाता है और विकर्षण पैदा हो जाता है। अगर कोई आदमी आपके प्रति हिंसा से भरा हो, और आपको पता भी न हो, तो भी उस आदमी के पास आपको बेचैनी मालूम होती है; उस आदमी से आप रिपेल्ड अनुभव करेंगे, हटते हुए, सोचेंगे बच जाए, दूर हो जाए, या आदमी हट जाए। कभी ऐसा लगता है कि कोई आदमी बिलकुल अपरिचित, अनजाना आपको पहली दफा दिखता है और आप उससे हट जाना चाहते हैं। तो क्या बात होगी?

जो भी आपके प्रति हिंसा से भरता है, उससे आपका विकर्षण पैदा होता है। अगर आप भी हिंसा से भरे हैं किसी के प्रति तो विकर्षण पैदा होगा। और अगर आप हिंसा से भरे ही हैं, किसी के प्रति का कोई सवाल नही है, तो जो भी आपके पास आएगा, वह दूर हटना चाहेगा। कभी आपने अनुभव किया है कि लोग आपके पास आना नही चाहते हैं, या आते हैं तो दूर हट जाते हैं, या आप उनको खीचते है, तो भी वे भागते हैं। अगर ऐसा अनुभव भी होगा तो आप समझेंगे कि वे लोग ही गलत हैं। लेकिन थोडा विचार करना, अगर भीतर हिंसा है, तो हिंसा विकर्षण है; वह उलटा मैग्नैटिज्म है, उसने दूर हटा दिया।

स्वाभाविक भी है कि जहां हिंसा हो, वहा आपके जीवन को खतरा है; इसलिए दूर हट जाना उचित है।

जब हिंसा विसर्जित हो जाती है, तब इससे उलटी घटना घटती है। जिसके भीतर से हिंसा विसर्जित हो जाती है, आप अचानक जैसे उसमें गिर जाना चाहते हैं, उससे एक हो जाना चाहते हैं, उसके पास होना चाहते हैं, उसके निकट होना चाहते हैं। एक अदम्य आकर्षण आपको उसकी तरफ खींचने लगता है। अगर बुद्ध और महावीर के पास सैकड़ों लोग आकर्षित होकर डूब गये तो उसका कारण वह जो कह रहे थे, वह नहीं था। क्योंकि उन्होंने जो कहा है, वह किताबों में रखा है। और आप किताब पढ लें तो आप कुछ दीवाने नहीं हो जाएंगे। गीता कितनी दफा आपने पढ ली; लेकिन जो अर्जुन ने जाना, वह आप नहीं जान पाएंगे।

फर्क क्या है? वहां वह आदमी मौजूद था, जिसके होने में आकर्षण था। गीता आपको कविन्स नहीं कर पाएगी, कितना ही पढें। कृष्ण के होने में कनविक्शन है। वह जो राजी हो जाना है आपका, वह कृष्ण के वचन से नहीं, वह कृष्ण की वाणी से नहीं, वह कृष्ण के अस्तित्व से है।

एक सौन्दर्य है, एक आकर्षण है, जो भीतर की हिंसा के विसर्जित हो जाने से उपलब्ध होता है। और एक ही सौन्दर्य है वस्तुतः, और जो उसे पा लेता है, वह सुन्दर है। जो उसे नहीं पाता, वह कितने ही आभूषण लगाए और कितनी ही सजावट करे और कितना ही बाहर से सजाए-सवारे, वह सिर्फ अपनी कुरूपता छिपा रहा है; वह सुन्दर नहीं हो पाता। कुरूपता छिपाना एक बात है; सुन्दर हो जाना बिलकुल दूसरी बात है।

इसलिए महावीर जैसा व्यक्ति नग्न भी हो सका; क्योंकि अब छिपाने को कुछ बचा ही नहीं। जिसे वे छिपाते थे, वह कुरूपता न बची। सौन्दर्य नग्न हो सकता है, कुरूपता नग्न नहीं हो सकती। सिर्फ सौन्दर्य ही नग्न हो सकता है। इसका मतलब आप यह मत समझ लेना कि जो भी नग्न हो जाते है, वे सुन्दर हैं। उल्टा नहीं कह रहा हूं कि जो भी नग्न हैं, वे सुन्दर हैं। लेकिन सौन्दर्य नग्न हो सकता है, प्रगट हो सकता है; क्योंकि अब कुछ छिपाने को नहीं है, कुछ भय नहीं है किसी का। कुरूपता भयभीत है, छिपाना चाहती है, ढकना चाहती है, आवृत्त होना चाहती है।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें विजय में भी कोई सौन्दर्य नहीं है। और जो इसमें सौन्दर्य देखता है, वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है।

विजय में भी कोई सौन्दर्य नहीं है; क्योंकि विजय निर्भर ही हिंसा पर होती है, विजय आधारित ही मृत्यु पर है। कौन जीतता है? जो मारने में ज्यादा कुशल है, जो मृत्यु का दूत आपसे ज्यादा है। जीतने में न तो पता चलता है कि सत्य जीत रहा है, न पता चलता है कि शिव जीत रहा है, न पता चलता कि सुन्दर जीत रहा है; एक बात भर पता चलती है कि शक्तिशाली जीत रहा है। ब्रूट फोर्स, पाशविक शक्ति जीतती है।

जीसस को सूली पर लटका दिया। जिन्होंने सूली दी, उनके पास सिर्फ पाशविक शक्ति थी, जीसस के पास परमात्मा था। लेकिन सूली देनेवाले सूली देने में जीत गए। मंसूर को जिन्होंने काटा, उनके पास तलवारें थी; मंसूर के पास आत्मा थी। लेकिन तलवार से काटने वाले लोग शरीर काटने में जीत गये।

एक बात खयाल में ले लें, जितना श्रेष्ठतर हो भीतर का अंश, उतना ही वह पशुता के सामने बाहरी अर्थों में जीत नहीं पाएगा। आपके भीतर आइंस्टीन की बुद्धि हो तो भी क्या फर्क पडता है, एक जोर से मारा हुआ पत्थर आपकी खोपड़ी को तोड देगा। और आपके पास कितनी ही बडी आत्मा हो, तलवार आपकी गर्दन को काट देगी। बाहरी अर्थों मे पशुता जीत जाएगी।

एक और मजे की बात कि बाहरी अर्थों में सिर्फ पशुता ही जीतना चाहती है। बाहरी अर्थों में सिर्फ पशुता ही जीतना चाहती है, बाहरी अर्थों मे वह जो दिव्यता है, वह जीतना भी नही चाहती। क्योंकि जीतने की आकांक्षा ही पशुता का हिस्सा है; दूसरे को जीतने का भाव ही हिंसा है। क्यो जीतना चाहते हैं दूसरे को? डोमिनेट करना है, मालकियत दिखाना है? उसको वस्तु बनाके अपने घेरे मे, फन्दे में, अपने कारागृह मे डालना है? आखिर दूसरे को हम जीतना क्यों चाहते है?

दूसरे को जीतने का अर्थ है उसकी स्वतन्त्रता को नष्ट करना, वस्तुत दूसरे को जीतने का अर्थ है उसको ही नष्ट करना। अगर वह बाधा डालेगा हमारे जीतने मे तो हम नष्ट कर देंगे। या तो राजी हो हार कर जीने को तो हम जीने देंगे, और या फिर मरने को राजी हो। असल में दूसरे को जीतने मे हम क्या चाहते हैं? दूसरे को जीतने मे हम दूसरे को मिटाना चाहते है। और क्यो? क्या अस्तित्वगत कारण है इसका?

इसका कारण छोटी सी कहानी से कहूं, वह सबकी सुनी हुई कहानी है।

अकबर ने एक एक दिन एक लकीर खीच दी बोर्ड पर, और लोगो से कहा, दरबारियों से कहा कि बिना छुए इसे छोटा कर दो। बडी मुश्किल में पड गए दरबारी, वे नही कर पाये। और फिर बीरबल ने एक बडी लकीर उसके नीचे खींच दी। बड़ी लकीर के खीचते ही वह लकीर छोटी हो गई, कुछ छुआ भी नहीं उसने।

ठीक यही हम कर रहे है हिंसा मे — उलटी तरह से। हम भीतर बहुत छोटे हैं। एक रास्ता तो है कि इसे हम बडा करें; लेकिन तब इसको छूना पड़ेगा, इस भीतर के अस्तित्व को भरना पडेगा। तब इस भीतर के अस्तित्व में संघर्ष और साधना आएगी। तब यह भीतर का अस्तित्व एक लम्बी यात्रा होगी क्रान्ति की, रूपांतरण की। वह झंझट का काम है। इसे हम छूना भी नहीं चाहते, फिर भी हम बड़े होना चाहते हैं; फिर भी अहंकार चाहता है कि मै बडा बनूं। तो एक

सीधा उपाय है कि दूसरे को छोटा कर दो। इसको छुओ ही मत, यह भीतर की बात ही छोड़ो, इस आत्मा वगैरह के झंझट में मत पड़ो; दूसरे को छोटा कर दो। दूसरे के छोटा होते ही आप बड़े मालूम पड़ते हैं।

सारी हिंसा का रस दूसरे को छोटा करके खुद को बड़ा अनुभव करने का रस है। आप बड़े होते नहीं हैं। बीरबल ने भी अकबर को धोखा दिया था। आप भी धोखे में पड़ मत जाना। वह लकीर उतनी की उतनी ही रही, जरा भी छोटी-बड़ी नहीं हुई, लेकिन नीचे एक बडी लकीर खींच देने से वह छोटी दिखाई पड़ने लगी। छोटी हुई नही; एपीयरेन्स, सिर्फ भास हुआ। वह छोटी हुई नही, उतनी की उतनी ही रही। और उस लकीर को कोई पता भी नहीं है कि वह छोटी हो गई। कैसे पता होगा? वह तो आप को होगा, जो बड़ी लकीर नीचे देख रहे हैं।

जो लोग दृष्टि और प्रकाश के सम्बन्ध में खोज करते हैं, वे इसको दृष्टि-भ्रम कहते हैं। बीरबल ने धोखा दिया। यह दृष्टि-भ्रम है। लकीर उतनी की उतनी है; अकबर धोखे में आ गया। वह धोखा क्यो पैदा हुआ? एक बड़ी लकीर दिखाई पड़ने लगी; तुलना पैदा हो गई और वह छोटी लकीर छोटी दिखाई पड़ने लगी — इस बडी की तुलना में। लकीर उतनी ही है।

अकबर धोखे मे भला आ गया हो, आप धोखे मे मत आ जाना। क्योंकि जब आप दूसरे को छोटा करते हैं, आप बड़े नही हो रहे हैं, आप उतने के उतने हैं। और डर तो यह है कि दूसरे को आप छोटा कर सके, इसलिए आप और छोटे हो गए हैं। क्योंकि दूसरे को छोटा करने मे बिना छोटा हुए कोई उपाय नही है।

इसलिए जिस आदमी के पास जाकर आपको लगे कि वह आपको छोटा कर रहा है, वह आदमी बडा आदमी नहीं होता। आइस्टीन के सम्बन्ध में सी. पी. स्नो ने लिखा है कि मैं दुनिया के बहुत बड़े-बड़े लोगों से मिला, लेकिन आइंस्टीन की जो बड़ाई थी, जो बडप्पन था, वह और ही था। क्योकि उसके पास जाकर ऐसा लगता था कि हम बडे हो गये। उसके पास होने में यह बात ही भूल जाती थी कि दूसरी तरफ आइस्टीन है; वह इसका मौका ही नही देता था कि पता चले कि दूसरी तरफ आइस्टीन है।

और आइस्टीन बुद्धि के हिसाब से तो बेजोड था ही। एक बहुत बडे विचारक ने, जोरेफ ने सुझाव दिया है कि अब हमें दुनिया का जो कलेण्डर है, उसे आइस्टीन के हिसाब से चलाना चाहिए — बिफ़ोर आइस्टीन एंड आफ्टर आइस्टीन : आइस्टीन के पहले की घटना और आइस्टीन के बाद की घटना आइंस्टीन से ही नापी जानी चाहिए — वह लकीर हो जानी चाहिए बीच में। और उसके सुझाव में जान है। आदमी इतनी बुद्धि का कभी हुआ नही था।

लेकिन स्नो कहता है कि उसके पास बैठकर पता ही नहीं चलता था कि आइस्टीन के पास बैठे हैं। यह तो जब उसके घर से लौटने लगते थे, तब खयाल आता

था कि किससे मिलकर लौट रहे हैं। और उसने खयाल भी न होने दिया और उसके पास होकर लगा कि हम बड़े हो गए।

जब आप दूसरे को छोटा करते हैं, तब आप बड़े तो हो ही नहीं सकते, **छोटे जरूर हो जाते हैं।** लेकिन भ्रम पैदा होता है, दृष्टि-भ्रम पैदा होता है।

हिंसा का मजा एक है कि दूसरा छोटा किया जा सके, हराया जा सके, तो आप बड़े हो गए; लगता है कि बड़े हो गए। अगर दूसरे बाधा डालें तो उन्हें मिटा दिया जाए। तब आपको लगता है कि आपके पास परम शक्ति है, आप मिटा भी सकते हैं।

ध्यान रहे, एक दूसरा भ्रम भी पैदा होता है। जो लोग मिटा सकते हैं, वे सोचते हैं कि शायद वे बना भी सकते हैं, जब मिटा सकते हैं, तो बना भी सकते हैं। वह भी भ्रम है। आपकी मिटाने की ताकत आपकी बनाने की ताकत नहीं है। मिटाना आसान है। मिटाने का काम बच्चे भी कर सकते हैं, मूढ़ भी कर सकते हैं, पागल भी कर सकते हैं। **बनाना बड़ी और बात है।** हिंसक मिटाने में सोचता है कि कुछ बना लिया, कुछ करके दिखा दिया। क्या करके दिखाया? बस मिटाया। मिटाना कोई कृत्य नही है। बनाना है। लेकिन भ्रम पैदा होना है कि जब मैं मिटा सकता हू तो मै बना भी सकता हू।

मनसविद कहते हैं कि दूसरे को मार डालने मे आदमी को एक भरोसा आता है कि जब मै मार सकता हू तो मुझे कोई नही मार सकेगा। एक आदमी अगर लाखो लोगो की हत्या कर दे तो उसे ऐसा लगता है कि अब मुझे कौन मारने वाला है! लेकिन मौत आते वक्त यह नही पूछती कि आपने कितने लोगों को मारा? उसे कोई अतर ही नही पडता है। आपका मरणधर्मा स्वरूप मरणधर्मा ही है।

हिंसा पर खडा है विजय का सारा आधार। और हिंसा कुरूपता है। इसलिए लाओत्से कहता है, विजय में भी कोई सौन्दर्य नही है। और जो इसमें सौन्दर्य देखता है, वह वही है जो रक्तपात मे रस लेता है।

लेकिन आदमी है बेईमान। और आदमी की सबसे बडी बेईमानी है उसकी रैशनलाइजेशन करने की क्षमता; **वह हर चीज को बुद्धियुक्त कर लेता है।** इसे थोड़ा समझ लें; क्योंकि यह आदमी की बुनियादी बेईमानी है। और हम सब उसमें कुशल है।

हम जो करना चाहते हैं, उसके आसपास हम बुद्धि का जाल खड़ा कर लेते है। अब तक ऐसा ही आदमी सोचता रहा है कि वह जो भी करता है, बुद्धियुक्त ढग से करता है। लेकिन यह झूठ है। वह करता पहले है। करने के कारण बुद्धि मे नहीं होते, करने के कारण अचेतन मन में होते है। लेकिन आदमी यह भी मानने को तैयार नही है कि मैं बिना बुद्धि के कोई काम करता हूं। **इसलिए करता है किन्हीं और कारणों से और दिखाता है कोई और कारण।** इसे जरा हम समझें।

आप घर में बैठे हुए हैं । आपको देखकर ही कोई कह सकता है कि आप किसी न किसी पर टूटने की तैयारी कर रहे हैं । हालांकि आप आराम कुर्सी पर बैठे हैं; लेकिन कुर्सी आराम कर रही है, आप नही कर रहे हैं । आपके ढंग से दिखता है कि आप तलाश में हैं, आप शिकार की खोज कर रहे हैं । कोई भी आपका निरीक्षण कर रहा हो तो वह पहचान सकता है कि आप तैयारी में हैं, हालांकि आपको यह बिलकुल खयाल मे नही है खुद । लेकिन आपके भीतर भाप इकठ्ठी हो रही है; जल्दी ही आपको भाप फूटेगी ।

आपका बच्चा स्कूल से चला आ रहा है दिन भर की मुसीबत झेलकर । क्योंकि शिक्षक से और बड़ी मुसीबत क्या हो सकती है ? अपना बस्ता टांगे हुए, जैसे सारे ससार का बोझ उठा रहा है -- अकारण, उसकी समझ में नहीं आ रहा है कि क्यों, वह चला आ रहा है । आपको दिखाई पडता है कि उसके कपड़े पर दाग लगे हैं, उस पर उसने स्याही डाल ली है; या शर्ट फट गई है, या पैन्ट पर कीचड़ पडी है । बस आप उस पर टूट पडे ।

आप यही कहेंगे कि बच्चे का सुधार करना चाहिए । यह रैशनलाइजेशन है । क्योकि कल भी बच्चा ऐसे ही आया था । बच्चा ही है । और कल तो और एक दिन छोटा था । परसो भी ऐसे ही आया था, स्याही भी डाल कर लाया था, कपडे भी फटे थे, और रास्ते में कीचड से भी खेल लिया था । परसो भी ऐसे ही आया था । लेकिन तब, तब आप भीतर क्रोध से भरे नही थे । आज, आज क्रोध तैयार है ।

कल भी इसी पत्नी ने भोजन बनाया था । और जैसा वह सदा जलाती थी, वैसा उसने कल भी जलाया था । लेकिन आज आप के लिए भोजन बिलकुल जला हुआ है । आज आप थाली फेंक देंगे और आप यह कहेंगे कि यह भोजन मैं कब तक खाऊं ? अगर यही भोजन खाना है, तो जीना बेकार है । लेकिन कल भी आपने यही भोजन खाया था, परसों भी यही खाया था । और जिस दिन पहले दिन यह पत्नी आई थी तो उस दिन तो आपने कहा था कि स्वर्ग है तेरे हाथो मे, और जो तू छू देती है वह अमृत हो जाता है। और उस दिन भी ऐसा ही जला हुआ था । अब तो अभ्यास भी अच्छा हो गया इसका; तब और भी जला हुआ था । लेकिन आज आप टूट पडेंगे । आप हालांकि यही कहेंगे कि कब तक कोई ऐसा भोजन कर सकता है ! आखिर भोजन तो आदमी को ठीक मिलना चाहिए ।

लेकिन आप भीतर देखें, यह रैशनालाइजेशन है । आप युक्तिपूर्वक बना रहे हैं एक घटना को, जिसका युक्ति से कोई सम्बन्ध नही है, कोई भी सम्बन्ध नही है ।

एक स्त्री आपको दिखाई पडती है और आप प्रेम में पड जाते हैं । पीछे आप कहते हैं कि उसकी नाक ऐसी है कि मुझे बहुत प्यारी है, कि उसकी आंखें ऐसी हैं कि मुझे बहुत प्यारी हैं । लेकिन यह सब रैशनलाइजेशन है । क्योंकि जब आप

प्रेम में पड़े, तब न तो आख का आपने विचार किया और न नाक का आपन विचार किया । यह तो पीछे से सोची हुई बातें हैं । आप कहते हैं, वह सुन्दर है, इसलिए मैं प्रेम में पड़ गया । लेकिन मनसविद कहते हैं कि आप प्रेम में पड गए हैं, इसलिए वह सुन्दर दिखाई पड़ती है । क्योंकि वही स्त्री किसी और को सुन्दर नहीं दिखाई पड रही है । और किन्ही को वही स्त्री कुरूप भी दिखाई पड़ रही है । और कोई सोचेगा अपने मन में कि तुम भी किस पागलपन में पडे हो, इस स्त्री को सुन्दर देख रहे हो; तुम्हारी बुद्धि मारी गई ! पर आपको वह सुन्दर दिखाई पड़ रही है ।

इसलिए कभी भी जब किसी को कोई सुन्दर दिखाई पड़े तो आप आलोचना मत करना । यह आलोचना का काम ही नही है । आप चुप रह जाना; आपको न भी दिखाई पडे तो समझना अपनी भूल है । आप शांत रहना । उसमें बीच मे बोलना मत, क्योकि सुन्दर का वस्तु से कोई सम्बन्ध नही है । सुन्दर दिखाई पड़ने लगता है कोई भी व्यक्ति, अगर उससे प्रेम हो जाए ।

और प्रेम क्यो हो गया ? यह तो बड़ी अड़चन है । यह प्रेम क्यो हो गया ? तो लोग उसके भी रास्ते खोजते हैं । कोई सोचता है कि शायद पिछले जन्म में कोई सम्बन्ध रहा होगा । पर यह कोई हल नही होता । क्योकि फिर सोच सकते है कि पिछले जन्म मे क्यो प्रेम हो गया था ? कहा तक पीछे ले जाइएगा ? कही तो शुरुआत करनी पडेगी । पीछे हटाने से क्या होगा ?

आपको पता नही है, प्रेम की घटना अचेतन है । मनोवैज्ञानिक कहते है, यह अनकाशस है, आपको पता नही है कि क्यों हो गया है । और अगर आपका मन खोला जाए तो जो बातें आप बता रहे है कि इसकी नाक ऐसी है, और आख ऐसी है, और शरीर ऐसा है, ये सब बाते कुछ भी नही पाई जाती है, कुछ और ही पाया जाता है । अचेतन मे आपके उतरा जाए तो कुछ और ही पाया जाता है ।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि आपके भीतर अचेतन में बचपन से ही स्त्री की जो छापें पड रही हैं, उनका हाथ है । जैसे कि एक बच्चे ने आख खोली, नर्स दिखाई पड़ी; वह पहली स्त्री है । या मां दिखाई पड़ी, या नौकरानी दिखाई पडी, या कोई दिखाई पडी, वह पहली स्त्री है । पहली स्त्री का बिम्ब उसके भीतर अचेतन में उतर गया । अब इस बिम्ब पर बिम्ब जुडते चले जाएगे । और बच्चा कोई एक वर्ष तक अचेतन मे बिम्ब इकट्ठा करता रहता है । जितनी स्त्रियो से सम्बन्ध होगा, उनके बिम्ब इकट्ठे हो जाएगे । और इन सब बिम्बों से मिलकर अचेतन में एक प्रतिमा बन जाएगी; वह जिन्दगी भर इसी प्रतिमा की तलाश करेगा । और जब किसी स्त्री से प्रतिमा मेल खा जाएगी, वह तत्काल कहेगा कि प्रेम हो गया ।

लेकिन इसका आपकी बुद्धि और विचार से कुछ लेना-देना नही है । इसको मनसविद कहते है कि यह तो एक्सपोजर पर निर्भर है । और इसलिए बहुत सी

बातें घटती हैं, जो आपके खयाल में नही हैं।

सभी पुरुष स्त्रियों के स्तन में बहुत उत्सुक होते हैं। वह एक्सपोजर है; क्योंकि मां का स्तन उनका पहला अनुभव है। और उसी स्तन से उन्होने दूध पाया, भोजन पाया, पहला स्पर्श पाया। उस स्तन में उन्होंने प्रेम भी अनुभव किया। उस स्तन के साथ उनके पहले सम्बन्ध जुड़े। इसलिए स्तन के प्रति उनका एक एक्सपोजर है। इसलिए आप ऐसी स्त्री के प्रेम में न पड़ पाएंगे, जिसके स्तन न हों। बिलकुल न पड़ पाएंगे; बिलकुल न पड़ पाएंगे।

क्योंकि बिना स्तन की स्त्री के प्रेम पडने का मतलब यह होगा कि या तो आपको बचपन से ही पुरुष के साथ बडा किया गया है और आपके मन में स्तन की कोई प्रतिमा न बनी है, नही तो मुश्किल हो जाएगी।

इसलिए स्त्रियां भी जाने-अनजाने उभार के स्तन को दिखाने की कोशिश में लगी रहती हैं। झूठे स्तन भी बाजार में बिकते हैं।

अमरीका में एक मुकदमा १९२० में चला। एक अभिनेत्री थी, नाटक की बड़ी प्रसिद्ध अभिनेत्री थी। उसकी बडी ख्याति थी। नाटक में एक दृश्य में अभिनेता और उनमें छीन-झपट होती है। उस छीन-झपट में उसका झूठा स्तन बाहर आ गया। तो उसने अदालत में लाखों डालर का दावा किया; क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा ही नष्ट हो गई सारी। उसके बाद फिर कोई यह मान नही सकता था कि वह स्तन सच्चा है, चाहे वह लाख उपाय करें। उसका सारा का सारा इमेज खो गया।

क्यो स्त्रियां उत्सुक होती होंगी ? क्योंकि पुरुष उत्सुक है। और कोई कारण मत खोजे, बुद्धिगत कारण। बुद्धिगत कारण नही है; सिर्फ इम्प्रिन्ट है, सिर्फ संस्कार है, जो बचपन से बच्चे के ऊपर पडा है। वह संस्कार की तलाश कर रहा है। मां का मतलब है स्तन; वह उसकी पहली पहचान है इस जगत से। इसलिए स्तन प्रीतिकार मालूम पडते रहे हैं।

बूढे आदमी को भी कठिनाई होती है। मुझसे एक बूढे सज्जन पूछ रहे थे कि क्या मामला है ? आखिर स्त्री के स्तन में अब भी इतना रस क्यो है ? तो मैंने उनको कहा कि इसमें आप कुछ घबराएं नही, और कसूर न समझें कुछ। और न इसमें कुछ पाप और अपराध हो रहा है। आप भी बच्चे थे, बस इसकी खबर है। और कुछ मामला नही है। कभी आप भी बच्चे थे, बस इसकी खबर है। इसमें आप परेशान न हों ज्यादा। सहजता से इसे स्वीकार कर लें। क्योंकि कभी आप ने भी स्तन से दूध लिया था।

लेकिन आदमी अपने आसपास तर्क-बुद्धि का जाल खड़ा करता है। उसका नाम है रैशनलाइजेशन, तर्कीकरण। इस तर्कीकरण से कोई आदमी रक्तपात से रस लेता हो तो वह कहेगा कि विजय में बडा सौन्दर्य है, विजय की बड़ी गरिमा है,

विजय महान है, विजय बड़ी श्रेष्ठ है, और विजयी का गौरव है।

अगर दो आदमी लड़ते हों और एक गिर जाए जमीन पर और दूसरा छाती पर बैठ जाए तो आप छाती पर बैठनेवाले को गौरवान्वित क्यो मानते हैं? समझ के बिलकुल बाहर बात है कि इसमें क्या गौरवान्वित होने की बात है? आप छाती पर बैठ गए, वह आदमी नीचे लेट गया, इसमें गौरवान्तिव होने की क्या बात है? और वह जो नीचे लेट गया, वह भी पीड़ा अनुभव करता है कि मैं नाकुछ हो गया। और जो छाती पर बैठ गया, वह अनुभव करता है कि मैं सब कुछ हूँ। देखनेवाले के मन में भी, जो जीत गया, वह गौरव पाता है। आखिर क्यों? आखिर जीतना ऐसा गौरव क्यो है?

आपने नही सोचा होगा; आप भी जीतना चाहते हैं, दूसरे की छाती पर आप भी बैठना चाहते हैं। इसलिए जब भी कोई दूसरे की छाती पर बैठ जाता है, तब आप उसको गौरवान्वित समझते हैं। **क्योंकि यही आपकी भी मनोकांक्षा है, यही आप भी चाहते है।**

और नीचे जब कोई गिर जाता है, किसी के पैरो के नीचे दब जाता है, तो आप उसको गौरवान्वित नही कह सकते हैं। हाँ, सहानुभूति दिखा सकते हैं उसके साथ। इसलिए सहानुभूति से कोई सुखी नही होता है। इसका ध्यान रखना, भूल के भी किसी को सहानुभूति मत बताना। क्योकि उसका मतलब ही यह है कि आपने भी मान लिया कि गिर गए, सहानुभूति के योग्य हो गए। सहानुभूति के योग्य होने का मतलब यह है कि गौरव छिन गया। जीते के साथ कोई सहानुभूति नहीं दिखाता है। कभी आप कहते हैं किसी से कि बड़ी सहानुभूति है आपके प्रति, क्योंकि आप जीत गए? कोई नही कहता। सिर्फ हारे हुए के साथ सहानुभूति होती है। वह भी क्यो?

आप जीतना चाहते हैं, इसलिए जीते को गौरवान्वित करते हैं। और आप भी डरते हैं कि कही हार गये तो कम से कम सहानुभूति तो मिलनी चाहिए। वे दोनो आपके अचेतन में दबे हुए भाव हैं। और उनके फैलाव है।

अगर कोई मनुष्य सच मे ही आध्यात्मिक साधना में उतरना चाहता हो तो **उसे अपने हर भाव के पीछे की अचेतन दशा को खोजना चाहिए।** बुद्धि और तर्क से कुछ समझाने की कोशिश नही करना चाहिए; क्योकि वह समझा-बुझाकर अपना जाल खडा कर लेगा; और कहेगा कि यह इस वजह से है।

आप साधारणत. यही कहना चाहेंगे कि विजय श्रेष्ठ है, इसलिए जो जीत गया, उसका गौरव है। लेकिन क्यों है विजय श्रेष्ठ? और हार बुरी क्यो है? और वह हार गया हुआ अपमानित क्यो है? इसके क्या कारण हैं भीतर?

इसके कारण आपकी आकाक्षा और वासना में हैं। हारने और जीतने की बाहर जो घटना घट रही है, वह तो केवल बहाना है; आपके भीतर की वासना

उस बहाने का उपयोग कर रही है।

लाओत्से कहता है, वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है; वही सौन्दर्य देखता है विजय में। और जिसे हत्या में रस है, वह संसार पर शासन करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा मे सफल नही होगा। क्यो नहीं होगा महत्त्वाकांक्षा में सफल?

क्योंकि हिंसा से जो जीतता है, वह हिंसा से भयभीत रहता है। जो हिंसा से जीतता है, वह कभी भय के बाहर नही जा सकता। **इसलिए बड़े हिंसक बड़े भयभीत रहते हैं।** हिटलर और स्तालिन से ज्यादा भयभीत आदमी खोजना मुश्किल है। वे थर-थर कपते रहते थे। स्तालिन की लड़की स्वेतलाना ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मेरे पिता से ज्यादा भयभीत आदमी खोजना मुश्किल है। इतनी हिंसा की है तो इतने लोगो को हिंसा करने के लिए उत्सुक भी कर दिया। जितने लोगो को दबाया है, उतने को उत्सुक भी कर दिया है कि वे बदला लें, प्रतिकार करें, और तुम्हे दबा दें।

और जिसको हम दबाते हैं, वह हमसे भयभीन भला हो जाए, वह कभी मानता नही है कि हम जीत गये और वह हार गया। वह सदा इतना ही मानता है कि टेम्पोरेरी फेज है, एक अस्थायी बात है कि तुम अभी ऊपर आ गये; थोड़ा मौका दो, थोड़ा समय दो, हम भी ऊपर आ जाएगे। हारा हुआ कभी नही मानता है कि मेरी हार शाश्वत हो गई। वह मानता है कि क्षण की बात है, सयोग की बात है। जीता हुआ भी नही मान सकता कि मेरी जीत शाश्वत हो गई। क्योंकि वह भी जानता है कि जो नीचे है, वह कल ऊपर आ सकता है।

एक बात विचारणीय है: भय से कोई भी कभी विजित नही होता, कोई कभी भय से हराया नही जा सकता। लेकिन हम सब भय पर भरोसा करते है। बडे युद्धखोर ही करते हैं, ऐसा नही है, हम भी करते हैं। हम भी मानते हैं ऐसा।

१९४० मे रूजवेल्ट ने एक वक्तव्य में कहा कि मेरा देश, मैं चाहता हू, उस स्थिति मे पहुचे, जहा कोई भी व्यक्ति भयभीत न हो, किसी को भी भय की परतंत्रता न रहे, सब स्वतंत्र हो अभय होने को। और दूसरी बात कही कि सभी स्वतंत्र हो, पूजा करने को, प्रार्थना करने को। एक व्यक्ति ने, एक बहुत विचारशील व्यक्ति ने रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा और उस पत्र में लिखा कि दोनो बाते विरोधी हैं, आप जरा फिर से सोचे। क्योंकि ईसाई प्रार्थना में वचन ही यही आता है कि हे प्रभु, ऐसा कभी दिन न आये जब मैं तुमसे भयभीत न होऊं; तेरे प्रति मेरा प्रेम बना रहे और तुझसे मै सदा डरता रहूं।

उस आदमी ने ठीक पत्र लिखा। रूजवेल्ट को मुश्किल पड़ गई। उसने ठीक कहा कि **प्रार्थना में तो भय की ही प्रार्थना है।** और अगर आप चाहते हैं कि लोग भय से मुक्त हो जाएं तो लोग प्रार्थना से मुक्त हो जाएगे; जरा खयाल कर लें। और अगर आप चाहते हैं कि **लोग प्रार्थना को स्वतंत्र हो तो उनको भयभीत रहने**

देना पड़ेगा। इसमे थोड़ी सचाई है। अंग्रेजी में गॉड-फीयरिंग धार्मिक आदमी को कहते हैं; ईश्वर-भीरु हम भी कहते हैं।

तुलसीदास ने कहा है, भय बिन होई न प्रीति, बिना भय के प्रीति ही नहीं हो सकती। यह थोड़ी दूर तक सही बात मालूम पडती है; क्योंकि हमारा सब प्रेम भय पर ही खडा होता है। बाप बेटे को डराता है तो बेटा बाप को प्रेम करता है। और जब बेटा बाप को डराने लगता है--मौका तो आ ही जाएगा, वह ज्यादा दिन नही चलेगा--तब बाप कहता है कि तुम मुझे प्रेम नही करते। वह पहले भी प्रेम नही करता था। आप सिर्फ डरा रहे थे, इसलिए प्रेम मालूम पड रहा था। अब वह आपको डराने लगा, तब कैसे प्रेम मालूम पडेगा? इसलिए हर बाप को अनुभव होता है कि अब बेटा प्रेम नही करता है। वह कब करता था, यह तो बताइए।

जब आपका डडा आपके हाथ में था, तब आपको लगता था कि वह प्रेम करता है। ज्यादा देर डंडा आपके हाथ मे नही रहेगा। जिन्दगी सभी को मौका देती है; डडा बेटे के हाथ मे आएगा। तो फिर वह बूढे बाप को डडा बताएगा और तब वह चाहेगा कि आप उससे प्रेम करें। पहले वह आपसे प्रेम करता था, अब आप उससे प्रेम करें। आखिर वही कब तक करें, आप भी तो करें।

जो भयभीत कर रहा है, वह भला सोचता हो कि मैंने प्रेम पैदा कर लिया, वह दूसरे में प्रेम पैदा नही कर रहा है, सिर्फ घृणा पैदा कर रहा है। लेकिन तुलसीदास ठीक कहते हैं, **निन्यानबे आदमियों की बाबत यही बात है कि वे भय को ही प्रेम समझते हैं।** तो जितना डराते हैं, उतना सोचते हैं कि प्रेम मिला।

एक नेता है बडा। भीड़ लग जाती है, लोग जयजयकार करते हैं, फूल--मालाएं पहनाते हैं। और कल जब वह ताकत में नही रहता, फिर उसका पता ही नहीं चलता कि वह कब आता है, कब जाता है। फिर आपको आखिरी खबर तभी मिलेगी, जब वह मरेगा और अखबार खबर छापेंगे। क्यों? अगर इतना प्रेम था, तो इतनी जल्दी खो कैसे जाता है? वह प्रेम वगैरह नहीं था, सत्ता का भय था, ताकत की पूजा है। तो खो जाता है।

अगर पति बहुत धन कमाता है तो पत्नी बहुत प्रेम करती मालूम पडती है। फिर जब धन नही कमाता है, या गवा बैठता है धन को, तो सब प्रेम समाप्त हो जाता है। वह प्रेम कहा गया? वह प्रेम कभी था ही नही, वह धन का भय था। धन की शक्ति थी, उसका भय था। उससे ही सब प्रेम था।

इसलिए पुरुषो ने स्त्रियों को सदा भयभीत रखा है। क्योंकि वे सोचते हैं कि भयभीत स्त्री प्रेम करेगी। भयभीत स्त्री भीतर से घृणा ही करेगी; प्रेम नही कर सकती।

लेकिन सस्ता है यह काम, दूसरे को भयभीत करना सस्ता काम है। दूसरे के मन में अपने लिए प्रेम पैदा करना बहुत कठिन काम है, अति कठिन काम है।

शायद इस पृथिवी पर इससे अधिक कठिन कोई काम ही नहीं है। **प्रेम से बड़ी कोई कला नहीं है।** यह सस्ता काम है कि डरा दो, भय पैदा हो जाए।

तो पुराने धर्म भी भय पर खड़े हैं। वे कहते हैं, ईश्वर से डरो। लेकिन जो आदमी ईश्वर से डरेगा, वह ईश्वर से प्रेम कैसे करेगा? डर कहीं प्रेम पैदा करता है? तब तो दिल में तो यही रहेगा कि किसी दिन मौका मिल जाए तो ईश्वर की छाती में छुरा भोंक दें। मन में तो यही रहेगा। ऊपर से हाथ जोड़े खड़े, हैं जी—हुजूरी कर रहे हैं, कि हम पापी हैं आप पतितपावन हो; मगर भीतर सोच रहे हैं कि कब मौका मिले कि हम सिंहासन पर बैठें और तुम मेरे आगे आकर कहो कि आप पतित-पावन हो और हम पापी हैं! भय तो सदा ही यह प्रतीक्षा करेगा, चाहे भयभीत आदमी को पता भी न हो।

यही मैं कह रहा हूं। खुद भयभीत आदमी को पता न हो कि उसकी अचेतन आकांक्षा क्या है, लेकिन डरा हुआ आदमी अचेतन में घृणा ही करेगा और बदला लेना चाहेगा।

लाओत्से कहता है कि घृणा से, हिंसा से कभी कोई शासन करने में सफल नहीं हो पाएगा। क्योंकि शासित स्वीकार ही नहीं करता है आप को। उसके हृदय में आपकी विजय कभी स्थापित नहीं होती। सिर्फ एक ही उपाय है जिससे किसी के हृदय में विजय स्थापित हो जाए; **वह उपाय प्रेम का है,** हिंसा का नहीं।

मगर उसकी बड़ी कठिन शर्त है। और वह शर्त यह है कि जब तक आप दूसरे को विजित करना चाहते हैं, तब तक आपमें प्रेम ही नहीं है। यह जरा जटिल मामला है। **जब आप में प्रेम होता है, तब दूसरा हार जाता है; लेकिन जब तक आप हराना चाहते हैं, तब तक आप में प्रेम ही नहीं होगा।** जीत होती है दुनिया में, लेकिन उसकी ही होती है जो जीतना चाहता ही नहीं है। और कई बार तो ऐसा होता है कि **जो हारने को तैयार होता है, वही जीत जाता है, पहले वही जीत जाता है।**

जीसस ने कहा है कि जो आखिरी खडे होने को राजी हैं, वे मेरे राज्य में प्रथम खड़े हो जाएंगे, और जो हराने को राजी हैं उनकी जीत निश्चित है। जीसस ने कहा है कि जो खोने को राजी हैं, उन्हें कोई पाने से नहीं रोक सकेगा, और जो बचाना चाहेंगे, उनसे छिन जाएगा।

यह ठीक कहा है, उलटे सूत्र बड़े ठीक हैं। **लेकिन ये सूत्र प्रेम के हैं।**

अगर मैं आपको जीतना चाहता हूं तो एक बात निश्चित है कि मैं कभी नहीं जीत पाऊंगा। क्योंकि मेरी जीतने की आकांक्षा ही आपको मेरा दुश्मन बना रही है। और अगर मैं जीतना ही नहीं चाहता तो मैंने मित्रता के हाथ फैला दिये। और अगर मैं इतने प्रेम से भरा हूं कि आपको आनन्द मिलता हो मुझे जीत लेने में, मैं हारने को तत्काल राजी हूं, तो मैंने जीत लिया। हिंसा के जगत में हराए बिना

कोई जीत नहीं है; अहिंसा के जगत में हारने की कला ही जीतने की कला है।

ऐसे व्यक्ति की महत्वाकांक्षा कभी पूरी न होगी, जो सोचता है कि हिंसा से, रक्तपात से जगत का शासन कर ले। एक व्यक्ति पर शासन नहीं किया जा सकता, जगत तो बहुत बड़ी बात है। आप जरा सोचें, अपने एक छोटे से बच्चे को आप शासन में नहीं रख सकते, उसका भी प्रेम पाने में आप असफल हो जाएंगे, अगर आपने हिंसा का उपाय किया। और सभी मां-बाप कर रहे हैं, इसलिए असफल हो जाते हैं। डरा रहे हैं, भयभीत कर रहे हैं, धमकी दे रहे हैं। बच्चा कमजोर है, आप धमकी दे सकते हैं। बच्चे से कमजोर और क्या होगा? लेकिन यह धमकी क्या परिणाम लाएगी?

यह बच्चा आपके प्रति घृणा इकट्ठा कर रहा है। और इसके लिए आप ही जिम्मेवार हैं। कल यह घृणा फूटेगी और बहेगी। और तब आप रोएंगे, सिर पीटेंगे और चिल्लाएंगे, और कहेंगे कि सब बच्चे बिगड़ गए हैं। और कभी खयाल न करेंगे कि बिगड़ कैसे गये? क्योंकि कोई बच्चा नहीं बिगड़ सकता, अगर बाप पहले ही न बिगड़ गया हो। कोई उपाय नहीं है बिगड़ने का। वृक्ष फलो से पहचाने जाते हैं; बाप उनके बेटों से पहचाने जाते हैं। और कोई भी उपाय नहीं है। अगर फल सडा है तो जड़े ही सडी होगी; भला जड़ें कितना शोरगुल मचाए कि फल बिगड गया है। लेकिन फल बिगड़ता कैसे है?

बिगड़ने की लम्बी प्रक्रिया है। और बिगडने की लम्बी प्रक्रिया हिंसा से शुरू होती है। मगर हमें खयाल नही है, हम सोचते हैं कि शासन या हिंसा आसान है। हिंसा या शासन एक व्यक्ति पर भी संभव नही है तो इस बिराट जगत पर तो कभी भी सभव नही हो सकता।

शुभ लक्षण की चीजें बाम पक्ष को चाहती है, अशुभ लक्षण की चीजें दक्षिण पक्ष को। उप-सेनापति बाम पक्ष में खड़ा होता है, और सेनापति दक्षिण पक्ष में। अर्थात् अन्त्येष्टि क्रिया की भांति विजय का पर्व मनाया जाता है।

यह एक व्यंग कर रहा है लाओत्से। जैसे कि कोई अर्थी ले जा रहा हो, और जैसे लाश रखी गई हो अन्त्येष्टि के लिए, और एक तरफ सेनापति खडा है और दूसरी तरफ उप-सेनापति खड़ा है, और आग जलाई जा रही है, और लाश जलाई जा रही है। विजय को, विजय की यात्रा को, लाओत्से कहता है, समझना मरघट पर हो रही अन्तिम क्रिया है।

हजारों की हत्या के लिए शोकानुभूति जरूरी है। और तुम यह क्या कर रहे हो, विजय का उत्सव मना रहे हो? हजारों की हत्या करके तुम विजय का उत्सव मना रहे हो? लेकिन इसे थोडा समझें।

जब भी कोई मुल्क जीतता है युद्ध में, तब विजय का उत्सव मनाता है। क्यों? अगर थोड़ी भी समझ हो तो यह भी सोचना हो सकता है कि मजबूरी थी, लड़ना

पड़ा, लेकिन इसमें इतना उत्सव मनाने की क्या बात है ? मगर इस उत्सव के बहुत गहरे, गहन मनोवैज्ञानिक कारण हैं।

जब भी आप कोई अपराध करते हैं, तब एक ही उपाय है अपराध को भुलाने का कि आप उत्सव में लीन हो जाए। जब भीतर पश्चाताप का क्षण आ रहा हो तो उससे बचने का एक ही उपाय है कि बाहर के शोरगुल में, धूमधाम में उस क्षण को भुला दें। जब भी आप कोई बड़ा उत्सव मनाते हैं, तब आप भीतर किसी अपराध को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। यह कठिन बात है, यह बड़ी कठिन बात है।

लेकिन आदमी बड़ा कुशल है छिपाने में।

तो जब भी युद्ध मे कोई जीतता है, तब उत्सव मनाता है। उत्सव के शोरगुल में, बैण्ड बाजों में, झण्डे-पताकाओ मे, रगबिरगे गुब्बारो में, नारेबाजी में, नेताओं की नासमझी की बातो में एक हवा पैदा होती है, जिसमें हम यह भूल जाते हैं कि हमने क्या किया। हम किस बात का उत्सव मना रहे है ! हमने लाशें बिछा दी; क्या उनके ऊपर हम यह उत्सव मना रहे हैं ? इस उत्सव के उपद्रव में आदमी फिर वापस, जहा युद्ध के पहले था, उस कामकाज की दुनिया मे सलग्न हो जाता है। **और इस उत्सव को मना लेने में पश्चाताप के क्षण से बचाव है, पलायन है।**

लेकिन, लाओत्से कहता है, इसे तो ऐसे मनाना, विजय का उत्सव अन्त्येष्टि क्रिया की भाति मनाना, जैसे कि कोई मर गया हो, ऐसे दुख और शोक मे डूब जाना।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। अगर हम विजय के क्षणा में शोक मे डूबने लगे तो फिर हम लोगों को हिंसा करने के लिए राजी नही कर पाएगे। जैसा मैंने परसो कहा कि अगर हम अपने सेनापतियो को युद्ध के बाद पश्चाताप के लिए तीर्थयात्रा पर भेज दे, या उनको कहें कि अब तुम महीने भर का उपवास करो, प्रभु-कीर्तन करो, या उनको कहे कि तुमने बहुत पाप किया इतने लोग मार डाले, अब सब त्याग करके तुम सन्यासी हो जाओ, तो फिर हम किसी आदमी को राजी न कर पाएंगे इतना पाप करने के लिए ! वह कहेगा कि अगर हमे आखिर मे पश्चाताप ही करना होगा तो फिर युद्ध पर जाने की जरूरत क्या है ? तो फिर हम नही जाते।

सैनिक को अगर हमें युद्ध पर भेजना है तो हमे विजय की यात्रा मनानी ही पडेगी। क्योकि सैनिक उसी विजय की आकाक्षा में, उसी शोभा की आकाक्षा में मरने और मारने जा रहा है। तो कल जब वह जीत कर आएगा, हत्या करके आएगा, तो उस हत्यारे का हमे स्वागत करना पडेगा। इस स्वागत के नशे में ही तो वह भूल पाएगा कि उसने पाप किया है। तब हमें उसे पद्मविभूषण और भारत-रत्न और महावीर-चक्र देना पड़ेगा, ताकि इस शोरगुल मे उसे लगे कि

वह कोई महान कार्य करके लौटा है, और हम उसे दुबारा फिर इस मूढ़ता पर भेज सकें। नही तो फिर वह दुबारा जाएगा ही नहीं।

इसलिए सैनिक को हमें सम्मान देना पड़ेगा; क्योंकि हमने उससे पाप करवाया है। और उस पाप के बदले में हमें उसे गौरव देना पड़ेगा, ताकि उसको पाप का ख्याल न रहे। इसलिए विजय की यात्रा और विजय का उत्सव और विजय का पीछे का शोरगुल, सब हमारी आत्मा को अंधा करने और बहरा करने के उपाय हैं।

अगर लाओत्से की बात मान ली जाए तो दुनिया में युद्ध बन्द हो जाएंगे। विजय जिसने की है, वह अगर शोक में डूब जाए, तो दुनिया में फिर विजय की आकांक्षा भी न रह जाएगी। अभी तो हारा हुआ शोक में डूबता है; जो जीतता है, वह खुशी मनाता है। अगर लाओत्से की बात मान ली जाए और जीतने वाला भी दुःख में डूब जाए तो इसके दोहरे परिणाम होंगे।

इसका एक परिणाम तो यह होगा कि जो हार गया है, वह दुख में नहीं डूबेगा। अगर जीतने वाला दुख में डूब जाए तो जो हार गया है, वह दुख में नहीं डूबेगा। और अगर जीतने वाला दुख में डूबने लगे तो जीत की आकांक्षा क्षीण हो जाएगी, और हम लोगों को राजी न कर सकेंगे हिंसा के लिए।

और किसी दिन ऐसा वक्त आ सकता है कि विजय एक पाप हो जाए, और विजय एक अपराध हो जाए। हम ऐसा मनुष्य भी निर्मित कर सकते हैं जिसके हृदय में विजय की आकांक्षा ही अपराध हो। **शायद उसी दिन हम दुनिया को युद्ध से मुक्त कर पाएंगे।** उसके पहले दुनिया युद्ध से मुक्त न हो पाएगी।

हम कितना ही कहे कि युद्ध नहीं होने चाहिए, लेकिन युद्ध के जो मूल कारण हैं उनमें तो हम सम्मिलित ही होते है; उससे हम कभी भी दूर खडे नही होते। हम कितना ही कहे कि युद्ध बुरा है, लेकिन जीतने वाला अच्छा है यह तो हम भी मानते हैं। वह जीतनेवाला चाहे स्कूल से कक्षा मे प्रथम आने की प्राइज लेकर घर आ रहा हो, मगर वह भी उनतीस लड़को को हराकर चला आ रहा है।

एक बच्चा जब घर में प्रथम होकर आता है अपनी क्लास मे, तब हम उसका स्वागत करते है, वह हम युद्ध को निमन्त्रण दे रहे हैं। वह उन्तीस को हरा कर आ रहा है, उनको नीचे गिरा कर आ रहा है, और हम कहते है कि तू प्रथम आया है। बाप आनंदित होता है; वह नही आ पाया था, कम से कम उसका लड़का आया है। लड़के के द्वारा उसकी आकांक्षा पूरी हो रही है। वह अकड़ कर चलेगा आज, क्योंकि उसका लडका प्रथम आ गया। लेकिन उनतीस को हरा आया है; वे उनतीस घर दुख से लौटेंगे; उनके बाप दुखी हो रहे होंगे, नाराज हो रहे होंगे, वे उनको अपमानित कर रहे होंगे; वे कह रहे होंगे कि लानत है तुम पर, तुम्हारे होने से न होना अच्छा था; बरबाद कर दिया, कुल का नाश हो गया। वे जो

उनतीस हार कर चले गए हैं, उनके यहाँ शोक होगा। यह जो एक जीत कर घर आया है, यहाँ सम्मान होगा।

आपने युद्ध के बीज बो दिए। जिन्दगी अब इसी पटरी पर सदा चलेगी। जो जीतेगा वह सम्मानित होगा, जो हारेगा वह अपमानित होगा। फिर छोटे युद्ध हैं और बड़े युद्ध हैं। और सारी जिंदगी अपराध से भर जाती है।

ध्यान रहे लेकिन, हिंसा में कोई भी सौन्दर्य नहीं है और विजय में कोई भी गौरव नहीं है। विजय की आकांक्षा क्षुद्र मन का फैलाव है। और हिंसा में, विजय में, हत्या में गौरव देखना आदमी के रुग्ण मन की खबर है, बीमार चित्त की खबर है।

स्वस्थ आदमी जीतने में रोग देखेगा, हिंसा में पाप देखेगा, दूसरे को नीचा करने में, हीन करने में अधर्म देखेगा। और वह एक ही सौन्दर्य को जानता है, जो व्यक्ति सच में विचारशील है वह एक ही सौन्दर्य को जानता है और वह सौन्दर्य है परम अहिंसा का, प्रेम का।

और उस प्रेम से भी एक विजय फलित होती है। वही वास्तविक विजय है। और उस प्रेम से जीवन में एक संगीत का जन्म होता है, जो संगीत बिना किसी को हराये जीतता चला जाता है।

आज इतना ही। कीर्तन करें और जाएं।

■■

मार्ग है
बोधपूर्वक निसर्ग के अनुकूल जीना

चौसठवाँ प्रवचन

अमृत अध्ययन वर्तुल, बम्बई : दिनांक १ दिसम्बर १९७२

- मृतकों को भोजनादि देने का क्या अर्थ ?
- कैसे जानें कि प्रकृति के हम अनुकूल हैं ?
- प्रकृति के अनुकूल चलें तो समाज का क्या होगा ?
- निसर्ग के अनुकूल होने से पशु तो नहीं होंगे ?
- हठी कुपुत्र को सुधारने को क्या करें ?

बहुत से प्रश्न हैं।

●

एक मित्र ने पूछा है कि इजिप्त के पिरामिड के सम्बन्ध में आपने कहा कि वहां के लोगों की सभ्यता, सस्कृति ऊंचाई के शिखर पर थी। लेकिन उन्होंने पिरामिडों के भीतर मनुष्यों के मृत शरीर रखे है, ममीज रखे हैं और उनमें खाना-पीना, कपडे, जवाहरात, इस तरह के सामान भी रखे हैं, ताकि उनको मरने के बाद की सफर में काम आए। तो यह समझाए कि जो इतनी ऊंचाई पर पहुंचे हुए सभ्य लोग थे, क्या उन्हें यह भी पता नही था कि मरने के बाद यह कुछ भी काम नही आता है?

इस सम्बन्ध में दो बाते समझ लेनी चाहिए। एक तो जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तब जो हम करते हैं, उसका सम्बन्ध हमसे है, उस व्यक्ति से नहीं। आपकी मा मर गई, या पिता मर गए, ऐसे ही घर के बाहर उन्हे आप फेंक दे सकते हैं; दफनाने की कोई भी जरूरत नही है, मरघट तक ले जाने का भी कष्ट उठाना फिजूल है। क्योंकि लाश को अब क्या मरघट तक ले जाना? शरीर को ही ले जा रहे हैं न, आत्मा तो उड चुकी है। अब इस शरीर को आप बैण्ड-बाजे से ले जाए तो पागलपन है। मरघट पर जाकर आप इस मरे हुए शरीर पर आंसू गिराएं, पागलपन है। ध्यान रहे, जो आप कर रहे हैं वह मरे हुए पिता या मां के लिए नही, वह आप के लिए है।

जिन्होने इजिप्त के ममीज में कपड़े रखे हैं, रोटी रखी हैं, और सामान रखे हैं, उन्होंने केवल इतनी खबर दी है कि यह जानते हुए भी कि मरे हुए आदमी के के यह कुछ भी काम नही आएगा, उनका प्रेम नही मानता है, उनका प्रेम चाहता है कि वे जो कुछ कर सके मरे हुए आदमी के लिए, वह भी करें। इस फर्क को ठीक से समझ लें।

मरा हुआ आदमी कहा है, आपको पता नही है; उसके लिए क्या उपयोगी है, यह भी पता नही है। प्रार्थना, पूजा, उसकी आत्मा की शांति का प्रयास, यह सब अब आप उसके लिए कर सकते हैं; लेकिन यह सब उसे पहुंचेगा, यह भी आपको पता नही है। लेकिन आप कर रहे हैं; अगर ठीक से समझें तो यह आप अपने लिए कर रहे हैं। यह आप के प्रेम का प्रदर्शन है। और इससे आपको राहत

मिलेगी, मरे हुए आदमी को नहीं।

आपके पिता मर गए हैं और पितृपक्ष में आप कुछ कर रहे हैं, इससे कोई आपके पिता को कुछ हो जानेवाला है, ऐसी भूल में मत पड़ जाना। पर आप कुछ कर रहे हैं, यह आपके लिए है। यह आपके हृदय के लिए है, आपके प्रेम के लिए है। यह आपकी अपनी सान्त्वना है।

किसी का पति मर गया है। अगर उसने उसके साथ भोजन का सामान रख दिया है, तो यह पति मरा हुआ भोजन करेगा, ऐसा नहीं है। लेकिन जिसने जीवन भर इस पति के लिए भोजन बनाया था, वह मृत्यु के क्षण में भी इस भोजन को साथ रख देना चाहेगी।

अगर इस तरह देखेंगे तो खयाल आयेगा कि सभ्यता का अर्थ ही क्या होता है? **सभ्यता का अर्थ होता है प्रेम का गहन और विस्तीर्ण हो जाना।**

निश्चित ही इजिप्त के वे लोग सभ्य थे और उनका हृदय भी सभ्य था। और अगर केवल मस्तिष्क की सभ्यता होती तो आप जो कह रहे है, वही उनने भी सोचा होता कि क्या फायदा है? सच तो यह है कि बाप की हड्डी-पसली निकाल कर बेच देना चाहिए। कुछ पैसे मिल सकते हैं, वह फायदे की बात है। शरीर को व्यर्थ जला आते है, उसका कोई मतलब भी तो नहीं है। सब बेचा जा सकता है सामान। लेकिन वह आप न कर पाएंगे; यह जानते हुए भी कि बाप की आत्मा को अब इससे कुछ नुकसान होनेवाला नहीं है। जो शरीर छूट गया, वह छूट गया। अब इसको जला दे रहे हैं, इससे तो बेहतर है कि बाजार में बेच दें। अगर बुद्धि ही पास में होगी तो यही उत्तर ठीक मालूम पड़ेगा। लेकिन फिर भी आप बेचना न चाहेंगे। भीतर हृदय में कहीं चोट लगेगी।

यह शरीर ही बचा है अब, और यह मिट्टी है, यह बात साफ है। और इस मिट्टी के साथ कुछ पैसे और जवाहरात रख देना असभ्यता का लक्षण नहीं है, हृदय भी एक ऊंचाई पर रहा होगा, वह इसकी खबर है।

पर बड़ी कठिनाई होती है कि जो सभ्यताएं खो जाती है, उनकी बाबत हम जो भी सोचते है, वह हमारा ही विचार होता है। पश्चिम में जिन लोगों ने इन ममीज को खोदा है और उनमें सामान पाया है, उन्होंने यही सोचा कि मरा हुआ आदमी इनका उपयोग कर सकेगा, इसलिए ये चीजें रखी गई। ये चीजें इसलिए नहीं रखी गई हैं। **प्रेम मरे हुए को भी मरा हुआ नहीं मान पाता है। और जहां प्रेम नहीं है, वहां जिन्दा आदमी भी मरा हुआ ही है।** एक छोटी सी घटना कहूं, उससे खयाल में आ सकेगा।

रामकृष्ण की मृत्यु हुई। तो नियमानुसार उनकी पत्नी शारदा को चूड़ियां तोड़ लेना चाहिए थी। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा कि चूड़िया तोड़ डालो। और शारदा चूड़िया तोड़ने जाती ही थीं कि तभी वह खिल-

खिला कर हंसने लगीं। लोग समझे कि वह पागल हो गई है। और उसने चूड़ियां तोड़ने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि जैसे ही मैं चूड़ियां तोड़ने जा रही थी, मुझे रामकृष्ण का वचन याद आया। उन्होंने कहा है कि मैं तो कभी भी नहीं मरूंगा। तो उनका शरीर भला छूट गया हो, वह मरे नहीं है; इसलिए मैं विधवा नहीं हो सकती। **यह भारत में पहला ही मौका है, पूरे इतिहास में, जब किसी विधवा ने पति के मरने पर विधवा होने से इनकार कर दिया।** उसने कहा, अगर उनकी आत्मा है तो मैं विधवा नही हू; इसलिए चूड़िया मै पहने रहूंगी।

और फिर शारदा सधवा के वस्त्र ही पहने रही। रोज ठीक समय पर वह रामकृष्ण की बैठक में जाती थी उनसे कहने कि चले, भोजन तैयार है। अब वहा कोई भी नही था; लेकिन शारदा रोज जाती थी। लोग वहां बैठ के शारदा की बात सुनकर रोते थे और शारदा उस जगह जाती थी जहा रामकृष्ण बैठते थे और कहती थी, परमहंस देव, चलें, भोजन तैयार हो गया है। वह भोजन तैयार करती, वह थाली लगाती, वह इस भांति लौटती जैसे रामकृष्ण उसके साथ वापस लौट रहे हैं, और वह उन्हें बिठाती, उन्हे पखा झलती। यह वर्षों चलता रहा। इसमें कभी भूल-चूक न हुई। फिर वह उन्हें बिठा देती, फिर वह उन्हें सुला देती, फिर वह मसहरी डाल देती। यह पूरी जिन्दगी चलता रहा।

हम इसे कहेंगे कि यह औरत पागल है। और हमारे हिसाब में यह बात कहीं भी न आएगी। लेकिन थोडा हृदय मे सोचे तो यह भी सभावना है कि शारदा के लिए रामकृष्ण कभी मरे ही नही। और शारदा के हृदय ने कभी स्वीकार ही नहीं किया, किसी भी तल पर, कि उनकी मृत्यु हो गई। हमारे लिए तो वह पागल है, लेकिन अगर थोडा सहानुभूति से सोचें तो हो सकता है कि हम ही नासमझ हों और वह पागल न हो।

फिर एक बात तय है कि शारदा कभी दु खी नही हुई, वह सदा आनदित रही। अगर पागलपन मे इतना आनन्द है तो आपकी बुद्धिमत्ता छोड़ देने जैसी है। क्योंकि आपकी बुद्धिमत्ता सिवाय दुख के आप को कुछ नही दे रही है। आपका पति भी जिन्दा है, तब भी आपके आंसू के सिवाय कुछ नहीं है; पत्नी भी जिन्दा है, तब भी आंसू के सिवाय कुछ भी नही है। और रामकृष्ण के मरने के बाद भी शारदा की आख मे आंसू न आया, वह हसती ही रही। और जितने दिन जिन्दा रही, उसके लिए रामकृष्ण जीवित ही रहे।

जिन्होंने ममीज में सभाल के रखे है सामान, उन्होने बडे प्रेम से रखे हैं।

तुतुम खानम की समाधि जब पहली दफा तोड़ी गई इजिप्त मे, तब वह कोई छह हजार वर्ष पुरानी थी लाश। तुतुम खानम की समाधि में तीन हिस्से थे, तीन पर्तें थीं। पहली पर्त पर भी तुतुम खानम का चेहरा सोने का और पूरा था, जैसे लाश वही हो, और हीरे-जवाहरात और सब सामान रखे हुए थे। खोदने पर पता चला

कि उसके ठीक नीचे फिर वैसा ही चेहरा सोने का था और उतना ही सामान रखा हुआ था। और लाश तो तीसरे तल पर थी। यह धोखा था ऊपर। क्योंकि सोने की वजह से, हीरे-जवाहरात की वजह से चोर कब्रों को खोद लेते थे। इसलिए दो धोखे दिए थे ऊपर कि पहली कब्र खोद कर कोई ले जाए तो कोई चिन्ता नहीं, दूसरी कब्र भी खोद कर कोई ले जाए तो भी चिन्ता नही; लेकिन तीसरी कब्र पर कोई चोट न पहुंचे।

जिन्होंने मरे हुए तुतुम खानम के लिए इतने प्रेम से ये कब्रें बनाई होंगी, उनके हृदय को समझने की कोशिश करनी चाहिए। मृतक के सम्बन्ध में जितने भी सस्कार हैं, **वे जीवित के प्रेम के सबूत है।** मृतक के सम्बन्ध मे उनसे कोई लेना-देना नही है।

इसलिए अगर हम बहुत वैज्ञानिक हो जाए तो फिर मृतक के साथ कुछ करने की जरूरत नही है। बात खत्म हो गई। लेकिन थोड़ा सोचे कि शारदा जैसे होना पसन्द करेंगे, या एकदम बुद्धि और गणित से चलेगे। बुद्धि और गणित कितने ही सही हो, आनन्द उससे फलित नहीं होता। **और हृदय कितना ही गलत हो, वही आनन्द का द्वार है।**

●

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, हम प्रकृति के अनुकूल है या प्रतिकूल, यह कैसे जानें?

इसे जानने में कठिनाई नही होगी। जब आप बीमार होते है, तब कैसे जानते हैं कि बीमार हैं। और जब आप स्वस्थ होते हैं, तब कैसे जानते हैं कि स्वस्थ है। क्या उपाय है आपके पास जानने का?

जब आप बीमार होते है, तब पीडा में होते है, और जब आप स्वस्थ होने है, तब प्रफुल्लित होते है। ठीक आत्मिक तल पर भी बीमारी और स्वास्थ्य घटित होते हैं। जब आप भीतर अशान्त, उद्विग्न, परेशान, क्षुब्ध होते है, सतप्त होते है, **तब जानना कि प्रकृति के प्रतिकूल है।** और जब आप भीतर आनन्द मे खिले होते हैं, और आनन्द की धुन आपके भीतर बजती होती है, और रोआ-रोआ उसमे कपित होता है, और यह सारा जगत आपको स्वर्ग मालूम पड़ने लगता है, **तब आप समझना कि आप प्रकृति के अनुकूल है।** किसी दूसरे से पूछने जाने की जरूरत नही है। जब भी दुःख है, तब भी वह प्रतिकूल होने से ही घटित होता है। और जब भी आनन्द घटित होता, तब वह अनुकूल होने से घटित होता है। **आनन्द कसौटी है।**

लेकिन हम सब इतने दुःख में जीते हैं कि हम दुःख को ही जीवन मान लेते हैं, इसलिए हमें पता ही नही चलता कि आनन्द भी है।

मेरे पास लोग आते हैं। उन्हे खुद कोई आनन्द का अनुभव नही हुआ है, वे दूसरे के आनन्द में भी विश्वास नहीं कर सकते। एक बहन ने परसो आकर मुझे

कहा कि यह भरोसा योग्य नहीं है कि कीर्तन में दो मिनट में लोग इतने आनन्दित होकर नाचने लगते हैं; यह भरोसा मुझे नहीं होता है।

स्वभावत: जो कभी भी नाचा न हो आनन्द में, उसे भरोसा कैसे होगा ? जो नाच ही न सकता हो, जिसके भीतर आनन्द की कोई पुलक ही पैदा न होती हो, उसे भरोसा कैसे होगा ? निश्चित ही उसको लगेगा कि यह कोई तैयार किया हुआ खेल है, कोई नाटक है, ये लोग शायद आयोजित हैं, जो बस नाचना शुरू कर देते हैं। ऐसा कहीं हो सकता है ? जो आदमी चालीस-पचास साल में कभी आनन्दित न हुआ हो, वह कैसे मान ले कि दो मिनट में कोई आनन्द से भर सकता है ?

आनन्द का मिनटों और वर्षों से कोई सम्बन्ध है ? अगर दो मिनट में नहीं भर सकते तो दो वर्षों में कैसे भर जाइएगा ? और अगर दो वर्षों में भर सकते हैं तो दो मिनट में बाधा क्या है ? समय का क्या सम्बन्ध है आनन्द से ? कोई भी सम्बन्ध नहीं है। लेकिन अनुभव ही न हो तो क्या होगा ?

तो मैंने उस बहन से पूछा कि तूने कभी आकर कीर्तन करके, नाच कर देखा ? तो उसने कहा कि नहीं। मैंने उससे कहा कि नाचकर देख, आकर देख। शायद तुझे भी हो जाए तो तुझे पता चलेगा।

हम आनन्द से भी भयभीत हैं। क्योंकि हमारे चारों तरफ दुखी लोगो का समाज है; उसमें आनदित होना मैलएडजस्ट कर देता है, उसमें दुखी होना ही ठीक है। हमारे चारों तरफ जो भीड़ है, वह दुखी लोगों की है। उसमें आप भी दुखी हैं तो बिलकुल ठीक है। अगर आप आनंदित हैं तो लोगों को शक होने लगेगा कि कुछ दिमाग तो खराब नही है। इस भांति हंस रहे हैं, इस भांति प्रसन्न हो रहे हैं ! बीमारो की जहा भीड़ हो, दुखी लोगों का जहां समूह हो, वहां आपका भी दुख में होना उनके साथ एक संगति बनाये रखता है।

इसलिए बच्चो को हम बड़ी जल्दी गभीर करने की कोशिश में लग जाते हैं। बच्चे प्रफुल्लित हैं, आनंदित हैं, नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, खेल रहे हैं। हमें बड़ी बेचैनी होती है उनके नाच से, कूद से। आप अखबार पढ़ रहे हैं तो अपने बच्चे से आप कहते हैं कि बन्द कर यह शोरगुल, यह नाचना-कूदना; मैं अखबार पढ़ रहा हू। जैसे अखबार पढ़ना नाचने-कूदने से बड़ी बात हो; जैसे अखबार पढ़ना कोई ऐसा मामला है जो नाचने-कूदने से ज्यादा कीमती हो !

बच्चे कमजोर हैं, इसलिए वे नहीं कह सकते कि बन्द करो यह अखबार पढ़ना और नाचो-कूदो ! और जब तक वे ताकतवर होंगे, तब तक आप उनको बिगाड़ चुके होंगे। और वे भी अखबार पढ़ रहे होंगे और अपने बच्चों को डांट रहे होंगे !

सभी मनुष्य प्रकृति के अनुकूल पैदा होते हैं, और अधिकतर मनुष्य प्रकृति के प्रतिकूल मरते हैं। हम सभी जन्म से प्रकृति के अनुकूल पैदा होते हैं; लेकिन समाज,

चारों तरफ का ढाचा हमें मरोड़ कर गभीर बना देता है। और जो आदमी गंभीर नही हो जाता है, उसे हम बडे हो जाने पर भी कहते हैं कि तुम अभी बचकाने हो, चाइल्डिश हो; यह बचकानापन छोड़ो, गम्भीर बनो। हम उदास शकलें चाहते हैं।

अगर आप किसी साधु-सन्त के पास जाए, और उसे खिलखिला कर हंसते देख लें, तो आप दुबारा न जाएंगे। आप गंभीर, रुग्ण चेहरे चाहते हैं। महात्मा और हंस रहा है, जरूर कोई गड़बड है! आपकी दृष्टि में बुरा आदमी हस सकता है, भला आदमी हंस नही सकता; भले आदमी का नैसर्गिक गुण रोना है। आप अपने सन्तों, महात्माओ की शकलें देखें, वे रोते हुए लोगो की भीड हैं। और जो जितने जोर से रो सकता है, वह उतना बडा महात्मा है। उनके रोएं-रोएं से उदासी टपक रही है; ससार के प्रति दुश्मनी टपक रही है। उनके चारो तरफ फूल खिले हुए नही दिखाई पड़ते हैं। लेकिन तभी आप आश्वस्त होते हैं।

इसलिए जो सन्यासी, जो साधु जितना ज्यादा परेशान दिखेगा, वह उतना आपको त्यागी मालूम पडेगा। नगा खडा हो, धूप में खड़ा हो, भूखा मर रहा हो, उपवास कर रहा हो, शरीर हड्डी हो गया हो, वह उतना बड़ा आपको मालूम होता है।

आप बडे अजीब हैं! आपके मन मे कही **दुखी लोगों को देखने में कुछ मजा आता है।** इसलिए आप खयाल करे, अगर महात्मा झोपड़ी में रहता हो, तो आप आसानी से उसके पैर पड सकते है; महात्मा महल में रहता हो, तो अडचन की बात है। क्यो? महात्मा अगर स्वस्थ मालूम पड़ता हो तो आपको लगेगा कि कुछ गडबड है, गृहस्थ जैसा स्वस्थ मालूम पड रहा है। उसे हड्डी-हड्डी होना चाहिए, तब आपको लगेगा कि कोई त्यागी है। महात्मा कही भी सुख लेता हुआ मालूम पड़े तो आपको अडचन होगी। इसलिए जहा-जहा सुख है, वहा-वहा से आप अपने महात्मा को तोडते हैं। भोजन वह ठीक से नही कर सकना है। सुन्दर स्त्री अगर उसके पास दिखाई पड़ जाए तो आपको बहुत बेचैनी हो जाएगी। क्यो? आपका जहा-जहा सुख है, वहा से महात्मा दूर होना चाहिए। भोजन ठीक से न कर सके, सुन्दर स्त्री उसके पास न दिखाई पड़ सके।

इसलिए महात्माओं को होमोसेक्सुअल समाज खडा करना पड़ा, समलिंगी समाज खड़ा करना पडा। कैथोलिक महात्मा हैं तो पुरुष अलग रहते है एक मोनेस्ट्री मे और स्त्रिया अलग रहती हैं दूसरी मोनेस्ट्री में। जैनो के महात्मा चलते हैं तो साधु एक तरफ चलते हैं अलग, साध्विया दूसरी तरफ चलती है अलग। उनको आप साथ भी ठहरने नही दे सकते हैं। आपको अपने महात्मा पर इतना भी भरोसा नही है। इतना डर क्या है?

जैन साध्वी अकेली नही चल सकती, पाच को चलना चाहिए साथ। निश्चित जैन शास्त्र निर्माण करने वाले लोग भलीभाति समझ गए होंगे कि पाच औरतें जहां साथ हैं, वहा चार एक के ऊपर पहरा हैं। वे चार जो हैं, वे किसी को भी सुख न

लेने देंगी, वे नजर रखेंगी। एक आतरिक, बिल्ट-इन, भीतरी इंतजाम कर दिया आपने। पाच औरतों को साथ चला रहे हैं, वे किसी को सुखी नहीं होने देंगी। और एक दूसरे पर नजर रखेंगी कि कोई सुखी तो नहीं हो रही है।

और स्त्री और पुरुष पास हो तो ज्यादा सुखी हो सकते है, यह डर समाया हुआ है। क्योंकि आपका अनुभव क्या है सुख का ? दो ही अनुभव हैं आपको सुख के। भोजन का और स्त्री का, या पुरुष का। दो ही सुख है। तो दोनो सुख से महात्मा को बिलकुल तोड देना चाहिए। तब फिर वह लगता है कि ठीक है, अब ठीक है ! **तो जितना मरा हुआ हो, उतना ठीक है। जिन्दा हैं, तो डर हैं। क्योंकि जिन्दगी के साथ डर है।** हस कैसे सकता है महात्मा ? हसने का मतलब ? हसने का मतलब है कि अभी भी उसे जगत में, या होने में रस है। हसने का मतलब होता है कि रस है, इसलिए विरस होना चाहिए। उसकी सारी हसी सूख जानी चाहिए।

तो हम एक रुग्ण समाज में जी रहे हैं। हमारे रुग्ण समाज की रुग्ण धारणाएं हैं। और उन रुग्ण धारणाओ को हम एक दूसरे पर थोपते है।

बाप भी नही चाहता है कि बेटा सुखी हो, चाहे कहे कितना हो। कहता बहुत है कि तेरे सुख के लिए सब कर रहा हू, लेकिन चाहता नही है कि बेटा सुखी हो। यह जरा कठिन लगेगा। क्योंकि बाप सोचेगा कि ऐसा तो कभी नही है, मै तो चाहता हू कि मेरा बेटा सुखी हो। आप कहते हैं, आप समझते भी हैं कि आप चाहते है, लेकिन जो करते हैं, उससे बेटा दुखी होगा।

और आप कर भी नही सकते हैं जो कि आपके बाप ने आपके साथ किया है। **नया सोचना बड़ी कठिन बात है।** इसलिए हर बाप अपने बेटे के साथ वही करता है, जो उसके बाप ने उसके साथ किया है। और वह ढाचा है, उस ढाचे को आप थोप देते हैं। लेकिन, थोडा सोचिए, आप सुखी है ?

अगर आप सुखी नही हैं तो एक बात तो पक्की समझ लीजिए कि आपका ढाचा किसी को भी सुखी नही कर सकता है। लेकिन यह कोई नहीं सोचता है। बाप यह नही सोचता है कि मै सुखी नही हू तो मेरी धारणाओ के अनुसार चला हुआ मेरा लड़का कैसे सुखी हो जाएगा ? अगर मैं सुखी नही हू तो एक बात तो तय है कि मेरा ढाचा इसे न दू, और कुछ भी हो। कम से कम दूसरे ढांचे में कोई सभावना तो होगी कि उसमे शायद सुखी हो जाए। लेकिन मेरे ढाचे मे तो कोई सभावना नही है।

लेकिन कोई सोचता नही है। आपको मजा ढाचा देने मे आता है, लडके को सुख मिलेगा या नही, यह सवाल नहीं है। आप लडके को अपने अनुसार ढाल रहे हैं, इसमें आपको मजा आ रहा है। बडी अजीब बात है। आप दुखी है और बेटे को अपने ढाचे में ढाल रहे हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे मुझे तक सलाह देने आ जाते हैं। वे कहते हैं कि आप ऐसा करिए तो बहुत अच्छा होगा। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम्हारी सलाह से कम से कम तुम तो चले ही होगे, और अगर तुम्हारे जीवन में आनन्द आ गया हो, तो ही मुझे सलाह दो। वे कहते हैं कि नहीं, हमारे जीवन में तो कुछ नहीं आया; उसके लिए तो हम आपके पास आये हैं। तो मैं उनसे कहता हूं कि तुम्हारी सलाह संभाल कर रखो, और किसी को देना मत! क्योंकि तुम्हारी सलाह के तुम भी उदाहरण नहीं हो।

मुझे याद आता है, हेनरी फोर्ड एक दुकान में गया एक किताब खरीदने। जो वह किताब देख रहा था, वह किताब थी: हाउ टू ग्रो रिच, कैसे अमीर बन जाओ। हेनरी फोर्ड तो अमीर हो चुका था, फिर भी उसने सोचा कि शायद कोई और बातें इसमें हों। और तभी दुकानदार ने कहा कि फोर्ड महोदय, आप बड़े आनंदित होंगे, इस किताब का लेखक भी दुकान में भीतर है, वह कुछ काम से आया हुआ है, हम आपको उससे मिला देते हैं।

उससे सारी बात बिगड़ गई। वह लेखक बाहर आया। हेनरी फोर्ड ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि यह किताब वापस ले लो, यह मुझे खरीदनी नहीं है। वह दुकानदार हैरान हुआ कि आप यह क्या कह रहे है, इस किताब की लाखो कापिया बिक चुकी हैं। फोर्ड ने कहा, कितनी ही बिक चुकी हो, लेकिन लेखक को देख लिया, तो अब किताब को क्या करू? कोट फटा था और हाउ टू गो रिच किताब लिखी है उन्होंने! हेनरी फोर्ड ने पूछा कि अपनी ही कार से आये हो, कि बस में आये हो? लेखक ने कहा, आया तो बस मे ही हू। तो हेनरी फोर्ड ने कहा कि मै फोर्ड हूं, और कभी कार की जरूरत पड़े तो मेरे पास आना, सस्ते में निबटा दूंगा, लेकिन अभी यह किताबें मत लिखो। क्योंकि जिस सलाह से खुद तुम कुछ न पा सके, उससे कोई और क्या पा सकेगा?

जिन्दगी बड़ी जटिल है। अगर आपको न मिला हो आनन्द तो अपने बेटे को अपना ढाचा मत देना। अगर आपको न मिला हो आनन्द तो अपनी सलाह किसी को मत देना। वह जहर है। उसी सलाह के आप परिणाम हैं। दूसरो ने आपके साथ ज्यादती की कि आपको ढाचा दे दिया; अब आप दूसरो के साथ ज्यादती मत करना कि उनको अपना ढाचा दे दें।

इसीलिए हमें पता नही चलता है कि क्या है प्रकृति की अनुकूलता। क्योंकि प्रतिकूलता में ही हम बडे होते हैं। मनुष्य का सारा का सारा सस्थान प्रतिकूल है। इसलिए लाओत्से कहता है कि निसर्ग के जितने अनुकूल हो सको, उतने अनुकूल हो जाना। लेकिन क्यो हो गया है प्रतिकूल आखिर? इसे हम थोड़ा समझ लें। इसका पूरा शास्त्र है कि आखिर क्या कारण है कि आदमी प्रतिकूल हो गया है।

कारण है। हर व्यक्ति अनुकूल पैदा होता है। प्रकृति से ही पैदा होता है,

इसलिए अनुकूल होगा ही। लेकिन हम किसी व्यक्ति को उसकी निसर्गता में स्वीकार नहीं करते हैं। हम उस पर आदर्श लादते हैं; हम लोगों से कहते हैं कि महावीर बन जाओ, बुद्ध बन जाओ, कुछ न बनो तो कम से कम विवेकानन्द बन जाओ! लेकिन आपको पता है कि महावीर दुबारा पैदा नहीं होते? पच्चीस सौ साल में तो नहीं पैदा हुए; हालांकि कई लोगों ने समझाया अपने बेटों को कि महावीर बन जाओ। कोई आदमी जमीन पर दुबारा पैदा हुआ है, ऐसी आपको खबर है? कोई राम, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई कभी दुबारा पैदा हुआ है?

हर आदमी अनूठा पैदा होता है। और हम आदर्श देते है उसको कुछ होने का कि तू यह हो जा! कठिनाई है मा-बाप की, क्योंकि उनको भी पता नही है कि घर में जो पैदा हुआ है, वह क्या हो सकता है? किसी को भी पता नही है। अभी तो जो वह पैदा हुआ है, उसको भी पता नहीं है कि वह क्या हो सकता है। **सारा जीवन अज्ञात में विकास है।** तो मा-बाप की बेचैनी यह है कि कोई ढाचा क्या दें वे? तो जो पहले लोग हो चुके हैं चमकदार, वे उनके ढांचे देते हैं कि तुम ऐसे हो जाओ। **वह ढांचा फांसी बन जाता है। और वह ढांचा ही प्रकृति के प्रतिकूल ले जाने का कारण हो जाता है।**

फिर हम ढाचे में ढाल कर व्यक्तियो को खड़ा कर देते हैं। वे फसे हुए लोग है, जिनके चारों तरफ लोहे की जजीरे है सख्त। उनमें से निकलना मुश्किल है; जब तक मनुष्यता यह स्वीकार न कर ले कि **प्रत्यक व्यक्ति अनूठा है, और कोई किसी की कापी न है और न हो सकता है।**

दो व्यक्ति समान नहीं हैं; हो भी नही सकते। होना भी नहीं चाहिए। अगर आप कोशिश करके राम हो भी जाएं **तो आप एक बेहूदा दृश्य होंगे, और कुछ भी नहीं।** राम का होना तो एक बात है, आप का होना तो सिर्फ एक नकल होगा। झूठे होंगे आप। सच्चे राम होने का कोई उपाय नही है। कारण? **क्योंकि सच्चे** राम होने के लिए बडी कठिनाई है। कठिनाई क्या है? यह नही कि राम होना बड़ा कठिन है। राम बिना कोशिश किये हो गए, इसलिए बहुत कठिन तो मालूम नहीं होता। या कि बुद्ध होना बहुत कठिन है? बुद्ध बिना कोशिश किए हो गए; कोई बहुत कठिन नहीं है। कठिनाई दूसरी है।

एक-एक व्यक्ति इतिहास, समय और स्थान के ऐसे अनूठे बिन्दु पर पैदा होता है कि उस बिन्दु को दुबारा नही दोहराया जा सकता। वह बिन्दु एक दफा आ चुका, अब कभी नहीं आएगा। इसलिए कोई आदमी दोहर नही सकता है। **इसलिए सब आदर्श खतरनाक है।**

फिर हम किसी व्यक्ति को स्वीकार नहीं करते हैं। हम सब का अहंकार है भीतर; वह सिर्फ अपने को स्वीकार करता है और अपने अनुसार सबको चलाना चाहता है। **इस दुनिया में सबसे खतरनाक और अपराधी लोग वे ही हैं, जो अपने**

अनुसार सारी दुनिया को चलाना चाहते हैं। इनसे महान अपराधी खोजना कठिन है; भला आप उन्हें महात्मा कहते हो। आपके कहने से कोई फर्क नहीं पडता है।

जब भी मै कोशिश करता हू कि किसी को मेरे अनुसार चलाऊं, तभी **मै उसकी हत्या कर रहा हूं।** मेरे अहकार को तृप्ति मिल सकती है कि मेरे अनुसार इतने लोग चलते हैं, लेकिन मै उन लोगो को मिटा रहा हूं।

इसलिए वास्तविक धार्मिक गुरु आपको आपके निसर्ग की दिशा बताता है, वह आपको अपने अनुसार नही चलना चाहता है। वह आपको कहता है कि **आप अपने अनुसार हो जाएं, और इस होने के लिए जो भी त्यागना पड़े और जो भी मुसीबत झेलनी पड़े, वह झेल लें।** क्योंकि सब मुसीबतें छोटी है, अगर उस आनन्द का पता मिल आए, जो स्वय के अनुसार होने से मिलता है। सब मुसीबतें छोटी हैं; उसकी कोई कीमत नही है। सब मुसीबते आसान हैं।

और आप दूसरे के अनुसार बनने की कोशिश करते रहे तो आप और दुखी, और दुखी, और दुखी होते चले जाएगे। कभी आपको आनन्द की कोई झलक न मिलेगी।

आनन्द की झलक का मतलब ही है कि मेरी प्रकृति और विराट की प्रकृति के बीच कोई तालमेल खडा हो गया, कोई हारमॅनी हो गई। अब दोनो एक लय में बद्ध होकर नाच रह हैं। मेरा हृदय विराट के हृदय के साथ लयबद्ध हो गया, मेरा स्वर और विराट का स्वर मिल गया; अब दोनो में जरा भी फासला नही है। तो **मुझे अपने ही अनुसार, अपने ही जैसा होना चाहिए।**

और इसके लिए कोई भी मुझे सहायता नही देगा। सब इसमे बाधा डालेंगे, क्योंकि सब चाहेंगे कि उनके अनुसार हो जाऊ।

मा-बाप चाहते है, फिर स्कूल मे शिक्षक ह, वे चाहते हैं, नेता हैं, फिर महात्मा हैं, फिर पोप है, शकराचार्य हैं, वे चाहते है कि मेरे अनुसार हो जाओ। इस दुनिया में आके चारो तरफ जैसे बहुत से गिद्ध आप पर टूट पडे हो, वे सब आपको अपना भोजन बनाना चाहते हैं।

इसमें आप भूल ही जाते है कि आप सिर्फ **अपने जैसे होने के लिए ही पैदा हुए हैं।** पर एक बात तो पक्का है कि आप **दुखी** होते रहते है। उस दुख को ही पहचाने। अगर आप दुखी है तो समझ लें कि यह पक्का है बात कि आप निसर्ग के प्रतिकूल चल रहे हैं। **दुख काफी सबूत है।** और जब आप दुखी होते है तो पता है, आप क्या करते है?

आप जब दुखी होते हैं, तब आप वही भूल दोहराते है जिसके कारण आप दुखी हैं। तब आप किसी से पूछने जाते हैं कि कोई रास्ता बताइए, जिस पर मैं चलू और मेरा दुख मिट जाए। वह आपको रास्ता बताएगा कोई न कोई। पर वह रास्ता उसका होगा, और हो सकता है कि उसपर चलने से उस आदमी का दुख भी मिट गया हो। मगर वह रास्ता उसका होगा।

और दूसरे का रास्ता आपका रास्ता नही हो सकता है। **आपको अपना रास्ता खोजना पड़ेगा।**

आप दूसरो के रास्तों से परिचित हो लें, इससे सहयोग मिल सकता है। आप दूसरो के रास्तो को पहचान लें, इमसे आपके रास्ते की खोज में सहारा मिल सकता है। लेकिन, किसी दूसरे के रास्ते पर अंधे की तरह चले अगर आप तो आपको अपना रास्ता कभी भी नही मिलेगा। कितने लोग महावीर के पीछे चले, लेकिन एक भी महावीर नहीं हो सका। और कितने लोग बुद्ध के पीछे चले, और एक भी बुद्ध नही हुआ। क्या कारण है? इतना अपव्यय हुआ है शक्ति का, कारण क्या है?

कारण एक है आपका रास्ता किसी दूसरे का रास्ता नही है, और किसी दूसरे का रास्ता आपका रास्ता नही है। **आत्माएं अद्वितीय हैं, और हर आत्मा का अपना रास्ता है।** तो क्या करें?

अपने दुख को समझे, अपने दुख के कारण को खोजें कि मेरे दुख का कारण क्या है। और उस कारण से हटने की कोशिश करें; रास्ते मत खोजे, दूसरो से जाकर मत पूछे। क्या है दुख कारण आपका?

मेरे पास न मालूम कितने लोग आते हैं। उनके दुख कारण इतना साफ है कि हैरानी होती है कि उनको दिखाई क्यो नही पडता। ऐसा लगता है कि वे देखना ही नही चाहते है। और अगर उन्हें कोई रास्ता भी बताया जाए तो उस रास्ते पर चलकर भी वे दुख का कारण तो साथ ही ले जाते हैं।

अधिक लोगो मे दुख का कारण **अहंकार** है। इतना साफ है, लेकिन वह दिखाई नही पडता।

मेरे पास लोग आते है, उनको मै कहता हूं कि यह अहकार ही दुख दे रहा है, तो वे कहते हैं कि छूटने का कोई रास्ता बताइए। उनको कोई रास्ता बता दूं, वे उस रास्ते पर चलेगें भी, मगर वह जो बीमारी थी, उसको साथ ही ले आएगे। मैं उनको कहता हू कि चलो, एक सन्यास मे छलाग लगा लो। वे सन्यास में भी छलाग लगा लेते हैं। लेकिन तब सन्यासी का अहकार उनको पकड़ लेता है। तब वे मानते है कि जिन्होंने सन्यास नही लिया, वे उनसे छोटे है, और जिन्होने ले लिया, वे बडी ऊंचाई पर पहुच गए। वे गैर-सन्यासी को ऐसे देखते हैं कि जैसे कि सहानुभूति से किसी दुखी, पीड़ित आदमी को देखा जाता है कि ठीक है, भटको जब तक भटकना है, हम पहुच गए।

यह उनकी बीमारी थी; इसे ही छोडने को कहा था कि एक छलाग लगा लो। और ये बीमारी का साथ ले आये। फिर दस-पचास सन्यासी इकट्ठे हो जाते हैं, छोटे-बडे का सवाल शुरू हो जाता है। फिर उनमे कलह शुरू हो जाता है, फिर पोलिटिक्स शुरू हो जाती है। फिर वे दल बना लेते है; फिर एक दूसरे की काट-पीट शुरू कर देते है। उन्होने एक ससार बना लिया — अल्टरनेटिव, छोटा-सा।

जो आदमी के भीतर सारी वह राजनीति आ जाती है, जो दिल्ली में चलती हो, वाशिंगटन में चलती हो। कोई फर्क नहीं पड़ता है। कौन कहां बैठा है, कौन कौन-सा काम कर रहा है? किसको कितनी प्रतिष्ठा मिल रही है? यह सारी बीमारी साथ खड़ी है।

यह कठिनाई है। बीमारी को हम देखना नहीं चाहते हैं।

या फिर मामला ऐसा है कि जैसे कि खाज किसी को हो जाती है। वह जानता भी है कि खुजलाने से दुख होता है, लेकिन खुजलाने में रस भी आता है। अकेला दुख होता तो खाज को कोई भी न खुजलाता। खाज में दोहरा उपद्रव है, मजा भी आता है खुजलाने में। तो जिस दुख में मजा आता है, उससे बचना मुश्किल हो जाता है।

आपको अहंकार में मजा भी आता है; वह खाज है। फिर दुख भी होता है। जब दुख होता है, तब आप हाथ जोड़कर आ जाते हैं कि कोई रास्ता बताइए। जब चमड़ी बिलकुल उखड़ जाती है, लहूलुहान हो जाता है और खून बहने लगता है, तब आप कहते हैं कि कोई रास्ता बताइए, बहुत दुख पा रहे हैं। लेकिन थोड़ी देर में चमड़ी फिर ठीक हो जाएगी, खून बन्द हो जाएगा; फिर आपके भीतर सरसराहट शुरू होगी कि थोड़ा खुजा कर देखें, बड़ा मजा आता है।

खाज है अहंकार। वह अकेला दुख नहीं है, शुद्ध दुख नहीं है; उसमें थोड़ा रस भी मिश्रित है। वही रस पीछा करता है। इसलिए जहां भी आप जाते हैं, वह रस पीछा करता है।

अगर आप दुख पा रहे हों तो समझना कि अहंकार वहां है। अगर आप दुख पा रहे हों तो समझना कि आप प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हैं।

और प्रतिकूल चलने के दो ढंग हैं। शरीर को भोजन चाहिए। आप दो ढंग से शरीर को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इतना खाना खा लें कि शरीर के लिए झेलना मुश्किल हो जाए, दुख शुरू हो जाए। यह प्रतिकूल चले गए। या भूखे रह जाएं, बिलकुल न खाएं, तो भी दुख शुरू हो जाएगा। तो ध्यान रखना, प्रतिकूल होने के दो उपाय हैं।

अनुकूल होने का एक उपाय है, और प्रतिकूल होने के दो उपाय हैं। और आदमी का मन ऐसा है कि एक प्रतिकूलता से दूसरी पर चले जाने में उसे सुविधा होती है; क्योंकि वह भी प्रतिकूल है। इसलिए ज्यादा भोजन करनेवाले लोग अक्सर उपवास करने को राजी हो जाते हैं। असल में जिस आदमी ने सम्यक भोजन किया है, वह उपवास की मूढ़ता में पड़ेगा ही नहीं। क्यों उपवास करेगा? जिसने ठीक भोजन किया है, उतना ही भोजन किया है, जितनी शरीर को जरूरत थी, उसे उपवास करने का कोई सवाल ही नहीं उठता। सिर्फ अति भोजन किया है तो फिर अनाहार में उतरना पड़ेगा। और जो अति भोजन करता है, वह तत्काल

अनाहार के लिए राजी हो जाता है। इसको आप समझ लें।

अति भोजन करने वाले को अगर कहें कि कम भोजन करो तो यह जरा कठिन है; कहें, बिलकुल न करो, यह हो सकता है। अगर एक आदमी सिगरेट पीता है और उससे कहें कि दस की जगह पांच पीओ तो वह कहेगा कि यह जरा कठिन है; बिलकुल न पीऊं, यह हो सकता है। क्यों? क्योंकि अति की आदत है; या तो पीऊंगा दिन भर, या फिर बिलकुल न पीऊंगा। इन दोनों में से चुनाव आसान है। लेकिन मध्य में रुकना कठिन है। मध्य में रुकना कठिन है। मध्य में रुकने का मतलब है कि आप प्रकृति के अनुकूल होना शुरू हो गए हैं। प्रकृति है मध्य, संतुलन, संयम।

ध्यान रखना, हमने संयम का अर्थ ही खराब कर दिया है। संयम का हमारा मतलब होता है दूसरी अति। अगर एक आदमी उपवास करता है तो हम कहते हैं कि बड़ा संयमी है। लेकिन असंयमी है वह आदमी उतना ही, जितना ज्यादा खानेवाला असंयमी है। संयम का मतलब क्या है? संयम का मतलब है संतुलित, बैलेन्स्ड, बीच में, न इस तरफ न उस तरफ। झुकना नहीं अति पर, बिलकुल मध्य में रहना। मध्य में जो है, वह संयमी है।

और संयम सूत्र है निसर्ग के अनुकूल हो जाने का। लेकिन आपका संयम नहीं; आपका संयम तो असंयम का ही एक नाम है — दूसरी अति पर। अहंकार है, अति है, और भीतर जिन चीजों से आप छूटना चाहते हैं, उनमें ही रस भी है। इसे पहचानना पड़ेगा।

आपके हर दुख में आपका हाथ है, और रस है। रस को आप नहीं देखते, आप सिर्फ दुख को देखते हैं। तो आप कभी नहीं छूटेंगे; रस को भी देखें। रस से छूटेंगे तो ही दुख से छूटेंगे। जिस आदमी को खाज खुजलाने में रस है, उससे कितना ही कहो कि दुख है, वह नहीं सुनेगा। वह भी मानता है कि दुख है, वह भी दुख झेल चुका है। इसलिए पहले उसको समझाओ कि रस भी है, और रस को समझ लो ठीक से, और रस लेना चाहते हो तो यह दुख की कीमत चुकानी पड़ेगी। फिर दुख से बचने की बात मत पूछो।

लोग मुझसे आकर कहते हैं कि बड़ी अशांति है। मैं उन्हें कारण बताता हूं, तो वे कहते हैं कि वह कारण तो छोड़ना मुश्किल है। आप तो अशांति हटाने का उपाय बता दें। इसलिए लोग झूठी तरकीबों में पड जाते हैं।

एक आदमी है, वह धन के पीछे पागल है। वह कहता है कि जब तक करोड़ों न हो जाएं, उसे चैन नहीं मिलने वाली है। और करोड़ों की इस दौड़ में उसका मन अशान्त हो जाता है। वह मेरे पास आता है, वह कहता है कि बड़ी अशांति है, कोई मंत्र बता दें, कोई माला दे दें कि मैं माला फेरकर शान्त हो जाऊं। मैं उससे पूछता हूं कि क्या माला न फेरने से तुम अशान्त हुए हो कि माला फेरने से शान्त

हो जाओगे ? तुम्हारी अशान्ति का क्या सम्बन्ध है माला से ? माला का हाथ ही कहां है ? यह जो तुम धन की पागल दौड में पडे हो, यह तुम्हारी अशान्ति है। वह कहता है कि इसको तो छोडना मुश्किल है; आप तो कोई दूसरी विधि बता दे। वह विधि चाहता है। उसका मतलब यह है कि वह जो खाज के खुजलाने का रस है, वह तो बचा रहे और खाज के खुजलाने में से जो दुख होता है, वह न हो। आप कोई माला बता दे कि खुजला कर माला फेरने लगू, ताकि वह जो दुख है, वह न हो। दुख कैसे नही होगा ?

उस दुख का कारण है। और मंत्रो से वह कारण मिटने वाला नही है। कोई मंत्र आपके कारण को नही मिटा सकता। इसलिए मत्र तो दुनिया में बहुत हैं और मंत्र देनेवाले भी बहुत है, और आपके दुख का कोई अत नही है।

फिर मत्र देनेवाले भी समझ जाते हैं कि आप खाज को खुजलाना चाहते हैं तो वे दोहरी बाते कहते है। महेश योगी अपने साधको को कहते हैं कि इस मत्र से तुम्हें आध्यात्मिक शाति तो मिलेगी ही, भौतिक सम्पन्नता भी मिलेगी। वे यह कह रहे हैं कि इसमे दुख भी मिटेगा और खुजलाने का मजा भी रहेगा। पश्चिम में महेश योगी के विचार के प्रभाव का बुनियादी कारण यह है। क्योंकि वे कहते हैं इससे भौतिक सपन्नता भी मिलेगी, इससे धन-समृद्धि भी मिलेगी।

स्वभावत धन तो आप चाहते है, और शन्ति भी चाहते है। अगर कोई कहता है कि धन की दौड मे शान्ति नही मिलेगी तो आप कहेगे कि फिर शान्ति रहने दो, अभी धन की दौड कर ले और फिर जब धन पास होगा, तब शान्ति भी खरीद लेंगे। जिसकी बुद्धि धन पर टिकी होती है वह सोचता है, हर चीज धन से खरीदी जा सकती है, शाति भी खरीद लेंगे।

कुछ चीजे है जो धन से नही खरीदी जा सकती। और कुछ चीजे है जो धन की दौड मे कभी फलित ही नही हो सकती है। कुछ चीजे है जिनसे यश नही खरीदा जा सकता है। और कुछ चीजें है जो यश चाहने वाले को कभी नही मिल सकती। **क्योंकि उसी चाह में उसका विरोध है।**

एक मेरे मित्र है। एक राज्य के वे मत्री थे। अब फिर मत्री हो गए है। जब वे मत्री नही रहते है, तब मेरे पास आते है। जब वे मत्री हो जाते है, तब वे मुझे भूल जाते है। जब वे मत्री नही रहते है, तब वे मेरे पास आते हैं कि शाति का कोई उपाय बताइए। मै उनसे पूछता हू कि अशाति क्या है, यही न कि अभी मत्री आप नही है ? तो इसके मै क्या उपाय बताऊ ? और मेरा उपाय ऐसा है कि फिर आप कभी मत्री न हो पाएगे। तो मै उनसे कहता हू कि आप तय कर लें कि अगर शात ही होना है तो राजनीति छोड देनी पडेगी। क्योंकि वह खाज है और उसमे खुजलाना जारी रखना पड़ेगा। और राजनीति ऐसी खाज है कि आप न भी खुजलाए तो दूसरे आपकी खाज को खुजलाते है। बड़ी कठिनाई है। आप चैन से

बैठे हैं तो आपके उपद्रवी, जिनको आप ने इकट्ठा कर लिया है, जो आपको मंत्री बनाते हैं, वे चैन से नहीं बैठने देंगे। वे खुजलाएंगे। तो वहां तो खाज के रोगियों का ही समूह है, वहां बहुत मुश्किल है। वहां अपनी भी खुजलाते है लोग, और दूसरों की भी खुजलाते हैं। आप वहां से हट आएं।

वे कहते है कि आप बात तो ठीक कहते हैं, और मैं हटना भी चाहता हूँ—जब वे सत्ता में नहीं होते, तब वे कहते हैं कि हटना भी चाहता हूँ—मगर अभी जरा मुश्किल है, उलझाव है। तो फिर मैं उनसे कहता हूं कि अशांत ही रहो। फिर क्यों शान्त होना चाहते हो ?

हमारी बेईमानी क्या है ?

अशान्ति से जो मिलता है वह भी हम लेना चाहते हैं, और अशांति भी नहीं लेना चाहते। इस जगत मे इसका कोई उपाय नहीं है। आदमी को सीधा—साफ होना चाहिए। अगर राजनीति का रस लेना है तो अशांति होगी ही; उसको मजे से झेलो, उसे समझो कि वह हिस्सा है। लेकिन बुद्ध की शांति देखकर वह भी महत्वा-कांक्षा मन में जगती है कि बुद्ध जैसी शांति भी हो जाए। मगर बुद्ध किसी राज्य के मंत्री होने की कोशिश नहीं कर रहे थे, इसका खयाल नहीं आता। बल्कि राज्य था हाथ में, उससे हट गए थे। तो बुद्ध की शांति आकर्षित करती है, मंत्री का बंगला भी आकर्षित करता है। मन विरोधी वासनाओं से भर जाता है। और तब हम चाहते हैं कि दोनों बातें एक साथ हो जाएं। और दोनों बातें एक साथ नहीं हो पाती हैं।

जिस व्यक्ति को निसर्ग के अनुकूल चलना है, उसे यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि प्रतिकूल क्यों चल रहा हूं ?

●

एक मित्र ने पूछा है कि अगर हम प्रकृति के अनुकूल चलने लगें तो समाज का क्या होगा ?

आप पर समाज टिका हुआ है, ठहरा हुआ है ? नाहक हर आदमी सोचता है कि वही सम्हाले हुए है इस जगत को। कोई पंडित जवाहरलाल नेहरू से ही लोग नहीं पूछते कि आपके बाद क्या होगा, आप भी अपने मन से सोचते रहते हैं कि मेरे बाद क्या होगा ? कुछ भी नहीं होगा, लोग बड़े मजे में होंगे। कोई कहीं तकलीफ नहीं हो जानेवाली है। आपकी जगह खाली हो, इसके लिए कई लोग तैयार हैं कि जल्दी वह हो। आप प्रकृति के अनुकूल हो जाएंगे तो समाज का क्या होगा ? क्या होगा समाज का ?

कम से कम समाज का एक टुकड़ा अच्छा हो जाएगा तो समाज थोड़ा अच्छा होगा। नहीं, आपको समाज की फिक्र नहीं है। आपको पता नहीं है कि आप जो पूछ रहे हैं, उसका मतलब क्या है ? आप असल में यह पूछ रहे हैं कि अगर मैं

प्रकृति के अनुकूल होने लगूं तो जिस बीमार समाज से जो मेरे सम्बन्ध हैं और मैं अभी जमा हुआ हूं, वहां से मैं उखड़ जाऊंगा। समाज का क्या होगा, यह सवाल नहीं है। आपका क्या होगा?

आप उखड़े हुए अनुभव करेंगे। अगर आप दौड़ नहीं रहे हैं दौड़ने वालों में तो आप रास्ते के किनारे हटा दिए जाएंगे। दौड़ने वाले तो बड़े मजे में दौड़ेंगे, जगह थोड़ी ज्यादा हो जाएगी। आपका स्थान बचेगा; उनको कोई तकलीफ न होगी। पर आप दिक्कत में पड़ते हैं। आपको लगता है कि मैं हटा दिया जाऊंगा। अगर मैं खड़ा हुआ और नहीं दौड़ा तो लोग रास्ते के किनारे कर देंगे कि हट जाओ अगर नहीं दौड़ना है, तो बीच में मत आओ; जो दौड़ रहे हैं उन्हें दौड़ने दो। उससे मन में दुख होता है कि रास्ते से हट जाऊंगा। रस तो उसी रास्ते में बना है, कि आगे कहीं कोई यश का इन्द्रधनु दिखाई पड़ रहा है, वह हाथ में मुट्ठी बना लूंगा। दौड़े जा रहे हैं लोग, लगता है कि सारी दुनिया दौड़ रही है, अगर हम न दौड़े तो क्या होगा? कहीं सबको मिल गया आनन्द और हम बच गये तो क्या होगा?

इन दौड़ने वालों की शकलें देखें। इनमें से किसी को आनन्द मिलने वाला नहीं है। मिला नहीं है; मिलने की कोई आशा भी नहीं है। दौड़े जा रहे है, क्योंकि बाकी भीड़ भी दौड़ रही है। और इसमें खड़ा होना मुश्किल है, और खड़ा होगा जो, वह मैलएडजस्ट हो जाएगा।

इसलिए कठिनाई यह नहीं है कि समाज का क्या होगा। आपकी कठिनाई है कि आपका क्या होगा? तो आप अपने लिए निर्णय कर लें। अभी आपको क्या हो रहा है? अभी आप कौन से स्वर्ग मे हैं? एक मजे की बात है कि आदमी कभी नहीं सोचता कि वह क्या है अभी। और आपका क्या खो जाएगा? आप के पास कुछ हो तो खो सकता है। है ही नहीं। आप नाहक ही उस नंगे आदमी की तरह हैं, जो रात भर जागा हुआ है कि कोई कपड़े न चुरा कर ले जाए। कपड़े उनके पास हैं ही नहीं, मगर चोर से डरे हुए हैं। आपके पास क्या है, जो खो जाएगा? और जो आपके पास है, वह खोने ही वाला है। उसको आप बचा नहीं पाएंगे। क्योंकि जो भी आपके पास है, वह बाहर का है। मकान है, धन है, वह सब खो जाएगा। मौत उसे छीन लेगी। वह खोया ही हुआ है। भीतर क्या है आपके पास, जो मौत में भी आपके पास बचा रहेगा?

एक कसौटी खयाल रखनी चाहिए कि मौत में मेरे साथ क्या बच रहेगा। एक मित्र ने कहा है कि पिरामिड के ममीज में मुर्दों के पास जो हीरे-जवाहरात, रोटी, खाने के सामान रख दिये गए हैं, वे उनके साथ तो जाएंगे नहीं; लेकिन आपने अपने चारो तरफ जो इकट्ठा किया है, क्या वह आपके साथ जाएगा? मुर्दों के साथ नहीं जाएगा, छोड़ दीजिए; आपके साथ जाएगा? आपने क्या इकट्ठा किया है अपने चारो तरफ?

नहीं आपसे कह रहा हूँ कि उसे छोड़ दें; सिर्फ यही कह रहा हूं कि आप यह समझ लें कि वह आपके साथ जानेवाला नहीं है। फिर उसकी भी तलाश कर लें जो आप के साथ जा सकता हो। और अगर ऐसी हालत हो कि जो साथ नहीं जा सकता हो, उसके कुछ छोड़ने से उसकी उपलब्धि होती हो जो कि साथ जा सकता हो, तो सौदा कर लेने जैसा है। यह सौदा छोड़ देने जैसा नहीं है।

लेकिन भय बड़े अजीब हैं। और आपको पता ही नहीं है कि जो आप कर रहे हैं, वह आप कर रहे हैं कि दूसरे आप से करवा रहे हैं। आपका पड़ोसी एक कार खरीद कर आ जाता है। कल तक आपको इस कार को खरीदने का कोई खयाल नहीं था। अब यह पड़ोसी कार खरीद लाया, अब आपको भी यह कार खरीदना है। क्यों? कार की शायद जरूरत नहीं थी; नहीं तो कल भी आप सोचते कि खरीदनी है। लेकिन पड़ोसी ले आया; अब पड़ोसी से अहंकार की टक्कर है। और हो सकता है कि पड़ोसी भी अपने दफ्तर में किसी आदमी की कार देखकर इस झंझट में पड़ा हो।

अब आप यह कार लेकर रहेंगे। इसके लिए आप शान्ति खो सकते हैं, स्वास्थ्य खो सकते हैं, नींद खो सकते हैं, प्रेम खो सकते हैं, सब खो सकते हैं। पर यह कार चाहिए। और कार पाकर आपको क्या मिलेगा?

जो आपने खो दिया है, उसे दुबारा पाना मुश्किल हो जाएगा। और जो आपने पा लिया है, वह कुछ भी नहीं है। पड़ोसी के सामने अकड़ रहे! लेकिन पड़ोसी भी मिट जाने वाला है और आप भी मिट जाने वाले हैं। ये कारें खड़ी रह जाएंगी और आप खो जाएंगे। और जो आपने इसके लिए खोया था, उसे लौटाना मुश्किल होता चला जाएगा।

बहुत आश्चर्य की बात आदमी के साथ यही है कि उसे ठीक-ठीक यह भी पता नहीं है कि वह जो कर रहा है, वह खुद कर रहा है या दूसरे उससे करवा रहे हैं। चारों तरफ की भीड़ आपसे करवा रही है। जो कपड़े आप पहने हुए हैं, वह किसी ने आपको पहना दिये हैं। जिस मकान में आप रहे हैं, वह किसी ने आपको लिवा दिया है। जो आप वाणी बोल रहे हैं, वह किसी ने आपको सिखला दी है। आप बिलकुल उधार हैं। यह जो उधार व्यक्तित्व है, यह आपकी आत्मा नहीं है।

लाओत्से का निसर्ग के अनुकूल होने का यही प्रयोजन है कि आप अपनी आत्मा की तलाश कर लें, अपने स्वभाव की तलाश कर लें। आप उसकी फिक्र में लग जाएं, जो आपका है।

●

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से कहता है कि हम निसर्ग के अनुकूल हो जाएं तो क्या हम पशु जैसे न हो जाएंगे?

अभी आप क्या हैं? पशु जैसे नहीं हैं क्या? क्या है जो पशु से आपमें भिन्न

है ? क्या है आपमें, जो पशु से भिन्न है ? क्रोध वही है, मोह वही है, घृणा वही है, काम वही है, लोभ वही है; फिर क्या है, जो पशु से भिन्न है ?

हां, एक बात है कि पशुओं के पास कारें नहीं हैं, बंगलें नहीं हैं, तिजोड़ी नहीं है, बैंक-बैलेन्स नहीं है। ये आपके पास ज्यादा हैं। लेकिन अगर आप देखें कि पशु आपसे गहरे सो पाते हैं, ज्यादा प्रसन्न मालूम होते हैं, उनकी जिन्दगी ज्यादा निर्भर मालूम होती है, तो ये कारें और मकान महंगा सौदा मालूम पड़ते हैं। पशु कम से कम सो तो सकते हैं। माना कि उनके पास बिस्तर आप जैसे नहीं हैं — है ही नहीं; मगर बिस्तर को क्या करिएगा, अगर बिस्तर मिले और नींद खो जाए ? पशु आकाश के नीचे सो रहे हैं। आपके पास मकान हैं पत्थर की दीवारों का। मगर क्या करिएगा उस मकान का, अगर उसके भीतर भी प्राण भय से थरथराते रहें ? पशु खुले आकाश के नीचे भी शान्ति से सोया है। सुबह उसकी आख में जो ताजगी है, वह सुबह आपकी आखो में नहीं होती।

ऐसा क्या है आपके पास कि आप सोचते हैं कि पशु होने का डर लगता है कि कहीं पशु न हो जाए ? पशु ही हैं।

और ध्यान रखें, निसर्ग के अनुकूल आप ही हो सकते हैं, पशु नहीं हो सकता। क्योंकि पशु को प्रतिकूल होने का कोई उपाय नहीं है। **सिर्फ मनुष्य ही निसर्ग के अनुकूल हो सकता है।** पशु तो निसर्ग के अनुकूल है — अचेतन; उसके होने में कोई गरिमा नहीं है, कोई उपलब्धि नहीं है।

इसे ऐसा समझिए कि एक आदमी भिखारी है। और फिर एक बुद्ध राजा के घर में पैदा हुआ और वह भिखारी हो जाता है। दोनों सड़क पर भी भीख मांग रहे हैं लेकिन दोनों एक से भिखारी नहीं हैं। बुद्ध के भिखारीपन का मजा ही और है। **भिखारी का दुख बुद्ध का आनन्द है।** दोनों भिखारी है, दोनों भिक्षापात्र लिए खड़े हैं; लेकिन बुद्ध एक सम्राट-भिखारी हैं। बुद्ध का भिखारीपन स्वेच्छा से लिया गया है, वरण किया गया है। यह बुद्ध की इच्छा का, बुद्ध के अपने संकल्प का परिणाम है। बुद्ध ने छोड़ा है धन; बुद्ध का भिखारी होना सम्राट के बाद की अवस्था है। और वह जो भिखारी खड़ा है, उसने धन छोड़ा नहीं है; धन मांगा है। लेकिन उसे धन मिला नहीं है। अभाव है। वह सम्राट के पहले की अवस्था है। वह जो भिखारी है, वह सम्राट होना चाहता है, बुद्ध सम्राट थे, नहीं हो गए। **बुद्ध के भिखारीपन में एक समृद्धि है।** उस भिखारी का भिखारीपन सिर्फ भिखारीपन है। वहां सिर्फ रिक्तता है। बुद्ध के भीतर एक भराव है। बुद्ध की गरिमा को वह भिखारी नहीं पा सकता।

पशु निसर्ग के साथ हैं, उन्होंने प्रतिकूल होना जाना ही नहीं। वे भिखारी की तरह हैं। आदमी ने प्रतिकूल होना जाना है, वे बुद्ध की तरह हैं। और अब अगर वह अनुकूल हो जाए तो जिस रहस्य को वह पा लेगा, उसे पशु नहीं पा सकता।

पशु परमात्मा में लीन है, लेकिन अचेतन है। मनुष्य परमात्मा से दूर हट आया है, लेकिन चेतन है। मनुष्य अगर चेतन रूप से परमात्मा में लीन हो जाए तो वह स्वयं परमात्मा हो जाता है।

पशु है पीछे मनुष्य के, परमात्मा है आगे, और बीच में है मनुष्य। इसलिए मनुष्य तकलीफ में है।

और दो रास्ते हैं उसकी शांति के। एक है कि वह बिलकुल गिर कर पशु हो जाए। पशु होने का अर्थ है कि वह अचेतन हो जाए। इसलिए शराब पीकर कभी मन अचेतन हो जाता है तो आप भी बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हैं। जब शराब का दौर चलता है, दस-पांच मित्र शराब पीते हैं, तो थोड़ी देर में सभ्यता विसर्जित हो जाती है। फिर उनकी आखें देखें; धीरे-धीरे उनके चेहरे और उनकी आखों से एक बोझ उतर जाता है। फिर उनके हाथ-पैर में पुलक और गति आ जाती है; फिर उनकी वाणी में ओज आ जाता है। फिर वे बातें हृदयपूर्वक करने लगते हैं। फिर वे जोर-जोर से बातें करने लगते हैं। फिर वे नाच सकते हैं और गीत गा सकते हैं। लेकिन अब वे होश में नहीं हैं। यह बड़े मजे की बात है कि जब वे होश में थे, तब नाच नहीं सकते थे और अब होश में नहीं हैं, तब नाच सकते हैं। यह पशु जैसा हो जाना है; वापस नीचे गिर जाना है। बेहोशी का अर्थ है नीचे गिर जाना; होश का अर्थ है वापस नीचे गिरना नहीं, ऊपर उठ जाना।

इसलिए सन्त की आखो में भी पशु जैसी सरलता दिखाई पड़ेगी, वैसा ही निर्दोष भाव दिखाई पडेगा। लेकिन सन्त पशु नही है। सन्त पशु जैसा ही सरल हो गया है, लेकिन होशपूर्वक। शराबी बेहोश है। किसी ने एल एस डी ले लिया है, किसी ने मारीजुआना ले लिया है। उसकी आखों में भी एक निर्दोषता, सरलता आ जाती है। लेकिन वह पशु की सरलता, निर्दोषता है। वह बेहोश हो गया है; वह नीचे गिर गया है; उसने अपनी आदमियत का त्याग कर दिया है।

आदमियत का त्याग दो तरह से हो सकता है; पीछे गिरकर भी और आगे जाकर भी। पीछे गिरना पशुता है। लाओत्से पीछे गिरने को नही कह रहा है। लाओत्से आगे जाने को कह रहा है। वह कह रहा है कि होशपूर्वक निसर्ग के अनुकूल हो जाओ। होशपूर्वक शांत हो जाओ, मौन हो जाओ। होशपूर्वक सारी विकृति, सारा उपद्रव, सारा कलह छोड़ दो। होशपूर्वक अहंकार को विदा कर दो। होशपूर्वक कलह के बीज मत बोओ। द्वन्द्व मत पकड़ो, निर्द्वन्द्व हो जाओ — अवेयरनेस में, होश में।

तो निश्चित ही लाओत्से पशु जैसा ही लगेगा। और लाओत्से को एक गाय के पास बिठा देंगे, तो दोनों मे फर्क करना मुश्किल हो जाएगा। वह उतना ही शांत होगा। लेकिन गाय को उसका पता नही है, जिसका लाओत्से को पता है। लाओत्से जान रहा है अब; इस निसर्ग में डूबने का जो रस है, इसे पी रहा है।

तो जिन मित्र ने पूछा है कि कहीं निसर्ग के साथ एक होने से मनुष्य पशु जैसा तो नहीं हो जाएगा, वे ध्यान रखें, मनुष्य पशु जैसा हो सकता है, उपाय है बेहोश होना। जितना बेहोश आदमी होता है, उतना पशु जैसा होता है। इसलिए जो काम आप बेहोशी में करते हैं, वे पशु जैसे होते हैं। इसलिए जो काम आप होश में कर ही नहीं सकते, उनको मत करना; क्योंकि उस वक्त आप पशु हो जाते हैं। और जिन कामों को आप बेहोशी में ही कर सकते हैं, उनको भी होश में ही करने की कोशिश करना, तो आप पाएंगे कि आप उनको कर ही नहीं सकते।

किसी पर क्रोध है आपको; जब आप करते हैं, तब बेहोश हो जाते हैं। उसे बेहोशी में ही कर पाते हैं। आपकी ग्रन्थियों से जहर छूट जाता है खून में; शराब ऊपर से नहीं पीते है आप, भीतर से पी लेते हैं। अब तो उसकी जाच हो सकती है कि कितनी शराब आपके खून मे आप के क्रोध से पहुच गई है।

आपकी ग्रन्थियां है, जो पॉइजन इकट्ठा करती है जरूरत के लिए; क्योंकि क्रोध बिना बेहोशी के नही हो सकेगा। जब क्रोध का क्षण होता है, तत्काल आपका चेहरा लाल हो जाता है, आखे सुर्खी से भर जाती हैं, हाथ-पैर कस जाते है, दात बंधने लगते है, खून जहर से भर जाता है। अभी आपका जहर नापा जा सकता है कि कितना जहर आपके भीतर है। इस जहर के प्रभाव में आप किसी की गर्दन दबा देते है, किसी का सिर खोल देते है। घडी भर बाद जब जहर चुक गया और ऊर्जा क्रोध में बाहर जाकर खो गई, तब आप पछताते हैं और कहते है कि यह मैंने कैसे किया, यह तो मै कभी करना नही चाहता था। यह मुझसे हो कैसे गया ? तब आप सोचते है कि मुझे ऐसा लगता है कि जैसे किसी भूत-प्रेत ने मुझे पॅजेस कर लिया हो।

किसी ने आपको पॅजेस नही किया था, आप बेहोश हो गये थे, और ग्रन्थि जो जहर छोड़ रही थी, उसमें आप डूब गये थे। आपको लगता है कि यह मैंने नही किया। और एक लिहाज से ठीक लगता है; क्योकि आप थे ही नही, आप बेहोश थे।

क्रोध को होशपूर्वक करें, पूरे होश से भरकर करें, और आप पाएगे कि क्रोध नही कर सकते है। **जो होशपूर्वक न किया जा सके, समझना वह पाप है। और जो होशपूर्वक ही किया जा सके, समझना वह पुण्य है।** और कोई परिभाषा नही है पाप और पुण्य की। जिसे आप होशपूर्वक ही कर सकें, वह पुण्य है। जो बेहोशी मे हो ही न सके! अब इसका बड़ा मजा है, इसका मतलब यह हुआ कि अगर आप दान भी कर रहे है, और बेहोशी में कर रहे है, तो वह पाप है।

आपने कभी होशपूर्वक दान किया है ? मुश्किल है। कब करते है आप दान ? जब आप किसी के कारण बेहोश हो जाते हैं। चार लोग आते है और कहते है कि आप जैसे दानी इस गांव मे नही हैं। अब छाती फूलने लगी आपकी। सोचते तो

आप भी थे, लेकिन अभी तक किसी से कहा नहीं था। और वे लोग कहते हैं कि आपके बिना यह काम नहीं हो पाएगा; आपका हाथ मिला तो काम की सफलता है। वे आपको चढ़ा रहे हैं, वे आपको जहर दे रहे हैं। और आपकी ग्रन्थिया छोड़ने लगेंगी जहर; आप दान कर जाएंगे इस बातचीत में, इस प्रभाव में, इस प्रशंसा में, इस दम्भ में। पीछे पछताएंगे, जैसे क्रोध में पछताते हैं। लेकिन फिर कुछ करने का उपाय नहीं है। रात भर सो नहीं पाएंगे कि लाख रुपया दे दिया, किस क्षण में फंस गये! लेकिन कल अखबार में नाम छपे, फोटो छपे, तो थोड़ी राहत मिलेगी कि कोई बात नही है। मकान पर पत्थर लग जाए, आपका नाम लग जाए, तो राहत मिलेगी कि कोई हर्ज नही है, कोई धोखा नही हुआ है, ठीक है।

लेकिन दान भी आप अगर बेहोशी में करते हैं, कोई आपसे करवा लेता है, जैसे कोई आपसे क्रोध करवा लेता है, तो समझना कि पाप है। और क्रोध भी अगर आप होश में करते हैं, कोई करवाता नहीं, आप पूरे होशपूर्वक करते हैं, तो समझना कि पुण्य है। क्योकि जो क्रोध होशपूर्वक किया जाए, उससे कभी किसी का अहित नही होगा। वह हित के लिए ही हो सकता है। और जो दान बेहोशी में किया जाए, उसमें आपका भी अहित हो रहा है, दूसरे का भी अहित हो रहा है।

वे दूसरे जो आपसे दान ले गए हैं, सोचते है लौट कर कि खूब बुद्धू बनाया। वे यही सोचते जाते हैं। उनकी तो छोड दें, रास्ते पर एक भिखारी जब आपसे चार आने निकलवा लेता है, तब वह भी हसता है पीठ पीछे। और जिससे नहीं निकलवा लेता है, उसको मानता है कि आदमी मजबूत है।

और भिखारी भी जहा चार आदमी होते है, वहीं आपको पकड लेता है। अकेले में पकड ले तो आप उसको दान देने वाले नहीं हैं। क्योंकि अकेले में कहेंगे कि हट, क्या लगा रखा है, अभी तेरी उम्र इतनी है कि तू काम कर! लेकिन चार आदमी के सामने पकड लेता है आप के पैर और आप को लगता है कि चार आने के लिए चार आदमियो के सामने इज्जत जाती है तो चार आने दे दो। आप चार आदमियो को चार आने दे रहे हैं, उस भिखारी को नही। उसने आपको उस स्थिति में डाल दिया है, जहा वह आपसे करवाये ले रहा है।

आदमी जो भी बेहोशी में करता है, वह पाप है।

अगर आप निसर्ग के अनुकूल हो जाते हैं होशपूर्वक, तो आप पशु नहीं होते; आप परमात्मा की तरफ जा रहे हैं।

●

दो-तीन छोटे-छोटे प्रश्न और हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कुपुत्र के बारे में बताया कि उसको अनुभवो से गुजरने देना चाहिए तो वह खुद सीख जाएगा। लेकिन अनुभव लेने के बाद भी वह वही पसन्द करता है। कोई अपने कुपुत्र के सम्बन्ध में पूछ रहे हैं · चाहे

कितना भी दुःख झेलना पड़े, चाहे मौत भी क्यों न आ जाए, फिर भी वह वही करता है। बार-बार ठोकर खाकर भी वही दौर जारी है। उसका क्या उपाय किया जाए? उसको सुधारने का क्या तरीका है?

आप नहीं सुधार पाएंगे। जिसको जिन्दगी नहीं सुधार पा रही है, मौत नहीं सुधार पा रही है, उसको आप क्या सुधार पाएंगे? अगर आपकी बात सच है कि बार-बार दुख पाकर भी वह वही करता है, मौत भी आ जाए, तो भी वही करता है, और सुधरता नही है, तो आप हाथ अलग कर लें। आप से वह नहीं सुधर पाएगा। आप मौत से ज्यादा मजबूत नहीं हो सकते हैं। और जो दुख से नहीं सीख पा रहा है, वह आपसे क्या सीख पाएगा?

और कुपुत्र मत कहिए उसको। आपको कोई जड भरत मिल गया है। जिनको दुख नहीं सुधारते, मौत नही सुधारती, वे तो बडे पहुंचे हुए महात्मा हैं, वे तो परम अवस्था में हैं। उनको तो आप सुधारने की कोशिश ही मत करिये। और आप सुधारने को इतने उत्सुक क्यों हैं?

अपने को ही सुधार लेना काफी है। लेकिन दूसरे को सुधारने में बडा मजा आता है। अपनी फिक्र कर लें। और बेटे की उम्र अभी ज्यादा बाकी होगी। और आपकी तो कम बची होगी। उसकी छोडें, आप अपनी फिक्र कर ले। इस बेटे को आप अगर सुधार कर भी छोड गए तो भी इसमे आप नही सुधर जाएगे। अपने को सुधार लें।

और यह भी हो सकता है कि अगर आप बेटे को सुधारना बद कर दें तो शायद वह सुधर जाए। क्योंकि बहुत से बाप बेटों को सुधारने के कारण ही सुधरने नहीं देते हैं। क्योकि आपको सुधारने की जिद्द दूसरे को न सुधरने के लिए मजबूर करती है।

जिन्दगी जटिल है। जब एक बाप इस कोशिश मे रहता है कि सुधार कर ही रहूँगा, तब बेटा भी कहता है, ठीक है, अब देखें कौन जीतता है: तुम सुधारते हो कि हम? जैसा हूँ, वैसा ही बना रहूगा। अक्सर तो बेटे बाप से जिद्द में पड़ जाते हैं। और अहंकारी बाप अहकारी बेटे पैदा करता है। यह भी अहंकार है कि मै सुधार कर रहूगा। यह आपका ही बेटा है, यह खयाल रखना। वह आपके ही ढंग का होगा। आप कहते हैं कि मैं सुधार कर रहूँगा तो वह भी कहता है कि ठीक है, तो देख लूगा कि कौन मुझे सुधारता है? हो सकता है कि आपके सुधारने की वजह से ही वह इतना दुख झेल रहा हो, फिर भी न सुधर रहा हो।

कृपा करके उससे कहें कि क्षमा कर, तू जान मेरा काम जाने; अब मैं अपने को सुधारने में लगता हूं। तो उसको शायद बुद्धि आए कि अब बात ही खत्म हो गई, अब वह जिद्द का कारण ही न रहा। ध्यान रखे, दुनिया में कोई किसी को सुधार नही सकता है। सुधारना इतना आसान मामला नही है।

और जिन लोगों ने लोगों को सुधारा है, वे वही लोग थे, जिन्होंने सुधारने की कोशिश ही न की। उनके पास सुधरना हो जाता है। अगर आपका बेटा आपके पास रहकर नहीं सुधरता है तो आप सोचना कि बात समाप्त हो गई, अब और कुछ किया नहीं जा सकता। आपके पास रहकर कोई सुधर जाए तो समझना कि ठीक है। अपने को बदलें कि आपके पास एक हवा पैदा हो जाए कि आपका बेटा या आपकी बेटी, या आपके मित्र, या आपका परिवार उस हवा को छुए।

लेकिन जो भी सुधारने वाले लोग होते हैं, वे बोझिल हो जाते हैं। उनको कोई पसन्द ही नही करता है। वे दुष्ट हो जाते हैं। और घर भर अनुभव करता है कि दुष्ट से कैसे छुटकारा हो! और आप ऐसी बारीक, नाजुक नसें पकड़ते है लोगों की कि वे आपको कह भी नहीं सकते कि आप गलत हैं। और आप बोझिल हो जाते हैं। और आप कठिन मालूम होने लगते हैं। आपको सहना मुश्किल होने लगता है।

आदमी की हिंसा गहरी है। और आदमी अनेक तरह से हिंसा करता है। यह भी हिंसा है, आप क्यो सुधारने के लिए इतने दीवाने हैं? और अगर नही सुधरना है तो आप कुछ भी न कर पाएंगे। इस दुनिया में किसी को जबरदस्ती ठीक करने का कोई उपाय नहीं है। है ही नहीं उपाय। हां, जबरदस्ती ठीक करने की कोशिश उसको और जड कर सकती है। कई बार तो बहुत अच्छे बाप भी बहुत बुरे बेटों के कारण हो जाते है।

महात्मा गाधी के लडके ने गाधी के सुधारने का बदला लिया। महात्मा गाधी से अच्छा बाप पाना मुश्किल है, बहुत कठिन है। अच्छे बाप का जो भी अर्थ हो सकता है, वह महात्मा गाधी मे पूरा है। लेकिन हरिदास के लिए वे बुरे बाप सिद्ध हुए। क्या कठिनाई हुई? यह बड़ी मनोवैज्ञानिक घटना है। और यह इस सदी के लिए विचारणीय है। और हर बाप के लिए विचारणीय है।

गाधीजी कहते थे कि हिन्दू-मुसलमान सब मुझे एक हैं। लेकिन हरिदास अनुभव करता था कि यह बात झूठ है। यह बात ही है, फर्क तो है। क्योंकि गांधी गीता को कहते हैं माता, कुरान को नहीं कहते। और गांधी गीता और कुरान को एक भी बताते हैं। लेकिन जो गीता में कहा है, अगर वही कुरान मे कहा है, तो ठीक है; और जो कुरान में कहा है गीता में अगर वही नही कहा है, तो वे उसको बिलकुल छोड़ जाते है, उसकी बात ही नही करते हैं। तो कुरान में भी गीता को ही ढूंढ़ लेते हैं; तभी कहते हैं कि यह ठीक है। नहीं तो नही कहते।

हरिदास मुसलमान हो गया, हरिदास गाधी से वह हो गया अब्दुल्ला गांधी। गांधी को बड़ा सदमा पहुंचा। उन्होने अपने मित्रों को कहा कि मुझे बड़ा दुख हुआ है। जब हरिदास को पता लगा, तब उसने कहा कि इसमें दुख की क्या बात है; हिन्दू-मुसलमान सब एक हैं। यह आप देखते हैं, यहां बाप ने ही धक्का दे दिया अनजाने। और हरिदास ने कहा कि जब दोनों एक हैं, फिर क्या दुख की बात?

हिन्दू हो कि मुसलमान, अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, सब बराबर हैं, तो हरिदास गांधी कि अब्दुल्ला गांधी, इसमें पीड़ा क्या है ?

मगर बहुत पीड़ा गांधी को हुई।

गांधी स्वतंत्रता की बात करते थे, लेकिन अपने बेटों पर वे बहुत सख्त थे, और सब तरह की परतंत्रता बना रखी थी। तो जो-जो चीजें गांधी ने रोकी थीं, वह-वह हिरिदास ने की। मांस खाया, शराब पी, वह-वह किया। क्योंकि अगर स्वतंत्रता है तो फिर मतलब क्या होता है स्वतंत्रता का ? यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो, और स्वतत्रता है ?

यह तो बात वैसी ही हो गई, जैसी हेनरी फोर्ड कहता था। हेनरी फोर्ड के पास पहले काले रंग की ही गाड़िया थीं, कारें थी। और कोई नही थी। वह अपने ग्राहकों से कहता था : यू कैन चूज एनी कलर, प्रोवाइडेड इट इज ब्लैक कोई भी रग चुनो, काला होना चाहिए बस। क्या मतलब हुआ ? स्वतंत्रता है पूरी और सब तरह की परतत्रता नियम की बांध दी कि इतने बजे उठो, और इतने बजे सोओ, और इतने वक्त प्रार्थना करो, और यह मत खाओ और यह मत पीयो। सब तरफ से जाल कस दिया, और स्वतंत्रता है पूरी ! तो हरिदास ने, जो-जो गांधी ने रोका था, वह-वह किया।

अगर कही कोई अदालत है तो उसमें हरिदास अकेला नही फँसेगा। कैसे अकेला फँसेगा ? क्योंकि उसमें जिम्मेवार गाधी भी हैं, बाप भी है।

ध्यान रखना, अगर बेटा आपका फसा तो आप बच न सकेंगे। इतना ही कर ले कि बेटा ही अकेले फंसे और तुम बच जाओ तो भी बहुत है। हटा लो हाथ अपने दूर और बेटे से कह दो, जो तुझे ठीक लगे, अगर तुझे दुख भोगना ही ठीक लगता है तो ठीक है, दुख भोग ! अगर पीड़ा ही उठाना तेरा चुनाव है तो तुझे स्वतत्रता है, तू पीड़ा ही उठा ! हमें पीड़ा होगी तुझे पीड़ा में देखकर, लेकिन वह हमारी तकलीफ है। उससे तुझे क्या लेना-देना है ? वह हमारा मोह है, उसका फल हम भोगेंगे; उससे तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

अगर मुझे दुख होता है कि मेरा बेटा शराब पीता है, तो यह मेरा मोह है कि मैं उसे मेरा बेटा मानता हू। इसलिए दुख पाता हू। इसमें उसका क्या कसूर है ? मेरा बेटा जेल चला जाता है तो मुझे दुख होता है; क्योंकि मेरे बेटे के जेल जाने से मेरे अहंकार को चोट लगती है ! लेकिन यह मेरा कसूर है, इसमें उसका क्या कसूर है ? उससे कह दे कि हम दुखी होंगे, हो लेंगे। वह हमारी भूल है, वह हमारा मोह है; लेकिन तुम स्वतंत्र हो।

और अपने को बदलने में लगें। जिस दिन आप बदलेंगे, उस दिन आपका बेटा ही नहीं, दूसरे के बेटे भी आपके पास आकर बदल सकते हैं।

बहुत से प्रश्न और हैं। फिर दोबारा जब बैठक होगी, तब उन्हे ले लेगे।

आज इतना ही।